बुन्देलखण्ड में ईसाई धर्म का आगमन और उसका प्रभाव- एक आलोचनात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की इतिहास -विषयक

पी - एच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

वर्ष -2005

शोध - निर्देशक

डॉ. कमला [illegible] शुक्ला

प्राचार्य

राजकीय महिला स्नातकोत्तर

महाविद्यालय बाँदा (उ.प्र.)

शोधार्थिनी

Rama Gupta

कु. रमा गुप्ता

एम.ए. (इतिहास)

c/o श्री सोहन लाल गुप्ता

बलखण्डी नाका बाँदा (उ.प्र.)

पं. जवाहर लाल नेहरू पी.जी. कॉलेज बाँदा (उ.प्र.)

समर्पण

यह सब उनके लिए –

जो मानवता के रक्षार्थ जन्म लेते हैं,
अन्धकार को मिटा प्रकाश की किरण के दर्शन कराते हैं,
झंझावातों और तूफानों से भी नहीं घबड़ाते,
वे अखण्ड ज्योति की तरह खड़े रहकर जलते रहते हैं,
वे शत्रुओं के आगे घुटने नहीं टेकते,
मृत्यु से भयभीत नहीं होते,
अवसर पड़ने पर अपने प्राणों का त्याग,
जीवन का उत्सर्ग क्रूस में चढ़कर कर देते हैं,
पुनर्जीवित होकर मानवता के सन्देश,
समस्त प्राणियों के लिए छोड़ जाते हैं,
ऐसे थे प्रभु येशु,परमेश्वर के एक मात्र पुत्र,
समर्पित इनको मेरा यह कृतित्व,
जो महाप्रकाश के सम्मुख,
एक जुगनू सा टिमटिमा रहा है ।

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि रमा गुप्ता ने *'बुन्देलखण्ड में ईसाई धर्म का आगमन और उसका प्रभाव–एक आलोचनात्मक अध्ययन'* इतिहास विषयक पी–एच0 डी0 शोध कार्य मेरे निर्देशन में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी द्वारा निर्धारित अवधि तक रहकर सम्पन्न किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उच्चस्तरीय तथ्यों पर आधारित है तथा शोध के क्षेत्र में इस प्रबन्ध का मौलिक योगदान होगा।

मैं शोध प्रबन्ध प्रस्तुति हेतु प्रबलतम् संस्तुति करता हूँ।

अग्रसारित

डॉ0 नन्दलाल शुक्ला
PRINCIPAL
प्राचार्य
Pt. J. Nehru College, Banda
पं0 जवाहर लाल नेहरू
पी0जी0 कॉलेज, बाँदा (उ0प्र0)

शोध–निर्देशक

डॉ0 कमलाकान्त शुक्ला
प्राचार्य
राजकीय महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, बाँदा (उ0प्र0)

घोषणा–पत्र

मैं/रमा गुप्ता सुपुत्री श्री सोहन लाल गुप्ता निवासी बलखण्डी नाका, बाँदा की हूँ। मैंने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय से पी–एच0डी0 उपाधि हेतु इतिहास विषय 'बुन्देलखण्ड में ईसाई धर्म का आगमन और उसका प्रभाव – एक आलोचनात्मक अध्ययन' पर शोध प्रबन्ध डॉ0 कमलाकान्त शुक्ला, प्राचार्य, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँदा के कुशल निर्देशन में पूर्ण किया है। यह मेरी मौलिक रचना है। मैं शपथ पूर्वक यह घोषणा करती हूँ कि यह शोध प्रबन्ध किसी अन्य शोध प्रबन्ध की अनुकृति नहीं है। केवल साक्ष्य की प्रस्तुतीकरण के लिए अन्य ग्रन्थों से उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं, जिनका उल्लेख मैंने शोध प्रबन्ध में किया है।

शपथ कर्त्री

Rama Gupta
3-6-2005

रमा गुप्ता
बलखण्डी नाका
बाँदा (उ0प्र0)

-: प्राक्कथन :-

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश में भिन्न–भिन्न धर्मों के अनुयायियों को निकट से समझने का प्रयास देश की भावनात्मक एकता के लिए अत्यावश्यक है। स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मेरे गुरूजनों ने परामर्श दिया कि मैं बुन्देलखण्ड संभाग में निवास करने वाले प्रभु येशु के अनुयायियों का धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक दृष्टिकोण से अध्ययन करूँ। मेरे गुरूवर *डॉ0 कमलाकान्त शुक्ला* ने मुझे प्रोत्साहित किया, उनका आशीर्वाद ही इस शोध कार्य के पथ का पाथेय बना। तदर्थ मैं उनकी आजीवन ऋणी रहूँगी।

अपने शोध प्रबन्ध की सामग्री एकत्र करने के लिए मुझे बुन्देलखण्ड के भिन्न–भिन्न नगरों में जाना पड़ा। मैं अपने *पिताश्री–माताश्री* की अनुग्रहीत हूँ कि उन्होंने मुझे भिन्न–भिन्न नगरों में जाने की अनुमति प्रदान की। मैंने पिछले दो वर्षों में निम्नलिखित नगरों का अनेक बार भ्रमण किया– मंडला, छतरपुर, जबलपुर, दमोह, सागर, झाँसी, ग्वालियर आदि ; क्योंकि इन नगरों में मसीही धर्म के अनुयायी पिछली तीन शताब्दियों से रहते आए हैं और इन्हीं नगरों में विदेशी मिशनरियों ने शैक्षणिक, सामाजिक एवं चिकित्सा के क्षेत्र में अद्‌भुत योगदान दिया है, जिसकी ऐतिहासिकता अमिट है। इन नगरों में प्रायः मिशनरियों द्वारा स्थापित स्कूल और कॉलेज हैं, जिनके पुस्तकालयों में ऐतिहासिक सामग्री हैं तथा जिनके अध्ययन से हमें उन नगरों के प्राचीन इतिहास का एवं मिशनरियों द्वारा किए गए विकास कार्यों की जानकारी प्राप्त होती है। ऐसा ही पुस्तकालय लेनॉर्ड थियोलॉजिकल कॉलेज जबलपुर में है, जिसमें पिछली तीन शताब्दियों के ऐतिहासिक आलेख, प्राचीन ग्रन्थ एवं मिशन संस्थाओं के वार्षिक प्रतिवेदन हैं। मैं इस कॉलेज के *उप–प्राचार्य प्रोफेसर एफ0जे0 वेल्सलन* को हृदय से धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने शोध सामग्री खोजने में मेरी सहायता की है। जबलपुर में ही अनेक पुस्तकों को खोजने में हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान, साहित्यकार एवं शल्य चिकित्सक *डॉ0 सुधीर क्षीरज नेल्सन* ने मेरी मदद की। इनकी अनुशंसा पर मसीही धर्म के बुन्देलखण्ड के जाने–माने विद्वानों एवं संस्थाओं ने मेरा स्वागत कर समस्त जानकारियाँ प्रदान कीं, मुझे न केवल मसीही धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों एवं प्रभु येशु मसीह की अन्तर्दृष्टि एवं शिक्षाओं का अपितु मसीही धर्म के प्रचार–प्रसार एवं इतिहास से अवगत कराया। जबलपुर के अन्य धर्माचार्य *रेव्ह. किशन सिंह, बिशप जेराल्ड अल्मेडा,* लेखक *डॉ0 फिलिप मसीह, स्व0 रेव्ह. उमाकान्त सिंह, श्री फ्रांसिस जोसेफ, माननीय बिशप एफ0सी0 जॉनाथन,* अत्तर्रा के *रेव्ह. एस0बी0 साइमन* के प्रति मैं नतमस्तक हूँ, जिन्होंने मसीही धर्म के विषय में तरह–तरह के सहयोग प्रदान कीं।

दमोह नगर में दो ऐतिहासिक तथा प्राचीन मिशन केन्द्र हैं जो पायोनियर मिशनरियों के निवास स्थान रहे हैं। वास्तव में यह बुन्देलखण्ड का प्रमुख नगर रहा है, जहाँ से मिशनरी बुन्देलखण्ड के अन्य नगरों में जाया करते थे। वर्तमान समय में उन्हीं प्राचीन धर्म प्रचारकों की सन्तान डॉ0 अजय लाल एवं डॉ0 आर0के0 डेविड लाल दमोह में ही नहीं बल्कि विश्व में भी धर्म प्रचार कर रहें हैं।

सागर भी उल्लेखनीय नगर है जहाँ के विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में डॉ0 ई0एफ0की , जिन्होंने हिन्दी भाषा एवं साहित्य का प्रथम इतिहास लिखा, की अनेक रचनाएँ संग्रहीत हैं। यहीं डॉ0की एक मिशन स्कूल में प्राचार्य थे। इसी पुस्तकालय में विश्वविख्यात मानव शास्त्रीय वेरियर एल्विन के अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिन्होंने बुन्देलखण्ड के मण्डला जिले में लगभग 21 वर्ष रहते हुए वहाँ की जनजातियों के विषय में अमूल्य ग्रन्थों की रचना की।

इसी प्रकार बुन्देलखण्ड की प्रथम महिला डॉक्टर ग्रेस जोन्स सिंह ने छतरपुर का नाम उल्लेखनीय

बना दिया है। वास्तव में छतरपुर एवं नवगाँव में शिक्षा एवं चिकित्सा की शुरूआत करने वाली महिला मिशनरियों का जीवन चरित्र किसी उपन्यास से कम मनोरंजक नहीं है। सम्भवतः सम्पूर्ण भारतवर्ष में फ्रेण्ड्स मिशन ही ऐसा मिशन था जिसने भारतवर्ष में महिला मिशनरी भेजे और जिन्होंने छतरपुर में उल्लेखनीय कार्य किया। यहीं बुन्देलखण्डी भाषा का प्रथम व्याकरण एवं बुन्देलखण्डी भाषा में अनेक स्कूली पाठ्य पुस्तक रची गई। यह तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मैंने अपने शोध प्रबन्ध को सचित्र बनाने का प्रयास किया है और अनेक दुर्लभ फोटोग्राफ्स एकत्र किए हैं, इनके लिए मैं हिन्दी के वरिष्ठ लेखक *डॉ0 जे0एच0 आनन्द* की अनुग्रहीत हूँ। *श्री कृष्ण मोहन परनामी* एवं *प्रेमलता परनामी* को कृतज्ञता प्रकट करती हूँ, जिन्होंने बुन्देलखण्ड के अनेक नगरों में आने–जाने में मेरी मदद की, विशेषकर जबलपुर और दमोह में। शोध प्रबन्ध से सन्दर्भित विषय सामग्री मुझे बुन्देलखण्ड शोध संस्थान के संरक्षक *श्री राधाकृष्ण बुन्देली* से उपलब्ध हुयी है। मैं उनके सहयोग के प्रति आभार प्रकट करती हूँ। आशा है भविष्य में भी वे मुझे अपना आशीर्वाद प्रदान करते रहेंगे। इसी श्रृंखला में बुन्देलखण्ड के *श्री हरिविष्णु अवस्थी, श्रीमती सुधा गुप्ता* (झाँसी), *बिहारी लाल बबेले* (ललितपुर), *डॉ0 एस0डी0 त्रिवेदी, अयोध्या प्रसाद कुमुद* के प्रति भी मेरे हार्दिक धन्यवाद एवं आभार।

मैं *डॉ0 कीर्तिवीर सिंह* और *श्रीमती सरला सिंह* के प्रति सादर कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने मुझे उचित मार्ग दर्शन प्रदान किया है ; जिससे यह शोध प्रबन्ध पूर्ण हो सका है। शोध प्रबन्ध के अक्षर–विन्यास एवं टंकण के लिए *ओमप्रकाश कश्यप* एवं उनके सहयोगी *बृजेश निरंकारी* को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ कि अल्प समय में बड़ी मेहनत के साथ शब्दों की अशुद्धियों को दूर करते हुए इस कार्य को सम्पूर्णता प्रदान करने में कठिन श्रम किया है।

इस शोध प्रबन्ध में मैंने बाइबिल ग्रन्थ के पूर्ण शीर्षक देने के स्थान पर संक्षिप्त रूप दिया है : जैसे सन्त मत्ती के द्वारा रचित शुभ समाचार का 11 वाँ अध्याय एवं 5 वाँ पद। इस पूर्ण वाक्य को मैंने संक्षिप्त रूप में इस प्रकार लिखा है – मत्ती 11 : 5 ।

मैंने भारतीय समाज में आम प्रचलित 'ईसाई' शब्द के स्थान पर 'मसीही' शब्द का प्रयोग किया है। क्रिश्चियन समाज के लोग स्वयं को ईसाई शब्द से संबोधित नहीं करते अपितु स्वयं को मसीही कहते हैं।

'बुन्देलखण्ड में ईसाई धर्म का आगमन और उसका प्रभाव– एक आलोचनात्मक अध्ययन' शोध प्रबन्ध प्रखर शोध निर्देशक श्रद्धेय गुरूवर *डॉ0 कमलाकान्त शुक्ला,* प्राचार्य राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँदा की अनुकम्पा से पूर्णता को प्राप्त हुआ है। उन्हें पुनरापि नमन है। इस शोध कार्य में जो अशुद्धियाँ रह गयीं हों, उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ आशा है कि यह शोध प्रबन्ध विषय से सम्बन्धित जिज्ञासुओं को रूचिकर लगेगा सहृदय पाठकों को भाएगा।

इसी प्रत्याशा और विश्वास के साथ –

शोध छात्रा

(रमा गुप्ता)

अनुक्रमणिका

अध्याय प्रथम

अध्याय– 1

✵ भूमिका : बुन्देलखण्ड का भौगोलिक विस्तार एवं परिचय।

: *भौगोलिक स्थिति।*

: *क्षेत्रफल।*

: *बुन्देलखण्ड का प्राचीन नाम।*

: *बुन्देलखण्ड के प्रमुख ऐतिहासिक– स्थल।*

: *बुन्देलखण्ड की पर्वत श्रेणियाँ।*

: *बुन्देलखण्ड की प्रमुख नदियाँ।*

: *भूमि की बनावट या मिट्टी।*

: *बुन्देलखण्ड की वन–सम्पदा।*

: *तापमान एवं जलवायु।*

: *जीव–जन्तु।*

: *कृषि–उपज।*

: *खनिज–सम्पदा।*

बुन्देलखण्ड का मानचित्र

(दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार)

अध्याय– 1
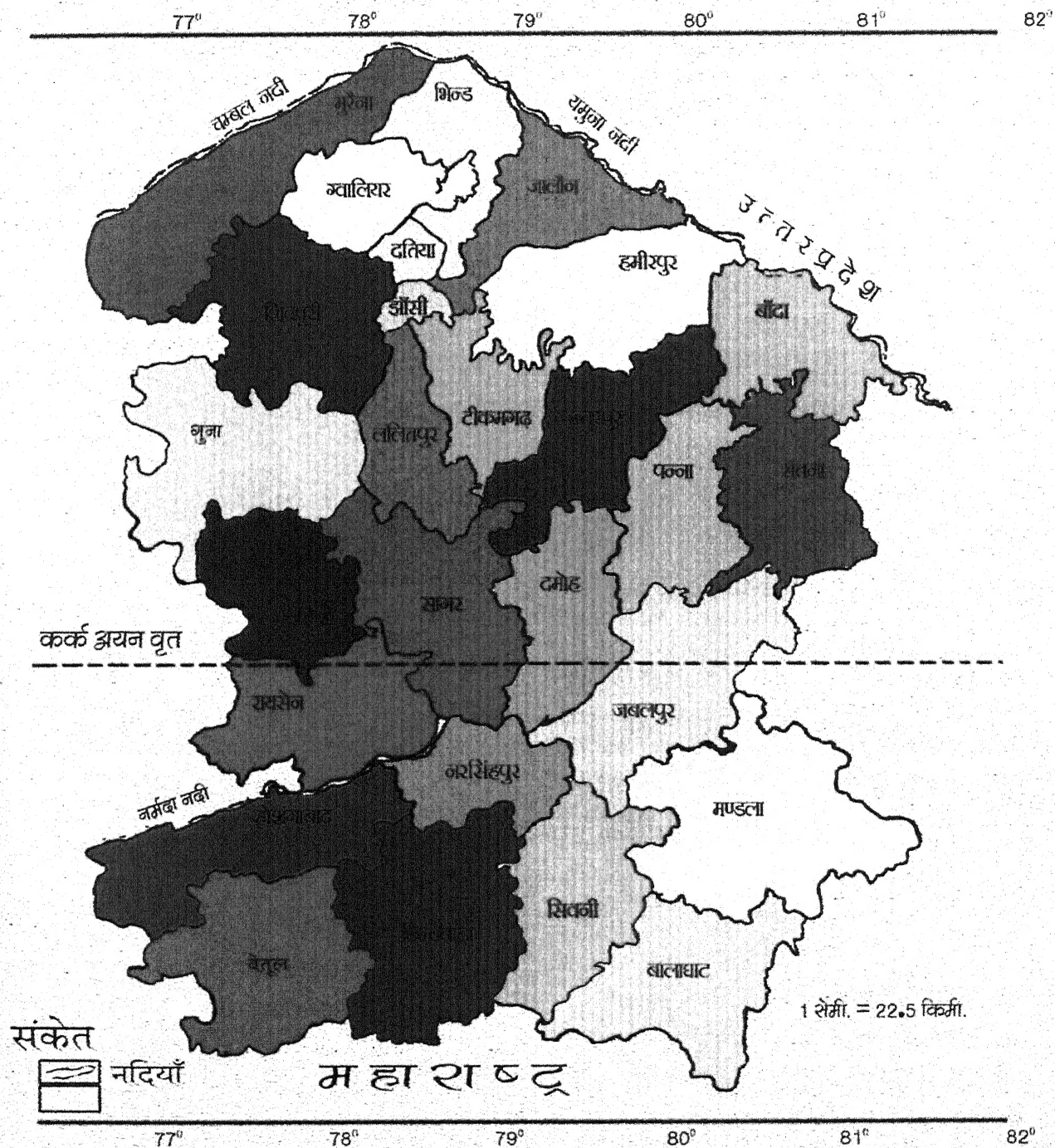
बुन्देलखण्ड का भौगोलिक विस्तार एवं परिचय

आधुनिक भारत के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास में वर्तमान मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश की सीमा के अन्तर्गत आने वाले बुन्देलखण्ड क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बुन्देलखण्ड भारत वर्ष का हृदय स्थल कहा जाता है। यह भूभाग तब प्रसिद्धि में आया जब चौदहवीं शताब्दी में बुन्देलों ने अपना राज्य स्थापित किया। आधुनिक भारत के मध्य भाग में स्थित इस भू–भाग में लगभग समान प्रकार का सांस्कृतिक परिवेश देखने को मिलता है। इस भाग के निवासियों में भाषा, कला और संस्कृति का पिरोया हुआ एक सूत्र प्रतिबिम्बित होता है। हमारे देश में कहीं–कहीं जातियों के नाम पर आधारित, प्रदेश, विशेष का नामकरण या प्रदेश के नाम पर आधारित, जाति विशेष का नामकरण किया जाता रहा है। यथा – राजपूतों की निवास भूमि राजस्थान, गोंडों की निवास भूमि गौंडवाना तथा पंजाब के निवासी पंजाबी, बंगाल के निवासी बंगाली कहलाते हैं। अस्तु बुन्देलखण्ड का नाम, बुन्देलों की निवास एवं कर्म भूमि पर आधारित है। किसी देश, राष्ट्र या क्षेत्र के इतिहास के समुचित मूल्यांकन के लिए भूगोल और कालक्रम दोनों का ज्ञान अपरिहार्य है। अपने वास्तविक सन्दर्भ में किसी सभ्यता का विकास देश और काल के बिना सम्भव नहीं होता। अत्यन्त प्राचीन इतिहास वाले भारत जैसे विशाल देश के परिप्रेक्ष्य में भूगोल के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अतः भारतीय इतिहास के अध्ययन में भौगोलिक ज्ञान एक मूलभूत आवश्यकता हैं।

ऐतिहासिक भूगोल के दो प्रमुख पक्ष हैं – 1. पर्वत श्रेणी, नदियां, झील, नगर, ग्राम और व्यापारिक मार्गों का सही अभिज्ञान और 2. सभ्यता के विविध पक्षों यथा सामाजिक और आर्थिक जीवन, धर्म और दर्शन, भाषा और साहित्य तथा कला और वास्तु पर प्राकृतिक भूगोल का प्रभाव।

इस प्रकार ऐतिहासिक भूगोल अपने विस्तृत सन्दर्भ में सभ्यता और संस्कृति के विविध पक्षों के विकास को उद्‌घाटित करने का प्रयत्न करता है।[1]

भौगोलिक स्थिति

विवेच्य युगीन बुन्देलखण्ड की भौगोलिक सीमा पर विचार करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अन्य भारतीय राज्यों की भाँति बुन्देलखण्ड की राजनीतिक सीमाएँ भी राजनीतिक गतिविधियों और प्रशासनिक कारणों से परिवर्तित होती रहीं हैं तथापि उपलब्ध साक्ष्यों, धरातलीय संरचना, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक सम्बन्धों के आधार पर इस प्रदेश की भौगोलिक सीमा का निर्धारण यहाँ किया जा रहा है। यह सामान्य मान्यता रही है कि बुन्देलखण्ड आधुनिक मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश के उस भू–भाग का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ लोग बुन्देला कहे जाते थे।

बुन्देलखण्ड उत्तरी अक्षांश 23^0– 45' अंश तथा 26^0–50' और पूर्वी देशान्तर 77^0–52' तथा 82^0 अंश के मध्य उन्नतोदर सम चतुर्भुज के रूप में स्थित है।[2] यमुना बुन्देलखण्ड के उत्तरी तथा चम्बल उत्तरी–पश्चिमी सीमा का निर्धारण करती है। दक्षिण की तरफ इस क्षेत्र में मध्यप्रदेश का जबलपुर तथा सागर कमिश्नरियां सम्मिलित हैं।[3] यमुना सिंचित इस प्रदेश में उत्तर प्रदेश के झाँसी, जालौन, बाँदा तथा हमीरपुर जिले सम्मिलित थे। इनके अतिरिक्त इस प्रदेश में अनेक छोटी–बड़ी रियासतें[4] शामिल थीं जो आजकल मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश का अंग बन गई हैं।

कनिंघम का विचार है "गंगा–यमुना के दक्षिण बेतवा नदी से लेकर मिर्जापुर की विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर तक का भू–भाग बृहत्तर बुन्देलखण्ड में सम्मिलित था। नर्मदा के

उद्गम के निकटवर्ती सागर, चन्देरी तथा बिलहरी के जिले इस प्रदेश के अंग थे।"[5] इस सम्बन्ध में बुच महोदय का कथन है – "जुझौतिया ब्राह्मण उत्तर में यमुना से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक और पश्चिम में बेतवा तटवर्ती ओरछा से लेकर पूर्व में बुन्देला नाला[6] तक फैले हुए थे।"

बुन्देलखण्ड की सीमाओं का निर्धारण विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से किया है। तत्संबन्ध में दीवान प्रतिपाल सिंह ने श्री वियोगी हरि जी का निम्नांकित दोहा उल्लिखित किया है जो बुन्देलखण्ड की सीमा को निर्धारित करता है –

इत यमुना, उत नर्मदा, इत चम्बल, उत टोंस ।
छत्रसाल सो लरन की, रही न काहू होंस ।।[7]

अर्थात् छत्रसाल से, जिसका राज्य, उत्तर में यमुना और दक्षिण में नर्मदा, पश्चिम में चम्बल तथा पूर्व में टोंस नदी तक फैला हुआ था। इस प्रकार उससे लड़ने की हिम्मत किसी में नहीं थी। वस्तुतः यह दोहा, छत्रसाल की विजय प्रशस्ति या शौर्य गाथा का सूचक है। अतः इस दोहे को इस प्रदेश की सीमाओं के लिए निर्णायक नहीं माना जा सकता।

पूर्व में – टोंस और सोन नदियाँ तथा बनारस के निकट बुन्देला नाले तक ।
पश्चिम में– चंबल, बेतवा और सिंध नदियाँ विंध्याचल श्रेणी तथा मालवा, सिंधिया का ग्वालियर राज्य ।
उत्तर में – यमुना और गंगा नदियाँ अथवा इटावा, कानपुर, फतेहपुर, इलाहाबाद और मिर्जापुर तथा बनारस के जिलें हैं।
दक्षिण में – नर्मदा नदी और मालवा ।

परन्तु समय–समय पर राजाओं की सत्ता के अनुसार सीमाएँ बढ़ती और घटती रहीं हैं। श्री गोरेलाल तिवारी ने "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पुस्तक में लिखा है – "भारत वर्ष के मध्य भाग में, नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत की शाखाओं के समकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित; सृष्टि – सौन्दर्यालंकृत जो प्रदेश है, उसे बुन्देलखण्ड कहते हैं।"[8]

सालारजंग संग्रहालय, हैदराबाद के निदेशक, डॉ० एम०एल० निगम ने, बुन्देलखण्ड का और भी विस्तृत रूप स्वीकार किया है जिसमें कौशाम्बी, कोसम, भीटा, त्रिपुरी, सॉची, उदयगिरी आदि पुरातात्विक स्थल सम्मिलित हैं।[9] दीवान प्रतिपाल सिंह ने गंगा–यमुना, नर्मदा तथा चम्बल से सिंचित प्रदेश को बुन्देलखण्ड बतलाया है।[10]

एलेक्जेण्डर कनिंघम ने, बुन्देलखण्ड की सीमा प्राचीन जुझौति प्रदेश की सीमा ही (अर्थात् यमुना से नर्मदा और बेतवा से विन्ध्यवासिनी (मिर्जापुर) तक) मानी है।[11]
बुन्देलखण्ड की सीमा को किंचित परिवर्तनों के साथ कनिंघम,[12] स्मिथ[13] और दीवान प्रतिपाल सिंह ने भी स्वीकार की है। वस्तुतः इस क्षेत्र से संबन्धित गजेटियर में भी बुन्देलखण्ड की यही सीमाएँ दी गई हैं। बुन्देलखण्ड भारत के ठीक मध्य में स्थित है। बुन्देलखण्ड की यह स्थिति पुराणों में भी वर्णित है। "स्कन्दपुराण" में जेजाकभुक्ति की स्थिति व सीमाओं का वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है – "इस देश के ग्रामों की संख्या 42 हजार थी इसके आस–पास कान्तिपुर, चेरी और मालव बतलाए गए हैं।"[14]

दीवान प्रतिपाल सिंह ने "बुन्देलखण्ड का इतिहास" में राजा छत्रसाल के समय के बुन्देलखण्ड की सीमा निम्नांकित छंद में निर्धारित की है –

उत्तर समथल भूमि गंग जमुना सु–बहति है ।
प्राची दिस कैपूर, सोन, काशी सु–लसति है ।।

दक्खिन रेवा विंध्याचल तन सीतल करनी ।

पच्छिम में चंबल चंचल सोहति मनहरनी ।।

तिनमधि राजे गिरि, वन, सरिता, सहित मनोहर ।

कीर्तिस्थल बुन्देलन कौ बुन्देलखण्ड वर ।।[15]

बुन्देलखण्ड की सीमा का निर्धारण एक लोकोक्ति में प्रचलित है, जिसमें अप्रत्यक्ष रूप से सीमा का निर्धारण किया गया है।[16] जिसके अनुसार ओरछा, होशंगाबाद, सागर, नर्मदा तक का भू–भाग बुन्देलखण्ड में सम्मिलित था।

बुन्देलखण्ड में कुल मिलाकर 33 छोटे–बड़े राज्य थे जो अब उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश राज्यों में विलीन हो चुके हैं। आजकल बुन्देलखण्ड राजनीतिक विभाजन के अनुसार निम्नलिखित जिलों को अपने अंचल में समेटे है –

<u>*उत्तर प्रदेश*</u>– 1. झाँसी, 2. ललितपुर, 3. जालौन, 4. बाँदा, 5. चित्रकूट, 6. हमीरपुर, 7. महोबा ।

<u>*मध्य प्रदेश*</u>– 1. दतिया, 2. मुरैना, 3. ग्वालियर, 4. भिण्ड, 5. शिवपुरी, 6. टीकमगढ़ 7. सागर, 8. दमोह, 9. गुना, 10. सतना, 11. पन्ना, 12. छतरपुर, 13. जबलपुर, 14. विदिशा, 15. रायसेन, 16. नरसिंहपुर, 17. मण्डला, 18. होशंगाबाद, 19. बैतूल, 20. छिन्दवाड़ा, 21. सियोनी, 22. बालाघाट ।

निम्नलिखित जिलों के आंशिक भाग –

1– जबलपुर – नर्मदा के उत्तर का भाग ।
2– नरसिंहपुर – नर्मदा के उत्तर का भाग ।
3– रायसेन – नर्मदा के उत्तर का भाग ।
4– ग्वालियर – दक्षिण पूर्वी भाग ।
5– सतना – मध्य और पश्चिमी भाग ।
6– होशंगाबाद – नर्मदा के उत्तर का भाग ।

कुछ अन्य विद्वानों ने बुन्देली भाषा–भाषी प्रदेश को और भी विस्तृत माना है। राजनीतिक पूर्वाग्रह व नैतिक विग्रह कुछ भी रहे हों तथा इनके कारण इस भूखंड की सीमाएँ समय–समय पर संकुचित और व्यापक भले ही होती रहीं हों किन्तु उत्तर में यमुना दक्षिण में नर्मदा पूर्व में टोंस और पश्चिम में चंबल – बुन्देलखण्ड की ये सीमाएँ ही सही उतरती हैं, कारण सांस्कृतिक, साहित्यिक भाषायी व्यापकता के आधार पर कभी भी किसी क्षेत्र या भू–भाग को निश्चित राजनीतिक सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है। एक ही भाषा व संस्कृति के लोग अपनी आवश्यकतानुसार समय–समय पर अपने समीप के क्षेत्रों में फैलते जाते हैं तथा एक ओर से सिमटते जाते हैं। भाषा परिस्थितिवश अपनी सीमाएँ तोड़ती रहती हैं। उदाहरण स्वरूप उपरोक्त सीमाओं में बंधी होते हुए भी बुन्देली भाषा उत्तर में आगरा, मैनपुरी, इटावा जिलों के दक्षिणी भागों तक तथा दक्षिण में यह भाषा नर्मदा को लांघकर सतपुड़ा के मैदान में पहुँचकर सिवनी, छपरा, बालाघाट और छिंदवाड़ा के अनेक भागों में बोली जाती है। अतः यह सिद्ध होता है कि बुन्देलखण्ड की उपरोक्त सीमाएं ही सही हैं। यह निश्चित है कि वीर बुन्देला राजा छत्रसाल के राजनीतिक प्रभाव वाले विस्तृत भूखंड की ही ये सीमाएँ मानी जाती हैं। इन सीमाओं ने आज तक राजनीतिक सीमाओं का रूप नहीं लिया है, वस्तुतः उपरोक्त सीमाओं को तो यहाँ की सांस्कृतिक परम्पराओं रहन–सहन, रीति–रिवाज तथा साहित्यिक गतिविधियों ने जन्म दिया है।[17]

क्षेत्रफल

उपर्युक्त सीमा विवरण से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में इस समय विभाजित है। इसे हम दो भागों में बाँट सकते हैं – उत्तरप्रदेशीय बुन्देलखण्ड एवं मध्यप्रदेशीय बुन्देलखण्ड । उत्तरप्रदेशीय बुन्देलखण्ड में – जिसमें झाँसी, जालौन, बाँदा, हमीरपुर तथा ललितपुर जिले सम्मिलित है, का क्षेत्रफल 10,536 वर्गमील है, मध्यप्रदेशीय बुन्देलखण्ड जिसमें मुरैना, ग्वालियर, दतिया, भिण्ड, शिवपुरी, गुना, टीकमगढ़, छतरपुर, सागर, जबलपुर, पन्ना, दमोह आदि जिले, कुछ तहसीलें व गाँव सम्मिलित हैं, का क्षेत्रफल 37,774 वर्गमील है और इस प्रकार सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड का क्षेत्रफल 48,310 वर्गमील है।

दीवान प्रतिपाल सिंह[18] ने अपनी प्रमुख पुस्तक 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' में क्षेत्रफल का विवरण इस प्रकार दिया है – इस प्रदेश का क्षेत्रफल सब मिलाकर 48310 वर्गमील है। इसमें इलाहाबाद और मिर्जापुर के दक्षिणी भाग शामिल नहीं हैं –

	प्रान्त या भाग		वर्गमील
8	1– संयुक्त प्रदेश के 4 ज़िले	–	10535
	2– मध्य प्रदेश के 3 ज़िले	–	8780
	3– इन्दौर का आलमपुर परगना	–	37
	4– भोपाल की दो निज़ामतों में से	–	2242
	5– रीवां राज्य की 6 तहसीलें	–	5862
	6– ग्वालियर के 5 जिलों में से	–	9000
34	7– बुन्देलखण्ड के 9 राज्य	–	9672
	8– बुन्देलखण्ड के 3 राज्य	–	1126
	9– बुन्देलखण्ड की 14 जागीरें	–	476
	10– बुन्देलखण्ड की 8 जागीरें	–	580
		योग –	48310 वर्गमील

मुंशी श्यामलाल ने इसका क्षेत्रफल 30817 वर्गमील और मध्यभारत के गजेटियर में 9852 तथा 11600 वर्गमील लिखा है। 2000 वर्गमील का अन्तर कदाचित इलाहाबाद तथा मिर्जापुर जिलों के अंशों का है जिनको गजेटियर में बुन्देलखण्ड का अंश माना है।

ह्वेनसांग ने चीं–ची–टो (बुन्देलखण्ड) का विस्तार 4000 ली (चीनी मापक) अर्थात् 667 मील में बतलाया है। इससे लगभग 167 मील का वर्ग बनता है।[19]

बुन्देलखण्ड का प्राचीन नाम

"बुन्देलखण्ड" नाम दो शब्दों से मिलकर बना है। बुँदेला + खंड या भू–भाग इसका अर्थ "बुन्देलों का खण्ड या भू–भाग" है। "बुन्देलखण्ड" का नाम लगभग चौदहवीं शती में पड़ा।[20] इसी समय बुन्देलों की सत्ता यहाँ जमीं थी। तब से यह 'बुन्देलखण्ड' कहलाने लगा।

किसी भी देश के नामकरण में अनेक तथ्य सहायक होते हैं। कभी यहाँ के शासकों के नाम से, और कभी यहाँ के निवासियों के नाम से देश का नामकरण होता है, परन्तु कभी–कभी देश की प्राकृतिक दशा भी उसके नामकरण का कारण होती है। एक समय धसान अथवा दशार्ण नदी के कारण यह धसान या दशार्ण कहलाया तो जुझौतिया ब्राह्मणों की बहुलता के कारण यह जुझौति या यजुर्होत्र भी कहलाया। इसके अतिरिक्त जेजा अथवा जयशक्ति नरेश के नाम पर यह जेजामुक्ति अथवा जेजाकभुक्ति नाम से भी प्रसिद्ध हुआ। कालान्तर में बुन्देलखण्ड के अनेक नाम

बदले, जो निम्न हैं –

1. चेदि – लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व के 16 महाजनपदों के अन्तर्गत चेदि का नाम आता है।[21] यह यमुना नदी के निकट उन देशों में एक था जो कुरूओं, मत्स्यों, काशी तथा कौरूषों से सम्बद्ध था।[22] प्राचनीकाल में यह बुन्देलखण्ड के पूर्वी भाग तथा कुछ अन्य भागों को मिलाकर चेदि राज्य बनता था। आगे चलकर इसकी सीमाएँ दक्षिण में नर्मदा के तट तक पहुँच गयीं।[23] चेदि का उल्लेख ऋगवेद में भी आया है।[24] चेदि नरेशों के समय में इस देश की बड़ी प्रसिद्धि हुई, शिशुपाल इस का महान शासक था।[25]जिसकी राजधानी वर्तमान चन्देरी बतलाई जाती है। महाभारत में चेदि देश के राजाओं में उपरिचर, शिशुपाल, धृष्टकेतु, सुबाहु नाम आते हैं।[26]

2. दशार्ण – बुन्देलखण्ड का पश्चिमी भाग जहाँ धसान (दशार्ण) नदी बहती है, "दशार्ण" देश के नाम से विख्यात हुआ। यह भाग चेदि से भिन्न था।[27] यहाँ के राजा हिरण्यवर्मा की पुत्री का विवाह राजकुमार शिखण्डी से हुआ था।[28] इस प्रक्षेत्र का नाम महाभारत[29] तथा अन्य परवर्ती संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त हुआ है।[30] अनेक विद्वानों ने मध्य भारत के विदिशा क्षेत्र को दशार्ण माना है।[31]

3. चन्द्रावती – एलेक्जेण्डर कनिंघम के मतानुसार सन्द्रावतीज (चन्द्रावती) देश का नामकरण चर्मण्यवती अथवा चम्बल नदी के नाम पर हुआ।[32] टॉलमी ने तमसिस, करपोर्निया, इमलथ्रो तथा नन्दुवग्दुर नामक चार नगरों का उल्लेख किया है।[33] जिनकी समतुलना क्रमशः कालिंजर, खजुराहो, महोबा, नलपुर अथवा दरवर से किया जाता है।

4. जुझौती – जुझौती बुन्देलखण्ड का सबसे प्राचीन तथा प्रथम नाम है। यहाँ ब्राह्मणों का प्रभुत्व और अधिकत्व था। इसमें 42000 गाँव सम्मिलित थे।[34]

सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में इस प्रदेश की, चीं–ची–टो नाम दिया।[35] ह्वेनसांग ने चीं–ची–टो (बुन्देलखण्ड) राज्य को 1000 ली अर्थात् 167 मील दूर उज्जैन से उत्तर पूर्व में स्थित बतलाया।[36] कनिंघम के मतानुसार यह चीं–ची–टो जुझौती ही है।[37] इसका उल्लेख अबू रिहां ने भी किया है। इसकी राजधानी खजुराहो को कन्नौज से 90 मील दूर दक्षिण पूर्व में स्थित बतलाया गया है। यह दूरी प्रायः दुगनी पड़ती है। सम्भवतः इन दोनों स्थानों की दूरी का उल्लेख मीलों में न करके कोसों में किया है और 2 मील का 1 कोस माना है। अस्तुः इस प्रदेश के लोग कोसों से परिचित थे।[38] इसके अतिरिक्त जुझौतिया ब्राह्मणों की बहुतायत तथा जुझौती में सुरश्मिचन्द्र के उत्तराधिकारियों के ब्राह्मण–राज्य की सम्भावना[39] कनिंघम के मत की पुष्टि करती है कि चीं–ची–टो जुझौती ही था।

इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि जुझौती वर्तमान बुन्देलखण्ड ही था, जो इस युग में उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के राज्यों में सम्मिलित हो गया है।

5. जेजाक भुक्ति – चन्देल शासन काल में इस वंश का सबसे शक्तिशाली तृतीय राजा जेजा के नाम पर इसको ख्याति प्राप्त हुयी।[40] पृथ्वीराज चौहान के मदनपुर शिलालेख (सन् 1182) से यह प्रकट होता है कि 12वीं शताब्दी तक यह देश जेजाक भुक्ति ही कहलाता था।[41]

6. बुन्देलखण्ड – शाहवाजगढ़ी तथा अजयगढ़ी में प्राप्त अशोक कालीन अभिलेखों में इस प्रदेश का उल्लेख "पुलिंद" देश के नाम से किया गया।[42] पन्द्रहवीं शताब्दी से इस भू–भाग पर बुन्देलवंश के राजाओं का आधिपत्य होने के कारण यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड कहलाया। इस वंश के नामकरण के सम्बन्ध में 'वीरसिंह देव चरित' तथा 'छत्रप्रकाश' में वर्णित कथा को उद्धृत किया जाता है।[43] एक राजा ने विन्ध्यवासिनी देवी को प्रसन्न करने के लिए कठिन तप किया। जब अपने तप से यह

देवी को प्रसन्न न कर सका तो निराश होकर उसने अपनी तलवार और आत्म बलिदान की भावना से जैसे ही उसने तलवार गर्दन पर मारी देवी प्रकट हो गयी और वरदान दिया कि उसके रक्त बिन्दुओं से महान शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न होगा जिससे बुन्देलवंश का प्रादुर्भाव होगा।

"हकीकत–उल–आलिमा" में बुन्देलों की उत्पत्ति की एक अलग ही कथा है, जिसमें बाँदी के पुत्र के रूप में वर्णित है। इलिएट तथा स्मिथ ने भी इसका समर्थन किया है।[44]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण[45] में यमुना और नर्मदा के मध्य स्थित भाग को युद्ध देश कहा गया। टालेमी के 'सेन्ड्रावेटिस' से भी बुन्देलखण्ड के क्षेत्र को पहचाना गया है।[46]

<u>बुन्देलखण्ड के प्रमुख ऐतिहासिक – स्थल</u>

बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्थानों से उपलब्ध पुरातात्विक सामग्रियों के कण–कण में इसके प्राचीनता की झलक प्राप्त होती है। प्रागैतिहासिक उपकरणों और गुहा चित्रों के साथ–साथ ऐतिहासिक चित्रों के पुरालेख, स्थापत्य, मूर्तिशिल्प तथा चित्रकला के नमूने स्थान–स्थान से प्राप्त हुए हैं। उपलब्ध पुरातात्विक सामग्रियों के आधार पर हम बुन्देलखण्ड के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थलों का विवेचन करना उचित समझते हैं। अतः उन सांस्कृतिक विरासत के साक्षी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थलों का विवेचन इस प्रकार है –

1. <u>कालिंजर</u> – कालिंजर बुन्देलखण्ड का सबसे प्राचीन ऐतिहासिक नगर है। कालिंजर बाँदा जिला मुख्यालय से दक्षिण–पूर्व दिशा में सतना मार्ग में 57 किमी0 दूर स्थित है।[47] कालिंजर का किला लगभग 1200 फीट ऊँची पहाड़ी पर बना है और इसके उत्तर में नीचे कालिंजर गाँव बसा है। कनिंघम का विचार है कि कालिंजर किले की नींव ईस्वी शताब्दी के प्रारम्भ में पड़ी है।[48] महाभारत में इसे मेधाविक तीर्थ की संज्ञा दी गयी है तथा इसके पर्वत को *'लोकविश्रुत'* के नाम से पुकारा गया है।[49] मत्स्य पुराण के अनुसार इसे वनदेश के नाम से पुकारा गया है।[50] कालिंजर में एक के बाद अनेक आक्रमण हुए। बहुत सी इमारतें, कलाकृतियाँ पूरी तरह नष्ट हो गयीं हैं। ये कलचुरी कला शैली की सुन्दर एवं महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इस दुर्ग में प्रसिद्ध नीलकंठ का शिव मन्दिर है।

2. <u>चित्रकूट</u> – चित्रकूट बुन्देलखण्ड का दूसरा प्राचीनतम् स्थल है। इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में विस्तार पूर्वक है। यहाँ पर भगवान श्री राम ने अपने बन्धु लक्ष्मण और सीता सहित वनवास के 12 वर्ष बिताए।[51] इस तीर्थ का वर्णन महाभारत और अध्यात्म रामायण में भी है।

3. <u>कालप्रिय(कालपी)</u> – कालपी भी बुन्देलखण्ड का प्राचीन ऐतिहासिक नगर है। गोविन्द चतुर्थ काम्बे ताम्रपत्र में कालपी को कालप्रिय के नाम से दर्शाया गया है।[52] काव्यमीमांसा में भी कालपी को कालप्रिय लिखा गया है।[53] किसी समय में यह व्यास की तपोभूमि रही है। चन्देल युग में यह एक महत्वपूर्ण नगर था। यह नगर झाँसी, कानपुर मार्ग में स्थित है।

4. <u>शुक्तिमतीपुर</u> – यह चेदि देश की राजधानी थी। चेदि जातकों में यह नगरी सोत्थिवती के नाम से प्रसिद्ध थी।[54] महाभारत में शुक्तिमती का विस्तृत वर्णन है। चेदि के राजा उपरिचर वसु की राजधानी से होकर शुक्तिमती नदी के बहने का उल्लेख है।[55] पार्जीटर ने इस नदी की केन से साम्यता स्थिर की है और शुक्तिमती नगर का अनुमान बाँदा में गिरवाँ के सन्निकट शेरपुर स्योंढ़ा के रूप में की है।[56] इसका समर्थन राय चौधरी भी करते है।[57] इस नगरी में जो प्राचीन चिन्ह उपलब्ध होते हैं। उससे इसकी पुष्टि हो जाती है।

5. <u>पारिलेय्यक</u> – इस नगर का अस्तित्व महात्मा बुद्ध के समय तक था। महात्मा बुद्ध ने यहाँ भद्दसाल वृक्ष के नीचे विश्राम किया। यह विश्राम पूरा एक वर्ष का था। इस नगर की पहचान परेई

गाँव, जो छतरपुर जिले के केन नदी के तट पर स्थित है, के रूप में की गयी है। मदन वर्मा के ताम्रपत्र में इसका उल्लेख है।[58]

*6. **विदिशा*** – बुन्देलखण्ड का विदिशा नगर भी अत्यन्त प्राचीन है। किसी समय में यह दशार्ण देश का प्रमुख नगर था। यह नगर भगवान श्री रामचन्द्र ने अपने लघु भ्राता शत्रुघ्न को दे दिया था।[59] विविध पुराणों एवं गरूड़ पुराण से यह ज्ञात होता है कि यह समृद्ध और वैभव युक्त नगर था तथा यहाँ अनेक धर्मो का अनुपालन होता था।[60] भरहूत के स्तम्भ लेखों में भी विदिशा का उल्लेख है।[61] खजुराहो स्तम्भ लेख में इस नगर का उल्लेख भैल्लस्वामीपुर के नाम से हुआ है।

*7. **एरच*** – यह झाँसी जिले के अन्तर्गत 24^{0} 47' उत्तरी अक्षांश तथा 70^{0} 7' पूर्वी देशान्तर पर बेतवा नदी के किनारे स्थित है। यह झाँसी से उत्तर–पूर्व में 46 मील दूर है। इस क्षेत्र में भिक्षुणी इसिदासी (ऋषिदासी) रहा करती थी। जिसे अपने पूर्व जन्म का हाल ज्ञात था। जनश्रुतियाँ एरच को प्रहलाद का जन्म स्थान तथा हिरण्यकशिपु की राजधानी के रूप में मान्यता प्रदान करती है। प्रथम शती ई0पू0 एरच से अभिलिखित ईटें प्राप्त हुयीं हैं। यह ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण हैं। "क बं (धु) कि स दामतिमस परि से (क)" चन्देल राजा त्रैलोक्य वर्मन के समय में एरच सम्भागीय प्रशासन का मुख्यालय था।[62]

*8. **एरण*** – बीना तथा रेवती नदी के संगम पर यह स्थान सागर जिले की खुरई तहसील में एक छोटा सा गांव है। यह सागर जिला मुख्यालय से उत्तर–पश्चिम में 75 किमी0 तथा खुरई से 20 किमी0 दूर है। मध्य रेलवे के बमौरा स्टेशन से यह स्थान 9 किमी0 दूरी पर है। अपनी प्राकृतिक स्थिति के कारण एरण एक ओर बुन्देलखण्ड और दूसरी ओर मालवा के प्रवेश द्वार पर है।[63] एरण का प्राचीन नाम "ऐरिकिण" था। एरण से कई महत्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त हुए हैं।[64] इन्हीं अभिलेख से हूण और गुप्त राजाओं के मध्य हुए युद्ध की सूचना मिलती है। सेनानी गोपराज के वीरगति प्राप्त हो जाने पर उसकी पत्नी द्वारा सती होने का भी उल्लेख है।[65]

अभिलेखों तथा प्राप्त कलाकृतियों से यह ज्ञात होता है कि एरण वैष्णव धर्म का महत्वपूर्ण स्थल था। यहाँ वराह, नृसिंह तथा वामनावतार के स्वतन्त्र मन्दिर स्थापित थे जिनके भग्नावशेष आज भी विद्यमान है।[66] रामगुप्त की कुछ ऐसी मुद्राएं मिली हैं जिन पर गुप्त राजचिन्ह गरूड़ध्वज बना है। कुछ सिक्कों में "श्री रामगुप्त" लिखा है।[67]

*9. **देवगढ़*** – देवगढ़ स्थान का गरिमापूर्ण इतिवृत्त है, जो भारत के ऐतिहासिक, पुरातात्विक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक पटल पर अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है और बुन्देलखण्ड में होने का गौरव प्राप्त है। देवगढ़ को महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल के रूप में ख्याति प्राप्त है। यह उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले में 24^{0} 15' उत्तरी अक्षांश तथा 78^{0} 15' पूर्वी देशान्तर पर स्थित है।[68] यह स्थल ललितपुर से लगभग 33 किमी0 दूर ललितपुर–देवगढ़ मार्ग पर स्थित है। देवगढ़ में छठी शताब्दी का दशावतार मन्दिर अत्यधिक प्रसिद्ध है। गुप्तकालीन मन्दिर की द्वारशाखा अत्यन्त कलात्मक है। इसमें उकेरे गए दृश्य बड़े ही मार्मिक हैं बीच–बीच में सुन्दर पत्रवल्लरियों तथा बौनी आकृतियों से गर्भगृह के प्रवेश द्वार को अलंकृत किया गया है। ललाट बिम्ब पर शेषासीन विष्णु की मूर्ति है जिसके आस–पास नृसिंह तथा वामन की लघु आकृतियाँ बनीं हैं।[69]

इस मन्दिर की ऊँची जगती में फलकों की दो पंक्तियाँ थी, जिनमें रामायण और कृष्ण लीला के दृश्य भी अंकित थे।[70]

*10. **सीरोनखुर्द*** – सीरोनखुर्द ललितपुर जिले के उत्तर–पश्चिम में लगभग 20 किमी0 दूर स्थित है। यह बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। यह सीयडोणी नाम से प्रसिद्ध था। लगभग 10वीं शताबदी

में यहाँ का राज्यपाल उन्दभट यहीं सीयडोणी में रहता था। अतः विस्तृत क्षेत्र का प्रशासनिक केन्द्र था।[71]

एक बड़े शिलापट्ट पर खुदा हुआ एक महत्वपूर्ण अभिलेख है जिसे विद्वानों ने सीयडोणी शिलालेख अभिमत किया है।[72] सीरोनखुर्द के पूर्व में स्थित शान्तिनाथ का मन्दिर है जिसे बुन्देल राजाओं के समय में बनवाया गया था।[73] इसमें शान्तिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित विशाल प्रतिमा स्थापित है।

11. दुधई–चाँदपुर – दुधई–चाँदपुर अलग–अलग दो स्थान हैं जो ललितपुर जिले में आते हैं। इन स्थानों में एक ही समय में समान प्रकार की कला एवं संस्कृति पल्लवित हुई। और ये स्थान लगभग 10 किमी0 की दूरी पर स्थित है। इसलिए इनका विवरण एक ही शीर्षक के अन्तर्गत दिया जाता है।

दुधई प्राचीन काल में बड़ा नगर था और मुख्य व्यापारिक मार्ग पर स्थित था। अल्बरूनी ने भी इसे एक बड़े शहर के रूप में वर्णित किया है।[74] चन्देलकाल में यह नगर पूर्ण विकसित था और उनके समय में ही यहाँ के मन्दिरों का निर्माण हुआ। दुधई का पूर्व नाम 'दुग्धकुप्या' था।[75]

दुधई में दो जैन मन्दिर, वाराह मन्दिर, ब्रह्मा मन्दिर, शिव मन्दिर आदि हैं। इसमें सबसे बड़ा मन्दिर 52 फीट लम्बा तथा 37 फीट चौड़ा था। इसके गर्भगृह को दो कक्षों में विभक्त किया गया था और दोनों के बीच एक द्वार था। पूर्व–पश्चिम में दोनों ओर मण्डप थे।[76] इस मन्दिर समूह में सबसे सुन्दर ब्रह्मा मन्दिर था। एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि महाराजाधिराज यशोवर्मन् के पौत्र तथा कृष्णप एवं आसर्वा के पुत्र देवलब्धि ने इस मन्दिर को बनवाया था। यहाँ पीठ पर आलेखित दशावतारों में बलराम के स्थान पर कृष्ण प्रदर्शित है।[77] सूर्य तथा उनके अनुचरों की कुछ मूर्तियाँ प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।[78]

दुधई 24^0 27' उत्तरी अक्षांश तथा 78^0 24' पूर्वी देशान्तर मध्य रेलवे स्टेशन धौर्रा से लगभग 11 किमी0 दक्षिण–पश्चिम की ओर घने जंगलों के मध्य स्थित है।[79]

चाँदपुर 24^0 30' उत्तरी अक्षांश तथा 78^0 18' पूर्वी देशान्तर पर मध्य रेलवे के धौर्रा स्टेशन से लगभग 3 किमी0 दूर स्थित है।[80]

यहाँ राम की कई सुन्दर प्रतिमाएँ हैं जो अग्निपुराण के विधान के अनुरूप बनायी गयीं हैं। विष्णु की अष्टभुजी मूर्ति तथा चतुर्विंशति मूर्तियाँ भी उल्लेखनीय है।[81] एक मूर्ति में नवग्रहों के साथ गणपति प्रदर्शित किए गए हैं। कुछ पट्टों पर द्वादशादित्य, पंचगणेश, शिवलिंग, सप्तसूर्य आदि देवाकृतियों को एक साथ उकेरा गया है। ये मूर्तियाँ कला, विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।[82]

12. खजुराहो – खजुराहो महोबा से 45 मील और छतरपुर से 28 मील दूर है। यह मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित अपने मन्दिरों के लिए विश्व विख्यात है। स्थानीय जनश्रुति के अनुसार खजुराहो में कुल 85 मन्दिर थे परन्तु इस समय 24 मन्दिर विद्यमान हैं। इन्हें तीन समूहों में विभक्त किया गया है।

पश्चिमी मन्दिर– चौसठ योगिनी, कन्दरिया, लालगुहाँ, नन्दी, पार्वती, लक्ष्मण, मातंगेश्वर और वराह।

पूर्वी मन्दिर– ब्रह्म, वामन, जावेरी, ककरामठ, घंटई, आदिनाथ, पार्श्वनाथ और शान्तिनाथ।

दक्षिणी मन्दिर – दूलादेव तथा चतुर्भज।

इन मन्दिरों का निर्माण 9वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर 12वीं शताब्दी तक सम्पन्न हुआ।

ये मन्दिर नागर शैली के सुन्दरतम उदाहरण हैं। इन मन्दिरों के तीन मुख्य अंग हैः गर्भगृह, मण्डप और अर्द्ध मण्डप। कुछ बड़े मन्दिरों में महामण्डप और प्रदक्षिणापथ का विधान भी है। खजुराहो के मन्दिर वैष्णव, शैव, शाक्त सौर तथा जैन सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं।[83]

13. <u>महोबा</u> – महोबा बुन्देलखण्ड की प्राचीन ऐतिहासिक नगरी है। यह ऐतिहासिक नगरी महोबा हमीरपुर जिले में 54 मी0 दक्षिण में स्थित है।

चन्देलों की राजधानी महोबा काफी दिनों तक रही है। चन्देल वंश के संस्थापक चन्द्रवर्मा ने 16 वर्ष की आयु में यहीं "महोत्सव" मनाया था। "महोत्सव नगर" शब्द परिवर्तित होकर *"महोबा"* का रूप ले लिया। यह अत्यधिक बड़ा नगर था। इस नगर का वैभव सर्वप्रथम दिल्ली के चाहमानों द्वारा और बाद में मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट–भ्रष्ट कर दिया गया। अब महोबा नगर का सौन्दर्य सुन्दर सरोवरों तक सीमित रह गया है। चन्देल राजाओं को तड़ाग और झील बनवाने का बड़ा शौक था।

महोबा ब्राह्मण, जैन और बौद्ध तीनों धर्मो की त्रिवेणी धारा का संगम स्थल था। परन्तु अधिकांश आक्रमणकारियों का लक्ष्य बनकर विनष्ट हो गए हैं। मदन सागर के मध्य चट्टान पर एक मन्दिर स्थित है जो "ककरामठ" नाम से प्रसिद्ध है। पीर मुबारक शाह और निकटवर्ती मुस्लिम कब्रिस्तान में पुरातत्ववेत्ता कनिंघम ने हिन्दू मन्दिर से सम्बन्धित 310 स्तम्भ खोजे थे।[84] कीरत सागर के निकट एक टीले से बौद्ध धर्म की छः मूर्तियाँ प्राप्त हुयीं थीं।[85] महोबा के पश्चिमी भाग में हिन्दू स्तम्भों पर आधारित एक मस्जिद है। द्वार पर लगे एक लेख के अनुसार इसे मोहम्मद तुगलक के समय में 1321 तथा 1325 ई0 के बीच बनवाया गया था।

<u>बुन्देलखण्ड की पर्वत श्रेणियाँ</u>

भारतीय इतिहास के विभिन्न राज्यों की राजनीतिक सीमा के निर्धारण एवं सांस्कृतिक विकास में भौगोलिक सन्निवेश के अभिन्न अंग पर्वत श्रेणियों की उल्लेखनीय भूमिका रही है। राजनीतिक सीमा निर्धारण के साथ–साथ सामरिक एवं सुरक्षात्मक दृष्टि से भी पर्वतों की विशिष्ट उपयोगिता रही है।

बुन्देलखण्ड का सम्पूर्ण भाग पर्वतों से आवृत्त है। यहाँ समतल मैदान की एक पट्टी भी है, जो दक्षिण से उत्तर की ओर विस्तृत होती चली गयी है। झाँसी, जालौन के जिलों के इस मैदान में पर्वतों की बहुतायत है।[86] यमुना, बेतवा और धसान के निकटवर्ती भागों में अधिक पर्वत पाए जाते हैं इसी कारण बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग अन उपजाऊ है। बुन्देलखण्ड की पर्वत श्रेणियों का उल्लेख इस प्रकार है –

1. <u>विन्ध्याचल श्रेणी</u> – यह श्रेणी दतिया राज्य के सेंवढ़ा अर्थात् कन्हरगढ़ से 5 मील उत्तर सिन्धु नदी के तट के केशवगढ़ से आरम्भ होती है (26^0 24', 78^0 50') वहाँ से दक्षिण–पश्चिम की ओर नरवर को चली गयी है फिर वहाँ से दक्षिण–पूर्व को झुककर उत्तर–पूर्व होती हुयी कालिंजर, अजयगढ़, बरगढ़ से विन्ध्यवासिनी देवी, सूरजमहल और राजमहल से होकर गंगा के किनारे–किनारे चली गयी है। यह पूरी श्रेणी भारतवर्ष के मध्य में कमर बंद के समान है। इसकी चौड़ाई लगभग 12 मील है और ऊँचाई 2000 फीट से अधिक नहीं है। महाभारत में इसे एक प्रसिद्ध पर्वत बताया गया है।[87]

2. <u>पन्ना श्रेणी</u> – यह श्रेणी विन्ध्याचल के दक्षिण से प्रारम्भ होकर कर्वी तक जाता है। यह लगभग 10 मील चौड़ी है तथा बालू की चट्टानों से बनी हुयी है।

3. <u>भाण्डेर श्रेणी</u> – यह पन्ना के दक्षिण–पश्चिम में स्थित है और लहार की घाटी से आरम्भ

होता है। इसकी ऊँचाई 2500 फीट तक और ऊपर की चौड़ाई 15 से 20 मील तक है और समुद्र की सतह से इसकी ऊँचाई 1700 फीट है। यहाँ वर्षा कम होती है। पशु–पक्षी भी कम पाए जाते हैं।

4. कैमूर श्रेणी – यह विन्ध्य पर्वत श्रृंखलाओं का पूर्वी भाग है जो जबलपुर जिले के कटंगी स्थान से आरम्भ होकर पूर्वोत्तर की ओर 500 किमी0 तक फैला हुआ है। यह शैल माला जबलपुर के उत्तर और मैहर के दक्षिण–पूर्व से मोड़ लेती है और शोण तथा टोंस नदियों की घाटियों को अलग करती है। यहाँ की पहाड़ियों पर अद्यावधि प्रागैतिहासिक मानवों के अवशेष उपलब्ध हैं।[88]

बुन्देलखण्ड में श्रेणी को प्रायः 'घाटी' कहते है और दो पहाड़ों के बीच के रास्ते को 'खँदिया' कहते है। 'भटिया' छोटी पहाड़ी को कहते हैं।[89]

बुन्देलखण्ड की प्रमुख नदियाँ

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली विभिन्न नदियाँ इस प्रदेश के राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली नदियों में यमुना, टोंस, नर्मदा, चम्बल, वेत्रवती, सिन्धु, धसान, केन, पैयस्वनी, महानदी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड प्रमुख 4 नदियों (यमुना, टौंस, नर्मदा और चम्बल) से आवृत्त है। जहाँ से ये नदियाँ निष्कासित होती है वे पर्वतीय क्षेत्र है। इन्होनें अपने क्षेत्र के प्राकृतिक रूप को विकसित करने में यथेष्ट भूमिका निभाई है। पर्वतीय क्षेत्र में इनकी गति और प्रवाह तेज होता है तथा अनेक नाले और प्रपात इन नदियों में मिल जाते हैं। इनमें वर्षा ऋतु में सर्वाधिक जल होता है किन्तु ग्रीष्म ऋतु आते ही ये नदियाँ सूख जाती है। बड़ी नदियों की अनेक सहायक नदियाँ है। इन नदियों का उल्लेख हम इस प्रकार कर सकते है –

1. यमुना – बुन्देलखण्ड की उत्तरी सीमा बनाने वाली यमुना नदी का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण, अथर्वेद तथा ऋग्वेद में हुआ है।[90] जबलपुर से लेकर भोपाल तक नर्मदा किनारे तक का पानी बहकर यमुना में ही पहुँचता है। यह नदी जालौन, हमीरपुर और बाँदा आदि बुन्देलखण्ड की उत्तरीय सीमा पर बहती है। चंबल, सिंध, बेतवा, धसान, बाघैन, केन, पैसुनी आदि सब बड़ी–बड़ी नदियों में जाकर मिलती हैं।

कालिन्दी गिरि से निकलने के कारण इसका दूसरा नाम कालिन्दी कहा गया।[91] स्कन्दपुराण में इसके भाम्या, सूर्यपुत्री, कालिन्दी, कालिन्दतनया, पूर्ववाहिनी आदि पर्यायवाची नाम मिलते है।[92]

2. चम्बल – यह नदी इन्दौर राज्य की मऊ छावनी के निकट जन पव के पहाड़ से निकली है। इसके रास्ते में इन्दौर, ग्वालियर, सीतामऊ, झालावार और राजपूताने की कई रियासतें पड़ती हैं। यह नदी इटावा से 25 मील दक्षिण–पूर्व में यमुना में गिरती है।

3. सिंधु – पुराणों में 'सिन्धु नाम्नी' एक नदी का उल्लेख है।[93] इसे दक्षिण–सिन्धु भी कहा गया है।[94] कालिदास ने भी सिन्धु नदी के विषय में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "मेघदूत, मालविकाग्निमित्र" में लिखा है।[95]

यह नदी सिरौंज के नैनवास गाँव से निकली है और मध्य भारत में 250 मील बहकर जगम्मनपुर से 10 मील उत्तर जाकर यमुना नदी में मिल जाती है।[96]

4. बेतवा – बेतवा का प्राचीन नाम 'वेत्रवती' था।[97] महाभारत में इसकी गणना प्रमुख नदियों में की गयी है।[98] कालिदास[99] और बाणभट्ट[100] दोनों ने इस नदी का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया

है। यह नदी भोपाल के पास कुमरी नामक ग्राम से निकलती है और भोपाल–ग्वालियर की उत्तर दिशा में लगभग 50 किमी0 तक सागर और ग्वालियर की सीमा बनाती है। लगभग 600 किमी0 लम्बी यात्रा समाप्त कर यह नदी उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिला में यमुना में मिल जाती है। बेतवा के किनारे देवगढ़, ओरछा और एरच्छ के ऐतिहासिक नगर स्थित है।

5. __धसान__ – यह नदी भोपाल राज्य के सिरमऊ पहाड़ों से निकलती है और बुन्देलखण्ड की मुख्य नदियों में से एक है। इसके मार्ग में भोपाल, सागर, झाँसी, ओरछा, बिजावर, बीहट, जिगनी और गर्रोली आदि के जिलें, जागीरें और रियासतें पड़ती हैं। धसान बेतवा की मुख्य सहायक नदी है। धसान का प्राचीन नाम दशार्णा है।[101] मार्कण्डेयपुराण के अनुसार यह नदी ऋक्ष पर्वत से निकलती है।[102]

6. __केन__ – केन नदी दक्षिणी बुन्देलखण्ड जबलपुर जिले के पश्चिमी कैमूर पर्वत से निकलती हुयी लगभग 130 मी0 दक्षिण से उत्तर प्रवाहित होने के पश्चात् यमुना में मिलती है।

7. __बाघैन__ – यह नदी पन्ना की कोहारी पहाड़ियों से निकलती हैं और बाँदा जिला में प्रवेश कर यह बिलास ग्राम के समीप यमुना नदी में मिल जाती है। कालिंजर का अजेय दुर्ग इसी नदी के समीप स्थित है। पुराणों में बाघैन नदी का नाम बालुवाहिनी मजुंला आया है।[103] डॉ0 अवस्थी ने अपनी पुस्तक में इसका विस्तृत वर्णन किया है।[104]

8. __पैयस्वनीं__ – यमुना की सहायक नदी पाथर कछार से निकलती है और लगभग 26 किमी0 तक बाँदा जिला की सीमा बनाती हैं। बाँदा जिला में राजापुर के पास यह नदी यमुना में मिल जाती है। पुराणों में पयस्वनी का प्राचीन नाम पिप्पल श्रोणी है।[105]

9. __टोंस__ – यह नदी मैहर के पास झुकेही स्थान में कैमूर पर्वत श्रृंखलाओं पर 2000 फुट की ऊँचाई पर स्थित 'तमसाकुण्ड' से निकलती है। अपने उद्‌गम स्थान से आगे बढ़ने पर देवरिया ग्राम होती हुयी सिरसा के समीप गंगा में मिल जाती है। महाराज सर्वनाथ के खोह ताम्रपत्र[106] में इस नदी का उल्लेख हुआ है। तमसाकुण्ड से निकलने के कारण इसका प्राचीन नाम 'तमसा' है।

10. __महानदीं__ – महानदी का उद्‌गम स्थल मंडला जिले से है। यह नदी जबलपुर जिले में दक्षिण–पूर्वी सीमा से दाखिल होकर विजयराघवगढ़ (जिला जबलपुर) परगने में होती हुयी रीवाँ राज्य में निकल जाती है और सोन नदी में मिलती है तथा सोन गंगा में मिलती है। दक्षिण दिशा की ओर बहने वाली महानदी का उल्लेख रामायण में मिलता है।[107] महाभारत में महानदी का नाम यमुना के पहले आया है।[108]

11. __नर्मदा__ – मध्यप्रदेश की जीवन रेखा नर्मदा बघेलखण्ड शहडोल जिले में अमरकंटक पर्वत की मेकल श्रृंखला से उद्‌गमित होती है। उद्‌गम स्थल से आगे लगभग एक किमी0 तक अदृश्य रहकर नर्मदा पुनः एक पतली धारा के रूप में प्रकट होकर मन्द गति से प्रवाहित होती है। नर्मदा कुण्ड से लगभग 6 किमी0 की दूरी पर कपिलधारा है। यहाँ नर्मदा नदी 50 मीटर ऊपर से गिरकर एक मनोरम जलप्रपात बनाती है। चट्टानों पर गिरने वाला पानी दूध के समान दृष्टिगोचर होता है इसलिए इस प्रपात को दूध–धारा भी कहते हैं।

विद्वानों ने इसका नाम *'नामदोस'*[109] दिया है और ह्वेनसांग के यात्रा विवरण में 'ने–मु–ते' नाम मिलते हैं।[110] स्कन्दपुराण में इसे नर्मदा कहा गया है।[111] बुन्देलखण्ड के जबलपुर, दमोह और सागर जिला नर्मदा नदी के किनारे आते हैं।

अतः यमुना नदी का अस्तित्व सभी नदियों से सर्वाधिक है। यमुना नदी बुन्देलखण्ड की उत्तरी सीमा को स्पर्श करती हुयी लगभग 250 मील इसकी उत्तर–पूर्वी सीमा का निर्माण करती

है। इसमें वर्ष–पर्यन्त नावें चलती हैं। केन में केवल वर्षा के दौरान ही नावें चलती हैं।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ये नदियाँ बुन्देलखण्ड की भौगोलिक तथा ऐतिहासिक स्थितियों की सूचक तथा धार्मिक एवं सामाजिक जीवन की प्रेरणास्त्रोत रहीं हैं। वे अतीत के समान आज भी मनुष्य की आध्यात्मिक तृप्ति का साधन और कृषि एवं व्यापार की दृष्टि से भौतिक उन्नति की सहायिका बनी हुयीं हैं। इस प्रकार आधुनिक बुन्देलखण्ड के आध्यात्मिक तथा भौतिक जीवन के उत्थान में इन नदियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

भूमि की बनावट या मिट्टी

बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग पर्वतों से आवृत्त है। जिनके बीच बड़ी–बड़ी घाटियाँ हैं और कई प्रकार की उपजाऊ मिट्टी पायी जाती हैं। ये मिट्टी निम्नवत् हैं –

1. मार–मोटा या मुंड, 2. रैनीमार, 3. काबर, 4. पँडुवा किस्म अव्वल, 5. पँडुवा किस्म दोयम, 6. रॉकड,[112] 7. हड–काबर, 8. दौन, 9. दो–मटिया, 10. तरीताल या कछार।

मैदानों की मिट्टी सामान्य रूप से काली और नियोजित ज्वालामुखी रचना से मिलकर बनी है।[113] ये विभिन्न प्रकार की मिट्टी यहाँ की कृषि उपज में सहयोगी हैं तथा इन मिट्टियों से रबी, खरीफ और जायद की फसलें होतीं हैं।

बुन्देलखण्ड की वन–सम्पदा

बुन्देलखण्ड के सभी क्षेत्रों में घने जंगल नहीं पाए जाते हैं। जहाँ पर्वतों का आभाव है वहाँ कोई विशेष वृक्ष उपलब्ध नहीं होते। दक्षिण–पूर्व का आर्द्र क्षेत्र सागौन, बाँस, साल, तेदूं, पलाश और चौड़ी पत्तियों वाले मानसूनी वृक्षों से भरा हुआ है। ये भाग, अभी तक कृषि योग्य नहीं बनाए जा सके और प्राचीन दण्डकारण्य का प्रतिनिधित्व करते हैं।[114] इन वनों के द्वारा उच्चकोटि की इमारती लकड़ी प्राप्त होती है।

बेतवा के क्षेत्र में आसन, जामुन, आम, कटहल, अंकोल, प्रियाल, घव, लोध, भव्य, तिनिश, बेल, तिन्दुक, अरिष्ट (नीम), काश्मरी (मधुपर्णिका), बाँस, वरण, तिलक, बेर, कदम्ब, आँवला, बेंत, धन्वन (इन्द्रजौ), बीजक और अनार के वृक्ष अत्यधिक मात्रा में थे।[115] महाभारत में भी बेतवा नदी के तट पर बेंत का अत्यधिक जंगल होने का उल्लेख है।[116] यहाँ अशोक पन्नाग, अतिमुक्तक (माधवीलता), चम्पा, पन्नाग, नागकेसर, कनेर, मौलसिरी, दिव्यपाटल, नारियल, चन्दन तथा अर्जुन आदि के वृक्ष भी होते थे। बाणभट्ट ने समस्त बुन्देलखण्ड की भूमि को बेंतों से युक्त बताया है।[117]

धसान नदी के आस–पास जामुन के वन अत्यधिक पाए जाते हैं।[118] अनेक वृक्ष लताओं में कार्णिकार, चम्पक, नमेस, सल्लकीं (नलद), नारियल, नागकेसर (हरिकेसर), सरल, कुरबक, रक्ताशोक, बकुल, केसर, तिलक, हींग, सुपारी, प्रियंगु, मुचुकुन्द, तमाल, देवदारू, नागवल्ली, जम्भीली नीबूं, धूलि कदम्ब[119] (ग्रीष्म में फूलने वाला एक प्रकार का कदम्ब), कुटज, पीलु, सीताफल, शेफालिका, लवलीलता, बड़हर, जायफल आदि हैं।

बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों पर काँटेदार झाड़ियाँ उपलब्ध होते हैं। ये झाड़ियाँ निम्नलिखित हैं –

1. रियां, 2. करेल, 3. करोंदा, 4. चमरेल, 5. माहुल, 6. इंगौट या इंगुवा, 7. सहजना, 8. जरिया या झखेरी, 9. मकुइंया या मकोर, 10. रकत–बिड़ार, 11. गटान, 12. यूहड़, 13. नागफनी इत्यादि।

कुछ विशेष प्रकार की जंगली पैदावार के लिए बुन्देलखण्ड सर्वत्र प्रसिद्ध है। जिनका उपयोग विविध उत्पादनों में होता है। यथा – लाख, गोंद, मोम, शहद, बैचांदी, सफेद मूसली,

बंसलोचन, कत्था, बिलाई कन्द, लछमन कन्द, कुसेरा, साँभर सींग।

कुछ विशेष प्रकार की घास जिनका उपयोग विविध औद्योगिक कार्यो में होता है बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होती हैं। इनमें कुछ घास पालतू जानवर को खिलाई जाती हैं, कुछ का उपयोग मकानों में होता है और कुछ का उपयोग कागज–दफ्ती आदि बनाने में होता है – परवेवा या परवी या परवा, केल या कैला, मुसयाल, गुनैया, सौंटा या सरका, काँस, धुनियाँ समाई, सैद, शेहस, उकारी, दूब, लियासा, लम्पू, मुरजना, गन्दली, तिगुड़ा, पनवसा, पंडप इत्यादि।

तापमान एवं जलवायु

बुन्देलखण्ड का तापमान कम शीतोष्ण जलवायु का तापमान है। यह क्षेत्र कर्क रेखा के अत्यन्त पास स्थित है और अरब सागर या बंगाल की खाड़ी के प्रत्यक्ष प्रभाव से दूर है। यहाँ पर प्रत्येक दिन का तापमान परिवर्तित होता रहता है क्योंकि इस क्षेत्र की भू–रचना चट्टानी है।

ग्रीष्म ऋतु – मई, जून के महीनों में यहाँ का तापमान 117 फॉरेनहाइट तक बढ़ जाता है। उष्ण कटिबन्धीय अंक्षाश में स्थित होने से कालपी, हमीरपुर की गणना उष्णतम स्थानों में की जाती है।[120] इसी प्रकार बाँदा जिला भी उष्णता के लिए प्रसिद्ध है।[121] कभी–कभी ग्रीष्म ऋतु अधिक कष्टप्रद होते हैं, किन्तु रात्रि का उत्तरार्द्ध ठण्डा हो जाता है और अधिक गर्मी पड़ने पर 'लू' जैसी गर्म हवा चलती रहती है।

वर्षा ऋतु – यह ऋतु बुन्देलखण्ड में आषाढ़ (जून–जुलाई) माह में प्रारम्भ होती है। सावन–भाद्रपद में वर्षा सर्वाधिक होती है। वर्षा का वार्षिक औसत 30 इंच से 40 इंच है। कभी–कभी पश्चिमी भाग में तूफानी फुहार पड़ती है। बुन्देलखण्ड के मध्यवर्ती और पश्चिमी भाग पूर्वी और दक्षिणी भागों की अपेक्षा अधिक शुष्क है।

शीत ऋतु – शीत ऋतु में यहाँ का तापमान 76 फॉरेनहाइट से 50 फॉरेनहाइट के बीच रहता है। दिसम्बर, जनवरी के महीने में सर्वाधिक ठण्ड पड़ती है। इसी दौरान पतझड़ का मौसम होता है। शीत के कारण पेड़ों के पत्ते गिर जाते हैं और बर्फीली हवाएँ चलतीं हैं। सर्वाधिक जाड़ा पर्वतीय क्षेत्रों में पड़ता है।

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने भ्रमण में सातवीं शताब्दी में इस क्षेत्र की जलवायु समशीतोष्ण और आनन्ददायक लिखा।[122] इसकी पुष्टि समुद्रगुप्त के एरण स्तम्भ लेख से भी होती है।[123]

बुन्देलखण्ड के जीव–जन्तु

बुन्देलखण्ड के विषम प्राकृतिक बनावट और विषम जलवायु के कारण यहाँ अनेक प्रकार के जीव–जन्तु उपलब्ध होते हैं। बुन्देलखण्ड में जहाँ घनघोर जंगल हैं वहाँ हिंसा के जीव निवास करतें हैं। यहाँ कई प्रकार के शेर पाए जाते हैं किन्तु बड़ा सिंह यहाँ नहीं पाया जाता।

बेतवा नदी के किनारे सारस, कुमरी, चकवा, कछुवा, मगर, मछलियाँ पाए जाते है।[124] बेतवा नदी पार करने पर दमयन्ती ने वन में हाथी, गेंडा, भैंसा, शार्दूल, रीछ और हरिणों को सर्वत्र देखा था।[125]

परमार्दिदेव का महोबा ताम्रपत्र[126] में बटुआरि, झाँसी के अन्तर्गत मण्डपपुर ग्राम में अनेक जीव–जन्तुओं का उल्लेख है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चेदि, दशार्ण, करुष आदि जनपदों में हाथी पाए जाने का उल्लेख है[127] और नील गाय, हाथी, रूरू मृग, रंकु मृग, तेंदुआ, सूअर, झाऊ, नेवला, चूहा, कोयल, लाल ततैया, चमरू, हिरन, लंगूर, नीलांडज मृग, छिपकली, खरगोश, तोता, भरूण्ड पक्षी, कुक्कुडी, गौरैया, चकोर आदि का भी बुन्देलखण्ड में पाए जाने का वर्णन किया है।

चित्रकूट क्षेत्र में हंस, सारस, चातक, मोर, हाथी, रीछ, चितकबरे, मृग, व्याघ्र, चीता, चक्रवाक,

सिंह, वानर, आदि पाए जाते हैं।[128] इसके अतिरिक्त बड़ी–बड़ी नदियों में घड़ियाल और भी उपलब्ध होते हैं। नदियों में तरह–तरह की मछलियाँ पायी जाती हैं।

जैसे – गुलाबी मछली, बछुवा, नैनी या भिरगल, बैंकरी, रोहू, गौंच, कलवांस, टेंगरा, सौंर, ग्वाली, चपटा, बाजी, पड़हन, अनबारी, चिलवा, बाम, झिंगस, सिलंद, सिरी, मुई, दिगर, बवास, करटा, बजुरी तथा करोसर इत्यादि। इनके अतिरिक्त यहाँ पानी वाले साँप कई प्रकार के केंचुए, सीतालट नामक सर्प भी बुन्देलखण्ड में पाए जाते हैं।

हाथी बुन्देलखण्ड के स्थल में रहने वाला अत्यन्त विशिष्ट जीव है। इसे गणेश भगवान का अवतारी भी माना जाता है।ये हाथी कालिंजर, पन्ना आदि में सर्वाधिक पाए जाते है।[129]

कृषि–उपज

बुन्देलखण्ड में कृषि की स्थिति सर्वत्र एक जैसी नहीं है। पर्वतीय क्षेत्रों और मैदानी क्षेत्रों में कृषि की स्थिति अलग–अलग है। यहाँ की सम्पूर्ण कृषि वर्षा पर आधारित है। यहाँ कुछ ही भूमि में सिंचाई के संसाधन है। खरीफ की फसल में कोदों,[130] राली, कुटकी, बसारा, समा, काकुन, जुआर, बाजरा, उड़द, मूंग, मोंठ, रौंसा, धान आदि उत्पन्न होते है। यह फसल नवम्बर तक तैयार हो जाती है।

रबी की फसल में गेहूँ और उसके विविध प्रकार, बटरा, कुरथी, चना, जौ, मसूर, अरहर आदि हैं। यह फसल नवम्बर में बोई जाती है और मार्च के अन्त तक काटी जाती है। अनाज के अतिरिक्त अनेक प्रकार के तिलहन भी यहाँ उत्पन्न होते हैं। मुख्य रूप से अलसी,[131] एरड़,[132] महुआ,[133] सरसों, तिल आदि के बीजों से तेल निकाला जाता है। इनसे निकलने वाला तेल भोजन के अतिरिक्त अन्य उद्योगों में उपयोग होता है। कुछ प्रमुख फूलों की भी यहाँ पैदावार होती है जिनसे रंगों का निर्माण किया जाता है। जैसे– नील, कुसुम, नौती, हरसिंगार अर्थात सिहारू, आल, टेसू, धवई आदि।

ईख का उपयोग गुड़ या शक्कर बनाने के लिए होता है। कपास का उपयोग वस्त्र बनाने के लिए होता है। शीत ऋतु में उपयोग लाई जाने वाली रजाई, गद्दे कपास से बनाए जाते हैं। यहाँ सिंघाड़ा की खेती भी काफी मात्रा में होती है इसका उपयोग खाने तथा इसे सुखाकर विविध वस्तुएँ बनाने के काम में आता है। यहाँ पर सन भी उत्पन्न होता है, जिससे रस्सी, सुतली आदि तैयार की जाती है।

बुन्देलखण्ड में अनेक प्रकार के बगीचे भी हैं, जहाँ विविध प्रकार के फल उत्पन्न होते हैं। ये निम्नलिखित हैं – पाकर, भौर, सिली या मौलसरी, खिरनी, जामुन, केला, नीबूं, नारंगी, अनार, चकोतरा, कमरख, अमरूद, लुकाट, फालसा, आडू, अंगूर, नारियल, खरबूज, तरबूज, कलीन्दा, घिया, लौकी, पेठा, सीताफल, काशीफल, खीरा, ककड़ी, सैम, तोरई, भिन्डी, बाकलह, गोभी, बैगन, जमीकन्द अर्थात सूरन, अरूई (घुइयाँ), आलू, रतालू, शलगम, बथुवा, पवॉर, चौका, सोया, पालक, खुरफा, चौलाई, नौरूपा, नौनिया, इत्यादि।

सुगन्धित फूल – केवड़ा, केतकी, गुलाब, चम्पा, चमेली, मोतिया, मौगरा, सेवन्ती, शब्बू, रायबेल, जूही, निवारी, बेला आदि।

मसाला – लाल मिर्च, अदरख, धनियाँ, सौंफ, मेंथी, राई, जीरा, अजवाइन, सोंठ, कलौंजी, काली मिर्च, छोटी तथा बड़ी इलायची, लौंग, तेजपात, दालचीनी आदि।

पान – बिलहरी, काकेर, कपूरी, बंगला, जैसवार आदि पान की ये विभिन्न कोटियाँ बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होती हैं।

बुन्देलखण्ड में कृषि की स्थिति बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती। यहाँ का किसान परम्परागत रूप से कृषि करता है तथा पूर्ण रूपेण वर्षा पर आधारित है।

खनिज–सम्पदा

बुन्देलखण्ड में खनिज–सम्पदा पर्वतीय क्षेत्रों, पठारी भागों में और मैदानी भागों में उपलब्ध होती है। ग्रेनाइट पत्थर, इमारती पत्थर, चूने का पत्थर, मकान में लगाए जाने वाले पत्थर, उपयोगी बर्तन बनाए जाने वाले पत्थर जिनसे सिल, कड़ी, कूड़ी, प्याले, चकला आदि के पत्थर यहाँ उपलब्ध होते हैं। पत्थर से निर्मित चूना कटनी और सतना के आस–पास उत्पादित होते हैं। यहाँ एक विशेष प्रकार का पत्थर उपलब्ध होता है। यह गौर पत्थर के नाम से पुकारा जाता है। इससे छोटे–छोटे प्याले, चिलमें, सुराइयाँ और अनेक प्रकार के खिलौनें बनाए जाते हैं। इसके अलावा जबलपुर के आस–पास संगमरमर और संगे–जवाहरात भी पाया जाता है। इससे अनेक प्रकार के खिलौनें बनते हैं तथा इसका पावडर दवाओं के काम आता है। बाँदा में केन नदी के तट पर बहुत ही सुन्दर सजर पत्थर पाया जाता है। इसका विदेशों में भी निर्यात किया जाता है।

यहाँ पर उपलब्ध लोहे के पत्थर को धाऊ के नाम से पुकारा जाता है। यह पहाड़ी तथा पठारी भाग में पाया जाता है। मैंग्नीज जबलपुर के आस–पास उपलब्ध होता है। जैतवारा, कटनी तथा इसके आस–पास पीली और लाल मिट्टी उपलब्ध होती है जिसे गेरू और च्योरिया कहते हैं। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पाए जाने वाली बालू बजरी और मुरम है।

बुन्देलखण्ड के कई स्थानों में अभ्रक, ताँबा, एल्यूमीनियम, कोयला उपलब्ध होता है। जबलपुर के आस–पास फिटकरी, सोना, चाँदी, सीसा पाया जाता है। चीनी मिट्टी का सर्वाधिक कार्य जबलपुर में ही होता है। सोना कालिंजर के सन्निकट भी उपलब्ध होता है।

हीरा खनिज सम्पदा में बुन्देलखण्ड का सबसे कीमती पत्थर माना जाता है। इसकी उपलब्धि विशेषकर पन्ना जनपद में होती है। कुछ–कुछ हीरा बाँदा जनपद में कालिंजर के आस–पास भी उपलब्ध होता हैं पहले यहाँ के निवासी हीरे से परिचित नहीं थे। बाद में जौहरियों ने इसकी परख जानी। तब से यह रत्न लोकप्रिय हुआ। इसकी उपलब्धि भौंरा और मौंढ़ा दो प्रकार की खदानों में होती है।[134]

निष्कर्ष

बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक विशेषताओं ने न केवल राजनीतिक अपितु सांस्कृतिक इतिहास को विशेष रूप से प्रभावित किया है। इस क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली यमुना, वेत्रवती, दशार्णा आदि नदियों के तटों पर प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति का क्रमशः विकास हुआ। नदियाँ वहाँ के लोगों के हृदय में पवित्र धार्मिक भावना को जन्म देकर पूज्यनीय बन गयीं हैं। वस्तुतः ये नदियाँ बुन्देलखण्ड के भौगोलिक तथा ऐतिहासिक स्थिति की सूचक तथा धार्मिक और सामाजिक जीवन की प्रेरणा श्रोत रही है। यहाँ की उर्वर भूमि एवं अच्छी जलवायु ने लोगों को क्रमशः धन–धान्य से परिपूर्ण किया और स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुकूल वातावरण प्रदान किया है। सामरिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड की भौगोलिक स्थिति महत्वपूर्ण थी। विभिन्न राजवंश के राजाओं एवं ब्रिटिश शासकों ने अन्य अनेक प्रदेशों की विजय के लिए इसे अपनी राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बनाया अन्ततः यह कहा जा सकता है कि दीर्घकालीन बुन्देलखण्ड की भौगोलिक स्थिति उत्तम जलवायु, उपजाऊ भूमि एवं पवित्र नदियों ने यहाँ की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन को विशेष रूप से प्रभावित किया, जिसके कारण मध्य भारत के इस गौरवशाली प्रदेश का ऐतिहासिक महत्व अनवरत बना रहा।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. डॉ0 कन्हैया लाल अग्रवाल, "विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल," प्रका0– सुषमा प्रेस, सतना, संस्करण– 1987, पृष्ठ– (प्राक्कथन) 8 ।
2. **(A)** डॉ0 एस0डी0 त्रिवेदी, "बुन्देलखण्ड का पुरातत्व," प्रका0– राजकीय संग्रहालय, झांसी, संस्करण– 1984, पृष्ठ– 1 ।

   (B) मध्य भारत सर्वे रिपोर्ट, सन् 1872 ।
3. ई0टी0 एटकिंसन, "स्टैटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउण्ट्स ऑफ नार्थ–वेस्टर्न प्राविन्सेज ऑफ इण्डिया", वॉल्यूम– 1, बुन्देलखण्ड, इलाहाबाद, संस्करण 1974, पृष्ठ– 1 ।
4. वही– ओरछा (या टिहरी) कामता–रजोला, गौरीहार, जसो, जिगनी नया–गॉव, दतिया, पालदेव, गरौली, सरीना, समथर, पहरा, तोरन, छतरपुर, अजयगढ़, खनियाधाना, अष्टगढ़ी, अलीपुर, लुगासी, रिबही, पन्ना, धुरवही, सरीला, तोड़ी, बौनी, फतेहपुर, बेनी बीहड़, बिजावर, चरखारी, बिंजन, पहाड़ी–बांका, बरौदा, चौबियाना–कालिंजर तथा भैसुण्डा।
5. एलेक्जेण्डर कनिंघम, "दि एशियेन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया", वाराणसी– 1965, पृष्ठ– 406 ।
6. ईस्टर्न इण्डिया, भाग–2, पृष्ठ– 452 ।

   "बुन्देलानाला– यह एक छोटी बरसाती नदी है, जो पूर्व में बनारस के पास गंगा में मिलती है।"
7. दीवान प्रतिपाल सिंह, "बुन्देलखण्ड का इतिहास", भाग– 1, संस्करण– सन् 1929, पृष्ठ– 6।
8. गोरेलाल तिवारी, "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास", संस्करण– 1990 (संवत्), पृष्ठ– 1।
9. एम0एल0निगम, "कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड", संस्करण– 1983, पृष्ठ– 24।
10. मधुकर पत्रिका (पाक्षिक), "अप्रैल 1942", पृष्ठ– 21।
11. एम0पी0 जायसवाल, "दि ज्योग्राफी स्टडी ऑफ बुन्देलखण्ड," पृष्ठ– 9।
12. एन0 ज्योग्राफी, पृष्ठ– 442 ; ए0कनिंघम, "आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया", भाग– 2, पृष्ठ– 413।
13. इण्डियन एंटिक्वेरी, 1908, भाग– 37, पृष्ठ– 130 ; एपिग्राफिका इंडिका, भाग– 30, पृष्ठ– 130।
14. जयचन्द्र विद्यालंकार, "इतिहास प्रवेश," पृष्ठ– 95।
15. दीवान प्रतिपाल सिंह, "बुन्देलखण्ड का इतिहास," भाग– 1, संस्करण– सन् 1929, पृष्ठ– 6।
16. *भैंस बँधी है ओरछा, पड़ा होशंगाबाद ।*

    लगवैया है सागरै, चपिया रे वा पास ।।
17. कृष्ण लाल हंस, "बुन्देली और उनके क्षेत्रीय रूप," प्रयाग, संस्करण– 1976, पृष्ठ– 9–12।
18. दीवान प्रतिपाल सिंह, "बुन्देलखण्ड का इतिहास," भाग– 1, संस्करण– सन् 1929, पृष्ठ– 7।
19. एलेक्जेण्डर कनिंघम, "दि एशियन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया," वाराणसी, 1965, पृष्ठ– 406 ।
20. दीवान प्रतिपाल सिंह, "बुन्देलखण्ड का इतिहास," पृष्ठ– 8।
21. दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, (भारतीय विद्या भवन सीरीज सं0– 2) पृष्ठ– 9।
22. महाभारत– 5, 22, 25, 16 ; अध्याय– 198, श्लोक– 2।
23. हेमचन्द्र राय चौधरी, " पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एशिएन्ट इण्डिया," 1953 (छठा संस्करण), पृष्ठ– 129।
24. ऋगवेद, सप्तम, 5, 37–39।

25. महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय– 29, श्लोक– 12–13।

26. रामकुमार राय, "महाभारत कोश," भाग– 2, वाराणसी 1966, पृष्ठ– 26।

27. हेमचन्द्र राय चौधरी," पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशियन्ट इण्डिया," 1953 (छठा संस्करण), पृष्ठ– 129।

28. महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय– 189, श्लोक– 8–10।

29. रामकुमार राय, "महाभारत कोश," भाग– 2, वाराणसी, 1966, पृष्ठ– 310।

30. परमानन्द गुप्त, "जियोग्राफिकल नेम्स इन एंशियन्ट इण्डियन इन्स्क्रिप्शन्स", दिल्ली, 1977, पृष्ठ– 25।

31. बी0सी0 लाहा, " ज्योग्राफिकल एसेज रिलेटिंग टु एंशिएन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया," दिल्ली – 1976, पृष्ठ– 32।

32. ए0 कनिंघम, "आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट्स," भाग' 21, पृष्ठ– 91–92 ।

33. मैक्रिण्डल (अनूदित), "एंशिएन्ट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड बाई टॉलमी", लंदन 1885, पृष्ठ– 135।

34. स्कन्द पुराण, अध्याय– 30।

35. मधुकर पत्रिका, "बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्माण अंक", 1 जनवरी 1943 से 16 मई 1943, टीकमगढ़, पृष्ठ– 216।

36. वाटर्स, "आन य्वान च्वांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया (सि यु की)", लंदन 1904, भाग– 2, पृष्ठ– 251।

37. जूलियन्सन ह्वेनसांग, इंडेक्स 3, पृष्ठ– 408, 530 ; एलेक्जेण्डर कनिंघम, "दि एंशिएन्ट जियोग्राफी ऑफ इण्डिया," वाराणसी 1975, पृष्ठ– 405।

38. रोनाल्ड, फ्रेगमेण्ट्रस अरब्स, पृष्ठ– 106।

39. फ्लीट् , "कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम", भाग– 3, नं0 19, पृष्ठ– 88–90; नं0 36, पृष्ठ– 158–161 ।

40. *"जेजाख्यया अथनृपतिः स बभूव जेजाक भुक्तिः पृथुइव यथा पृथिव्यामासीत्"* महोबा शिलालेख ; इपीग्राफिया इण्डिका, भाग– 1, पृष्ठ– 220।

41. *"अरूण राजस्य पौत्रेण श्री सोमेश्वर सूनूना ।*
जेजाक भुक्ति देशोऽयं पृथ्वीराजेन लूनिता ।"
आर्क्योलाजी सर्वे रिपोर्ट, भाग–2, पृष्ठ– 98।

42. बागीश शास्त्री, "बुन्देलखण्ड की प्राचीनता", पृष्ठ– 9 ।

43. व्रजरत्न दास, "बुन्देलों का इतिहास", ना0प्र0 सभा पत्रिका, भाग– 3, 1879, पृष्ठ–420।

44. नार्थ–वेस्टर्न प्राविन्सेज गज़ेटियर, भाग– 1, पृष्ठ– 20 ; इलिएट एण्ड डाउसन, "हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन", भाग– 3, पृष्ठ– 45।

45. *"चैद्य नैषधयोः पूर्वेविन्ध्क्षेत्राश्च पश्चिमे ।*
रेवायमुनर्योमध्ये युद्ध देश इतीर्यते ।।"

46. आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग– 21, पृष्ठ– 58।

47. गजेटियर नार्थ–वेस्ट प्राविन्सेज, वॉल्यूम– 1, पृष्ठ– 446–474।

48. ए0 कनिंघम, "आर्क्योलाजी सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट", वॉल्यूम– 21, पृष्ठ– 23।

49. महाभारत, वनपर्व, खण्ड– 56, अध्याय– 26, श्लोक– 34।

50. मत्स्य पुराण, अध्याय– 121, श्लोक– 54।

51. *"गोलाङ.लानुचरितो वानरर्क्षनिषेवितः ।*
चित्रकूट इति ख्यातो गन्धमादनसंनिभ ।।"
बाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, श्लोक संख्या– 105, 3, 6, 123, 51।

52. एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड– 7, पृष्ठ– 38–43।

53. राजशेखर, "काव्य मीमांसा", (गायकवाड़), पृष्ठ– 94।

54. पालिजातक (हिन्दी अनुवाद), भाग– 4, 8, 120; डी0आर0 भण्डारकर, "लेक्चर्स आन एंशियन्ट हिस्ट्री ऑफ इण्डिया", 1977, पृष्ठ– 51, 52।

55. महाभारत, पृष्ठ– 20–50, 33, 63।

56. जनरल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1895, पृष्ठ– 235।

57. हेमचन्द्र राय चौधरी, "पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशिएन्ट इण्डिया", 1953 (छठा संस्करण), पृष्ठ– 129।

58. वि0सं0 1192 क्रा मदन वर्मा का भारत कला भवन ताम्रपत्र, एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द– 32, पृष्ठ– 119–23।

59. बाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, अध्याय– 121।

60. गरूड़ पुराण (बम्बई संस्करण), अध्याय– 7, श्लोक– 34–35।

61. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग– 1, पृष्ठ– 122, 123, 124।

62. एस0एन0 बोस, "हिस्ट्र ऑफ दि चन्देलाज", कलकत्ता, 1956, पृष्ठ– 107, 108।

63. सागर गजेटियर, 1970, पृष्ठ– 511।

64. फ्लीट, "कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इण्डिकेरम्", भाग– 3, पृष्ठ– 18।

65. वही, भाग– 3, पृष्ठ– 91–93।

66. कनिंघम, "आर्क्योलाजी सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट", भाग– 10, पृष्ठ– 82–89।

67. कृष्ण दत्त बाजपेयी, " मध्यप्रदेश का पुरातत्व", भोपाल, 1970, पृष्ठ– 19।

68. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर झाँसी, 1965, पृष्ठ– 335।

69. कल्पना देसाई, "आइकनोग्राफी ऑफ विष्णु", बम्बई– 1973, पृष्ठ– 100।

70. बी0एस0 अग्रवाल, "स्टडीज इन इण्डियन आर्ट", वाराणसी, 1965, पृष्ठ– 221, 224।

71. एस0डी0 त्रिवेदी, "संग्रहालय– पुरातत्व पत्रिका", अंक 25 (जून 1980), पृष्ठ–57–62।

72. "जनरल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल", वॉल्यूम– 31, पृष्ठ– 6–7।

73. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर झांसी, (1965), पृष्ठ– 362।

74. अल्बरूनी, "इण्डिया", वॉल्यूम– 1, पृष्ठ– 202।

75. इपिग्राफिया इण्डिका, भाग– 1, पृष्ठ– 214–217।

76. कनिंघम, "आर्क्योलॉजी सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट", भाग– 10, पृष्ठ– 92।

77. एस0डी0 त्रिवेदी, "कृष्णावतार इन स्कल्पचर आर्ट", अंक 21–24, पृष्ठ– 80।

78. रूद्रकिशोर पाण्डेय, "रानीमहल संकवन झाँसी की अलौकिक एवं सौर प्रतिमाएं, प्राच्य प्रतिभा", भाग– 7, अंक– 1–2, पृष्ठ– 99–103।

79. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर झाँसी, 1965, पृष्ठ– 337।

80. वही, पृष्ठ– 333।

81. एस0डी0 त्रिवेदी, "बुन्देलखण्ड में मूर्तिशिल्प में राम, प्राच्य प्रतिभा", भाग– 9–10, पृष्ठ– 143–148।

82. शिवदयाल त्रिवेदी, रानीमहल संकलन, झाँसी, बी0एम0ए0, अंक– 19–20, पृष्ठ– 46–49।

83. रामाश्रय अवस्थी, ''खजुराहो की देव प्रतिमाएं'', आगरा– 1967, पृष्ठ– 22–24।

84. आर्क्योलॉजी सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, भाग– 2, पृष्ठ– 440–441।

85. के0एन0 दीक्षित, ''सिक्ख स्कल्पचर्स फाम महोबा'', मेम्वायर नं0– 8, कलकत्ता 1921।

86. ई0टी0 एटकिंसन, ''स्टैटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउण्टस ऑफ वेस्टर्न प्राविन्सेज ऑफ इण्डिया'', वॉल्यूम– 1, पृष्ठ– 54।

87. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय– 201, श्लोक– 6।

88. जगदीश गुप्त, ''प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला,'' दिल्ली 1967, पृष्ठ– 95।

89. दीवान प्रतिपाल सिंह, ''बुन्देलखण्ड का इतिहास'', भाग– 1, सन् 1929, पृष्ठ– 16–17।

90. ऐतरेय ब्राह्मण, खण्ड– 8, अध्याय– 14, श्लोक– 4 ; अथर्वेद, खण्ड– 4, अ0– 9, श्लोक– 10 ; ऋगवेद, खण्ड– 10, अध्याय– 75, श्लोक– 5।

91. मत्स्य पुराण, अध्याय–144, श्लोक– 20–32 ; महाभारत, आदिपर्व, अध्याय– 60, श्लोक– 2 ; सभापर्व, अध्याय– 14, श्लोक– 43–44।

92. स्कन्द पुराण, खण्ड– 2, 4, अध्याय– 2, 35, श्लोक– 30, 39।

93. डी0सी0 सरकार, '' ज्योग्रफी ऑफ ऐश्येन्ट मेडिवल इण्डिया'', वाराणसी, 1962, पृष्ठ– 45।

94. महाभारत, वनपर्व, अध्याय– 82।

95. कालिदास, ''मेघदूत'', नई दिल्ली 1957, भाग– 1 पृष्ठ– 30 ; कालिदास, ''मालविकाग्निमित्र'', बम्बई 1950, पृष्ठ– 112।

96. एफ0ई0 पार्जिटर (आंग्लानुवाद), ''मार्कण्डेयपुराण, वाराणसी 1969, पृष्ठ– 293।

97. प्रो0 एस0एम0 अली, ''दि ज्योग्राफी ऑफ दि पुराणाज'', देहली, 1966, पृष्ठ– 117।

98. महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय– 151, श्लोक– 16।

99. कालिदास, ''मेघदूत'', नई दिल्ली, 1957, भाग– 1, पृष्ठ– 24।

100. बाणभट्ट, ''कादम्बरी'', बम्बई 1896, पृष्ठ– 11–12।

101. कालिदास, ''मेघदूत'', नई दिल्ली 1957, भाग– 1, पृष्ठ7 23 ; डॉ0 मजूमदार, ''क्लासिकल एकाउण्ट्स ऑफ इण्डिया'', पृष्ठ– 380।

102. मार्कण्डेयपुराण, अ0– 57।

103. *''चित्रोत्पला विपाशा च मंजुला बालुवाहिनी ।''*
डी0सी0 सरकार, ''ज्याग्रफी ऑफ एंशियन्ट मेडिवल इण्डिया'', वाराणसी, 1962, पृष्ठ– 47–78।

104. डॉ0 अवध बिहारी लाल अवस्थी, '' स्टडीज इन दि स्कन्द पुराण'', लखनऊ 1966, पृष्ठ–159।

105. *''तमसा पिप्पलश्रोणी करमोदा पिशाचिका।''*
डी0सी0 सरकार, ''ज्योग्राफी ऑफ एंशिएन्ट मेडिवल इण्डिया'', वाराणसी 1962, पृष्ठ– 297।

106. *''तमसानद्या''* महाराज सर्वनाथ का खोह ताम्रपत्र (वर्ष– 193), कार्पस, खण्ड– 3, पृष्ठ– 127।

107. *''ततो गोदावरी रम्यां कृष्णा वेणीं महानदीम्।''* रामायण

108. महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय– 9, श्लोक– 13–17 ।

109. टाल्मी, ''एंशिएन्ट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड'', कलकत्ता, 1927 पृष्ठ– 102–104, 358।

110. वार्टस, ''आन य्वान च्वांग ट्रेवल्स इन इण्डिया (सि यु की)'', लन्दन, 1904, भाग– 2, पृष्ठ– 241।

111. स्कन्द पुराण, खण्ड– 1, अ0– 1, 18, श्लोक– 153।

112. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, खण्ड– 9, पृष्ठ– 68।

113. एस0सी0 बनर्जी, "जनरल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल", भाग– 46, 1842, पृष्ठ– 40।

114. *"प्रविश्यतु महारण्य दण्डकारण्यमात्मवान्।*
ददर्श रामों दुधर्षस्तापसाश्रम मण्डल्।।" रामायण, 3, 11।

115. रामायण, 2, 94, 9–10।

116. महाभारत, खण्ड– 3, अ0– 61, श्लोक– 147।

117. *"विन्ध्यवन भूमिखि वेत्रलतावती।"* बाणभट्ट, "कादम्बरी", पृष्ठ– 22।

118. कालिदास, "मेघदूत", भाग– 1, पृष्ठ– 23।

119. बाणभट्ट, "हर्षचरित", वाराणसी, 1958, पृष्ठ– 228।

120. डेविडसन, "ट्रेवल", भाग– 1, पृष्ठ– 188।

121. एस0सी0 बनर्जी, "जनरल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल",1842, भाग– 46, पृष्ठ– 395।

122. ह्वेनसांग, "दि लाइफ ऑफ ह्वेनसांग", खण्ड– 4, कलकत्ता– 1958, पृष्ठ– 46।

123. कार्पस इन्स्क्रिप्शन इण्डिकेरम, खण्ड– 3, पृष्ठ– 20।

124. *"प्रोदघुष्टांक्रौंच कुररैश्चक्रवाकोप कूजिताम।*
कूर्मग्राह झषाकीर्णा पुलिनद्वीपशोभिताम्।।" महाभारत, 361, 108।

125. महाभारत, 2, 2।

126. परमार्दिदेव का महोबा ताम्रपत्र, एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड– 16, पृष्ठ– 13।

127. हर्षचरित, चौखम्भा, पृष्ठ– 410–412।

128. रामायण– 2, 54, 31;
2, 55, 9;
2, 55, 10;
2, 92, 1, 2;
2, 94, 7;
2, 95, 11;
2, 96, 8।

129. पन्ना गजेटियर।

130. इपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड– 10, पृष्ठ– 47।

131. हर्षचरित, (चौखम्भा), पृष्ठ— 402–3।

132. वही, पृष्ठ– 410 ।

133. एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड– 16, पृष्ठ– 13, टि0– 3।

134. दीवान प्रतिपाल सिंह, "बुन्देलखण्ड का इतिहास", भाग– 1, सन्– 1929, पृष्ठ– 66।

अध्याय द्वितीय

अध्याय- 2

❋ बुन्देलखण्ड की राजनीतिक पृष्ठभूमि

: *गोसाईं लोगों के आक्रमण।*

: *अंग्रेजों का आक्रमण।*

: *गोंड राज्य का पतन।*

: *अली बहादुर की नवाबी।*

: *हिम्मत बहादुर की लड़ाइयाँ।*

: *अंग्रेजों से सन्धियाँ।*

: *पेशवाई का अन्त और अंग्रेजों का राज्य।*

: *1857 के पूर्व बुन्देलखण्ड की स्थिति।*

: *विद्रोह के कारण।*

: *बुन्देलखण्ड की आधुनिक स्थिति।*

अध्याय– 2

बुन्देलखण्ड की राजनीतिक पृष्ठ भूमि

बुन्देलखण्ड का क्षेत्र ईसा पूर्व छठी शताब्दी में चेदि–राज्य में सम्मिलित था। चेदि राज्य उत्तर भारत के सोलह महाजनपदों में से एक था।[1] उस समय वितिहोत्र वंश के शासकों का शासन था। चौथी शती ई0पू0 में यहाँ चंद्रप्रद्योत नामक राजा राज्य कर रहा था। पाँचवी–छठी शताब्दी ई0पू0 में प्रचलित पंचमार्क्ड सिक्के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में प्राप्त हुए हैं। चौथी शती ई0पू0 के अन्तिम चरण में उत्तर भारत की राजनैतिक स्थिति अस्थिर हो गई थी। उस समय राज्य करने वाले नन्द वंश का उच्छेदन कर चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपना शासन स्थापित किया।

लगभग तीसरी–चौथी शताब्दी ई0पू0 में यह भू–भाग मौर्य वंश के राजाओं के अधीन था। आर्यपुत्र अशोक अपने पिता के राज्य काल में अवन्ति प्रान्त के मुख्यालय उज्जैन से इस प्रान्त का शासन करता था। लगभग 272 ई0पू0 में अशोक राजगद्दी पर बैठा। दतिया जिले के गुर्जरा लघु शिला अभिलेख[2] से यह प्रमाणित है कि यह क्षेत्र अशोक के साम्राज्य में सम्मिलित था।

मौर्यों के पश्चात् शुंग राजाओं ने उत्तर भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया। पुष्यमित्र शुंग का शासन इस क्षेत्र पर था। उस समय राजकुमार अग्निमित्र विदिशा में राज्यपाल के रूप में नियुक्त था जहाँ से बुन्देलखण्ड तथा पूर्वी मालवा का शासन चलाता था। सम्भवतः शुंगों के समय में ही यवनों के आक्रमण हुए। यवनों के आक्रमण का उल्लेख पतञ्जलि के महाभाष्य में भी हुआ है।[3] इससे यह क्षेत्र भी प्रभावित हुआ। हमीरपुर जिले के पचोखर गाँव से मिले हुए इन्डोग्रीक सिक्के[4] इस मत को महत्व देते है कि इस क्षेत्र में यवन राजाओं का शासन था।

शुंगो के पश्चात् साम्राज्य छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। लगभग प्रथम शताब्दी के अन्तिम भाग में यह क्षेत्र कुषाण वंश के महान् सम्राट कनिष्क के साम्राज्य में सम्मिलित हो गया था। इस वंश का आधिपत्य यहाँ अधिक वर्षों तक न रह सका। पद्मावती के नाम राजाओं ने कुषाणों को सम्भतवः वासुदेव लगभग 145–176 ई0 के समय में यहाँ से खदेड़ दिया। नाग सिक्कों पर ग्यारह नाग राजाओं के नाम मिले हैं जो इस प्रकार हैं : वृष, भीम, स्कन्द, वसु, वृहस्पति, विभु, रवि, भव, प्रभाकर, देव और गणपति। नाग राजाओं ने इस प्रदेश पर दूसरी शताब्दी के अन्त से चौथी शताब्दी तक राज्य किया।[5] बुन्देलखण्ड क्षेत्र पर गुप्त राजाअें के अन्तर्गत सर्वप्रथम समुद्रगुप्त का ही आधिपत्य स्थापित हुआ था। उसकी प्रयाग–प्रशस्ति[6] में गणपति नाग, नागसेन जैसे नाग राजाओं को पराजित करने का उल्लेख है। समुद्रगुप्त (335–375 ई0) का एरण अभिलेख[7] इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि उस समय तक यह क्षेत्र गुप्त साम्राज्य का अंग बन चुका था। इस क्षेत्र से समुद्रगुप्त के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं।

महाराजाधिराज समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी के रूप में रामगुप्त ने बहुत थोड़े समय तक शासन किया। देवी चन्द्रगुप्तम्, हर्षचरित, काव्य–मीमांसा में वर्णित रामगुप्त की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में मतभेद था परन्तु रामगुप्त मुद्रालेख से अंकित अनेक सिक्कों की प्राप्ति से उसके शासक होने की बात स्पष्ट हो जाती है। प्रो0 कृष्णदत्त बाजपेयी ने विदिशा के निकट दुर्जनपुर से तीन अभिलिखित जैन मूर्तियाँ[8] प्राप्त की हैं। जो इस सम्बन्ध में अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। पादपीठ पर गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में अंकित– *'महाराजाधिराजस्य श्री रामगुप्त''* इस बात का स्पष्ट परिचायक है कि रामगुप्त राजकुल का राजा था।

रामगुप्त अधिक समय तक राज्य न कर सका। उसके उत्तराधिकारी के रूप में लगभग

375 ई0 में चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शासन की बागडोर सम्भाली। उसके राज्य में बुन्देलखण्ड का सम्पूर्ण क्षेत्र सम्मिलित था। इसके बाद चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की महारानी ध्रुवस्वामिनी से उत्पन्न पुत्र कुमार गुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि कुमार गुप्त के पहले कुछ समय तक उसके ज्येष्ठ भ्राता गोविन्द गुप्त ने भी राज्य किया था। देवगढ़ से प्राप्त एक स्तम्भ लेख में गोविन्द का उल्लेख है जिसे डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल[9] ने चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के पुत्र गोविन्द गुप्त से पहचाना है। गुना जिले के तुम्बवन गाँव से प्राप्त शिलालेख[10] में घटोत्कच गुप्त का नाम मिलता है जो सम्भवतः एरण का राज्यपाल था और वहीं से इस क्षेत्र पर शासन करता था। कुछ विद्वानों का मत है कि कुमार गुप्त प्रथम का पुत्र घटोत्कच गुप्त उसका उत्तराधिकारी बना और उसने लगभग पाँच–छः वर्ष राज्य किया। इसके पश्चात् गुप्त सम्राटों की परम्परा में स्कन्दगुप्त प्रतापी राजा हुआ। उसने हूणों पर विजय प्राप्त की। बुन्देलखण्ड पूरी तरह उसके राज्य में बना रहा।

सारनाथ के अभिलेख[11] से ज्ञात होता है कि बुधगुप्त सम्वत् 157 (476–77 ई0) में शासक बन चुका था। उसके समय में पूर्वी मालवा महाराज मातृविष्णु और यमुना तथा नर्मदा के मध्य का भाग सामन्त सुरश्मिचन्द्र द्वारा शासित था।

बुधगुप्त के निधन के पश्चात् सम्भवतः उसका पुत्र भानुगुप्त लगभग 495–510 ई0 में गद्दी पर बैठा। उसके शासन काल में हूणों ने आक्रमण कर उसके राज्य का कुछ भाग छीन लिया। मातृविष्णु जो बुधगुप्त के समय में पूर्वी मालवा का सामन्त था, का अनुज धन्यविष्णु हूण राजा तोरमाण को अपना अधिपति मानता था। एरण अभिलेख[12] (191–510 ई0) से ज्ञात होता है कि भानुगुप्त का सेनानी गोपराज एक बड़े युद्ध में मारा गया था। यह युद्ध हूणों और गुप्त राजा के मध्य हुआ था। इसके पश्चात् गुप्त राजकुल का पतन हो गया। सागर क्षेत्र का प्रशासन हूणों के हाथ में आ गया। शक्तिशाली हूण राजा मिहिरकुल ने एरण और ग्वालियर के मध्य का भाग अपने राज्य में मिला लिया था। मन्दसौर अभिलेख[13] से ज्ञात होता है कि यशोधर्मन् ने मिहिरकुल को परास्त किया। यशोधर्मन ने इस क्षेत्र पर कुछ समय तक ही राज्य किया इसके पश्चात् उत्तर कालीन गुप्त राजाओं ने अपनी शक्ति संगठित की। हर्ष चरित से ज्ञात होता है कि दामोदर गुप्त का पुत्र महासेन गुप्त पूर्वी मालवा चला गया जो अब तक गुप्तों के आधिपत्य में था उसके पश्चात् उसके पुत्र देवगुप्त ने शासन किया।

ह्वेनसांग के भारत भ्रमण के समय उसके अनुसार पूर्वी मालवा, ग्वालियर तथा बुन्देलखण्ड में ब्राह्मण राजा राज्य करते थे।[14] हर्ष जो हिन्दू राजाओं में अन्तिम महान् सम्राट माना जाता है, का उत्तर भारत के विस्तृत क्षेत्र में राज्य फैला था, पर इस भाग में उसका सीधा शासन स्थापित न था।

इन ब्राह्मण राजाओं को हराकर इस भू–भाग में गुर्जर–प्रतीहारों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया। प्रतीहार कालीन मन्दिर, मूर्तियाँ, अभिलेख तथा सिक्के इस क्षेत्र में प्राप्त हुए हैं जिनसे यहाँ उनके शासन होने की बात स्पष्ट होती है देवगढ़ अभिलेख[15] में वर्णित भोज कन्नौज का गुर्जर–प्रतीहार राजा मिहिर भोज (लगभग 836–885 ई0) ही है। इसकी तिथि देवगढ़ अभिलेख[16] में विक्रम सं0 919 तथा शक संवत् 784 दी गई है जो ई0 सन् 862 के समय में पड़ती है। यह भोज की पहली ज्ञात तिथि है। भोज के 'आदि वराह' प्रकार के सिक्के इस क्षेत्र में बहुतायत संख्या में मिले हैं। इस प्रकार यह निर्विवाद है कि 9वीं शती ई0 में भोज का साम्राज्य पूरे बुन्देलखण्ड में फैला था। इसके पश्चात् उसका पुत्र महेन्द्रपाल लगभग 885–910 ई0 उत्तराधिकारी बना। सीयडोणि अभिलेख[17] में प्रतीहार राजाओं में भोज, महेन्द्रपाल, क्षितिपाल तथा देवपाल के नाम आए हैं। इसमें

उल्लिखित अन्तिम तिथि विक्रम संवत् 1016 (959–60 ई0) है।

बुन्देलखण्ड में चन्देलों ने लगभग तीन सौ वर्षों तक अपनी प्रभुता स्थापित रखी। प्रारम्भ में चन्देल प्रतीहारों के सामन्त थे। राष्ट्रकूटों ने प्रतीहारों के राज्य पर आक्रमण कर दिया। प्रतीहारों की शक्ति का हास देखते ही चन्देल स्वतन्त्र हो गए। सम्भवतः राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय के समय में ऐसा हुआ था। चन्देल राजा धंगदेव के खजुराहो अभिलेख[18] से ज्ञात होता है सम्वत् 1011 (954 ई0) के बाद ही उसका स्वतन्त्र शासन उस क्षेत्र पर स्थापित हो पाया था।

नवीं शताब्दी के आरम्भ में चन्देल राज्य की स्थापना सर्वप्रथम नन्नुक ने की जो स्वयं प्रतीहारों का सामन्त था। प्रतीहार नरेश नागभट्ट द्वितीय के निधन के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी रामभद्र को अयोग्य और अक्षम समझ कर नन्नुक ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इसके पश्चात् उत्तराधिकारी के रूप में उसका पुत्र वाक्पति (850–70 ई0) शासक बना। उसके पुत्र जय शक्ति अथवा जेजा के नाम पर इस राज्य का नाम जेजाकभुक्ति पड़ा।[19] जय शक्ति का छोटा भाई विजय शक्ति कुछ वर्षो के लिए अधिपति बना और उसके बाद उसके पुत्र राहिल (लगभग 890–910) ने चन्देल शक्ति को संगठित किया।

हर्ष देव लगभग 910–930 ई0 ने चन्देल सत्ता की जड़े और भी मजबूत की। उसने प्रतीहारों की गृह कलह में दखल देकर महीपाल को गद्दी पर बिठलाने में सहायता की और चन्देल वंश की प्रतिष्ठा बढ़ाई।[20] उसका उत्तराधिकारी महत्वाकांक्षी राजा यशोवर्मन लगभग 930–50 ई0 था जिसने अनेक राज्यों को जीतकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। उसकी कालिंजर विजय विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।[21]

अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कलचुरि राजाओं में गांगेयदेव तथा लक्ष्मीकर्ण ने चन्देलों पर आक्रमण करके उनके राज्य का कुछ भाग अपने साम्राज्य में मिला लिया था। डा0 एच0सी0 रे[22] के अनुसार 940 ई0 के पूर्व कालिंजर मण्डल पर राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

यशोवर्मन का पुत्र धंग उसका उत्तराधिकारी बना। उसने अपने साम्राज्य को अपनी विजयों के द्वारा और विस्तृत किया। उसके पुत्र गंड के समय में मुस्लिम आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे। 1023 ई0 में महमूद ने कालिंजर फतह किया और प्रभूत धन लूटकर चला गया।[23]

चन्देलों के उत्कर्ष काल के राजाओं में कीर्तिवर्मन देव (लगभग 1060–1100 ई0) तथा मदनवर्मा (लगभग 1125–63 ई0) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन दोनों राजाओं ने अपने शासन काल में चन्देल सत्ता को पुनर्जीवित करने तथा समकालीन राजाओं पर प्रभुता स्थापित करने का सफल प्रयास किया।

चन्देल वंश का अन्तिम पराक्रमी राजा परमार्दिदेव (लगभग 1165–1203 ई0) हुआ। मदनपुर शिलालेख के अनुसार दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान ने संवत् 1239 विक्रमी (1183 ई0) में बुन्देलखण्ड (जेजाकभुक्ति) पर आक्रमण किया था। इसमें चन्देल राजा परमार्दिदेव बुरी तरह पराजित हुआ। बुन्देलखण्ड का कुछ भाग दिल्ली राज्य में सम्मिलित हो गया और शासन करने के लिए प्रतिनिधि के रूप में पज्जूनराय को नियुक्त किया गया।[24] परमार्दिदेव कालिंजर अधिपति हो गए और उनकी राज्य–सीमा पहले की अपेक्षा संकुचित हो गई। हिजरी सं0 599 (1202 ई0) में कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर पर भयंकर आक्रमण किया और इसमें परमार्दिदेव को पुनः परास्त होना पड़ा।[25] इसके पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों ने चन्देल शक्ति को एक बार और संगठित करने का प्रयास किया पर वे इसमें अधिक सफल न हो सके और अन्ततः चन्देल वैभव सदा के लिए

समाप्त हो गया।

बुन्देलखण्ड पर मुसलमानों के अनेक आक्रमण हुए। इसमें पहला आक्रमण महमूद गजनवी ने सन् 1021 में कालिंजर पर किया और बहुत सी सम्पत्ति लूट कर चला गया।[26] दूसरा आक्रमण शहाबुद्दीन मोहम्मद गौरी का था। उसके बाद कुतुबुद्दीन ऐबक ने चढ़ाई की और कुछ भाग जीत लिए। विजित भाग का शासन करने के लिए उसने अपना मुसलमान सरदार नियुक्त किया। इसके पश्चात् गुलाम वंश के बादशाहों द्वारा लगातार आक्रमण किए जाते रहे और इसका बहुत सा भाग हथियाने में वे सफल रहे।

शेरशाह सूरी ने सन् 1545 में कालिंजर पर चढ़ाई की थी।[27] मोहम्मद तुगलक का भी इस राज्य पर अधिकार रहा। दमोह के बटिया गढ़ नामक स्थान से इसका एक शिलालेख मिला है। बाबर ने 1530 ई0 में चन्देरी पर आक्रमण किया था। बाद के मुगल सम्राटों ने भी आक्रमण कर बुन्देलखण्ड के कुछ भाग कब्जा कर लिए। इस प्रकार पाँच–छः शताब्दियों तक लगातार मुस्लिम आक्रमणकारियों ने बुन्देलखण्ड को अपना निशाना बनाया।[28] अनेक मुस्लिम राजाओं के सिक्के बुन्देलखण्ड में प्राप्त हुए हैं।

गौंड लोगों ने भी बुन्देलखण्ड के कुछ भाग पर शासन किया। इन राजाओं में संग्राम शाह प्रतापी राजा हुआ।[29] वह 1515 ई0 में गद्दी पर बैठा था। सम्राट अकबर ने सन् 1564 में गौंडवाने पर आक्रमण किया। उसका युद्ध रानी दुर्गावती से हुआ। वह युद्ध में घायल हुयीं और मारी गयीं। इस युद्ध में उनका पुत्र नारायण भी मारा गया। नारायण के राजमहल की महिलाओं ने जौहर–ज्वाला में जलकर अपने सतीत्व की रक्षा की। आसफ खाँ के हाथों लूट का बहुत–सा समान लगा, जिसमें सोना, चाँदी, हीरे–जवाहरात तथा 1000 हाथी थे। उसने केवल 200 हाथी बादशाह के पास भेजे और शेष सामान–सामग्री वह स्वयं पचा गया। इस समय अकबर इतना समर्थ नहीं था कि आसफ खाँ की इस दुष्टता के लिए उसे दण्ड देता।[30] सम्राट अकबर के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने–अपने शब्दों में बयान किया है।[31]

तेरहवीं शताब्दी के मध्य में बुन्देल सत्ता का उदय हो गया था। बुन्देलों का पहला स्थान महौनी था। वहाँ ही प्रारम्भिक राजाओं ने राज्य किया। राजा सोहनपाल ने गढ़कुण्डार के खंगार राजा हुरमत सिंह को हरा दिया और वहाँ का राज्य हथिया लिया।[32] इसके बाद उन्होंने जैतपुर भी जीता। अपनी कुछ पीढ़ियों तक बुन्देल राजाओं ने यहीं से राज्य किया। राजा रूद्रप्रताप ने अपनी राजधानी सन् 1531 में गढ़कुण्डार से ओरछा बदली।[33] ओरछा वंश वृक्ष में वीर सिंह देव (1606–1627 ई0) बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने कला और साहित्य को बड़ा प्राश्रय दिया। उसका पुत्र जुझार सिंह ओरछा की गद्दी पर बैठा और दूसरे पुत्रों को दूसरे स्थानों की जागीरें मिलीं। विजना, टोड़ी, फतेहपुर, जैतपुर, खनियाधाना, जिगनी, चरखारी, सरीला, चन्देरी, पन्ना आदि अनेक राज्यों तथा जागीरों के राजा ओरछा वंश वृक्ष से ही गए। बुन्देल राजा चम्पतराय (1637–1641 ई0) ने मुगलों के विरुद्ध डटकर मोर्चा लिया।[34] उसके पुत्र महाराजा छत्रसाल ने अपनी शक्ति के द्वारा अपने साम्राज्य का विस्तार किया। वह बड़ा प्रतापी, दूरदर्शी और वीर राजा था।[35] उसके विपत्ति के दिनों में बाजीराव पेशवा ने छत्रसाल की मदद की थी। इस उपकार के प्रतिदान में उसने अपने साम्राज्य का एक तिहाई भाग बाजीराव पेशवा को देना स्वीकार कर लिया।[36] इसी से बुन्देलखण्ड में मराठों का शासन स्थापित हो गया। मराठों का आगमन 11 नवंम्बर सन् 1730 में यहाँ हुआ उन्होनें अपना अस्तित्व दिसम्बर 1731 में यहाँ स्थापित किया। छत्रसाल ने अपने राज्य का विभाजन अपने इस निर्देशानुसार किया।[37]

जब बाजीराव को छत्रसाल के राज्य का एक तिहाई भाग दिया गया, उस समय यह शर्त रखी गयी कि बाजीराव पेशवा उनके पुत्रों के राज्य में कोई हस्तक्षेप न करेगें और संयुक्त अभियान के दौरान जो क्षेत्र जीता जाएगा उसे आधा–आधा बाँट लेगे। यदि मुगल शासक किसी प्रकार का कोई कर देता है तो उसे हृदयशाह, जगतराय और पेशवा में बाँटा जाएगा। मराठा सेना कभी भी उनकी अनुमति के बिना उनके क्षेत्र में प्रवेश न करेगी। यदि कोई विवाद पैदा होता है तो उसका निपटारा पेशवा के अदालत में होगा।

मराठों को छत्रसाल महाराज[38] के राज्य का वह अंश मिला था जो दक्षिण में सिरौंज से लेकर उत्तर की ओर यमुना नदी के पार तक चला गया है। इससे मराठों का राज्य यमुना नदी के पार तक पहुँच गया। इनके पास इस समय बहुत बड़ी सेना थी। मल्हार राव होल्कर बाजीराव पेशवा के एक सरदार थे। विक्रम संवत् 1792 में मल्हार राव[39] ने बुन्देलखण्ड से आगरे तक धावा मारा और मुजफ्फर खाँ और खान दौरान को हराकर उनके अधिकार का बहुत सा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। छत्रसाल की मृत्यु 4 दिसम्बर सन् 1731 ई0 में हुयी।[40] छत्रसाल महाराज के पुत्र जगतराज और हृदयशाह जी, जो जैतपुर और पन्ना राज्य के अधिकारी हुए थे, मराठों को सदा सहायता देते रहे। बुन्देलों और मुहम्मद खाँ बंगश से विक्रम संवत् 1793 में जैतपुर के समीप युद्ध हुआ।[41] इस युद्ध में बाजीराव पेशवा ने बुन्देलों की सहायता की। बुन्देलों और मराठों ने मिलकर मुहम्मद खाँ बंगश को हरा दिया। जगतराज महाराज पेशवा की सहायता से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पेशवा को कई लाख रूपए और अपने राज्य का चौथ देना स्वीकार किया।

पेशवा ने सागर और जालौन का प्रबन्ध, विक्रम संवत् 1792 में अपने भतीजे को सौंपा। मराठों का प्रभाव बुन्देलखण्ड में और भी बढ़ गया। इन दिनों में बुन्देलों की शक्ति आपसी झगड़ों के कारण कम हो गयी थी, इससे मराठों ने इसका लाभ उठाकर अपना अधिकार बढ़ाया, परन्तु मुसलमानों के विरुद्ध बुन्देले और मराठे दोनों मिले रहें जिससे उत्तर की ओर से मुसलमानों का आक्रमण होना असम्भव हो गया।

बाजीराव पेशवा के मरने के पश्चात् उनके पुत्र नाना साहब उर्फ बालाजी बाजीराव पेशवा हुए। इनके पेशवा होने के समय महाराज छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह की मृत्यु हो गयी थी[42] और उनके दो पुत्र सभा सिंह और पृथ्वीराज राज्य के लिए लड़ रहे थे। सभा सिंह को पन्ना वालों ने राज्य दे दिया। इस पर पृथ्वीराज को बहुत बुरा लगा। पृथ्वीराज और सभा सिंह दोनों भाइयों में युद्ध हुआ और पन्ना के समीप सभा सिंह को पृथ्वीराज और मराठों ने मिलकर हरा दिया। पृथ्वीराज के अधिकार में जो प्रान्त आया था उसकी चौथ भी पृथ्वीराज मराठों को देने लगे। इस युद्ध के पश्चात् सारे बुन्देलखण्ड से मराठों को चौथ मिलने लगी और बुन्देले अपने आपसी झगड़ों के कारण बिल्कुल बलहीन हो गए।

जैतपुर के राजा जगतराज ने सभा सिंह की सहायता की थी। इस कारण मराठों ने जगतसिंह से भी उसके प्रदेश का कुछ भाग माँगा। बुन्देलों में ऐक्य न होने से प्रबल मराठे जो कुछ उनसे कहते थे उन्हें मानना पड़ता था इसलिए जगतराज ने अपने राज्य में से महोबा, हमीरपुर और कालपी के परगने मराठों को दे दिए। गोविन्द राव पन्त की सहायता से मराठों का अधिकार बुन्देलखण्ड में बढ़ता गया।

ओरछे के राजा ने भी मराठों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। अब मराठों ने बड़ी भारी सेना तैयार कर ली थी। इस समय गोपालराव बर्वे, अन्नाजी माणकेश्वर, विट्ठल शिवदेव विंचूरकर, मल्हारराव होल्कर, गंगाधर यशवंत और नारोशंकर ये मराठों के प्रसिद्ध सरदार थे।[43]

गोविन्द राव पन्त ने सागर और उसके आस–पास का प्रान्त अपने लड़के बालाजी गोविन्द के अधिकार में कर दिया। सागर में बालाजी की सहायता के लिए रामराव गोविन्द, केशव शंकर कान्हेरे, भीकाजी राम करकरे, रामचन्द्र गोविन्द चांदोरकर इत्यादि कर्मचारी थे।[44] सागर की देखरेख इनके सुपुर्द करके गोविन्दराव पन्त अपने छोटे लड़के गंगाधर गोविन्द को साथ लेकर कालपी के समीप यमुना पार कर अन्तर्वेद में एक बड़ी सेना के साथ पहुँचे।

मोरोपन्त बाजीराव साहब के पुराने मुत्सद्दी, स्वामीभक्त और रणशूर कर्मचारी थे। सागर की सेना के ये ही अधिपति थे। गोंड़ राजाओं को इन्होंने अपने अधिकार में रखा था और गोंड़ राजा के हाथी पर की बहुमूल्य रेशमी झूल ले ली थी। इस समय यह झूल इन्दौर में रहने वाले गवर्नर जनरल के एजेन्ट की कोठी में है।

गोविन्द राव पन्त मराठों के एक बड़े वीर, पराक्रमी और राजनीतिज्ञ सरदार गिने जाते थे। जब पूना के शासकों को कोई सहायता की आवश्यकता होती थी तब ये सहायता देते थे। झाँसी, कालपी इत्यादि स्थानों में बड़े–बड़े धनी साहूकार थे जिनके पास से गोविन्द राव पन्त रूपए लेकर पूना भेजा करते थे। इन साहूकारों में रायराव, रतन सिंह, और विशंभरदास का नाम प्रसिद्ध है। सारे बुन्देलखण्ड में गोविन्द राव पंत का मान था। इस समय सब आपस में लड़ रहे थे और सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में अराजकता सी फैल गयी थी। राजपूतों में भी ऐक्य न था। मराठों का डर सारे भारत वर्ष में बैठ गया था। मराठों की इस वृद्धि का मूल कारण बुन्देलखण्ड राज्य था। बुन्देलखण्ड मध्य भारत में होने के कारण मराठे यहाँ से जिस ओर जाना चाहते थे जा सकते थे। बुन्देल लोग आपस में लड़ते रहते और आपसी कलह के कारण इनकी शक्ति हीन हो गयी परन्तु मराठों को जब सहायता की आवश्यकता पड़ती थी तब वे उन्हें बराबर सहायता देते थे। बुन्देलों की वीरता अतुलनीय थी। ये लोग जिस युद्ध में गए वहाँ बड़ी वीरता से लड़े। बुन्देलखण्ड मराठों को छत्रसाल महाराज ने दिया था परन्तु अब ये महाराज छत्रसाल के वंशजों के ऊपर ही अधिकार किए बैठे थे।

बुन्देलखण्ड में एक नया राज्य स्थापित हो रहा था। बुन्देलखण्ड में मराठों की व्यवस्था डगमगा–सी गयी थी। झाँसी के समीप ही गोसाईं लोगों ने बहुत–सी सेना एकत्र की थी और वे मराठों को हराकर एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहते थे। गोसाईं लोगों का पहला राजा इन्द्रगिरि था।[45]

महाराज छत्रसाल के वंशज आपस में लड़ रहे थे।[46] विक्रम संवत् 1813 में हिन्दूपत ने अपने भाई अमान सिंह को मरवाकर महाराज छत्रसाल के कुल को कलंकित किया।[47] दो वर्ष के बाद ही जैतपुर के महाराज जगतराज की मृत्यु हुई। इनकी मृत्यु के बाद पहाड़ सिंह, खुमान सिंह और गुमान सिंह के बीच में झगड़े हुए।[48] इन राज्यों के जागीरदार भी राज्य व्यवस्था ठीक न होने का लाभ उठाकर स्वतन्त्र बनने का प्रयत्न कर रहे थे।

बुन्देलखण्ड के मराठों का लक्ष्य चारों ओर बँटा हुआ था। बुन्देलखण्ड का सब कार्य गोविन्द राव पन्त देखते थे। जब दिल्ली के झगड़ों का हाल गोविन्द राव पन्त को मालूम हुआ तब उन्होंने उत्तर के जिलों की रक्षा करना बहुत महत्वपूर्ण कार्य समझा। इसी उद्देश्य से वे सागर को छोड़कर कालपी में रहने लगे। सागर में गोविन्द राव पन्त की ओर से उनके दामाद विसाजी गोविन्द चांदोरकर राज्य कार्य देखने लगे। गोविन्द राव पन्त के पुत्र गंगाधर गोविन्द और बालाजी गोविन्द भी अपने पिता के साथ कालपी चले गए।

संवत् 1818 के युद्ध में मराठों का अधः पतन हुआ। इस युद्ध का हाल सुनते ही नाना साहब को इतना शोक हुआ कि उनकी मृत्यु उसी शोक के कारण हुई। गोविन्द पंत की मृत्यु के पश्चात्

उनके पुत्र बालाजी गोविन्द और गंगाधर गोविन्द ने बुन्देलखण्ड का काम कुछ समय के लिए संभाला। जालौन और कालपी गंगाधर गोविन्द के अधिकार में कर दिए थे।

बुन्देलखण्ड के सब बुन्देले राजा मराठों को अब तक चौथ देते आए थे परन्तु पानीपत के युद्ध के पश्चात् उन्होंने चौथ देना बन्द कर दिया।[49] बुन्देलों और मराठों में जैसा प्रेम महाराज छत्रसाल के समय में था वैसा अब न रहा। मराठों ने धन एकत्र करना ही अपना उद्देश्य समझा और मराठे लोग बुन्देले राजवंश के कुमारों के झगड़ों में सहायता दे उनसे राज्य लेकर अपना अधिकार बढ़ाते रहे। बुन्देले और मराठा दोनों ही आपसी झगड़ों के कारण बलहीन हो गए और बुन्देलों के अद्वितीय गुण, रणचातुर्य और रणविक्रम आपसी कलहों के कारण इन्हें कोई लाभ न पहुँचा सके।

गोसाईं लोगों के आक्रमण

जैतपुर के राजा पहाड़सिंह ने अपने वंशजों का भावी झगड़ा मिटाने के लिए अपने राज्य के तीन भाग कर दिए जिसमें एक गुमान सिंह को दूसरा खुमान सिंह को और तीसरा गज सिंह को मिला। गुमान सिंह का राज्य बाँदा और अजयगढ़ में, खुमान सिंह का चरखारी में और गजसिंह का जैतपुर में हुआ।[50]

बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करने का विचार हिम्मत बहादुर गोसाईं का पहले से ही था।[51] शुजाउद्दौला[52] ने हिम्मत बहादुर को इस कार्य में पूरी सहायता दी और अपने सरदार करामत खाँ को हिम्मत बहादुर के साथ कर दिया।[53] इस सेना को साथ लेकर हिम्मत बहादुर ने बाँदा पर आक्रमण किया। बाँदा में सेना का संचालन नोने अर्जुन सिंह कर रहे थे। अपनी सेना तैयार करके नोने अर्जुन सिंह ने तिंदवारी नामक ग्राम के समीप हिम्मत बहादुर से युद्ध किया।[54] हिम्मत बहादुर को हराकर उसकी सेना का पीछा किया। हिम्मत बहादुर तथा करामत खाँ को यमुना तैरकर अपनी जान बचानी पड़ी।

चरखारी के राजा खुमान सिंह और उनके भाई गुमान सिंह में भी सन् 1782 में युद्ध हो गया। नोने अर्जुन सिंह की सहायता से खुमान सिंह सन् 1785 ई0 में मार डाले गए और गुमान सिंह की जीत रही।[55] यह युद्ध पनवारी नामक ग्राम के निकट हुआ।[56]

हिम्मत बहादुर ने फिर नवाब से सहायता लेकर बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया। बुन्देलखण्ड में पहले हिम्मत बहादुर ने दतिया पर चढ़ाई की। दतिया के राजा रामचन्द्र को हराकर हिम्मत बहादुर ने चौथ वसूल की।

कालपी के निकट गोसाइयों और मराठों में गहरी लड़ाई हुयी। हिम्मत बहादुर हार गया और वह अवध की ओर भागा। उसके सब सैनिक सेंधिया की सेना में भरती हो गये। मराठों ने गोसाई लोगों को संवत् 1832 के लगभग हराया।

अंग्रेजों का आक्रमण

बुन्देलखण्ड की स्थिति इस समय बड़ी सोचनीय थी। बुन्देलखण्ड के दक्षिण में गोंड़ लोगों का राज्य था। गोंड़ राज्य धीरे–धीरे छोटा होता जाता था और इस समय गोंड राजा और मराठों से भी झगड़े हो रहे थे। पेशवा ने महाराजशाह पर आक्रमण करके उसे हरा दिया और महाराजशाह युद्ध में मारा भी गया। महाराजशाह के पुत्र शिवराज शाह ने मराठों से सुलह कर ली और मराठों को चार लाख रूपए सालाना मिलने भी लगे। यह रकम चौथ के रूप में सागर वालों को दी जाती थी।

पन्ना राज्य में भी आपसी कलह मची हुयी थी। राजा हिन्दूपत की मृत्यु संवत् 1834 (सन् 1776) में हुयी।[57] इनके बड़े पुत्र सरमेद सिंह को राज्य न दिया गया परन्तु छोटे पुत्र अनिरूद्ध

सिंह को राज्य मिला।[58] पन्ना राज्य में इस समय दो दीवान थे। इन दोनों में राजा अनिरूद्ध सिंह बेनी हजूरी का पक्ष लेते थे और दूसरे दीवान कायम जी चौबे की कुछ न चल पाती थी इसलिए कायम जी चौबे भी सरमेद सिंह को उसकाने का प्रयत्न कर रहे थे। कई राजा लोग भी सरमेद सिंह की सहायता के लिए तैयार थे।[59] सारा बुन्देलखण्ड इस पन्ना राज्य सम्बन्धी झगड़ों में लगा हुआ था। इसी समय अंग्रेजों ने इस झगड़े से फायदा उठाया।

राघोबा को अंग्रेजों ने सहायता देने के लिए सेना भेजने का निश्चय कर लिया। फौज कलकत्ता से भेजी जाने वाली थी, परन्तु अंग्रेजों को मध्य भारत का हाल मालूम था इसलिए उन्होंने अपनी सेना मध्य भारत से भेजने का निश्चय किया। अवध के सूबेदार अंग्रेजों के मित्र थे इसलिए अंग्रेजों की सेना यहाँ तक आसानी से आ सकती थी। अंग्रेज लोग किसी प्रकार कालपी पर अपना अधिकार कर लेना चाहते थे इसलिए अपनी सेना मध्य भारत होती हुयी भेजी थी। कालपी एक बड़ा प्रधान नगर था, जिसके अधिकार में यह नगर आ जाता था। अंग्रेज लोग कालपी को मध्य भारत की कुंजी समझते थे। उन्हें कालपी पर चढ़ाई करने का बहाना यही था कि वे राघोबा पेशवा की सहायता को जाना चाहते थे। बुन्देलखण्ड के मराठे राघोबा के विरुद्ध थे और उन्होंने अंग्रेजों की गति रोकने का निश्चय कर लिया था। कालपी, जालौन और कोंच के प्रबन्ध की देख–रेख इस समय गंगाधर गोविन्द करते थे।

कलकत्ते की सेना जो मध्य भारत की ओर रवाना हुयी उसके नायक कर्नल वेलेस्ली थे। इन्होंने गंगाधर गोविन्द से मध्य भारत होते हुए जाने की अनुमति माँगी पर गंगाधर गोविन्द ने अनुमति न दी। कर्नल वेलेस्ली ने बुन्देलखण्ड में घुसने का निश्चय कर ही लिया था और उन्होंने संवत् 1835 में कालपी पर आक्रमण कर दिया।[60] कालपी के समीप मराठों से अंग्रेजों ने युद्ध किया। अंग्रेजों ने मराठों को हराकर कालपी पर अधिकार कर लिया, परन्तु मराठों ने धैर्य न छोड़ा और उन्होंने अंग्रेजी सेना को कालपी से आगे बढ़ने न दिया। चार माह तक अंग्रेज कालपी में रहे और आगे न बढ़ सकें।

उस समय अंग्रेजों का गवर्नर वारेन हेस्टिंग्ज बड़ा कूटनीतिज्ञ था। उसने नागपुर के भोंसलें से एक गुप्त सन्धि कर ली थी जिसके अनुसार भोंसले ने अंग्रेजों की सेना को न रोकने का वचन दिया था। भोपाल के नवाब को भी अंग्रेजों ने मिला लिया था। इसलिए अंग्रेजों को डर केवल यमुना से विन्ध्यगिरि तक का ही था, क्योंकि इस भाग पर ही गंगाधर गोविन्द का अधिकार था। गंगाधर गोविन्द के राज्य से निकलना अंग्रेजों को असम्भव सा लगने लगा। तभी वेलेस्ली के एक सहायक सेनापति गॉडर्ड ने कायम जी चौबे को मिलाया। कायम जी चौबे को आशा दी गई कि अंग्रेज लोग तुम्हारी सहायता करेंगे। विश्वास में आकर कायम जी ने केन नदी के किनारे से बुन्देलखण्ड से होते हुए जाने का मार्ग दे दिया। यह सेना कर्नल गॉडर्ड के साथ मालथौन, खिमलासा, भिलसा और हुशंगाबाद होती हुयी दक्षिण में पहुँची।

बुन्देलखण्ड से अंग्रेजों के निकलने से मराठों की व्यवस्था शिथिल हो गई, परन्तु मराठों ने अंग्रेजों के चले जाने पर कालपी पर फिर अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने कायम जी चौबे को सहायता देने का वादा किया था, परन्तु कायम जी चौबे और बेनी हजूरी में जो युद्ध हुआ उसमें अंग्रेजों ने कोई सहायता न की थी।

कायम जी चौबे ने सरमेद सिंह का पक्ष लिया। बाँदा के राजा गुमान सिंह ने अपने प्रसिद्ध सेनापति नोने अर्जुन सिंह को सरमेद सिंह की सहायता को भेजा। यह युद्ध इतना घोर युद्ध हुआ कि इसे कई विद्वानों ने *'बुन्देलखण्ड का महाभारत'* की संज्ञा दी। पन्ना राज्य की सेना का

नायक बेनी हजूरी था। बेनी हजूरी और नोने अर्जुन सिंह का युद्ध गठेवरा के निकट संवत् 1840 में हुआ। इस युद्ध में कई वीर मारे गए। इस युद्ध के कारण सारा बुन्देलखण्ड वीरों से खाली हो गया। नोने अर्जुन सिंह बड़ी वीरता से लड़े। उनके शरीर में 18 घाव लगे थे। अन्त में नोने अर्जुन सिंह की विजय हुयी। बेनी हजूरी युद्ध में मारा गया। पन्ना का राज्य सरमेद सिंह को मिला।[61]

अतः पूर्वी बुन्देलखण्ड के छत्रसाली राज्य के दोनों भागों, पन्ना और जैतपुर में आंतरिक कलह से विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो गयी थी और जैसा कि सर यदुनाथ सरकार का कथन है, "दोनों वंशों के समीप के चचेरे भाइयों के आपसी झगड़े आपस में बुरी तरह उलझ गए और उन के भँवर में सभी अन्य बुन्देला राजे–रजवाड़े फँस गए।"[62]

गोंड राज्य का पतन

अंग्रेजों से कालपी वापस लेने के लिए जिस समय अंग्रेजों और मराठों में युद्ध हो रहा था और सागर की सेना कालपी गई उस समय गोंड लोगों ने मराठों से बदला लेने का अच्छा अवसर सोचा। नरहरशाह और उनका मंत्री गंगागिर ये दोनों मराठों से पहले से ही नाराज थे।

मराठों की ओर से सागर का प्रबन्ध विसाजी गोविन्द कर रहे थे। इन्होंने एक बड़ी भारी सेना के साथ चढ़ाई कर गढ़ा–मंडला का इलाका नरहरशाह से छीन लिया था। संवत् 1839 में विसाजी गोविन्द जबलपुर में ही थे। नरहरशाह गोंड़ ने सात हजार सैनिकों की सेना लेकर मराठों पर हमला किया। गंगागिर ने विसाजी गोविन्द को गढ़ा के निकट हरा दिया। हारकर विसाजी गोविन्द जबलपुर की ओर भागे। अन्त में गोंड़ लोगों ने इन्हें घेरकर मार डाला।

इस विजय से गोंड़ लोगों का मन खूब बढ़ गया। इन्होंने मराठों के किलों को लूटना आरम्भ कर दिया। दमोह जिले का तेजगढ़ का किला गोंड़ लोगों ने अपने अधिकार में कर लिया, फिर वे लोग जबलपुर की ओर वापिस गए और मराठों की जो सेना जबलपुर में रह गयी थी उसे उन्होंने वहाँ से मार भगाया।

गोंड़ लोगों से लड़ने के लिए मराठों ने अपने सरदार बापू जी नारायण को एक बड़ी सेना के साथ चौरागढ़ की ओर भेजा। गोंड़ लोगों ने भी अपनी सेना मराठों से लड़ने के लिए चौरागढ़ भेजी, मराठों ने गोंड़ लोगों की बड़ी सेना का सामना करना ठीक न समझा। वे चौरागढ़ को छोड़कर बलेह की ओर आ गए। जबलपुर से मराठों की जिस सेना को गोंड़ लोगों ने भगा दिया था उसे साथ लेकर विसाजी गोविन्द के दीवान अन्ताजीराम खांडेकर दमोह पहुँचे और मराठों की एक दूसरी सेना केशव महादेव चांदोरकर नामक सरदार के साथ मराठों की सहायता के लिए पहुँच गई फिर मराठों से और गौंड़ लोगों से तेजगढ़ के समीप युद्ध हुआ और मराठों की जीत हुई। तेजगढ़ का किला मराठों के अधिकार में आ गया और गोंड़ राजा नरहरशाह अपनी सेना लेकर चौरागढ़ की ओर भाग गया।

जिस समय यह युद्ध हो रहा था उस समय बालाजी गोविन्द कालपी में थे। उन्होंने सागर में अपने पुत्र रघुनाथ राव उर्फ आबा साहब को नियुक्त कर दिया। आबा साहब ने हटा, तेजगढ़ इत्यादि किलों पर उचित सेना रखकर सब राज्य–व्यवस्था देखी। और फिर अपनी सब सेना लेकर ये गोंड़ लोगों से लड़ने जबलपुर की ओर चले। जबलपुर में इन्हें कोई युद्ध न करना पड़ा और ये अपनी सेना लेते हुए मंडला पहुँचे। मोरो विश्वनाथ नामक मराठे सरदार भी यहाँ सहायता के लिए आ पहुँचे। आबा साहब ने मंडला की गोंड सेना को भगाकर मंडला पर अधिकार कर लिया। फिर वे जबलपुर आए और पाटन के निकट मोरे विश्वनाथ को जबलपुर का सूबेदार नियुक्त किया। गोंड राजा नरहरशाह इस समय अपनी सेना लेकर चौरागढ़ पहुँचें। तेजगढ़ से भी कुछ सेना यहाँ

सहायता के लिए आ पहुँची। चौरागढ़ पर गोंड लोगों की सेना बिल्कुल हरा दी गई और राजा नरहरशाह, दीवान गंगागिर कैद कर लिए गए। इन दोनों को आबा साहब ने खुरई के किले में रखा, परन्तु कुछ दिनों के बाद गंगागिर हाथी के पैर से बँधवाकर मरवा डाला गया।

आबा साहब को गोंड राज्य से लूट में बहुत–सी बहुमूल्य वस्तुएँ मिलीं थी। इनकी और मोरोपंत की वीरता से मराठों ने गोंड राज्य पर भी अपना अधिकार कर लिया।

अली बहादुर की नवाबी

बुन्देलखण्ड में राजाओं का प्रबन्ध ठीक न होने से जागीरदार स्वतन्त्र राजा बनते जा रहे थे। सोनेशाह पवॉर पन्ना के राजा सरमेद सिंह के जागीरदार थे। पन्ना नरेश ने प्रसन्न होकर इन्हें छत्रपुर की जागीर दी थी। सोनेशाह धीरे–धीरे अपने जागीर के स्वतन्त्र राजा बन गए।[63] वीरसिंह भी, जिन्हें गुमान सिंह ने बिजावर की जागीर दी थी, अब स्वतन्त्र राजा बन गए। पृथ्वीराज को शाहगढ़ और गढ़ाकोटा का राज्य मराठों की सहायता से मिला था। पृथ्वीराज के तीन पुत्र थे, किसुनजू, नारायण जू और हरीसिंह। पृथ्वीसिंह के मरने पर किसुन जू राजा हुए, परन्तु शीघ्र ही इनकी मृत्यु हो गयी। किसुनजू के पश्चात् उनके भाई हरीसिंह संवत् 1829 में राजा हुए। हरीसिंह से प्रजा बहुत सन्तुष्ट थी क्योंकि इनका प्रबन्ध बहुत ही उत्तम था। इनकी भी मृत्यु काशी में संवत् 1842 में हुआ। इनके पश्चात् इनके पुत्र मर्दन सिंह गद्दी पर बैठे।[64] मर्दन सिंह ने राज–प्रबन्ध में बहुत ही उन्नति की। ये महलों के बनवाने के बड़े शौकीन थे। गढ़ा–कोटा के निकट इनके बनावाये कई मकान पाये जाते हैं। गढ़ा–कोटा में रहस अर्थात् चौपायों का बड़ा भारी मेला इनके समय में लगता था जो आज भी लगता है।

मर्दनसिंह को मराठों का हस्तक्षेप बिल्कुल पसन्द नहीं था। अंग्रेजों से युद्ध के कारण मराठों की शक्ति क्षीण हो गयी तब मर्दन सिंह ने चौथ देना बन्द कर दिया। सागर के आबा साहब ने मर्दन सिंह को फिर से अपने अधिकार में करने के लिए सेना भेजी। मर्दन सिंह का दीवान जालम सिंह ने अपनी यथेष्ट सेना लेकर आबा साहब की सेना को गढ़ाकोटा के निकट हरा दिया। पुनः आबा साहब युद्ध क्षेत्र में स्वयं आए, परन्तु इस बार मर्दन सिंह ने नागा लोगों की सहायता से आबा साहब को हरा दिया। जिससे आबा साहब को वापिस जाना पड़ा और मर्दन सिंह का राज्य मराठों से स्वतन्त्र हो गया।[65] अन्य बुन्देले राजाओं ने भी मर्दन सिंह का अनुकरण कर मराठों को चौथ देना बन्द कर दिया। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड से मराठों की सत्ता उठने लगी। संकट के समय मराठों ने पूना से सहायता माँगी। पूना से सहायता के लिए बड़ी भारी सेना भेजी गई। इस सेना का नायक अलीबहादुर था।

अलीबहादुर बाजीराव पेशवा के वंश का था। जिस समय बाजीराव पेशवा को महाराजा छत्रसाल ने अपने राज्य का तृतीयांश दिया उस समय बाजीराव के साथ पन्ना दरबार की वेश्या की पुत्री मस्तानी[66] पेशवा के साथ चली गई। मस्तानी के गर्भ से बाजीराव पेशवा प्रथम का एक पुत्र शमशेर बहादुर प्रथम का जन्म सन् 1734[67] हुआ। शमशेर बहादुर प्रथम ने पानीपत के युद्ध में सेनानायक का काम किया था। शमशेर बहादुर प्रथम के पुत्र का नाम अली बहादुर प्रथम था। यही अलीबहादुर पूना से मराठों की सहायता के लिए बुन्देलखण्ड में भेजा गया।[68] पानीपत के युद्ध में शमशेर बहादुर की सन् 1761 में मृत्यु हो गयी।[69]

अलीबहादुर प्रथम संवत् 1846 में बुन्देलखण्ड में पहुँचा। अलीबहादुर ने पहले हिम्मत बहादुर से मित्रता की। हिम्मत बहादुर ने लालच में आकर सेंधिया की नौकरी छोड़ दी और अली बहादुर प्रथम को सहायता देने का वचन दिया। अली बहादुर प्रथम ने हिम्मत बहादुर को देश का कुछ भाग

देने का वचन दिया और हिम्मत बहादुर ने अली बहादुर प्रथम को बाँदा का नवाब बना देने की प्रतिज्ञा की।[70] बाँदा में इस समय बखत सिंह का राज्य था। गुमान सिंह के कोई पुत्र नहीं था इसलिए गुमान सिंह ने अपने सम्बन्धी दुर्गा सिंह के पुत्र बखत सिंह को गोद लिया था। बखत सिंह की ओर से राज्य कार्य इनके दीवान और सेनापति नोने अर्जुन सिंह देखते थे।[71] नोने अर्जुन सिंह गुमान सिंह के बड़े विश्वासी नौकर थे। इनकी योग्यता बुन्देलखण्ड में विख्यात थी। बखत सिंह छोटे थे इसलिए अर्जुन सिंह उन्हें लेकर अजयगढ़ में रहने लगे। अली बहादुर प्रथम और हिम्मत बहादुर ने अजयगढ़ पर आक्रमण कर दिया। नोने अर्जुन सिंह ने हिम्मत बहादुर से युद्ध किया। यह युद्ध अजयगढ़ और बनगाँव के बीच मैदान में हुआ। इस युद्ध में अर्जुन सिंह मारे गए और हिम्मत बहादुर की जीत हुयी।[72] यह युद्ध विक्रम संवत् 1849 वैशाख बदी 12 बुधवार (18.04.1792) को हुआ था। युद्ध के पश्चात् बाँदा पर अलीबहादुर प्रथम का अधिकार हो गया।[73]

अर्जुन सिंह सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के वीर पुरूष गिने जाते थे, परन्तु इनके पास अधिक सेना न होने से इनकी हार हुयी। अर्जुन सिंह देश और जाति के बड़े प्रेमी थे। अर्जुन सिंह सदा ही सच्चे स्वामिभक्त बने रहे। अर्जुन सिंह की हार के पश्चात् अली बहादुर प्रथम और हिम्मत बहादुर का डर सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में हो गया। सन् 1793 में चरखारी और बिजावर के राजा अली बहादुर प्रथम के अधीन हो गए।[74] वे इन राज्यों के राजा बने रहे परन्तु अलीबहादुर प्रथम को चौथ देने लगे। इस प्रकार अलीबहादुर प्रथम ने छत्रपुर और पन्ना के राजा को अपने अधिकार में कर लिया।[75] बखत सिंह ने अपनी जीविका का कोई उपाय न देख अली बहादुर प्रथम के यहाँ नौकरी कर ली।[76] अजयगढ़ का राज्य फिर अंग्रेजों ने बखत सिंह को दिया।

अली बहादुर प्रथम बाँदा में रहने लगा और उसने अपनी राजधानी वहीं बनायी। अली बहादुर प्रथम को पेशवा से सदा सहायता मिलती रही।[77] इस तरह पेशवा का अधिकार फिर से बुन्देलखण्ड के राज्यों पर अली बहादुर प्रथम के द्वारा हो गया।

हिम्मत बहादुर की लड़ाइयाँ

कालिंजर का किला कायम जी चौबे के पुत्र रामकिशन के अधिकार में था।[78] इसने अलीबहादुर प्रथम की अधीनता स्वीकार न की। अब कालिंजर को अपने अधिकार में करने के लिए अली बहादुर प्रथम ने हिम्मत बहादुर से सलाह ली। कालिंजर का किला ऊँचे पहाड़ पर है और अत्यन्त ही दृढ़ बना हुआ है। इसको लेने के लिए हिम्मत बहादुर ने बड़ी भारी सेना तैयार की और किले पर आक्रमण किया परन्तु किला दुर्भेद्य होने से वह किसी प्रकार हिम्मत बहादुर के अधिकार में न आ सका। हिम्मत बहादुर और अली बहादुर दोनों ने प्रयत्न न छोड़ा और किले को जीतने के लिए ये लोग लड़ते ही रहे।[79] युद्ध के समय 28 अगस्त सन् 1802, (संवत् 1859) में अली बहादुर प्रथम की मृत्यु हो गयी।[80] उसके मरने पर भी हिम्मत बहादुर ने कालिंजर लेने का प्रयत्न न छोड़ा। हिम्मत बहादुर की ओर से सबसुखराम सेनापति थे।

अलीबहादुर प्रथम के दो पुत्र थे, शमशेर बहादुर द्वितीय और जुल्फिकार अली। अली बहादुर प्रथम के मृत्यु उपरान्त जुल्फिकार अली को सन् 1850 में नवाब बना दिया गया।[81] हिम्मत बहादुर ने बाँदा के नवाब को सहायता देकर बुन्देलखण्ड का बहुत सा भाग बाँदा के नवाब के अधिकार में कर दिया था। हिम्मत बहादुर ने देखा कि नवाब से अनबन होने के कारण मुझे कोई लाभ न पहुँच सकेगा इसलिए उसने अंग्रेजों से सम्बन्ध रखना आरम्भ कर दिया।[82] विक्रम संवत् 1859 में मराठों और अंग्रेजों के बीच बसीन नामक नगर में एक सन्धि हुयी थी जिसके अनुसार बाजीराव पेशवा हुआ और उसने अंग्रेजों का आधिपत्य स्वीकार किया, परन्तु इस सन्धि से सब मराठे सरदार असन्तुष्ट

थे। जिस समय हिम्मत बहादुर ने अंग्रेजों से मेल करने की बातचीत की उस समय अंग्रेज बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि उन्हें हिम्मत बहादुर की सहायता से मराठों को दबाने का मौका मिल गया। हिम्मत बहादुर की वीरता सम्पूर्ण भारत वर्ष में प्रसिद्ध थी। बुन्देलखण्ड के प्रत्येक भाग का उसे पूरा ज्ञान था। अतः अंग्रेजों को वह बहुत सहायता पहुँचा सकता था। अंग्रेजों ने हिम्मत बहादुर को बुन्देलखण्ड में एक लाख की जागीर देने की प्रतिज्ञा की। हिम्मत बहादुर गोसाईं ने शाहपुर में 4 सितम्बर सन् 1803 में अंग्रेजों से सन्धि की।[83]

हिम्मत बहादुर और अंग्रेजों की सन्धि का हाल सुनते ही शमशेर ने पेशवा से सहायता माँगी। इस समय सेंधिया, होल्कर आदि सब मराठे सरदार अंग्रेजों के विरुद्ध हो रहे थे। जालौन में गोविन्द राव गंगाधर उर्फ नाना साहब सूबेदार थे। इन्होंने शमशेर बहादुर की सहायता के लिए अपनी सेना भेजी।

हिम्मत बहादुर के पास भी बहुत बड़ी सेना थी। इस सेना का खर्च हिम्मत बहादुर को अंग्रेजों से मिल रहा था। अंग्रेजों का एक सेनापति कर्नल पोल भी अपनी सेना लिए हुए हिम्मत बहादुर के साथ था। पहला युद्ध केन नदी के किनारे *"बरा"* नामक ग्राम के पास हुआ।[84] शमशेर बहादुर इस युद्ध में हार गया और उसे भागना पड़ा। शमशेर बहादुर फिर भौरागढ़ पहुँचा परन्तु यहाँ पर भी हिम्मत बहादुर ने उसे हराया। इसके पश्चात् कैशा नामक ग्राम में तीसरी लड़ाई हुयी। यहाँ पर भी शमशेर बहादुर हार गया और अंग्रेजों ने उसका पीछा किया।[85] शमशेर बहादुर ने अंग्रेजों से युद्ध करने में कोई लाभ न देखकर सन्धि कर ली। यह सन्धि अंग्रेजों की ओर से कैप्टेन वेली और शमशेर बहादुर के बीच में हुयी। सन्धि के अनुसार शमशेर बहादुर का सब प्रदेश अंग्रेजों को सौंप दिया गया और शमशेर बहादुर को चार लाख रूपयों की जागीर दी गयी। यह सन्धि संवत् 1861 (सन् 1804) में हुयी।[86]

इस युद्ध में अंग्रेजों के विजय का कारण हिम्मत बहादुर ही था। हिम्मत बहादुर बड़ा ही शूर सैनिक था परन्तु अपने स्वार्थ के लिए उसने जो कुछ सामने देखा, बिना परिणाम सोचे कर डाला। हिम्मत बहादुर को अंग्रेजों से शर्तों के अनुसार मौदहा, छौन, हमीरपुर और दोसा के परगने मिलें। हिम्मत बहादुर इस समय बहुत ही वृद्ध हो गया था और थोड़े ही दिनों के बाद विक्रम संवत् 1861 में उसकी मृत्यु हो गयी। हिम्मत बहादुर के मरने पर उसका पुत्र नरिन्दगिर हिम्मत बहादुर की जागीरों का अधिकारी हुआ। विक्रम संवत् 1897 में नरिन्दगिर की मृत्यु हो गयी और अंग्रेजों ने उसकी जागीर जब्त कर ली और इनके वंशजों को अंग्रेजों की ओर से पेंशन दी गयी।

अंग्रेजों ने शमशेर बहादुर को चार लाख रूपयों की पेंशन देकर बाँदा को अपने अधिकार में कर लिया था। 31 अगस्त सन् 1823 में शमशेर बहादुर द्वितीय मर गया।[87] शमशेर बहादुर के बाद उसके भाई जुल्फिकार अली और उसके लड़के अली बहादुर द्वितीय को चार लाख की पेंशन मिली। ये सब लोग नवाब बाँदा कहलाते रहे।[88] अली बहादुर द्वितीय की मृत्यु सन् 1873 में हुयी।[89]

अली बहादुर प्रथम ने बुन्देलखण्ड के जिन राजाओं को अपने अधिकार में कर लिया था वे सब अंग्रेजों के अधिकार में हो गए।[90] ओरछा, दतिया और समथर को छोड़कर लगभग सब राजा अंग्रेजों के आधीन हो गए। अंग्रेजों ने इन राजाओं को अपने–अपने राज्य का अधिकारी बना रहने दिया और उन्हें सनदें दी। इन सनदों को पाने पर ये सब सदा अंग्रेजों के भक्त बने रहे।

फरवरी 1858 ई0 में क्रांति के समय यहाँ पर निर्मित चर्च को विध्वंस किया गया और नवाब अलीबहादुर द्वितीय एक महत्वपूर्ण स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में ख्याति अर्जित की और केन नदी

के तट पर भूरागढ़ किले का किलेबन्दी करवाया और चरखारी पर आक्रमण के समय तात्या टोपे की सहायता की।[91]

अंग्रेजों से सन्धियाँ

अंग्रेजों और पेशवा से 1 जनवरी सन् 1802 (विक्रम संवत् 1859) में बेसीन में सन्धि हुयी थी। इस सन्धि से अंग्रेजों को अन्यान्य लाभों के सिवा इन्हें बुन्देलखण्ड में 36,16,000 की रियासत अनायास मिल गयी। और 31 दिसम्बर सन् 1802 को बाजीराव द्वितीय से सन्धि पत्र पर दस्तखत करा लिए गए।[92] और बाजीराव द्वितीय की असहाय स्थिति का लाभ उठाकर बहुत सी मुख्य शर्ते रखीं[93] बेसीन की इस सन्धि से मराठा सरदार बहुत उत्तेजित हुए और अगस्त सन् 1803 में द्वितीय आंग्ल–मराठा युद्ध शुरू हो गया।[94] 16 दिसम्बर 1803 को पेशवा बाजीराव द्वितीय से बसीन की एक और पूरक सन्धि की।[95] बेसीन की पूरक सन्धि ने अंग्रेजों द्वारा अधिकृत बुन्देलखण्ड के प्रदेशों पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन को मान्यता दे दी। अब कैप्टन वेली को बुन्देलखण्ड में अंग्रेज गवर्नर जनरल का एजेण्ट नियुक्त कर दिया। इधर नवाब शमशेर बहादुर की स्थिति बहुत नाजुक हो ही गयी थी इसलिए वेली के बुन्देलखण्ड पहुँचते ही शमशेर बहादुर ने जनवरी 1804 में उस के पास अपना वकील भेजकर संधिवार्ता शुरू कर दी, जिसके फलस्वरूप वेली से शमशेर बहादुर ने भी अंग्रेजों से मिलकर रहना उचित समझा और 12 जनवरी सन् 1804 (विक्रम संवत् 1861) में सन्धि कर ली।[96] इस समय बुन्देलखण्ड में छोटी–बड़ी कुल 43 रियासतें और जागीरें थीं। इनमें से 12 (जालौन, झाँसी, जैतपुर, खुद्दी, चिरगाँव, पुरवा, चौबियाने की जागीरें, तरौंहा, विजयराघोगढ़, शाहगढ़ और बानपुर)[97] तो सरकारी राज्य में मिला ली गयी; शेष अधिकारियों में से 3 के साथ सन्धियां हुयी; बाकी लोगों को सनदें दी गयीं।

शमशेर बहादुर इस प्रस्ताव को स्वीकार कर 18 जनवरी को अंग्रेजी छावनी में चला आया और वेली के प्रस्तावों को एक औपचारिक समझौते का रूप दे दिया गया, जिसकी पुष्टि गवर्नर जनरल वेलेजली ने 2 फरवरी 1804 को कर दी।[98] इस समझौते ने तथ्यतः बाँदा की नवाबी समाप्त कर दी। कहने को तो शमशेर बहादुर और उसके उत्तराधिकारी बाँदा के नवाब कहे जाते रहे, पर प्रस्ताव में वे अब अंग्रेजों के 'पेन्शनर' मात्र थे। शमशेर बहादुर ने चार लाख की वार्षिक पेंशन के बदले में अपने सभी दावे छोड़ दिए। उसे बाँदा में अपने महलों में रहने दिया गया और बाँदा के नवाब की उपाधि भी धारण किए रहने की अनुमति दे दी गयी।

सन् 1805 में शमशेर बहादुर को पुराने बाँदा में बसने के लिए बड़ा इलाका दे दिया गया। यह इलाका बाँदा की वर्तमान कोतवाली से कर्वी मार्ग दक्षिण में बाग–बगीचों तक फैला हुआ था। बाँदा के इस भाग को तब लश्कर कहा जाने लगा था।[99] शमशेर बहादुर ने यहीं अपनी नवाबी की आन–बान बनाए रखने के लिए यूरोपियन शैली पर अपना महल बनवाया और शरीर–रक्षकों की एक छोटी–सी फौज रखी, जिसमें दो सवार सैन्यदल, एक गोलांदाजों की कम्पनी, आधी कम्पनी बन्दूकची और तीन पैदल कम्पनियाँ थीं। इस पूरी सेना की कमान उसने अपनी सेवा में नियुक्त कैप्टेन बुरैल (Burell) को सौंप रखी थी। इसका उपयोग मुख्यतः नवाब के रौब–दौब का प्रदर्शन करने के लिए अथवा यदा–कदा आस–पास के बागियों को अंग्रेज अधिकारियों के इशारे पर दमन करने के लिए किया जाता था।[100]

इस समय झाँसी में रघुनाथराव नेवालकर के छोटे भाई शिवराज भाऊ सूबेदार थे। इनसे भी 18 नवम्बर सन् 1803 (विक्रम संवत् 1860) में सन्धि हो गई।[101] इस सन्धि के अनुसार ये अंग्रेजों के मित्र हो गए थे। इसी समय कालपी के सूबेदार गोविन्द गंगाधर और शिवराव भाऊ में अनबन

प्रदर्शन करने के लिए अथवा यदा–कदा आस–पास के बागियों को अंग्रेज अधिकारियों के इशारे पर दमन करने के लिए किया जाता था।[100]

इस समय झाँसी में रघुनाथराव नेवालकर के छोटे भाई शिवराज भाऊ सूबेदार थे। इनसे भी 18 नवम्बर सन् 1803 (विक्रम संवत् 1860) में सन्धि हो गई।[101] इस सन्धि के अनुसार ये अंग्रेजों के मित्र हो गए थे। इसी समय कालपी के सूबेदार गोविन्द गंगाधर और शिवराव भाऊ में अनबन हो गयी और गोविन्द गंगाधर अंग्रेजों के विरुद्ध के लिए अकेले हो गए इसलिए गोविन्द गंगाधर ने भी 23 अक्टूबर सन् 1806 (विक्रम संवत् 1863) में सन्धि कर ली।[102] इस सन्धि में अंग्रेजों की ओर से जॉन वेली और गोविन्द गंगाधर की ओर से भास्कर राव अन्ना ने दस्तखत किए। इस सन्धि की शर्तें निम्नलिखित थीं –

1. नाना साहब और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार एक दूसरे से मित्रता का बर्ताव करे और एक दूसरे के दुश्मनों को कभी सहायता न दें।
2. नाना साहब कालपी और रायपुर का इलाका हमेशा के लिए अंग्रेजों को दें।
3. यदि अंग्रेजों का कोई अपराधी नाना साहब के राज्य में आवे तो नाना साहब उसे अंग्रेजों के हवाले करें।
4. बेतवा नदी के पूर्व का भाग और कोंच जिला नाना साहब के अधिकार में रहे और इस प्रदेश में से जो अंग्रेजी फौज निकले उसकी सहायता नाना साहब करें।
5. नाना साहब पर अंग्रेजों का कोई दबाव न रहे और कोई हक उपर्युक्त शर्तों के सिवा अंग्रेज लोग नाना साहब से न माँगे।
6. नाना साहब के विरुद्ध किसी भी शिकायत का फैसला अंग्रेज न करें।
7. पन्ना के हीरों का तीसरा भाग नाना साहब पूर्ववत् लेते रहें। उसमें अंग्रेज कुछ हस्तक्षेप न करें। यदि हीरों की खान का कोई भाग अंग्रेजों के अधिकार में आ जावे तो भी हीरों की आमदनी का तीसरा भाग नाना साहब को मिलता रहे।
8. नाना साहब की जो निजी सम्पत्ति अर्थात् बाग, मकान या हवेलियाँ कालपी और बनारस में हो उस पर अंग्रेज अधिकार न करें।
9. नाना साहब के बुन्देलखण्ड के राज्य प्रबन्ध में अंग्रेज हस्तक्षेप न करें।

उपर्युक्त सन्धि के अनुसार जालौन नाना साहब के अधिकार में रहा। इन सन्धियों के अतिरिक्त ओरछा, पन्ना, अजयगढ़, चरखारी, जैतपुर, बिजावर, छतरपुर, कालिंजर, पालदेव, तरॉव, भैसोंदा, चौबेपुर–पहरा, कामता–रजोला, मैहर, गौरिहार, बरौंडा या पाथर–कछार, जस्सो, आलीपुरा, अठभैया जागीर, चिरगॉव, टोरी फतेहपुर, धुरवई, विजना, बंका–पहाड़ी, बेडी, बीहट, गरैली, खनियाधाना, नवगाँव रिबई, बावनी, लुगासी, सरीला, जिगनी आदि से भी बुन्देलखण्ड के शासकों और अंग्रेजों के बीच सन्धियाँ हुयीं।[103]

पेशवाई का अन्त और अंग्रेजों का राज्य

बुन्देलखण्ड का सम्पूर्ण मराठा राज्य पूना के पेशवाओं के हाथ में था, इसलिए जो सन्धि अंग्रेजों से पूना में पेशवाओं से होती थी उसका सीधा प्रभाव बुन्देलखण्ड में पड़ता था। अंग्रेजों के गवर्नर लार्ड मिन्टों के चले जाने पर लार्ड हेस्टिंग्ज गवर्नर हुए। लार्ड हेस्टिंग्ज और नाना गोविन्द राज के मध्य दूसरी सन्धि 1 फरवरी 1817 में हुयी।[104] इस सन्धि के अनुसार बुन्देलखण्ड के मराठे अंग्रेजों के अधीन हो गए। इस सन्धि में निम्नलिखित शर्तें थीं –

1. सन् 1806 की सन्धि की शर्तें जिनमें कोई फेरफार न हुआ हो ज्यों की त्यों रहेंगी।
2. अंग्रेज सरकार राजाओं के वारिसों के राज्य पर कायम होने पर नजराना न लेगी और नाना गोविन्द राव का और उनके वारिसों का राज्य का मालिक होना स्वीकार करेगी।
3. यदि नाना गोविन्द राव के प्रान्त पर कोई आक्रमण करेगा तो अंग्रेज उनकी सहायता करेंगे और बाहरी दुश्मन या राजा से जो सन्धि अंग्रेज करेगें उसे नाना साहब को मंजूर करना होगा।

4. नाना साहब महोबे के आस–पास का इलाका अंग्रेजों को दें।
5. नाना साहब बिना अंग्रेजों की आज्ञा के किसी बाहरी शत्रु से न लड़े और न उस पर आक्रमण करें।
6. नाना साहब सरकार अंग्रेज की आज्ञा बिना किसी राजा से सन्धि न करें।
7. मराठों और अंग्रेजों की सीमा के झगड़ों का फैसला अंग्रेजों का पॉलिटिकल सुपरिटेंडेंट करेगा। उसका फैसला नाना साहब को मानना पड़ेगा।
8. सागर के विनायक राव और जालौन के नाना साहब के बीच जो झगड़े होगें उनका फैसला अंग्रेज सरकार के कहने के अनुसार ही होगा।
10. यदि अंग्रेज सरकार की फौज को नाना साहब के राज्य में से निकलने की जरूरत होगी तो नाना साहब उसे हर प्रकार की सहायता देते रहेगें।

उपर्युक्त सन्धि के अनुसार निम्न गाँव अंग्रेजों को मिल गए – खंदेह, खुई, चॉदे, बुजुर्ग, बरदेई, जरौली, खैरार, अछरोन, बिहगा, कमा, हरयोली, फतेहपुर, रतबा, अपहोली, रेवंद, अकिहानी, बिहनी, अमरवार, चमरकथा, खरा, झरखा, लचहरा, कदार, कोदसा, खजहा, कमूखर, ऊजरहटा, अकौना, भयानी, सदोई, कॉंरधा, नूरपुर, खैरा, सरोली, कंजुला, मोई, सोंटई, सिरसई कलॉं, सिरसई खुर्द, अधारी पुरना, कुस्यारी, खरदई, जसकुर माफी, खमरिया, कलकया, जरारा, लोई, मानपुर और नकरई आदि।

अंग्रेजों ने कभी इन सन्धियों का पालन किया और कभी नहीं किया। उनका आचरण स्वार्थ पूर्ण था। जब वे देखते कि इन सन्धियों में अपना स्वार्थ पूरा नहीं होता तो सन्धि को नहीं मानते थे। जो सन्धि अंग्रेजों से हुयी थी तथा जिसका सम्बन्ध झाँसी से था उस सन्धि पत्र के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने झाँसी का राजवंश परम्परा के लिए रामचन्द्र राव को दिया यह सन्धि सन् 1817 में हुयी थी। सन् 1818 में पेशवा की दूसरी सन्धि होने के समय झाँसी रामचन्द्र राव के अधिकार में था और नाना गोविन्द राव जालौन तथा गुरसराय के अधिकारी थे।

पेशवाओं की दूसरी सन्धि के अनुसार सागर जिले का धामौनी परगना भोंसलों के अधिकार में था। यह परगना अंग्रेजों ने भोंसलों से सन् 1818 की सन्धि के समय ले लिया। गढ़ाकोटा, मालथोन, देवरी और झामर और नाहर मऊ सेंधिया को अर्जुन सिंह ने दिए थे। सन् 1818 में ये सेंधिया के अधिकार में ही थे पर सन् 1821 में ये परगने सेंधिया ने अंग्रेजों को प्रबन्ध के लिए सौंप दिए थे। दमोह अंग्रेजों के अधिकार में सागर के साथ ही आ गया था।

अतः अंग्रेजों और मराठों के मध्य जो सम्बन्ध स्थापित हुए, वे स्वार्थपूर्ण थे। इनसे अंग्रेजों को फायदा हुआ और मराठों को भारी नुकसान उठाना पड़ा। अंग्रेज लोग विश्वासघाती और अत्याचारी थे। ये लोग छोटे–छोटे राज्यों के अस्तित्व को मिटा देना चाहते थे।[105]

1857 के पूर्व बुन्देलखण्ड की स्थिति

अंग्रेज अधिकारियों द्वारा भारतीय सैनिकों को सुअर और गाय की चर्बी लगे कारतूस दिए जाने की अफवाहें तेजी से सेना में फैल गयी। ये अफवाहें निराधार नहीं थीं।[106]

जालौन के शासक नाना गोविन्द राव की मृत्यु (संवत् 1879) के पश्चात् उसके पुत्र बाला जी गोविन्द जालौन के शासक बने। बालाजी के शासन से उनकी प्रजा बहुत खुश एवं सन्तुष्ट थी किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके उत्तराधिकारियों में परस्पर संघर्ष प्रारम्भ हो गया जिसमें बाद में अंग्रेजों ने राव गोविन्द राव को अंग्रेजों ने शासक स्वीकार कर लिया। राव गोविन्द राव के अल्प वयस्क होने के कारण गोद लेने वाली माता लक्ष्मीबाई उनके राज्य का शासन देखती थी किन्तु बाद

में राज्य प्रबन्ध ठीक न होने के कारण 1838 में जालौन का प्रबन्ध अपने अधिकार में ले लिया।[107]

इसी समय गुरसराय के शासक के रूप में अंग्रेजों ने केशव राव को शासक स्वीकार किया जो सन् 1857 के विद्रोह के समय अंग्रेजों की सहायता की। 1857 की सन्धि के अनुसार वंश परम्परा के अनुसार रामचन्द्र राव को झाँसी का राज्य मिला था। निःसन्तान होने के कारण उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी विधवा पत्नी ने अपनी ननद के पुत्र कृष्णराव चान्दोरकर को गोद लिया परन्तु अंग्रेजी शासन ने उनका गोदनामा स्वीकार नहीं किया[108] अतः शिवराम रावभाऊ के दूसरे पुत्र रघुनाथ राव को झाँसी का शासक नियुक्त किया गया किन्तु उनके दुर्व्यसनी होने के कारण उनके राज्य को अंग्रेजों ने अपने अधिकार में कर लिया। बाद में 1895 संवत् में रघुनाथ राव के नियुक्ति के पश्चात् गंगाधर राव को झाँसी का राजा बनाया गया।[109] सवंत् 1910 में गंगाधर राव की मृत्यु के समय महारानी लक्ष्मी बाई की अवस्था केवल 18 वर्ष थी। 1892 ई0 में आगरा, इलाहाबाद आदि के प्रदेशों को मिलाकर अंग्रेजों ने एक अलग पश्चिमोत्तर प्रदेश जिसमें जालौन, हमीरपुर, बाँदा और सागर के जिले सम्मिलित थे।[110] 1835 ई0 के लगभग अंग्रेजों ने बुन्देलखण्ड के राजाओं के साथ सन्धियाँ की और वहाँ के प्रबन्ध की देखरेख के लिए पॉलिटिकल एजेण्ट और छावनियों में फौज रखी गयी। बुन्देलखण्ड के रियासतों में ओरछा, दतिया, समथर विशेष महत्वपूर्ण समझी जाती थी। ये राज्य अपने आन्तरिक प्रबन्ध में अंग्रेजों से स्वतन्त्र थीं।

संवत् 1898–99 में बुन्देलखण्ड के कई स्थानों पर विद्रोह हुए परन्तु इसी समय झाँसी के राजा केशव राव ने अंग्रेजों की सहायता की जिससे विद्रोह का आसानी से दमन कर दिया गया।[111]

बाँदा जनपद में क्रांति का सूत्रपात जिले के पूर्वी भाग से हुआ। आजकल यह क्षेत्र चित्रकूट जनपद में है यह क्रांति यहाँ के स्थानीय लोगों ने प्रारम्भ की। क्रांति का मुख्य कारण मालगुजारी का अन्यायपूर्ण वसूली थी। बाँदा जनपद में अन्य क्षेत्रों के क्रांतिकारी भी आ गए थे। 8 जून 1857 को इलाहाबाद सेन्ट्रल जेल से छूटकर अनेक कैदी यहाँ आ गए थे। उन्होंने मऊ तहसील के थानेदार के ऊपर हमला किया, और सरकारी सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाया। पैलानी, बबेरू, चिल्ला, आदि में भी अत्यधिक उत्पात मचाया।[112]

जब बाँदा अली बहादुर द्वितीय के आधीन हो गया तो उसने अपनी पृथक शासन व्यवस्था स्थापित की। इस समय कालिंजर दुर्ग में अनेक क्रांतिकारी छिपे हुए थे। फरवरी सन् 1858 में स्वतन्त्रता संग्राम अपने पूर्ण वेग में था। क्रांतिकारियों और अंग्रेजों का युद्ध भूरागढ़ दुर्ग में हुआ। इस युद्ध में अनेक क्रांतिकारी शहीद हुए। 17 अप्रैल 1858 में जनरल ह्विटलक क्रांतिकारियों को दबाने आया। इसके पश्चात् नवाब की सेना ने बाँदा से 13 किमी0 दूर गोयरा मुगली में अंग्रेजों से युद्ध हुआ।[113] हमीरपुर में 13 जून 1857 में क्रांति आरम्भ हुयी। इस समय यहाँ का प्रशासनिक अधिकार टी0के0 लॉयड के हाथ में था।[114]

सागर नर्मदा क्षेत्र के भूपतियों तथा सरदारों की, राजनैतिक तथा आर्थिक व्यवस्था, अंग्रेजी शासन की क्रूर प्रणाली से चरमरा गयी थी और जिसका प्रतिफल "बुन्देला विद्रोह" के रूप में सामने आया। अंग्रेजों द्वारा लगाये गये बीस वर्षीय बन्दोबस्त के कारण, जन साधारण भले ही कम लगान देने के कारण अपेक्षाकृत सुखी हो गया हो, किन्तु भूपति तथा धनिक वर्ग अपनी सम्पत्ति से बेदखल हो जाने से, अंग्रेजों के शोषण का शिकार हो चुके थे। सन् 1842 में यह असंतोष, विद्रोह का रूप ले चुका था। यह विद्रोह आग की तरह तेज गति से क्षेत्र में फैल गया। इसमें मुख्यतः सागर, दमोह, जबलपुर, नरसिंहपुर तथा होशंगाबाद के विद्रोही शामिल हुए थे। कुछ अन्य जिले जैसे, सिवनी,

बैतूल, बालाघाट, मंडला आदि वहाँ अंग्रेज सेना की उपस्थिति के कारण विद्रोह में भाग नहीं ले पाये। यह विद्रोह उत्तरी सागर से आरंभ हुआ जब नरहट के बुन्देला ठाकुरों ने, 8 अप्रैल सन् 1842 को आक्रमण कर कुछ पुलिस कर्मियों की हत्या कर दी।[115] सागर में पनप रहे विद्रोह की खबरें पहुँचने लगी थी और इस बात की आशंका थी कि जबलपुर जिले में आरंभ हो रही विद्रोही गतिविधियों की खबर शीघ्र ही, चारों तरफ फैल जायेगी।[116]

जबलपुर में, इस विद्रोह की बागडोर, हीरापुर ताल्लुक के राजा हृदयशाह के हाथों में थी, जिसे बाद में कर्नल ऐली द्वारा पाटन में गिरफ्तार कर लिया गया। उसके कुछ पत्र जो, केप्टन ब्राउन के हाथ लग गये थे, के अनुसार विद्रोह आरंभ की योजना, दशहरा पर्व पर थी। इस बीच एक और विद्रोही सरदार, हिन्दुपत (निवासी कटरा बेलखेड़ा) ने भी, 11 सितम्बर 1842 को अंग्रेजों के सामने घुटने टेक दिए। नरसिंहपुर जिलें में, मदनपुर के गौंड सरदार राजा डेलनसिंह की अगुआई में, चांवरपाठा परगना के गाँव, बम्हनी के दीवान प्राथीसिंह को छोड़कर, सभी भू स्वामी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विद्रोह में शामिल थे। यहाँ विद्रोहियों द्वारा जीते गये क्षेत्र देवरी, चांवरपाठा, महाराजपुर, सुआतला आदि में, अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के उद्देश्य से, विद्रोहियों द्वारा अपने विश्वस्त प्रहरी, पटवारी, नाजिर, सरिश्तादार आदि नियुक्त किये गये थे।[117]

राजा गजपुरा की चोरी पर, राजा हृदयशाह तथा राजा गजपुरा सिंह के नेतृत्व में, आक्रमण किया गया। विद्रोहियों का मुकाबला करने हेतु, जबलपुर से भेजी गई सैन्य टुकड़ी के विलम्ब से, गजपुरा पहुंचने पर, विद्रोही तेजगढ़ की तरफ बढ़ गये, जहाँ उन्होंने भूतपूर्व राजा तेजगढ़ को अपने साथ लेकर नरसिंहपुर, सागर, जबलपुर के नर्मदा पार क्षेत्र के, एक बड़े हिस्से पर अधिकार कर लिया किन्तु बाद में हृदयशाह तथा नरहट के, मधुकर शाह की गिरफ्तारी ने, इस विद्रोह को धक्का पहुँचाया। उन्हें सागर जिले के पीछे फाँसी दे दी गई। अंततः अप्रैल 1843 तक विद्रोह पूर्णतः दबा दिया गया। सन् 1842 में चिरगाँव के राव बखत सिंह ने अंग्रेजों के खिलाफ बगावत की, किन्तु झाँसी के तत्कालीन राजा केशवराव द्वारा अंग्रेजों की सहायता करने के फलस्वरूप, राव बखत सिंह हमीरपुर जिले के, पनवाड़ी नामक स्थान पर, अंग्रेजी फौज के हाथों मारे गये और चिरगाँव पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। बाद में बखत सिंह के पुत्र राव रघुनाथ सिंह ने, सन् 1857 की क्रांति में, अंग्रेजों का साथ दिया।[118]

इस विद्रोह की असफलता का प्रमुख कारण, जनसाधारण, कृषक वर्ग की, इस परिप्रेक्ष्य में सहज सहमति का न होना, विभिन्न बुन्देला जागीरदारों के मध्य संगठन तथा एकता की कमी, तथा अंग्रेजी सेना का अपेक्षाकृत बहुत अधिक सुसज्जित तथा संगठित होना ही कहा जायेगा। बाद में अंग्रेज प्रशासन ने भी, अपनी दमनकारी प्रकृति को स्वीकार करते हुए, पुराने अंग्रेज अधिकारियों को स्थानान्तरित कर दिया।[119]

इस विद्रोह का बहुत बुरा प्रभाव, कृषि पर पड़ा और इस क्षेत्र में जबरदस्त मंदी आ गई।[120] लार्ड एलिनबरो द्वारा मध्य प्रान्त का पुनर्गठन कर, इसे उत्तर पश्चिम प्रान्तों से अलग कर गवर्नर जनरल के एजेण्ट के, पुनः प्रभाव में रखा गया। क्षेत्र में आने वाले नये प्रशासनिक अधिकारियों में कर्नल स्लीमन प्रमुख थे, जिसके कार्यो ने असन्तुष्ट जनता तथा सरदारों दोनों को एक हद तक सन्तुष्ट कर दिया। लगभग 6 सालों तक प्रशासनिक सुधारों के बाद, इस क्षेत्र को उत्तर पश्चिम प्रान्तों से पुनः जोड़ दिये जाने तथा सम्पत्तियों के उपविभाजन से संबंधित प्रशासनिक सुधारों के फलस्वरूप, पहले से ही संपत्ति से बेदखल भूस्वामियों पर बुरा असर पड़ा। कृषि की उपज कम होने से उपजी अर्थ व्यवस्था के चरमराहट ने भी, असंतुष्ट जन समूह को, तत्कालीन बुन्देला विद्रोहियों

से पुनः जोड़ना प्रारम्भ कर दिया। उस समय नमक पर लगाये गये कर से उत्पन्न आक्रोश का ब्योरा, 1857 के आन्दोलन में, ललितपुर से गिरफ्तार किये गये एक अंग्रेज अधिकारी के बयान से मिलता है, जिसके अनुसार वर्तमान सागर जिले के बानपुर, रहली तथा शाहगढ़ क्षेत्र की जनता, नमक विभाग की घोर शत्रु हो गई थी।[121] इस क्षेत्र में पनप रहे इस असंतोष ने धीरे–धीरे उग्र रूप धारण कर लिया, तो अन्ततः 1857 के विद्रोह के रूप में, सामने आया।

अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीति की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुई निराशा तथा असंतोष, भारतीय जनमानस को लगातार उद्वेलित कर रहा था। लार्ड डलहौजी की हड़प नीति से यह बात और भी पूरी तरह से क्षेत्र में फैल चुकी थी, कि अंग्रेजी राज्य का मतलब निश्चित तौर पर तत्कालीन जन समुदाय तथा स्थानीय शासक दोनों ही के हित से बेहद विसंगतिपूर्ण है। जालौन, झाँसी, बाँदा आदि रियासतों के साथ अंग्रेज अपनी साम्राज्यवादी नीति के साथ पेश आते रहे और इन रियासतों, को अपने साम्राज्य में विलय करते रहे। फलस्वरूप अंग्रेजी शासन के अधीन राजा लगातार असंतुष्ट होते चले गये। अंग्रेजी शासन की राजस्व निर्धारण नीति, तर्कसंगत न होकर बहुत क्रूर तथा कठोर थी, जिसने कृषकों की स्थिति दयनीय बना दी थी।[122]

अंग्रेजी शासन काल में, मसीही मिशनरियों के प्रवेश तथा विस्तार ने, जनसाधारण के धार्मिक पहलु को भी उद्वेलित किया। इन मिशनरियों को, सीधे पुलिस से मदद दिए जाने तथा इनकी नियुक्ति सरकार के द्वारा किये जाने से क्षेत्र में असंतोष व्याप्त था।[123] उल्लेखनीय है कि बुन्देलखण्ड की जनता पहले से ही सन् 1829 में लार्ड विलियम बेंटिक द्वारा पूर्ण प्रतिबंधित सती प्रथा उन्मूलन को अपने धर्म में विदेशियों का हस्तक्षेप मानती थी।[124] सन् 1850 में जातीय अयोग्यता उन्मूलन कानून, जिसके अनुसार अपना धर्म परिवर्तन करने की स्थिति में अपनी पैतृक संपत्ति पर अधिकार बना रहता था, तथा सन् 1856 में विधवा विवाह कानून, जिसमें विधवाओं को पुनः विवाह करने की छूट दे दी थी आदि कानूनों ने, रूढ़िवादी हिन्दुओं की धार्मिक भावना को और भी असंतुष्ट कर, आक्रोश की आग में घी डालने का कार्य किया।

विद्रोह के कारण

झाँसी के शासक गंगाधर राव की मृत्यु का समाचार बुन्देलखण्ड के पॉलिटिकल एजेण्ट मेजर मालकम को 21 नवम्बर सन् 1853 को प्राप्त हुआ। नियमानुसार झाँसी के राजा को गोद लेने का अधिकार नहीं है इसलिए अंग्रेजों ने झाँसी का राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। झाँसी के दरबार में गंगाधर राव के दत्तक पुत्र दामोदर राव को उत्तराधिकारी बनाया गया किन्तु दत्तक पुत्र को झाँसी राज्य का अधिकार नहीं दिया जा सकता था। अतः लार्ड डलहौजी ने झाँसी राज्य को अंग्रेजी राज्य में मिलाने की अनुमति प्रदान कर दी। गंगाधर राव ने दामोदर राव को गोद लिया था परन्तु अंग्रेजों ने उनके गोदनामें को नियम विरुद्ध बताकर मानने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार झाँसी में अंग्रेजी राज्य स्थापित हो गया और रानी लक्ष्मी बाई को झाँसी का किला छोड़कर शहर में रहना पड़ा।[125]

लार्ड डलहौजी के इस नीति से बुन्देलखण्ड में असन्तोष फैल गया और अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया।[126] झाँसी में विद्रोह का नेतृत्व झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने किया।[127] इसी प्रकार सागर में सरदार शेख रमजान ने सागर, दमोह, जबलपुर में लोधी ठाकुर अंग्रेजों के विरुद्ध होकर क्रांति में भाग लिया। सन् 1858 के आरम्भ में ह्यूरोज की सेना राहतगढ़ पहुँची[128] और वहाँ के नवाब की हत्या कर राहतगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया और उसके बाद अंग्रेजों की सेना ने गढ़ाकोटा, शाहगढ़, तालबेहट और चन्देरी पर आक्रमण कर और वहाँ के विद्रोहियों को हराकर

अपना अधिकार कर लिया।[129] अन्ततः सर ह्यूरोज ने झाँसी और कालपी पर आक्रमण किया। रानी लक्ष्मीबाई ने अपने राज्य की रक्षा के लिए अंग्रेजों की सेना से संघर्ष किया और अपने पुत्र दामोदर राव को उन्होंने अपनी पीठ पर बाँधा और कालपी की ओर 30 अप्रैल सन् 1858 को भाग निकली।[130] झाँसी शहर में लाशों का ढेर लग गया और वहाँ के मन्दिर, पुस्तकालय आदि पर लूट–पाट करते हुए शहर और झाँसी के किले पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। कालपी में रानी लक्ष्मीबाई ने संघर्ष किया। अन्ततः ह्यूरोज ने कालपी पर अधिकार कर लिया। अन्त में रानी लक्ष्मीबाई ने ग्वालियर की ओर प्रस्थान किया और ग्वालियर में एक पर्णकुटी में ठहरीं और वहीं पर 18 जून सन् 1858 में उनकी मृत्यु हो गयी और रामचन्द्रराव नामक देशमुख ने रानी के शरीर को घास की ढेर में रख कर जला दिया।[131]

इस राज विद्रोह में ओरछा, दतिया, समथर के राजाओं ने अंग्रेजों का साथ दिया जिसके कारण राजविद्रोह असफल सिद्ध हुआ। 1857 की क्रांति में बुन्देलखण्ड के शासकों ने भी अन्तिम आहूति दी। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, बाँदा का नवाब अली बहादुर द्वितीय, बानपुर का बुन्देला राजा मर्दनसिंह और शाहगढ़ का राजा बख्तअली सभी ने जीवन का मोह त्याग कर इस यज्ञ में कूद पड़े और जाते–जाते बुन्देलखण्ड के इतिहास में अन्तिम स्वर्ण–पृष्ठ जोड़ गए।

इस क्रांति के प्रचार–प्रसार के लिए क्रांतिकारियों ने प्रतीक चिन्ह के रूप में रोटी और कमल को प्रतीक चिन्ह बनाया था तथा बहादुर शाह जफर को अपना सर्वमान्य नेता चुना था तथा गदर का यह नारा था –

"खल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का
दुआ स्थानीय नेताओं को।" [132]

क्रांति युद्ध के समय उत्साह बढ़ाने के लिए क्रांतिकारी हमेशा यह दोहराते थे –

"गाज़ियों में बू रहेगी, जब तलक ईमान की।
तख्ते लंदन तक चलेगी, तेग हिन्दुस्तान की।"[133]

बुन्देलखण्ड की आधुनिक स्थिति

राजविद्रोह के पश्चात् झाँसी, जालौन, बाँदा, हमीरपुर और ललितपुर के जिले अंग्रेजी राज्य के पश्चिमोत्तर प्रदेश स्थित थे। जिसे बाद में संयुक्त प्रदेश के नाम से अभिहित किया गया। सागर और दमोह भी पहले पश्चिमोत्तर प्रदेश में थे किन्तु बाद में ये जिले नर्मदा टेरीटरीज में सम्मिलित कर दिए गए। इस प्रदेश का शासन ए० गवर्नर तथा काउंसिल द्वारा किया जाता था।[134] बुन्देलखण्ड के देशी राज्यों में ओरछा, दतिया और समथर प्रमुख थे और इन राज्यों को अपने–अपने आन्तरिक शासन प्रबन्ध का स्वतन्त्र एवं पूर्ण अधिकार प्राप्त था। बुन्देलखण्ड की रियासतों को बाहरी राज्य से किसी प्रकार का राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार नहीं था। देशी राज्यों की रक्षा का भार सन्धि के नियमानुसार पर था और देशी राज्यों को अंग्रेजों की सहायता के लिए इम्पीरियल सर्विस ट्रुप्स (Imprial service Troops) नामक सेना रखनी पड़ती थी। दो राज्यों के बीच यदि किसी प्रकार का विवाद होता था तो उसका निर्णय अंग्रेज सरकार करती थी बुन्देलखण्ड के देशी राज्यों की देख–रेख करने के लिए नॅव गॉव में अंग्रेजों की ओर से एक एजेण्ट रहता था।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि बुन्देलखण्ड उत्तर तथा दक्षिण भारत को जोड़ने वाला एक ऐसा क्षेत्र है जो छठी शताब्दी ई0पू0 से लेकर आधुनिक काल

तक राजनीतिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण केन्द्र बना रहा। इस क्षेत्र पर चेदि वंश, हर्यक वंश, नन्द वंश, मौर्य वंश, शुंग वंश, गुप्त वंश, वर्धन वंश, राजपूत वंश, सल्तनत एवं मुगल राजवंश के साथ–साथ अंग्रेज शासकों ने अपना अधिकार स्थापित कर यहाँ की राजनीतिक गतिविधियों को प्रभावित किया। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड का राजनीतिक महत्व प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक अनवरत बना रहा। बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ–साथ मसीही धर्म का आगमन हुआ और अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त कर मसीही धर्म बुन्देलखण्ड में अपनी गहरी नींव स्थापित की।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी (भारतीय विद्या भवन) सीरीज सं0– 2, पृष्ठ– 1–9 ।
2. राजबली पाण्डेय, "अशोक के अभिलेख", वाराणसी, संवत् 2002, पृष्ठ– 117 ।
3. *"अरूणद् यवनः साकेतं, अरूणद् यवनो मध्यमिकाम्",* महाभाष्य 3, 2, 11 ।
4. एम0एल0 निगम, "कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड", दिल्ली, 1983, पृष्ठ– 28 ।
5. एच0बी0 त्रिवेदी, "क्वाइन्स ऑफ दि रीजन ऑफ बुन्देलखण्ड", 1984 ।
6. जनरल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, 1935, पृष्ठ– 697 ।
7. फ्लीट, कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इण्डिकेरम् , भाग– 3 पृष्ठ– 18 ।
8. बी0एन0 लूनिया, "गुप्त साम्राज्य का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास", इन्दौर, 1974, पृष्ठ– 237–240 ।
9. वासुदेव शरण अग्रवाल, "स्टडीज इन इण्डियन आर्ट, "वाराणसी, 1965, पृष्ठ– 225 ।
10. इपिग्राफिया इण्डिका, भाग– 26, पृष्ठ– 115 ।
11. ए0 कनिंघम, "आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया",एन्युअल रिपोर्ट 1914–15,पृष्ठ–125 ।
12. डी0सी0 सरकार, " सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स" , खण्ड– 1, कलकत्ता 1965, पृष्ठ– 336 ।
13. *'चूड़ा पुष्पोपहारै मिहिरकुल नृपेणार्चित पादयुग्मम्',* मन्दसौर स्तम्भ अभिलेख, श्लोक– 6।
14. टी0वार्टस, "ऑ–युवान्–च्व्यॉगस ट्रेवेल इन इण्डिया", भाग– 2, 1904–05, पृष्ठ– 250 ।
15. कनिंघम, "आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट", वॉल्यूम– 10, पृष्ठ– 101 ।
16. वही, अभिलेख की पंक्ति सं0– 6 एवं 10 ।
17. इपीग्राफिया इण्डिका, वॉल्यूम– 1, पृष्ठ– 162–179 ।
18. एच0सी0रे0, "दि डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया", वॉल्यूम– 2, नई दिल्ली 1973, पृष्ठ– 672 ।
19. महोबा शिलालेख, इपीग्राफिया इण्डिका, भाग– 1, पृष्ठ– 220, श्लोक– 10 ।
20. आर0के0 दीक्षित, "चन्देलाज ऑफ जेजाकभुक्ति", नई दिल्ली 1977, पृष्ठ– 32–36 ।
21. इण्डियन एण्टीक्यूरी, भाग– 16, पृष्ठ– 203।
22. एच0सी0रे0, "दि डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया", भाग– 2, दिल्ली 1973, पृष्ठ– 674।
23. तबकात–ए–अकबरी, अनुवाद, पृष्ठ– 12 ।
24. आर0के0 दीक्षित, "चन्देलाज ऑफ जेजाकभुक्ति", नईदिल्ली 1977, पृष्ठ– 145 ।
25. आयोध्या प्रसाद पाण्डेय, "चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास", प्रयाग 1968, पृष्ठ– 100–101।
26. "दि स्ट्रगल फार एम्पायर", भारतीय विद्या भवन सीरीज संख्या– 5, पृष्ठ– 18 ।
27. तारीख–ए–शेरशाह इन इलिएट, वॉल्यूम– 4, पृष्ठ– 409 ।
28. गोरेलाल तिवारी, "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास", प्रयाग वि0सं0– 1990, पृष्ठ–72–97।
29. वही, पृष्ठ– 99–100 ।
30. डॉ0 आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, "भारत का इतिहास", आगरा 1979, पृष्ठ– 442–43 ।
31. फ्रेडरिक आगस्टस, "दि एम्पायर अकबर", पृष्ठ– 296; एच0जी0 वेल्स, "दि क्यूटलाइन ऑफ हिस्ट्री", लन्दन, पृष्ठ– 454–455 ।

32. गोरेलाल तिवारी, ''बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास'', प्रयाग वि0सं0– 1990, पृष्ठ– 121।

33. बुन्देलखण्ड गजेटियर (ईस्टर्न स्टेट्स), पृष्ठ– 17 ।

34. डब्ल्यू0आर0 पॉगसन, ''ए हिस्ट्री ऑफ दि बुन्देलाज'', दिल्ली 1974, पृष्ठ– 13–16, 26–28।

35. वही, पृष्ठ– 56 ; झाँसी गजेटियर (ई0बी0 जोशी), पृष्ठ– 46–47 ।

36. सी0के0 श्रीनिवासन, बाजीराव दि फर्स्ट दि ग्रेट पेशवा, बम्बई 1962, पृष्ठ– 79 ।

37. डॉ0 भगवान दास गुप्ता, ''ए हिस्ट्री ऑफ दि राइज एण्ड फाल ऑफ दि मराठाज इन बुन्देलखण्ड'', नेहा प्रकाशन 1987, पृष्ठ– 25 ।

"According to these directions of chhatrasal his kingdom was first to be partitioned between his two sons Hirdeshah and Jagatraj at the ratio of one and one fourth (1¼) and three quarters (¾) respectively and then the both were required to hand over one third of their respective territories to the Peshwa Bajirao I"

38. राधाकृष्ण बुन्देली, ''बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन'', प्रथम भाग, संस्करण– 1989, पृष्ठ– 132 ।

39. डॉ0 हरीराम गुप्त, ''मराठाज एंड पानीपत'', चंडीगढ़ 1961, पृष्ठ– 216–217 ।

40. जालौन गजेटियर, पृष्ठ– 33 ; भगवान दास गुप्त, ''लाइफ एंड टाइम्स ऑफ महाराज छत्रसाल बुन्देला'', पृष्ठ– 89–92 ।

41. ठाकुर लच्छमन सिंह गौर, ओरछा का इतिहास, 1978 ई0, पृष्ठ– 133–47 ।

42. पन्ना गजेटियर, पृष्ठ– 9, 10 ।

43. C.V. Chaudhari, "Ranoji Shinde Yanchi Jiwan Charitra", Gwalior, Page- 268.

44. झाँसी गजेटियर, पृष्ठ– 50–51 ।

45. झाँसी गजेटियर, पृष्ठ– 49 ।

46. कैप्टन डब्ल्यू0 आर0 पॉग्सन, ''ए हिस्ट्री ऑफ दि बुन्देलाज'', पृष्ठ– 105–106 ।

47. पन्ना गजेटियर, पृष्ठ– 11–13 ।

48. बलवन्त सिंह, हमीरपुर गजेटियर, पृष्ठ– 44–45 ।

49. टी0एस0 शेजवलकर, ''पानीपत'', पूना 1946, पृष्ठ– 70–71 ; हरीराम गुप्त, ''पानीपत'', पृष्ठ– 198–201 ।

50. डॉ0 आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, ''शुजाउद्दौला'', भाग– 1, पृष्ठ– 122 ।

51. सर यदुनाथ सरकार, ''फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर'', भाग– 2, कलकत्ता 1950, पृष्ठ– 150, 195, 198, 346, 347 ।

52. डॉ0 आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, ''शुजाउद्दौला'', आगरा 1961, भाग– 1, पृष्ठ– 29, 35, 39, 41, 72, 95, 137, 140 ; पन्ना गजेटियर, पृष्ठ– 119 ।

53. हमीरपुर गजेटियर, पृष्ठ– 45 ।

54. हमीरपुर गजेटियर, पृष्ठ– 46–47 ।

55. पन्ना गजेटियर, पृष्ठ– 8–14 ।

56. हमीरपुर गजेटियर, पृष्ठ– 46–47 ।

57. भगवान दास गुप्त, '' मस्तानी बाजीराव और उनके वंशज'', ग्वालियर 1983, पृष्ठ– 65 ।

58. पन्ना गजेटियर, पृष्ठ– 11–13 ।

59. पन्ना गजेटियर, पृष्ठ– 9–13 ।

60. राधाकृष्ण बुन्देली, "बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन", संस्करण– 1989, पृष्ठ– 138।

61. कैलेण्डर ऑफ पर्शियन कॉरेपोण्डेंस, भाग– 8, राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली 1953, नं0 571, 695, 920 ।

62. सर यदुनाथ सरकार, "फाल ऑफ दि मुगल एम्पायर", कलकत्ता 1952, भाग– 3, पृष्ठ– 227 ।

63. डॉ0 भगवान दास गुप्त, "मस्तानी बाजीराव और उनके वंशज बाँदा के नवाब", ग्वालियर 1983, पृष्ठ– 55 ।

64. झाँसी गजेटियर, पृष्ठ– 58–59 ।

65. वही, पृष्ठ– 59 ।

66. भारतवर्ष, भाग– 2, ऐतिहासिक चर्चा, पृष्ठ– 8–9 ।

67. हमीरपुर गजेटियर, पृष्ठ– 46 ।

68. बुन्देलखण्ड गजेटियर, पृष्ठ– 37 ।

69. टी0एस0 शेजवलकर, "पानीपत", पूना 1946, पृष्ठ– 86 ।

70. विलियम राबर्ट पॉग्सन, "दि हिस्ट्री ऑफ दि बुन्देलाज", बैप्टिस्ट मिशन कलकत्ता 1828, पृष्ठ– 126।

71. कैप्टन डब्ल्यू0आर0 पॉग्सन, "ए हिस्ट्री ऑफ दि बुन्देलाज", पृष्ठ– 107–114 ।

72. हिस्टॉरिकल पेपर्स ऑफ सिंधियाज ऑफ ग्वालियर, प्रकाशक– सतारा हिस्टॉरिकल रिसर्च सोसायटी सतारा, भाग– 1, नं0– 343, 347–377 ।

73. बाँदा गजेटियर (1888), पृष्ठ– 56 ।

74. दत्तात्रेय बलवन्त पारसनीस, "मराठ्यांचे पराक्रम, बुन्देलखण्ड प्रकरण", पृष्ठ– 112।

75. छतरपुर गजेटियर, पृष्ठ– 4 ।

76. कैप्टन डब्ल्यू0आर0 पॉग्सन, "ए हिस्ट्री ऑफ दि बुन्देलॉज", पृष्ठ– 121 ।

77. एस0एन0 सेन, "1857", कलकत्ता 1957, पृष्ठ– 261 ; बाँदा गजेटियर, पृष्ठ– 60।

78. बाँदा गजेटियर, पृष्ठ– 58 ।

79. न्यूज लेटर, इंग्लिश समरीज ऑफ अरबबारात्स ऑफ नवाब अली बहादुर कैम्प, सम्पादक यूसुफ हुसैन, ए0आर0 नं0– 7822 ।

80. विलियम राबर्ट पॉग्सन, "दि हिस्ट्री ऑफ दि बुन्देलॉज", कलकत्ता 1828, पृष्ठ–126–127; दत्तात्रेय बलवन्त पारसनीस, "बुन्देलखण्ड प्रकरण", पृष्ठ– 214, 215।

81. इम्पीरियल गजेटियर, पृष्ठ– 38 ।

82. बाँदा गजेटियर, पृष्ठ– 59 ।

83. सी0यू0 ऐचिसन, "ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज, एंगेजमेण्ट्स एण्ड सनद्स", भाग– 3, पृष्ठ– 143–146 ; भाग– 5, पृष्ठ– 47–49 ।

84. ए0एस0 मिश्रा, "नाना साहब पेशवा एण्ड दि फाइट फॉर फ्रीडम", लखनऊ 1961, पृष्ठ– 370–380।

85. एशियाटिक एनुअल रजिस्टर, 1803–1805, नई दिल्ली, पृष्ठ7 59 ।

86. बुन्देलखण्ड गजेटियर, पृष्ठ– 37 ।

87. ए०एस० मिश्रा, "नाना साहब पेशवा एण्ड दि फाइट फॉर फ्रीडम", लखनऊ 1961 पृष्ठ– 373 ।
88. बाँदा गजेटियर, पृष्ठ– 58 ; हमीरपुर गजेटियर, पृष्ठ– 46–47 ।
89. बाँदा गजेटियर, पृष्ठ– 57, 58, 59 ।
90. ए०एस० मिश्रा, "नाना साहब पेशवा एण्ड दि फाइट फॉर फ्रीडम", लखनऊ 1961, पृष्ठ– 373 ।
91. बाँदा गजेटियर, पृष्ठ– 60 ।
92. सर सुन्दर लाल, "भारत में अंग्रेजी राज", खण्ड– 1, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, 1967 (तीसरा संस्करण), पृष्ठ– 396 ; खण्ड– 2, पृष्ठ– 582 ।
93. सी०यू० एचिसन, "ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज, एंगेजमेण्ट्स एण्ड सनद्स", भाग– 7, पृष्ठ– 50–51 ।
94. एशियाटिक एनुअल रजिस्टर, 1803–1805, राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली, पृष्ठ– 39 ।
95. सी०यू० एचिसन, "सप्लीमेंटल ट्रीटी ऑफ बेसीन", भाग– 7, पृष्ठ– 47–50 ।
96. सी०यू० एचिसन, "सप्लीमेंटल ट्रीटी ऑफ बेसीन", भाग– 5, पृष्ठ– 49–50 ।
97. बुन्देलखण्ड गजेटियर, पृष्ठ– 130 ।
98. सी०यू० एचिसन, "सप्लीमेंटल ट्रीटी ऑफ बेसीन", भाग– 5, पृष्ठ– 50–52 ।
99. बाँदा गजेटियर, पृष्ठ– 210 ।
100. कैप्टन डब्ल्यू०आर० पॉग्सन, "ए हिस्ट्री ऑफ दि बुन्देलॉज", पृष्ठ– 126 ।
101. सी०यू० एचिसन, "ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज, एंगेजमेण्ट्स एण्ड सनद्स", भाग– 5, पृष्ठ– 47–100 ।
102. वही, भाग– 5, पृष्ठ– 111–200 ।
103. विस्तृत विवरण के लिए दृष्टव्य है–
मारिया ग्राहम, "जनरल ऑफ दि रेसिडेन्स इन इण्डिया", 1813, पृष्ठ– 84–85 ; सी०यू० एचिसन, "ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज, एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्स", भाग– 5, पृष्ठ–47–220 ।
104. सी०यू० एचिसन, "ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज, एंगेजमेण्ट्स एण्ड सनद्स", भाग– 5, पृष्ठ– 47–220 ।
105. चार्ल्स बाल, "दि हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन म्यूटिनी", भाग– 1, नईदिल्ली 1981, पृष्ठ– 160–161 ।
106. आर०सी० मजूमदार, "दि सिवॉय म्यूटिनी एंड दि रिवोल्ट ऑफ एट्टीन फिफ्टीसेवन, कलकत्ता 1957, पृष्ठ– 172 ।
107. गोरेलाल तिवारी, " बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास", संवत् 1990, पृष्ठ– 335–36 ।
108. पार्लियामेंटरी पेपर्स, 15 फरवरी, 1950, पृष्ठ– 141 ।
109. गोरेलाल तिवारी, "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास", संवत् 1990, पृष्ठ– 339 ।
110. गोरेलाल तिवारी, "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास", संवत् 1990, पृष्ठ– 340 ।
111. नैरेटिव ऑफ इवेण्ट्स अटेंडिंग दि आउट ब्रेक ऑफ डिस्टवैजेस एण्ड दी रेस्टोरेशन ऑफ अथॉरिटी, 1857–58, भाग– 1, कलकत्ता 1881, पृष्ठ– 520 ।
112. इम्पीरियल गजेटियर, पृष्ठ– 38 ।
113. एस०ए०ए० रिज़वी, "फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश", वॉल्यूम– 4, लखनऊ 1959, पृष्ठ– 566 ।

114. एस0बी0 चौधरी, ''सिविल रिबेलियन इन दि इण्डियन म्यूटिनीज, कलकत्ता 1957, पृष्ठ– 211 ।

115. जयप्रकाश मिश्रा, ''बुन्देला रिबेलियन'', पृष्ठ– 67–68 ।

116. जबलपुर गजेटियर, पृष्ठ– 91 ।

117. डी0पी0 मिश्रा, ''हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन मध्य प्रदेश'', पृष्ठ– 3 ।

118. राधाकृष्ण बुन्देली, ''बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन'', पृष्ठ– 143 ।

119. जबलपुर गजेटियर, पृष्ठ– 91 ।

120. एस0डी0 चौधरी, ''सिविल डिस्टरबेंस ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल इन इण्डिया'', पृष्ठ– 178।

121. सागर गजेटियर, पृष्ठ– 67 ।

122. एस0एन0 सिन्हा, ''दि रिवोल्ट ऑफ 1857 इन बुन्देलखण्ड'', पृष्ठ– 39 ।

123. वही, पृष्ठ– 40 ।

124. सी0 वारनर, ''लाइफ ऑफ दि मारक्युस डलहौजी'', भाग– 2, पृष्ठ– 354 ।

125. नैरेटिव ऑफ इवेण्ट्स अटैंडिंग दि आउट ब्रेक ऑफ डिस्टवैजेस एण्ड दी रेस्टोरेशन ऑफ अथॉरिटी, 1857–58, भाग– 1, कलकत्ता 1881, पृष्ठ– 519–521 ।

126. नैरेटिव ऑफ इवेण्ट्स अटैंडिंग दि आउट ब्रेक ऑफ डिस्टवैजेस एण्ड दी रेस्टोरेशन ऑफ अथॉरिटी, 1857–58, भाग– 1, कलकत्ता 1881, पृष्ठ– 521–524 ।

127. *"Here too the Rani Jhansi dressed as a cavalry leader was cut down by a Hussar, and in her death the rebels lost their bravest and the best leader",* जॉन स्मिथ, ''दि रिबैलियस रानी'', लंदन 1966, पृष्ठ– 193 ।

128. हमीरपुर गजेटियर, पृष्ठ– 51 ।

129. वही, पृष्ठ– 357–58 ।

130. दत्तात्रेय बलवंत पारसनीस, ''रानी लक्ष्मीबाई का चरित्र'', पृष्ठ– 147–151 ।

131. झाँसी गजेटियर, पृष्ठ– 66–68 ; एस0बी0 चौधरी, ''सिविल रिबेलियन इन दि इण्डियन म्यूटिनीज'', कलकत्ता, 1857–59, पृष्ठ– 22 ।

132. विनायक दामोदर सावरकर, ''1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर'', नई दिल्ली 1983 (चौथा संस्करण), पृष्ठ– 485 ।

133. बाँदा गजेटियर, पृष्ठ– 59 ।

134. गोरेलाल तिवारी, ''बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास'', संस्करण– 1990 (संवत्), पृष्ठ– 372–73 ।

अध्याय तृतीय

अध्याय– 3

✷ बुन्देलखण्ड में मसीही धर्म एवं संस्कृति

: मसीही धर्म के प्रवर्तक प्रभु येशु का जीवन–चरित्र और उनके उपदेश।

: मसीही धर्म ग्रन्थ : पवित्र बाइबिल।

: मसीही धर्म के अनुयायियों का धार्मिक विश्वास ; पुरोहितों का पहनावा

: मसीहियों की धार्मिक प्रथाएँ अथवा अनुष्ठान।

: मसीहियों की भाषा, वेश–भूषा एवं संस्कृति ; मसीही धर्मावलम्बियों के प्रमुख संस्कार।

: मसीही समाज के पर्व।

: बुन्देलखण्ड में मसीही धर्म का आगमन।

: कुछ प्रमुख मसीही धर्म प्रचारकों के कार्य।

: प्रमुख मसीही धर्म प्रचारकों का संक्षिप्त जीवन–चरित्र।

अध्याय– 3

मसीही धर्म एवं मसीही संस्कृति

धर्म की परिभाषा – मनुष्य विश्व का सर्वाधिक विवेकशील प्राणी है। जब सृष्टि में उसका अस्तित्व प्रकाश में आया उसने प्रकृति, प्राकृतिक सौन्दर्य को निज दृष्टियों से देखा, सुख–दुःख की अनुभूति की, उसे उचित–अनुचित का बोध हुआ। उसे यह पता लगा कि वह किस पथ पर चलकर अपने जीवन को विपदा रहित एवं सुखमय बना सकता है। उसे एक ऐसी शक्ति की भी अनुभूति हुयी जिस शक्ति को उसने विश्व सृष्टा के रूप में ग्रहण किया और उसे परमात्मा की संज्ञा दी। उसे अपने मांसल शरीर, शरीर में व्याप्त आत्मा और आत्मा में व्याप्त परमात्मा का बोध हुआ और इसलिए उसने अपने सम्पूर्ण कर्मो को परमात्मा के चरणों में समर्पित कर दिया तथा कर्मों का विश्लेषण पाप और पुण्य के रूप में उसके द्वारा किया गया। उसने पुण्य कर्मों को प्रमुखता दी और उसी को करना श्रेष्ठ माना। आगे चलकर यही "कर्म–विधि धर्म" के नाम से विख्यात हुयी।

धर्म क्या है और क्या नहीं है? इसको परिभाषित करना बड़ा कठिन कार्य है क्योंकि इस विश्व में ऐसा कोई विद्वान नहीं है जो परमात्मा और धर्म को परिभाषित कर सके। अनेक धर्म ग्रन्थों में धर्म को विविध प्रकार से परिभाषित किया गया है।

"धारयतीति धर्मः।" जो समाज व्यक्ति धारण करे, वह धर्म है।[1] जिन कर्मों को प्रजा उचित समझकर धारण करती है, वही धर्म है।

सुप्रसिद्ध समाज शास्त्री रवीन्द्रनाथ मुखर्जी ने धर्म को इस प्रकार परिभाषित किया है – *"Religion is the belief in one or the other super-human or super-natural or super-social power which (the belief) has for its basis the fear the reverence, the devotion and the idea of sacredness and which is expressed through prayer, worship or submission"* धर्म किसी–न–किसी प्रकार की अति–मानवीय (Super-Human) या आलौकिक (Super-Natural) या समाजोपरि (Super-Social) शक्ति पर विश्वास है, जिसका आधार भय, श्रद्धा, भक्ति और पवित्रता की धारणा है और जिसकी अभिव्यक्ति प्रार्थना, पूजा या आराधना है।[2]

अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने धर्म को अपने ढंग से परिभाषित किया है – *"Religion is the belief in spiritual being."*[3] (धर्म आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास है।)

सुप्रसिद्ध अमेरिकन विद्वान सर जेम्स फ्रेज़र ने धर्म को इस प्रकार परिभाषित किया हैं – "By religion .... I understand a propitiation or conciliation of powers superior to man which are believed to direct and control the course of nature and of the human life."[4] (धर्म से मैं मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की सन्तुष्टि या आराधना समझता हूँ जिनके सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति और मानव–जीवन को मार्ग दिखलाती और नियन्त्रित करती है।)

एक अन्य अमेरिकन विद्वान मि0 गिलिन ने धर्म की परिभाषा इस प्रकार विश्लेषित की है – *"The sociological field of religion may be regarded as including those emotionalized beliefs prevalent in a social group concerning the super-natural plus the overt behaviour, material objects and symbols associated with such beliefs."*[5] (एक सामाजिक समूह में फैले हुए उन भावनात्मक

विश्वासों को जो कि किसी अलौकिक शक्ति से संबन्धित हैं तथा उन बाहरी व्यवहारों, भौतिक वस्तुओं और प्रतीकों को, जो इन विश्वासों से सम्बन्ध रखते हैं, धर्म के समाजशास्त्रीय क्षेत्र में सम्मिलित समझा जा सकता है।)

भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ0 राधाकृष्णन् ने धर्म को सविस्तार समझाते हुए कहा है कि "धर्म की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं कि यह चारों वर्णों और चारों आश्रमों के सदस्यों द्वारा जीवन के चार प्रयोजनों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के सम्बन्ध में पालन करने में योग्य मनुष्य का समूचा कर्तव्य है।"[6]

उपरोक्त परिभाषाओं को देखते हुए यह परिणाम निकलता है कि धर्म अनादि काल से है। इसका निर्माता कौन था, यह कैसे बना, यह आज तक ज्ञात नहीं हो सका। फिर भी धर्म के आठ विशिष्ट लक्षण की स्वीकृति सभी धर्म देते हैं –

1. *'वेदोऽखिलो धर्ममूलम'*[7] अर्थात् (समस्त वेद अर्थात् ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेद धर्म का मूल हैं।)
2. *'क्रियासाध्यत्वे सति श्रेयस्करत्वमिति लौकिकाः'* अर्थात् (क्रिया या कर्म द्वारा सिद्ध होकर कल्याणकारी होना धर्म का लक्षण है।)
3. *'सत्याज्जायायते, दयया दानेन च वर्धते क्षमाया तिष्ठति क्रोधान्नश्यति'* अर्थात् (धर्म की उत्पत्ति सत्य से होती है, दया और दान से वह बढ़ता है, क्षमा में वह निवास करता है और क्रोध से उसका नाश होता है।)
4. धर्म का चौथा लक्षण यह है कि धर्म समस्त विश्व का आधार या नींव है; क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति के आचरण की वे समस्त बुराइयाँ दूर हो जाती हैं जो विश्व कल्याण के विपरीत हैं।
5. धर्म वह शाश्वत सत्य है जो सारे संसार पर शासन करता है। यह धर्म का पाँचवाँ लक्षण है।
6. जो धर्म दूसरे धर्म को बाधा दे, वह धर्म नहीं है, बल्कि 'कुधर्म' है। जो धर्म समस्त धर्मो का अवरोधी है वही 'यथार्थ धर्म' है। जो धर्म बिल्कुल विपरीत है वह 'अधर्म' कहलाता हैं।
7. स्वधर्म ही श्रेष्ठ है और पराए धर्म का त्याग ही कल्याणकारी है :

   "धर्मो यो बाधते धर्म न स धर्मः कुधर्म तत्।
   अविरोधी तु यों धर्मः स धर्म सत्य विक्रमः।"
8. धर्म ही ऐसा मित्र है जो मरने पर भी जीव के साथ जाता है; और सब शरीर के नाश होते ही साथ छोड़कर चले जाते हैं :

   "एक एव सुह्रद धर्मो निधनेऽयनुयति यः।
   शरीरेण समं नाशं सर्व मन्यत्तु गच्छतिः।"

समस्त धर्मो में धर्म सुधारक और प्रवर्तक समय–समय पर होते आए हैं। उन्होनें समस्त मानव जाति के लिए नियमों की धर्म–रेखाएं खीचीं हैं, जिनके अनुपालन से व्यक्ति सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है। हिन्दू धर्म के दशावतार ऐसे ही महापुरूष थे। इनमें भगवान श्रीराम, कृष्ण आदि व्यक्ति थे, जिन्होंने धर्म मर्यादाओं की रक्षा की। इसी प्रकार बौद्ध धर्म में महात्मा बुद्ध और जैन धर्म में महावीर स्वामी, मसीही धर्म के प्रर्वतक प्रभु येशु मसीह से पहले उत्पन्न हुए थे। युग परिवर्तन के साथ धर्म को नवीन दृष्टि–दिशा की आवश्यकता होती है जिसे महापुरूष समय–समय पर अवतरित होकर अपने युग के समाज को प्रदान करते हैं।

मसीहीं धर्म के प्रवर्तक प्रभु येशु का जीवन–चरित्र और उनके उपदेश

मसीही धर्म के संस्थापक प्रभु येशु मसीह एक महान ज्योतिर्मय दीपक थे, जिनके ज्ञान प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व लाभान्वित हुआ। धर्म के सरोवर में जो अन्ध–विश्वास की काई उत्पन्न हो गयी थी और व्यर्थ के रीति–रिवाज़ों के कीटाणु व्याप्त हो गए थे, उस दूषित जल को निर्मल करने का कार्य प्रभु येशु मसीह ने जल–शोधक औषधि के समान किया। उनके उपदेश उस युग से लेकर आज तक पूरी तरह सार्थक हैं और उनके आदर्शों को विश्व मानवता का आदर्श माना जा सकता है।

प्रभु येशु के जन्म की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रस्तुत अध्याय की अधिकतम सामग्री मसीही धर्म ग्रन्थ बाइबिल में से ली गयी है; क्योंकि प्रभु येशु के जीवन चरित्र के सम्बन्ध में प्रमाणिक सामग्री के लिए बाइबिल ही एक मात्र श्रोत है। जैसे कि ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि के सन्दर्भ में प्रभु येशु के एक प्रमुख चरित्र लेखक संत लूका ने अपने एक रोमन अधिकारी थियुफिलुस को अपने ग्रन्थ के विषय में इस प्रकार लिखा। संत लूका का ग्रन्थ सम्भवतः ईस्वी सन् प्रथम शताब्दी की रचना माना जाता है, जिसके आधार पर हम प्रभु येशु मसीह के जीवन, एवं सिद्धान्तों (उपदेशों) का उल्लेख इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं –

प्रभु येशु का जन्म – विद्वानों का मत है कि प्रभु येशु का जन्म इस्वीं सन् 6 (छः) में हुआ था। जन्म के पूर्व एवं जन्म के पश्चात् अनेक ईश्वरीय दिव्य घटनाएँ घटीं थीं, जिनका उल्लेख बाइबिल में हुआ है – *In fact, due to these and other complications, it is impossible to fix the date of Jesus' birth. Since the two Gospelists agree at least that it was in Herod's time, and Herod died in the year known to our calendar system as 4 B.C., it follows that Jesus cannot have been born later than that year. If Mathew is right in saying that Herod ordered the death of all male children of 2 years or less, this would imply that Jesus was already a year or so old by the time Herod heard of the prophecy that he was born to be "King of the Jews." Thus his birth may have been in 5 or 6 B.C. The awk-ward result is to have him born four or more years "Before Christ" - all the fault of a sixth century monk called Dionysius exiguus, who was assigned by the Church to determine the birth year so that the dating system of B.C. and A.D. could be put into use. He miscalculated, and the Christian calendar has been stuck with his error ever since. ("Life International, Special Double Issue The Bible", Vol. - 38, No. - 7, 19th April 1965, Page-98).*

मसीही जन यह विश्वास करते हैं कि ये घटनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि प्रभु येशु परमेश्वर के पुत्र थे और उनका जन्म समस्त संसार को उनके पापों से मुक्त करने के लिए हुआ था।

"उन दिनों सम्राट औगुस्तुस ने आदेश निकाला कि समस्त रोमन साम्राज्य की जनगणना की जाए। यह पहली जनगणना उस समय हुयी जब क्विरिनियुस सीरिया देश का राज्यपाल था।

"सब लोग नाम लिखवाने के लिए अपने–अपने पूर्वजों के नगर को जाने लगे। यूसुफ

दाऊद के कुटुम्ब और वंश का था। अतः वह अपनी मंगेतर मरियम के साथ, जो गर्भवती थी, नाम लिखवाने के लिए गलील प्रदेश के नासरत नगर से यहूदा प्रदेश के बैतलहम गाँव को गया जहाँ राजा दाऊद का जन्म हुआ था।

"जब वे वहाँ थे तब मरियम का प्रसवकाल आ गया, और उसने अपने पहिलौठे पुत्र को जन्म दिया। उसने उसे वस्त्र में लपेट कर चरनी में लिटाया, क्योंकि उनके लिए सराय में स्थान नहीं था।"[8]

चरवाहों का सन्देश – चरवाहों के सन्देश के द्वारा परमेश्वर ने समस्त मानव जाति को शान्ति का आशीर्वाद दिया, विशेषकर उन लोगों को जो समाज के सबसे पिछड़े वर्ग के लोग थे, अर्थात् चरवाहा, मजदूर जिनकी यहूदी समाज में गरीबी के कारण सोचनीय स्थिति थी।

"उस प्रदेश में चरवाहे थे जो रात को मैदान में रहकर अपने रेवड़ की रखवाली कर रहे थे। सहसा प्रभु का दूत उनके समीप आकर खड़ा हो गया और प्रभु का तेज उनके चारों ओर चमकने लगा। वे बहुत डर गए।

"स्वर्गदूत ने उनसे कहा, 'डरो मत'। देखो, मैं तुम्हें बड़े आनन्द का शुभ सन्देश सुनाता हूँ। यह आनन्द का समाचार सब लोगों के लिए होगा।

'आज दाऊद के नगर में तुम्हारे लिए एक उद्धारकर्त्ता ने जन्म लिया है; यही प्रभु मसीह है। तुम्हारे लिए चिन्ह यह है; तुम एक शिशु को वस्त्र में लिपटे और चरनी में लेटे हुए पाओगे।'

"तब एकाएक उस स्वर्गदूत के साथ असंख्य स्वर्गदूतों का समूह दिखाई पड़ा जो परमेश्वर की स्तुति कर रहा था, 'स्वर्ग में परमेश्वर की महिमा हो और पृथ्वी पर उन मनुष्यों को शान्ति मिले, जिनसे परमेश्वर प्रसन्न हैं।

"जब स्वर्गदूत उनसे विदा होकर स्वर्ग को चले गए तब चरवाहों ने विचार किया, 'क्यों न हम बैतलहम चलें और यह घटना अपनी आँखों से देखें जो प्रभु ने हम पर प्रकट की है' वे शीघ्र गए और उन्होंने मरियम, यूसुफ और शिशु को पाया जो चरनी में लेटा हुआ था। जब उन्होंने बालक को देखा तब उन्होंने सब बातें प्रकट कर दीं जो स्वर्गदूत ने उनसे बालक के सम्बन्ध में कही थीं। सब सुनने वाले लोग चरवाहों की बातों पर आश्चर्य करने लगे; पर मरियम सब बातें मन में रखे रही और उन पर विचार करती रही।

"चरवाहे, परमेश्वर की महिमा और स्तुति करते हुए लौट गए, क्योंकि जैसा स्वर्गदूत ने उनसे कहा था वैसा ही उन्होंने सुना और पाया था।"[9]

प्रभु येशु का किशोरावस्था

"बालक येशु बढ़कर बलिष्ठ हुआ और बुद्धि से परिपूर्ण होता गया। उस पर परमेश्वर का अनुग्रह था। येशु के माता–पिता प्रति वर्ष फसह के पर्व पर यरूशलेम की यात्रा करते थे। जब येशु बारह वर्ष का हुआ तब वे लोग अपनी प्रथा के अनुसार वहाँ पर्व मनाने गए। जब वे उन दिनों को पूर्ण कर लौटें तब बालक येशु यरूशलेम में ही रह गया। उसके माता–पिता यह नहीं जानते थे, और यह समझ कर कि वह यात्रियों के दल में होगा, एक दिन का पड़ाव निकल गए।

"तब येशु को अपने कुटुम्बियों और परिचितों में ढूँढ़ने लगे, पर वह न मिला। अतः वे उसको ढूँढ़ते हुए यरूशलेम लौटे। तीन दिन के पश्चात् उन्होंने येशु को मन्दिर में धर्म गुरूओं के बीच बैठे, उनकी बातें सुनते और उनसे प्रश्न करते हुए पाया। सब सुनने वाले येशु की बुद्धि और उसके उत्तरों से चकित थे। येशु को वहाँ देखकर उसके माता–पिता आश्चर्य करने लगे। उसकी माता ने कहा, 'पुत्र, तुमने हमारे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया? देखो, तुम्हारे पिता और मैं चिन्तित होकर तुम्हें

ढूँढ रहे थे। येशु ने कहा, 'आप मुझे यहाँ–वहाँ क्यों ढूँढ़ रहे थे? क्या आप नहीं जानते थे कि मुझे अपने पिता के घर में होना ही चाहिए?''[10]

नासरत गाँव में प्रभु येशु – तब किशोर येशु अपने माता–पिता के साथ नासरत नगर को गया और उसकी माता ने सब बातें अपने मन में रखीं। किशोर येशु बुद्धि में, डील–डौल में और परमेश्वर तथा मनुष्यों के अनुग्रह में बढ़ता गया।[11]

धर्म–सेवा का आरम्भ – यहूदी धर्म की परम्परा में धर्म गुरू अपनी सेवा आरम्भ करने के पूर्व अपनी प्रतिबद्धता दिखाने के लिए वह बपतिस्मा लेता था। प्रभु येशु के समय में योहन बपतिस्मा दाता पश्चाताप का बपतिस्मा (मन–फिराव का बपतिस्मा) का प्रचार–प्रसार कर रहे थे। वह यर्दन नदी के आस–पास समस्त प्रदेश में पाप–क्षमा के लिए हृदय परिवर्तन के बपतिस्मा का प्रचार करते थे। यद्यपि प्रभु येशु निष्पाप थे तो भी वह यहूदी धर्म परम्परा का पालन करते हुए प्रभु येशु ने उनके हाथ से बपतिस्मा लिया था। जब बपतिस्मा लेने के पश्चात् वह प्रार्थना कर रहे थे, तब स्वर्ग खुल गया और पवित्र आत्मा शारीरिक रूप से कबूतर के समान उन पर उतरा एवं स्वर्ग से यह आवाज सुनाई दी :

'तू मेरा प्रिय पुत्र है, मैनें तुझे पसन्द किया है।'

प्रभु येशु की परीक्षा – प्रभु येशु पवित्र आत्मा से परिपूर्ण हो कर यर्दन नदी के तट से लौटे, तो आत्मा उन्हें निर्जन प्रदेश में ले गया जहाँ शैतान चालीस दिन तक उनकी परीक्षा लेता रहा। प्रभु येशु ने उन दिनों कुछ भी नहीं खाया। जब चालीस दिन बीत गए तब उन्हें बहुत भूख लगी। शैतान ने उनसे कहा, ''यदि आप परमेश्वर के पुत्र हैं, तो इस पत्थर से कह दीजिए कि यह रोटी बन जाये।'' परन्तु प्रभु येशु ने उत्तर दिया, ''धर्मग्रंथ में लिखा है : 'मनुष्य केवल रोटी से ही नहीं जीता हैं।'

फिर शैतान उन्हें ऊपर उठा ले गया और क्षण भर में संसार के सब राज्य दिखाये। शैतान उनसे बोला, ''मैं आपको इन सब राज्यों का अधिकार और इनका वैभव दे दूँगा। यह सब मुझे सौंपा गया है और मैं जिस को चाहता हूँ, उस को यह देता हूँ। यदि आप मेरी आराधना करें, तो यह सब आप का हो जायेगा।'' प्रभु येशु ने उसे उत्तर दिया, ''धर्मग्रन्थ में यह लिखा है : 'अपने प्रभु परमेश्वर की आराधना करो और केवल उसी की सेवा करो।' ''

तब शैतान प्रभु येशु को यरूशलेम नगर में ले गया और मन्दिर के शिखर पर उन्हें खड़ा कर उनसे बोला, ''यदि आप परमेश्वर के पुत्र हैं, तो यहाँ से नीचे कूद जाइए; क्योंकि धर्मग्रन्थ में लिखा है : 'आपके विषय में परमेश्वर अपने दूतों को आदेश देगा कि वे आपकी रक्षा करें। वे आपको अपने हाथों पर संभाल लेंगे कि कहीं आपके पैरों को पत्थर से चोट न लगे।' ''प्रभु येशु ने उसे उत्तर दिया, ''यह भी कहा गया है: 'अपने प्रभु परमेश्वर की परीक्षा मत लो।' ''

इस तरह सब प्रकार की परीक्षा लेने के बाद शैतान, निश्चित समय पर लौटने के लिए, प्रभु येशु के पास से चला गया।

ये आत्मा के सामर्थ्य से सम्पन्न होकर प्रभु येशु गलील प्रदेश को लौटे और उनकी चर्चा आस–पास के समस्त क्षेत्र में फैल गयी। वह उनके सभागृहों में शिक्षा देने लगे और सब लोग उनकी प्रशंसा करते थे।

गृहनगर नासरत की यात्रा

जब येशु नासरत नगर में आये, जहाँ उनका पालन–पोषण हुआ था तो वह विश्राम के दिन अपनी आदत के अनुसार सभागृह गये। वह धर्मग्रन्थ से पाठ पढ़ने के लिए उठे, तो उन्हें नबी

यशायाह की पुस्तक दी गयी। पुस्तक खोल कर प्रभु येशु ने वह स्थल निकाला, जहाँ लिखा है: "प्रभु का आत्मा मुझ पर है, क्योंकि उसने मेरा अभिषेक किया है कि मैं गरीबों को शुभ–समाचार सुनाऊँ, उसने मुझे भेजा है जिससे मैं बन्दियों को मुक्ति का और अन्धों को दृष्टि–प्राप्ति का सन्देश दूँ, मैं दलितों को स्वतन्त्र करूँ और प्रभु के अनुग्रह का वर्ष घोषित करूँ।"

प्रभु येशु ने पुस्तक बंद कर सेवक को दे दी और बैठ गए। सभागृह के सब लोगों की आँखें उन पर टिकी हुई थीं। तब वह उन से कहने लगे, "धर्मग्रन्थ का यह कथन आज आप लोगों के सामने पूरा हो गया।" सब लोगों ने उनकी प्रशंसा की। वे उनके मुख से निकले अनुग्रहपूर्ण शब्द सुन कर अचम्भे में पड़ गये, और पूछने लगे, "क्या यह यूसुफ के पुत्र नहीं हैं?"

प्रभु येशु ने उनसे कहा, "तुम निश्चय ही मुझे यह कहावत सुनाओगे: 'ओ वैद्य! पहले अपना इलाज कर।' तुम मुझ से यह भी कहोगे: 'कफरनहूम नगर में जो कुछ है, हमने उसके बारे में सुना है। अब वह यहाँ अपने नगर में भी कीजिए।' " फिर प्रभु येशु ने कहा, "मैं तुम से सच कहता हूँ: नबी का स्वागत अपने नगर में नहीं होता।[12]

प्रभु येशु की शिक्षाएँ – जब प्रभु येशु ने अपना सेवा–कार्य आरम्भ किया, तब वह लगभग 30 वर्ष के थे। उन्होंने तीन साढ़े तीन वर्ष तक शिक्षा दी किन्तु उनकी शिक्षा केवल शाब्दिक नहीं थी वरन् उन्होंने अनेक रोगियों को स्वस्थ्य किया, मृतकों को जीवित किया, दुष्टात्माओं को निकाला। उनके एक शिष्य ने यंह कहा कि –

'प्रभु येशु ने अनेक आश्चर्यपूर्ण चिन्ह अपने शिष्यों के सम्मुख दिखाए जिनका विवरण इस पुस्तक में नहीं लिखा है, परन्तु जिन चिन्हों का विवरण लिखा गया है, वह इसलिए लिखा गया है कि तुम विश्वास करो कि येशु ही मसीह और परमेश्वर के पुत्र हैं ; और अपने इस विश्वास के द्वारा उनके नाम से जीवन प्राप्त करो।'[13]

प्रभु येशु इस्राएल देश के गलील प्रदेश के रहने वाले थे। उन्होंने इसी प्रदेश से इस सन्देश के द्वारा अपना सेवा–कार्य आरम्भ किया था। उनके एक शिष्य ने इस प्रकार लिखा है –

योहन के बन्दी होने के पश्चात् प्रभु येशु गलील प्रदेश में आए और परमेश्वर का शुभ सन्देश घोषित किया। उनका कथन था, 'समय पूरा हुआ और परमेश्वर का राज्य निकट आ पहुँचा है। हृदय–परिवर्तन करो और परमेश्वर के शुभ–सन्देश पर विश्वास करो।'[14] उन्होंने, परमेश्वर का राज्य क्या है यह समझाने के लिए निम्नलिखित दृष्टांत लोगों को सुनाए :

प्रभु येशु ने एक और दृष्टान्त उनके सामने रखा: 'परमेश्वर का राज्य राई के बीज के समान है, जिसे किसी मनुष्य ने लिया और अपने खेत में बो दिया। वह सब बीजों से छोटा होता है, किन्तु बढ़कर समस्त पौधों से विशाल हो जाता है; और ऐसा वृक्ष बनता है कि उसकी शाखाओं में आकाश के पक्षी आकर बसेरा करते हैं।'

प्रभु येशु ने एक और दृष्टान्त उन्हें बताया परमेश्वर का राज्य खमीर के समान है, जिसे किसी स्त्री ने लिया और दस किलो मैदे में मिला दिया, और होते–होते सब में खमीर उठ आया।[15]

छिपा खजाना

"स्वर्ग का राज्य खेत में छिपे हुए खजाने के सदृश है, जिसे कोई मनुष्य पाता है और छिपा देता है। तब वह उमंग में जाता और अपना सब कुछ बेच कर उस खेत को खरीद लेता है।

बहुमूल्य मोती

फिर, स्वर्ग का राज्य उस व्यापारी के सदृश है जो उत्तम मोतियों की खोज में था। जब उसे एक बहुमूल्य मोती मिला तब उसने जाकर अपना सब कुछ बेच दिया और उस मोती को मोल ले लिया।

एक चित्रकार की दृष्टि से प्रभु येशु के जन्म का दृश्य जब पूर्व देश के ज्योतिषी उनका दर्शन करने आए (मत्ती 2:1)

आधुनिक अज्ञात कलाकार की दृष्टि में पालक यूसुफ, माँ मरियम एवं बारह वर्षीय प्रभु येशु
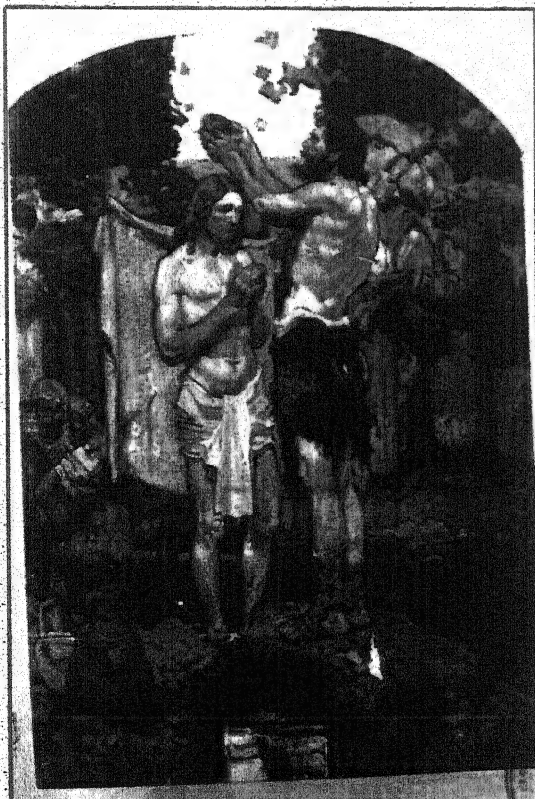
प्रभु येशु का सन्त योहन बपतिस्मा-दाता के हाथों से बपतिस्मा
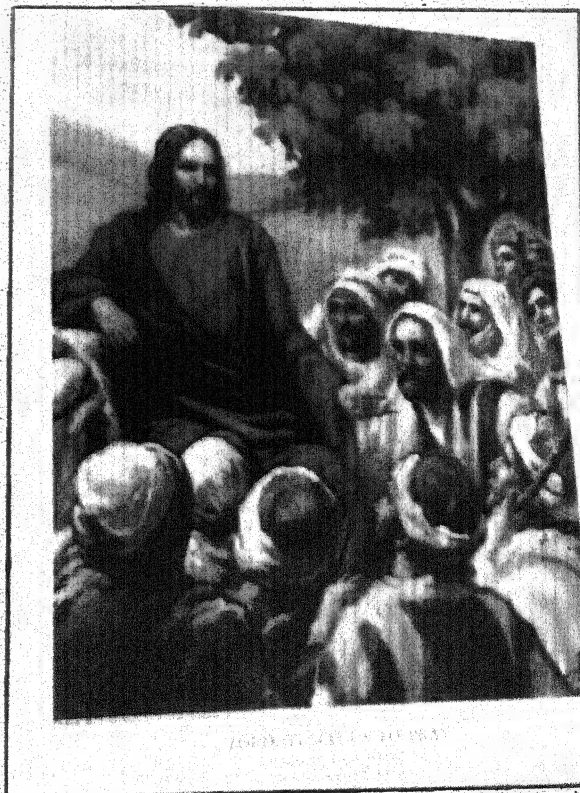
प्रभु येशु और उनके शिष्य

जाल का दृष्टान्त

फिर, स्वर्ग का राज्य समुद्र में डाले हुए उस जाल के सदृश है, जो हर तरह की मछलियाँ बटोर लाता है। जाल के भर जाने पर मछुए उसे किनारे खींच लेते हैं। तब वे बैठ कर अच्छी मछलियाँ चुन–चुन कर टोकरियों में जमा करते हैं और खराब मछलियाँ फेंक देते हैं। संसार के अन्त में ऐसा ही होगा। स्वर्गदूत आकर धर्मियों में से दुष्टों को अलग करेंगे और उन्हें आग के कुण्ड में झोंक देंगे। वहाँ वे लोग रोयेंगे और दाँत पीसते रहेंगे।[16]

पर्वतीय प्रवचन – प्रभु येशु के तमाम उपदेशों में से उनका पर्वतीय प्रवचन सर्वोत्कृष्ट माना जाता है, जिसको स्वयं महात्मा गाँधी अत्यधिक पसन्द करते थे। जिसका उल्लेख महात्मा गाँधी ने अपनी पुस्तक 'सत्य के प्रयोग– 'आत्मकथा' तथा यंग इण्डिया नामक अखबार 22/12/1927, पृष्ठ– 426 में इसका उल्लेख किया है :

धन्य हैं वे जो मन के दीन हैं, क्योंकि
परमेश्वर का राज्य उनका है।
धन्य हैं वे जो शोक करते हैं, क्योंकि
उन्हें शान्ति प्राप्त होगी।
धन्य हैं वे जो विनम्र हैं, क्योंकि
वे पृथ्वी के अधिकारी होंगे।
धन्य हैं वे जो धर्म के भूखे और प्यासे हैं, क्योंकि
वे तृप्त किए जाएगें।
धन्य हैं वे जो दयावान हैं, क्योंकि
उन पर दया होगी।
धन्य हैं वे जिनके हृदय शुद्ध हैं, क्योंकि
वे परमेश्वर को देखेंगे।
धन्य हैं वे जो शान्ति की स्थापना करते हैं, क्योंकि
वे परमेश्वर के पुत्र कहलाएंगे।
धन्य हैं वे जो धर्म के कारण सताए जाते हैं, क्योंकि
परमेश्वर का राज्य उनका है।[17]

प्रभु येशु ने लोगों को परमेश्वर के विषय में यह सिखाया है कि परमेश्वर पिता के सदृश है और वह हमें अपनी सन्तान मानता है। अतः हमें उसे पितावत् प्रेम करना चाहिए।

चिन्ता से मुक्ति

'आकाश के पक्षियों को देखोः वे न बोते हैं, न काटते हैं, और न खलिहान रखते हैं, परन्तु तुम्हारा स्वर्गिक पिता उनका पालन करता है। क्या तुम उनसे श्रेष्ठ नहीं हो?'

प्रार्थना के सम्बन्ध में प्रतिज्ञा

'माँगो तो तुम्हें दिया जाएगा। ढूँढ़ो तो तुम पाओगे। खटखटाओगे तो तुम्हारे लिए खोला जाएगा। जो कोई माँगता है, उसे मिलता है; जो ढूँढ़ता है, वह पाता है ; और जो खटखटाता है, उसके लिए खोला जाता है।'

प्रमुख आज्ञा

'गुरुजी, व्यवस्था में कौन–सी आज्ञा बड़ी है?' प्रभु येशु ने उनसे कहा, 'तू अपने प्रभु परमेश्वर को अपने सम्पूर्ण हृदय, सम्पूर्ण जीवन और सम्पूर्ण बुद्धि से प्रेम कर। यही बड़ी और पहली

आज्ञा है। इसी के समान दूसरी यह है कि अपने पड़ोसी को अपने समान प्रेम कर। समस्त व्यवस्था और नबियों की शिक्षा का आधार ये ही दो आज्ञाएँ हैं।'

धन या शाश्वत जीवन

एक युवक ने समीप आकर प्रभु येशु से कहा, 'गुरूजी, मैं कौन–सा अच्छा कार्य करूँ जिससे मुझे शाश्वत जीवन प्राप्त हो?' प्रभु येशु बोले, 'तू मुझसे अच्छाई के सम्बन्ध में क्यों पूछता है? केवल एक अच्छा है (अर्थात् पिता परमेश्वर)। यदि तू शाश्वत जीवन में प्रवेश करना चाहता है तो परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन कर। वह बोला, 'कौन–सी आज्ञाएँ?' प्रभु येशु ने कहा, 'हत्या न कर, व्यभिचार न कर, चोरी न कर, झूठी साक्षी ने दे, अपने माता–पिता का आदर कर और अपने पड़ोसी को अपने समान प्रेम कर।'

दूसरों को पाप में फँसाना

प्रलोभनों के कारण संसार को धिक्कार है। मनुष्य प्रलोभन में तो पड़ेगा पर धिक्कार है उसको जिसके द्वारा मनुष्य प्रलोभन में पड़ता है। यदि तुम्हारा हाथ अथवा पैर तुम्हें पाप में फँसाया तो उसे काटकर अलग फेंक दो। लूले या लंगड़े होकर जीवन में प्रवेश करना इससे कहीं अच्छा है कि दो हाथ–पैर रहते हुए तुम अनन्त अग्नि में डाले जाओ। यदि तुम्हारी आँख तुम्हें पाप में फँसाए तो उसे निकाल कर फेंक दो। काने होकर जीवन में प्रवेश करना इससे कहीं अच्छा हैं कि दो आँखे होते हुए तुम अग्निमय नरक में डाले जाओ।

विनम्रता की शिक्षा

उस समय शिष्यों ने आकर प्रभु येशु से पूछा, 'परमेश्वर के राज्य में सबसे बड़ा कौन है?' प्रभु येशु ने एक बालक को अपने पास बुलाकर उनके बीच में खड़ा किया और कहा 'मैं तुमसे सच कहता हूँ: जब तक तुम में हृदय–परिवर्तन न हो और तुम बालकों के समान न बनो तब तक तुम परमेश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकोगे। जो मनुष्य अपने आपको इस बालक के समान छोटा मानेगा, वह परमेश्वर के राज्य में सबसे बड़ा है।'[18]

आदर्श प्रार्थना

प्रभु येशु की एक और शिक्षा उल्लेखनीय है कि हमें परमेश्वर से किस प्रकार प्रार्थना करना चाहिए।

प्रभु येशु ने उन लोगों से यह दृष्टान्त कहा जो अपने को धार्मिक मानते थे, और अन्य सभी को तुच्छ समझते थे। प्रभु येशु ने कहा: 'दो मनुष्य मन्दिर में प्रार्थना करने गए। एक फरीसी था और दूसरा कर लेने वाला। फरीसी खड़े होकर मन ही मन यों प्रार्थना करने लगा, "हे परमेश्वर, मैं तुझको धन्यवाद देता हूँ कि मैं अन्य लोगों– अत्याचारियों, अधर्मियों और व्यभिचारियों के समान नहीं हूँ: और न इस कर लेने वाले के समान हूँ। मैं सप्ताह में दो बार उपवास करता हूँ। मैं अपनी समस्त आय का दसवाँ अंश तुझे चढ़ाता हूँ।"

किन्तु कर लेने वाले ने आकाश की ओर आँखे तक न उठाई, वरन् दूर खड़े होकर और छाती पीटकर कहा, "हे परमेश्वर, मुझ पापी पर दया कर।" प्रभु येशु ने कहा, "मैं तुमसे कहता हूँ: उस पहले वाले को नहीं वरन् इसको परमेश्वर ने अपनी दृष्टि में धार्मिक माना और वह शान्तिपूर्वक अपने घर लौटा। प्रत्येक मनुष्य जो अपने आपको ऊँचा करता है, नीचा किया जाएगा; परन्तु जो अपने आपको नीचा करता है, वह ऊँचा किया जाएगा।'[19]

गुप्त प्रार्थना

जब तुम प्रार्थना करो तब पाखंडियों के सदृश मत बनो, क्योंकि उन्हें सभागृहों और चौराहों

पर खड़े होकर प्रार्थना करना प्रिय लगता है कि लोग उन्हें देखें। मैं तुमसे सच कहता हूँ: वे अपना फल पा चुके हैं।

जब तुम प्रार्थना करो तब अपने कमरे में जाओ, द्वार बन्द करो और अपने पिता से, जो गुप्त स्थान में है, प्रार्थना करो और तुम्हारा पिता, जो गुप्त कार्य को भी देखता है, तुम्हें प्रतिफल देगा। प्रार्थना करते समय अन्य जातियों के समान बक–बक मत करो, क्योंकि उनका विचार है कि बहुत बोलने से उनकी प्रार्थना सुनी जाएगी। तुम उनके समान न बनो; क्योंकि तुम्हारा पिता तुम्हारे माँगने से पूर्व ही जानता है कि तुम्हें किन वस्तुओं की आवश्यकता है। अतः इस प्रकार प्रार्थना करो :

"हे हमारे स्वर्गिक पिता,
तेरा नाम पवित्र माना जाए,
तेरा राज्य आए,
तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है,
वैसे पृथ्वी पर भी हो।
हमें आज उतना भोजन दे जो हमारे
लिए आवश्यक है।
हमारे अपराध क्षमा कर, जैसे हम दूसरों के अपराध क्षमा करते हैं।
हमारे विश्वास को मत परख, वरन् शैतान से हमें बचा।"[20]

अधर्मी न्यायाधीश

प्रभु येशु ने यह बतलाने के लिए कि सदा प्रार्थना में लगे रहना चाहिए और निराश नहीं होना चाहिए, एक दृष्टान्त कहा :

'किसी नगर में एक न्यायाधीश रहता था। वह न परमेश्वर से डरता था और न मनुष्यों का आदर–सम्मान करता था। उसी नगर में एक विधवा रहती थी। वह उसके पास आकर कहा करती थी, "न्याय कीजिए और मेरे मुद्दई से मुझे बचाइए।" कुछ समय तक तो न्यायाधीश न माना। पर पीछे उसने अपने मन में कहा, "यद्यपि मैं न परमेश्वर से डरता हूँ और न मनुष्यों का आदर–सम्मान करता हूँ, परन्तु यह विधवा मुझे सताती है, इसलिए मै इसका न्याय कर दूँगा जिससे बार–बार आकर यह मुझे कष्ट न दे।"

प्रभु येशु ने कहा, 'ध्यान दो, इस अधर्मी न्यायाधीश ने क्या कहा ? तो क्या परमेश्वर अपने मनोनीत लोगों का, जो दिन–रात उसकी दुहाई देते हैं, न्याय नहीं करेगा? क्या वह उनके लिए देर करेगा ?'[21]

प्रभु येशु पृथ्वी के प्रायः समस्त लोगों में इसलिए भी लोकप्रिय हुए क्योंकि उन्होंने मनुष्य जाति को यह सिखाया है कि वे सब लोग चाहे वे किसी भी कौम, जाति, रंग, गरीब, अमीर क्यों न हो वे सब परमेश्वर की सन्तान हैं और परमेश्वर की सन्तान होने के कारण सब बराबर हैं। उन्होंने कहा : मैं तुम्हें एक नई आज्ञा देता हूँ: एक दूसरे से प्रेम करो, जैसा मैंने तुमसे प्रेम किया है, वैसा ही तुम एक–दूसरे से प्रेम करो।[22]

दूसरों पर दोष न लगाओ जिससे तुम पर दोष न लगाया जाए; क्योंकि जिस माप से तुम दोष लगाते हो, उसी माप से तुम पर भी दोष लगाया जाएगा, और जिस नाप से तुम नापते हो, उसी नाप से तुम्हारे लिए नापा जाएगा।

तुम अपने भाई की आँख का तिनका क्यों देखते हो ? अपनी आँख का लट्ठा तुम्हें नहीं सूझता ? तुम अपने भाई से कैसे कह सकते हो कि "आओ, मैं तुम्हारी आँख से तिनका निकाल दूँ" जबकि स्वयं तुम्हारी आँख में लट्ठा है?[23]

उत्तम आचरण

जैसा तुम चाहते हो कि मनुष्य तुम्हारे साथ करे वैसा तुम भी उनके साथ करो; क्योंकि व्यवस्था–शास्त्र और नबियों की यही शिक्षा है।[24]

सच्चा नाता

उस समय प्रभु येशु भीड़ से घिरे हुए थे, और लोगों से बातें कर रहे थे। उनकी माता और भाई बाहर खड़े थे और उनसे बातें करना चाहते थे। किसी ने प्रभु येशु को बताया 'देखिए, आपकी माता और आपके भाई बाहर खड़े हैं और आपसे बातें करना चाहते हैं।'

प्रभु येशु ने समाचार देने वाले को उत्तर दिया 'कौन है मेरी माता ? और कौन हैं मेरे भाई?' फिर अपने शिष्यों की ओर हाथ बढ़ाकर कहा 'देखो, ये हैं मेरी माता और मेरे भाई : क्योंकि जो मनुष्य मेरे स्वर्गिक पिता की इच्छा के अनुसार कार्य करता है, वही मेरा भाई, मेरी बहिन और मेरी माता है।'[25]

जिस शिक्षा से उनके जाति भाई अर्थात् यहूदी धर्म गुरू नाराज हुए और उनका विरोध करने लगे वह यह थी कि उन्होंने उन नियमों, कानूनों, विधि–विधानों का विरोध किया जो अपना महत्व खो चुके थे, और मात्र कानून और प्रथा बनकर रह गए थे और उनके स्थान पर नई शिक्षा दी जो कट्टर यहूदी धर्म गुरूओं को पसन्द न थी। प्रभु येशु ने कहा :

तुम अपने शत्रुओं से प्रेम करो, उनकी भलाई करो और पुनः पाने की आशा न रखकर उधार दो, तो तुम्हारा पुरस्कार बड़ा होगा और तुम सर्वोच्च परमेश्वर की सन्तान कहलाओगे, क्योंकि परमेश्वर कृतघ्न और दुष्ट मनुष्यों पर भी कृपा करता है। दयालु बनो, जैसा तुम्हारा पिता दयालु है। दोष न लगाओ, तो तुम पर भी दोष न लगाया जाएगा। किसी के विरुद्ध निर्णय न दो, तो तुम्हारे विरुद्ध निर्णय नहीं होगा। क्षमा करो, तो तुम्हें भी क्षमा प्राप्त होगी। दो तो तुम्हें भी दिया जाएगा। लोग दबा–दबाकर, हिला–हिलाकर, बाहर गिरता हुआ माप तुम्हारी गोद में डालेगें; क्योंकि जिस माप से तुम मापते हो, उसी माप से तुम्हारे लिए मापा जाएगा।[26]

गुप्त दान

सावधान! मनुष्यों के सामने उन्हें दिखाने के लिए अपने धर्म–कार्य मत करो, नहीं तो अपने पिता से, जो स्वर्ग में है, कुछ फल न पाओगे। जब तुम दान दो तब इसका ढिंढोरा न पीटो, जैसे पाखंडी मनुष्य सभागृहों और गलियों में करते हैं कि लोग उनकी प्रशंसा करें। जब तुम दान दो तब तुम्हारा यह कार्य इतना गुप्त हो कि तुम्हारा बायाँ हाथ भी न जाने कि दाहिना हाथ क्या कर रहा है। तुम्हारा दान गुप्त हो ; तब तुम्हारा पिता, जो गुप्त कार्य को भी देखता है, तुम्हें प्रतिफल देगा।[27]

क्षमा धर्म

पतरस ने प्रभु येशु के समीप आकर कहा, 'प्रभु, कितनी बार मेरा भाई मेरे विरुद्ध अपराध करे, और मैं उसे क्षमा करता रहूँ ? क्या सात बार ?' प्रभु येशु बोले, 'मैं तुमसे कहता हूँ, सात बार नहीं, वरन् सात से सत्तर गुने तक।'[28]

स्वार्थ त्याग पर शिक्षा

प्रभु येशु ने मनुष्य के जीवन को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है। उनका कहना है कि वह मनुष्य धन्य है जो अपना जीवन दूसरों के लिए जीते हैं। इसी कारण से मसीही समाज, समाज–सेवक माना जाता है और ये जगह–जगह जाकर दूसरों की सेवा करतें हैं। इस सम्बन्ध में प्रभु येशु ने बड़े महत्वपूर्ण प्रवचन दिए हैं। जैसे, यदि कोई अपना प्राण बचाना चाहेगा तो वह उसे खोएगा; परन्तु जो कोई अपना प्राण मेरे लिए खोएगा, वह उसे बचाएगा।यदि कोई मनुष्य समस्त संसार प्राप्त कर

ले पर अपना प्राण खो दे तो इससे क्या लाभ ? मनुष्य अपने प्राण के बदले में क्या देगा?[29]

किससे डरना चाहिए

उनसे मत डरो जो शरीर को मार डालते हैं, पर आत्मा को नहीं मार सकते ; वरन् उससे डरो जो आत्मा और शरीर दोनों को नरक में नष्ट कर सकता है।

गौरैया अत्यन्त सस्ते दाम में बिकती है एक पैसे में दो गौरैया! पर उनमें से एक भी तुम्हारे पिता के जाने बिना पृथ्वी पर नहीं गिरती। तुम्हारे तो सिर के बाल भी सब गिने हुए हैं इसलिए डरो मत ; तुम बहुत गौरैयों से श्रेष्ठ हो।[30]

परम्परा पालन का प्रश्न

फरीसी और यरूशलेम से आए हुए कुछ शास्त्री, प्रभु येशु के पास एकत्र हुए। उन्होंने देखा कि प्रभु येशु के कुछ शिष्य 'अशुद्ध' अर्थात् बिना धुले हाथों से भोजन कर रहे हैं क्योंकि फरीसी और जनसाधारण यहूदी प्राचीन धर्म परम्परा का पालन करते है और विधि के अनुसार हाथ धोए बिना भोजन नहीं करते। वे बाजार से आने पर जब तक स्नान न कर लें, भोजन नहीं करते और भी अनेक परम्परायें हैं जिनका वे पालन करते है, उदाहरण के लिए : खाटों, कटोरों, लोटों और कांसे के पात्रों का धोना–माँजना।

फरीसी और शास्त्रियों ने प्रभु येशु से पूछा, 'क्या कारण है कि आपके शिष्य धर्मवृद्धों की परम्परा के अनुसार आचरण नहीं करते, वरन् "अशुद्ध" हाथों से भोजन करते है ? प्रभु येशु ने उत्तर दिया कि नबी यशायाह ने तुम पाखण्डियों के विषय में ठीक ही नबूवत कीति। धर्म शास्त्र में उनका यह लेख है : "ये लोग होठों से मेरा आदर करते हैं, परन्तु इनका ह्रदय मुझसे दूर है ; ये व्यर्थ मेरी उपासना करते हैं ; क्योंकि ये मनुष्य के द्वारा बनाए गए नियमों को ऐसे सिखाते हैं मानो धर्म–सिद्धान्त हों।"

तुम मनुष्यों की परम्परा का पालन तो करते हो किन्तु परमेश्वर की आज्ञा का उल्लंघन। प्रभु येशु ने उनसे यह भी कहा, 'अपनी परम्परा के पालन के लिए तुम कितनी चतुराई से परमेश्वर की आज्ञा का उल्लंघन कर देते हो। मूसा का कथन है, "अपने माता–पिता का आदर कर" और "जो माता–पिता को बुरा कहे उसे प्राण–दण्ड दिया जाए।" परन्तु तुम्हारा कथन है कि यदि कोई मनुष्य अपने पिता तथा अपनी माता से कहे, "मुझसे जो कुछ प्राप्त होना था वह 'कुर्बान' अर्थात् परमेश्वर को अर्पित है", तो फिर तुम उसे पिता अथवा माता के लिए कुछ नहीं करने देते। इस प्रकार तुम अपनी परम्परा सिखाकर परमेश्वर के वचन को बेकार कर देते हो। ऐसे ही अनेक कार्य तुम करते हो।

प्रभु येशु ने जनसमूह को फिर अपने पास बुलाया और कहा, तुम सब मेरी बात सुनो और समझो। ऐसी कोई वस्तु नहीं जो बाहर से मनुष्य के भीतर आकर उसे अशुद्ध कर सके; परन्तु जो वस्तुएँ मनुष्य में से बाहर निकलती हैं, वे उसे अशुद्ध करती हैं।[31]

जब प्रभु येशु जन समूह के पास से घर के भीतर आए तब तक उनके शिष्यों ने इस दृष्टान्त का अर्थ पूछा। प्रभु येशु ने उनसे कहा, 'क्या तुम भी इतने निर्बुद्धि हो? क्या तुम्हारी समझ में नहीं आता कि कोई वस्तु जो बाहर से मनुष्य के भीतर जाती है, उसे अशुद्ध नहीं कर सकती; क्योंकि वह उसके मन में नहीं वरन् पेट में जाती है और मल द्वारा बाहर निकल जाती है' – इस प्रकार प्रभु येशु ने सब खाद्य–पदार्थों को पवित्र ठहराया। उन्होंने आगे कहा, 'जो मनुष्य के भीतर से निकलता है, वही उसे अशुद्ध करता है ; क्योंकि मनुष्य के भीतर से अर्थात् मन से बुरी–बुरी योजनाएँ निकलती हैं : व्यभिचार, चोरी, हत्या, परस्त्रीगमन, लोभ और द्वेष के काम, कपट, निर्लज्जता, ईर्ष्या,

निंदा, उद्दण्डता और मूर्खता – ये सब बुराइयाँ मन से निकलती हैं और मनुष्य को अशुद्ध करती हैं।'[32]

'यदि तुम अपनी भेंट वेदी पर अर्पण कर रहे हो, और वहाँ तुम्हें याद आए कि तुम्हारा भाई तुमसे किसी कारण अप्रसन्न है, तो अपनी भेंट वेदी के सम्मुख छोड़ दो, पहले जाकर अपने भाई से मेल करो, और तब आकर भेंट अर्पण करो।[33] जाकर सीखो कि परमेश्वर के इस वचन का क्या अर्थ है: "मैं बलिदान नहीं वरन् दया चाहता हूँ। मैं धार्मिकों को नहीं; वरन् पापियों को बुलाने आया हूँ।"[34]

प्रभु येशु ने कहा, 'तुममें से ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसके पास एक ही भेड़ हो, और वह विश्राम–दिवस पर गड्ढे में गिर जाए, तो वह उसे पकड़कर न निकाले ? फिर भेड़ की अपेक्षा मनुष्य कितना श्रेष्ठ है। अतः विश्राम–दिवस पर भलाई करना व्यवस्था की दृष्टि में उचित कार्य है।'[35]

प्रभु येशु कहते हैं : मानव–पुत्र की महिमा होने का समय आ पहुँचा है। मैं तुमसे सच–सच कहता हूँ : जब तक गेहूँ का दाना भूमि पर गिर कर मर न जाए अकेला रहता है; परन्तु यदि वह मर जाए तो बहुत फलता है। 'जो अपने प्राण से मोह करता है, वह उसे नष्ट करता है; पर जो इस संसार में अपने प्राण से बैर करता है, वह उसे शाश्वत जीवन के लिए सुरक्षित रखता है।[36]

प्रभु येशु ने अपनी शिक्षाएँ दृष्टान्तों के माध्यम से दी हैं जो प्रायः महान धर्म गुरू अपनाता है। ऐसे लगभग चालीस दृष्टान्त बाइबिल में पाए जाते हैं, जिनका सम्बन्ध प्रभु येशु की शिक्षाओं के स्पष्टीकरण से था। ऐसे दो दृष्टान्त अत्यन्त लोकप्रिय हैं उनमें से एक का सम्बन्ध मनुष्य के पश्चाताप से है और दूसरे का सम्बन्ध मनुष्य के दयापूर्ण व्यवहार से है, कि छोटे से छोटा मनुष्य भी अपने दयापूर्ण व्यवहार से दूसरे लोगों को शिक्षा दे सकता है :

1. उड़ाऊ पुत्र का दृष्टान्त – प्रभु येशु ने कहा, 'किसी मनुष्य के दो पुत्र थे। उनमें से छोटे ने पिता से कहा, "पिताजी, सम्पत्ति से मेरा अंश मुझे दीजिए।" पिता ने सम्पत्ति उनमें बाँट दी।

"बहुत दिन न बीते थे कि छोटा पुत्र अपना सबकुछ एकत्र कर किसी दूर देश को चला गया और भोग–विलास में अपनी सम्पत्ति उड़ा दी। जब वह अपना सबकुछ व्यय कर चुका तब उस देश में भयंकर अकाल पड़ा और वह कंगाल हो गया, इसलिए उसने उस देश के एक नागरिक के यहाँ आश्रय लिया, जिसने उसे अपने खेतों में सुअर चराने भेजा। जो फलियाँ सुअर खाते थे, उनसे अपना पेट भरने के लिए वह तरसता था, पर उसे कोई कुछ नहीं देता था। तब वह अपने होश में आया और यह कहने लगा, "मेरे पिता के कितने ही मजदूरों को भर–पेट भोजन मिलता है, और मैं यहाँ भूखों मर रहा हूँ। मैं उठकर अपने पिता के पास जाऊँगा और उनसे कहूँगा, 'पिताजी, मैंने परमेश्वर के विरुद्ध और आपके प्रति पाप किया है। अब मैं इस योग्य नहीं हूँ कि आपका पुत्र कहलाऊँ। मुझे अपने एक मजदूर के समान रख लीजिए।

"तब वह उठा और अपने पिता के पास चला। अभी वह दूर ही था कि उसके पिता ने उसे देखा और वह दया से भर गया। पिता ने दौड़कर उसे गले लगा लिया और उसको बहुत प्यार किया।

"पुत्र ने उससे कहा, "पिताजी, मैंने परमेश्वर के विरुद्ध और आपके प्रति पाप किया है। अब मैं इस योग्य नहीं हूँ कि आपका पुत्र कहलाऊँ।" परन्तु पिता ने अपने सेवकों से कहा, "शीघ्रता करो, अच्छे से अच्छा वस्त्र निकाल कर इसे पहिनाओ तथा इसके हाथ में अंगूठी और पैर में जूते पहिनाओ। मोटा–ताजा पशु लाकर काटो कि हम खाएँ और आनन्द मनाएँ ; क्योंकि मेरा पुत्र मर गया था, परन्तु फिर से जी गया है; खो गया था, और फिर से मिल गया है।" इस प्रकार वे आनन्द मनाने लगे।

"उसका ज्येष्ठ पुत्र खेत में था। लौटते समय घर के समीप पहुँचने पर उसे संगीत और नाचने–गाने की आवाज सुनाई पड़ी। उसने एक सेवक को बुलाकर पूछा, "ये सब क्या हो रहा है?" सेवक ने बताया, "आपके भाई आए हैं, आपके पिताजी ने मोटा पशु काटा है; क्योंकि उन्होंने उनको सकुशल पाया है।" इस पर वह क्रुद्ध हुआ। वह भीतर नहीं जाना चाहता था। तब उसका पिता बाहर आकर उसे मनाने लगा। उसने अपने पिता से कहा, "देखिए, मैं इतने वर्षो से आपकी सेवा कर रहा हूँ और मैंने कभी आपकी आज्ञा नहीं टाली; तो भी आपने मुझे कभी बकरी का बच्चा तक न दिया कि मैं अपने मित्रों के साथ आनन्द मनाता, परन्तु जब आपका यह पुत्र, जिसने आपकी सम्पत्ति वेश्याओं में उड़ा दी हैं, आया तो उसके लिए आपने पला हुआ पशु कटवाया।"

पिता ने उससे कहा, "पुत्र तुम तो सदा मेरे साथ हो; और जो कुछ मेरा है, वह तुम्हारा है, परन्तु हमें आमोद–प्रमोद करना और आनन्द मनाना उचित है; क्योंकि तुम्हारा भाई मर गया था, फिर जी गया है; खो गया था, फिर मिल गया है।"[37]

2. दयालु सामरी – शाश्वत जीवन की प्राप्ति के विषय में एक आचार्य प्रभु येशु को उत्तर देते हैं, 'तू अपने प्रभु परमेश्वर को अपने सम्पूर्ण हृदय, सम्पूर्ण जीवन, सम्पूर्ण शक्ति और सम्पूर्ण बुद्धि से प्रेम कर और अपने पड़ोसी को अपने समान प्रेम कर।' प्रभु येशु ने उससे आकर कहा, 'तुमने ठीक उत्तर दिया। यही किया करो, तो तुम शाश्वत जीवन पाओगे।' परन्तु व्यवस्था के आचार्य ने अपने प्रश्न को ठीक प्रमाणित करने के लिए प्रभु येशु से पूछा, 'पर मेरे पड़ोसी है कौन?' प्रभु येशु ने उत्तर दिया, 'एक मनुष्य येरूशलेम से यरीहो नगर जा रहा था। तब वह मार्ग में डाकुओं से घिर गया। डाकुओं ने उसे लूट लिया और मारपीट कर अधमरा छोड़कर चलते बने। संयोगवश एक पुरोहित उसी मार्ग से जा रहा था। उसने उसे देखा तो कतरा कर चला गया।

इसी प्रकार एक लेवी भी उस स्थान पर आया। उसने उसे देखा और कतरा कर चला गया। अब एक सामरी[38] यात्री उसके समीप से निकला। वह उसे देखकर दया से भर उठा। वह उसके निकट गया। उसने उसके घावों पर तेल तथा दाखरस डालकर पट्टियाँ बाँधी तब वह उसे अपनी सवारी पर बैठाकर एक सराय में ले गया और वहाँ उसकी सेवा और देखभाल की।

दूसरे दिन उसने चाँदी के दो सिक्के निकाल कर सराय के मालिक को दिए और कहा, "इसकी देखभाल करना। यदि आपका अधिक खर्च होगा तो लौटने पर मैं चुका दूँगा।"

प्रभु येशु ने व्यवस्था के आचार्य से पूछा, 'तुम्हारे विचार में, इन तीनों में से कौन डाकुओं के हाथो पड़े उस मनुष्य का पड़ोसी सिद्ध हुआ?' व्यवस्था के आचार्य ने कहा, 'जिसने उसके प्रति दया दिखाई।' प्रभु येशु ने उससे कहा, 'जाओ, तुम भी ऐसा ही करो।[39]

प्रभु येशु का क्रूस पर चढ़ाया जाना –

प्रभु येशु की क्रांतिकारी शिक्षाओं के कारण यहूदी धर्मगुरू और अगुवे अत्यन्त विचलित हो गए और उन्होंने प्रभु येशु खीस्त की हत्या करने का निश्चय किया उन्हें इस कार्य को अंजाम देने का अवसर प्राप्त हो गया।

यहूदियों* का राष्ट्रीय पर्व फसह निकट आ गया। इस फसह के पर्व पर विश्व में बसे हुए यहूदी इस पर्व को मनाने के लिए यरूशलेम नगर में आए जहाँ यहूदियों का एक मात्र मन्दिर था और जहाँ यहूदी फसह पर्व के उपलक्ष्य में मेमने की बलि चढ़ाता था। तत्कालीन इतिहासकार जोसिकस के अनुसार फसह के पर्व के दिनों में यरूशलेम में लगभग ग्यारह देशों** से 30 लाख यहूदी आए थे।

---

* *(यहूदियों में सदूकी और फरीसी के दो ग्रुप थे)*

** *पारथी, मादी, एलामी, मेसोपोटामिया, यहूदा, कप्पदूकिया, पोंतुस, आसिया, फ्रूगिया, पंफूलिया, मिस्त्र तथा कुरेन के निकटवर्ती लीबिया देश के निवासी, रोम के प्रवासी, यहूदी तथा नव यहूदी और क्रेत तथा अरब के निवासी।*

प्रभु येशु स्वयं यहूदी थे। अतः उन्होंने भी यह निश्चय किया कि वह फसह का पर्व मनाने के लिए यरूशलेम जाएंगे। यद्यपि यरूशलेम जाना मौत के मुँह में जाना था ; क्योंकि यहूदी धर्मगुरू उनकी हत्या के मौके की तलाश में थे। फसह पर्व के दौरान जनता आपस में एक–दूसरे से यह पूँछ रहे थे –

"वे येशु की खोज में थे और मन्दिर में खड़े हुए आपस में बातचीत कर रहे थे, 'तुम्हारा क्या विचार है? क्या वे पर्व में नहीं आएंगे ?' उधर महापुरोहितों और फरीसियों ने आदेश दे रखा था कि यदि किसी को यह पता हो जाए कि येशु कहाँ है तो वह व्यक्ति उन्हें सूचना दे जिससे वे येशु को पकड़ सकें।"[40] दूसरे दिन बड़ी भीड़ ने, जो पर्व पर आई थी, सुना कि प्रभु येशु यरूशलेम आ रहे हैं।[41]

<u>यरूशलेम में प्रभु येशु का प्रवेश</u> – प्रभु येशु और उनके शिष्य यरूशलेम के निकट पहुँचे। जब वे जैतून पहाड़ पर बेतूफगे के समीप आए तब प्रभु येशु ने दो शिष्यों को यह कह कर भेजा, 'अपने सामने के गाँव में जाओ। वहाँ पहुँचते ही तुम्हें एक गदही मिलेगी। वह खूँटे से बँधी होगी। उसके साथ उसका बच्चा होगा। उनको खोलकर मेरे पास लाओ। यदि कोई तुमसे कुछ बोले तो कह देना, "प्रभु को इनकी आवश्यकता है" और वह तुरन्त भेज देगा।[42]

शिष्य गए और उन्होंने प्रभु येशु के आदेश के अनुसार कार्य किया। वे गदही और उसके बच्चे को लाए और उन पर अपनी चादरें डालीं जिन पर प्रभु येशु बैठ गए। बहुत लोगों ने मार्ग में अपनी चादरें बिछायीं और अन्य लोगों ने वृक्षों से डालियाँ काट–काट कर मार्ग में बिछायीं। प्रभु येशु के आगे और उनके पीछे चलने वाली भीड़ यह जयघोष कर रही थी :

'दाऊद के वंशज की जय!
प्रभु के नाम से आने वाले की स्तुति!
स्वर्गलोक में प्रभु की जय!'

जब प्रभु येशु ने यरूशलेम में प्रवेश किया तब समस्त नगर में हलचल मच गई। लोग परस्पर पूँछने लगे, 'यह कौन है?' भीड़ के लोगों ने उन्हें बताया, 'यह गलील के नासरत–निवासी नबी येशु हैं।[43]

<u>प्रभु येशु की हत्या का षड़यन्त्र</u> – प्रभु येशु अपने शिष्यों से बोले, 'तुम जानते हो कि दो दिन के पश्चात् फसह का पर्व है। तब मानव–पुत्र क्रूस पर चढ़ाए जाने के लिए पकड़वाया जाएगा।'

अब काइफा नामक महापुरोहित के आँगन में अन्य महापुरोहित और समाज के धर्मवृद्ध एकत्र हुए। वे परस्पर परामर्श करने लगे कि किस प्रकार येशु को छल से पकड़कर मार डालें; परन्तु वे कहते, 'फसह पर्व के दिनों में नहीं, अन्यथा जनता उपद्रव कर देगी।[44]

<u>यूदस अथवा यहूदा का विश्वासघात</u> – तब बारह शिष्यों में से एक ने, जो यहूदा इस्करियोती कहलाता है, महापुरोहितों के पास जाकर कहा, "यदि मैं येशु को तुम्हारे हाथ में पकड़वा दूँ तो तुम मुझे क्या दोगे ?" उन्होंने चाँदी के तीस सिक्के तौल कर उसे दिए। उस समय से वह प्रभु येशु को पकड़वाने का अनुकूल अवसर ढूँढ़ने लगा।[45]

<u>अन्तिम भोज</u> – अखमीरी रोटी के पर्व के प्रथम दिन शिष्यों ने प्रभु येशु के पास आकर पूँछा, आप कहाँ चाहते है कि हम आपके लिए फसह का भोजन तैयार करें?' उन्होंने कहा, नगर में अमुक के पास जाकर उससे कहो, "गुरूजी कहते हैं कि मेरा समय निकट आ पहुँचा है। मैं तुम्हारे यहाँ अपने शिष्यों के साथ फसह का पर्व मनाऊँगा। जैसा प्रभु येशु ने आदेश दिया था वैसा ही शिष्यों ने किया, और फसह का भोजन तैयार किया। संध्या के समय प्रभु येशु बारह शिष्यों के साथ भोजन करने

बैठे। जब वे भोजन कर रहे थे तब प्रभु येशु ने कहा, ''मैं तुमसे सच कहता हूँ : तुममें से एक शिष्य मुझे पकड़वाएगा।'

इस पर वे अत्यन्त दुःखी हुए और प्रत्येक शिष्य उनसे पूँछने लगा, प्रभु मैं तो नहीं हूँ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'जो मेरे साथ थाली में हाथ डालता है, वही मुझे पकड़वाएगा। मानव–पुत्र तो जैसा धर्मशास्त्र का उसके विषय में लेख है, जा रहा है; परन्तु धिक्कार है उस मनुष्य को जो मानव–पुत्र को पकड़वा रहा है। उस मनुष्य के लिए अच्छा होता कि वह उत्पन्न ही न हुआ होता।'

तब उनके पकड़वाने वाले यहूदा ने कहा, 'गुरू, मैं तो नहीं हूँ ?' उन्होंने कहा, 'तुमने कह दिया।'[46]

<u>प्रभु भोज का अनुष्ठान</u> – भोजन करते समय प्रभु येशु ने रोटी ली, आशीष माँग कर तोड़ी और शिष्यों को दी, और कहा, 'लो खाओ, यह मेरी देह है।' तब उन्होंने कटोरा लिया, और परमेश्वर को धन्यवाद देकर शिष्यों को दिया और कहा, 'तुम सब इसमें से पियो, क्योंकि यह वाचा का मेरा रक्त है जो सब मनुष्यों की पाप–क्षमा के लिए बहाया जा रहा है। मैं तुमसे सच कहता हूँ : दाख का यह रस मैं अब से उस दिन तक नहीं पिऊँगा, जब तक अपने पिता के राज्य में, तुम्हारे साथ नया न पिऊँ।

<u>शिष्यों के पतन के सम्बन्ध में भविष्यवाणी</u> – भजन गाने के पश्चात् प्रभु येशु और उनके शिष्य जैतून पहाड़ पर चले गए। तब प्रभु येशु ने उनसे कहा, 'आज रात को तुम सब का मेरे विषय में पतन होगा, क्योंकि धर्मशास्त्र का यह लेख है, ''मैं चरवाहे पर आघात करूँगा और झुण्ड की भेड़ें बिखर जाएँगी, परन्तु अपने पुनरूत्थान के पश्चात् मैं तुमसे पहले गलील प्रदेश को जाऊँगा। पतरस बोला, 'चाहे आपके विषय में सब का पतन हो जाए, पर मेरा पतन कभी न होगा।' प्रभु येशु ने कहा, 'मैं तुम से सच कहता हूँ, इसी रात को मुर्गे के बाँग देने के पहले तुम तीन बार मुझे अस्वीकार करोगे। पतरस ने कहा, 'चाहे मुझे आपके साथ मरना पड़े तो भी मैं आपको कदापि अस्वीकार नही करूँगा। इस प्रकार अन्य सब शिष्यों ने भी कहा।

<u>गतसमने बाग में प्रभु येशु की प्राण पीड़ा</u> – तब प्रभु येशु अपने शिष्यों के साथ गतसमने नामक स्थान पर आए। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, 'जब तक मैं आगे जाकर प्रार्थना करता हूँ, तुम यहाँ बैठो। वह पतरस और जबदी के दोनों पुत्रों को साथ ले गए। प्रभु येशु व्यथित तथा व्याकुल हो उठे। वह उनसे बोले, 'मैं अत्यन्त व्याकुल हूँ। मेरा मानो प्राण निकल रहा है। तुम यहीं ठहरो और मेरे साथ जागते रहो।' तब वह थोड़ा आगे बढ़े, और मुँह के बल गिरकर प्रार्थना करने लगे, 'मेरे पिता यदि संभव हो तो यह दुःख का प्याला मेरे पास से हट जाए। तो भी जैसा मैं चाहता हूँ वैसा नहीं, वरन् जैसा तू चाहता है वैसा हो। जब शिष्यों के पास लौटे तब उन्हें सोते पाकर पतरस से बोले, 'मेरे साथ एक घंटे जागने की भी सामर्थ्य तुम में नहीं ? तुम सब जागते रहो और प्रार्थना करते रहो कि परीक्षा में न पड़ो। आत्मा तो तैयार है, पर शरीर दुर्बल है।'

वह फिर दूसरी बार गए और यह प्रार्थना की, 'मेरे पिता, यदि यह प्याला मेरे पिए बिना नहीं हट सकता, तो तेरी इच्छा पूरी हो।' प्रभु येशु फिर लौटे। उन्होंने शिष्यों को सोते हुए पाया; क्योंकि उनकी आँखे नींद से भारी हो रही थीं। उन्हें छोड़कर प्रभु येशु पुनः गए और तीसरी बार उन्हीं शब्दों में प्रार्थना की। तब वह शिष्यों के समीप आए और उनसे कहा, 'अब भी सो रहे हो! विश्राम कर रहे हो! देखो, समय आ पहुँचा, मानव–पुत्र पापियों के हाथ पकड़वाया जा रहा है। उठो, हम चलें, देखो, मेरा पकड़वाने वाला निकट आ गया।'

<u>प्रभु येशु का बन्दी होना</u> – प्रभु येशु बोल ही रहे थे कि बारह शिष्यों में से एक अर्थात् यहूदा

आ गया। उसके साथ तलवारें और लाठियाँ लिए बड़ी भीड़ थी जिसे महापुरोहितों और समाज के धर्मवृद्धों ने भेजा था। पकड़वाने वाले ने उन्हें यह संकेत दिया था, 'जिसका मैं चुम्बन करूँ, वही है; उसे पकड़ लेना। वह तुरन्त प्रभु येशु के समीप जाकर बोला, गुरू जी प्रणाम', और उनका चुम्बन किया। प्रभु येशु ने उससे कहा, 'मित्र जिस काम के लिए आए हो, उसे कर लो।' तब लोगों ने पास आकर प्रभु येशु पर हाथ डाले और उन्हें पकड़ लिया। इस पर प्रभु येशु के एक साथी ने हाथ बढ़ाकर अपनी तलवार खींची और महापुरोहित के दास पर चलाकर उसका कान काट दिया।

प्रभु येशु ने उससे कहा, 'अपनी तलवार म्यान में रखो; क्योंकि जो तलवार उठाते है वे तलवार से ही मारे जाएँगे। क्या तुम सोचते हो कि मैं अपने पिता से निवेदन नहीं कर सकता ? क्या वह इसी क्षण मुझे स्वर्गदूतों की बारह सेनाओं से अधिक नहीं भेज देगा? परन्तु तब धर्मशास्त्र का लेख कैसा पूरा होगा जिसके अनुसार ऐसा होना अनिवार्य है ?' उस समय प्रभु येशु ने भीड़ से कहा, 'क्या तुम तलवारें और लाठियाँ लेकर मुझे बन्दी करने आए हो, मानो मैं कोई डाकू हूँ ? मैंने प्रतिदिन मन्दिर में बैठकर तुम्हें उपदेश दिए पर तुमने मुझे नहीं पकड़ा यह सब इसलिए हुआ कि नबियों का लेख पूरा हो।' तब सब शिष्य प्रभु येशु को छोड़कर चले गए।

<u>महापुरोहितों के सम्मुख प्रभु येशु का विचार</u> – प्रभु येशु को पकड़ने वाले उनको महापुरोहित काइफा के पास ले गए, जहाँ शास्त्री और समाज के धर्मवृद्ध एकत्र थे। पतरस भी दूर–दूर प्रभु येशु के पीछे महापुरोहित के भवन के आँगन तक गया और अन्त देखने के लिए भीतर जाकर कर्मचारियों के साथ बैठ गया। इधर महापुरोहित और समस्त धर्म महासभा ने प्रभु येशु को मार डालने के लिए उनके विरुद्ध झूठे प्रमाण ढूँढ़ने का प्रयत्न किया, पर अनेक झूठे गवाहों के आने पर भी प्रमाण न मिला।

अन्त में दो मनुष्य आकर बोले 'इसने कहा था कि मैं परमेश्वर के मन्दिर को गिरा सकता हूँ और तीन दिन में फिर बना सकता हूँ।' इस पर महापुरोहित ने खड़े होकर प्रभु येशु से कहा, 'तू कुछ उत्तर नहीं देता, ये लोग तेरे विरुद्ध क्या साक्षी दे रहे हैं ?' पर प्रभु येशु मौन रहे। महापुरोहित ने कहा, 'मैं तुझे जीवन्त परमेश्वर की शपथ देकर कहता हूँ कि, यदि तू परमेश्वर–पुत्र मसीह है तो हमसे कह दे।' प्रभु येशु बोले, 'आपने कह दिया। मैं आपसे यह भी कहता हूँ कि अब से तुम मानव–पुत्र को सर्वशक्तिमान परमेश्वर की दाहिनी ओर बैठा हुआ और आकाश के बादलों पर आता हुआ देखोगे।' इस पर महापुरोहित ने अपने वस्त्र फाड़े और कहा, 'इसने परमेश्वर की निंदा की है। क्या हमें अब भी गवाहों की आवश्यकता है? आपने स्वयं अपने कानों से परमेश्वर की निंदा सुन ली। आपका क्या विचार है ?' उन्होंने उत्तर दिया, – यह प्राणदण्ड के योग्य है।' तब उन्होंने प्रभु येशु के मुँह पर थूका, उन्हें घूँसे मारे। कुछ ने थप्पड़ मारकर उनसे कहा, 'मसीह! हमें नबूवत करके बता कि किसने तुझे मारा।'

<u>पतरस का इन्कार करना</u> – पतरस बाहर आँगन में बैठा था। तब एक सेविका उसके पास आकर बोली, 'तू भी गलील–निवासी प्रभु येशु के साथ था।' पर उसने सबके सामने अस्वीकार करते हुए कहा, 'मैं नहीं जानता कि तू क्या कह रही है।' तब वह बाहर ड्योढ़ी पर चला गया तब किसी और सेविका ने उसे देखा एवं वहाँ खड़े लोगों से कहा, 'यह मनुष्य नासरत–निवासी येशु के साथ था।' पतरस ने शपथपूर्वक फिर अस्वीकार किया, 'मैं उस मनुष्य को नहीं जानता।' कुछ समय पश्चात् वहाँ खड़े हुए लोगों ने पतरस के समीप आकर कहा, 'निश्चय तू उन्हीं में से है; क्योंकि तेरी बोली ही तुझे प्रकट कर रही है।' तब पतरस अपने आपको कोसने लगा और शपथपूर्वक कहने लगा, 'मैं उस मनुष्य को नहीं जानता।' तत्काल मुर्गे ने बांग दी। अब पतरस को वे शब्द स्मरण हुए जो प्रभु

येशु ने कहे थे, 'मुर्गे के बांग देने से पहले तुम मुझे तीन बार अस्वीकार करोगे। पतरस बाहर जाकर फूट–फूट कर रोने लगा।[47]

राज्यपाल पिलातुस के सम्मुख प्रभु येशु – जब प्रातःकाल हुआ तब सब महापुरोहितों और समाज के धर्मवृद्धों ने प्रभु येशु के विरुद्ध मन्त्रणा की कि उन्हें मरवा डालें। वे प्रभु येशु को बाँधकर ले गए और उन्हें राज्यपाल पिलातुस को सौंप दिया।

यहूदा इस्करियोती की मृत्यु – जब यहूदा ने जिसने प्रभु येशु को पकड़वाया था, यह देखा कि प्रभु येशु को मृत्युदण्ड की आज्ञा मिली है तब वह पछताया। वह महापुरोहितों और धर्मवृद्धों के पास चाँदी के तीस सिक्के लेकर आया और उनसे बोला, 'मैंने निर्दोष व्यक्ति को मृत्युदण्ड के लिए आप लोगों के हाथ में सौंपकर पाप किया है।' उन्होंने कहा, 'तुम जानो, इससे हमें क्या!' इस पर वह चाँदी के सिक्के मन्दिर में फेंककर वहाँ से निकल गया और फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली।

महापुरोहितों ने चाँदी के सिक्के लेकर कहा, इन्हें मन्दिर के कोष में रखना उचित नहीं, क्योंकि ये रक्त का मूल्य है।' अतः उन्होंने आपस में मंत्रणा की और परदेशियों को गाड़ने के लिए कुम्हार का खेत मोल लिया। इस कारण वह खेत आज भी रक्त–खेत कहलाता है। इस प्रकार नबी यिर्मयाह का यह वचन पूरा हुआ, "उन्होंने चाँदी के तीस सिक्के लिए उस व्यक्ति का मूल्य जिस पर इस्त्राएलियों ने मूल्य लगाया था– और कुम्हार के खेत के लिए दे गया, जैसे प्रभु ने मुझे आदेश दिया था।"

राज्यपाल पिलातुस द्वारा प्रभु येशु की जाँच – अब प्रभु येशु राज्यपाल के सम्मुख खड़े थे। राज्यपाल ने उनसे पूँछा, 'क्या तुम यहूदियों के राजा हो ?' प्रभु येशु ने उत्तर दिया, 'आप स्वयं कह रहे हैं', परन्तु जब महापुरोहितों और धर्मवृद्धों ने उन पर अभियोग लगाए तो उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया।

पिलातुस ने कहा, 'क्या तुम नहीं सुन रहे कि ये तुम्हारे विरुद्ध कितनी साक्षियाँ दे रहे हैं?' पर प्रभु येशु ने एक बात का भी उत्तर नहीं दिया। इससे राज्यपाल को बहुत आश्चर्य हुआ।

प्रभु येशु को मृत्युदण्ड – फसह पर्व के समय राज्यपाल जनता की इच्छानुसार एक बन्दी को मुक्त करता था। उस समय बरअब्बा नामक एक कुख्यात मनुष्य बन्दी था। लोगों के एकत्र होने पर पिलातुस ने उनसे कहा, 'तुम क्या चाहते हो, मैं तुम्हारे लिए किसे मुक्त करूँ ? बरअब्बा को या येशु को जो मसीह कहलाते हैं, क्योंकि वह जानता था कि उन्होंने येशु को ईर्ष्यावश पकड़वाया है। इसके अतिरिक्त जब वह न्यायासन पर बैठा था तब उसकी पत्नी ने कहला भेजा था, 'इस धर्मात्मा मनुष्य के मामले में हस्तक्षेप न करना, क्योंकि मैंने आज स्वप्न में इसके कारण बहुत दुःख सहा है।'

महापुरोहितों और धर्मवृद्धों ने भीड़ को बहका दिया कि बरअब्बा की मुक्ति और प्रभु येशु की मृत्यु की माँग करें। राज्यपाल ने पूँछा, 'तुम क्या चाहते हो ? दोनों में से किस को तुम्हारे लिए छोड़ दूँ ?' वे बोले, 'बरअब्बा को।' पिलातुस ने कहा, 'तो फिर येशु का, जो मसीह कहलाते हैं, क्या करूँ ?' वे सब कहने लगे, 'उसे क्रूस पर चढ़ाओं। उसने पूछा, 'क्यों ? उसने क्या अपराध किया है ?' इस पर वे और उच्च स्वर से चिल्लाए, 'उसे क्रूस पर चढ़ाओ।' जब पिलातुस ने देखा कि उसे येशु को बचाने में सफलता नहीं मिल रही है वरन् उपद्रव बढ़ता ही जा रहा है; तब उसने पानी लिया और लोगों के सामने हाथ धोकर कहा, 'इस मनुष्य की मृत्यु के लिए मैं दोषी नहीं हूँ। तुम्हीं जानो। लोगों ने उत्तर दिया, 'इसकी मृत्यु का दोष हम पर और हमारी सन्तान पर हो।' तब पिलातुस ने बरअब्बा को उनके लिए मुक्त कर दिया, और प्रभु येशु को कोड़े लगवाकर क्रूस पर चढ़ाने के लिए सौंप दिया।

प्रभु येशु का अपमान – तब राज्यपाल के सैनिक प्रभु येशु को राजभवन में ले गए और उन्होंने प्रभु येशु के सम्मुख सैन्यदल एकत्र किया। उन्होंने प्रभु येशु के वस्त्र उतारकर उन्हें लाल जामा पहिनाया, काँटों का मुकुट गूँथकर उनके सिर पर रखा, और उनके दाहिने हाथ में नरकुल थमाया। तब वे उनके आगे घुटने टेक कर उपहास करने तथा यह कहने लगे, 'यहूदियों के राजा, आपकी जय हो।' सैनिकों ने उन पर थूका और वही नरकुल लेकर उनके सिर पर मारा। जब प्रभु येशु का उपहास कर चुके तब जामा उतार लिया, और उनके कपड़े पहिना कर उन्हें क्रूस पर चढ़ाने के लिए ले चले।

प्रभु येशु को क्रूस पर चढ़ाया जाना – नगर से बाहर जाते समय सैनिकों को शिमौन नामक कुरेन देश का एक निवासी मिला। उसे उन्होंने बेगार में पकड़ा कि वह प्रभु येशु का क्रूस उठाकर चले। जब वे गुलगुता अर्थात् 'कपाल–स्थान' नामक स्थान पर पहुँचे तब उन्होंने प्रभु येशु को पित्त–मिश्रित दाखरस पीने को दिया। प्रभु येशु ने उसे चखा, पर उसे पीना न चाहा। तब सैनिकों ने प्रभु येशु को क्रूस पर चढ़ाया। उन्होंने चिट्ठी डाल कर प्रभु येशु के वस्त्र आपस में बाँट लिए और वहाँ बैठकर पहरा देने लगे। उन्होंने प्रभु येशु का अभियोग पत्र कि यह यहूदियों का राजा येशु है' उनके सिर के ऊपर लटका दिया। प्रभु येशु के साथ ही दो डाकू क्रूस पर चढ़ाए गए, एक उनकी दाहिनी ओर और दूसरा बाई ओर। उधर से आने–जाने वाले लोग प्रभु येशु की निंदा कर रहे थे और सिर हिलाकर कहते थे, 'हे मन्दिर को गिराने वाले और तीन दिन में उसको बनाने वाले, अपने को बचा। यदि तू परमेश्वर का पुत्र है, तो क्रूस से उतर आ।'

इसी प्रकार महापुरोहित, शास्त्री और धर्मवृद्ध उपहास करते हुए कह रहे थे, 'इसने दूसरों को बचाया, पर अपने को नहीं बचा सकता। यह तो इस्त्राएल का राजा है, अब क्रूस से उतरे तो हम भी इस पर विश्वास करें। यह परमेश्वर पर निर्भर रहा ; यदि परमेश्वर इसे चाहता है तो अब इसे छुड़ाए, क्योंकि इसने कहा था, "मैं परमेश्वर का पुत्र हूँ।"', 'इसी प्रकार डाकू भी, जो प्रभु येशु के साथ क्रूस पर चढ़ाए गए थे, प्रभु येशु को बुरा–भला कह रहे थे।

प्रभु येशु की मृत्यु – दोपहर से लेकर तीन बजे तक समस्त देश में अन्धकार छाया रहा। लगभग तीन बजे प्रभु येशु ने उच्च स्वर में पुकारा, एली! एली! लेमा सबक्तनी ?' अर्थात् हे मेरे परमेश्वर! हे मेरे परमेश्वर! तूने मुझे क्यों छोड़ दिया ?' यह सुनकर वहाँ खड़े लोगों में से कुछ बोले, 'वह एलियाह को पुकार रहा है।' उनमें से एक व्यक्ति ने तुरन्त दौड़कर स्पंज लिया और उसको सिरके में डुबोया। तब सरकण्डे पर रखकर उन्हें पीने को दिया। दूसरों ने कहा, 'ठहरो, देखें, एलियाह उसे बचाने आते है या नहीं।'

तब प्रभु येशु ने फिर उच्च स्वर से चिल्लाकर अपना प्राण त्याग दिया और देखो, मन्दिर का परदा ऊपर से नीचे तक फटकर दो टुकड़े हो गया। पृथ्वी काँप उठी। चट्टानें तड़क गई। कबरें खुल गई एवं चिर निद्रा में पड़े अनेक भक्तों के मृत शरीर जीवित हो उठे, जो प्रभु येशु के जीवित होने के पश्चात् कबरों से निकलकर पवित्र नगर में गए और अनेक लोगों को दिखाई दिए।

रोमन सैनिक–अधिकारी और उसके सैनिक, जो प्रभु येशु पर पहरा दे रहे थे, भूकम्प एवं इन घटनाओं को देखकर अत्यन्त भयभीत हो उठे और बोले, 'निश्चय, यह परमेश्वर–पुत्र था। अनेक स्त्रियाँ भी वहाँ थीं, जो दूर से देख रही थीं। ये गलील प्रदेश से प्रभु येशु के पीछे आई थीं और उनकी सेवा करती थीं। इनमें मरियम, मगदलीनी, याकूब और यूसुफ की माता मरियम और जबदी के पुत्रों की माता थी।

कबर में रखा जाना – सन्ध्या होने पर अरिमतियाह का निवासी यूसुफ नामक एक धनवान

व्यक्ति आया। वह स्वयं प्रभु येशु का शिष्य था। उसने पिलातुस के पास जाकर प्रभु येशु का शरीर माँगा। पिलातुस ने उसे शरीर देने का आदेश दे दिया। यूसुफ ने शरीर को लिया और स्वच्छ मलमल की चादर में उसे लपेटा। तब उसे अपनी नई कबर में रखा जो उसने चट्टान में खुदवाई थी। उसके बाद वह कबर के द्वार पर भारी पत्थर लुढ़का कर चला गया। मरियम मगदलीनी और दूसरी मरियम वहाँ कबर के सम्मुख बैठी थी।[48]

<u>कबर पर पहरा</u> – दूसरे दिन, अर्थात् विश्राम–दिवस पर महापुरोहितों और फरीसियों ने पिलातुस के सम्मुख एकत्र हो उससे कहा, 'महाराज! हमें स्मरण है कि उस धूर्त ने, जब वह जीवित था, कहा था कि मैं तीन दिन पश्चात् जीवित हो जाऊँगा। अतएव आज्ञा दीजिए कि तीसरे दिन तक कबर पर पहरा दिया जाए। कहीं ऐसा न हो कि उसके शिष्य उसे चुरा ले जाएँ और लोगों से कहने लगें, "वह मृतकों में से जीवित हो उठे।" तब यह अन्तिम धोखा पहिले से अधिक बुरा होगा।' पिलातुस ने कहा, 'तुम्हारे पास पहरेदार हैं। जाओ और जैसा उचित समझो कबर पर पहरा दो।' तब वे गए और उन्होंने कबर के मुँह पर मुहर लगा दी तथा वहाँ पहरेदारों को बैठा कर कबर को सुरक्षित कर दिया।

मसीही लोग यह विश्वास करते हैं कि प्रभु येशु ख्रीस्त अपने मृत्यु के तीसरे दिन मृतकों में से पुनः जीवित हो गए थे और चालीस दिन तक अपने शिष्यों को दर्शन देते रहे। इसके विषय में बाइबिल में विस्तार से लिखा हुआ है :

'मरियम मगदलीनी और दूसरी मरियम कबर देखने आईं, बड़ा भूकम्प हुआ, तथा प्रभु का एक दूत स्वर्ग से उतरा। उसने आकर पत्थर लुढ़का दिया और उस पर बैठ गया। उसका रूप बिजली के सदृश ज्योतिर्मय था और उसके वस्त्र बर्फ के सदृश सफेद थे। उसके भय से पहरेदार काँपने लगे और मृतप्राय हो गए।'[49]

दूत ने स्त्रियों से कहा, 'डरो मत, मैं जानता हूँ कि तुम क्रूसित प्रभु येशु को ढूँढ़ रही हो। वह यहाँ नहीं हैं, किन्तु अपने वचन के अनुसार जीवित हो उठे हैं। आओ, और इस स्थान को देखो जहाँ वे लिटाए गए थे। फिर शीघ्र जाकर उनके शिष्यों से कहो कि वह मृतकों में से जीवित हो उठे हैं, और तुमसे पहले गलील प्रदेश को जा रहे हैं। वहाँ तुम उनके दर्शन करोगे। देखो, जो मैंने तुमसे कहा है, उसको मत भूलना।' स्त्रियाँ तत्काल कबर के पास से चली गयीं, और विस्मय और बड़े आनन्द के साथ उनके शिष्यों को समाचार देने दौड़ीं।[50] जिन्होंने प्रेरितों से ये बातें कहीं, वे मरियम मगदलीनी, योअन्ना, याकूब की माता मरियम तथा उनके साथ की अन्य स्त्रियाँ थीं। परन्तु प्रेरितों को ये शब्द कोरी गप्प प्रतीत हुए और उन्होंने उन स्त्रियों का विश्वास नहीं किया।[51]

<u>प्रभु येशु का पुनरुत्थान</u> – तब पतरस और दूसरा शिष्य दोनों घर से निकले और कबर की ओर चले। वे दोनों साथ–साथ दौड़े, पर दूसरा शिष्य दौड़ कर पतरस से आगे निकल गया और कबर पर पहले पहुँचा। उसने कबर में झुककर देखा कि कफन की पट्टियों का ढेर लगा है, पर वह कबर के भीतर नहीं गया। शिमौन पतरस उसके पीछे–पीछे पहुँचा। उसने कबर में प्रवेश किया और पट्टियों को पड़े हुए देखा : परन्तु वह अंगोछा जो प्रभु येशु के सिर पर बँधा था, पट्टियों के साथ नहीं था, वरन् अलग वैसा ही लपेटा हुआ रखा था। दूसरे शिष्य ने, जो कबर पर पहले पहुँचा था, भीतर जाकर देखा और विश्वास किया। क्योंकि अब तक वे धर्मशास्त्र का लेख नहीं समझे थे कि प्रभु येशु का मृतकों में से जी उठना अनिवार्य है। वे शिष्य अपने घर लौट गए।[52]

<u>मरियम मगदलीनी को दर्शन</u> – मरियम कबर के बाहर रोती हुई खड़ी रही। रोते हुए उसने कबर में झाँका। उसने दो स्वर्गदूतों को सफेद वस्त्र पहने और उस स्थान पर, जहाँ पहले प्रभु येशु
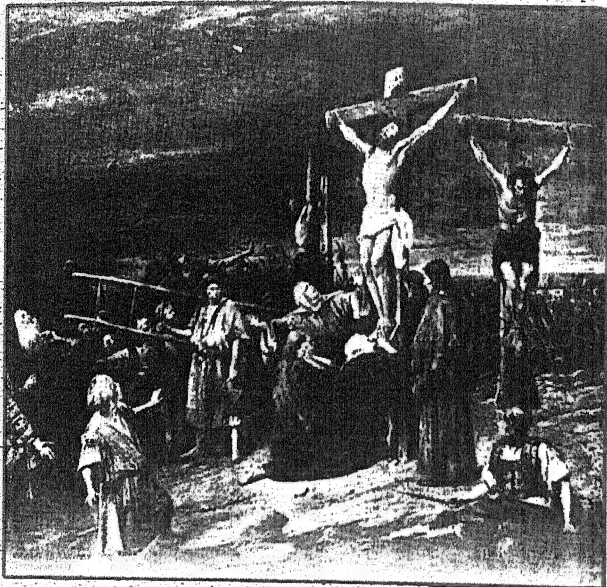
प्रभु येशु का सलीब पर चढ़ाया जाना

प्रभु येशु के पुनरुत्थान की प्रथम साक्षी मरियम मगदलीनी (मरकुस 16:9)
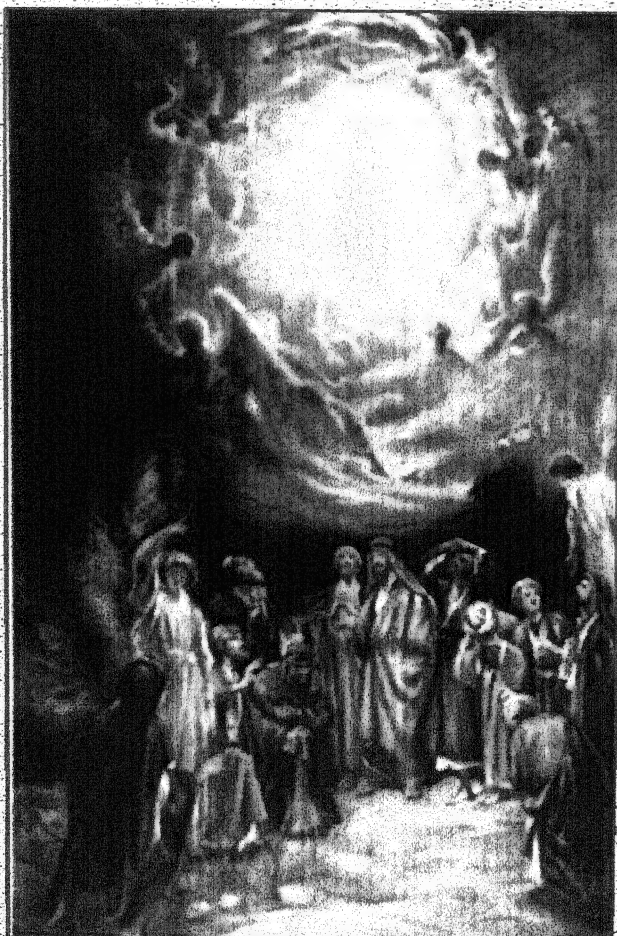
प्रभु येशु ख्रीस्त
का पुनरुत्थान

का शरीर रखा था, बैठे देखा– एक सिरहाने और दूसरा पैताने। स्वर्गदूत बोले, 'महिला, तुम क्यों रोती हो ? मरियम ने उत्तर दिया, 'वे मेरे प्रभु को उठाकर ले गए और मैं नहीं जानती कि उन्हें कहाँ रखा है ?' यह कहकर वह पीछे मुड़ी और प्रभु येशु को खड़े हुए देखा, पर उसने उन्हें नहीं पहचाना कि वह प्रभु येशु हैं। प्रभु येशु ने उससे कहा, 'बहिन, तुम क्यों रो रही हो ? तुम किसे ढूँढ़ रही हो ?' वह प्रभु येशु को माली समझ कर बोली, 'तुम यदि उन्हें ले गए हो तो मुझे बता दो कि उन्हें कहाँ रखा हैं। मैं उस स्थान पर जाकर उनको उठा ले आऊँगी। प्रभु येशु ने उससे कहा, 'मरियम! वह मुड़ी और इब्रानी में बोली, 'रब्बूनी' (अर्थात् मेरे गुरू)। प्रभु येशु ने कहा, 'मुझे मत पकडो; क्योंकि मैं अभी पिता के पास ऊपर नहीं गया हूँ। मेरे भाइयों के पास जाओ और उनसे कहो, कि मैं अपने पिता और तुम्हारे पिता, अपने परमेश्वर और तुम्हारे परमेश्वर के पास ऊपर जा रहा हूँ।' मरियम मगदल़ीनी ने जाकर शिष्यों से कहा, 'मैनें प्रभु को देखा है, और उन्होंने मुझसे बातें की हैं।'[53]

इम्माऊस के मार्ग में शिष्यों को दर्शन – उसी दिन उनमें से दो व्यक्ति इम्माऊस नामक गाँव जा रहे थे, जो यरूशलेम से लगभग ग्यारह किलोमीटर दूर है। वे इन सब बीती घटनाओं के सम्बन्ध में आपस में बातचीत कर रहे थे। जब वे बातचीत और विचार–विमर्श कर रहे थे, तब स्वयं प्रभु येशु उनके समीप आए और साथ–साथ चलने लगे, परन्तु उन लोगों की आँखें ऐसी बन्द थीं कि वे प्रभु येशु को न पहचान सकें। प्रभु येशु ने पूछा, 'तुम चलते–चलते आपस में किस विषय पर बातचीत कर रहे हो ?' इस पर वो उदास हो गए और रूक गए। तब उनमें से एक, जिसका नाम क्लियुपास था, बोला, 'क्या यरूशलेम में केवल आप ऐसे प्रवासी हैं जिस को नहीं मालूम कि इन दिनों यहाँ क्या हुआ है ?' प्रभु येशु ने पूछा, 'क्या हुआ है ?' वे बोले, नासरत–निवासी प्रभु येशु को, जो परमेश्वर और समस्त जनता की दृष्टि में कर्म एवं वचन से समर्थ नबी थे, हमारे महापुरोहितों और धर्ममहासभा के अधिकारियों ने प्राण–दण्ड के लिए सौंपा और क्रूस पर चढ़ा दिया। हमें तो आशा थी कि यही हैं वह व्यक्ति जो इस्त्राएल को मुक्त करेंगे। इन सब बातों के अतिरिक्त एक बात और इस घटना को घटे तीसरा दिन हुआ है। हमारे झुण्ड की कुछ स्त्रियों ने हमें आश्चर्य में डाल दिया है। वे पौ फटते ही कबर पर गईं और वहाँ प्रभु येशु का शरीर नहीं पाया। वे आकर बोलीं कि हमें स्वर्गदूत दिखाई दिये, जो कहते थे कि प्रभु येशु जीवित है। इस पर हमारे कुछ साथी कबर पर गए, और जैसा स्त्रियों ने कहा था वैसा ही पाया ; परन्तु उन्होंने प्रभु येशु को नहीं देखा।' तब प्रभु येशु ने दोनों से कहा, 'निर्बुद्धियों! तुम कितने मन्दमति हो! नबियों के सब कथनों पर विश्वास क्यों नहीं करते? क्या यह अनिवार्य नहीं था कि मसीह ये दु:ख उठाता और अपनी महिमा में प्रवेश करता ?' तब प्रभु येशु ने मूसा एवं समस्त नबियों से आरम्भ कर, सम्पूर्ण धर्मशास्त्र में अपने विषय में लिखी बातों की व्याख्या उनसे की।

इतने में वे उस गाँव के निकट पहुँचे जहाँ उन्हें जाना था, और प्रभु येशु ने ऐसा दिखाया कि वह आगे जाना चाहते हैं, किन्तु उन्होंने प्रभु येशु से आग्रह किया, 'हमारे साथ रहिए ; क्योंकि संध्या हो रही है और दिन अब ढल चुका है।' अतः प्रभु येशु उनके साथ ठहरने के लिए घर के भीतर गए। जब प्रभु येशु उनके साथ भोजन करने बैठे तब प्रभु येशु ने रोटी लेकर आशीष माँगी और वह उसे तोड़कर उन्हें देने लगे। तब उनकी आँखे खुल गई और उन्होंने प्रभु येशु को पहचान लिया। पर प्रभु येशु उनकी दृष्टि से ओझल हो गए। इस पर वे आपस में कहने लगे, 'जब वह मार्ग में हमारे साथ बातचीत कर रहे थे और हमें धर्मशास्त्र समझा रहे थे, तब क्या हमारे हृदय में तीव्र इच्छा नहीं जाग उठी थी ?'

वे दोनों उसी समय उठे और यरूशलेम को लौट गए। उन्होंने ग्यारह प्रेरितों एवं प्रभु येशु के अन्य साथियों को एकत्र पाया, जो कह रहे थे, 'प्रभु सचमुच जीवित हो उठे हैं और शिमौन पतरस को दिखाई दिये हैं। तब दोनों ने भी मार्ग की घटनाएँ उन्हें बताई और कहा, 'हमने प्रभु येशु को रोटी तोड़ते समय पहचाना।'[54]

प्रभु येशु का शिष्यों को दर्शन देना – वे दोनों ये बातें कर ही रहे थे कि स्वयं प्रभु येशु आ गए और उनके बीच खड़े हो गए। प्रभु येशु ने उनसे कहा, 'तुम्हें शान्ति मिले।' वे सहम गए और भयभीत होकर सोचने लगे कि वे कोई प्रेत देख रहे हैं। प्रभु येशु ने उनसे कहा, 'तुम क्यों घबराते हो ? तुम्हारे मन में सन्देह क्यों उठते हैं ? मेरे हाथ और मेरे पैर देखो, कि मैं ही हूँ। मुझे टटोल कर देखो ; क्योंकि प्रेत के मांस और हड्डियाँ नहीं होतीं जैसी तुम मुझमें देख रहे हो।' यह कहकर उन्होंने उनको अपने हाथ–पैर दिखाए।

शिष्यों को जब आनन्द के मारे विश्वास नहीं हुआ और वे आश्चर्य में डूबे हुए थे तब प्रभु येशु ने कहा, 'क्या तुम्हारे पास यहाँ कुछ भोजन है ?' उन्होंने प्रभु येशु को भुनी हुई मछली का एक टुकड़ा दिया। प्रभु येशु ने उसे लेकर उनके सामने खाया। फिर प्रभु येशु ने कहा, 'जब मैं तुम्हारे साथ था तब मैंने तुमसे कहा था कि मूसा की व्यवस्था, नबियों की पुस्तकों और भजन–संहिता में जो कुछ मेरे सम्बन्ध में लिखा है, वह सब तो होना अनिवार्य हैं।' तब प्रभु येशु ने शिष्यों की बुद्धि खोल दी कि वे धर्मशास्त्र को समझ सकें, और उनसे कहा, धर्मशास्त्र में यह लिखा है कि मसीह दुःख उठाएगा, तीसरे दिन मृतकों में से जीवित हो उठेगा और यरूशलेम से आरम्भ कर सभी जातियों में उसके नाम से हृदय–परिवर्तन और पाप–क्षमा का शुभ संदेश सुनाया जाएगा।'[55]

थोमा* को दर्शन – जब प्रभु येशु आए तब बारह में से एक अर्थात् थोमा, जो दिदुमुस भी कहलाता हैं, शिष्यों के साथ नहीं था। अन्य शिष्यों ने उससे कहा, 'हमने प्रभु को देखा है।' वह बोला, 'जब तक मैं उनके हाथों में कीलों के चिन्ह न देखूँ, और कीलों के स्थान में अपनी अँगुली न डालूँ और उनकी पसली में अपना हाथ न डालूँ, तब तक मैं विश्वास नहीं करूँगा।'

आठ दिन के पश्चात् प्रभु येशु के शिष्य फिर घर में थे, और थोमा उनके साथ था द्वार बन्द थे फिर भी प्रभु येशु आए और उनके बीच खड़े होकर बोले, 'तुमको शान्ति मिले।' तब उन्होंने थोमा से कहा, 'अपनी अँगुली यहाँ लाओ और मेरे हाथों को देखो, अपना हाथ लाओ और मेरी पसली में डालो, और अविश्वासी नहीं वरन् विश्वासी बनो।' थोमा बोल उठा, 'मेरे परमेश्वर! प्रभु येशु ने उससे कहा, 'क्या तुमने इसलिए विश्वास किया है कि मुझे देखा ? धन्य हैं वे जिन्होंने मुझे कभी नहीं देखा तो भी विश्वास करते हैं।[56]

गलील प्रदेश में प्रेरितों को दर्शन और अन्तिम संदेश – ग्यारह शिष्य गलील प्रदेश में उस पहाड़ पर गए जहाँ जाने का प्रभु येशु ने उन्हें आदेश दिया था। प्रभु येशु को देखकर शिष्यों ने उनकी वन्दना की, परन्तु कुछ को सन्देह हुआ। तब प्रभु येशु ने उनके पास आकर कहा, 'स्वर्ग और पृथ्वी का समस्त अधिकार मुझे दिया गया है। इसलिए जाओ और सब लोगों को मेरा शिष्य बनाओ। उन्हें पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम से बपतिस्मा दो ; और जिन बातों की मैंने तुम्हें आज्ञा दी है, उन सब का पालन करना उन्हें सिखाओ, देखो युगान्त तक मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ।[57]

** यह वही शिष्य है जो भारत वर्ष में सन् 52–56 में आया था।*

प्रभु येशु के जीवन का अन्य महापुरूषों पर प्रभाव

प्रभु येशु के जीवन चरित्र ने संसार के महानतम् पुरूषों एवं स्त्रियों को प्रभावित किया है, और इन लोगों ने प्रभु येशु के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। यद्यपि उन सब महान पुरूषों के कथनों का उल्लेख करना सम्भव तो नहीं है फिर भी हम अपने देश के तीन महापुरूषों के कथनों का उद्धरण देना चाहेगें। वे हैं स्वामी विवेकानन्द, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी एवं 20वीं शताब्दी के महानतम् दार्शनिक डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन्।

महात्मा गाँधी – महात्मा गाँधी ने प्रभु येशु के विषय में यह कहा :

"For many years I have regarded Jesus of Nazareth as one among the mighty teachers that the world has had........ of course, christians claim a higher place for Jesus than I, as a non-christian and a Hindu, am able to feel."[58] अर्थात् महात्मा गाँधी जी के शब्दों में, "मैं नासरत गाँव के प्रभु येशु को अनेक वर्षों तक संसार के महान धर्म गुरूओं में से एक मानता रहा हूँ। प्रभु येशु दुनिया में अब तक हुए महानतम् धर्म गुरूओं में से एक हैं। यद्यपि मसीही लोग उनको अपने जीवन में उच्चतम स्थान देते हैं किन्तु मैं एक गैर मसीही , हिन्दू होने के नाते उनसे भी कहीं अधिक स्थान उनको अपने जीवन में देता हूँ।

स्वामी विवेकानन्द – स्वामी विवेकानन्द प्रभु येशु मसीह के जीवन से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने स्वतन्त्र रूप से प्रभु येशु के जीवन चरित्र की विवेचना प्राच्य दृष्टिकोण से बड़ी सुन्दर रीति से की है। इस महान अवतार की जीवनी की इस प्रकार की मीमांसा अपने ढंग की अनोखी है। उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं। स्वामी विवेकानन्द ने यह लिखा है :

इस महान् आत्मा का, इस ईशदूत येशु का, जिसकी जीवन–गाथा पर आज विवेचन किया जायेगा, अपनी जाति के इतिहास के एक ऐसे युग में आविर्भाव हुआ था, जिसे पतन–काल कहने में अत्युक्ति न होगी। उनके उपदेश और कार्यकलाप के किंचित् लिपिबद्ध विवेचनों की हमें यत्र–तत्र कुछ झलक मात्र ही मिलती है। यह सच ही कहा गया है कि उस महापुरूष के उपदेश और कर्मवीरता की सब गाथाएँ यदि लिपिबद्ध की जाती तो सारा विश्व उनसे व्याप्त हो जाता।

आज हम प्रभु येशु की जीवनी में सम्पूर्ण अतीत का इतिहास देखते हैं। वे सचमुच इतने महान् हैं कि उनकी छाया मानों समस्त पृथ्वी को आच्छन्न कर लेती है; वे अमर, अनन्त और अविनाशी हैं। इसी महापुरूष ने कहा है, 'किसी भी व्यक्ति में ईश्वर–पुत्र के माध्यम बिना ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया है।' और यह कथन अक्षरशः सत्य है। ईश्वर–तनय के अतिरिक्त हम ईश्वर को और कहाँ देखेंगे ? यह सच है कि मुझमें और तुममें, हममें से निर्धन से भी निर्धन और हीन से भी हीन व्यक्ति में भी परमेश्वर विद्यमान है, उसका प्रतिबिम्ब मौजूद है। प्रकाश की गति सर्वत्र है, उसका स्पन्दन सर्वव्यापी है, किन्तु हमें उसे देखने के लिए दीप जलाने की आवश्यकता होती है। जगत् का सर्वव्यापी ईश भी तब तक दृष्टिगोचर नहीं होता, जब तक ये महान् शक्तिशाली दीपक, ये ईशदूत, ये उसके सन्देशवाहक और अवतार, ये नर–नारायण उसे अपने में प्रतिबिम्बित नहीं करते।

विविध जातियों के इतिहास में हमें उत्थान और पतन का क्रम दृष्टिगत होता है। प्रभु येशु का जन्म एक ऐसे युग में हुआ, जिसे हम यहूदी जाति का पतनकाल कह सकते हैं। यदि यहूदी जाति के इतिहास में यह अवस्था न आती, तो इसके परवर्ती उत्थान की जिसके कि नाजरथवासी प्रभु येशु मूर्त स्वरूप थे– कोई सम्भावना न रहती।

सभी महापुरूष अपने युग के घटना चक्र के फल या कार्यस्वरूप हैं, उनकी जाति का अतीत

ही उनका निर्माण करता है, किन्तु वे स्वयं अपनी जाति के भविष्य का सृजन करते हैं। आज का कार्य अपने पूर्ववर्ती कारण समूह का फल और भावी कार्य का कारण है। हमारे आलोच्य महापुरूष पर भी यही सिद्धान्त घटता है। ईशदूत प्रभु येशु मसीह उस सबके साकार स्वरूप हैं, जो उनकी जाति में श्रेष्ठ और उच्च हैं, जाति के उस जीवनोद्देश्य के मूर्तरूप हैं, जिसकी सिद्धि के लिए जाति के शत–शत युगों तक संघर्ष किया है, और वे स्वयं केवल अपनी ही जाति के नहीं, अपितु असंख्य जातियों के भावी जीवन के शक्ति–श्रोत हैं।

इस महान् पैगम्बर पर मेरा विवेचन प्राच्य दृष्टिकोण से होगा। कई बार आप भी यह भूल जाते हैं कि प्रभु येशु प्राच्य देशीय थे। प्रभु येशु को नील चक्षुओं और पीत केशों के साथ चित्रित करने के आपके प्रयत्नों के बावजूद भी प्रभु येशु की प्राच्यदेशीयता में कोई अन्तर नहीं आता। बाइबिल में प्रयुक्त उपमा व रूपक, उसमें वर्णित स्थान व दृश्य, उसका दृष्टिकोण, उसके रहस्यमय काव्य व चरित्र–चित्रण, उसके प्रतीक, ये सब प्राच्य का ही तो संकेत करते हैं। उसमें वर्णित नीला चमकीला आकाश, ग्रीष्म का उत्ताप, प्रखर रवि, तृषार्त नर–नारी व खग–मृग, सिर पर घड़े ले जल भरने कुओं पर जाते हुए नर–नारीगण, किसान, मेषपाल व कृषिकार्य, पनचक्की व उसके समीपवर्ती सरोवरादि – ये सब केवल एशिया ही में तो दिखायी पड़ते हैं।

अतएव, हम देखते हैं कि प्रथमतः नाजरथ निवासी ईसा–पूर्व की सच्ची सन्तान थे – धर्म के क्षेत्र में अत्यन्त व्यावहारिक थे।

एक श्रेष्ठ धर्माचार्य के जीवन और उपदेशों पर सर्वश्रेष्ठ भाष्य उसका निज का जीवन ही है। स्वयं प्रभु येशु ने अपने विषय में कहा हैः "लोमड़ियों और श्रृगालों के एक–एक मांद होती है, नभचारी खग कुल अपनें नीड़ में निवास करते हैं, पर मानव–पुत्र (येशु) के पास अपना सिर टेकने तक के लिए कोई स्थान नहीं है।" प्रभु येशु स्वयं त्यागी और वैराग्यवान् थे, इसलिए उनकी शिक्षा भी यही है कि वैराग्य और त्याग ही मुक्ति का एकमेव मार्ग है, इसके अतिरिक्त मुक्ति का और कोई पथ नहीं है।

मैं शुद्ध–बुद्ध–मुक्त आत्मा हूँ, इस तत्व की उपलब्धि के अतिरिक्त प्रभु येशु के जीवन में अन्य कोई कार्य न था, और कोई चिन्ता न थी। वे वास्तव में विदेह, शुद्ध–बुद्ध–मुक्त आत्मास्वरूप थे। यही नहीं, उन्होंने अपनी अद्भुत दिव्य दृष्टि से जान लिया था कि सभी नर–नारी, चाहे वे यहूदी हों या किसी अन्य इतर जाति के हों, दरिद्र हों या धनवान, साधु हों या पापात्मा, उनके ही समान अविनाशी आत्मास्वरूप हैं, इसलिए उनके जीवन में हम एक मात्र यही कार्य देखते हैं कि वे सारी मानव–जाति को अपने शुद्ध–बुद्ध–चैतन्यस्वरूप की उपलब्धि करने के लिए आह्वाहन कर रहे हैं। उन्होंने कहा, "यह कुसंस्कारमय मिथ्या भावना छोड़ दो कि हम दीन–हीन हैं। यह न सोचो कि तुम पर गुलामों के समान अत्याचार किया जा रहा है, तुम पैरों तले रौंदे जा रहे हो, क्योंकि तुममें एक ऐसा तत्व विद्यमान है, जिसे पद दलित व पीड़ित नहीं किया जा सकता, जिसका विनाश नहीं हो सकता।" तुम सब ईश्वर के पुत्र हो, अमर और अनादि हो। अपनी महान् वाणी से प्रभु येशु ने जगत् में घोषणा की, "दुनिया के लोगों, इस बात को भलीभाँति जान लो कि स्वर्ग का राज्य तुम्हारे अभ्यन्तर में अवस्थित है।", "मैं और मेरे पिता अभिन्न हैं।" साहस कर खड़े हो जाओ और घोषणा करो कि मैं केवल ईश्वरतनय ही नहीं हूँ, पर अपने हृदय में मुझे यह भी प्रतीति हो रही है कि मैं और मेरे पिता एक और अभिन्न हैं। नाजरथवासी प्रभु येशु मसीह ने यही कहा। उन्होंने इस संसार और इस देह के सम्बन्ध में कभी कुछ न कहा। जगत् के साथ उनका कुछ भी सम्बन्ध न था....उसके साथ सम्पर्क केवल इतना ही था कि वे उसे प्रगति पथ पर कुछ आगे की ओर बढ़ा देंगे.....और

धीरे–धीरे तब तक अग्रसर करते रहेंगे, जब तक कि समग्र जगत् उस परम् ज्योतिर्मय परमेश्वर के निकट नहीं पहुँच जाता, जब तक कि प्रत्येक मानव अपने प्रकृत स्वरूप की उपलब्धि नहीं कर लेता, जब तक कि दु:ख–कष्ट व मृत्यु जगत् से सम्पूर्ण रूप से निर्वासित नहीं हो जाती।

न्यू–टेस्टामेंट में मानव–जाति के उस महान् आचार्य ने भी ईश्वर–प्राप्ति की इस सोपान त्रयी की ही शिक्षा दी है। उन्होंने जिस सार्वजनिक प्रार्थना (Common Prayer) की शिक्षा दी है, उसकी ओर लक्ष्य कीजिए : "हे मेरे स्वर्ग–निवासी पिता, तेरे नाम का जय–जयकार हो" इत्यादि। यह सरल भावनायुक्त प्रार्थना है, एक शिशु की प्रार्थना जैसी है। यह साधारण सार्वजनिक प्रार्थना है, क्योंकि यह अशिक्षित जन साधारण के लिए है। अपेक्षाकृत उच्चतर व्यक्तियों के लिए, जो साधन मार्ग में किंचित् अधिक अग्रसर हो गए थे, प्रभु येशु ने अपेक्षाकृत उच्च साधना का उपदेश दिया है : "मैं अपने पिता में वर्तमान हूँ, तुम मुझमें वर्तमान हो और मैं तुममें वर्तमान हूँ।" क्या तुम्हें याद है यह? और फिर जब यहूदियों ने प्रभु येशु से पूछा था, "तुम कौन हो?".......तो प्रभु येशु ने अपनी महान् वाणी में घोषणा की, "मैं और मेरे पिता एक हैं।" यहूदियों ने सोचा, यह धर्म की घोर निन्दा है, भगवान का घोर अपमान है। पर प्रभु येशु के कथन का अर्थ क्या था ? यह भी पैगम्बरगण स्पष्ट कर गए हैं : "तुम सब देव या ईश्वर हो.....तुम सब उस परात्पर पुरुष की सन्तान हो।"

ईश्वर के अग्रदूत, दैवी सन्देश–वाहक प्रभु येशु सत्योपलब्धि का मार्ग प्रदर्शित करने अवतीर्ण हुए थे। वे बताने आये थे कि नानाविध धार्मिक क्रियाकलाप, अनुष्ठानादि से आत्म–तत्व प्राप्त नहीं किया जा सकता, गूढ़ दार्शनिक तर्क–वितर्कों से आत्म–तत्व की उपलब्धि नहीं होती। अच्छा होता यदि तुम कोई पुस्तक न पढ़ते, अच्छा होता यदि तुम विद्याहीन होते। मुक्ति के लिए इन उपकरणों की आवश्यकता नहीं हैं, उसके लिए धन, ऐश्वर्य और उच्च पद की जरूरत नहीं, यहाँ तक कि पाण्डित्य की भी आवश्यकता नहीं। उसके लिए केवल एक वस्तु की आवश्यकता है....... और वह है शुद्धता। "शुद्ध हृदय पुरूष धन्य हैं, "क्योंकि आत्मा स्वयं शुद्ध है, वह अन्यथा अर्थात् अशुद्ध हो भी कैसे सकती है ? ईश्वर से ही उसका आविर्भाव हुआ है, वह ईश्वर–प्रसूत है। बाइबिल के शब्दों में वह "ईश्वर का निःश्वास है। "कुरआन की भाषा में "वह ईश्वर की आत्मास्वरूप है।"

"शुद्ध हृदय व्यक्ति धन्य हैं, क्योंकि वे ईश–दर्शन करेंगे।" "महान स्वर्गराज्य तुम्हारे ही अन्तर में विराजमान है।" और इसीलिए नाजरथ का यह महान् पैगम्बर पूँछता है, "जब स्वर्ग तुम्हारे अन्तर में विराजमान है, तो उसे ढूँढ़ने अन्यत्र कहाँ जा रहे हो ? अपनी आत्मा को मांज पोंछकर साफ करो, मलिनता का अपसारण करो, अवश्य तुम्हें अपनी ही आत्मा में यह विशाल स्वर्ग–राज्य दृष्टिगत होगा। वह तो पहले से ही तुम्हारी सम्पत्ति है। यदि उस पर तुम्हारा स्वत्व नहीं है, तो तुम कैसे उसे पा सकते हो? तुम उसके आजन्म अधिकारी हो। तुम अमरता के अधिकारी हो, तुम उस नित्य, सनातन पिता की सन्तान हो, स्वर्ग–राज्य तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है।"

यह उस महान् सन्देश–वाहक की महान शिक्षा है। उसकी दूसरी शिक्षा है त्याग....जो प्रायः सभी धर्मो का आधार है। आत्म शुद्धि कैसे प्राप्त की जा सकती है ?.....त्याग द्वारा। एक धनी युवक ने एक बार प्रभु येशु से पूछा, "प्रभो, अनन्त जीवन की प्राप्ति के लिए मैं क्या करूँ ?" प्रभु येशु बोले, "तुममें एक बड़ा अभाव है। यहाँ से घर जाकर अपनी सारी सम्पत्ति बेच दो। जो धन प्राप्त हो, उसे गरीबों को दान कर दो। तुम्हें स्वर्ग में अक्षय धन–सम्पदा प्राप्त होगी। "अपना सर्वस्व त्याग कर मेरा अनुसरण करो।" "जो अपनी जीवन रक्षा का प्रयत्न करेगा, वह उसे खो देगा और जो मेरे लिए अपना जीवन खोएगा, वह उसे पा लेगा।" जो भी अपना जीवन उन्हें समर्पित कर देगा, वही अमृतत्व–लाभ करेगा, उसे ही अमरता वरण करेगी। हमारी दुर्बलताओं के बीच, जीवन के अजस्र

प्रवाह में कहीं से एक क्षण का विराम आ उपस्थित हो जाता है और पुनः उस महावाणी की घोषणा हमारे कानों में शुरू हो जाती है। "अपना सर्वस्व त्याग कर दो, उसे गरीबों को बाँट दो और मेरा अनुगमन करो।"

इसलिए हमें केवल नाजरथवासी प्रभु येशु में ही ईश्वर का दर्शन न कर विश्व के उन सभी महान् आचार्यों और पैगम्बरों में उसका दर्शन करना चाहिए, जो प्रभु येशु के पहले जन्म ले चुके थे, जो प्रभु येशु के पश्चात् आविर्भूत हुए हैं और जो भविष्य में अवतार ग्रहण करेंगे।

विभिन्न देशीय, विभिन्न जातीय और विभिन्न–मतावलम्बी भूतकाल के उन सब महापुरूषों को हम प्रणाम करते हैं, जिनके उपदेश और चरित्र हमने उत्तराधिकार में पाए हैं। विभिन्न जातियों, देशों और धर्मों में जो देवतुल्य नर–नारीगण मानव जाति के कल्याण में रत हैं, उन सबको प्रणाम है। जीवन्त ईश्वर–स्वरूप जो महापुरूष भविष्य में हमारी सन्तान के लिए निःस्पृहता से कार्य करने के लिए अवतार धारण करेंगे, उन सबको प्रणाम है।[59]

डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन – डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अपने विख्यात ग्रन्थ 'भारत की अन्तरात्मा'[60] में प्रभु येशु के चरित्र, उनके विचारों के विषय में इस प्रकार कहा है :

प्रभु येशु के जीवन से हिन्दुओं को प्रधान उपदेश यह मिलता है कि ईश्वर तथा मनुष्य में भेद की कल्पना करना मिथ्या एवं निरर्थक है। प्रभु येशु स्वयं एक ऐसे मनुष्य का उदाहरण है जो ईश्वर बन गया है और कोई निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि कहाँ पर उसकी मानवता की समाप्ति एवं ईश्वरता का प्रारम्भ है। ईश्वर तथा मनुष्य एक जातीय ही है। *"तत्त्वमसि।"* तुम वही हो।.... प्रभु येशु की श्रद्धा और भक्ति में बहकर हम कह सकते हैं – प्रभु येशु में ईश्वर पूर्णरूप से व्यक्त हुआ है तथा इतिहास में उनका व्यक्तित्व अद्वितीय है। कभी–कभी बड़ी अनिच्छा पूर्वक इतना स्वीकार किया जाता है कि कुछ अन्य महात्माओं में भी ईश्वर की ज्योति का स्पष्ट दर्शन हुआ है पर इतनी प्रभावपूर्ण ज्योति और कभी और कहीं नहीं दिखाई पड़ी जितनी प्रभु येशु में।

पश्चिम के मसीही–धर्माचार्यों में अब एक अधिक विवेचनात्मक दृष्टिकोण जागृत हो रहा है और वे प्रभु येशु की मानवता पर अधिक जोर देने लगे हैं। उसकी सर्वज्ञता तथा सृष्टि–रचना–चेतना पर अब अधिक जोर नहीं दिया जाता। दूसरी ओर इस प्रकार के वाक्यों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है कि उसका 'ज्ञान बढ़ा', 'कष्ट झेलकर ईश्वर की आज्ञा का पालन करना सीखा', 'संकटों के द्वारा ही पूर्ण बना' और 'हमारी ही भाँति के प्रलोभनों में डाला गया।' वन–जीवन के घोर कष्ट ने उसे हमारा भाई बना दिया। वह भी हमारी ही भाँति ईश्वर के समीप अपनी दीनता का अनुभव करके कहता था – "तुम मुझे अच्छा क्यों कहते हो ? अच्छा तो अकेला भगवान् है।" मेरा पिता मुझसे बड़ा है। उसके देवत्व के प्रमाण में चमत्कारों का उल्लेख नहीं किया जाता। विज्ञान उनमें से बहुतों को अविश्वास की दृष्टि से देखता है मानसिक चिकित्सा ने कुछ की व्याख्या भी की है। प्रभु येशु ने स्वयं अपना देवत्व प्रमाणित करने के लिए कभी चमत्कार नहीं दिखाए। उसका तो कथन है कि दूसरे लोग भी ऐसे चमत्कार कर सकते हैं। "यदि मैं शैतान की सहायता से प्रेत–बाधा से मुक्ति देता हूँ तो तुम्हारे बच्चे किसकी सहायता से यह काम करते हैं?" प्रभु येशु के साक्ष्य, दार्शनिक सत्य एवं धार्मिक अनुभूति, सबका एक स्वर से अनुरोध है कि अन्य भगवद्–भक्त साधुओं के ही समान उसे भी समझना चाहिए, क्योंकि ईश्वर ने प्रत्येक देश और युग में अपने साक्षियों को भेजा है।............प्रभु येशु हमारे उद्धारक हैं ; क्योंकि अपने जीवन में वह हमें ईश्वर–प्रेम का प्रमाण देते हैं जो सभी संकटों एवं दुर्घटनाओं में हमारा उत्साहवर्द्धन करेंगे। वे हमें इस बात का निश्चय करा देता है कि संसार, शारीरिक वासना एवं शैतान पर विजय प्राप्त करके हम पूर्ण बन सकते हैं। रिट्शी ने ठीक ही कहा है– "उसके जीवन का वास्तविक सत्य, जो हम पर प्रकट होता है, यही है कि जिस मार्ग का दर्शन उसने हमें कराया तथा जो उत्साह उसने हममें भर दिया है, उससे यह सम्भव हो गया है कि उसी की तरह हम भी ईश्वर तथा संसार से अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकें।

वर्तमान बेतलहेम (प्रभु येशु का जन्म स्थल) गाँव का एक चारागाह
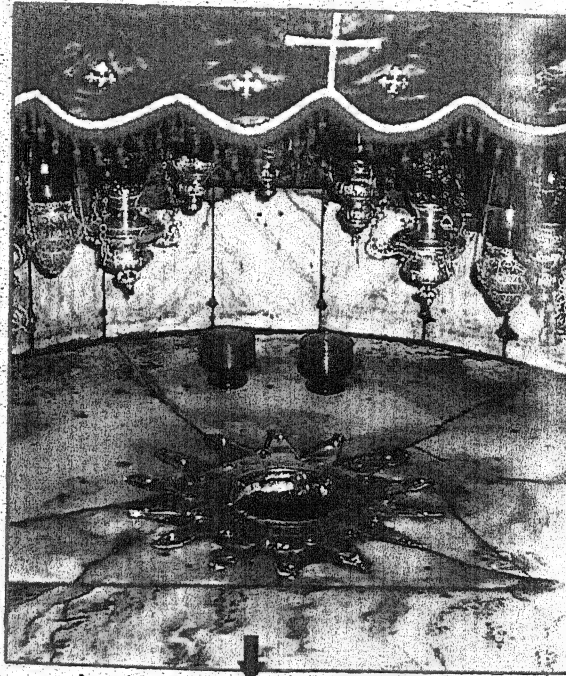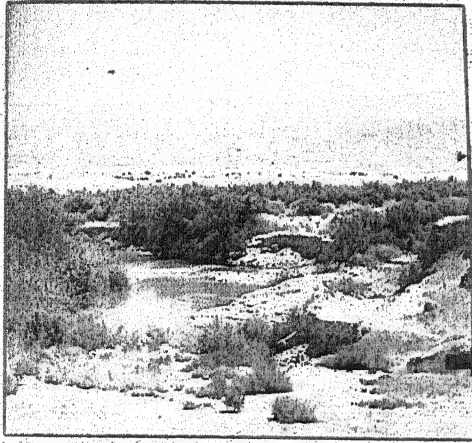
प्रभु येशु का जन्म स्थल जहाँ वर्तमान में चक्र बना दिया गया है

प्रभु येशु ख्रीस्त का बपतिस्मा स्थल: यर्दन नदी का तट (मत्ती 3:13-17, मारकुस 1:1-11)

SANSCRIT

Agascianghelil irikkunna gnangelude bàvà,nintirunámam sciuddhamágappedénam;nindè rágidam varénam.Nindè tirumanessa ágásciattilè,póle bbhúmiilum ághenam.Gnangheludè annannè appam inna gnanghelkka tarigà.Gnangheludè kadappukkárеróda gnanghel porukkunna póle,gnanghelude kadappughel gnangelódum porukkà.Gnanghele parikcielum púghikkelláje;visciezziccia tinmeilnina gnanghele rekcicciù kolgà   Amen.

मेरी आत्मा प्रभु की महिमा करती है. और मेरा मन मेरे मुक्तिदाता ईश्वर में आनन्द मनाता है. क्योंकि उसने अपनी दासी की दीनता पर दृष्टि डाली है. देख, अब से सब पीढ़ियाँ मुझे धन्य कहेंगी. इसलिये कि जो शक्तिमान है, उसने मेरे लिये बड़े-बड़े काम किये हैं और उसका नाम पवित्र है. जो उससे डरते हैं उनपर पीढ़ी-पीढ़ी उसकी कृपा बनी रहती है. उसने अपना बाहुबल दिखाया. मन के घमंडियों को तितर-बितर कर डाला. बलवानों को उनके आसनों पर से गिरा दिया और विनीतों को ऊँचे पर चढ़ाया. उसने भूखों को अच्छी चीज़ों से तृप्त किया और धनवानों को खाली हाथ लौटा दिया. अपनी दया का स्मरण करके उसने अपने दास इस्रायल की रक्षा की. जैसे उसने हमारे पूर्वजों से प्रतिज्ञा की थी अब्रहाम और उसकी सन्तान से सदा लों.

आधुनिक नासरत का विशाल गिरजा घर जो उस स्थान पर निर्मित है, जहाँ माना जाता है कि प्रभु येशु का निवास स्थान था। इस गिरजा घर के चार दीवारी पर विश्व की विभिन्न भाषा में मरियम का स्तुति गान (लूका 1:46-55) अंकित है। जैसे- हिन्दी, संस्कृत
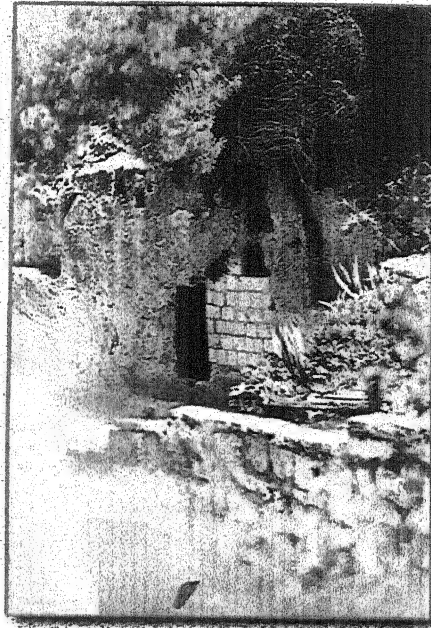
परम्परानुसार माना जाता है कि
यहाँ प्रभु येशु दफनाए गए थे।

The empty tomb

'When the Sabbath was over, Mary Magdalene, Mary the mother of James, and Salome bought spices so that they might go to anoint Jesus' body. Very early on the first day of the week, just after sunrise, they were on their way to the tomb and they asked each other, "Who will roll the stone away from the entrance of the tomb?"

'But when they looked up, they saw that the stone, which was very large, had been rolled away . . .' Mark 16:1-4

In an ancient garden near 'Gordon's Calvary' outside the walls of Jerusalem is this tomb, a vivid example of the type in which Jesus was laid. A groove in the rock took the great stone which was rolled in front of the entrance. The women had been forced to delay anointing Jesus' body because of the sabbath. The last thing they expected was for Jesus to be raised from death, despite the predictions he had made in his teaching.

Looking out from inside another first-century tomb, the stone in place by the entrance. This one was recently discovered in Nazareth beneath the Convent of the Sisters of Nazareth.
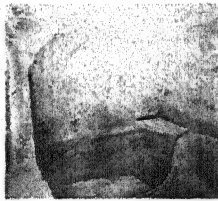
Inside, the body was 'wrapped, with the spices, in strips of linen' (John 19:40). When Peter came to the tomb of Jesus, 'he saw the strips of linen lying there, as well as the burial cloth that had been around Jesus' head. The cloth was folded up by itself, separate from the linen' (John 20:6-7). The body had gone, but the cloths had been left intact.

210

खुदाई के पश्चात्
प्राप्त येशु की कबर
का भीतरी हिस्सा
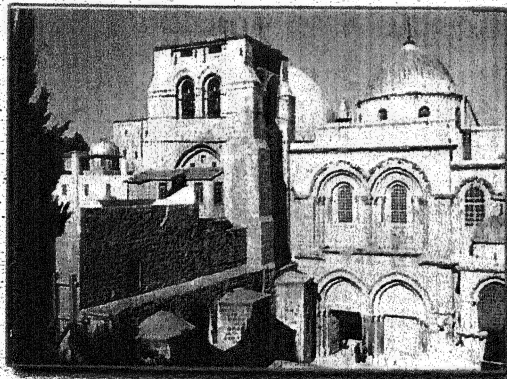
अन्य मान्यता के अनुसार प्रभु येशु
की कबर पर सम्राट कॉन्स्टेनटाइन
की माता रानी हेलेना ने ईस्वी सन्
332-334 में यह चर्च बनाया था।

Jerusalem, the tomb of Christ

यरुशलेम में प्रभु येशु के कबर पर
बने चर्च का भीतरी दृश्य, पुरोहित

मसीही धर्म ग्रंथ : पवित्र बाइबिल

प्रभु येशु मसीह के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके तद्युगीन शिष्यों ने उनके उपदेशों का संग्रह किया और उसे लिपिबद्ध किया तथा उसे एक नए धर्म के रूप में पूरे विश्व में प्रचारित–प्रसारित किया। अनेक लोग इस धर्म से प्रभावित हुए, उन्हें इस धर्म के सिद्धान्त अत्यधिक प्रिय लगे इसलिए उनका आकर्षण इस नए पन्थ की ओर बढ़ा। इस धर्म के अन्तर्गत परमेश्वर के अस्तित्व की स्वीकृति सृष्टि–स्रजेता के रूप में की गयी और उसे महान शक्तिशाली निराकार, निर्विकार तथा स्वर्ग के शासक के रूप में की गयी। धर्म प्रवर्तक प्रभु येशु मसीह को आत्म–त्यागी, बलिदानी, शुभचिन्तक, दयावान्, ज्ञानवान् और करूणा की मूर्ति मानकर परमेश्वर के पुत्र के रूप में स्वीकारा गया। कालान्तर में बाइबिल की सरंचना की गयी और उसके बाद 2000 वर्षों तक लगातार मसीही धर्म पर अनेक ग्रन्थों की रचना होती रही और आज भी हो रही है। आज मसीही धर्म विश्व का सबसे बड़ा धर्म है। इस धर्म को लोगों ने सहजता से स्वीकारा है तथा इस धर्म को मानवता के बहुत ही नज़दीक माना है और मानवतावाद का समर्थक के रूप में स्वीकार किया है। इस नए धर्म का एक मात्र ग्रन्थ पवित्र बाइबिल है जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

शब्द प्रयोग – अंग्रेजी भाषा के बाइबिल शब्द की व्युत्पत्ति यूनानी भाषा के *'बिबलिआन'* से हुई है, जिसका अर्थ 'एक छोटी पुस्तक' होता है। इस शब्द का बहुवचन *'बीबलीया'* (पुस्तक) है जिसका अर्थ 'पवित्र लेखों का संग्रह' है। आरम्भिक चर्च ने इसी अंर्थ में *'बीबलीया'* शब्द को मान्यता दी, जो वास्तव में यूनानी *'बिबलोस'* का अल्पार्थक, लघु रूप है। आरंभिक चर्च के युग में मिस्र देश से आयातित प्राचीन पपीरस (Papyrus = पपेरा अथवा ताड़–पत्र) पर लिखे जाने वाले दस्तावेजों–लेखों को यूनानी भाषा में बिबलोस (Biblos) कहा जाता था, जिससे अंग्रेजी शब्द बाइबिल निकला है। आरंभिक चर्च के महान आचार्य क्लेमेन्त ने अपनी लातीनी रचना 2 क्लेमेन्ट में सर्वप्रथम "Ta Bibia" (The Books) शब्द का प्रयोग किया,[61] "धर्मशास्त्र (दि बुक्स) और प्रेरित घोषित करते हैं कि सृष्टि के आरम्भ से चर्च अस्तित्व में हैं। "इस कथन की तुलना नबी दानिएल के ग्रंथ से की जा सकती है [62] "मुझ–दानिएल ने धर्मग्रन्थों (पुराना नियम के नबियों के लेखों का संग्रह = इब्रानी शब्द 'बस्सपारीम')" में उल्लिखित उन वर्षों की संख्या की गणना कर ली......जैसा प्रभु ने नबी यिर्मयाह के माध्यम से बताया था।"

पुरानी हिन्दी भाषा में बाइबिल को *'धर्मशास्त्र'* कहा गया था, जो वास्तव में यूनानी भाषा के शब्दों, 'लेखों' 'धार्मिक शास्त्रों' का पर्यायवाची शब्द है। नया नियम में सम्पूर्ण पुराना नियम अथवा उस के लेखों को 'धर्मशास्त्र' शब्द से प्रायः उल्लिखित किया गया है। जैसे संत मत्ती में [63] "क्या तुमने धर्मशास्त्रों में कभी नहीं पढ़ा?", संत मरकुस[64] में 'धर्मशास्त्रों' बहुवचन के स्थान पर एक वचन 'धर्मशास्त्र' है : "क्या तुमने धर्मशास्त्र का यह लेख नहीं पढ़ा ?", 2 तिमुथियुस[65] में "पवित्र धर्मशास्त्र (लेखों)" ; किन्तु पद 16 में "समस्त धर्मशास्त्रों की रचना परमेश्वर की प्रेरणा से हुई है" 2 पतरस 3 : 16 में "अन्य शास्त्रों" शब्द से धर्म वैज्ञानिक अनुमान करते हैं कि तब तक चर्च में 'धर्मशास्त्र' के अन्तर्गत पुराना नियम के ग्रंथों के अतिरिक्त शुभ समाचार तथा संत पौलुस के विभिन्न पत्र सम्मिलित हो गए थे। इन सब रचनाओं को 'धर्मशास्त्र' कहा जाने लगा था।

पुराना नियम और नया नियम (तौरात और इंजील = इब्रानी तोराह तथा यूनानी इवंन्जिलियों) को इस्लाम की धर्म पुस्तक 'कुरआन'[66] में स्वीकार किया गया है कि ये परमेश्वर की प्रारम्भिक, प्राचीनतम प्रकाशन के दस्तावेज हैं। इब्रानी भाषा का पुराना नियम यहूदियों की बाइबिल माना जाता है; जबकि सामरी प्रदेश के निवासी, प्रभु येशु के समय में पुराना नियम की प्रथम पाँच

पुस्तकों के संग्रह (तोराह) को बाइबिल मानते थे।

विषय-वस्तु तथा अधिकार (अथोरिटी)

बाइबिल के दो भाग हैं : पुराना नियम और नया नियम। पुराना नियम मूलरूप से इब्रानी तथा अरामी भाषाओं में तथा नया नियम यूनानी भाषा में लिखा गया था। मसीही समाज दोनों नियमों के संग्रह को बाइबिल मानता हैं परन्तु, मसीही समाज की सब चर्चों में विषय–वस्तु के संबंध में मतैक्य नहीं है। सीरियन चर्च बाइबिल में नया नियम की इन पुस्तकों को स्थान नहीं देती : 2 पतरस का पत्र, संत योहन का दूसरा पत्र और तीसरा पत्र, यहूदा का पत्र और प्रकाशन ग्रंथ। रोमन काथलिक तथा यूनानी चर्चों में पुराना नियम के अतिरिक्त पुस्तकें जोड़ती हैं जिन्हें अंग्रेजी भाषा में अपॉक्रिफा कहा जाता है अथवा वर्तमान अंग्रेजी भाषा में *Deutero Canonical Books* अर्थात् द्वितीय प्रामाणिक ग्रंथ कहते हैं। कुछ प्रमुख (लूथरन, अंग्लीकन आदि) प्रोटेस्टेंट चर्च इन अतिरिक्त पुस्तकों को दैनिक आचरण और जीवन के आदर्श के लिए पठन–पाठन के निमित्त स्वीकार तो करती हैं, पर मसीही विश्वास के आवश्यक धार्मिक सिद्धान्तों की स्थापना के लिए इन्हें आवश्यक नहीं मानती। अन्य प्रोटेस्टेंट चर्च (जैसे पेन्टिकोस्टल) इन्हें प्रामाणिक ही नहीं मानती बल्कि बाइबिल में इन्हें सम्मिलित भी नहीं करती।

रोमन काथलिक, यूनानी तथा अन्य प्राचीन चर्चों में बाइबिल को चर्च की प्राचीन जीवित परम्परा के साथ अल्टीमेट अथोरिटी (सर्वोच्च सत्ताधारी अधिकारी) माना जाता है। दूसरी ओर प्राटेस्टेन्ट चर्चों में केवल बाइबिल ही अन्तिम और एकमात्र (फाइनल और अल्टीमेट अथोरिटी) अधिकारी है जिसके प्रकाश में मसीही धार्मिक सिद्धान्त और मसीही आचरण निर्धारित होते हैं। "चर्च ऑफ इंग्लैण्ड " के दस्तावेज की धारा VI में बाइबिल की सत्ता और अधिकार के विषय में इस प्रकार कहा गया है : "मनुष्य की मुक्ति (उद्धार) के लिए जो भी आवश्यक है, वह सब पवित्र धर्मशास्त्र (बाइबिल) में उपलब्ध है। अतः उसमें जो नहीं (पढ़ा गया) है, और न ही उसके द्वारा प्रमाणित हो सकता है, वह किसी भी मनुष्य के लिए आवश्यक नहीं है कि वह उसको अपने विश्वास का धर्म सिद्धान्त माने, या फिर अपने उद्धार के लिए उसको आवश्यक अथवा अपेक्षित वस्तु समझे।"[67] ऐसे ही निर्णायक ढंग से चर्च के *'वेस्ट विन्स्टर कन्फेशन ऑफ फेथ'* (i.2) में पुराना नियम की उन्नतालीस तथा नया नियम की सत्ताईस पुस्तकों की सूची दी गयी है कि ये सब परमेश्वर की प्रेरणा से रची गई हैं और व्यक्ति के जीवन तथा विश्वास का मापदण्ड हैं।

पुराना नियम तथा नया नियम – बाइबिल के दोनों भागों में प्रयुक्त 'नियम' शब्द लातीनी भाषा के 'टेस्टा मेन्टुम' शब्द से आया है, जो यूनानी भाषा के 'डाइथेके' का पर्याय है, जिसका अर्थ 'वाचा' सन्धि, समझौता होता है और इसी अर्थ में बाइबिल के प्रथम यूनानी अनुवाद (LXX) में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है, जबकि इब्रानी भाषा में 'वाचा', व्यवस्थान, सन्धि, समझौता के लिए 'बरीत' शब्द है। यिर्मयाह में भविष्यवाणी की गई है कि "प्रभु परमेश्वर इस्त्राएल से नई वाचा (नया विधान) स्थापित करेगा, जो पुरानी वाचा को हटा देगी अथवा उसका स्थान लेगी, जिसकी प्रभु परमेश्वर ने इस्त्राएलियों के साथ निर्जन प्रदेश में स्थापित किया था।[68]

'इब्रानियों के नाम पत्र' का अज्ञात लेखक कहता है, "नयी वाचा का उल्लेख जब परमेश्वर करता है, तब वह प्रथम वाचा को पुरानी घोषित करता है।"[69] नया नियम की पुस्तकों के लेखकों ने प्रभु येशु की शिक्षाओं तथा कार्यों के द्वारा आरम्भ हुई नई सामाजिक व्यवस्था में नई वाचा की भविष्यवाणी की परिपूर्ति देखी। स्वयं प्रभु येशु के मुख से प्रभु–भोज अनुष्ठान के समय इस नई वाचा के संबंध में कहलवाया गया।[70] संत पौलुस ने लिखा, "भोजन के पश्चात् प्रभु येशु ने कटोरा लिया

और कहा, 'यह कटोरा मेरे रक्त द्वारा स्थापित नया विधान है।'' प्रभु येशु के इन शब्दों को नई वाचा की व्यवस्था के संदर्भ में अधिकारिक कथन माना जाता है।

पुराना नियम की पुस्तकों की पुरानी वाचा की पुस्तकें क्यों कहा जाता हैं? क्योंकि वाचा के पुराने इतिहास से उनका घनिष्ठ संबंध है और नया नियम की पुस्तकें नई वाचा की पुस्तकें इसलिए कही जाती हैं, क्योंकि ये नई वाचा की बुनियादी दस्तावेज हैं। धर्मशास्त्र के लिए 'पुराना नियम' शब्दों के सामान्य प्रचलन का उपयोग संत पौलुस के 2 कुरिन्थुस में दिखाई देता है,[71] यद्यपि संभवतः संत पौलुस के कथन का अभिप्राय पुरानी वाचा के आधार स्तंभ 'व्यवस्था ग्रंथ' से था न कि सम्पूर्ण इब्रानी धर्मशास्त्र से। संत पौलुस ने लिखा, ''पुरानी वाचा जब पढ़ी जाती है, जब मूसा का व्यवस्था ग्रन्थ पढ़ा जाता है।''

मसीही चर्च अर्थात् मसीही समाज में इन दोनों पुस्तकों के संग्रहों को ई0 सन् की दूसरी शताब्दी के अन्तिम दशकों में 'पुराना' और 'नया' नियमों से सम्बोधित किया जाने लगा था। सर्वप्रथम पश्चिमी जगत के महान धर्माचार्य ने लातीनी भाषा में विधि शास्त्र का शब्द *'इन्स्ट्रूमेन्टम्'* तथा *'टेस्टामेन्ट्म'* प्रयुक्त किये ; किन्तु दुर्भाग्य से *'टेस्टामेन्ट्म'* शब्द ही प्रचलित हुआ। दुर्भाग्य इसलिए कि बाइबिल के ये दोनों भाग *'टेस्टामेन्ट्स'* कानून–विधि के 'नियम' नहीं हैं; अपितु परमेश्वर की वाचा है, जो उसने मनुष्य–जाति के उद्धार के लिए उनसे स्थापित की है।

पुराना नियम के ग्रंथों का समूहीकरण – इब्रानी बाइबिल अर्थात् पुराना नियम के उन्तालीस ग्रंथ तीन समूहों में क्रमबद्ध किए गए हैं : व्यवस्था ग्रन्थ (तोराह), नबी ग्रंथ (नबीयिम) और रचनाएँ (कतूबीम)। व्यवस्था ग्रंथों के अन्तर्गत पंच ग्रन्थ आते हैं, अर्थात् पुराना नियम की प्रथम पाँच पुस्तकें जिन्हें मूसा की पुस्तकें भी कहा जाता है।

नबी ग्रंथों को दो भागों में विभाजित किया जाता है : आरम्भिक नबियों के ग्रंथ, जैसे : यहोशू, शासक ग्रंथ, शमूएल और राजा ग्रंथ। दूसरा भाग के अन्तर्गत बाद के नबियों के ग्रंथ आते हैं, जैसेः नबी यशायाह, नबी यिर्मयाह और नबी यहेजकेल के ग्रंथ तथा ''बारह नबियों की पुस्तकों का संग्रह'' आता है। इस संग्रह के नबियों को लघु नबी कहा जाता है। 'लघु' का अर्थ गौण नहीं है, वरन् आकार की दृष्टि से ये रचनाएँ छोटी हैं, (अर्थात् कुछ पृष्ठों की)। यहाँ तक कि नबी ओबद्याह के ग्रंथ में केवल एक अध्याय है। ऐसे ही नबी हग्गय के ग्रंथ में दो अध्याय! शेष ग्रंथ तीसरे समूह 'रचनाओं' (कृतियाँ) में सम्मिलित किए जाते हैं। इनका क्रम इस प्रकार है : पहले भजन संहिता, नीति वचन और अय्यूब (ये तीनों काव्य ग्रंथ हैं)। रूत, शोक गीत (विलाप गीत), सभा–उपदेशक, और एस्तर और अन्त में नबी दानिएल का ग्रंथ, शास्त्री एज्रा, नहेम्याह और इतिहास।

यहूदी गणना के अनुसार उपरोक्त ग्रंथों की संख्या चौबीस है; किन्तु मसीही चर्च की गणना के अनुसार ये उन्तालीस ग्रंथ हैं ; क्योंकि मसीही समाज में बारह नबियों की रचनाओं के संग्रह को एक ग्रंथ नहीं बल्कि बारह ग्रंथ, शमुएल, राजा, इतिहास और एज्रा– नहेम्याह को एक–एक नहीं, बल्कि दो–दो ग्रंथ माना गया है। ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि प्राचीन इतिहासकारों ने जैसे जोसेफस ने, चौबीस पुस्तकों के स्थान पर इनकी संख्या बाईस मानी है, जबकि धर्माचार्य संत जेरोम इन पुस्तकों की संख्या सत्ताईस तक पहुँचा देते हैं।

पुराने नियम के ग्रंथो की क्रमबद्धता किस प्रकार निर्धारित हुई और कब हुई, इसके विषय में स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं है। फिर भी बाइबिल के पंडित यह अनुमान लगाते हैं कि उपरोक्त तीन विभाजन (तोराह, नबीयित, कतूबीम) इतिहास के तीन चरणों अथवा विकास की अवस्थाओं की

ओर संकेत करते हैं, जब इन्हें प्रामाणिक धर्मग्रन्थ–संग्रह होने की वैद्यता प्राप्त हुई थी। यह सोच केवल अनुमान है; इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता।

इब्रानी बाइबिल के तीन विभाजन स्वाभाविक ही प्रभु येशु के शिष्यों प्रेरितों द्वारा स्वीकृत थे, क्योंकि वे स्वयं यहूदी (इब्रानी) थे। संत लूका द्वारा रचित शुभ समाचार में इस त्रिविभाजन का उल्लेख हुआ है। लूका 24 : 44, "मूसा की व्यवस्था (पंच ग्रंथ तोराह), नबियों की पुस्तकों (नबूयिम) और भजन संहिता (कतूबीम) में ....।"

बाइबिल का सर्वप्राचीन अनुवाद यूनानी बाइबिल है। अतः इसमें बाइबिल के ग्रंथों का जो क्रम है, उसी क्रम को विश्व की तमाम भाषाओं की बाइबिल में स्वीकार किया गया है। यूनानी अनुवाद को बताने के लिए रोमन संख्या LXX का इस्तेमाल किया जाता है। वास्तव में यह 70 की रोमन संख्या बाइबिल के यूनानी अनुवाद का प्रतीक बन गई है।

यूनानी अनुवाद LXX में ग्रंथों का क्रम विषय के अनुसार है, पहले पंच ग्रन्थ, उनके पश्चात् ऐतिहासिक ग्रंथ, तत्पश्चात् काव्यग्रंथ एवं बुद्धि–प्रज्ञा ग्रंथ (बुद्धि साहित्य), और अन्त में नबी ग्रंथ। यही क्रम आज मसीही समाज की बाइबिल में स्थायी रूप से स्वीकृत और कायम है।

पुराना नियम का शुभ सन्देश – पुराना नियम की रचनाओं में न केवल परमेश्वर के इस विकासोन्मुख दोहरे प्रकाशन का विवरण लेखबद्ध है, वरन् उन कृतियों में परमेश्वर के प्रकाशन के प्रत्युत्तर में की गई अनुक्रिया (रिस्पोन्स) का विवरण भी उन प्रकाशनों के साथ पढ़ने को मिलता है। कभी–कभी यह अनुक्रिया परमेश्वर की इच्छा के अनुकूल आज्ञाकारिता थी, किन्तु अधिक बार आज्ञा–उल्लंघन। इस्त्राएली दोनों प्रकार की अपनी अनुक्रिया अपने कार्यों तथा वचनों से प्रकट करते थे। जिन लोगों के पास परमेश्वर का वचन पहुँचा और उन्होंने जो अनुक्रिया की, उसका विवरण पुराना नियम में लिखा जाना नया नियम के लिए महत्वपूर्ण और उपयोगी हो गया। नया नियम में मसीही समाज की व्यावहारिक शिक्षा के लिए उसका इस्तेमाल किया गया। निर्जन प्रदेश में इस्त्राएलियों द्वारा समय–समय पर परमेश्वर की आज्ञाओं के विरुद्ध किए गए विद्रोह और परिणामस्वरूप उन पर आयीं महाविपत्तियों के विषय में संत पौलुस लिखते हैं – "ये घटनाएँ, जो उन पर बीतीं, प्रतीक स्वरूप थीं, और ये हम लोगों की चेतावनी के लिए लिखीं गईं; क्योंकि हम युगान्त में जी रहे हैं।"[72]

नया नियम – पिछले प्रायः 1,700 वर्षों से अधिकांश मसीही समाज नया नियम को परमेश्वर का पवित्र ग्रंथ मानता आ रहा है, जिसमें छोटी–बड़ी सत्ताईस पुस्तकें संग्रहीत हैं और जिनको परमेश्वर के भक्त संदेशवाहकों ने पवित्र आत्मा की प्रेरणा से मनुष्य के कल्याण के लिए लिखा और संकलित किया।

इन सत्ताईस पुस्तकों को चार समूहों में बाँटा जाता है :

1. आरम्भिक चार शुभ समाचार (मत्ती, मरकुस, लूका और योहन)।
2. प्रेरितों के कार्य (प्रभु येशु के प्रमुख शिष्यों के कार्यों का विवरण)।
3. इक्कीस पत्रों का संकलन जिन्हें प्रभु येशु के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके प्रमुख शिष्यों (प्रेरितों) तथा अन्य भक्तों ने लिखा।
4. प्रकाशन ग्रंथ (नया नियम की अन्तिम पुस्तक)।

नया नियम की 27 पुस्तकों का यह क्रम न केवल तर्क–संगत है, वरन् दस्तावेजों की विषय–वस्तु के ऐतिहासिक दृष्टि से भी सही हैं किन्तु यहाँ ध्यान में रखना चाहिए कि जिस क्रम में ये पुस्तकें नया नियम में रखी गई हैं, वे उसी क्रम में लिखी नहीं गई थीं, अर्थात् यह आवश्यक

नहीं है कि पहले क्रम का शुभ समाचार संत मत्ती का रचना–काल सबसे पहले हो और अन्तिम पुस्तक प्रकाशन ग्रंथ का रचना–काल सबसे बाद का हो।

बाइबिल के पंडित स्वीकार करते हैं कि नया नियम में संग्रहीत संत पौलुस के पत्र सबसे पहले लिखे गए; यहाँ तक कि प्रभु येशु का जीवन–चरित्र बताने वाले चारों शुभ समाचारों के लिखे जाने के पूर्व! इनका रचना–काल ई0 सन् 48 से 60 के मध्य माना जाता है। अपवाद रूप में 'याकूब का पत्र' है, जिसके विषय में इतिहासकार मानते हैं कि यह पत्र भी इसी अवधि के दौरान लिखा गया होगा।

चारों शुभ–समाचारों का रचना–काल ई0 सन् 60–100 के मध्य माना जाता है। धर्म वैज्ञानिकों की यह मान्यता है कि नया नियम की शेष रचनाएँ भी इसी अवधि के दौरान रची गई होंगी।

नया नियम के कुछ पुस्तकों का रचना-काल[73]

मत्ती	: इसकी रचना तिथि सन् 70 के उपरान्त मानी जाती है, विद्वानों का अनुमान है कि यह लगभग 85 ईस्वीं में लिखा गया।
मरकुस	: इसकी लेखन तिथि 65–70 ई0 के बीच है भाषा–आरामी लेखन स्थल– रोम।
लूका	: इसकी निश्चित तिथि नहीं है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि यह ई0 सन् 63 में लिखा गया, जब पौलुस के मुकद्में का नतीजा निश्चित नहीं था।
योहन	: ऐसा माना जाता है कि यह 95–100 ई0 के बीच लिखा गया। इसका लेखन काल निश्चित नहीं है।
प्रेरितों के कार्य–कलाप	: इस पुस्तक का रचनाकाल अधिकांश विद्वान ई0 सन् 80 और 90 के बीच मानते हैं।
रोम नगर की कलीसिया	: लगभग 54–57 ई0 में यह पत्र लिखा गया।
1 कुरिन्थुस	: यह पत्र 55–57 ई0 में लिखा गया।
2 कुरिन्थुस	: ये पत्र करीब 56 ई0 में लिखें गए।
गलातिया	: इस पत्र की तिथि 53–56 ई0 में मानते हैं।
इफिसुस	: पौलुस ने इफिसियों की पत्री 60–61 ई0 में लिखी।
फिलिप्पी	: पौलुस ने लगभग 62 ई0 में यह धन्यवाद का पत्र लिखा।
कलुस्से	: यह पत्री पौलुस ने जेल में सन् 60–62 ई0 में लिखी।
1थिस्सलुनी	: पौलुस ने लगभग 50 ई0 में यह पत्र लिखा।
2थिस्सलुनी	: पहले पत्र के प्रभाव के कारण पौलुस ने लगभग ई0 सन् 51 में दूसरा पत्र लिखा।
तीतुस ; 1 तिमुथियुस ; 2 तिमुथियुस	: इन तीनों पत्रों की रचना तिथि 90–100 ई0 मानी जाती है। (पहला व दूसरा तिमुथियुस और तीतुस, ये तीन पत्रियाँ पास्तरीय पत्रियाँ कहलाती हैं)।
फिलेमोन	: सन् 60–61 ई0।
इब्रानियों	: यह पत्र लगभग 63–69 के बीच लिखा गया।
याकूब	: इस पत्र की रचना तिथि के बारे में दो विचार हैं। यदि प्रभु येशु का भाई याकूब इस पत्री का लेखक था तो अपनी मृत्यु 62 ई0 के पूर्व यह पत्र लिखा। यदि कोई अन्य याकूब था तो 80–100 के बीच इस पत्र को लिखा। (याकूब की माँ सलोमी व प्रभु येशु की माँ मरियम चचेरी बहन थीं।)

1 पतरस	: लेखन तिथि 60–61 ई0 सन्।
2 पतरस	: इस पत्र की लेखन तिथि लगभग 125 ई0 हैं।
1योहन	: 85–90 ई0 सन्।
2योहन	: 85–90 ई0 सन्।
3योहन	: 90–100 ई0 सन्।
यहूदा	: लेखनकाल 70–80 ई0।
योहन का प्रकाशित वाक्य	: यह पुस्तक 95–98 के आस–पास लिखी गयी; इस पुस्तक का लेखन स्थल– पतमस टापू (क्रेते के पास)।[74]

नए नियम की 27 पुस्तकें हैं जो इस प्रकार हैं :

	लेखक	*पुस्तकें*
1.	सन्त मत्ती	मत्ती रचित सुसमाचार
2.	सन्त मरकुस	मरकुस रचित सुसमाचार
3.	सन्त लूका	लूका रचित सुसमाचार तथा प्रेरितों के कार्य।
4.	सन्त योहन	योहन की पहली पत्री, योहन की दूसरी पत्री, योहन की तीसरी पत्री, योहन का प्रकाशित वाक्य। (योहन ने 5 पुस्तकें लिखीं)
5.	सन्त पौलुस	रोमियों, 1कुरि0, 2कुरि0, गलातियों, इफीसियों, फिलिप्पियों, कुलुस्सियों, 1थिस्सुलुनी, 2थिस्सुलुनी, 1तिमुथियुस, 2तिमुथियुस, तीतुस, फिलेमोन,इब्रानियों। (पौलुस ने कुल 14 पत्रियाँ लिखीं)
6.	सन्त याकूब	याकूब की पत्री।
7.	सन्त पतरस	1 पतरस, 2 पतरस (2 पत्रियाँ)
8.	सन्त यहूदा	यहूदा की पत्री।

पुराना नियम में संग्रहीत 39 ग्रंथों का रचनाकाल ईस्वी सन् से पूर्व लगभग एक सहस्त्र वर्ष है, अर्थात् 39 पुस्तकें भिन्न–भिन्न समय में, भिन्न–भिन्न स्थानों (देशों, प्रदेशों, नगरों) और भिन्न–भिन्न लेखकों (लगभग चालीस) द्वारा भिन्न–भिन्न भाषाओं में (इब्रानी, यूनानी और अरामी) लिखी गई थीं, जबकि नया नियम की 27 पुस्तकें ईस्वीं सन् प्रायः प्रथम शताब्दी के दौरान लिखी गई। इनके लेखक भी प्रायः दस से अधिक नहीं हैं।

नया नियम के पुस्तकाकार रूप से ये रचनाएँ अपने लिखे जाने के तुरन्त बाद संग्रहीत नहीं हुई थीं और न ही किसी धर्मगुरू ने उन्हें एकत्र कर पुस्तक के रूप में संग्रहीत करने का विचार ही किया था। मसीही धर्म पंडित यह मानते हैं कि नया नियम की प्रत्येक रचना का विशेष पाठक–वर्ग था। ये रचनाएँ विशेष स्थान के विशेष पाठक अथवा चर्च या मंडली अथवा व्यक्ति–विशेष के लिए लिखी गयी थीं। चारों शुभ समाचारों का अलग–अलग पाठक–वर्ग था। अतः उनका अस्तित्व भी एक–दूसरे से स्वतन्त्र था। जैसे संत लूका, ने अपने विशिष्ट रोमन उच्चाधिकारी पाठक 'थियुफिलुस' के लिए प्रभु येशु का प्रामाणिक जीवन–चरित्र लिखा। इतिहासकार मानते हैं कि 'प्रेरितों के कार्य' पुस्तक के रचयिता भी संत लूका हैं और यह पुस्तक संत लूका रचित शुभ समाचार का ही परिशिष्ट अंश था। जब ईस्वीं सन् की दूसरी शताब्दी के आरम्भिक वर्षो में चारों शुभ समाचार

एक संग्रह के रूप में एकत्र किए गए तब यह परिशिष्ट अंश अलग किया गया और स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में अस्तित्व में आया।

संत पौलुस के कुछ पत्र मसीही अथवा मंडली, या चर्च अथवा मसीही विश्वासियों के झुण्ड को सामूहिक रूप से लिखे गए थे और कुछ पत्र व्यक्तिगत तौर पर व्यक्ति–विशेष को, जिन्होंने संत पौलुस के पत्रों को संभालकर, निज सम्पत्ति के रूप में रखा। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि प्रथम शताब्दी का अन्त होते–होते इन पत्रों को एकत्र किया जाने लगा। ऐसे दो संग्रह एकत्र किए गएः पहला संग्रह आकार में छोटा था। इसमें संत पौलुस के दस पत्र थे। यह संग्रह चर्चों में तुरन्त भेजा गया और उसकी लोकप्रियता से उत्साहित होकर इनमें तीन पास्तरीय पत्र जोड़े गए (तिमुथियुस के नाम दोनों पत्र और तीतुस) और संत पौलुस के पत्रों का बड़ा संग्रह चर्चों में प्रचलित हो गया। इस संग्रह के पत्र इतिहास के क्रम अर्थात् समय–क्रम के अनुसार नहीं, वरन् पत्रों की लम्बाई के क्रम में संग्रहीत हैंः अर्थात् बड़े पत्र पहले और सबसे अंत में छोटा। यही सिद्धान्त आज भी नया नियम में पालन किया जाता है। संत पौलुस के द्वारा लिखित पत्रों का क्रम बड़े पत्र से आरम्भ होता और अन्त सबसे छोटे पत्र में होता हैः 'रोमनगर की कलीसिया के नाम पत्र' (16 अध्याय) और अन्त 'फिलेमोन के नाम पत्र' (1 अध्याय)

नया नियम में संग्रहीत संत पौलुस के पत्रों में से उन पत्रों को पहले रखा गया है, जो चर्चों को लिखे गए थे और उनके बाद निजी पत्र रखे गए हैं।

इस प्रकार शुभ समाचार संग्रह, प्रेरितों के कार्य तथा संत पौलुस के पत्रों का संग्रह तैयार हुआ और नया नियम का ढाँचा चर्च के सामने प्रस्तुत हुआ यद्यपि वर्तमान रूप में नया नियम विकसित होने में दो सौ वर्ष और लग गए। चौथी शताब्दी में सन् 367 में प्रकाशित "संत अथानासियस के उन्तालीस पास्का–विषयक पत्र" में पहली बार निश्चित् संख्या की पुस्तकों के साथ नया नियम का उल्लेख हुआ और आगे चलकर समस्त विश्व की प्रमुख चर्चों ने इस नया नियम को मान्यता दी।

बाइबिल का संदेश – मानवीय सभ्यता के इतिहास में बाइबिल की महत्वपूर्ण भूमिका रही है और सम्भवतः आज भी बनी हुई है। विश्व की अनेक भाषाएँ जो केवल बोली जाती थीं, लिखीं नहीं जाती थीं, उनको वर्णाक्षर, लिपि प्राप्त हुई और बाइबिल उन भाषाओं में प्रकाशित हुई। भारत की अनेक भाषाएँ बाइबिल के कारण विकसित हुई हैं और उन्हें लिपि प्राप्त हुई। भारत का उत्तर–पूर्वीय क्षेत्र इस तथ्य का अच्छा उदाहरण है। बाइबिल ने ही दुनिया को छापाखाना दिया है, और छापाखाने ने ज्ञान–विज्ञान, शिक्षा आदि भी दी। विश्व में मुद्रणाक्षरों से छपने वाली पहली पुस्तक बाइबिल ही थी।

मसीही धर्म पुस्तक का धर्म है। बाइबिल ही मसीही समाज की आराधना और आचरण एवं उसके विश्वास का मूल आधार है; क्योंकि पिछले दो हजार वर्ष से प्रभु येशु के अनुयायी यह विश्वास करते आ रहे हैं कि बाइबिल के संदेश का मुख्य बिन्दु 'उद्धार की कहानी' है और यह कहानी बाइबिल के प्रथम पृष्ठ से आरम्भ होकर अन्तिम पृष्ठ के अंतिम वाक्य तक चलती है। इस कहानी के तीन तत्व हैंः उद्धार लाने वाला, उद्धार का मार्ग और उद्धार के उत्तराधिकारी। इस कहानी को पुराना नियम की शब्दावली में यों कह सकते हैं कि बाइबिल का मुख्य संदेश परमेश्वर की मनुष्य जाति से स्थापित वाचा है और इस वाचा की तीन लड़ियाँ हैं : वाचा का मध्यस्थ, वाचा का आधार और वाचाबद्ध लोग अर्थात् जिन लोगों से वाचा स्थापित की गई। परमेश्वर स्वयं अपने लोगों का उद्धार करता है। वह ही वाचा की अपनी करूणा को पुष्ट करता है और उसको स्थायी बनाता है।

उद्धार लाने वाला तथा वाचा का मध्यस्थ प्रभु येशु है, जो मसीह और परमेश्वर–पुत्र हैं, परमेश्वर–पुत्र इसलिए कि परमेश्वर ने उनको चुना है कि वह उनके बदले उनके कार्य को करें, उसको अन्जाम दें। उद्धार का मार्ग वाचा का आधार है, जो परमेश्वर का अनुग्रह अर्थात् उसकी कृपा है, जो उसके लोगों को आह्वाहन दे रही है कि वे विश्वास और आज्ञापालन के द्वारा परमेश्वर को रिस्पोन्स (प्रत्युत्तर) दें। उद्धार के वारिस, उत्तराधिकारी वाचाबद्ध लोग हैं जो परमेश्वर की नई इस्त्राएल कौम अर्थात् परमेश्वर की कलीसिया, सार्वलौकिक चर्च हैं।

पुराना नियम के समय से वाचाबद्ध लोगों की निरंतरता नया नियम की कलीसिया तक बताना, हिन्दी बाइबिल के पाठकों को दुर्बोध अथवा अस्पष्ट प्रतीत होता है; क्योंकि कलीसिया शब्द नया नियम का अनन्य विशिष्ट शब्द है। अतः इसका आरम्भ भी नया नियम के समय में हुआ है, परन्तु यूनानी बाइबिल (LXX) के पाठक के लिए 'कलीसिया' शब्द नया नहीं है। यूनानी पुराना नियम में इस्त्राएली लोगों को 'कलीसिया' अर्थात् परमेश्वर की 'मंडली' कहा गया है। इस प्रकार नया नियम में कलीसिया शब्द को पूर्ण और विस्तृत अर्थ मिला। प्रभु येशु ने कहा, "मैं अपनी कलीसिया बनाऊँगा"।[75] पुराने वाचाबद्ध लोगों को उनके साथ मरना होगा ताकि वे उनके साथ नवजीवन हेतु पुनर्जीवित हों..........इस नवजीवन में राष्ट्रीय, भौगोलिक भेद–बाधाएँ विलुप्त हो जाती हैं। फिर भी प्रभु येशु स्वयं अपने में पुरानी इस्त्राएली कौम तथा नयी कलीसिया के मध्य सजीव निरंतरता प्रदान करते हैं। उनके विश्वस्त अनुयायी पुराना नियम के 'धार्मिक बचे हुए (रेमनेन्ट) लोग' एवं नया नियम के केन्द्र (न्यूक्लिअस) दोनों हैं। सेवक प्रभु और उनके सेवक अनुयायी दोनों नियमों को परस्पर जोड़ते हैं।

बाइबिल का संदेश परमेश्वर का संदेश है, जो उसने सब लोगों को "थोड़ा–थोड़ा और अनेक प्रकार से" सम्प्रेषित किया है[76] और अन्त में उसने प्रभु येशु के रूप में देह धारण किया। अतः पवित्र बाइबिल जिस पर विश्वास किया जाना चाहिए और उसका पालन किया जाना चाहिए की अथोरिटी किसी मनुष्य की अथवा चर्च की गवाही पर निर्भर नहीं करती, वरन् पूरी तरह परमेश्वर पर (जो स्वयं सत्य है) जो उसका लेखक है। बाइबिल को स्वीकार किया जाना चाहिए ; क्योंकि वह परमेश्वर का वचन हैं।

प्रोटेस्टेंट बाइबिल एवं काथलिक बाइबिल में केवल इस बात का अन्तर है कि काथलिक बाइबिल में निम्नलिखित पुस्तकें अतिरिक्त संग्रहीत हैं, जिन्हे अपॉक्रिफा (प्रामाणिक ग्रन्थ) कहा जाता है :

1. तोबीत, 2. यहूदीत, 3. शेष–एस्तर (यूनानी एस्तर–ग्रंथ के अन्तर्गत), 4. मक्काबियों का पहला ग्रंथ, 5. मक्काबियों का दूसरा ग्रंथ, 6. सुलेमान का प्रज्ञा ग्रन्थ, 7. प्रवक्ता ग्रंथ (येशूअ बेन–सीराह का प्रवक्ता ग्रंथ), 8. बारूक, 9. यिर्मयाह का पत्र, शेष. दानिएल के तीन अतिरिक्त अंशः, 10. अजर्याह प्रार्थना और तीन युवकों का गीत, 11. सूसन्नाह, 12. बेल देवता और अजगर, 13. पहला एस्द्रस, दूसरा एस्द्रस, 14. मनश्शै की प्रार्थना, 15. सीरख।

इन पुस्तकों के सम्बन्ध में काथलिक विद्वानों की टिप्पणी –

रोमन काथलिक चर्च ने सन् 1546 की ट्रेंट नामक धर्म–परिषद में इन्हीं अतिरिक्त ग्रंथों को "पुराना विधान" और "नया विधान" के साथ पवित्र और प्रामाणिक मान लिया, क्योंकि वह सम्पूर्ण बाइबिल को "समान रूप से भक्ति एवं श्रद्धा के साथ ग्रहण करती है और आदर देती है।" यूनानी–रूसी ऑर्थडॉक्स चर्च ने "पुराना विधान" की ग्रन्थ–सूची में और अधिक अनूदित यूनानी ग्रंथों को स्वीकार कर लिया है (जैसे एस्द्रास का प्रथम ग्रंथ और मक्काबियों का तीसरा ग्रंथ)।

धर्म सुधारक मार्टिन लूथर ने, अपने जर्मन अनुवाद में संत जेरोम के मतानुसार ऐसे अतिरिक्त ग्रंथों को "ज्ञानवर्धक" माना था और प्रामाणिक ग्रंथों से अलग रखा था। उसी प्रकार आंग्लिकन चर्च के अधिकृत "किंग जेम्स संस्करण" (सन् 1611) में अतिरिक्त "अपॉक्रिफा" ग्रंथ "पुराना नियम" तथा "नया नियम" के मध्य में मिलते हैं। उत्तर भारत के चर्च (सी0एन0आई0) ने भी अपने "पंचाग" (अलमनक) में इन ग्रंथों से चुने हुए पाठों का प्रावधान किया है।

बाइबिल अध्ययन की दृष्टि से अन्य–प्रामाणिक ग्रंथों का महत्व सर्वमान्य है, क्योंकि प्रभु येशु मसीह के जीवन–काल की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि समझने के लिए ये ही यहूदी ग्रंथ सहायक हैं। इन्हीं ग्रंथों से ईस्वीं पूर्व की अन्तिम सदियों में इस्त्राएली समाज के इतिहास, जीवन–संघर्ष, विचार–धारा, आराधना–विधि और धार्मिक प्रथाओं के संबन्ध में अच्छी जानकारी प्राप्त होती है।

संत जेरोम : बाइबिल के प्रथम अनुवादक – माना जाता है कि मसीही धर्माचार्यो में यही व्यक्ति को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने इब्रानी और यूनानी अर्थात् पुराना नियम और नया नियम का सर्वप्रथम अनुवाद लातीनी भाषा में किया था। जिसे इतिहासकार Vulgate (अर्थात् ग्रामीण लातीनी भाषा) कहते हैं। संत जेरोम (342–420 ईस्वीं सन्) बाइबिल के महानतम् विद्वान थे। उनका जन्म अक्वीलेइया के समीप स्ट्राइडो नामक स्थान में हुआ था और रोम में शिक्षा एवं बपतिस्मा हुआ। वह सन् 386 में इस्राएल देश के बेतलेहम नगर में आए थे और यहीं एक आश्रम में बस गए और वापस स्वदेश कभी नहीं लौटे। उनके स्मरण में काथलिक चर्च 30 सितम्बर को एक पर्व मनाता है। उनका देहान्त 420 ईस्वीं सन् माना जाता है। (सम्पादक– एफ0एल0 क्रॉस एवं इ0ए0 लिविंगस्टन, "ऑक्सफोर्ड कलीसिया ज्ञान कोश", प्रका0– हिन्दी थियोलॉजिकल लिटरेचर कमेटी, जबलपुर, 1980, पृष्ठ– 337)

यद्यपि विश्व साहित्य में एवं विश्व के धर्मों एवं संस्कृतियों में अंग्रेजी भाषा की बाइबिल का अद्वितीय स्थान है; किन्तु ऐसा ही सम्मानित स्थान भारत की संस्कृति और धर्मशास्त्रों में बाइबिल को प्राप्त नहीं हो सका। विद्वान यह मानते हैं कि यों तो भारत में छापाखाना के आगमन से भारतीय भाषाओं में जो पुस्तकें सर्वप्रथम छपीं वे बाइबिल के विभिन्न अनुवाद थे। हिन्दी भाषा में सम्पूर्ण बाइबिल का अनुवाद श्री रामपुर के (कोलकाता के निकट) डॉ0 विलियम कैरी ने सन् 1808 से 1818 के मध्य प्रकाशित किया था। हिन्दी भाषा में छपने वाला यह प्रथम मसीही धर्मशास्त्र था। होना तो यह चाहिए था कि इसको भी भारतीय संस्कृति के धर्मशास्त्रों में वैसा ही गौरवमय स्थान प्राप्त होता; किन्तु ग्रामीण भाषा के प्रयोग के कारण इसका प्रचलन शिक्षित वर्ग में नहीं हो सका। अब भी इसकी भाषा उच्च स्तरीय नहीं है। इस सम्बन्ध में डॉ0 जे0एच0 आनन्द ने अपने शोध ग्रंथ में इस विषय पर प्रकाश डालते हुए इस प्रकार लिखा है :–

"हिन्दी के इतिहासकार बाइबिल की भाषा के सम्बन्ध में विरोधी मत रखते हैं। डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय लिखते हैं, 'बाइबिल प्रधानतः ग्रामीणों के लिए और निम्न वर्ग के अशिक्षित लोगों के लिए थी, इसलिए भाषा में ग्रामीणपन है।[77] परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार से, "मसीहियों ने अपनी धर्म पुस्तक के अनुवाद की भाषा में फ़ारसी और अरबी के शब्द जहाँ तक हो सका है, नहीं लिए हैं, और ठेठ ग्रामीण शब्द तक बेधड़क रखें गए हैं। उनकी भाषा सदासुख और लल्लूलाल के ही नमूने पर चलीं हैं। उसमें जो कुछ विलक्षणता–सी दिखाई पड़ती है वह मूल विदेशी भाषा की वाक्य रचना और शैली के कारण है। सारांश यह है कि ईसाइ मत–प्रचारकों ने विशुद्ध हिन्दी का व्यवहार किया है।"[78]

पुराना नियम की पाण्डुलिपि (कुण्डलपत्र, Scroll) का एक मूल पृष्ठ

पाण्डुलिपियाँ [Scrolls] ऐसे ही सुराहीनुमा जार में रखी जाती थीं।

חזון יוחנן כב

והמה יראו את־פניו ושמו על־מצחותם: ולילה לא
יהיה־עוד ולא יצטרכו עוד לאור נר ולאור שמש
כי־יהוה אלהים הוא יאיר להם וימלכו עד־עולמי
עולמים: ויאמר אלי הדברים האלה אמתים
ונאמנים הם ויהוה אלהי הנביאים הקדשים שלח את־
מלאכו להראות את־עבדיו את אשר־היה יהיה
במהרה: הנני בא מהר אשרי השמר את־דברי נבואת
הספר הזה: ואני יוחנן הוא הראה אלה ושמעם
ויהי כשמעי וכראותי ואפל לפני רגלי המלאך אשר־
הראני את־אלה להשתחות לו: ויאמר אלי ראה
אל־תעשה־זאת כי־עבד כמוך אנכי וחבר לך
ולאחיך הנביאים ולשמרים את־דברי הספר הזה
לאלהים השתחוה: ויאמר אלי אל־תחתם את־דברי
נבואת הספר הזה כי קרוב המועד: החומס יוסיף
לחמס והטמא יוסיף להטמא והצדיק יוסיף להצדק
והקדוש יוסיף להתקדש: והנני בא מהר ושכרי אתי
לשלם לכל־איש כמעשהו: אני האלף והתו הראש
והסוף הראשון והאחרון: אשרי העשים את־מצותיו
למען תהיה ממשלתם בעץ החיים ובאו העירה
דרך השערים: ומחוץ לה הכלבים והמכשפים
והזנים והמרצחים ועבדי האלילים וכל־אהב שקר
ועשהו: אני ישוע שלחתי את־מלאכי להעיד
לכם את־אלה בפני הקהלות אנכי שרש דוד
ותולדתו כוכב נגה השחר: והרוח והכלה אמרים
בא והשמע יאמר בא והצמא יבוא והחפץ יקח מים
חיים חנם: מעיד אני בכל־השמע דברי נבואת

इब्रानी (हिब्रू) बाइबिल का मुख्य पृष्ठ

ΒΙΒΛΟΣ γενέσεως Ἰησοῦ χριστοῦ, υἱοῦ [b]Δαβίδ,[b] υἱοῦ Ἀβραάμ.

2 Ἀβραὰμ ἐγέννησεν τὸν Ἰσαάκ· Ἰσαὰκ δὲ ἐγέννησεν τὸν Ἰακώβ· Ἰακὼβ δὲ ἐγέννησεν τὸν Ἰούδαν καὶ τοὺς ἀδελφοὺς αὐτοῦ· 3 Ἰούδας δὲ ἐγέννησεν τὸν Φαρὲς καὶ τὸν Ζαρὰ ἐκ τῆς Θαμάρ· Φαρὲς δὲ ἐγέννησεν τὸν Ἐσρώμ· Ἐσρὼμ δὲ ἐγέννησεν τὸν Ἀράμ· 4 Ἀρὰμ δὲ ἐγέννησεν τὸν [c]Ἀμιναδάβ·[c] [c]Ἀμιναδὰβ[c] δὲ ἐγέννησεν τὸν Ναασσών· Ναασσὼν δὲ ἐγέννησεν τὸν Σαλμών· 5 Σαλμὼν δὲ ἐγέννησεν τὸν [d]Βοὸζ[d] ἐκ τῆς Ῥαχάβ· [d]Βοὸζ[d] δὲ ἐγέννησεν τὸν [e]Ὠβὴδ[e] ἐκ τῆς Ῥούθ· [e]Ὠβὴδ[e] δὲ ἐγέννησεν τὸν Ἰεσσαί· 6 Ἰεσσαὶ δὲ ἐγέννησεν τὸν [b]Δαβὶδ[b] τὸν βασιλέα. [b]Δαβὶδ[b] δὲ [f]ὁ βασιλεὺς[f] ἐγέννησεν τὸν [g]Σολομῶντα[g] ἐκ τῆς τοῦ Οὐρίου· 7 Σολομὼν δὲ ἐγέννησεν τὸν Ῥοβοάμ· Ῥοβοὰμ δὲ ἐγέννησεν τὸν Ἀβιά· Ἀβιὰ δὲ ἐγέννησεν τὸν [h]Ἀσά·[h] 8 [h]Ἀσὰ[h] δὲ ἐγέννησεν τὸν Ἰωσαφάτ· Ἰωσαφὰτ δὲ ἐγέννησεν τὸν Ἰωράμ· Ἰωρὰμ δὲ ἐγέννησεν τὸν [i]Ὀζίαν·[i] 9 [j]Ὀζίας[j] δὲ ἐγέννησεν τὸν Ἰωάθαμ· Ἰωάθαμ δὲ ἐγέννησεν τὸν Ἄχαζ· Ἄχαζ δὲ ἐγέννησεν τὸν [k]Ἐζεκίαν·[k] 10 [l]Ἐζεκίας[l] δὲ ἐγέννησεν τὸν Μανασσῆ· Μανασσῆς δὲ ἐγέννησεν τὸν [m]Ἀμών·[m] [m]Ἀμὼν[m] δὲ ἐγέννησεν τὸν [n]Ἰωσίαν·[n] 11 [o]Ἰωσίας[o] δὲ ἐγέννησεν τὸν Ἰεχονίαν καὶ τοὺς ἀδελφοὺς αὐτοῦ, ἐπὶ τῆς μετοικεσίας Βαβυλῶνος. 12 Μετὰ δὲ

[a] Εὐαγγέλιον κατὰ Ματθαῖον (Ματθ. GW) GLTrW; [Εὐαγ.] κατὰ Ματθ. A; κατὰ Ματθ. T. [b] Δαυίδ GW; Δαυείδ LTTrA. [c] Ἀμειναδάβ A. [d] Βοὲς LTr; Βοὲς TA. [e] Ἰωβὴδ LTTrA. [f] — ὁ βασιλεὺς LTTrA. [g] Σολομῶνα GTTrAW. [h] Ἀσάφ LTTrA. [i] Ὀζίαν LTTrA. [j] Ὀζίας LTTrA. [k] Ἐζεκίαν L. [l] Ἐζεκίας L. [m] Ἀμώς LTTrA. [n] Ἰωσίαν LTTrA. [o] Ἰωσίας LTTrA.

यूनानी (ग्रीक) बाइबिल का मुख्य पृष्ठ

यरुशलेम में स्थित इस्राएलियों के ध्वस्त मन्दिर की अवशेष दीवार जिससे टिककर यहूदी भक्त आज भी शनिवार के दिन प्रार्थना करता है। यह दीवार लगभग 3000 वर्ष पुरानी मानी जाती है।

यरुशलेम के प्राचीन गिरजा घर की दीवार पर चित्रित बाइबिल के प्रथम अनुवादक 'संत जेरोम' (ईस्वी सन् 342-420) की आकृति, जिनका अनुवाद लातीनी भाषा में Vulgate कहलाता है। यह अनुवाद आज भी इतालवी (इटली) कलीसिया प्रयुक्त करती है।

जेरोम की प्रस्तर प्रतिमा
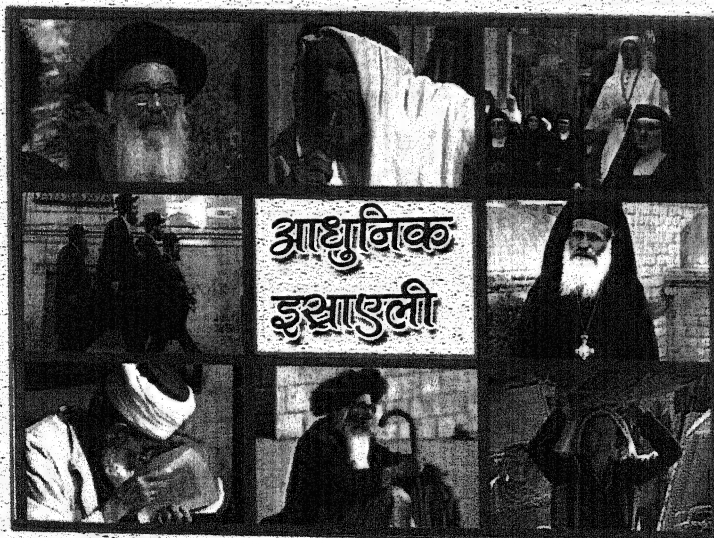
"इसी विशुद्ध हिन्दी, ठेठ ग्रामीण शब्दों से भरी भाषा को डॉ0 शमशेर सिंह नरूला 'संस्कृतनिष्ठ' कहते हैं।[79] कहने का तात्पर्य यह है कि बाइबिल की भाषा को हम आज के दृष्टिकोण से देखते हैं। अपना मत निर्धारित करते समय सन् 1805 से लेकर 1905 तक प्रकाशित विभिन्न संस्करणों को विस्मृत कर किसी एक अनुवाद को आधार बना लेते हैं। हम सदा एक मूलतत्व की उपेक्षा कर जाते हैं कि हिन्दी बाइबिल ने सन् 1805 से आज तक अद्भुत प्रगति की है। प्रत्येक संस्करण में भाषा को निखारा गया है। शैली को माँजने का प्रयास किया गया है। उनका मत है कि प्रत्येक संस्करण अपने युग की जनता की भाषा का प्रतिनिधित्व करता है। गैर मसीही धार्मिक की भाषा में जनता को स्थान उपलब्ध नहीं है। वह पण्डिताऊ है, पर बाइबिल की भाषा और पाठ्य पुस्तकों की भाषा में कभी अन्तर नहीं देखा गया। भाषा की सरलता का अर्थ बचकानापन नहीं था। सरलता के साथ गरिमा भी थी।

"एक बात और हिन्दी में मुसलमानों के संसर्ग से विशिष्ट इस्लामी शब्दावली का प्रयोग भी करना पड़ा क्योंकि उसकी धार्मिक और सांस्कृतिक शब्दावली मूलतः अरबी है। उपासना, पूजा, ईश्वर, परमात्मा, व्रत या उपवास आदि शब्द इस्लामी शब्द भण्डार में नहीं आये पर बाइबिल आदि पुस्तकों में अनुवादकों ने भगवान, ईश्वर, नरक, स्वर्ग, धर्म, धर्मात्मा, सन्त आदि शब्दों का व्यवहार सदा किया है। अतः हिन्दू और मसीही शब्दावली में भेदभाव उत्पन्न नहीं होने पाया। भाषा में रूपकों और प्रतीकों का प्रयोग तथा प्रेषणीयता का युगवत् निदर्शन इन्हें सामान्य भारतीय जनता के निकट लाने में सहायक हुआ।[80]

मसीहीं धर्म के अनुयायियों का धार्मिक विश्वास

सम्पूर्ण विश्व में धर्म केवल एक है। पृथ्वी में जहाँ भी विवेकशील मानव निवास करते हैं, उन्होंने प्रातः काल से रात्रि तक, और जन्म से लेकर मृत्यु तक अपने जीवनचर्या को विविध कर्त्तव्यों में विभाजित कर रखा है। ये कर्त्तव्य : धार्मिक–कर्त्तव्य, (अर्थात् धार्मिक आचरण) नैतिक–कर्त्तव्य, नैमित्तिक–कर्त्तव्य, पारिवारिक–कर्त्तव्य, सामाजिक–कर्त्तव्य, आर्थिक–कर्त्तव्य, राष्ट्रीय–कर्त्तव्य, राजनीतिक–कर्त्तव्य और विश्व मानवता के हितार्थ किए गए कर्त्तव्य हैं। इसमें से धार्मिक और नैतिक कर्त्तव्य धर्म से जुड़े हुए हैं, जिन्हें भारतीय दर्शन के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से जोड़ा जाता है। इनका मुख्य लक्ष्य पुरूषार्थ है। इसी पुरूषार्थ को विश्व के सभी लोग धर्म की संज्ञा देते हैं। मसीही धर्म के अनुयायी भी इन नैतिक कर्त्तव्यों का अनुपालन करते हैं। प्रातःकाल वे संपूर्ण नैमित्तिक कार्यों को संपन्न करते हैं फिर पारिवारिक कार्यों को संपन्न करते हैं, इसके पश्चात् धार्मिक कृत्य करते हैं तत्पश्चात् जीविका उपार्जन के लिए आर्थिक–कृत्य करते हैं। सामाजिक संबन्धों को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए विविध सामाजिक कार्यों में भाग लेते हैं।

धर्म परमेश्वर को समर्पित कर्त्तव्यों का लेखा–जोखा है। इस सिद्धान्त के अनुसार मसीही लोग परमेश्वर को सर्वोपरि मानते हैं और परमेश्वर पर श्रद्धा रखते हैं। चूंकि मसीही धर्म का उदय इस्त्राएल में रहने वाले यहूदियों से हुआ है और यहूदी लोग परमेश्वर को सर्वोच्च स्थान देते हैं और उनको सृष्टि का कर्त्ता–धर्त्ता मानते हैं तथा समस्त व्यक्ति परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व परमेश्वर की आज्ञा के अधीन हैं। बाइबिल में इसका वर्णन इस प्रकार हुआ है :

"मैं ही प्रभु हूँ, मुझे छोड़, दूसरा प्रभु नहीं है। मेरे अतिरिक्त अन्य ईश्वर नहीं है। मैं ही प्रकाश का उत्पन्न करने वाला हूँ, मैं ही विपत्ति का ढाहने वाला हूँ। ओ आकाश, धर्म की वर्षा कर। ओ आकाश–मण्डल, धार्मिकता बरसा। धरती की सतह खुल जाए, जिससे उद्धार का अंकुर फूटे।

धिक्कार है उसे, जो अपने रचने वाले से तर्क करता है। क्या घड़ा अपने बनाने वाले कुम्हार से बहस कर सकता है? क्या मिट्टी अपने गढ़ने वाले कुम्हार से कह सकती है, 'तू क्या बना रहा है?' अथवा, 'इसमें मुठिया तो है ही नहीं,' मैंने पृथ्वी को बनाया है। मैंने ही मनुष्य को रचा है। मेरे ही हाथों ने आकाश को वितान के समान ताना है; मेरे ही आदेश से आकाश के तारागण स्थित हैं।''[81] मसीही ही नहीं अपितु सभी धर्म के लोग परमेश्वर को सर्वश्रेष्ठ स्थान देते हैं, अर्थात् यह सिद्धान्त सर्वमान्य है। मसीही धर्म के अन्तर्गत प्रभु येशु मसीह को सर्वोच्च स्थान दिया गया है तथा उसके धर्मोपदशों से प्रेरित होकर उसे प्रभु परमेश्वर के पुत्र के अतिरिक्त परमेश्वर के रूप में भी माना गया है। यथा – ''प्रभु येशु मसीह परमेश्वर हैं। प्रभु येशु की शिक्षाएँ, उनके कार्य और उनका व्यक्तित्व सब इस बात को सिद्ध करते हैं कि वह परमेश्वर हैं।''[82]

कुछ लोग प्रभु येशु मसीह को परमेश्वर का पुत्र मानते हैं। ''यही आदि में परमेश्वर के साथ था, सब कुछ उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ............और वचन देहधारी हुआ। और अनुग्रह और सच्चाई से परिपूर्ण होकर हमारे मध्य निवास किया और हमने उसकी ऐसी महिमा देखी, जैसी पिता के एकलौता पुत्र की महिमा।...........परमेश्वर को किसी ने कभी नहीं देखा, एकलौता पुत्र जो पिता की गोद में है उसी ने उसे प्रकट किया''। यह प्रभु येशु मसीह हैं।[83]

मसीही धर्मावलम्बियों में बाइबिल के प्रति सर्वाधिक निष्ठा है। ये लोग इसे धर्मशास्त्र की संज्ञा देते हैं तथा इसका पठन–पाठन बड़ी श्रद्धा–भक्ति के साथ प्रतिदिन अथवा रविवार के दिन घर में अथवा चर्च में करतें हैं। इस ग्रन्थ को ईश्वरीय वाणी (परमेश्वर का वचन) समझा जाता है।

मसीही धर्म के अनुयायी चर्च अथवा गिरजाघर को अपना पवित्र पूजा–स्थल मानतें हैं जहाँ प्रत्येक रविवार और मसीही तीज–त्यौहारों के अवसर पर नियमित धार्मिक विधियाँ, आराधना स्तुति सम्पन्न की जाती हैं। इन अवसरों पर प्रार्थना, पवित्र बाइबिल का पाठ, अन्य धर्म चर्चा, सदोपदेश तथा भजन–कीर्तन आदि होते हैं। यहाँ की सम्पूर्ण धार्मिक विधियों का संचालन पुरोहित सम्पन्न कराता है।

सम्पूर्ण भारतवर्ष में चर्चों की संख्या लाखों में हो सकती है। प्रायः इन चर्चों का निर्माण विदेशी वास्तु–शिल्प को ध्यान में रखते हुए भारतीय शिल्पकारों ने भारतीय–शिल्प का सहारा लेकर किया है। मुख्य रूप से चर्च अथवा पूजागृहों में चर्च के बाहरी द्वार पर एक तोरण और उसकी ऊँचाई पर क्रूस अथवा क्रॉस का चिन्ह होता है। जिसको देखकर प्रायः दूर से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह भवन गिरजाघर होगा। इनका वास्तुशिल्प प्रायः क्रूस के आकार का होता है। किसी भी चर्च को निम्नलिखित 3 भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. बड़ा हाल जहाँ आराधक बेंचों, कुर्सियों पर बैठते हैं कुछ गिरजाघरों में बेंचें एवं कुर्सियाँ न होने पर लोग जमीन पर बैठते हैं।
2. भूमि की सतह से कुछ ऊँचा स्थल जहाँ पुरोहित बैठता है, तथा प्रभु–भोज की सामग्री रखी जाने वाली पवित्र मेज रखी जाती है और इसे पवित्र स्थान माना जाता है और जहाँ केवल पुरोहित ही बैठा करता है और जहाँ से वह आराधना का संचालन करता है। इसे वेदी स्थल (पुलपिट) कहते हैं। इसके बिना कोई भी गिरजाघर पूर्ण नहीं माना जाता। वेदी की परम्परा भी यहूदियों के प्राचीन सभागृह (Synagogue) से चली आ रही है जिसके विषय में बाइबिल में इस प्रकार लिखा है –

   प्राचीन काल में जब यरूशलेम का मन्दिर राजा सुलेमान के द्वारा बनवाया गया तब मन्दिर में एक विशेष स्थान था जहाँ मूसा की व्यवस्था की 2 पवित्र पट्टियाँ (पत्थर की) जो एक

मंजूषा में रखीं गयीं थी। उसे राजा सुलेमान ने प्रभु की वाचा—मंजुषा को प्रतिष्ठित करने के लिए भवन के आन्तरिक भाग में पवित्र अन्तर्गृह निर्मित किया। यह पवित्र अन्तर्गृह नौ मीटर चौड़ा, नौ मीटर लम्बा और नौ मीटर ऊँचा था। उसने पवित्र अन्तर्गृह को शुद्ध सोने से मढ़ा। उसने देवदार की लकड़ी की एक वेदी भी बनाई। सुलेमान ने भवन के भीतरी भाग को शुद्ध सोने से मढ़ा। उसने पवित्र अन्तर्गृह के सम्मुख सोने की साँकलें लगाईं और एक परदा टाँग दिया। उसने पवित्र अन्तर्गृह की सम्पूर्ण वेदी को भी सोने से मढ़ा। उसने सम्पूर्ण भवन को शुद्ध सोने से मढ़ कर भवन का निर्माण—कार्य पूर्ण किया।[84]

सम्भवतः चर्च ने भी इसी परम्परा का पालन किया यद्यपि उनकी वेदी निर्माण में सादगी अधिक थी फिर भी मध्यकाल के गिरजाघरों की वेदियों में भव्यता परिलक्षित होती थी। इसी युग में मुस्लिम लुटेरों ने गिरजाघरों की वेदियों में प्रयुक्त सोना, चाँदी लूटने के उद्देश्य से गिरजाघरों को ध्वस्त कर दिया था। इसका सर्वोत्तम उदाहरण है – इस्त्राएल देश के यरूशलेम नगर में स्थित अलअक्स की मस्ज़िद जिसके भीतर तोड़े गए गिरजाघरों के बहुमूल्य रत्नजड़ित स्तम्भों, स्टेन ग्लासेस एवं सोना, चाँदी के अन्य पात्र जो अनेक देशों के गिरजाघरों को ध्वस्त करने के पश्चात् लाए गए थे।

3. तीसरे भाग को हम एक छोटा कक्ष कह सकते हैं इसे वस्त्रागार (Vestry - वेस्ट्री) कहा जाता है। जहाँ पुरोहित आराधना संचालन करने के पूर्व अपनी विशेष पोशाक पहनता है तथा इसी कक्ष में प्रभु—भोज की पवित्र सामग्री रखी जाती हैं। यहाँ कभी—कभी गिरजाघर से संबन्धित बैठकें भी होती हैं।

कभी—कभी गैर मसीही पाठक चर्च और गिरजाघर दोनों को एक ही अर्थ में समझते हैं, जो वस्तुतः अंग्रेजी की भाषा के कारण अर्थ का अनर्थ भी होता है। चर्च को गिरजाघर अर्थात् आराधना स्थल कहा जाता है किन्तु इसका एक विशेष अर्थ भी होता है अर्थात् मसीही विश्वासी लोगों का समूह जिसके विषय में पवित्र बाइबिल में यह कहा गया है : "परमेश्वर ने अपने पुत्र येशु मसीह में एक नए समाज का निर्माण किया, जिसे चर्च कहा गया। इस नए समाज या मंडली की सदस्यता न तो जन्म से, न खतना से, न व्यवस्था के कर्मों के द्वारा है, वरन् नए जन्म के द्वारा है जो 'जल और आत्मा' से होता है।"[85] जितने मनुष्य प्रभु येशु मसीह पर विश्वास करते हैं, जल संस्कार द्वारा प्रभु येशु की मृत्यु तथा जी उठने में संभागी होते हैं और पवित्र आत्मा द्वारा नवीन जीवन की सामर्थ्य प्राप्त करते हैं वे ही कलीसिया (चर्च) है।

इस प्रकार मसीही धर्म में परमेश्वर, परमेश्वर का पुत्र, बाइबिल, पूजा स्थल (चर्च), धर्मगुरू और धर्मसभा का विशेष महत्व है। धर्म चिन्ह के रूप में क्रूस अथवा क्रॉस को मान्यता प्रदान की गयी है।

पुरोहितों का पहनावा

मसीही पुरोहितों के पहनावे के विषय में कोई निश्चित तथ्य लिखना असम्भव है, क्योंकि मसीही धर्म की अनेक परम्पराएँ हैं और हर एक परम्परा के पुरोहित की अपनी पोशाक होती है। अतः हमने केवल काथलिक पुरोहित की पोषाक का वर्णन किया है।

प्रायः हर धर्म में पुरोहित अपने पहनावे से पहचाना जाता है। यद्यपि आधुनिक पश्चिमी चर्च समुदाय में अनेक देशों में पुरोहितों के विशिष्ट पहनावे की प्रथा को समाप्त कर दिया गया है, विशेषकर उत्तरी अमेरिका में (यू0एस0ए0, कनाडा)। अब यह पहचानना मुश्किल है कि पुरोहित कौन है। कुछ चर्चों में पुरोहित यद्यपि विशिष्ट पोशाक न पहनकर उसके स्थान पर केवल विशेष

प्रकार का कॉलर कोट के साथ पहनता है जिससे उसकी पहचान होती है कि वह पुरोहित है। कुछ चर्चों में विशेषकर परम्परावादी चर्चों में जैसे – एंग्लीकन, काथलिक, आर्थोडॉक्स चर्चों में पुरोहितों को अपने विशेष पोशाक पहनना अनिवार्य होता है। वे केवल रात्रि में सोने के समय ही अपनी पोशाक को उतार सकते हैं। फिर भी आधुनिक काल में इस अनिवार्यता में छूट दी जा रही है। हाँ धार्मिक कर्मकाण्ड अथवा धार्मिक विधि सम्पन्न करते समय इन परम्परावादी पुरोहितों को अपनी विशिष्ट पोशाक पहनना आवश्यक होता है। यह परम्परा यहूदी परम्परा से प्रभावित है। जैसे किसी भी यहूदी पुरोहित को अपनी विशिष्ट पोशाक पहनना धर्मशास्त्र के अनुसार अनिवार्य था, वैसे ही आरम्भिक चर्च, मसीही पुरोहितों को भी विशिष्ट पोशाक पहनना अनिवार्य किया और यहूदी प्रथा को ज्यों का त्यों ग्रहण किया था। इस विषय पर बाइबिल की एक पुस्तक निर्गमन ग्रंथ (अध्याय– 28, 39) विवरण में बहुत विस्तार से पुरोहितों की पोशाक पर धार्मिक निर्देश दिए गए हैं। इस विशिष्ट पोशाक पहनने के 2 मुख्य अभिप्राय थे कि पुरोहित वैभव और सौन्दर्य से परिपूर्ण दिखाई दे। (परमेश्वर ने कहा, "तू अपने पुरोहित के लिए वैभव तथा सौन्दर्य हेतु पवित्र पोशाक बनाना........कि वह पवित्र होकर मेरे लिए पुरोहित का कार्य करे")[86]। पुरोहित की इस भव्य पोशाक में निम्नलिखित वस्त्र होते थे – उरपट, उरावरण, चारखाने का लम्बा कुरता, अंगरखा, साफा और कमरबन्द। ये ही वस्त्र वर्तमान युग में भिन्न–भिन्न बनावटों में प्रयुक्त किए जाते हैं।

काथलिक पुरोहित भिन्न–भिन्न धार्मिक अवसरों पर भिन्न–भिन्न चार रंगों के केसक पहनते हैं : हरा, लाल, बैंगनी, सफेद। सम्भवतः अब इनके नाम भी बदल गए हैं। भारत वर्ष में सामान्य पुरोहित केवल अंगरखा (केसक Cassock और केसक के ऊपर सरपलिक Surplic) पहनता है और कमर में सफेद अथवा काले रंग का कमरबन्द बाँधता है जिसको अंग्रेजी भाषा में गरडल (Girdle) कहते हैं। कमरबन्द के धागे भिन्न–भिन्न रंग के होते हैं (सफेद, काला, परपिल) जो न केवल भिन्न–भिन्न पुरोहितों के सम्प्रदाय अथवा वर्ग को अभिव्यक्त करते हैं, बल्कि भिन्न–भिन्न अवसरों पर भिन्न–भिन्न रंग के गरडल बाँधना परम्परा के अनुसार आवश्यक होता है।

पुरोहितों की पोशाक विभिन्न रंग में तैयार की जाती थी नीला, बैंजनी और लोहित रंग। इसके ऊपर धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करने के अवसर पर पुरोहित लम्बा किन्तु सकरा दुपट्टा दोनों कन्धों पर लटकाता था। जिसको स्टोल (Stole) कहते हैं। कुछ चर्चों में यह अनिवार्य है। स्टोल लाल, हरा, बैंगनी, काला, सफेद रंग का होता है।

प्राचीन काल में प्रधान पुरोहित (आधुनिक युग में पोप अथवा बिशप) की विशिष्ट पोशाक का भव्य वर्णन बाइबिल के एक ग्रंथ में इस प्रकार दिया गया है जो पोशाक की भव्यता एवं सौन्दर्य को प्रकट करता है। यह पोशाक विशेष कारीगरों द्वारा तैयार की जाती थी। उन्होंने सम्भवतः यहूदी महापुरोहित की प्रथम पोशाक को तैयार किया था जिसका उल्लेख बाइबिल में इस प्रकार किया है :

उन्होंने उरावरण को सोने से, पतले सूत से बुने हुए नीले, बैंजनी और लोहित रंग के वस्त्र से बनाया। उन्होंने सोने को पीटकर पतली पत्तियाँ बनाई और उनमें से तार काटे। तत्पश्चात् उन तारों के द्वारा पतले सूत से बुने हुए नीले, बैंजनी और लोहित रंग के वस्त्रों पर निपुणता से बेल–बूटे काढ़े। उन्होंने उरावरण के लिए उसके दोनों सिरों पर जुड़ हुए दो कन्धा–पट्टियाँ बनाये। उसे बाँधने वाले पट्टे की जो उस पर निपुणता से बुना हुआ था, कारीगरी और सामग्री एक ही थी। वह भी स्वर्ण–तार तथा पतले सूत से बुने हुए नीले, बैंजनी और लोहित रंग के वस्त्र का था।.....

तत्पश्चात् सुलेमानी मणियाँ काटी गयीं और उन्हें सोने के खाँचों में जड़ा गया। उन पर

इस्त्राएल के पुत्रों के नाम मुद्रा के सदृश खोदे गए उन्होंने उरावरण के कन्धों पर उनको जड़ दिया। उन्होंने कलात्मक ढंग से काढ़ा हुआ एक उरपट, उरावरण के सदृश स्वर्णतार से तथा पतले सूत से बुने हुए नीलें, बैंजनी और लोहित रंग के वस्त्र से बनाया। वह वर्गाकार था। उरपट दोहरा बनाया गया था। जब वह दोहरा किया गया तब साढ़े बाईस सेंटीमीटर लम्बा और साढ़े बाईस सेंटीमीटर चौड़ा था। उन्होंने उस पर मणि की चार पंक्तियाँ जड़ी। पहली माणिक्य, पद्मराग और लालड़ी की पंक्ति थी। दूसरी पंक्ति मरकत नीलमणि और हीरा की थी। तीसरी पंक्ति लशम, सूर्यकान्त और नीलम की थी। चौथी पंक्ति फीरोजा, सुलेमानी मणि और यशब की थी। वे सोने के खांचों में जड़ी गयी थीं। इस्त्राएल (याकूब) के पुत्रों के नामानुसार, नाम सहित बारह मणियाँ थीं। वे बारह कुलों के लिए थीं। वे मुद्राओं के सदृश थीं। प्रत्येक पर एक कुल का नाम खुदा था। उन्होंने उरपट पर रस्सी के समान बटी हुई शुद्ध सोने की जंजीर बनाई। उन्होंने नक्काशी किए हुए सोने के दो खांचों और सोने के दो छल्ले बनाए। इन दो छल्लों को उरपट के दोनों सिरों पर लगाया। उन्होंने उरपट के सिरों पर लगे दोनों छल्लों में सोने के दो तार डाले। उन्होंने सोने के दोनों तारों के दो किनारों को दो खांचों में जड़ा। उन्हें उरावरण के कन्धों पर सामने की ओर जड़ा। तत्पश्चात् उन्होंने सोने के दो छल्ले बनाए और उन्हें उरपट के दोनों सिरों पर भीतर की ओर उरावरण के पास लगाया। उन्होंने सोने के दो छल्ले बनाए और उन्हें उरावरण के दोनों कन्धों के निचले भाग के जोड़ पर, उरावरण के कलात्मक ढंग से बुने हुए पट्टे के ऊपर जड़ा। उन्होंने उरपट को उसके छल्लों के माध्यम से नीले फीते के द्वारा उरावरण के छल्लों से जोड़ा जिससे वह उरावरण के कलात्मक ढंग से बुने हुए पट्टे पर झूलता रहे, पर उरावरण से अलग न हो सके ; .... ।

उसने उरावरण के लिए सम्पूर्ण नीले रंग का एक अंगरखा बुनकर बनाया। बख्तर के छेद के सदृश अंगरखा के मध्य में एक छेद था। उस छेद के चारों ओर बुनी हुयी किनारी थी, जिससे वह फट न सके उन्होंने अंगरखा के निचले घेरे में पतले सूत से बुने हुए नीलें, बैंजनी और लोहित रंग के कपड़े के अनार बनाए। उन्होंने शुद्ध स्वर्ण की घन्टियाँ भी बनाई और उन्हें अंगरखा के चारों ओर उसके निचले घेरे में अनारों के बीच–बीच में लगाया। पहले स्वर्ण घन्टी तब अनार : इस क्रम में स्वर्ण घन्टी और अनार सेवा–कार्य के अंगरखा के निचले घेरे में थे ; उन्होंने महापुरोहित के पवित्र मुकुट के पुष्प को शुद्ध सोने का बनाया। उन्होंने सामान्य पुरोहित के लिए पोशाकें बनाईं : महीन सूती वस्त्र के अंगरखें, साफा और टोपियाँ ; पतले सूत से बुने हुए वस्त्र के जांघिये और नीले, बैंजनी तथा लोहित रंग के वस्त्र का कमरबन्द, जिस पर सूई से कसीदा काढ़ा गया था।[87]

वर्तमान युग में यही पोशाक आज भी महामहिम पोप की है एवं साधारण पुरोहितों की भी पोशाक प्रचलन में है। हाँ यह सच है कि अब पोशाक की बनावट में बहुत परिवर्तन हो गया है। और यह भव्यता केवल काथलिक बिशप तथा काथलिक महामहिम पोप की पोशाक में ही भव्यता झलकती है।

भारतीय मसीही

भारत वर्ष में मसीही धर्म का अनुसरण करने वाले और उसमें दीक्षित होने वाले व्यक्ति कोई बाहरी व्यक्ति नहीं थे अपितु भारत वर्ष के ही मूल निवासी थे। जो मसीही धर्मावलम्बी विदेश से भारत आए थे उन्होंने अपने आचरण, रहन–सहन और व्यक्तित्व से यहाँ के मूल निवासियों को अपनी ओर आकर्षित किया था और आवश्यकतानुसार उनको हर प्रकार का सहयोग प्रदान किया था इसीलिए वे अपना मौलिक धर्म छोड़कर मसीही बने थे।

भारत वर्ष की सामाजिक व्यवस्था वर्ण और जाति पर विभाजित थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और

वैश्य ये सवर्ण जातियाँ थीं। ब्राह्मणों को सर्वोच्च अधिकार प्राप्त था तथा ये समस्त धार्मिक कृत्य सम्पन्न कराते थे। क्षत्रिय शासक वर्ग में शामिल थे तथा वैश्य वर्ग खेती और व्यापार करता था। चौथा वर्ग शूद्र के नाम से विख्यात था। इसमें आदिवासी, मेहतर, चाण्डाल, डोम, बसोर तथा अन्य जातियों के लोग शामिल थे। उच्च वर्ग के लोग इनसे नफरत करते थे, इनका उत्पीड़न करते थे और इनसे निम्न स्तरीय सेवा–कार्य कराते थे। मसीही धर्म के आगमन के पश्चात् दलित और शोषित जातियों का ध्यान मसीही धर्मावलम्बियों के प्रति आकर्षित हुआ और मसीही धर्मावलम्बियों ने इनका उद्धार करने के लिए जो विशेष कार्य किए उसी के कारण यहाँ की निचली जाति के लोग मसीही धर्म में दीक्षित हुए, जहाँ उन्हें समानता का दर्जा दिया गया, उन्हें शिक्षित किया गया, उनको उनकी योग्यतानुसार रोजगार प्रदान किया गया। बीमार व्यक्तियों की चिकित्सा की गयी, अनाथों को आश्रय प्रदान किया गया तथा एक नयी सभ्यता संस्कृति से उनका परिचय कराया गया इसीलिए मसीही धर्म सम्पूर्ण भारत वर्ष में विकसित हुयीं।

जब भारत वर्ष में मुगलों का शासन था, उस समय औरंगजेब का पुत्र शाहआलम फारसी और तुर्की मसीहियों के सम्पर्क में आया था। इसके पश्चात् जब सिक्खों के अन्तिम गुरू का कत्ल किया गया उस समय पंजाब में गंभीर समस्या पैदा हो गयी थी। सन् 1713 में यह क्षेत्र मसीहियों के सम्पर्क में आया। जब मुगलों की राजधानी दिल्ली से आगरा लायी गयी उस समय वहाँ काथलिक चर्च की स्थापना हुयी और 900 व्यक्तियों ने मसीही धर्म ग्रहण किया। धीरे–धीरे यह संख्या बढ़ती गयी। इसी प्रकार पंजाब में भी मसीहियों की संख्या बढ़ी। सन् 1714 में 300 व्यक्तियों ने दिल्ली में मसीही धर्म ग्रहण किया। 18वीं शताब्दी के अन्त तक मसीहियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुयी। बिहार में भी सन् 1779 में भागलपुर और पटना के सन्निकट लोगों ने मसीही धर्म ग्रहण किया। बंगाल और उड़ीसा में भी मसीही धर्म का प्रचार–प्रसार सन् 1660 में प्रारम्भ हुआ और बराबर चलता रहा। उस समय वहाँ 15,500 लोगों ने मसीही धर्म दीक्षा ली। यद्यपि तद्युगीन शासकों ने उन्हें मसीही धर्म ग्रहण करने से रोका। धीरे–धीरे सम्पूर्ण भारत वर्ष में मसीही धर्म काफी लोकप्रिय हुआ। अंग्रेजों, पुर्तगालियों और फ्रांसीसियों ने धर्म प्रचारकों को पूर्ण सहयोग प्रदान किया।[88]

वर्ण–व्यवस्था एवं भारतीय मसीही

जो लोग अपनी जाति छोड़कर मसीही धर्म के अनुयायी बने उन्होंने अपनी जातीय परम्परा का परित्याग पूरी तरह नहीं किया। वे जिस जाति से संबन्धित थे उस जाति के रीति–रिवाज और परम्पराओं का अनुपालन करते रहे और आज भी करते हैं। यदि कोई सवर्ण कतिपय कारणों से मसीही बन गया तो उसने छोटी जाति के प्रति नफरत की भावना उसी प्रकार बनाए रखी जैसे वह मसीही बनने के पूर्व रखता था। यथा –

I told my Grandmother that I had taken lunch at such and such a place. No sooner had I done that, all hell broke loose! The servants were instructed to bathe me twice over because the people I had eaten with turned out to be sweepers! I protested that they were christians but my grand-mother disagreed, saying they were " Mehters" (sweepers). She beat me up and warned me that if I ever ate with those sweepers again, my vacation would be cut short and I would be booked on to the very next bus or train, back to my father's house."[89]

जो लोग मसीही बने थे, उन्हें जातीय और धर्म के आधार पर विभाजित कर दिया। वहाँ

उनके बैठने के लिए चर्च में अलग–अलग स्थान निर्धारित किए गए और सामाजिक दूरी उसी प्रकार बनी रही, जैसे पहले थी। केवल नाम वेश–भूषा और विश्वास के आधार पर ही यहाँ के मूल निवासियों का धर्मान्तरण हुआ। उन्होंने अपनी परम्पराओं, सामाजिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किया वे आज भी अपने समाज से जुड़े हुए हैं।

The tribal Christians, with an exception to those from the untouchable background, have not been treated on an equal plane as converts from other groups. The Christians of scheduled backgrounds have been oppressed twice, first by the Hindus and then by their own fellow Christians hailing from the more highly placed sections of society. It remains a fact that Christianity in India has failed to liberate the Dalits, socially. The grim shadow of the caste system prevails even on the Church of India."[90]

मसीही धर्म में वर्ण–व्यवस्था, जाति–व्यवस्था, छुआ–छूत और ऊँच–नीच की भावना भले ही न हो किन्तु यहाँ के धर्मान्तरित मसीही जो अपना मौलिक धर्म छोड़कर मसीही धर्म को स्वीकार किया है। वे अपनी परम्परानुसार जातिगत परम्पराओं, रीति–रिवाजों, संस्कारों, सामाजिक व्यवस्थाओं और कुल की मर्यादाओं का पूर्ववत् पालन करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्थिक प्रलोभन और सामाजिक प्रतिष्ठा व सम्मान पाने के लिए वे मसीही धर्म से जुड़ गए हैं तथा उन्होंने मसीही धर्म स्थलों में जाकर अपना नाम मसीही धर्म में अंकित करा लिया है और वे शुद्धिकरण के पश्चात् मसीही कहलाने लगे हैं किन्तु वे आज भी भारतीय संस्कृति के अनुयायी हैं और यहाँ के सामाजिक वातावरण के अनुसार जातीय और कुल मर्यादाओं का पालन पूर्ववत् करतें हैं। उनमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं है।

भारतीय मसीहियों की धार्मिक प्रथाएँ अथवा अनुष्ठान

प्रत्येक धर्म अपनी धार्मिक प्रथाओं, रीति–रिवाजों तथा धार्मिक अनुष्ठानों के द्वारा पहचाना जाता है। प्रथा से हमारा तात्पर्य कुछ ऐसे रीति–रिवाजों से है जो उस धर्म के आरम्भ होने के पश्चात् धर्मावलम्बियों के व्यवहार एवं आचरण से विकसित होती है। किसी धर्म की प्राचीनता को, उसकी विशिष्टता को हम उसकी प्रथाओं से पहचानते हैं। उदाहरण के तौर पर हिन्दू समाज की प्रमुख पहचान है, उसकी जाति प्रथा। यद्यपि मसीही समाज समतावादी (Eqalitarian - यह विश्वास करने वाला कि सभी मनुष्य समान होने चाहिए..........) धर्म अपने उद्‌भव से ही रहा है, जैसा बाइबिल की एक पुस्तक में, जो वास्तव में आरम्भिक चर्च का प्रामाणिक इतिहास है, इस प्रकार लिखा है– "सब विश्वासी मिलजुलकर रहते थे और उनकी सब वस्तुएँ साझे में थीं। वे अपनी चल और अचल सम्पत्ति बेच देते और जिसको जैसी आवश्यकता होती थी उसके अनुसार आपस में बाँट लेते थे।"[91]

हमने अगले पृष्ठों में मसीही समाज के विशिष्ट रीति–रिवाजों, धार्मिक प्रथाओं का उल्लेख किया है। वास्तव में मसीही समाज में आध्यात्मिकता और सामाजिकता में इतना कम अन्तर होता है कि हम यह जान ही नहीं पाते कि अमुख कार्य धार्मिक–कृत्य है अथवा सामाजिक । यह ठीक वैसा ही सूक्ष्म अन्तर है जैसा हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म के मध्य हम यह समझ ही नहीं पाते कि गौ के प्रति हिन्दू भावना को हम हिन्दू *'संस्कृति'* की विशेषता कहें अथवा हिन्दू *'धर्म'* की

विशेषता। कहने का अर्थ यह है कि मसीही आध्यात्मिकता को हम उसकी सामाजिकता से अलग नहीं देख सकते। दूसरे शब्दों में, हम यह नहीं कह सकते कि अमुख कृत्य सामाजिक है अथवा धार्मिक। इस कारण से मसीही समाजशास्त्री यह मानते हैं कि पश्चिमी दृष्टिकोण से मसीही रीति–रिवाज, प्रथाएँ एवं धार्मिक अनुष्ठान ये सब सामाजिक हैं तो दूसरी ओर भारतीय मसीही जन अपने भारतीय परिवेश एवं भारतीय धार्मिक परम्पराओं के प्रभाव के कारण इन तमाम रीति–रिवाजों, प्रथाओं को धर्म से जोड़ता है और इन्हें संस्कार मानता है। इन संस्कारों के बिना मसीही जन मसीही नहीं कहलाया जा सकता है, जैसे बपतिस्मा। भारत में चर्च बपतिस्में को धार्मिक संस्कार, धार्मिक अनुष्ठान मानती है और बिना बपतिस्में के, फिर चाहे ये बपतिस्मा बच्चे का हो या वयस्क जन का हो, मसीही नहीं कहलाया जा सकता है, जबकि पश्चिमी चर्च बपतिस्में को मसीही कहलाने के लिए आवश्यक नहीं मानता, अर्थात् कोई भी व्यक्ति बिना बपतिस्मा लिए चर्च का सदस्य हो सकता है या वह अपने आपको मसीही जन कह सकता है।

भारतीय दृष्टिकोण से मसीही रीति–रिवाज, प्रथाओं एवं अनुष्ठानों को उल्लिखित किया है अर्थात् ये तमाम कृत्य मसीही जन के आचरण के लिए अनिवार्य हैं और इन्हें मसीही जन को पूरा करना ही पड़ता है। ये वास्तव में उसके धार्मिक अनुष्ठान हैं। चाहे तो हम इन्हें संस्कार भी कह सकते हैं जो वास्तव में अंग्रेजी शब्द सेक्रामेंत का लिप्यन्तर है। यद्यपि भारत के अनेक चर्चों में विभिन्न प्रथाओं का प्रचलन है और उन सब का उल्लेख करना सम्भव नहीं है। फिर भी हमने कुछ प्रमुख प्रथाओं का उल्लेख किया है। जो वास्तव में मसीही धर्मावलम्बियों में संस्कार कही जाती हैं और जिनका चर्च के भीतर पुरोहित के द्वारा सम्पन्न होना अनिवार्य होता है। ये वास्तव में प्राचीन यहूदी अथवा रोमन एवं यूनानी प्रथाएँ हैं जिनको मसीही धर्म में नया अर्थ देकर अपना लिया है और अब संस्कार के रूप में इनका उपयोग होने लगा है :

बपतिस्मा की प्रथा – मसीही धर्मावलम्बी विश्वास करता है कि बपतिस्में की जड़ प्रभु येशु के सेवा कार्य, उनकी मृत्यु और उनके पुनरूत्थान में है। बपतिस्मा प्रभु येशु के बलिदान और उनके पुनरूत्थान का प्रतीक है यह परमेश्वर का वरदान है और पिता, पुत्र और पवित्रात्मा के नाम में दिया जाता है। चर्च के आरम्भ से ही बपतिस्में की प्रथा अपनायी जाती रही है और इसे प्रभु येशु के प्रति समर्पण के रूप में देखा जाता था कि व्यक्ति अपने आप को बपतिस्में के द्वारा समर्पित करता था। बपतिस्मा नया जीवन का प्रतीक है वह बपतिस्मा पाने वाले व्यक्ति को प्रभु येशु और उनके अनुयायियों के साथ जोड़ता है जो पहले से ही प्रभु येशु को अपना चुके हैं।

बपतिस्में की धर्म विधि के दौरान कुछ प्रतीकों का इस्तेमाल किया जाता है जो प्रभु येशु की, मृत्यु और उनके पुनरूत्थान को अभिव्यक्त करते हैं। इन प्रतीकों के सम्बन्ध में बाइबिल में अनेक विवरण प्राप्त हैं। उन विस्तृत प्रतीकों का उल्लेख करना शायद कदाचित् आवश्यक नहीं है। किन्तु हम यह कह सकते हैं कि उन प्रतीकों के द्वारा बपतिस्मा के विभिन्न अर्थ अभिव्यक्त किए गए हैं। जैसे 1. बपतिस्मा का अर्थ प्रभु येशु के जीवन, मृत्यु और पुनरूत्थान में सहभागी होना, 2. बपतिस्मा का अर्थ, ह्रदय परिवर्तन, क्षमा और शुद्धता। बपतिस्मा लेने वाला अपने पाप को स्वीकार करता और बपतिस्मा के द्वारा प्रभु येशु से क्षमा प्राप्त करता और इस प्रकार उसका ह्रदय परिवर्तन होता है। इसीलिए कुछ मसीही विद्वान बपतिस्मा का दो प्रकार बताते है – ह्रदय परिवर्तन का बपतिस्मा और पापों की क्षमा का बपतिस्मा। बपतिस्में के द्वारा ह्रदय परिवर्तित व्यक्ति को नया जीवन व्यतीत करने के लिए पवित्र आत्मा का वरदान प्राप्त होता है जिसकी सामर्थ्य से वह नया जीवन व्यतीत करता है।

बपतिस्में के द्वारा व्यक्ति चर्च का सदस्य बनता है और वह अन्य सदस्यों के साथ मसीही जीवन व्यतीत करता है। वास्तव में भारत में बिना बपतिस्मा लिए किसी भी व्यक्ति को चर्च का सदस्य नहीं बनाया जा सकता। मसीही विश्वास करते हैं कि बपतिस्मा परमेश्वर के राज्य का और आने वाले युग में जीवन का एक चिन्ह है। एक और महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि चर्च यह विश्वास करता है कि बपतिस्मा परमेश्वर का वरदान है जब वरदान परमेश्वर उस व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार देता है जिसको वह बपतिस्मा के लिए चुनता है। अतः चर्च यह विश्वास करता है कि केवल परमेश्वर ही मनुष्य को बपतिस्में के लिए तैयार करता है।

बपतिस्मा की प्रथा एक समान नहीं है ; कुछ चर्च बच्चों का भी बपतिस्मा देते हैं। माता–पिता या अभिवावक यह वायदा करते हैं कि वे चर्च में और चर्च के साथ बच्चों का मसीही विश्वास में पालन पोषण करेंगे। अन्य चर्चो में केवल वयस्क के बपतिस्मा की प्रथा है, जो व्यक्तिगत रूप से अपने विश्वास का अंगीकार करता है। इनमें कुछ चर्च ऐसे भी हैं जो इस बात को प्रोत्साहित करते हैं कि बच्चे या बालक–बालिका आराधना में आशीष के लिए प्रस्तुत किए जाएँ। उस आराधना में बच्चें के वरदान के लिए धन्यवाद दिया जाता है और माता–पिता वचन देते हैं कि वे मसीही माता–पिता का दायित्व निबाहेंगे।

सब चर्च उन व्यक्तियों को भी बपतिस्मा देते हैं जो अन्य धर्मो को छोड़कर अथवा नास्तिकता को छोड़कर मसीही धर्म पर विश्वास करते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों को धर्म शिक्षा देने और मसीही विश्वास स्वीकार करने के पश्चात् ही बपतिस्मा दिया जाता है।

वयस्क जन का बपतिस्मा और बाल बपतिस्मा दोनों ही चर्च के सदस्यों अर्थात् मंडली के समक्ष दिए जाते हैं। जब किसी ऐसे व्यक्ति को जो स्वयं उत्तर दे सकता है, बपतिस्मा दिया जाता है तब बपतिस्मा की आरधना का प्रमुख भाग बपतिस्मार्थी द्वारा व्यक्तिगत रूप से मसीही विश्वास को अंगीकार करना होता है। जब बच्चे का बपतिस्मा होता है, तब आगे चलकर वयस्क होने पर किसी निश्चित समय व्यक्तिगत रूप से विश्वास को अंगीकार करना होता है। बच्चों के लिए आवश्यक है कि वे बड़े होकर व्यक्तिगत रूप से मसीही विश्वास को अंगीकार करें, जिसके लिए चर्च में *दृढ़ीकरण संस्कार* की प्रथा आरम्भ की है।[92]

हमने बाल बपतिस्मा की संक्षिप्त विधि उत्तर भारत की कलीसिया की आराधना पुस्तक से उद्‌धृत की (पृष्ठ 339–350) है। जो इस प्रकार है –

1– जब कोई मसीही माता–पिता अपने बच्चे/बच्ची को बपतिस्मा दिलाना चाहता है तो वह इसकी सूचना पहले से ही अपने गिरजाघर के पुरोहित को दे देता है। पुरोहित के निर्देशानुसार बच्चे के माता–पिता गिरजाघर के एक किनारे रखे गए जलकुण्ड या जल भरे पात्र या जलाशय या तालाब या नदी के पास एकत्र होते हैं। तत्पश्चात् पुरोहित पवित्र बाइबिल में से बपतिस्मा से संबन्धित एक दो पाठ पढ़ता है, बच्चे के लिए प्रार्थना करता है और माता–पिता से प्रतिज्ञाएँ करवाता है कि वे बच्चे का लालन–पालन एवं उसकी धार्मिक शिक्षा चर्च की धर्म विधि के अनुसार करेंगे। माता–पिता के प्रतिज्ञा करने के उपरान्त पुरोहित बच्चे को अपनी गोद में लेकर अपनी अँगुली जल में डुबोकर बच्चे के माथे पर क्रूस का चिन्ह बनाते हुए यह कहता है, "मैं तुझे परमेश्वर, पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम में बपतिस्मा देता हूँ।" साथ में चर्च के जो सदस्य रहते हैं वे यह वाक्य बोलकर बच्चे को अपनी सहभागिता में ग्रहण करते हैं : हम सब मसीह की देह हैं हम सबने एक ही आत्मा में एक देह होने के लिए बपतिस्मा लिया है। अतः हम मसीह के नाम में इसका स्वागत करते हैं।

<u>दृढ़ीकरण</u> – जिस व्यक्ति का बपतिस्मा बचपन में हुआ है उसका दृढ़ीकरण अर्थात् जो प्रतिज्ञा

उसके माता–पिता ने उसके बदले में की थी अब वह वयस्क होने पर उन प्रतिज्ञाओं को स्वयं दोहराता है जिससे वह चर्च में पूर्ण सदस्यता प्राप्त कर सके। यह संस्कार चर्च में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है अतः हम इसके बारे में विस्तार से लिखना चाहेंगे –

दृढ़ीकरण की विधि और संस्कार उन चर्चों में प्रचलित हैं जिनमें बाल–बपतिस्मा की प्रथा है। प्रायः सब मुख्य चर्चों में यह विधि लागू है। शब्दार्थ ही इसके मूल अर्थ को भी व्यक्त करता है। किसी आरम्भिक या आगे सम्पन्न कार्य को दृढ़ करने, दुहराने की प्रक्रिया को दृढ़ीकरण कहते हैं।

बाल बपतिस्मा में प्रतिज्ञा करते समय धर्म माता–पिता और जन्म माता–पिता दोनों बालक–बालिका के बदले में वचन देते हैं। चर्च के विश्वास–वचन के आधार पर या दूसरों के विश्वास के कारण भी मुक्ति–कार्य गुणकारी होता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर वयस्क या 14–16 वर्षों की उम्र में युवक या युवती अपने माता–पिता द्वारा की गई प्रतिज्ञा को स्वयं दोहराते हैं। इस प्रकार दृढ़ीकरण की प्रक्रिया विश्वास के शिक्षण, प्रशिक्षण को मजबूत बनाकर स्वयं विश्वास को अपनाने की प्रक्रिया है। यह चर्च की ठहरायी हुयी अच्छी विधि है तथा अनिवार्य मानी जाती है।

परमेश्वर के सामने और विश्वासियों के झुंड या मंडली में स्वतः मान लेना कि प्रभु येशु मसीह मेरे व्यक्तिगत उद्धारकर्त्ता हैं, यह एक साक्षी है जो युवा देता है। इसका सामूहिक और सामाजिक मनोविज्ञान के आधार पर व्यक्ति के जीवन में प्रभाव संभव है इससे युवक/युवती में आमूल परिवर्तन की संभावना भी है। वह सजगता से मसीह का अनुयायी होकर जीवन व्यतीत कर सकता है।

दृढ़ीकरण संस्कार में धर्माचार्य (बिशप) अथवा पुरोहित ही युवा/युवती के सिर पर हाथ रखता है जिससे उसको पवित्रात्मा का वरदान प्राप्त हो और वह एक सच्चा मसीही जीवन व्यतीत कर सके।

दृढ़ीकरण संस्कार वास्तव में प्रभु येशु की शिष्यता को निजी तौर पर स्वीकार करना है। युवा/युवती चर्च में सब व्यक्तियों के सामने यह स्वीकार करते हैं कि वे प्रभु येशु को अपना प्रभु और उद्धारकर्त्ता मानते हैं। अतः वे प्रभु येशु की शिक्षा के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करेंगे। वास्तव में दृढ़ीकरण करवाने वाले धर्माचार्य अथवा पुरोहित का आशीष वचन दृष्टव्य है जो वह उनको विदा करते समय कहता है :

"शान्ति के साथ संसार में आगे बढ़ते जाओ ; साहसी बनो,
जो बातें भली हैं उन्हें थामे रहो।
बुराई के बदले किसी के साथ बुराई न करो।
जो कमजोर, कायर हैं, उन्हें सबल बनाओ।
दुर्बलों को सम्भालो।
दुःखियों की सहायता करो।
सब का आदर करो।
पवित्र आत्मा की सामर्थ्य में आनन्द मनाओ।
प्रभु से प्रेम करो और उनकी सेवा करो।
और सर्वशक्तिमान परमेश्वर, पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा
की आशीष तुम पर हो और सदा–सर्वदा तुम्हारे साथ रहे।[93]

प्रभु भोज की संस्थापना – चर्च प्रभु–भोज का अनुष्ठान प्रभु येशु के बलिदान की स्मृति में आयोजित करता है। वास्तव में यह यहूदियों के एक पुराने पर्व–फसह का नया रूप है। यहूदी मिस्र

देश की गुलामी से मुक्त होने की स्मृति में इस पर्व को मनाया करते थे और इस अवसर पर वे अपने परमेश्वर को धन्यवाद के रूप में मेमना बलि करते थे। इसी पर्व को चर्च ने प्रभु येशु के बलिदान को इस प्रकार नया अर्थ दिया कि वह मनुष्य जाति के पापों की क्षमा प्राप्त होने की खुशी में परमेश्वर को धन्यवाद देते हुए मेमने के समान बलि हो गए। यही कारण है कि चर्च के आरम्भ में प्रभु–भोज के लिए यूनानी यूखरिस्त शब्द इस्तेमाल किया गया था यूखरिस्त अर्थात् धन्यवाद देना और आज भी कुछ चर्च इसी शब्द को इस्तेमाल करते हैं और इस प्रकार प्रभु येशु के द्वारा दिए गए बलिदान के लिए परमेश्वर को धन्यवाद देते हैं।

प्रभु येशु के एक प्रमुख अनुयायी ने, जो प्रभु येशु मसीह के स्वर्गारोहण के कुछ वर्ष पश्चात् हुआ था उसने अपने दस्तावेज में इस पर्व के विषय में इस प्रकार लिखा है : "यह बात मुझे प्रभु से पहुँची जो मैंने तुम्हें भी पहुँचा दी ; कि प्रभु येशु ने जिस रात वे पकड़वाये गये रोटी ली, और धन्यवाद करके उसे तोड़ी, और कहा, 'यह मेरी देह है जो तुम्हारे लिए है : मेरे स्मरण के लिए यही किया करो।' इसी रीति से उन्होंने भोजन के पश्चात् कटोरा भी लिया और कहा, 'यह कटोरा मेरे रक्त में नई वाचा (परमेश्वर के साथ संबन्ध) है : जब कभी पियो, तो मेरे स्मरण के लिए यही किया करो'।"[94]

यूखरिस्त चर्च के लिए नया फसह भोज, नई वाचा (परमेश्वर के साथ नया संबन्ध) का भोज है प्रभु येशु ने अपनी मृत्यु एवं पुनरूत्थान के स्मरण (Anamnesis) में शिष्यों को दिया। प्रभु येशु ने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि वे इस सेक्रामेंतीय भोजन में परमेश्वर के लोगों के रूप में बने रहते हुए जब तक प्रभु फिर न आए, उसे स्मरण करते रहें और इस अनुष्ठान के द्वारा प्रत्यक्ष मिलते रहें। प्रभु येशु का अन्तिम भोज निश्चित विधिवत् (लिटर्जीय) भोज था जिसमें प्रतीकात्मक शब्दों और कृत्यों का उपयोग किया गया था। फलस्वरूप यूखरिस्त एक सेक्रामेंतीय (संस्कारीय) भोज है जिसमें दृश्य प्रतीकों द्वारा बलिदान की स्मृति है।

<u>प्रभु भोज या यूखरिस्त की प्रथा</u> – प्रभु येशु मसीह में परमेश्वर का प्रेम मसीहियों में संचारित होता है, वह प्रेम संचारित होता है जो प्रभु येशु ने अपनों से 'अन्त तक किया'[95]। चर्च की आराधना में यूखरिस्त प्रमुख अंश बन गया है।

<u>यूखरिस्त का अर्थ</u> – प्रोटेस्टेंट मत के महत्वपूर्ण तथा मान्य पवित्र सेक्रामेंतों (संस्कार) में 'यूखरिस्त' का स्थान प्रथम है, यह पवित्र क्रिया मसीही आराधना का केन्द्र है। यूखरिस्त यूनानी भाषा का शब्द है। इस शब्द का मूल *'यूखरिस्तिया'* है जिसका अर्थ *'धन्यवाद'* हैं परन्तु यह प्रभु–भोज का पर्याय माना जाता है। यूखरिस्त के अन्य नाम प्रभु–भोज, रोटी–तोड़ना, पवित्र सहभागिता है।[96]

रोमन काथलिक चर्च के अनुसार इस भोज को *'मास (Mass)* अथवा *मिस्सा'* के नाम से संबोधित करते हैं। सीरियाई चर्च के अनुसार इस भोज को *'कुर्बाना'* कहते हैं। यूनानी चर्च के अनुसार इसे *'यूखरिस्त'* कहते हैं।[97]

चर्च विश्वास करता है कि यूखरिस्त मूलतः उस दान का सेक्रामेंत (पवित्र संस्कार) है, जो परमेश्वर पवित्र आत्मा की सामर्थ्य के द्वारा मसीह में उसे देता है। प्रत्येक मसीहीजन को यह उद्धार–दान मसीह की देह और रक्त में सहभागी होने से मिलता है, यूखरिस्त भोज में, रोटी और दाखरस के खाने और पीने में, मसीह आराधकों को अपने में सहभागी करते हैं। मसीह के देह (चर्च) को जीवन देने और मसीह की प्रतिज्ञानुसार प्रत्येक सदस्य को नया बनाने में परमेश्वर स्वयं कार्य करता है। प्रभु येशु की देह, चर्च का प्रत्येक बपतिस्मा प्राप्त सदस्य यूखरिस्त में पापों की क्षमा का

आश्वासन[98] और शाश्वत जीवन की प्रतिज्ञा प्राप्त करता है।[99] यूखरिस्त एक पूर्ण अनुष्ठान है किन्तु सुविधा की दृष्टि से हम अनुष्ठान को निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं :

1. यूखरिस्त पिता परमेश्वर का धन्यवाद है – अर्थात् यूखरिस्त वह स्तुति बलि है जो चर्च समस्त सृष्टि के निमित्त देती है। परमेश्वर ने सारे संसार का अपने साथ मेल किया है और वह संसार यूखरिस्त मानने में उपस्थित रहता है: रोटी और दाखरस में, मसीही समाज के व्यक्तित्व में, और उन प्रार्थनाओं में जो मसीही लोग अपने लिए तथा सब लोगों के लिए करते हैं। प्रभु येशु मसीहियों को अपने साथ संयुक्त करते हैं और अपने निवेदन में उनकी प्रार्थनाओं को भी सम्मिलित करते हैं। फलतः मसीही लोगों का रूपान्तरण होता है और उनकी प्रार्थनाएँ सुनी जाती हैं। यह स्तुति बलि केवल प्रभु येशु के द्वारा उनके साथ और उनमें ही संभव है. रोटी और दाखरस भूमि के और मानवीय श्रम के फल हैं। वे विश्वास और धन्यवाद के साथ परमेश्वर पिता के समक्ष लाए जाते हैं।

2. यूखरिस्त मसीह का स्मरण करना है – यूखरिस्त क्रूसित एवं पुनरूत्थित मसीह का स्मरण है। अर्थात् वह प्रभु येशु के उस बलिदान का जीवित एवं प्रभावकारी प्रतीक है जो क्रूस पर एक ही बार और सब के लिए दिया गया और समस्त मानव जाति के लिए आज भी कारगर है। यूखरिस्त के सम्बन्ध में 'स्मरण' के लिए बाइबिली धारणा यह है कि जब यूखरिस्त परमेश्वर के लोगों के द्वारा उपासना पद्धति (लिटर्जी) के रूप में मनाया जाता है तो उससे परमेश्वर के कार्य की वर्तमान प्रभावकता का संकेत होता है।

प्रभु येशु का स्मरण मसीही लोगों की समस्त प्रार्थना का आधार और श्रोत है। मसीहियों की समस्त प्रार्थना पुनरूत्थित प्रभु के निरन्तर निवेदन के सहारे होती है और उनसे संयुक्त होती है। यूखरिस्त में प्रभु येशु मसीहीजन उनके साथ जीने, उनके साथ दुःख उठाने, क्षमा प्राप्त एवं धार्मिक गिने गए पापियों के रूप में उनके नाम से प्रार्थना करने, और आनंद एवं स्वेच्छा से उनकी इच्छापूर्ण करने के लिए समर्थ करते हैं।

प्रभु येशु में मसीहीजन अपने आप को दिन–प्रतिदिन जीवित एवं पवित्र बलिदान के रूप में अर्पित करते हैं।[100] यह आत्मिक उपासना परमेश्वर को स्वीकार्य है, और इसका पोषण यूखरिस्त में होता है जिसमें मसीहीजन परमेश्वर से संसार का मेल–मिलाप करने की सेवा में शामिल होने के लिए पवित्र किए जाते और प्रेम की संगति में लाए जाते हैं।

यूखरिस्त की संस्थापना के समय प्रभु येशु के वचन एवं कार्य प्रभु–भोज मनाने के मूल अंग हैं। यूखरिस्त भोज प्रभु येशु की देह और रक्त का अनुष्ठान है, उनकी वास्तविक उपस्थिति का अनुष्ठान है। प्रभु येशु अपने लोगों के साथ, जगत के अन्त तक साथ रहने की प्रतिज्ञा की पूर्ति अनेक रूपों में करते हैं परन्तु यूखरिस्त में प्रभु येशु की उपस्थिति का रूप अद्वितीय है। प्रभु येशु ने यूखरिस्त की रोटी और दाखरस पर यह कहा : "यह मेरी देह हैं.........यह मेरा रक्त है......."।

जो कुछ प्रभु येशु ने कहा वह सच है, और जब कभी मसीही यूखरिस्त मनाते हैं तब हर बार यह सत्य पूरा होता है। चर्च यूखरिस्त में प्रभु येशु की वास्तविक, जीवित एवं सक्रिय उपस्थिति का अंगीकार करता है।

3. यूखरिस्त मसीही समाज की सहभागिता है – प्रभु येशु चर्च के जीवन का पोषण करते हैं। यूखरिस्त की सहभागिता प्रभु येशु के साथ ही नहीं होती वरन् प्रभु येशु की देह अर्थात् चर्च के अन्दर भी होती है। एक ही स्थान में एक रोटी और एक ही कटोरे की सहभागिता प्रभु येशु के साथ सहभागी होने को और सब समयों एवं स्थानों में अन्य सहभागी होने वालों के साथ एकत्व (Oneness) को प्रकट करती और प्रभावकारी करती है। यूखरिस्त में ही परमेश्वर के लोगों का

समुदाय पूर्ण रूप से प्रकट होता है। यूखरिस्त मनाने का संबंध संपूर्ण चर्च से है और हर स्थानीय यूखरिस्त में सम्पूर्ण चर्च सम्भागी होता है।

यूखरिस्त जीवन के सब पक्षों को प्रभावित करता है। वह समस्त संसार के लिए धन्यवाद और भेंट का प्रतीक कार्य है। यूखरिस्त में भाग लेने के लिए यह आवश्यक है कि उन भाई, बहिनों में जो परमेश्वर का एक घराना माने जाते हैं, मेल–मिलाप और साझेदारी हो। साथ ही यह आवश्यक है कि यूखरिस्त में भाग लेना सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में सही संबन्धों के लिए एक सतत् चुनौती बना रहे।[101] जब मसीहीजन प्रभु येशु की देह और रक्त में सम्भागी होते हैं, तब हर प्रकार के अन्याय, जातिभेद, अलगाव और परतन्त्रता को भारी चुनौती मिलती है। यूखरिस्त के द्वारा परमेश्वर का वह अनुग्रह जो सब को नया बनाता है मानव सम्मान और गौरव को उत्तेजित करता और पुनः स्थापित करता है।

यूखरिस्त सहभागिता में चर्च की एकात्मता और मसीही जनों की एक दूसरे के प्रति और संसार के प्रति चिन्ता प्रभु भोज की आराधना विधियों में स्पष्ट होती है।यह अभिव्यक्ति एक दूसरे के पापों की क्षमा ; शान्ति–स्पर्श; सब के लिए परहित निवेदन ; साथ–साथ रोटी और दाखरस खाने–पीने ; बीमारों और बंदियों के पास तत्वों को ले जाने अथवा उनके साथ यूखरिस्त मनाने में होती हैं। यूखरिस्त में प्रेम की ये अभिव्यक्तियाँ प्रभु येशु की अपनी साक्षी से सीधी संम्बन्धित हैं जो सेवक होकर उन्होंने दी, और प्रभु येशु के सेवक–कार्य में मसीहीजन स्वयं भी सम्भागी होते हैं। प्रभु येशु में परमेश्वर ने मानवीय स्थिति में प्रवेश किया इसलिए यूखरिस्त आराधना–विधि स्त्री–पुरूषों की वास्तविक और विशिष्ट स्थितियों के बहुत निकट है। प्रारंभिक चर्च में सेवक (Deacons) और सेविकाओं (Deaconesses) के सेवाकार्य में यूखरिस्त के सेवा–पक्ष की विशेष रूप में अभिव्यक्ति होती थी। प्रभु की मेज और चर्च के बाहर–भीतर ऐसे सेवाकार्य से संसार में प्रभु येशु की उद्धारकारी उपस्थिति की अच्छी साक्षी दी जाती है।

4. यूखरिस्त परमेश्वर के राज्य का भोज है – यूखरिस्त मसीहियों के लिए परमेश्वर के राज्य का द्वार खोलता है जिसकी प्रतिज्ञा सृष्टि के नवीकरण के रूप में दी जाती है। यूखरिस्त उस राज्य का पूर्व स्वाद भी है। संसार में जहाँ भी परमेश्वर का अनुग्रह प्रकट होता है और मनुष्य न्याय, प्रेम और शान्ति के लिए कार्य करते हैं, वहाँ सृष्टि के नवीकरण के चिन्ह विद्यमान हैं। यूखरिस्त वह अनुष्ठान है जिसमें चर्च इन चिन्हों के लिए परमेश्वर को धन्यवाद देता है और प्रभु येशु के परमेश्वर के राज्य के आगमन को मनाता और उसकी प्रतीक्षा करता है।[102]

यूखरिस्त में प्रभु येशु की देह अर्थात् चर्च के सदस्यों का परमेश्वर से मेल–मिलाप होता है। इन सदस्यों को दायित्व सौंपा जाता है कि वे संसार के स्त्री–पुरूषों में इस मेल–मिलाप के सेवक और पुनरूत्थान के आनन्द के सेवक बनें। जिस प्रकार प्रभु येशु अपनी सांसारिक सेवा में महसूल लेने वालों और पापियों के पास गये और उनके साथ भोजन किया, उसी प्रकार मसीही लोगों को यूखरिस्त में निम्न वर्गो और अछूतों के पास जाकर प्रभु येशु के जिसने सब मनुष्यों के लिए अपना जीवन व्यतीत किया और उनके लिए अपना प्राण दिया और यूखरिस्त में भी अपने आप को देते हैं, प्रेम के साक्षी और सेवक बनें।

5. यूखरिस्त का अनुष्ठान – यूखरिस्त अनुष्ठान विधि मूलतः एक पूर्ण विधि है। जब यह विधि पुरोहित के द्वारा सम्पन्न की जाती है तब इस विधि में निम्नलिखित बातें सम्पन्न होती हैं –

– स्तुति गान।

– पापों के लिए पश्चाताप।

– क्षमा का आश्वासन।
– विभिन्न क्रम में पवित्र–शास्त्र के पाठ।
– विश्वास का अंगीकार (विश्वासवचन)।
– समस्त चर्च एवं संसार के लिए परहित निवेदन।
– रोटी और दाखरस की तैयारी।
– पिता परमेश्वर को उसके महाकार्यों के लिए धन्यवाद : सृष्टि–रचना, छुटकारा और पवित्रीकरण (जो बेरेकाह की यहूदी परम्परा से लिया गया है)।
– नया नियम की परम्परा के अनुसार सेक्रामेंत की स्थापना संबन्धी प्रभु येशु के वचन।
– स्मरण : प्रभु येशु के उन महाकार्यों का– छुटकारा, दुःख भोग, मृत्यु, पुनरूत्थान, स्वर्गारोहण और पिन्तेकुस्त– जिनके कारण चर्च का अस्तित्व हुआ।
– मंडली और रोटी एवं दाखरस के तत्वों पर पवित्र आत्मा की आशीष की याचना (Epiklesis)। यह या तो संस्थापना के वचनों के पश्चात् अथवा स्मरण के पश्चात् अथवा दोनों ही समय ; अथवा पवित्र आत्मा के संबन्ध में अन्य किसी प्रसंग पर जिससे यूखरिस्त पर आशीष की उचित अभिव्यक्ति होती है।
– विश्वासियों का परमेश्वर को समर्पण।
– संतों की संगति का उल्लेख।
– प्रभु के पुनरागमन और परमेश्वर–राज्य के निश्चित प्रकटीकरण के लिए प्रार्थना।
– पूरी मंडली की ओर से 'आमीन' ।
– प्रभु की प्रार्थना।
– मेल और शान्ति का प्रतीक (शान्ति–स्पर्श)।
– रोटी तोड़ना।
– प्रभु येशु के साथ चर्च के सब सदस्यों की सहभागिता में रोटी और दाखरस लेकर खाना–पीना।
– अन्तिम स्तुतिगान।
– आशीर्वाद एवं प्रेषण।

यूखरिस्त के आराधना के अन्त में पुरोहित के ये शब्द सम्भवतः यूखरिस्त के सारांश को अभिव्यक्त करते हैं। वह आराधकों को इस आशीष वचन से विदा करते हुये यह कहते हैं :

परमेश्वर की शान्ति, जो सारी समझ से परे है, परमेश्वर के
और उसके पुत्र हमारे प्रभु येशु मसीह (ख्रिस्त) के ज्ञान और
प्रेम में आपके हृदय और विचारों को सुरक्षित रखे।
और सर्वशक्तिमान परमेश्वर, पिता, पुत्र और पवित्र–आत्मा
की आशीष आप पर हो और आपके साथ सदा–सर्वदा बनी रहे।...........
शान्ति से पूर्ण होकर जाओ ; प्रभु से प्रेम करो और उसकी
सेवा में लगे रहो।[103]

भारतीय मसीहियों की भाषा, वेश–भूषा एवं संस्कृति

भारत वर्ष बहुभाषा एवं बहु संस्कृतियों का देश है। यहाँ भिन्न–भिन्न धर्मो के अनुयायी रहते हैं जो अपने–अपने प्रदेश, क्षेत्र की भाषाएँ, उपभाषाएँ अथवा बोलियाँ बोलते हैं और उनकी सामासिक संस्कृति (Composite Culture) होती है। यों तो कुछ अपवाद भी हैं जैसे शहरीकरण एवं शिक्षा

के प्रचार और प्रसार से एवं वर्तमान युग में मीडिया के प्रभाव के कारण ऐसा प्रतीत होने लगा है कि देश में अब पश्चिमी संस्कृति हावी हो रही है जिसके कारण वैश्वीकरण तेजी से हो रहा है और अब यह कहना कठिन प्रतीत होता है कि अमुख व्यक्ति किस धर्म अथवा प्रदेश का अथवा भाषा–भाषी है। कहने का अर्थ यह है कि यदि सिक्ख व्यक्ति सिर पर पगड़ी न पहने, दाढ़ी न रखे या हाथ में कंगन न पहने तो यह कहना कठिन होगा कि यह सिक्ख है क्योंकि उसकी वेश–भूषा अत्याधुनिक है और वह फर्राटे से अंग्रेजी भाषा बोलता है, जैसे कनाडा, इंग्लैण्ड में। ठीक इसी प्रकार मसीही व्यक्ति जो कभी केरला अथवा बंगाल की परम्परागत वेश–भूषा में मलयाली अथवा बंगाली कहलाता था, अब वह उन कुर्ता–धोती, लूंगी को छोड़कर अन्य शिक्षित व्यक्तियों के समान दिखाई देता है। यहाँ कुछ अपवाद हैं।

सम्पूर्ण मसीही समाज दो वर्गों से मिलकर बना है। एक तो वे हैं जिनको हम आदिम जन–जाति से धर्मान्तरित मसीही कहते हैं। दूसरे देश के भिन्न–भिन्न भागों में हुए धर्मान्तरण के परिणाम स्वरूप दलित मसीही लोग। इन्होंने अपनी स्थानीय संस्कृति और भाषा का परित्याग नहीं किया है और इन्हें अपने दलितपन पर गर्व है और जनजाति की मसीही अब भी स्वयं को भिन्न–भिन्न जनजातियों के नामों से संबोधित करने में गर्व महसूस करते हैं कि, हम गौण हैं, हम भील हैं, हम बैगा हैं, हम संथाली हैं, हम मुण्डा हैं या फिर उत्तर–पूर्व भारत की अनेक जन–जातियों के मसीही अब भी मसीही होने के बावजूद स्वयं को पहले आओनगा, लोथानगा, मिज़ोरम, खासी आदि कहलाना अधिक पसन्द करते हैं। यद्यपि वे शिक्षा–दीक्षा में किसी भी भारतीय से कम नहीं हैं। वे अब भी अपनी मातृभाषा एवं परम्परागत वेश–भूषा, रहन–सहन, खान–पान को छोड़ नहीं पाए हैं।

<u>भारतीय मसीही धर्मावलम्बियों की भाषा</u> – मसीही धर्म का अनुसरण करने वाले व्यक्ति वर्तमान समय में हर प्रान्त और हर जनपद में निवास करतें हैं। मसीही धर्म का उदय भले ही इस्त्राएल में हुआ हो और इसके प्रारम्भिक अनुसरण कर्त्ता मूलरूप में इब्रानी, अरामी और यूनानी बोलते रहें हों किन्तु मसीही धर्म जहाँ भी फैला उस देश के लोगों ने अपनी स्वदेशी भाषा का परित्याग नहीं किया। भारत वर्ष के मसीही भी तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम, मराठी, गुजराती, बंगाली, आसामी, मणिपुरी, गुरखी, पंजाबी, राजस्थानी, उड़िया, हिन्दी इत्यादि भाषाएँ बोलते हैं तथा सभी भाषाओं में इनके धर्म ग्रंथ उपलब्ध हैं। कुछ लोग जो अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव में हैं वे अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बोलचाल में करते हैं। ग्रामीण अंचल के लोग आंचलिक भाषा का प्रयोग बोलचाल में करते हैं। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि जैसे मुस्लिम समाज ने अपने धर्म को ऊर्दू और कुरआन (अरबी) की भाषा से जोड़ा और मक्का–मदीना को अपना तीर्थ–स्थल माना वैसा मसीही समाज ने नहीं किया। धर्म परिवर्तन करने के पश्चात् भी वह इस देश की भाषाओं और संस्कृतियों से जुड़ा रहा और हम बंगाली अथवा द्रविड़ अथवा पंजाबी भाषाएँ बोलने वाले व्यक्तियों में से किसी मसीही व्यक्ति को अलग से नहीं पहचान सकते क्योंकि उनकी भाषा उनकी संस्कृति अन्य लोगों जैसी ही होती है।

<u>भारतीय मसीही समाज की संस्कृति</u> – संस्कृति शब्द एक अव्याख्यातिक शब्द है अथवा संस्कृति के अर्थ को लेकर विद्वानों में मतभेद है। भारतवर्ष में धर्म और संस्कृति को एक ही मान लिया जाता है, जबकि पश्चिम में संस्कृति, सभ्यता व धर्म अलग–अलग तत्व माने जाते हैं। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक ग्रन्थ में पं० जवाहर लाल नेहरू ने इस क्लासिक ग्रन्थ की प्रस्तावना में संस्कृति के विषय में इस प्रकार लिखा है : "संस्कृति

है क्या ? शब्दकोष उलटने पर इसकी अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं'। एक बड़े लेखक का कहना है कि 'संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गयी हैं, उनसे अपने आपको परिचित करना संस्कृति है।' एक दूसरी परिभाषा में यह कहा गया है कि, 'संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण दृढ़ीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है।'

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि हम जो कुछ भी करते हैं उसमें हमारी संस्कृति की झलक होती है ; यहाँ तक कि हमारे उठने–बैठने, पहनने–ओढ़ने, घूमने–फिरने और रोने–हँसनें में भी हमारी संस्कृति की पहचान होती है, यद्यपि हमारा कोई भी एक काम हमारी संस्कृति का पर्याय नहीं बन सकता। वास्तव में, संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं। इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं ; अथवा जिस समाज से मिलकर हम जी रहे हैं उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति है, यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते हैं। इसलिए, संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है।

आदिकाल से हमारे लिए जो लोक–काव्य और दर्शन रचते आए हैं, चित्र और मूर्ति बनाते आए हैं, वे हमारी संस्कृति के रचयिता हैं। आदिकाल से हम जिस–जिस रूप में शासन चलाते आए हैं, पूजा करते आए हैं, मन्दिर और मकान बनाते आए हैं, नाटक और अभिनय करते आए हैं, बर्तन और घर के दूसरे सामान बनाते आए हैं, कपड़े और ज़ेवर पहनते आए हैं, शादी और श्राद्ध करते आए हैं, पर्व और त्यौहार मनाते आए हैं, अथवा परिवार, पड़ोसी और संसार से दोस्ती या दुश्मनी का जो भी सलूक करते आए हैं, वह सब का सब हमारी संस्कृति का ही अंश हैं। संस्कृति के उपकरण हमारे पुस्तकालय और संग्रहालय (म्यूजियम), नाटकशाला और सिनेमागृह ही नहीं, बल्कि हमारे राजनीतिक और आर्थिक संगठन भी होते हैं, क्योंकि उन पर भी हमारी रूचि और चरित्र की छाप लगी होती हैं।

संस्कृति का स्वभाव है कि वह आदान–प्रदान से बढ़ती है जब कि दो देश वाणिज्य व्यापार अथवा शत्रुता या मित्रता के कारण आपस में मिलते हैं तब उनकी संस्कृतियाँ एक–दूसरे को प्रभावित करने लगती हैं, ठीक उसी प्रकार, जैसे दो व्यक्तियों की संगति का प्रभाव दोनों पर पड़ता है। विश्व में शायद ही ऐसा कोई देश हो जो यह दावा कर सके कि उस पर किसी अन्य देश की संस्कृति का प्रभाव नहीं पड़ा हैं। इसी प्रकार, कोई जाति भी यह नहीं कह सकती कि उस पर किसी दूसरी जाति का प्रभाव नहीं है।

जो जाति केवल देना ही जानती है, लेना कुछ नहीं, उसकी संस्कृति का एक–न–एक दिन दिवाला निकल जाता है। इसके विपरीत, जिस जलाशय के पानी लाने वाले दरवाजे बराबर खुले रहते हैं, उसकी संस्कृति कभी नहीं सूखती। उसमें सदा ही स्वच्छ जल लहराता रहता है और कमल के फूल खिलते रहते हैं। 'आदान–प्रदान की प्रक्रिया संस्कृति की जान है और इसी के सहारे वह अपने को जिन्दा रखती है।'

सांस्कृतिक दृष्टि से वह देश और वह जाति अधिक शक्तिशालिनी और महान् समझी जानी चाहिए जिसने विश्व के अधिक से अधिक देशों, अधिक से अधिक जातियों की संस्कृतियों को अपने भीतर जज्ब करके, उन्हें पचा करके, बड़े से बड़े समन्वय को उत्पन्न किया है। भारत देश और भारतीय जाति इस दृष्टि से संसार में सबसे महान् हैं क्योंकि यहाँ की सामासिक संस्कृति में अधिक

से अधिक जातियों की संस्कृतियाँ पची हुयी हैं।

इस सम्बन्ध में यों तो यह कहना उचित होगा कि जैसे मुस्लिम अथवा पारसी धर्मावलम्बियों की अपनी–अपनी संस्कृति है वैसी मसीही लोगों की अपनी संस्कृति नहीं है वे देश के जिस भी क्षेत्र में रहते हैं उसी क्षेत्र की संस्कृति को अपनाए हुए हैं। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के तथाकथित जितने भी क्षेत्रीय भेद अथवा विभेद हैं वे भी भारतीय मसीहियों पर लागू होते हैं। उदाहरण के तौर पर बंगाली मसीही भी है, वैसे ही पंजाबी, राजस्थानी, मराठी, गुजराती मसीही भी हैं। दक्षिण भारत में तमिल, कन्नड़, तेलगू, मलयालम चार प्रमुख संस्कृतियाँ हैं। इन चारों में मसीही धर्मावलम्बी भी पाए जाते हैं किन्तु वे अपने आप को तेलगू, कन्नड़, तमिल और मलयाली कहते हैं। अर्थात् मसीही धर्म ने उनकी सांस्कृतिक पहचान को विनष्ट नहीं किया है और वे पूर्णतः सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय हैं।

भारत में मसीही धर्म का आगमन यों तो उतना ही पुराना है जितना मसीही धर्म को प्रवर्तक प्रभु येशु। जो 2000 वर्ष पूर्व इस्त्राएल देश में हुए थे। माना जाता है कि उनका एक शिष्य धर्म प्रचार के उद्देश्य से आधुनिक केरल प्रदेश में आया था। इस प्रकार देखा जाए तो इस्लाम के भारतवर्ष आने से पहले मसीही धर्म भारत में आ चुका था। इस्लाम अपने साथ इस्लामिक संस्कृति लाया था किन्तु मसीह धर्म के साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ। 16वीं शताब्दी में भारत में अंग्रेज आए अवश्य, परन्तु वे व्यापारी थे और उनका उद्देश्य धर्म–प्रचार करना नहीं, और न ही अपनी संस्कृति भारतवासियों पर थोपना था। वे मात्र व्यापारी थे, बाद में कुछ मिशनरी आए, जिन्होंने देश के विभिन्न भागों में मसीह धर्म का प्रचार–प्रसार किया जो मुख्यतः भारत के दलित अथवा हिन्दू समाज की तथाकथित निम्न जातियों में एवं आदिम जनजातियों में हुआ। दोनों वर्ग ने मसीही धर्म अपनाया तो किन्तु उन्होंने अपनी जाति की संस्कृति को नहीं छोड़ा, विशेषकर निम्न जातियों ने। इनके विषय में एम0एन0 श्रीनिवास ने अपने विख्यात ग्रन्थ 'आधुनिक भारत' में जातिवाद तथा अन्य निबंध में लिखा है''।[104]

दूसरी ओर आदिम जन–जातियाँ जिनके मध्य मसीही जातियाँ अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से फैला। वे अब तक अपनी–अपनी संस्कृतियों से जुड़ी हुयीं है और उन्हें उन पर गर्व हैं इन जनजातियों के सांस्कृतिक पक्ष पर 'एल0पी0 विद्यार्थी', 'विनय कुमार राय' ने अपने विख्यात अंग्रेजी ग्रंथ *'दि ट्राइबल कल्चर ऑफ इण्डिया'* में महत्वपूर्ण जानकारियाँ दी हैं।[105] वे कहते हैं कि, ''भारत की आदिम जनजातियाँ पहाड़ी जंगलों में निवास करती हैं। भारत में जितने छोटे–बड़े पहाड़ हैं, उतनी ही जनजातियाँ हैं और भिन्न–भिन्न नामों से वे पुकारी जाती हैं। उनमें से कुछ लोकप्रिय नाम इस प्रकार हैं : वन्यजाति, वनवासी, पहाड़ी, आदिम जाति, आदिवासी, जनजाति, अनुसूचित जनजाति इत्यादि। अनुसूचित जनजाति को भारतीय संविधान में स्वीकृत किया गया है और आदिवासी तमाम जनजातियों का सामान्य नाम है। इन जन जातियों में जो देश के विभिन्न भागों में विभिन्न नामों से जानी जाती हैं, जैसे उत्तर–पूर्व भारत में नगा जनजातियां, खासी, मिज़ो आदि। झारखण्ड के आस–पास क्षेत्रों में संथाल, ऊराँव, हो, मुण्डा आदि मध्य भारत अथवा मध्य प्रदेश में कोल–भील, गौंड आदि। इन जातियों में मसीही धर्म प्रभावपूर्ण ढंग से फैला।''

आदिम जन–जातियों में आधुनिकता का प्रवेश अंग्रेजों के आगमन से हुआ। सर्वप्रथम वे छोटा नागपुर (झारखण्ड राज्य) में सन् 1772 में प्रविष्ट हुए थे और यहीं से जनजातियों में मसीह धर्म का प्रचार–प्रसार आरम्भ हुआ। आज स्थिति यह है कि झारखण्ड प्रदेश में निवास करने वाली आदिम जन–जातियाँ – संथाल, ऊराँव, हो एवं मुण्डारी अधिकांशतः मसीही धर्म अपना चुकी हैं।

पर उन्होंने अपनी प्राचीन संस्कृति का त्याग नहीं किया।

<u>दलित वर्ग में मसीहीं धर्म का प्रचार</u> – दूसरा वर्ग हिन्दू समाज के दलित वर्ग से आया है और प्रायः उत्तर भारत एवं आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु के अधिकांश मसीही भिन्न–भिन्न निम्न जातियों से आए हैं। मिशनरियों ने बहुत जोर डाला था कि वे धर्म परिवर्तन के पश्चात् अपनी स्थानीय हिन्दू संस्कृति को त्याग दें ; क्योंकि ये मिशनरी मानते थे– अज्ञानतावश हिन्दू संस्कृति का अर्थ है भूत–प्रेत का पूजा–पाठ करना, अनेक देवी–देवताओं को मानना आदि। शिक्षा के प्रसार ने इन दलितों में से निःसन्देह हिन्दू धर्म की कुछ बुरी प्रथाओं से मुक्त तो अवश्य किया परन्तु वे इन दलितों से उनकी संस्कृति न छुड़वा सके। जैसे आज भी दलितों में विवाह, मृत्यु, बच्चे को जन्म के अवसर पर उत्सव मनाने में वाद्ययन्त्रों का प्रयोग (ढोलक, मृदंग, नगाड़े एवं नाच–गान, गीत) होता है फिर चाहे ये दलित आन्ध्रप्रदेश के हो अथवा पंजाब के।

यह सच है कि शिक्षित मसीही दलितजन शिक्षा के प्रभाव के कारण एवं शहर में बसकर अपने को दलितपन से मुक्त करना चाहता है उस पर आधुनिक सभ्यता का पूर्ण प्रभाव पड़ा है। वह अपनी दलितावस्था का स्मरण नहीं करना चाहता है। ऐसे ही मसीही दलित जो शहरों में बस गए हैं और अपनी आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति का भरपूर लाभ उठा रहें हैं। वे निःसन्देह हिन्दू संस्कृति से मुक्त तो हो चुके हैं किन्तु अपनी नयी संस्कृति विकसित नहीं कर पाए। ऐसे मसीहियों की सांस्कृतिक दुर्दशा त्रिशंकु जैसी है। सन् 60 के दशक में मुम्बई में निर्मित हिन्दी फिल्मों में ऐसे मसीही पात्रों की भाषा, रहन–सहन, नाच–गाना, शादी–ब्याह के माध्यम से मजाक उड़ाया जाता था। टूटी–फूटी अंग्रेजी, अंग्रेजों की तरह रहन–सहन, खान–पान आदि का चित्रण किया जाता था। आज भी शहरों के मसीही आधुनिकता का दावा तो करते हैं परन्तु वे सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त दरिद्र हैं। उनकी आराधना पद्धति, भाषा, संगीत सब पश्चिमी हैं। वे अपनी आरधना स्तुति में भजन, गीत, गाना तथा भारतीय वाद्य–यंत्रों का प्रयोग करने में हिचकिचाते हैं। इसके स्थान पर वे अंग्रेजी भक्ति–गीतों के गद्य–अनुवाद गाते हैं एवं वाद्य–यन्त्र के नाम पर प्यानों जैसे विदेशी वाद्ययन्त्र इस्तेमाल करते हैं। विवाह आदि विदेशी परिधान में होता है और विवाह पद्धति भी विदेशी है। अब तक हिन्दी भाषा में उनका कोई हिन्दी गीतकार अथवा महाकवि अथवा महालेखक नहीं हुआ। अंग्रेजी में अवश्य है जैसे माइकिल मधूसूदन दत्त। चित्रकार के नाम पर गिने–चुने प्रतिष्ठित पत्रकार हैं जैसे फ्रैंकवैस्ली, थॉमस, डिसूजा, सिस्टर जिनीव आदि। भारतीय नृत्य–संगीत को मिशनरियों ने चर्च हमेशा दूर रखा ; क्योंकि वे मानते थे कि इनका संबन्ध पूजा–पाठ एवं मन्दिरों से है। भारतीय नृत्य संगीत का सम्बन्ध हिन्दू धर्म की अभिव्यक्ति से है, इसके विपरीत आदिवासी मसीहियों ने अपनी–अपनी जाति की संस्कृति को पूर्णतः अपनाया। उनके नृत्य संगीत, लोक संस्कृति आज भी अक्षुण्य है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। मसीही भीली जनजाति में लोकप्रिय भजनों में से एक भजन[106] दृष्टव्य हैं :

मीठी–मीठी ते प्रीत में चाखी छै।
गली–गली ते तो साकर जेवी।
तेनी प्रनी तो छै अमृत जेवी।
मारी रूची ने ते बहुभा दे हैं।
मारा है या मां ते नोवा सो छै।
मने सुखी घणों ते राखे छै।
ऐनी प्रीती मधुरी छै भारी।

मारा प्रभु ई सूनी प्रीत ओ प्रीत में चाखी छै।
मने करियो छे आनन्दीत ओ प्रीत में चाखी छै।
मारू ठारे क लेजुंनित ओ प्रीत में चाखी छै।
सेने चोयूं छे मोरू चित्र ओ प्रीत में चाखी छै।
ऐ तो वामी छै हूं पर जीत ओ प्रीत में चाखी छै।
अेवुं सुख न आपे वित ओ प्रीति में चाखी छै।
हुं तो प्रीति नांगा ऊं गीत ओ प्रीत में चाखी छै।

'संस्कृतिकरण' की संकल्पना के द्वारा श्रीनिवास ने भारतीय जाति–प्रथा की संरचना व संस्तरण में होने वाले परिवर्तनों को समझाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि आधुनिक भारत में निम्न जाति के सदस्य प्रायः ऊँची जातियों के संस्कारों व जीवन के ढंग का अनुकरण कर रहे हैं और साथ ही जातीय संस्तरण में उच्च स्थान या स्थिति को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं एवं उस प्रयत्न में सफल भी हो रहे हैं। इसके फलस्वरूप समाज में तथा निम्न जातियों की जातीय स्थिति व जीवन के ढंग में काफी परिवर्तन हो जाता हैं।

संस्कृतिकरण की व्याख्या करते हुए डा0 एम0एन0 श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक ***'Social Change in Modern India'*** में लिखा है, "संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई निम्न हिन्दू जाति या कोई जनजाति अथवा अन्य समूह किसी उच्च और प्रायः द्विज जाति की दिशा में अपने रीति–रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा और जीवन पद्धति को बदलता है।"[107]

डॉ0 श्रीनिवास ने यह भी लिखा है कि संस्कृतिकरण का अर्थ केवल नवीन प्रथाओं व आदतों को ग्रहण करना ही नहीं, अपितु पवित्र एवं लौकिक जीवन से संबन्धित नए विचारों एवं मूल्यों को भी प्रकट करना है जिनका विवरण संस्कृत के विशाल साहित्य में बहुधा देखने को मिलता है। कर्म, धर्म, पाप, माया, संसार, मोक्ष आदि संस्कृत के कुछ अत्यन्त लोकप्रिय आध्यात्मिक विचार हैं और जब लोगों का संस्कृतिकरण हो जाता है तब वे अपनी बातचीत में इन शब्दों का बहुधा प्रयोग करने लगते हैं।[108]

जब इन निम्न जातियों ने अपना धर्म परिवर्तन किया तो उन्हें लगा कि मसीही धर्म शासक अंग्रेजों का धर्म है अतः वे मसीही धर्म अपना कर शासकों के तुल्य, सामाजिक स्तर पर उनकी बराबरी प्राप्त कर लेगें। अतः निम्न जातियों में मसीही धर्म बहुत तेजी से फैला था और उनमें श्री निवासन के सोच के अनुरूप उनका संस्कृतिकरण हुआ था। इस प्रकार उनकी भाषा, पहनावा, आचरण, व्यवहार अंग्रेजों जैसा हो गया था और इन्हीं बातों ने उत्तर भारत के मसीही समाज को शेष भारतीय समाज से अलग कर दिया था। जिसका अभिशाप आज भी मसीही समाज को भोगना पड़ रहा है।

बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत होशंगाबाद, मंडला, बालाघाट, बैतूल, छिन्दवाड़ा, सिवनी आदि जिलों में कोल, किरात, कुर्खु एवं गौंड जाति के लोग मिलते हैं। इनमें गौंड एवं कोल जन जाति की संख्या अधिक है आदिवासियों की कुछ प्रथाएँ उल्लेखनीय हैं। अनेक आदिवासियों ने मसीही धर्म अपना लिया, फिर भी ये निम्नलिखित पर्व मनाते हैं :

मध्यप्रदेश के मंडला जिले की बैगा जाति द्वारा शहद पीने का पर्व मनाया जाता है । यह त्यौहार नौ वर्षो में एक बार आता है और इसे वे अपने पूर्वज *'बैगाबाबा'* के नाम पर मनाते हैं। बैगा जनजाति के सम्बन्ध में विख्यात अन्तर्राष्ट्रीय लेखक *'वैरियर एल्विन'* का ग्रन्थ 'दि बैगा' और *'लीव्ज फ्रॉम दि जंगिल लाइफ इन ए गोंड विलेज'* उल्लेखनीय है।

बैगा आदिवासी अब भी घने जंगलों में रहते हैं। वे एक बस्ती बसा कर समूहों में रहते हैं। बस्ती के सारे घर एक साथ जुड़े होते हैं। झाँड–फूँक का काम वे खूब अच्छी तरह जानते और गोंडों के पुरोहित माने जाते हैं। गोंडवाने के घने जंगलों में सप्ताह में एक दिन बाजार लगता है जहाँ आदिवासी लोग पहुँचकर सप्ताह भर के लिए जरूरी सभी वस्तुएँ खरीद लेते हैं।

आदिवासी लोग बड़े परिश्रमी, कर्मठ एवं अपने कार्य के प्रति बेहद ईमानदार होते हैं। उनमें आलस्य अथवा कार्य शैथिलता नाम तक को नहीं पायी जाती हैं वे सीधे–सादे और सरल होते हैं। वे रंग के काले, काफी हृष्ट–पुष्ट और सहिष्णु होते हैं। वे स्वभाव से चचंल होते हैं। जंगलों में रहने के कारण उनका मुख्य व्यवसाय शिकार करना है। पहाड़ों की ढालों पर वे खेती भी करते हैं। गोंड हल चलाते हैं, लेकिन और आदिवासी हल नहीं चलाते। उनका विचार है कि हल चलाने से धरती माता की छाती में दर्द होता है। वे प्रायः बेबर की खेती करते हैं अर्थात् जंगल के किसी टुकड़े को वे काट लेते है। डालों को जमा कर उनमें आग लगा देते हैं। आग बुझ जाती है तो राख में बीज के दाने डाल दिए जाते है। उसी में जो कुछ हो जाता है, काफी हैं। भील इस तरह की खेती को 'बालरा' कहते हैं।[109]

आदिवासियों का भोजन सीधा–सादा होता हैं। निपट–निरक्षर तथा असभ्य जंगली अवस्था में होने के कारण इन लोगों के भोजन में मांस की मात्रा अधिक होती हैं। मोटा चावल भी उन्हें खाने के लिए प्राप्त हो जाता हैं। गोंडों के इस भोजन को 'पेज' भी कहते हैं। चावल से एक प्रकार का पतला पदार्थ तैयार किया जाता है जिसे 'पेज' कहते हैं। मांस में बाघ, गीदड़, हरिण से लेकर सांप, मेंढक और पक्षियों तक को वे खा जाते हैं। कुछ आदिवासी लाल चीटों का आचार भी बनाते हैं और उसे बड़े प्रेम तथा चाव से खाते हैं। पहले शबर और गोंड आदिवासी मनुष्य बलि तक देते थे। अब बकरे और भैसें बलि में चढ़ाए जाते हैं। भोजन के साथ शराब पीना जरूरी माना जाता है। स्त्रियाँ भी शराब पीती हैं।

शिकार करना आदिवासियों को जन्म से आता हैं। बाण की नोंक पर एक प्रकार का जहर लगाया जाता है। उसे 'माहुर' कहते हैं। माहुर इतना जहरीला होता है कि खून में तनिक भी घुल गया तो जीना असंभव हो जाता है।

सभी आदिवासी शहरों की चमक–दमक से दूर घनें जंगलों में बस्तियाँ बनाकर रहते हैं। नगर शहर अथवा गाँव के जन–जीवन से उनका तनिक भी संबन्ध नहीं होता। इन आदिवासियों के रीति–रिवाज अब भी कायम हैं। स्त्रियाँ आभूषणों की शौकीन होती हैं। उनके आभूषण चाँदी के बने होते हैं या फिर स्त्रियाँ जंगली फूलों के आभूषण बनाती हैं। कुछ आदिवासी महिलाएँ तो अपना पूरा गला आभूषणों से ढक लेती हैं।

सभी आदिवासियों का एक आभूषण और भी है और वह आभूषण है शरीर को गुदाना। अगर संयोगवश किसी लड़की का शरीर गुदाया नहीं गया तो विवाह के समय उसके पिता को गुदाने की कीमत देनी पड़ती है उसका विश्वास है कि यदि बिना गुदाय कोई स्त्री मर गई तो यमराज उसे सजा देगें। शरीर को गोदने का काम लड़की की माँ या घर का कोई मुखिया करता है। कई जगहों पर ओझा औरतें यह काम करती हैं। शरीर गुदाने का काम बचपन से शुरू होता है अंत में शादी तक चलता है। गोदने के निशान कई तरह के होते हैं। गोदने के निशान एक जंगली तरल द्रव से बनाए जाते हैं। ये इतने गहरे होते हैं कि कभी नहीं जाते है। गोदते समय सुई की नोंक चुभती है और दर्द होता है लेकिन स्त्रियाँ उस दर्द को सहती हैं। पुरूष भी अपना शरीर गुदवाते हैं।[110]

विद्वानों का यह मत है कि दलितों एव आदिवासियों के आधुनिकीकरण में अथवा उनके विकास में मसीही धर्म ने अद्भुत योगदान दिया है। उन्हें आधुनिक बनाने तथा समाज में सम्मानीय स्थान दिलाने में मिशनरियों के कल्याणकारी कार्यों का योगदान रहा है जैसे आधुनिक शिक्षा का प्रचार–प्रसार। वास्तव में इसी शिक्षा प्रसार ने दलितों को समाज में अन्य जातियों के समकक्ष स्थापित किया। और आदिम जन–जाति को उसके जंगलों से निकालकर आर्थिक स्थिति में आगे बढ़ाया। आज अनेक आदिवासी एवं दलित उच्च सरकारी पदों पर आसीन हैं। इस सन्दर्भ में नार्थ पूर्व भारत की मिजोरम जन–जाति एक अद्भुत उदाहरण हैं। जगजीवनराम जैसे दलित नेता बिशपपिकेट जैसे मसीही मिशनरी के द्वारा दी गई शिक्षा के फलस्वरूप भारत सरकार में कैबिनेट स्तर के मंत्री बन सके। ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

भारतीय मसीही धर्मावलम्बियों के प्रमुख संस्कार

मसीही धर्म विश्वव्यापी धर्म है। विश्व के देशों में जहाँ–जहाँ चर्च हैं ; वे अपने–अपने देश की परम्पराओं के अनुरूप अनेक संस्कारों का पालन करते हैं। इस कथन का केवल एक अपवाद है और वह है रोमन काथलिक चर्च। जो केवल परम्परा से चले आते हुए संस्कारों का ही पालन करते हैं किन्तु प्रोटेस्टेंट चर्च संस्कार संबन्धी कुछ परम्पराओं को छोड़ चुके हैं। हम केवल उन्हीं संस्कारों का वर्णन करेंगें जो दोनों चर्चों में पाए जाते हैं। जैसे– जन्म, बपतिस्मा, प्रभु भोज, नामकरण अथवा बच्चों का बपतिस्मा, दृढ़ीकरण, पुरोहितों का अभिषेक संस्कार, विवाह और अन्तिम क्रिया। इनमें से कुछ का वर्णन हम प्रथाओं के अन्तर्गत कर चुके हैं।

संस्कार शब्द का अर्थ – मसीहियों में संस्कार शब्द लातीनी Sacramentom (अंग्रेजी सेक्रामेंट) का अनुवाद मसीही समाज के प्राचीन आचार्य सन्त अगस्तीन ने संस्कार की यह परिभाषा दी है कि संस्कार वास्तव में *"पवित्र प्रतीक"* हैं। सन्त अगस्तीन के बाद जो मसीही आचार्य हुए उन्होंने इस परिभाषा को और विस्तृत किया कि "संस्कार अदृश्य अनुग्रह का दृश्य प्रतीक है।" इस परिभाषा के अनुसार बहुत से धार्मिक कृत्य संस्कार माने जाते थे।

मसीही संस्कार एक प्रकार से व्यक्तिगत कार्य है। मसीहीजन विश्वास करते है कि वे व्यक्तिगत रूप में परमेश्वर का अनुग्रह स्वीकार करते हैं तथा व्यक्तिगत रूप में स्वयं को उसे समर्पित करते हैं। साथ ही वे सामूहिक कार्य भी हैं जो मसीही विश्वासियों के झुण्ड में सामूहिक रूप से सम्पन्न किए जाते हैं। बपतिस्मा के द्वारा मसीहीजन मसीह की मंडली रूपी देह में संभागी किए जाते हैं और प्रभु भोज के द्वारा मसीहियों की उस देह में पुष्टि होती है तथा परमेश्वर और एक–दूसरे के साथ मसीही संगति नित्य नवीन की जाती है। बपतिस्मा और प्रभु भोज ऐसे सामूहिक कार्य हैं जिनके द्वारा पवित्र आत्मा मसीही विश्वासियों को चर्च में सम्मिलित करता है और वे चर्च के सदस्य बनते हैं।

इन संस्कारों में सामान्य वस्तुओं का प्रयोग होता है– जल, रोटी और दाखरस। मसीहीजन इन्हें परमेश्वर का वरदान मानतें हैं। ये पदार्थ धोने, खाने और पीने के नित्य कार्यों में प्रयुक्त होते हैं।

ये संस्कार चर्च के आरम्भ से ही मसीही आराधना के मुख्य बिन्दु रहे हैं। वे प्रभु येशु के शुभ समाचार का सारांश हैं। अतः मसीहीजन इन्हें अपने विश्वास और जीवन का साकार चिन्ह मानते हैं। संस्कारों की जितनी परिभाषाएँ मसीही विद्वानों ने की है उनमें ये दो बातें अनिवार्य रूप से दिखाई देती हैं। निम्न चार प्रमुख चर्चो में प्रचलित मसीही संस्कारों की परिभाषा यह है–

काथलिक चर्च – इस चर्च के अनुसार "अदृश्य अनुग्रह का दृश्य प्रतीक जो हमारे धर्मी ठहरने के लिए निर्धारित किया गया है।"

एंग्लिकन चर्च – "भीतरी और आत्मिक अनुग्रह का बाहरी और दृश्य प्रतीक, जो हमें दिया गया है और जिसे मसीह ने स्वयं निर्धारित किया कि वह हमारे लिए अनुग्रह–प्राप्ति का साधन हो तथा एक प्रतिज्ञा जिसके द्वारा हमें उस अनुग्रह का निश्चय है।"

पश्चिमी चर्च (यूरोपीय) – एक पवित्र रीति जिसे मसीह ने स्थापित किया और जिसमें इन्द्रियगोचर प्रतीकों के द्वारा नवीन संधि (वाचा) की आशीषें विश्वासियों के लिए उपस्थित, प्रतिज्ञात, और प्राप्य है"।

आर्थोडॉक्स चर्च – "एक पवित्र क्रिया जिसके द्वारा अनुग्रह अर्थात् परमेश्वर की उद्धार करने वाली शक्ति, मनुष्य में रहस्यपूर्ण रीति से कार्य करता है"।[111]

1. जन्म संस्कार – मसीही माता–पिता बच्चे के जन्म को परमेश्वर का एक उपहार मानते हैं। अतः वे बच्चे के जन्म के लिए परमेश्वर को धन्यवाद देते हैं। यह धन्यवाद की आराधना या तो अन्य मसीही लोगों के साथ गिरजाघर में पुरोहित के मार्गदर्शन में सम्पन्न की जाती है या फिर माता–पिता के घर में मसीही–धर्म बच्चे के जन्म को परमेश्वर के सृष्टि कार्य से जोड़ता है और माता–पिता को परमेश्वर का सहकर्मी मानता है। यद्यपि वे मानवीय प्रेम तथा पारिवारिक जीवन की उपेक्षा नहीं करते और वे परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि बच्चे की देखभाल मसीही धर्म के अनुकूल करें। निम्नलिखित प्रार्थनाएँ दृष्टव्य हैं – पुरोहित–बच्चे के जन्म, जच्चा–बच्चा की सुरक्षा, डॉक्टर नर्सों की सहायता के लिए निम्नलिखित शब्दों में परमेश्वर को धन्यवाद देता है :

हमारे स्वार्गिक पिता परमेश्वर ने आप पर भरोसा करके यह
बच्चा/बच्ची आपको सौंपा (सौंपी) है। उसने शिशुजन्म के
संकट की घड़ी में जच्चा–बच्चा की रक्षा की और दोनो को
संकट से सुरक्षित निकाल लाया।

परमेश्वर की सृष्टि और उसके सृष्टि कार्य में अपनी भागीदारी
के लिए तथा उसके उपहारों के लिए जिनका उसने हमें प्रबन्धक
नियुक्त किया है।..........

उन सब लोगों के हुनर और देखभाल के लिए जो शिशु के
जन्म के समय सहायता करते हैं और उन सब के लिए भी जो
आवश्यकता के ऐसे समय में हमारी मदद करतें हैं, प्रभु को धन्यवाद कहते हैं।[112]

2. नामकरण संस्कार – प्राचीन चर्च में नामकरण संस्कार एवं बच्चों का बपतिस्मा दोनों एक साथ होते थे और पुरोहित बच्चे का नाम माता–पिता की सहमति से रखता था और उसका नाम लेते हुए बपतिस्मा धर्म विधि पूरी करता था किन्तु कुछ चर्चों में बच्चों को बपतिस्मा देने की प्रथा न होने के कारण यह नामकरण संस्कार प्रचलन में था, जो अब बच्चों के बपतिस्मा के रूप में प्रचलित है। इस प्रकार नामकरण संस्कार तथा बच्चोक का बपतिस्मा दोनों एक–दूसरे के पर्याय बन गए हैं।

3. दृढ़ीकरण संस्कार – कुछ चर्चों में दृढ़ीकरण संस्कार को मान्यता प्राप्त है किन्तु कुछ चर्च दृढ़ीकरण संस्कार नही मानतें। उन चर्च में दृढ़ीकरण संस्कार माना जाता है जहाँ बच्चों को बपतिस्मा देने की प्रथा प्रचलित है। जो चर्च इस प्रथा को नहीं मानते वे दृढ़ीकरण संस्कार भी नहीं मानते। इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चों का बपतिस्मा तथा दृढ़ीकरण संस्कार एक–दूसरे के पूरक

है। अर्थात् जहाँ बच्चों का बपतिस्मा प्रचलित है वहाँ दृढ़ीकरण संस्कार माना जाता है। इस संस्कार का उल्लेख हम विस्तार से मसीही प्रथा के अन्तर्गत पिछले पृष्ठों में कर चुके है।

*4. **अभिषेक संस्कार*** – जो धार्मिक कर्मकाण्ड हिन्दू धर्म में पुरोहित करवाता है वैसे ही मसीही धार्मिक कृत्य प्रीस्ट (Priest) अथवा पास्टर (Paster) अथवा पुरोहित सम्पन्न कराता है। इस व्यक्ति का चुनाव, शिक्षा–दीक्षा एवं इसके कार्यों के विषय में विस्तार से हर चर्च में अपनी–अपनी परम्पराएँ हैं। काथलिक चर्च की अपनी परम्पराएँ हैं। वैसे ही प्रोटेस्टेंट चर्च के अन्तर्गत आने वाले अनेक चर्चों में भी इस विशेष व्यक्ति के सम्बन्ध में अपने–अपने विधि–विधान हैं। हम उत्तर भारत (C.N.I.) की कलीसिया (चर्च) की परम्परा का ही उल्लेख करेंगे –

अभिषेक की दार्शनिक पृष्ठभूमि – उत्तर भारत की कलीसिया (चर्च) यह विश्वास करती है कि वह अपने सम्पूर्ण रूप से एक पुरोहितीय समाज है; क्योंकि वह महान महापुरोहित मसीह की देह है। साथ ही साथ वह यह भी विश्वास करती है कि अभिषिक्त व्यक्तियों का सेवाकार्य कलीसिया को मसीह के द्वारा दिया गया परमेश्वर का एक उपहार है। ये उपहार परमेश्वर ने कलीसिया (चर्च) को इसलिए दिए हैं कि अभिषिक्त धर्मसेवक चर्च के सब सदस्यों के जीवन और उनके सेवा–कार्य को सिद्ध बनाए।

चर्च प्रभु येशु में विश्वास करने वालों का "राज पुरोहितीय समाज" है। उसके सब सदस्य परमेश्वर के पास सीधे पहुँच सकते हैं और सम्पूर्ण चर्च के अधिकारों और नियुक्त कार्य में सब सदस्यों का भाग है। पवित्र आत्मा से सुदृढ़ होकर सब सदस्य विश्वासियों के पुरोहितीय समाज के अधिकार एवं कर्त्तव्य प्राप्त करते हैं। वे परमेश्वर के प्रति उसके पुत्र में तथा उसके माध्यम से स्वयं को तथा अपनी सब योग्यता और क्षमता को बलि–रूप में अर्पित करते हैं। इस प्रकार वे अपने जीवन तथा शब्द (वचन) से प्रभु येशु मसीह के द्वारा परमेश्वर की मुक्त करने वाली सामर्थ्य का तेज प्रकट करते हैं।

प्रभु येशु, जो मृतकों में से जी उठे और स्वर्ग गए, की सेवा का दिव्य आदर्श ही चर्च की सेवा का प्रेरणा–श्रोत है, क्योंकि प्रभु येशु सेवा करने वाले स्वामी हैं। वह महान महापुरोहित हैं। वह आत्माओं के महान रखवाले और परमेश्वर का शाश्वत् "शब्द" है। यही प्रारूप चर्च के सेवाकार्य, संसार के प्रति उसकी सेवा और उसकी पुरोहितीय एवं पास्तरीय सेवा का प्रेरणा श्रोत है।

अभिषिक्त व्यक्ति के सेवा कार्य – मसीही समाज में सेवा कार्य का विशिष्ट अर्थ होता है। यह अंग्रेजी शब्द Ministry शब्द का अर्थ है, किन्तु अंग्रेजी भाषा में Ministry शब्द का विशिष्ट अर्थ होता है, अर्थात् जिसको हम सामाजिक सेवाकार्य कहते हैं किसी पुरोहितों के सन्दर्भ में सेवाकार्य का अर्थ गिरजाघर में आराधना संचालन एवं तमाम धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करना भी सेवाकार्य है। इसी अर्थ में हमने पुरोहितों के अभिषेक के वर्णन में सेवा शब्द का प्रयोग किया है।

चर्च यह मानता है कि चर्च के प्रत्येक सदस्य का कर्त्तव्य और विशेष अधिकार है कि वह चर्च के सेवा कार्य, अर्थात् परमेश्वर एवं मनुष्यों की सेवा में हाथ बटाएँ। इस सेवा कार्य के अंग निम्न हैं : व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से परमेश्वर की आराधना करना, चर्च के परिवार में प्रेमपूर्ण सेवा करना तथा विस्तृत समाज की सेवा करना और समस्त संसार में प्रभु येशु मसीह के शुभ सन्देश का प्रचार–प्रसार करना।

चर्च के इस व्यापक सेवाकार्य के लिए परमेश्वर ने पुरुष और स्त्रियों को सेवा के अनेक वरदान दिए हैं। चर्च इन विभिन्न वरदानों को मान्यता देता तथा स्वागत करता है और स्त्री तथा पुरुष को ये सेवाकार्य करने के लिए पुरोहित पद पर अभिषिक्त करता है।

मसीह की देह अर्थात् सम्पूर्ण चर्च को यह सेवाकार्य सौंपा गया है। यद्यपि व्यवस्था की दृष्टि से कुछ कार्य अभिषिक्त सेवकों द्वारा विशेष रूप से किए जाते हैं, तथापि वे सम्पूर्ण देह अर्थात् चर्च के कार्य मानकर ही किए जाते हैं। ये कार्य एकमात्र अभिषिक्त सेवकों के ही कार्य नहीं हैं और न वे देह अर्थात् चर्च से अलग रहकर किए जाते है, फिर भी चर्च यह विश्वास करता है कि परमेश्वर चर्च के अन्तर्गत सदैव ही विशेष व्यक्तियों को विशिष्ट सेवाएँ सौंपता रहा है, और इन व्यक्तियों को चर्च के माध्यम से मसीह की ओर से सेवा का अधिकार प्राप्त होता रहा है। इन्हें ही मसीही समाज पुरोहित कहता है।

चर्च यह विश्वास करता है कि अभिषेक के अनुष्ठान में परमेश्वर अपने चर्च की प्रार्थना के उत्तर में तथा हाथ रखने के सेक्रामेंत के द्वारा उन व्यक्तियों को, जिनको उसने अपने चर्च की सेवा के लिए बुलाया है और जिनको चर्च ने किसी विशेष धर्म सेवा के लिए स्वीकार किया है, उस धर्म सेवा का अधिकार और सेवा का उपयुक्त अनुग्रह प्रदान करने का आश्वासन देता है। चर्च मानता है कि उसके धर्म सेवक प्रभु येशु मसीह एवं उनके प्रेरितों से अधिकार प्राप्त करते हैं और पवित्र आत्मा की अगुआई में उस अधिकार का प्रयोग चर्च में करते हैं।

अभिषेक वह धर्म–विधि है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को इन धर्म–सेवाओं में से एक धर्म–सेवा सौंपी जाती है। अभिषेक वास्तव में परमेश्वर का कार्य है जिसे वह अपने चर्च में सम्पन्न करता है। उत्तर भारत के चर्च यह विश्वास करते हैं : प्रत्येक अभिषेक (आर्डिनेशन) और महाभिषेक (धर्माध्यक्ष) कार्य को करने वाला परमेश्वर ही वास्तविक अभिषेककर्त्ता और महाभिषेककर्त्ता हैं। परमेश्वर ही अपने चर्च की प्रार्थना के उत्तर में, और उसके प्रतिनिधियों के शब्दों तथा कार्यों के माध्यम से निर्वाचित व्यक्तियों को उन पदों एवं कार्यों के लिए जिनके लिए उनको बुलाया गया है, अधिकार एवं सामर्थ्य प्रदान करता है।

चर्च के प्राचीन परम्परा के अनुरूप अभिषेक अथवा महाभिषेक की आराधना के मूलतत्व :

1. आराधना–विधि में अध्यक्षता करने वाले धर्माचार्य (बिशप) के सामने प्रत्याशी का प्रस्तुत किया जाना और प्रत्याशी के अभिषेक के लिए चर्च के सहमति की घोषणा। यह घोषणा प्रत्याशी की चर्च द्वारा चुने जाने की प्रक्रिया का अन्तिम चरण है।
2. उन व्यक्तियों के लिए जिनका अभिषेक अथवा महाभिषेक होने जा रहा है, यह प्रार्थना कि उनको धर्मसेवा करने के लिए पवित्र आत्मा का वरदान मिले।
3. प्रत्याशी के सिर पर प्रार्थना के साथ हाथ रखना : धर्म–सेवादार (डीकन) को पृथक करने में धर्माचार्य (बिशप) द्वारा प्रार्थना के साथ हाथ रखना। पुरोहित (प्रेसबिटर) के अभिषेक में धर्माचार्य (बिशप) और अन्य पुरोहितों का प्रत्याशी के सिर पर प्रार्थना के साथ हाथ रखना। धर्माचार्य (बिशप) के महाभिषेक (कन्सीक्रेशन) में कम से कम तीन धर्माचार्यो (बिशपों) का प्रार्थना के साथ हाथ रखना। (यदि संबन्धित धर्म क्षेत्र (डायोसिस) चाहे तो उसके प्रतिनिधि पुरोहित, पुरोहिता भी धर्माचार्यो (बिशपों) के साथ हाथ रखने में सम्मिलित हो सकते हैं।)

इन तीन मूलतत्वों में ये निम्नलिखित तत्व भी जोड़ दिए जाते हैं :

प्रत्याशी की उसके विश्वास एवं कर्त्तव्य–ज्ञान सम्बन्धी जाँच, उसके पद सम्बन्धी उपकरणों को प्रदान करना (बाइबिल, मेषपाल की लाठी); सहभागिता का दाहिना हाथ देना।

यद्यपि ये जोड़े गए तत्व प्रतीकात्मक अर्थ के कारण महत्वपूर्ण हैं, परन्तु अभिषेक अथवा महाभिषेक की धार्मिक–विधि के अनिवार्य तत्व नहीं हैं। इस अवसर पर की जाने वाली प्रार्थनाओं

में से यह प्रार्थना उल्लेखनीय है ; क्योंकि इस प्रार्थना में अभिषिक्त होने वाले व्यक्ति के लिए विशेष वरदानों की माँग की गयी हैं :

विशेष प्रार्थना

धर्माचार्य (बिशप) ये प्रार्थना करते हैं :

हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर, आप सब अच्छी वस्तुओं के दाता हैं, आपने अपने ईश्वरीय प्रबन्ध द्वारा चर्च में विभिन्न धर्म–सेवाओं की व्यवस्था की है। अपने इन सेवकों/सेविकाओं पर, जो धर्म–सेवादार (अथवा पुरोहित–पुरोहिता) के पद और कार्य के लिए बुलाए गए हैं, अपना पवित्र आत्मा उड़ेलिए और यह वर दीजिए कि ये निरन्तर सच्चे विश्वास और पवित्र जीवन में निरन्तर बढ़ते जाएँ ताकि ये अपने सेवा–कार्य से आपकी महिमा करें और आपके चर्च के लिए ये आशीष का कारण बने; हमारे प्रभु येशु मसीह के द्वारा जो आपके और पवित्र आत्मा के साथ एक परमेश्वर हैं और अब तथा सदा–सर्वदा जीवित और राज्य करतें हैं।.........[113]

विवाह संस्कार – भारत वर्ष में मसीही विवाह को एक संस्कार माना जाता है जो केवल एक ही बार स्त्री/पुरूष के साथ पुरोहित के द्वारा सम्पन्न किया जाता हैं, क्योंकि विवाह एक संस्कार है इसलिए उसको न तो तलाक के द्वारा तोड़ा जा सकता है और न ही दुबारा तलाकशुदा स्त्री/पुरूष के साथ सम्पन्न किया जा सकता हैं।*

चर्च में विवाह के पूर्व मंगनी की प्रथा भी प्रचलित है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है। मंगनी केवल पुरोहित के द्वारा सम्पन्न की जाती है। मंगनी का उद्देश्य केवल विवाह के लिए आपसी रजामन्दी है। यह धार्मिक संस्कार नहीं है और अँगूठी के द्वारा विवाह की स्वीकृति दी और ली जाती है।

मंगनी के पश्चात् विवाह संस्कार चर्च में ही सम्पन्न होता है। विवाह संस्कार के दौरान जो विधि संपन्न की जाती है उससे यह स्पष्ट होता है कि चर्च यह विश्वास करता है कि जो बातें विवाह के सम्बन्ध में प्रभु येशु ने अपने शिष्यों को सिखाई थी उन्हीं सिद्धान्तों के अनुरूप विवाह का उद्देश्य चर्च स्वीकार करता है अर्थात् विवाह पति–पत्नी का जीवन पर्यन्त एकात्म संबन्ध है। यह संबन्ध एक ही स्त्री/पुरूष से होता है और यह दैहिक, मानसिक और आत्मिक है।

विवाह परमेश्वर के सृष्टि कार्य में मनुष्य द्वारा दिए जाने वाले सहयोग का माध्यम है और इसे हल्का अथवा स्वार्थ हेतु किया जाने वाला कृत्य नहीं माना जाता, बल्कि जैसा कि पुरोहित कहता है: प्रभु येशु की शिक्षा के अनुसार, जो स्त्री–पुरूष, पति–पत्नी के रूप में जोड़े गए हैं, उनका विवाह जीवन भर का मिलन है।

विवाह, सृष्टि में परमेश्वर के शुभ उद्देश्य का एक अंश है इसलिए यह उचित है कि कोई भी व्यक्ति विवाह को हल्का न माने, वरन् उसको आदर के योग्य समझे। अतः जो व्यक्ति विवाह करना चाहता/चाहती है, वह उतावला होकर नहीं, वरन् श्रद्धा और सोच–विचार करके एवं उस प्रेम से जो परमेश्वर का उपहार है, विवाह करे।

यह परमेश्वर की इच्छा है कि विवाह के द्वारा स्त्री और पुरूष का प्रेम उनके एक साथ बिताए गए जीवन, आपसी संगति, एक–दूसरे की सहायता तथा परस्पर देखभाल में परिपूर्ण हो। परमेश्वर की कृपा से यह प्रेम समय के साथ–साथ बढ़ता और गहरा होता जाता है। विवाहित

** अब इस नियम में भारत सरकार ने सुधार किया है। स्त्री/पुरूष अदालत में तलाक ले सकते हैं व तलाक शुदा स्त्री/पुरूष से विवाह कर सकते हैं।*

जीवन में ऐसा प्रेम स्थायी पारिवारिक जीवन की नींव है तथा मानव जाति को निरन्तर बनाए रखने और सुरक्षा एवं विश्वास के वातावरण में बच्चों का पालन–पोषण करने के लिए परमेश्वर का ठहराया हुआ तरीका है।[114]

मसीही विवाह की एक कानूनन बाध्यता यह है कि जिस स्त्री/पुरूष का विवाह होने वाला है उसकी सूचना गिरजाघर में लगभग 15 दिन पूर्व समाज को दी जाती है कि यदि किसी व्यक्ति को इस विवाह से किसी कारणवश आपत्ति है तो वह लिखित रूप में अपनी आपत्ति दर्ज करा सकता है। विवाह के पहले अनिवार्य आदेश पर पुरोहित समाज से कहता है : "जो लोग यहाँ उपस्थित हैं, यदि आप में से कोई व्यक्ति ऐसा उचित कारण जानता हैं जिस से चर्च के नियम और इस देश के कानून के अनुसार इन दोनों का विधिवत् विवाह नहीं हो सकता हैं तो वह सामने आकर अभी बताए, अन्यथा सदा–सर्वदा चुप रहे।"[115]

चर्च बाल–विवाह, बहु–विवाह, अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता नहीं देता। अन्तर्जातीय विवाह के सम्बन्ध में यह छूट दी गयी है कि जो अन्तर्जातीय विवाह अदालत में सम्पन्न हुआ है, वह पुरोहित के द्वारा वर अथवा वधू के घर में विशेष विधि के द्वारा आशीषित किया जा सकता है। इसके लिए चर्च ने विशेष आराधना विधि तैयार की है।[116]

विवाह संस्कार में निम्नलिखित प्रतिज्ञा जो पति अथवा पत्नी के द्वारा अलग–अलग की जाती है उल्लेखनीय है :

पुरूष/स्त्री अपने दाहिने हाथ में स्त्री/पुरूष का दाहिना हाथ लेकर सब उपस्थित लोगों के सामने यह वचन देते है :

मैं ....(नाम) आप ....(नाम) को अपनी विधिवत् विवाहित
पत्नी/पति स्वीकार करता/करती हूँ।
इसलिए परमेश्वर की पवित्र आज्ञा के अनुसार
आज से लेकर,
जब तक मृत्यु हमें अलग न करे,
दुःख में सुख में,
धन में और निर्धनता में,
रोग में और आरोग्य में,
आपको बनाए रखूँगा/रखूँगी।
आपसे प्रेम करूँगा/करूँगी,
आपकी सुधि लूँगा/लूँगी;
और इसका मैं,
परमेश्वर और इन गवाहों के सामने
आपको यह वचन देता/देती हूँ।[117]

अन्तिम संस्कार (शव को दफनाना) – चर्च विश्वास करता है कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है और युगान्त में जब प्रभु येशु का पुनरागमन होगा तब मसीहीजनों का भी मृतकों–उत्थान होगा, अर्थात् मृतक पुनः जीवित हो जाएंगे। वास्तव में रविवार सप्ताह का पहला दिन प्रभु येशु के पुनरूत्थान होने के उपलक्ष्य में मनाया जाता है।

मसीही समाज विश्वास करता है कि जैसे प्रभु येशु का देह धारण (अवतार) तथा दुखभोग (पेशन) निरंतर प्रक्रिया है, वैसे ही प्रभु येशु का मृतकोत्थान (रिजरेक्शन) भी सतत् होने वाली प्रक्रिया

है। प्रभु येशु ने इस मृत्यु के डंक को अपने मृतकोत्थान से तोड़ दिया और हर व्यक्ति को नया जीवन दिया। प्रभु येशु के एक शिष्य ने पवित्र बाइबिल में लिखा है, 'यदि कोई प्रभु येशु मसीह में है तो वह नयी सृष्टि है। पुरानी बातें समाप्त हो गयी हैं और अब सब कुछ नया हो गया है।'[118] यह नया मनुष्य विश्वास करता है कि प्रभु येशु ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की है। अतः उनका मृतकोत्थान उसे आज भी प्रभावित करता है। अतः उसे 'इस युग में संयम, न्याय एवं धर्मयुक्त जीवन बिताना चाहिए।'[119]

प्रभु येशु शुभ शुक्रवार को सलीब पर मारे गए थे, और तीसरे दिन जी उठे थे। वह चालीस दिन तक अपने शिष्यों को दर्शन देते रहें। यह बाइबिल की प्रमुख सच्चाई है, और इस सच्चाई पर चर्च का भवन खड़ा है। केवल एक दिन मसीहीजन प्रभु येशु के पुनरूत्थान की चर्चा करते हैं। इसलिए पुरोहित मृतक संस्कार की आराधना के दौरान बाइबिल से उन पाठों को पढ़ता है, जिनका संबन्ध पुनरूत्थान से है और वह मसीही विश्वासियों को यह आश्वासन दिलाता है कि वे सगे–सम्बन्धी की मृत्यु से दुःखी न हो, अशान्त न हो बल्कि इस बात पर विश्वास करें कि वे अपने मृतक संबन्धियों को पुनः देखेंगे। यह निम्नलिखित पाठ प्रायः हर मृत्यु संस्कार के समय पढ़ा जाता है :

प्रभु येशु ने कहा : "पुनरूत्थान और जीवन मैं हूँ ; जो कोई
मुझ पर विश्वास करता है, वह मर भी जाए तो भी जीएगा ;
और जो जीवित है तथा मुझ पर विश्वास करता है, वह कभी
नहीं मरेगा।"[120]
हमारे प्रभु येशु मसीह के पिता परमेश्वर की स्तुति हो। उसने
अपनी अपार दया से हमें नया जन्म दिया है जिससे हम प्रभु
येशु के मृतकों में से पुनरूत्थान द्वारा जीवित आशा प्राप्त करें।
हमें वह उत्तराधिकार प्राप्त हुआ है जो कभी नष्ट नहीं
होगा, जो दूषित नहीं है, और जो जीर्ण–शीर्ण नहीं होगा।
वह स्वर्ग में तुम्हारे लिए सुरक्षित हैं।[121]

प्रभु येशु के एक प्रमुख शिष्य ने इस विषय को निम्न शब्दों में स्पष्ट किया है और इसी परम्परा का पालन प्रायः प्रत्येक अन्तिम क्रिया की आराधना में किया जाता है और हर एक विश्वासी इस वचन पर विश्वास करता है :

मसीह मृतकों में से जी उठे हैं, और जो लोग सो गए हैं उनमें वह प्रथम फल है ; क्योंकि मानव द्वारा मृत्यु आई तो मानव द्वारा ही मृतकों का पुनरूत्थान हुआ। जिस प्रकार आदम में सब मनुष्य मरते हैं, उसी प्रकार मसीह में सब जीवित किए जाएंगे, पर यह प्रत्येक के अपने क्रम में होगा। प्रथम फल मसीह, तब मसीह के पुनरागमन पर उनके अपने लोग। किन्तु कोई पूछेगा, "मृतक कैसे जी उठते हैं ? और किस शरीर में आते हैं ?" ओ मूर्ख! जो कुछ तुम बोते हो, वह मरे बिना जीवित नहीं होता। तुम बोते हो, तो इस शरीर को नहीं बोते जो उत्पन्न होगा, परन्तु निरे दाने को बोते हो– यह गेहूँ का हो या किसी अन्य अनाज का, परन्तु परमेश्वर अपनी इच्छानुसार उसे शरीर प्रदान करता है– प्रत्येक बीज को उसका अपना शरीर। मृतकों का पुनरूत्थान भी इसी प्रकार होता है। शरीर नाशवान स्थिति में बोया जाता है, बल के साथ जी उठता है। शरीर प्राकृत स्थिति में बोया जाता है, अविनाशी रूप में जी उठता है। निस्तेज की स्थिति में बोया जाता है, तेजस्वी रूप में जी उठता है। दुर्बलता की स्थिति में बोया जाता है, बल के साथ जी उठता है। शरीर प्राकृतिक स्थिति में बोया जाता है, आध्यात्मिक स्थिति में जी उठता है। यह अनिवार्य है कि

नश्वर शरीर अनश्वर रूप धारण करे और मरणशील काया अमरता प्राप्त करे। जब नश्वर अनश्वरता को और मरणशील अमरता को धारण कर लेगा तब धर्मशास्त्र का यह वचन पूरा हो जाएगा– "मृत्यु विजय में विलीन हो गयी। ओ मृत्यु, कहाँ है तेरी विजय ? ओ मृत्यु, कहाँ है तेरा डंक ?" परन्तु परमेश्वर की स्तुति हो, वह हमारे प्रभु येशु मसीह द्वारा हमें मृत्यु पर विजय प्रदान करता है।[122]

मृतक संस्कार के संबन्ध में जैसे अन्य धर्मों में परम्पराएँ धार्मिक विधियाँ प्रचलन में हैं, व वैसे ही मसीही धर्म में भी प्रचलित हैं। मृतक का अन्तिम संस्कार होने के पूर्व उसे गिरजाघर में लाया जाता है और चर्च की विधि के अनुसार बाइबिल–पाठ पढ़े जाते हैं, प्रार्थनाएँ की जाती हैं। यह आराधना विधि केवल पुरोहित ही करता है। तत्पश्चात् मृतक को दफनाने के लिए उसे कब्रिस्तान लाया जाता है और वहाँ भी निश्चित बाइबिल–पाठ पढ़े जाते हैं, जिनमें निम्नलिखित पाठ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं –

प्रभु दयालु और कृपालु है:
वह विलम्ब से क्रोध करने वाला और करूणामय है।
पिता अपने बच्चों पर जैसी दया करता है
प्रभु भी अपने भक्तों पर वैसी ही दया करता है।
वह हमारी रचना जानता है;
उसे स्मरण है कि हम धूल ही हैं।
मनुष्य की आयु घास के समान है;
वह मैदान के फूल के सदृश खिलता है।
वायु उसके ऊपर से बहती है, और वह ठहर नहीं पाता:
उसका स्थान भी उसको फिर कभी नहीं पहचानता।
किन्तु प्रभु की करूणा उसके भक्तों पर युग–युगांत तक;
और उसकी धार्मिकता उनके पुत्र–पुत्रियों और पोते–पोतियों
पर बनी रहती है।[123]

आधुनिक युग में कुछ चर्चों में अब मसीही लोग भी शव को समुद्र में बहा देते हैं अथवा बिजली के यंत्र (इलेक्ट्रिक क्रिमेशन) में जला देतें हैं और उसकी राख को एकत्र कर जमीन में गाड़ देतें हैं। इसके लिए कोई विशेष प्रार्थना अथवा आराधना का विधान नहीं किया गया हैं किन्तु पुरोहित राख को भूमि में गाड़ते समय यह कहता है :

हमने अपने भाई/अपनी बहिन (नाम)............को परमेश्वर के कृपापूर्ण सरंक्षण के सुपुर्द किया है, अब हम उसकी राख को भूमि में रखते हैं – मिट्टी को मिट्टी, राख को राख, धूल को धूल। हमारी दृढ़ और निश्चित आशा है कि हमारे प्रभु येशु मसीह के द्वारा शाश्वत् जीवन के लिए इसका पुनरूत्थान होगा। उन्हीं प्रभु येशु की जो हमारे लिए मरे, गाड़े गए और फिर जी उठे, महिमा युग–युगान्त होती रहे। (आराधना पुस्तक, पृष्ठ– 451)

मृत बच्चों की अन्तिम क्रिया में जो बाइबिल पाठ पढ़े जाते हैं, वे बच्चों से संबन्धित होते हैं और धर्म विधि में कोई अन्तर नहीं होता है। बच्चों से संबन्धित यह पाठ अत्यन्त लोकप्रिय है जो पुरोहित बच्चे के शव को दफनाने अथवा आग में जलाने अथवा समुद्र में डालने के पूर्व यह कहता है : प्रभु येशु मसीह ने कहा : 'बच्चों को मेरे पास आने दो, उन्हें मना न करो, क्योंकि परमेश्वर का राज्य उन जैसे लागों का ही है।'[124] तुम्हारा स्वर्गिक पिता यह नहीं चाहता है कि इन छोटों मे से एक भी नष्ट हो।[125]

बपतिस्मा

दृढ़ीकरण
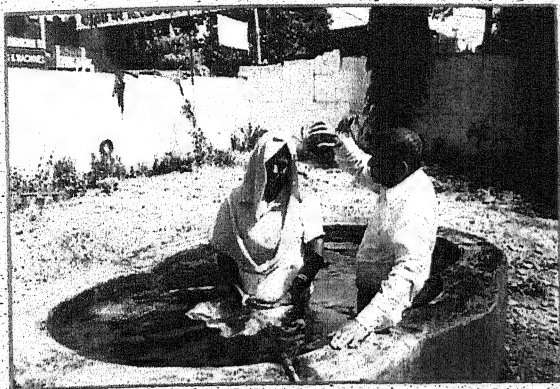
पुरोहित पद हेतु युवक-युवकों का व्रत लेना
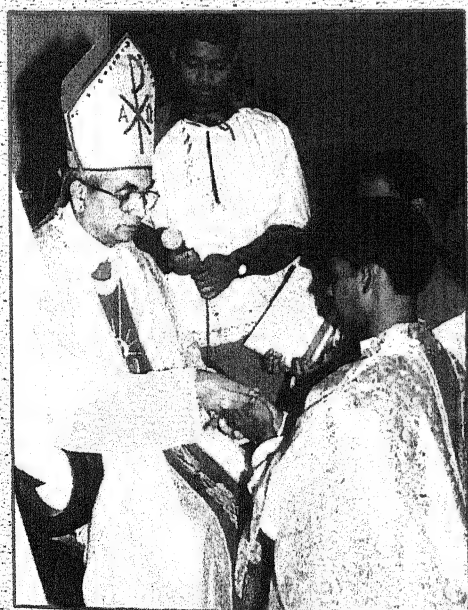
पुरोहित का अभिषेक

काथलिक सम्प्रदाय के सर्वोच्च धर्मगुरू, पोप जॉन पॉल तथा भारतीय धर्मगुरू, कार्डिनल
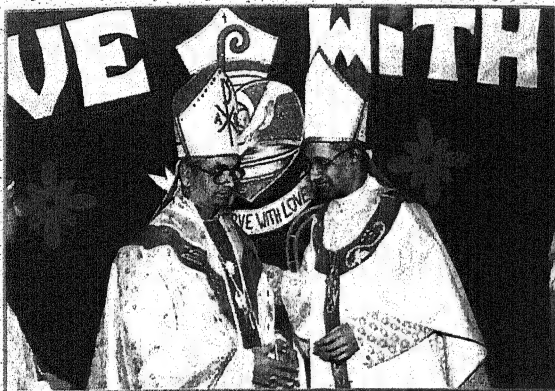
विशप का अभिषेक

प्रभु भोज का अर्पण

प्रथम परम् प्रसाद संस्कार
प्राप्त किए हुए बच्चे

मसीही विवाह संस्कार
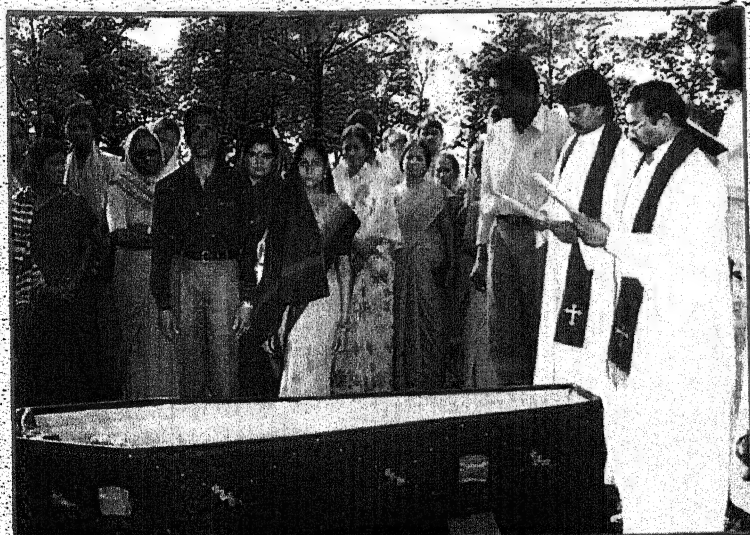
अंतिम संस्कार

हमने अपने इस बच्चे/बच्ची (नाम) .... को परमेश्वर के कृपापूर्ण संरक्षण के सुपुर्द किया है। अब हम उसके शव को भूमि में रखते हैं– मिट्टी को मिट्टी, राख को राख, धूल को धूल। हमारी दृढ़ और निश्चित आशा है कि हमारे प्रभु येशु मसीह के द्वारा शाश्वत् जीवन के लिए इसका पुनरूत्थान होगा। उन्हीं प्रभु येशु की जो हमारे लिए मरे, गाड़े गए और फिर जी उठे, महिमा युग–युगान्त होती रहे।

मसीही संस्कारों के विवरणों को लिखने के उपरान्त हम इनके महत्व एवं मसीही जीवन में इनके स्थान को निर्धारित कर सकते हैं :

1. ये संस्कार निश्चित तौर पर उतने ही पुराने हैं जितने कि चर्च। कहने का अर्थ यह है कि सम्भवतः बपतिस्मा संस्कार एवं प्रभु–भोज संस्कार, चर्च के आरम्भ से ही इनका प्रचलन हो चुका था। बपतिस्मा निश्चित तौर पर इस बात का प्रकट प्रमाण था कि जो व्यक्ति चर्च में सम्मिलित हो रहा है उसने अपना पुराना स्वभाव छोड़ दिया है और अब वह नया बन गया है। जो अब मसीही समाज के विशिष्ट भोज (प्रभु–भोज) में सम्मिलित होकर पवित्र तत्वों (रोटी, दाखरस) को ग्रहण कर सकता है जो स्वयं प्रभु येशु ख्रीस्त की आत्मिक देह एवं रक्त है।
2. हम निष्कर्ष में यह भी कह सकते हैं कि इन संस्कारों के पीछे प्रभु येशु के जीवन की घटनाएँ जुड़ी हुयी हैं, या फिर ये परम्पराएँ यहूदी समाज से मसीही समाज में ले ली गयी है : क्योंकि आरम्भिक मसीही यहूदी कौम के ही थे। यहूदी धर्मशास्त्रों में इन संस्कारों के प्राचीन रूप बाइबिल के पुराने नियम में उपलब्ध हैं, जो यहूदी कौम (जाति) का भी धर्मशास्त्र है।
3. समय के साथ इन संस्कारों में बहुत बदलाव आया है कुछ नए संस्कार जोड़े गए हैं जिनका उल्लेख हमने नहीं किया है, जैसे– रोगियों का अभ्यंजन (तेल लगाना) करना, मृतात्मा के लिए प्रार्थना (All souls day) आदि।

4– वास्तव में मसीही धर्म विश्वव्यापी धर्म होने के कारण भिन्न–भिन्न देशों के चर्चो में अपनी आवश्यकतानुसार नए–नए संस्कार गढ़ लिए हैं।

मसीही समाज के पर्व

विश्व में अनके धर्म हैं और सम्पूर्ण धर्मों में कोई–न–कोई तीज–त्यौहार सम्पन्न होते हैं। ये तीज–त्यौहार किसी महापुरूष के जन्म उसकी मृत्यु तथा अन्य ऐतिहासिक और धार्मिक घटनाओं से जुड़े हुए होते हैं। इन त्यौहारों के माध्यम से व्यक्ति धर्म से जुड़े महापुरूषों को याद करता है। उन पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है और उनसे जुड़ी घटनाओं को जीवन्त बनाए रखता है। ये तीज–त्यौहार हमें आनन्द मनाने का अवसर प्रदान करतें हैं तथा हमारी परम्पराओं और संस्कृति का संरक्षण भी करतें हैं।

पर्व से हमारा अर्थ त्यौहार नहीं है, बल्कि निश्चित काल–गणना है जो चर्च के महान ज्योतिषियों ने समय–समय पर काल–गणना करके प्रभु येशु के जीवन में घटित घटनाओं की स्मृति में निश्चित की है। और जिन्हें अब तक विश्व के तमाम चर्च मान्यता देते हैं। अतः चर्च में

पंचांग* (लेक्शनरी) का प्रचलन है। इसी पंचांग के अनुसार मसीही समाज निम्नलिखित पर्वों को मनाता है :

1. आगमन का रविवार (*Advent Sunday*) – प्रभु येशु के जन्म (25 दिसम्बर) के पूर्व उनके जन्म की तैयारी में चार रविवारों पर *आगमन का पर्व* दिसम्बर माह में मनाया जाता है। इस अवधि में मसीही समाज प्रभु येशु के जन्म के अभिप्राय को स्मरण करता है और विश्वास करता है कि प्रभु येशु सारे संसार का न्याय करने पुनः आएंगे और अपने राज्य की स्थापना करेंगे।

> *"परमेश्वर की आत्मा मुझ पर है,*
> *उसने मुझको इस सेवा के लिए अभिषिक्त किया है,*
> *कि मैं गरीबों को शुभ सन्देश सुनाऊँ।*
> *परमेश्वर ने मुझे इस कार्य के लिए भेजा है*
> *कि मैं बन्दियों को मुक्ति का और*
> *अन्धों को दृष्टि पाने का सन्देश दूँ : मैं दलितों को स्वतन्त्रता प्रदान करूँ,*
> *तथा परमेश्वर की प्रसन्नता के वर्ष का प्रचार करूँ।"*[126]

2. प्रभु येशु का जन्म (क्रिसमस का पर्व अर्थात् ख्रीस्त जयन्ती) – यह पर्व प्रभु येशु के जन्म के उपलक्ष्य में मनाया जाता है किन्तु उनकी जन्मतिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। उनका जन्म दिन 25 दिसम्बर से 6 जनवरी तक बड़े धूम–धाम से मनाया जाता है। कुछ लोग प्रभु येशु मसीह का जन्म 25 दिसम्बर मानते हैं और कुछ लोग 6 जनवरी मानते हैं। यथा –

"पश्चिमी चर्च में तीन मिस्सा संपन्न किए जाते हैं: 24 की मध्य रात्रि को, 25–उषाकाल को और 25–दिन को। ये तीन खिस्त के तीन जन्म के प्रतीक हैं : अनादिकाल से पिता परमेश्वर की गोद में उत्पन्न, कुँवारी मरियम से जन्म और विश्वासी के ह्रदय में रहस्यात्मक रूप में जन्म।

यह बड़े आनन्द का पर्व है। प्रभु येशु के जन्म पर स्वर्गदूत ने यह संदेश दिया था : मैं तुम्हें बड़े आनन्द का सुसमाचार सुनाता हूँ, जो सब लोगों के लिए होगा, कि आज दाऊद के नगर में तुम्हारे लिए एक उद्धारकर्त्ता अर्थात् मसीह प्रभु ने जन्म लिया है।"।[127] इस आनन्द भावना और उसी समय मनाए जाने वाले एक मसीही त्यौहार के कारण इस पर्व पर कुछ त्यौहारात्मक बातें भी आज मनाई जाती हैं : जैसे क्रिसमस (केरल) गीत, क्रिसमस फादर (संता क्लौस), क्रिसमस कार्ड्स, क्रिसमस भेंट आदि।

3. एपिफनी (प्रकाशन पर्व) – यह त्यौहार भी प्रभु येशु मसीह का जन्मदिन है तथा यह 6 जनवरी को मनाया जाता है। धर्मग्रन्थों में इसका साक्ष्य इस प्रकार उपलब्ध होता हैं :

यह पर्व खिस्त के जन्म और बपतिस्मा के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। चौथी शताब्दी से निश्चित रूप से मनाया जाता है। पश्चिमी चर्च में इस दिन को पूर्व से ज्योतिषियों के आने और खिस्त की आराधना करने का स्मृति दिवस माना जाता है। इंग्लैण्ड की चर्च में इस पर्व पर राजकीय चेपल में सम्राट सोना, लोबान और गंधरस की भेंट चढ़ाता है।[128]

---

* *इस पंचाग में सम्पूर्ण वर्ष के रविवारों की गणना तीनों महान पर्वों– प्रभु येशु का जन्म, प्रभु येशु का पुनरूत्थान तथा पवित्र आत्मा का अवतरण– से की गयी है। जैसे प्रभु येशु के जन्म दिवस के पूर्व चार रविवार, प्रभु येशु के जन्म दिवस के पश्चात् तीन तथा आठ रविवारों के मध्य (यह ईस्टर की तिथि पर निर्भर करता है)।*

प्रभु येशु के पुनरूत्थान – पर्व के पूर्व नौ रविवार।

प्रभु येशु के पुनरूत्थान – पर्व के पश्चात् सात रविवार, सातवाँ रविवार, पवित्र आत्मा का अवतरण– पर्व होगा।

पवित्र आत्मा के अवतरण – पर्व के पश्चात् तेईस तथा अठ्ठाईस रविवारों के मध्य (यह ईस्टर की तिथि पर निर्भर करेगा)।

4. ***उपवास या संयम काल (Lent, चालीसा पर्व)*** – ईस्टर पर्व के पूर्व चालीस दिन का काल उपवास काल (Lent) कहलाता है। इस अवधि में प्रत्येक मसीहीजन उपवास रखने का प्रयास करता है और मांस, मछली, अण्डा आदि नहीं खाए जाते, शादी–ब्याह नहीं होता। वास्तव में इस अवधि में उन दिनों का स्मरण किया जाता है जो प्रभु येशु ने अपनी धर्म सेवा आरम्भ करने के पूर्व निर्जन क्षेत्र में चालीस दिन तक उपवास करते हुए मनन, चिन्तन किया था। अतः मसीहीजन इन चालीस दिनों में उपवास रखते हुए मनन, चिन्तन करते है।

उपवास काल का आरम्भ पंचांग के अनुसार प्रत्येक वर्ष बुधवार से आरम्भ होता है। जिसको अंग्रेजी में Ash Wednesday या राख का बुधवार कहते हैं। यह प्रथा मूल रूप से यहूदी समाज में प्रचलित थी और पश्चाताप करने वाला व्यक्ति राख के ढेर में बैठता था। चर्च ने इस प्रथा को अपना लिया।

5. ***पवित्र सप्ताह (पैंशन वीक, दुःख भोग सप्ताह)*** – ईस्टर के पूर्व रविवार से लेकर ईस्टर तक पवित्र सप्ताह कहलाता है। प्रभु येशु के पार्थिव जीवन के अन्तिम सप्ताह की महत्वपूर्ण घटनाएँ बड़े सार्थक रूप में स्मरण की जाती हैं। इन दिनों में मसीह के दुःख, भोग और क्रूस चढ़ाए जाने का स्मरण किया जाता है। इनमें रविवार, गुरूवार और शुक्रवार अत्यधिक महत्व के माने जाते हैं।

6. ***खजूर का रविवार (Palm Sunday)*** – यह पर्व प्रभु येशु मसीह के विजय उल्लास के साथ यरूशलेम नगर में प्रवेश करने के उपलक्ष्य में मनाया जाता है क्योंकि प्रभु येशु की क्रांतिकारी शिक्षाओं के कारण यहूदी धर्म गुरूओं ने प्रभु येशु का यरूशलेम प्रवेश निषिद्ध कर दिया था और यह कहा था कि यदि वे यरूशलेम में प्रवेश करेंगे तो उनकी हत्या कर दी जाएगी और बाद में ऐसा ही हुआ। यह वास्तव में बच्चों का पर्व है। बच्चे हाथ में खजूर की डालियों के साथ गिरजाघर में हर्षोल्लास के साथ प्रवेश करते हैं। छोटे–छोटे खजूर की पत्तियों के क्रूस बनाए जाते हैं और वे आराधकों को दिए जाते हैं। कहीं–कहीं जलूस निकाले जातें हैं। इस दिन मसीही लोग प्रभु येशु को राजा के रूप में स्वागत करते हैं।

7. ***पुण्य गुरूवार (Maundy Thursday)*** – पुण्य गुरूवार को मौन्डी गुरूवार भी कहते हैं। मौन्डी शब्द लातीनी शब्द मेनडेटम से बना है जिसका अर्थ 'आज्ञा' है। इस गुरूवार को इसलिए मौन्डी गुरूवार कहा जाता है कि उस दिन प्रभु येशु ने प्रभु–भोज की स्थापना की और आदेश दिया कि मेरी स्मृति में यह किया करो और चेलों के पैर धोकर यह आज्ञा दी कि तुम भी ऐसा ही करो।[129] चौथी शताब्दी से यह पर्व मनाया जाता है। इस दिन चर्च में बहुधा सांयकाल की आराधना में प्रभु–भोज की विधि मनाई जाती हैं। जिसमें हर मसीहीजन सम्मिलित होने का प्रयास करता है।

8. ***शुभ शुक्रवार (Good Friday)*** – यह पर्व प्रभु येशु मसीह के बलिदान की स्मृति में मनाया जाता है। यह उपवास, संयम और प्रायश्चित का दिन है। कुछ चर्चों में प्रभु–भोज का विशेष दिन माना जाता है। अधिकांश चर्चों में दिन को 12 बजे से 3 बजे तक आराधना होती है और क्रूस पर से कहे गए खिस्त के सात वचनों पर मनन किया जाता है। मसीही लोग विश्वास करते हैं कि शुभ शुक्रवार के दिन प्रभु ने मनुष्य जाति के पापों की क्षमा के लिए अपने प्राण देकर परमेश्वर के दंड से उन्हें बचा लिया है।

9. ***ईस्टर (Easter)*** – यह पर्व प्रभु येशु के पुनः जीवित होने के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। यह पर्व मसीहियों का महानतम् और प्राचीनतम् पर्व है। इस दिन प्रभु येशु मसीह दुबारा जीवित हुए थे। इसका महत्व इसलिए है कि खिस्त के जी उठने से शिष्यों में आनन्द, उत्साह और नवजीवन आया और वे पवित्रात्मा से सामर्थ्य पाकर सारे जगत को खिस्त का सुसमाचार देने के कटिबद्ध हो

गए। प्राचीन चर्च में बपतिस्मार्थी रात्रि भर उपवास के पश्चात् इस दिन बपतिस्मा और प्रभु–भोज में सम्मिलित थे। इस दिन कई चर्चों में प्रातः तीन बजे से भव्य जुलूस निकाले जाते हैं और गिरजाघर में जाकर ऊषाकाल में आराधना करते हैं। 21 मार्च को अथवा उसके बाद जो पूर्णिमा होती है उसके बाद वाला रविवार ईस्टर दिवस होता है। यदि वह पूर्णिमा रविवार को पड़ जाए तो उसके बाद वाला रविवार ईस्टर दिवस होता हैं। सन् 1977 में कुछ चर्चों ने यह निश्चय किया है कि वे अप्रैल माह के दूसरे रविवार को ईस्टर दिवस मानेंगे।

"मसीही व्यक्ति सामान्यतः ईस्टर पर्व इसलिए मनाता है कि उसके धर्म के संस्थापक प्रभु येशु सलीब पर चढ़ाए जाने के पश्चात् तथा उनकी मृत्यु के उपरान्त कबर में दफनाए जाने के बाद तीसरे दिन अर्थात् इस दिन पुनः जीवित हो गए थे। मसीही धर्म की यह प्रमुख आधारशिला है। इस आधारशिला को हटा देने पर मसीही धर्म का भवन एकदम धराशायी हो जाता है। अतः मसीही व्यक्ति बपतिस्मा के अवसर पर अथवा दृढ़ीकरण संस्कार के अवसर पर यह विश्वास वचन बोलता है कि " मैं विश्वास करता हूँ कि प्रभु येशु सलीब पर चढ़ाए गए थे, वह सलीब पर मर गए थे, वह कबर में दफनाए गए थे, किन्तु तीसरे दिन वे पुनः जीवित हो गए।"

चर्च के आरम्भिक वर्षों में गॉस्पल अर्थात् शुभ सन्देश का यही अर्थ था अर्थात् प्रभु येशु पुनः जीवित हो गए हैं और प्रचारक इसी बात को अपने धर्म सन्देश में बड़ी प्रमुखता से प्रचार करते थे। यद्यपि प्रभु येशु के समय में सलीब पर चढ़ाया जाना सबसे घृणित, अपमानजनक सजा मानी जाती थी। रोमन और यहूदी दोनों कौमों में यह विचार सामान्य था कि जिस व्यक्ति को सलीबी मौत की सजा सुनाई गयी है, वह अधम अपराधी है। मसीही धर्म के आरम्भिक धर्म प्रचारकों ने, जो प्रभु येशु के प्रमुख शिष्य थे जैसे – प्रेरित पतरस, योहन, मत्ती और बाद में संत पॉल और सन्त लूका ने इसी विश्वास को यहूदी धर्मशास्त्रों के सन्दर्भ में पुनः व्याख्यातिक किया कि प्रभु येशु ने धर्मशास्त्र के प्राचीन भविष्यवक्ताओं की भविष्यवाणियों को पूरा करने के लिए सलीबी मौत स्वयं अपनी इच्छा से स्वीकार की थी और धर्मशास्त्र के अनुसार वह तीसरे दिन पुनः जीवित हो गए थे। धर्मशास्त्र में प्रभु येशु के विषय में यहूदी नबियों (जैसे यशायाह) ने यह भविष्यवाणी की थी – "प्रभु येशु ने बारह प्रेरितों को अपने साथ लिया और उनसे कहा, देखो हम यरूशलेम को जा रहे हैं। जो बातें नबियों (यशायाह) ने मानव पुत्र के विषय में लिखी हैं, वे सब यहाँ पूर्ण होंगी। लोग उसे अन्य जातियों के हाथ सौंप देंगे, वे उसका उपहास और अपमान करेंगे, उस पर थूकेंगे और कोड़ों से पीटने के पश्चात् उसे मार डालेंगे पर वह तीसरे दिन जी उठेगा। (लूका 18:31–33)

आज के युग में केवल धर्मशास्त्र के आधार पर हम प्रभु येशु के पुनरुत्थान को प्रमाणिक कर सकते हैं किन्तु किसी विज्ञान के आधार पर नहीं। अतः समय–समय पर विद्वानों ने प्रभु येशु के पुनरुत्थान को सत्य ठहराने के लिए भिन्न–भिन्न समय पर धार्मिक सिद्धान्त विकसित किए हैं जिन्हें सच्चा मसीही एकदम नकार देता है। अनेक सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त यह भी है कि प्रभु येशु सलीब पर मरे नहीं थे बल्कि बेहोश हो गए थे और उनको दफनाने के बाद उनके शिष्य उनके शरीर को कबर में से निकाल ले गए थे। इस घटना का उल्लेख बाइबिल में भी हुआ है "कई पहरेदार नगर में गए और उन्होंने महापुरोहितों को सब घटनाएँ सुना दीं। महापुरोहितों ने धर्मवृद्धों को एकत्र कर मन्त्रणा की और सैनिकों को बहुत धन देकर कहा, लोगों से कहना कि जब हम रात को सोए हुए थे तब प्रभु येशु के शिष्य आए और उसे चुरा कर ले गए। यदि राज्यपाल के कान तक बात पहुँचेगी तो हम उन्हें समझा देंगे और तुम्हारे लिए कोई चिन्ता की बात न होगी। पहरेदारों ने धन ले लिया और वैसा ही किया जैसा उन्हें सिखाया गया था। (मत्ती 28:11–15)

कुछ भी हो वर्तमान युग का मसीही जन यह विश्वास करता है कि प्रभु येशु ने दुनिया के तमाम पापों की क्षमा के लिए अपने आप को बलि चढ़ाया था और जैसे वह मृतकों में से पुनर्जीवित हुए थे वैसे ही हर व्यक्ति जो प्रभु येशु पर विश्वास करता है वह भी मृत्यु के उपरान्त पुनः जीवित होगा। यह पुनरुत्थान युगान्त में होगा जब प्रभु येशु स्वर्ग से पुनः पृथ्वी पर आएंगे। अतः मृत्यु जीवन का अन्त नहीं बल्कि एक प्रकार का विराम है और व्यक्ति कुछ समय के लिए सो जाता है। शायद यही कारण है कि मसीही परिवार में किसी सदस्य की मृत्यु पर मसीही जन शोक नहीं करता बल्कि अन्तिम क्रिया के दौरान उसको दफनाते समय यह विश्वास दोहराया जाता है :

मसीह मृतकों में से जी उठे हैं, और जो लोग सो गए हैं उनमें वह प्रथम फल हैं ; क्योंकि मानव द्वारा मृत्यु आई तो मानव द्वारा ही मृतकों का पुनरुत्थान हुआ। जिस प्रकार आदम में सब मनुष्य मरते हैं, उसी प्रकार मसीह में सब जीवित किए जाएंगे। (आराधना पुस्तक, पृष्ठ– 444)

शायद हम में से बहुत कम व्यक्ति यह जानते हैं कि सप्ताह का पहला दिन रविवार प्रभु येशु के पुनरुत्थान की स्मृति में निर्धारित किया गया है और जब–जब कोई मसीही व्यक्ति रविवार के दिन चर्च में, आराधना के लिए जाता है तो वह प्रभु येशु के पुनरुत्थान को स्मरण करता है। रविवार को बाइबिल में प्रभुवार कहा गया है।"

10. स्वर्गारोहण (Ascension Thursday) – यह त्यौहार प्रभु येशु मसीह के स्वर्ग पर जाने की स्मृति में मनाया जाता है। इसका आयोजन ईस्टर के 40वें दिन किया जाता है। इसे लोग गुरूवार को मनाते हैं। यह पर्व चौथी शताब्दी से मनाया जाता रहा है। इस दिन लोग अपने नगर या ग्राम के किसी पहाड़ी पर जाते हैं और प्रभु येशु मसीह की प्रार्थना करते हैं। परम्परानुसार प्रभु येशु अपने चेलों को जैतून पर्वत पर ले गए और इनके देखते–देखते वह ऊपर उठा लिए गए थे अर्थात् पर्वत में जाकर अन्तर्ध्यान हो गए जब हम स्वर्गारोहण शब्द का प्रयोग करतें हैं तो उससे नया नियम में केवल प्रभु येशु खिस्त का पुनरूत्थान के उपरान्त 40 दिन तक अपने शिष्यों को दिखाई देने के पश्चात् स्वर्ग पर चले जाने का ही बोध होता है।[130]

11. पिन्तेकुस्त (White Sunday, 50वां दिन) – मुख्य रूप से यह पर्व यहूदियों का पर्व है। यह पर्व फसह के पर्व के 50वें दिन बाद मनाया जाता था। यहूदियों का मानना था कि इस दिन हजरत मूसा ने यहूदियों को धर्म व्यवस्था दी थी। किन्तु मसीही लोग पवित्रात्मा के दिए जाने के लिए इस पर्व को मनाते हैं। इसे चर्च का जन्म दिवस भी कहते हैं।[131]

12. त्रिएक रविवार (Trinity Sunday) – पिन्तेकुस्त के बाद वाला रविवार अर्थात् ईस्टर के बाद आठवाँ रविवार त्रिएक रविवार कहलाता है। इस दिन 'त्रिएक परमेश्वर'* पर विशेष मनन–चिन्तन और उसकी आराधना होती है।[132] इन विशेष पर्वों के अतिरिक्त वर्ष भर के सब रविवार भी विश्राम वार, विशेष आराधना और समर्पण के दिन मनाते हैं, जैसे विभिन्न प्रेरितों के दिन, सब संतो का दिन, अस्पताल दिवस, विश्व प्रार्थना दिवस, एकता दिवस आदि।

मसीही धर्म में त्यौहार सामान्य उत्सव नहीं हैं। सभी दिवस धार्मिक पर्व हैं, खिस्त के जीवन और कार्य और उनकी चर्च से संबन्धित हैं। सभी में आराधकों का प्रभु के प्रति समर्पण और जीवन का नवीकरण प्रधान तत्व हैं।

चर्च विश्वास करता है कि उपरोक्त पर्वो को मनाने से धर्म सुदृढ़ होता है, धर्म का महत्व बढ़ता है तथा धार्मिक एकता की वृद्धि होती है, धर्म से जुड़ी संस्कृति अमर हो जाती है और हमारी संतति पीढ़ी दर पीढ़ी उसका अनुकरण करती रहती है। भारत वर्ष में संत थॉमस और मालाबारी मसीही सर्वाधिक प्राचीन हैं। सन् 1510 के लगभग गोवा में रोमन काथलिक मिशनरीज का आगमन हुआ। इन्होंने अपना कार्य क्षेत्र मद्रास तक बढ़ाया। सन् 1706 में प्रोटेस्टेंट मिशन भारत वर्ष आया

** त्रिएक परमेश्वर का अर्थ– मसीही विश्वास के अनुसार परमेश्वर के तीन रूप हैं– पिता, पुत्र और पवित्रात्मा।*
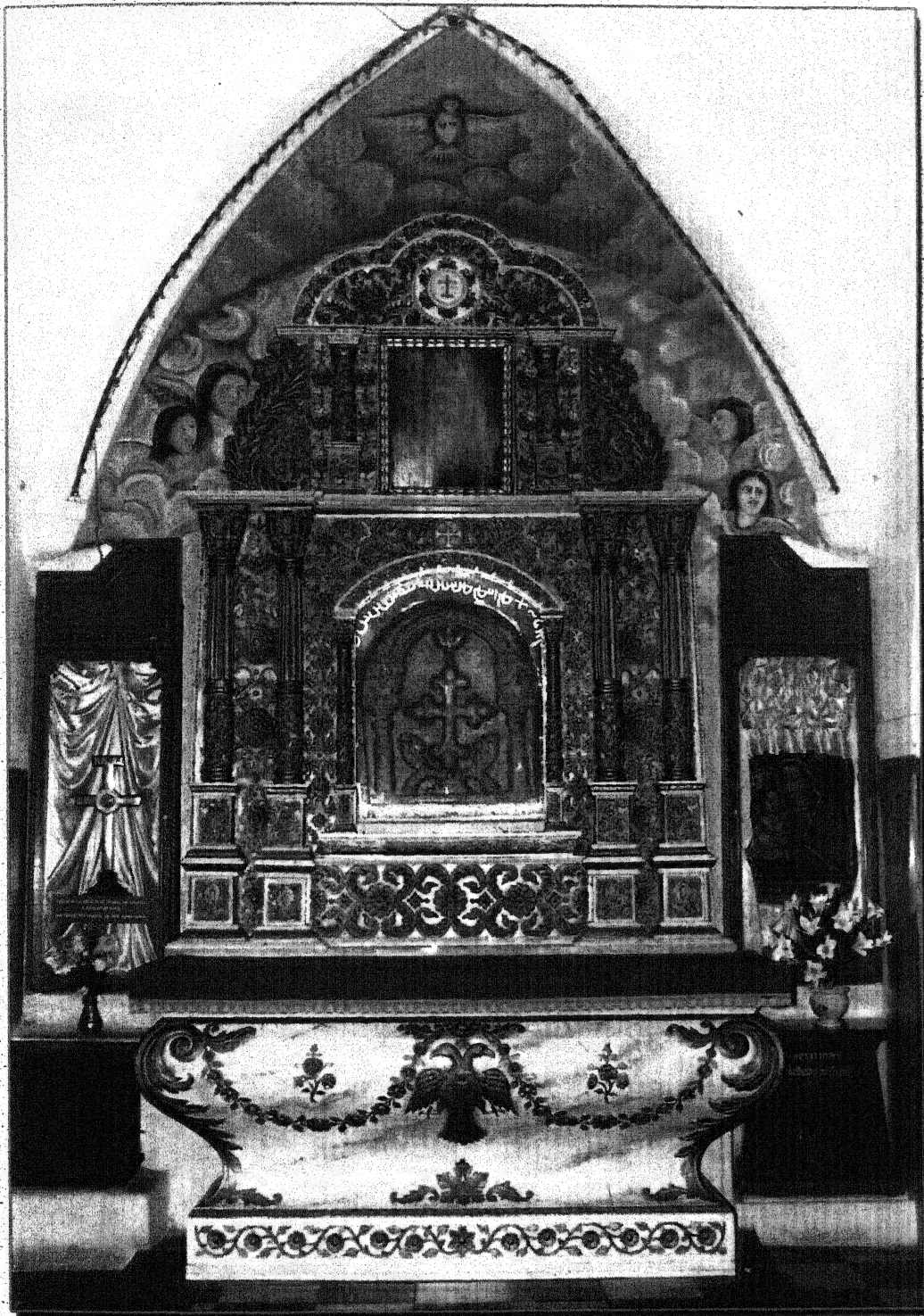
संत थॉमस गिरजाघर, माइलापुर चेन्नई के ऐतिहासिक गिरजाघर के भीतरी पुरातत्व अवशेषों का छायाचित्र। माना जाता है कि इसी स्थल पर भारत के प्रथम प्रचारक संत थॉमस शहीद हुए थे।

तथा इन्होंने भी दक्षिण भारत में अपना कार्य क्षेत्र बनाया। सन् 1761 में सिरामपुर मिशन की स्थापना हुयी। इन्होंने शिक्षा–संस्थाएँ खोलीं, चर्चों का निर्माण कराया, सन् 1834 में अन्य विदेशी प्रोटेस्टेंट मिशन भारत आए। इन्होंने अनेक स्थलों पर अस्पताल खोले, कई स्थानों पर मसीही आश्रम भी खोले।

अतः ये पर्व मसीहियों द्वारा चर्च के आरम्भ से ही मनाए जाते रहें हैं। यद्यपि पश्चिमी देशों में अब इनका प्रचलन धीरे–धीरे घटता जा रहा है और अनेक पर्वों के स्थान पर केवल 2 या 3 पर्व अब मनाए जाते हैं अर्थात् प्रभु येशु का जन्म (क्रिसमस), शुभ शुक्रवार (गुड फ्राइडे) एवं ईस्टर पर्व। भारतवर्ष के चर्चों में भी कमोवेश यही स्थिति है। हाँ इस कथन का अपवाद है काथलिक चर्च। यह चर्च परम्परावादी होने के कारण इन पर्वों को मनाना अनिवार्य मानता है। यहाँ तक कि 365 दिनों में शायद ही कोई ऐसा दिन होगा जब कोई पर्व न मनाया जाए।

मसीही धर्म का आगमन

आधुनिक भारतीय धर्म एवं संस्कृति पर ईसाई धर्म–प्रचारकों का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। "भारत के सुदूर दक्षिणी भागों में बहुत पहले से सीरियाई मसीहियों की भारी संख्या में उपस्थिति इस बात की द्योतिका है कि इस देश में सबसे पहले आने वाले मसीही मिशनरी यूरोप के नहीं, सीरिया के थे। जो भी हो, राजा गोंडोफारस (लगभग 28 से 48 ई0 गोंडोफारस (गुदफर) का ऐतिहासिक प्रलेख) से संत टामस का सम्बन्ध यह संकेत करता है कि मसीही धर्म प्रचारकों का एक मिशन सम्भवतः प्रथम ईसवीं के दौरान भारत आया था। इतना तो निश्चित रूप से ज्ञात है कि मसीही मिशनरियों ने धर्म प्रचार का अपना काम भारत में 16वीं शताब्दी के दौरान संत फ्रांसिस जैवियर के जमाने से शुरू किया। संत जैवियर का नाम आज भी भारत के अनेक स्कूल–कॉलेजों से सम्बद्ध है। पुर्तगालियों के भारत आने और गोवा में जम जाने के बाद मसीही पादरियों ने भारतीयों का बलात् धर्म–परिवर्तन शुरू किया। आरम्भिक मसीही मिशन रोमन काथलिक चर्च द्वारा प्रवर्तित थे और वे छिटपुट रूप से भारत आए। लेकिन 19वीं शताब्दी में एंग्लिकन प्रोटेस्टेंट चर्च के द्वारा मसीही धर्म प्रचार का कार्य सुव्यवस्थित ढंग से आरम्भ हुआ। इस काल में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने मसीही मिशनरियों को अपने राज्य के भीतर रहने की इजाजत नहीं दी, क्योंकि उसे भय था कि कहीं भारतीयों में उनके विरुद्ध उत्तेजना न उत्पन्न हो जाए फलस्वरूप विलियम कैरी सरीखे प्रथम ब्रिटिश प्रोटेस्टेंट मिशनरियों को कम्पनी के क्षेत्राधिकार के बाहर श्रीरामपुर में रहना पड़ा, अथवा कुछ मिशनरियों को कम्पनी से सम्बद्ध पादरियों के रूप में सेवा करनी पड़ी, जैसा कि डेविड ब्राउन और हेनरी मार्टिन ने किया। सन् 1813 ई0 में मसीही पादरियों पर से रोक हटा ली गयी और कुछ ही वर्षों के अन्दर इंग्लैण्ड, जर्मनी और अमेरिका से आने वाले विभिन्न मसीही मिशन भारत में स्थापित हो गए और उन्होंने भारतीयों में मसीही धर्म का प्रचार शुरू कर दिया। ये मसीही मिशन अपने को बहुत अरसे तक विशुद्ध धर्म प्रचार तक ही सीमित न रख सके। उन्होंने शैक्षणिक और लोकोपकारी कार्यों में भी दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी और भारत के बड़े–बड़े नगरों में कॉलेजों की स्थापना की और उनका संचालन किया। इस मामले में एक स्काटिश प्रेसबिटेरियन मिशनरी अलेक्जेंडर डफ अग्रणी था। उसने 1830 ई0 में कलकत्ता में जनरल असेम्बली इंस्टीट्यूशन की स्थापना की और उसके बाद कोलकाता से लेकर बंगाल के बाहर तक कई और मिशनरी स्कूल–कॉलेज खोले। अंग्रेजी सीखने के उद्देश्य से भारतीय युवक इन कॉलेजों की ओर भारी संख्या में आकर्षित हुए। ऐसे युवक बाद में पश्चिमी ज्ञान और मान्यताओं को कट्टर हिन्दू और मुस्लिम समाज तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण माध्यम बने। मसीही मिशन और मिशनरियों ने बौद्धिक स्तर पर तो भारतीयों के

मस्तिष्क को प्रभावित किया ही, साथ ही अपने लोकोपकारी कार्यो (चिकित्सा सम्बन्धी विशेष) से भी यूरोपीय व मसीही सिद्धान्तों और आदर्शों का प्रचार–प्रसार किया। इस प्रकार मसीही मिशनरियों ने आधुनिक भारत के विकास पर गहरा प्रभाव डाला। मिशनरियों ने प्रायः बिना पर्याप्त जानकारी के भारतीय धर्म की अनुचित आलोचना की, जिससे कुछ कटुता उत्पन्न हो गयी, लेकिन उन्होंने भारत के सामाजिक उत्थान में भी निःसंदिग्ध रूप से महत्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने भारतीय नारी की दयनीय, असम्मानजनक स्थिति, सती–प्रथा, बाल–हत्या, बाल–विवाह, बहु–विवाह और जातिवाद जैसी कुरीतियों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। इन सामाजिक व्याधियों को समाप्त करने में मसीही मिशनरियों का बहुत बड़ा योगदान है।'[133]

बुन्देलखण्ड में आवागमन के संसाधनों की कमी होने के कारण यहाँ कोई भी बाहरी व्यक्ति आसानी से प्रवेश नहीं कर सकता था। इस्लाम धर्मावलम्बी भी यहाँ उस समय आए जब उन्होंने अपनी सत्ता दिल्ली में स्थापित कर ली। जब औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल सत्ता कमजोर हो गयी, उस समय ईस्ट–इण्डिया कम्पनी को यह अवसर उपलब्ध हुआ कि वह अपना विस्तार भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में करे। इसी उद्‌देश्य को लेकर उसने अपने विस्तार की योजना बनायी। ईस्ट इण्डिया के सभी सदस्य और पदाधिकारी मसीही धर्म के अनुयायी थे। ऐतिहासिक साक्ष्य में उनका विस्तार उपलब्ध होता है।[134]

जिस समय अंग्रेजों का आगमन यहाँ हुआ, उस समय बुन्देलखण्ड की स्थिति अत्यन्त सोचनीय थी। अलीबहादुर और हिम्मत बहादुर बुन्देलखण्ड की विजय की योजना बना रहे थे और उसी समय सन् 1778 में अंग्रेजों ने इस क्षेत्र पर अधिकार करने की योजना बनाई। इस क्षेत्र की केन्द्रीय स्थिति, सामरिक महत्व आदि कारणों से ब्रिटिश शासक प्रारम्भ से ही यहाँ अपनी शक्ति स्थापित करना चाहते थे। बुन्देलखण्ड के दक्षिण में गोंड लोगों का राज्य था। गोंड राज्य धीरे–धीरे छोटा होता जाता था और उस समय गोंड राजा और मराठों से भी झगड़े हो रहे थे।[135] बुन्देलखण्ड के उत्तर में छत्रसाल के उत्तराधिकारी तथा ओरछा और दतिया राज्य के बुन्देले शासक भी आपस में झगड़ रहे थे। उनका यह संघर्ष उत्तराधिकार को लेकर था। इन संघर्षों का लाभ अंग्रेजों ने उठाया तथा उन्होंने कालपी में आक्रमण करने का विचार किया। वारेन हेस्टिंग कालपी को मध्य भारत में प्रवेश का मुख्य द्वार मानता था। फलतः 1778 में यहाँ अधिकार कर लिया गया। इसके पूर्व मुसलमान और मराठे भी अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए कालपी पर अधिकार कर चुके थे।

कलकत्ता से जो सेना मध्य भारत के लिए रवाना हुयी, उसका नेतृत्व 'कर्नल वेली' कर रहे थे। उन्होंने गंगाधर गोविन्द से मध्य भारत होते हुए आगे बढ़ने की अनुमति माँगी। गंगाधर गोविन्द ने यह अनुमति प्रदान नहीं की इसलिए उन्होंने सन् 1778 में कालपी पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। मराठों ने किसी प्रकार का धैर्य नहीं छोड़ा और अंग्रेजों को कालपी से आगे न बढ़ने दिया। चार माह तक अंग्रेज कालपी में रुके और आगे नहीं बढ़ सके।[136]

1789 में अलीबहादुर और हिम्मत बहादुर ने इस क्षेत्र पर विजय अभियान प्रारम्भ किया, जिसमें विजित प्रदेशों में बाँदा सहित कुछ प्रदेश अलीबहादुर को तथा शेष हिम्मत बहादुर को मिलना, निश्चित हुआ था।[137] दोनों की लगभग 40 हजार सेनाओं ने बाँदा, चरखारी, बिजावर, पन्ना और छतरपुर पर अधिकार किया। जिस समय यह लोग कालिंजर पर घेरा डाले हुए थे, उसी समय 28 अगस्त सन् 1802 में अली बहादुर की मृत्यु हो गयी। अतः घेरा समाप्त करना पड़ा। अलीबहादुर की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी शमशेर बहादुर हुआ।

एक बार पुनः ग्वालियर के सिन्धिया ने बुन्देलखण्ड पर मराठा साम्राज्य स्थापना के लिए अभियान प्रारंभ किया लेकिन इसी बीच हिम्मत बहादुर ने अंग्रेजों से हाथ मिला लिया, जिससे मराठाओं का प्रयास सफल नहीं हुआ। हिम्मत बहादुर ने अंग्रेजों की ओर से लड़ते हुए अंग्रेजों की सत्ता बुन्देलखण्ड में स्थापित कराने का अथक प्रयास किया। इसके बदले जमुना के दाहिने किनारे की जाग़ीर जिसकी वार्षिक आय 20 लाख रूपये थी हिम्मत बहादुर को दे दी गयी।[138]

हिम्मत बहादुर की इस धोखेपूर्ण नीति से इस क्षेत्र की स्वतन्त्रता को गहरा धक्का लगा और सन् 1802—1803 में बेसिन की सन्धि से बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का आधिपत्य प्रारम्भ हुआ। सन् 1803 में कर्नल बेली बुन्देलखण्ड आया जिसने यहाँ का शासन प्रारम्भ किया।[139] हिम्मत बहादुर को यमुना के आस—पास के जो क्षेत्र मिले थे, वे उसकी मृत्यु के बाद अंग्रेजी शासन का अंग बन गए और उन्हीं क्षेत्रों से बाँदा, हमीरपुर और जालौन जिलों का गठन हुआ।

इस समय जब बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का आगमन हुआ उस समय झाँसी के आस—पास का क्षेत्र मराठों के हाथ में था तथा शासन का कार्य—भार गंगाधर गोविन्द के हाथ में था। अंग्रेजों ने विन्ध्य क्षेत्र को पार करने के लिए कालिंजर के किलेदार कायम जी चौबे को अपनी ओर मिलाया। कायम जी चौबे ने कर्नल गॉडर्ड के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना को भेलसा और होशंगाबाद की ओर जाने दिया। अंग्रेजी सेना सिंधिया से युद्ध करती हुयी दक्षिण की ओर चली गयी। बुन्देलखण्ड से अंग्रेजों के निकलने से राज्य में अव्यवस्था फैली। कालपी में मराठों का दुबारा अधिकार हुआ। अंग्रेजों ने कायम जी चौबे को बेनी हुजूर के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया किन्तु जब दोनों के मध्य युद्ध हुआ, उस समय अंग्रेजों ने कायम जी चौबे को कोई सहयोग नहीं दिया।

अंग्रेजी सेना को कालपी से गुजरते समय बुन्देलखण्ड की परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान हो गया था। उन्होंने यह समझ लिया था कि आपसी फूट का फायदा उठाकर बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन स्थापित किया जा सकता है।[140]

जब मराठों और अंग्रेजों में सन्धि हुयी उस समय बुन्देलखण्ड में जहाँ मराठों का अधिकार था वहाँ अंग्रेजी सेना और अंग्रेजों के प्रतिनिधि रहने लगे। धीरे—धीरे अंग्रेजों ने अपनी शक्ति का विस्तार किया तथा उन्होंने देशी नरेशों से भी अपनी सन्धियाँ की और वे उनके प्रशासन में दखल देने लगे।

<u>मसीही धर्म का बुन्देलखण्ड में आगमन</u>

सबसे पहले मसीही धर्म अंग्रेजों के माध्यम से बुन्देलखण्ड में आया था। इस समय ये लोग अपनी धर्मास्था को व्यक्त करने के लिए वे बाइबिल का पाठ करते थे, अपने त्यौहारों को मनाते थे, धर्म आस्था को अपनी तरह से व्यक्त करते थे। उन्होंने सर्वप्रथम जबलपुर, सागर, झाँसी, नवगाँव छावनी, ग्वालियर, दमोह और बाँदा में अपने मिशन केन्द्र बनाए। इन केन्द्रों में अंग्रेजी छावनियाँ स्थापित की गयीं, जहाँ अंग्रेज सैनिक और उनके परिवार के लोग निवास किया करते थे। उन्होंने इन क्षेत्रों को अपने धार्मिक कृत्य करने के लिए चर्चो का निर्माण कराया, जिनमें प्रति रविवार और मसीही त्यौहारों में विशेष धर्मोत्सव आयोजित होते थे।

बुन्देलखण्ड के लोगों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए सर्वप्रथम अंग्रेजों ने यहाँ के निवासियों की भाषा सीखी और अपनी भाषा से यहाँ के निवासियों को परिचित कराया। जो व्यक्ति उनके आधीन थे और उनके यहाँ सेवाकार्य करते थे, वे लोग अंग्रेजों को और उनकी भाषा को थोड़ा—थोड़ा समझने लगे थे और कुछ—कुछ बोलने भी लगे थे। इसी बीच अंग्रेजी भाषा सीखने के लिए शब्दकोश तैयार किया गया और अधीनस्थ लोगों को अंग्रेजी लिखना और पढ़ना सिखाया गया

ताकि प्रशासनिक कार्यों में बुन्देलखण्ड के निवासियों का सहयोग लिया जा सके और उनकी समस्याओं को समझा जा सके। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का नियन्त्रण इस समय कलकत्ता से होता था तथा कम्पनी के गवर्नर यहीं से सब स्थानों पर नियन्त्रण रखते थे। सन् 1860 में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ी गयी क्रांति का समापन हुआ। इस क्रांति का शुभारम्भ सन् 1857 से हुआ था। इस क्रांति को कुचला गया हजारों की संख्या में स्वतन्त्रता संग्राम सैनिकों का वध किया गया। अन्त में महारानी विक्टोरिया के घोषणा–पत्र के पश्चात् यहाँ शान्ति स्थापित हुयी।

शिक्षा में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अनेक स्थलों पर आधुनिक शिक्षा का शुभारम्भ किया, अनेक स्थलों पर स्कूल खोलें। इन स्कूलों में मसीही धर्म प्रचार का भी ध्यान रखा गया। यद्यपि इन मिशनरियों का कार्यक्षेत्र प्रारम्भ में बुन्देलखण्ड नहीं था फिर भी बुन्देलखण्ड इनसे प्रभावित हुआ। प्रसिद्ध मिशनरी डॉ0 डी0ओ0 ऐलेन ने लिखा है – "शिक्षा–संस्थाओं ने मिशनरियों को भारतीयों से सम्पर्क स्थापित करने और उन्हें अपने धार्मिक सिद्धान्तों से अवगत करने का अवसर प्रदान किया।"

इस अवसर से पूर्ण लाभ उठाने के लिए मिशनरियों ने भारत के विभिन्न स्थानों में शिक्षा–संस्थाओं की स्थापना की और उनमें पाश्चात्य ढंग पर शिक्षा प्रदान करने का कार्य आरम्भ किया। यही कारण है कि मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रवर्तक माना जाता है। "मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा–पद्धति के प्रवर्तक होने का सम्मान प्राप्त है"।[141]

शिक्षा के प्रचार–प्रसार में डच मिशनरी, डेन मिशनरी, फ्रांसीसी मिशनरी, पुर्तगाली मिशनरी, अंग्रेज मिशनरी ने महत्वपूर्ण भूमिका अपनायी। इसके अतिरिक्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी चार्ल्सग्रान्ट ने सन् 1792 में एक महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित की, उसने अपनी पुस्तक में लिखा है – "हिन्दू इसलिए गलती करते हैं, क्योंकि उनमें अज्ञानता हैं और उनको उनकी गलतियाँ उचित प्रकार से कभी बताई नहीं गयीं हैं।"

ग्रांट ने अपनी पुस्तिका में हिन्दुओं के अतिरिक्त मुसलमानों की अज्ञानता का भी चित्र अंकित किया। उसने इन दोनों जातियों की अज्ञानता का निवारण करने के लिए अग्रांकित पंचमुखी योजना प्रस्तुत की : 1– भारत में विद्यालयों की स्थापना, 2– विद्यालयों में अंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षा, 3– विद्यालयों में अंग्रेजी भाषा और साहित्य की निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था, 4– पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान का प्रसार और 5– मसीही–धर्म का व्यापक प्रचार। इस योजना को प्रस्तुत करने के पश्चात् ग्रान्ट ने लिखाः "इस योजना की सफलता के लिए केवल सरकार के हार्दिक संरक्षण की आवश्यकता है। यदि सरकार इसकी सफलता चाहती है, तो यह अवश्य सफल हो सकती है"।[142]

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपनी नीति के अन्तर्गत कई स्थानों में स्कूल और कॉलेज खोलें। मसीही–धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए सुविधाएँ प्रदान कीं। सन् 1854 में वुड ने शिक्षा नीति में परिवर्तन करने के लिए एक शिक्षा नीति निर्धारित की। इसके अन्तर्गत प्राथमिक विद्यालय, मिडिल स्कूल, हाईस्कूल, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी तथा विद्यालयों को अनुदान भी दिया गया। सन् 1882 में हण्टर कमीशन की नियुक्ति हुयी, जिसे यह अधिकार दिया गया कि वह शिक्षा नीति निर्धारित करे। उसने अपनी एक शिक्षा नीति बनायी जो निष्पक्ष और अच्छी थी।

इधर बुन्देलखण्ड में कम्पनी सरकार के स्थान पर महारानी विक्टोरिया के नेतृत्व में अंग्रेज सरकार की सत्ता स्थापित हो गयी, उस समय मिशनरियों को मसीही धर्म–प्रचार की व्यापक सुविधाएँ उपलब्ध हो गयीं। मसीही धर्म प्रचारक और मिशनरीज के लोग जन सामान्य के सम्पर्क में आए और उन्होंने बुन्देलखण्ड से जुड़े प्रत्येक जनपद में अपने धर्म का प्रचार बड़ी तत्परता और

लगन से किया। जिनसे यहाँ के निवासियों को अनेक लाभ हुए।

बुन्देलखण्ड में अंग्रेज राज्य स्थापित हो जाने के पश्चात् मशीनीकरण का शुभारम्भ हुआ। अनेक स्थानों पर ऐसे कारखाने खोले गए जिनमें उत्पादन मशीनों के माध्यम से किया जाता था। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में डाक–तार व्यवस्था लागू की गयी जिससे पत्र भेजने और पत्र प्राप्त करने की सुविधा मिली। स्थान–स्थान पर पक्की सड़कों का निर्माण हुआ। सड़कों में पुल बनाए गए जिनके माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने की सुविधा हुयी।

यहाँ के देशी नरेशों, राजा–महाराजाओं पर अंग्रेजी सभ्यता का जादू डाला गया। यहाँ के कई नरेशों ने अंग्रेजी जीवन शैली अपनायी तथा उनका मसीही धर्म से लगाव भी बढ़ा। भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों की तरह बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन की व्यवस्था सन् 1947 तक कायम रही, सन् 1947 में भारतवर्ष अंग्रेजी सत्ता से मुक्त हो गया। दासता से मुक्त होने के बाद भी अंग्रेजी सभ्यता का बहुत अधिक प्रभाव बुन्देलखण्ड क्षेत्र पर पड़ा। कुछ अर्थों में हम अंग्रेजों के ऋणीं भी हैं। प्रो० मून ने अंग्रेजी शासन की अत्यन्त तारीफ की है।[143] इसी प्रकार श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कुछ अर्थों में अंग्रेजी शासन की प्रशंसा की है।[144]

बुन्देलखण्ड में मसीहियों के आगमन के पश्चात् यहाँ के नागरिकों में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। अंग्रेजों की पक्षपात् पूर्णनीति और दुर्व्यवहार के कारण सन् 1857 की क्रांति का उदय हुआ। भले ही यहाँ के लोग उस क्रांति में सफल न हुए हो, किन्तु यहाँ के लोगों ने राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत होकर एकता दिखायी।

अंग्रेजों के कारण ही यहाँ तानाशाह और राजतन्त्र के विरोध में लोकतन्त्र शासन की परिकल्पना की गयी। सामन्तों, जमींदारों, जागीरदारों का विरोध किया गया। अंग्रेजों के पहले यहाँ कानून और विधान का शासन नहीं था। देशी नरेश जैसा चाहते थे वैसा शासन चलाते थे। अंग्रेजों ने यहाँ पर कानूनों का निर्माण किया और दण्ड व्यवस्था कानूनों के अनुसार की जाने लगी। दीवानी संहिता, फौजदारी संहिता, गवाही संहिता, भारतीय दण्ड संहिता, भारतीय करार अधिनियम, साझा अधिनियम सबके लिए समान थे। अंग्रेजों ने इन कानूनों को निष्पक्षता से लागू किया, अदालतों की स्थापना हुयी।

अंग्रेजी सरकार के दबाव के कारण मसीही धर्म का प्रचार–प्रसार यहाँ प्रारम्भ किया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में मसीह धर्म का प्रचार नहीं करना चाहती थी परन्तु अंग्रेजी सरकार का दबाव पड़ने के कारण सन् 1813 में मिशनरी भारत आए उनके साथ कलकत्ते में एक पादरी भी आया मिशनरियों ने हिन्दुस्तान में मसीही धर्म का प्रचार किया और लाखों भारतीयों को मसीही बनाया।[145] इसके परिणाम स्वरूप बुन्देलखण्ड निवासी अंग्रेजी सभ्यता से प्रभावित हुए। उन्होंने अंग्रेजों की तरह कपड़े पहनना, उन्हीं की तरह बोलना, सोचना और नए तरीके से काम करना सीखा।

बाँदा जनपद में 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मसीही धर्म का आगमन हुआ। कर्नल लेस्ली की सेना, कलकत्ता से बंबई प्रस्थान से योरोपियन पादरी, सैनिक, व्यापारियों का आगमन जनपद में प्रारम्भ हो गया, कालिंजर के समीप हीरों की खदानों पर कुदृष्टि थी, सागर–इलाहाबाद मार्ग यहाँ से गुजरते थे, कपास के अत्यधिक क्षेत्र थे। नवाब अलीबहादुर, हिम्मत बहादुर के साथ कर्नल मिसिल बैक की सेना बाँदा, कालिंजर, चित्रकूट गयी। सन् 1803 में कैप्टेन बेली, एजेण्ट टू गवर्नर–जनरल होकर बाँदा आए ; वे ऊर्दू, फारसी जानते थे। नवाब शमशेर बहादुर व जुल्फिकार अली अंग्रेजी संस्कृति के भक्त थे, मसीही पादरियों को विशेषाधिकार प्राप्त थे। मेन साहब सन् 1856

में कलेक्टर व मजिस्ट्रेट थे उनके नाम से स्कूल व सराय प्रसिद्ध हैं। नगर में दो काथलिक चर्च सेंटपाल और नारवेजियन मिशन के अन्तर्गत हैं, एक विद्यालय भी संचालित है, एक–एक चर्च कर्वी और मानिकपुर में है, नरैनी, बबेरू तथा पाठा क्षेत्र में प्रचार–प्रसार जनोपयोगी कार्यक्रम द्वारा हैं।[146]

बाँदा जनपद में में मसीही अंग्रेजों का आगमन सन् 1803 में अलीबहादुर प्रथम के पुत्र शमशेर बहादुर द्वितीय के समय में हुआ। तभी से यहाँ मसीही धर्म का प्रचार–प्रसार शुरू हुआ।[147]

बाँदा जनपद में अंग्रेजों का अधिकार सन् 1812 तक पूरी तरह हो गया था। बाँदा के नवाब, कर्वी के पेशवा और कालिंजर के जागीरदार कायम जी चौबे अंग्रेजों के अधिकार में हो गए थे तथा इन लोगों ने अनेक स्थलों में अपनी छोटी–छोटी बस्तियाँ बना ली थीं। यहाँ मसीहियों की अपनी पृथक पहचान थी।[148] बाँदा जनपद में यदि जनसंख्या के आंकड़े धर्मानुसार देखें जाए तो मसीहियों की जनसंख्या बहुत कम हैं।[149]

<u>Followers</u> (बाँदा जनपद)

Religion	Total			Males		Females	
	Persons	Males	Females	Rural	Urban	Rural	Urban
Hinduism	11,12,224	5,95,344	5,16,880	5,50,630	44,714	4,80,823	36,057
Islam	68,803	35,956	32,847	27,561	8,395	25,195	7,652
Christianity	***202***	***114***	***88***	-	***114***	-	***88***
Sikhism	210	99	111	18	81	24	87
Iainism	497	192	305	-	192	8	297
Buddhism	133	129	4	-	129	-	4
OtherReligion and persuasions	146	87	59	-	87	-	59
Total	11,82,215	6,31,921	5,50,294	5,78,209	53,712	5,06,050	44,244

हमीरपुर जनपद में मसीहियों का आगमन[150] सन् 1802 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी और मराठों के बीच में जो सन्धि हुयी थीं, उसके अन्तर्गत हुआ।[151] हमीरपुर जनपद में अंग्रेज मसीहियों का स्वतन्त्र राज्य स्थापित होने के पश्चात् उनकी गतिविधियाँ बढ़ी और यहाँ यह धर्म अस्तित्व में आया। हमीरपुर जनपद में मसीहियों की जनसंख्या बाँदा जनपद से अधिक है।[152]

<u>Religion And Caste</u> (1971 – हमीरपुर जनपद)

Religion	Total	Males	Females
Hinduism	9,21,257	4,89,619	4,31,638
Islam	65,604	35,804	29,800
Sikhism	728	358	370
Christianity	***401***	***211***	***190***
Iainism	216	115	101
Buddhism	9	8	1
Total	**9,88,215**	**5,26,115**	**4,62,100**

जालौन जनपद में भी मसीही धर्मावलम्बियों का अस्तित्व रहा है। सन् 1776 की पुरन्धर सन्धि के अनुसार कालपी अंग्रेज मसीहियों के प्रभाव में आ-गया था।[153]

Lesile was appointed to command this force. on 26th February 1778 Hastings wrote to Bombay, "For the purpose of granting you the most effectual support in our power. We have assembled a force near Kalpi with orders to march by the most practicabele route to Bombay...............5"[154]

जालौन जनपद के शासक इस पक्ष में नहीं रहे कि अंग्रेज सेना यहाँ से बम्बई (मुम्बई) की ओर रवाना हो। मराठों ने इन्हें रोकने का प्रयत्न भी किया जिससे अंग्रेजी सेना को काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा किन्तु बाद में सेना के नायक गॉडर्ड को इसमें सफलता मिली। कालान्तर में मसीही धर्मावलम्बी रहने लगे। जनसंख्या के आधार पर मसीहियों का विवरण इस प्रकार है :[155]

Religion And Caste *(1971 – जालौन जनपद)*

	Hindu	Muslim	Jain	Buddhist	Sikh	Christain
District	7,44,275	66,745	152	1,433	711	***174***
Rural	6,61,365	38,711	81	1,416	3	***90***
Urban	82,910	28,034	71	17	708	***84***

उस समय जालौन जनपद में 174 मसीही (94 पुरूष, 80 महिलाएं) सन् 1971 में थीं। उनका संबन्ध रोमन काथलिक अथवा प्रोटेस्टेंट से था। इनमें से अधिकांश सरकारी सेवाओं में थे।[156]

झाँसी जनपद में अंग्रेज मसीहियों का आगमन दिसम्बर सन् 1803 में हुआ। दिसम्बर 1803 में पिण्डारी नायक अमीर खान टीकमगढ़ आया, जहाँ वह ठहरा। यहाँ उसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकार जमाना था। 'अहमती' जो अंग्रेजों की ओर से बाँदा का प्रतिनिधि था वह एरच की ओर भागा। यह क्षेत्र मोठ परगना में था। उसके साथ अनियमित सेना की टुकड़ी थी, जिनका संबन्ध झाँसी और दतिया राज्य से था। इनमें 12 हजार गोसाइयों की सेना भी शामिल थी।

6 फरवरी 1804 में अंग्रेजी सेनाओं ने सुरक्षात्मक दृष्टि से यहाँ प्रवेश किया। इस समय शिवराव भाऊ ने उन्हें अपने नियन्त्रण में रखकर सुरक्षा का वचन दिया कि वे पूना दरबार में उपस्थिति देंगे और उन्होंने इस बात की प्रतिज्ञा भी की कि जब तक वे चाहेंगे तब तक उन्हें संरक्षण प्रदान किया जाएगा और वे प्रतिवर्ष अपनी हाजिरी देने पूना जाएंगे। जो सूबेदार उनके नियन्त्रण में होगा उसे किसी प्रकार का संरक्षण प्रदान नहीं किया जाएगा, चाहे वह कोई क्यों न हो। शत्रुता के समय उनसे यह समझौता किया गया कि उनकी सेनाएँ अंग्रेज सेनाओं का साथ देंगी, चाहे वह पड़ोसी क्यों न हो।[157] सन् 1804 से लेकर अंग्रेज मसीही बराबर सन् 1860 तक और उसके बाद देश आज़ाद होने तक बराबर बने रहे। झाँसी जनपद में निवास करने वाले मसीही धर्मावलम्बियों की स्थिति इस प्रकार है। यह स्थिति 1961 की जनसंख्या के अनुसार है :[158]

Religion And Caste *(1971 – झाँसी जनपद)*

	Hindu	Muslim	Jain	Sikh	Christain	Buddhist
District	10,17,415	48,242	12,235	5,012	***4,331***	125
Rural	8,04,911	15,635	7,179	75	***507***	2
Urban	2,12,504	32,607	5,056	4,937	***3,824***	123

यहाँ पर चर्च मिशन सोसाइटी की स्थापना सन् 1858 में हुयी तथा अमेरिका का प्रेसबिटेरियन चर्च स्थापित हुआ। तथा सुधार के लिए Episcopal मिशन झाँसी में 1886 में स्थापित हुआ। सेण्ट जूड्स श्राइन ने सन् 1947 में एक अन्य संस्था स्थापित की। इसी प्रकार सन् 1950 में ललितपुर में 'डॉन बेस्को मिशन' की स्थापना हुयी। ये दोनों संस्थाएँ रोमन काथलिक चर्च के अन्तर्गत थीं। इनका उद्देश्य बाइबिल में वर्णित कथाओं का प्रचार–प्रसार करना था। इसके अतिरिक्त इन संस्थाओं ने चिकित्सा और शिक्षा के क्षेत्र में काफी कार्य किया। झाँसी जनपद में इनका अत्यन्त महत्व है।[159] झाँसी में निवास करने वाले मसीही सम्प्रदाय के लोग उत्तरी बुन्देलखण्ड में सर्वाधिक हैं और सबसे अधिक सक्रिय हैं। उन्होंने अपनी क्रिया–कलापों से अपनी पृथक पहचान बनायीं।

जबलपुर एवं सागर सम्भाग में भी जबलपुर, दमोह, सागर, छतरपुर और टीकमगढ़ में भी मसीही धर्मावलम्बियों का अस्तित्व हैं। यहाँ पर अंग्रेजों का आगमन सन् 1804 में हुआ था तथा सन् 1811 में बाइबिल सोसायटी की स्थापना हुयी। इसकी स्थापना 'मेरी जोन्स' नामक छः वर्ष की बालिका ने की थी। यह सोसायटी आज भी सक्रिय है। इसके अतिरिक्त दमोह, सागर, टीकमगढ़, छतरपुर, नवगाँव छावनी आदि में भी मसीहियों का अस्तित्व व्यापक रूप से है।

अमेरिकन मिशन की स्थापना भारतवर्ष में आज से 100 वर्ष पूर्व हुयी थी तथा बुन्देलखण्ड में भी उन्होंने अपना कार्य प्रारम्भ किया था। बुन्देलखण्ड में मसीही धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए डेलिया फिस्टलर ने पर्याप्त श्रम किया और बुन्देलखण्ड के लोगों से सम्पर्क स्थापित किया तदोपरान्त अपने अनुभवों को लिखा – "मेरी अन्तरात्मा में एक मूक आनन्द का उदय हुआ, जो अद्वितीय था, जो किसी महती आत्मा को मेरे साथ जोड़ता था।" यह बात डेलिया फिस्टलर ने अपने बारह वर्ष के निवास के बाद कही। हमें इस प्रकार का ऐतिहासिक साक्ष्य अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। एक मायने में शान्तप्रिय संघर्षशील, कठिनाई सहन करने वाला व्यक्ति जो परमात्मा पर विश्वास करता था,[160] उसका यह मानना था कि मसीही धर्म प्रचारकों को बुन्देलखण्ड के विनम्र निवासियों के साथ वर्तमान समय में अच्छा व्यवहार करना चाहिए। डेलिया ने अपनी बाद की रिपोर्ट में यह लिखा है कि मैदान साफ हैं परन्तु उसे साफ करने वाले श्रमिक बहुत कम हैं।"[161]

मसीही धर्मानुलम्बियों की अन्य सम्भागों की जनसंख्या[162]

जबलपुर सम्भाग – मसीही जनसंख्या तालिका

जनपदों के नाम	क्षेत्रफल किमी0 में	कुल जनसंख्या (1981)	कुल जनसंख्या (प्रतिशत)	मसीहियों की जनसंख्या (1981)
जबलपुर	0,164	21,92,934	4.21%	22,822
सिवनी	8,752	8,09,502	1.55%	1,077
मण्डला	13,257	10,36,134	1.99%	5,652
नरसिंहपुर	5,138	6,49,701	1.25%	338
बालाघाट	9,245	11,47,719	2.20%	2,902
छिंदवाड़ा	11,824	12,32,754	2.36%	3,678
मुरैना (चम्बल	11,586	13,01,254	2.49%	86
भिंड संभाग)	4,467	9,69,988	1.86%	57
होशंगाबाद	10,016	10,03,291	1.92%	3,563

सागर सम्भाग

जनपदों के नाम	क्षेत्रफल किमी0 में	कुल जनसंख्या (1981)	कुल जनसंख्या (प्रतिशत)	मसीहियों की जनसंख्या (1981)
सागर	10,246	13,21,163	2.36%	3,334
दमोह	7,301	7,21,107	1.38%	693
टीकमगढ़	5,047	7,36,512	1.41%	125
छतरपुर	8,757	8,85,843	1.69	570
पन्ना	7,122	5,39,864	1.03	203

ग्वालियर सम्भाग

जनपदों के नाम	क्षेत्रफल किमी0 में	कुल जनसंख्या (1981)	कुल जनसंख्या (प्रतिशत)	मसीहियों की जनसंख्या (1981)
ग्वालियर	6,213	11,11,145	2.13%	1517
गुना	10,070	9,97,025	1.91%	258
शिवपुरी	10,324	8,65,548	1.66%	125
दतिया	2,039	3,11,640	0.59%	92

मसीही धर्म उन लोगों ने अपनाया जिनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति बहुत कमजोर थी तथा जिनका शोषण अनेक शताब्दियों से दबंगों और सवर्णों द्वारा किया जाता था। उनके साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार एवं छूआ–छूत का व्यवहार किया जाता था। कहीं–कहीं सार्वजनिक रूप से उनका अपमान भी किया जाता था। ज्यादातर मसीही धर्मावलम्बी वे लोग हैं जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़ी जाति के हैं।

मसीही धर्मावलम्बियों के बुन्देलखण्ड में कार्य

जो लोग मसीही बने अथवा जो लोग बाहर से आकर यहाँ धर्म सेवा के नाम पर मसीही धर्म के प्रचार में लगे रहे उन्होंने यहाँ अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए जो निम्नलिखित हैं :

गिरजाघरों अथवा चर्चों की स्थापना – मसीही धर्मावलम्बियों ने प्रभु येशु मसीह पर आस्था व्यक्त करने के लिए तथा पूजा और आराधना की दृष्टि से सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में चर्च अथवा गिरजाघरों की स्थापना प्रारम्भ की। इन चर्चो का निर्माण सन् 1804 के बाद किया गया। इनमें से अनेक चर्च विध्वंस हो चुके हैं और कुछ का पुनः निर्माण किया गया है। इनमें से कुछ का परिचय इस प्रकार हैं – बाँदा जनपद का सेण्ट जार्जेस चर्च सर्वाधिक पुराना है। इसका निर्माण सन् 1835 में हुआ था। यह मिलिट्री में रहने वाले मसीहियों के लिए था। दूसरा चर्च सेण्ट पॉल चर्च है, जिसे लाल चर्च के नाम से भी पुकारा जाता है। इसका निर्माण सन् 1911 में हुआ था यह आम जनता के लिए था। कर्वी, नवगाँव छावनी में भी अत्यन्त प्राचीन चर्च हैं। अत्तर्रा में आर्नेजॉन्सन (जन्म 06–06–1982) ने सन् 1953 में नारबीजियन स्वतंत्र मिशन का निर्माण कराया था। सन् 1973–74 में इसका नाम बदलकर बेथिल चर्च एसोसिएशन पड़ गया।

जबलपुर के सेण्ट पीटर एण्ड पॉल गिरजाघर को सन् 1840 में काथलिक मिशनरियों ने बनवाया था। आरम्भ में आयरलैण्ड के मसीही पुरोहित फादर मरफी ने एक छोटा सा प्रार्थना गृह

बनाया था। जहाँ समस्त उपासक प्रभु की प्रार्थना के लिए एकत्रित होते थे। सन् 1850 में पटना के विकार एपोस्टोलिक जब यहाँ आए तो उन्होंने इसे यहाँ के सैन्यदल को समर्पित कर दिया। सन् 1857 की क्रांति के समय तो यहाँ सेना की कई बड़ी–बड़ी टुकड़ियाँ रहा करती थीं। सन् 1857 में फादर थेवनेट, मिलिट्री चैपलिन नियुक्त होकर जबलपुर आए थे। सन् 1858 में फादर थेवनेट ने फौजी अधिकारियों से कुछ जमीन लेकर एक लघु प्रार्थना गृह 22 जून 1858 में वर्तमान कथीड्रल कम्पाउण्ड में स्थापना की थी। सितम्बर 1870 में नए चर्च के निर्माण की नींव इसी स्थल पर डाली गयी। फादर थेवनेट ने सन् 1871 में भव्य गिरजाघर बनवाया। 5 जुलाई 1954 में जबलपुर को महामहिम पोप द्वारा डायसीस (धर्म प्रदेश) का दर्जा प्राप्त हुआ। जबलपुर डायसीस में जबलपुर, मण्डला, नरसिंहपुर, दमोह जिले आते हैं। तब से सेण्ट पीटर एण्ड पॉल कथीड्रल महागिरजाघर कहा जाने लगा। सन् 1873 में इसमें शिक्षण कक्षाएँ प्रारम्भ हुयीं। इन्हीं शिक्षण कक्षाओं से सेंट अलायसिस स्कूल का शुभारम्भ हुआ, जो आज नगर का एक प्रतिष्ठित विद्यालय है।[163] 22 मई 1997 को आए विनाशकारी भूकंप ने सेण्ट पीटर एण्ड पॉल महागिरजाघर को भी नहीं बक्शा। सम्पूर्ण चर्च पूर्ण रूप से धराशायी हो गया, टूट–फूट मरम्मत योग्य नहीं रह गया। मध्य प्रदेश शासन ने भूकम्प से क्षतिग्रस्त धार्मिक स्थलों के सहायता के अन्तर्गत इस महागिरजाघर को 5 लाख रूपए की राशि दी। जिसका पुनः निर्माण सन् 1999 में किया गया था। इस गिरजाघर के निर्माण की आधार शिला दिनांक 11–04–1999 को बिशप थियोफिन ओ0 प्रेम और सहधर्माध्यक्ष जेरॉल्ड अल्मेडा के कर कमलों द्वारा रखी गयी। इस गिरजाघर का डिजाइन प्रसिद्ध आर्कीटेक्ट और इंजीनियर फा0ए0 डेलपोर्ट (येशु समाजीय रांची) के द्वारा किया गया है। इस गिरजाघर को बनने में लगभग 2 वर्ष लगे। इस गिरजाघर के निर्माण करने वाले कान्ट्रेक्टर हरजीत सिंह ओबेराय और मक्खन सिंह ओबेराय (ओबराय कन्स्ट्रक्शन) हैं।

क्राइस्ट चर्च कैथीड्रल गिरजाघर 160 वर्ष पुराना है। जनवरी 1841 में जब भारत, ईस्ट इण्डीज और आस्ट्रेलिया के बिशप राइट रेव. विल्सन कलकत्ता से जबलपुर आए तभी उन्होंने इस कैथीड्रल की नींव रखी थी। चर्च का निर्माण कार्य अत्यन्त तीव्रगति से चला और तीन वर्षों में ही यह खूबसूरत आराधनालय बनकर तैयार हो गया और जबलपुर जिले के लिए प्रथम चेपलेन की नियुक्ति 2 जनवरी 1844 को हुयी। रेवरेन्ड एफ0ए0 डासन इस पद का कार्यभार सम्भालने 26 फरवरी 1844 को आए और डासन इस चर्च के पहले पादरी हुए। उपलब्ध दस्तावेजों के अनुसार तब चर्च की मुख्य इमारत के निर्माण में मात्र ढाई हजार रूपए का खर्च आया था। इस कैथीड्रल में जो पहला प्रभु–भोज दिया गया उसके लिए एक सौ दो रूपये आठ आना खर्च किया गया था, जिसकी व्यवस्था कलकत्ता के श्री0एल0एम0 लेटरी ने की थी। इस चर्च में पहला विवाह 14 मार्च 1847 को ड्रमर टूबेरी तथा एलिया एटेमसन के बीच हुआ। चर्च में पहला बपतिस्मा 20 मार्च 1847 को तत्कालीन ब्रिटिश फौज में लेफ्टीनेंट के ओहदे पर पदस्थ सिडोन्स के पुत्र का हुआ। पुत्र प्राप्ति तथा इसी तरह के अवसरों पर की जाने वाली पहली धन्यवाद प्रार्थना श्रीमती मेनटोने ने भारत की आजादी के ठीक एक सौ वर्ष पहले 15 अगस्त 1847 को की थी। चर्च रजिस्टर के अनुसार यहाँ के सदस्य मसीहियों में पहली मृत्यु के रूप में 'एड कैली' के बच्चे का नाम दर्ज है। नवम्बर 1902 में भारत के आर्च बिशप राइट रेव. डॉ0 कोपलस्टोन जबलपुर आए और 15 नवम्बर 1902 में उन्होंने यहाँ दृढ़ीकरण संस्कार किया। सन् 1903 में क्राइस्ट चर्च को नागपुर एंग्लिकन डायसिस के प्रमुख आराधनालय (कैथीड्रल) के रूप में मान्यता मिलीं। इस चर्च के इतिहास में एक अन्य महत्वपूर्ण घटना 1970 में तब घटी, जब उत्तर भारत की कलीसिया (सी0एन0आई0) की स्थापना हुई। इसी

वर्ष जबलपुर डायसिस (धर्म प्रान्त) की स्थापना भी हुयी, जिसके अन्तर्गत सिवनी, नरसिंहपुर, मण्डला, बालाघाट और दमोह आते हैं।

चर्च ऑफ नार्थ इण्डिया द्वारा संचालित यह कैथीड्रल चर्च 160 वर्ष पुराना अपने आप में एक इतिहास बन गया है। वह संभवत् प्रदेश का प्राचीनतम् मसीही आराधनालय तो है ही, इसका आकार–प्रकार अंदर का फर्नीचर आदि अभी भी वैसा है जैसा सन् 1844 में निर्माण हुआ था। किनारे पर एक छोटे से चैपल के निर्माण के अलावा इस कैथीड्रल के आकार में जरा सा भी परिवर्तन नहीं किया गया हैं। एक बार चोरी हो जाने के कारण इसके दरवाजों पर लोहे के दोहरे दरवाजे अवश्य लगा दिए गए हैं। यह कैथीड्रल आज भी उतना ही अद्भुत और सम्मोहक दिखता हैं जितना बनते समय दिखता रहा होगा।[164]

जबलपुर में निम्नलिखित चर्च मसीही धर्म के संवर्धन में लगे हुए हैं –

1. क्राइस्ट कैथीड्रल चर्च (1844),
2. सेण्ट पीटर एण्ड पॉल कैथीड्रल चर्च (1870),
3. इंगलिश मैथोडिस्ट चर्च (1875),
4. सेण्ट लूक चर्च (1882),
5. होली ट्रिनिटि चर्च (1938),
6. हवाबाग मेथोडिस्ट चर्च (1906),
7. सिटी मेथोडिस्ट चर्च (1908),
8. सेण्ट पॉल चर्च (1917),
9. सेण्ट जॉर्ज आर्थोडॉक्स चर्च (1918),
10. बर्गी मेथोडिस्ट चर्च (1928),
11. सेण्ट एण्डरिव मारथोमा चर्च (1942),
12. फुल गॉस्पल चर्च (1951),
13. प्रार्थना सदन चर्च (1955),
14. सेण्ट थॉमस चर्च (1956),
15. तेलगू बेपटिस्ट चर्च (1959),
16. असेम्बली ऑफ गॉड चर्च (1960),
17. इण्डियन पेन्टी कॉस्टल चर्च (1969),
18. खमरिया मेथोडिस्ट चर्च (1973),
19. रॉझी मेथोडिस्ट चर्च (1973),
20. मेथोडिस्ट तेलुगु चर्च (1974),
21. होली क्रॉस चर्च (1975),
22. चर्च ऑफ क्राइस्ट (1976),
23. मार Gregorious आर्थोडॉक्स चर्च (1977),
24. निर्मला चर्च (1977),
25. यूनाइटेड पेन्टी कॉस्टल चर्च (1978),
26. एवेंजिलिकल लूथरन चर्च (1979),
27. अवर लेडी ऑफ गुड हेल्थ चर्च (1980),
28. बेथिल प्रार्थना भवन (1985),
29. सेण्ट इग्नाटियस ल्वायला चर्च (1986),
30. सी0एन0आई0 चर्च (1988),
31. सेण्ट जॉन्स लूथरन चर्च (1988),
32. सेण्ट जूड चर्च (1995),
33. होली फैमिली चर्च (1995)।

जबलपुर जनपद के अतिरिक्त दमोह जनपद में भी अनेक चर्च उपलब्ध हैं, इनमें कुछ प्राचीन और कुछ नए हैं। इसी प्रकार छतरपुर जनपद में भी कुछ चर्च छतरपुर में और कुछ चर्च नवगाँव छावनी में भी हैं। नवगाँव छावनी के चर्च सर्वाधिक प्राचीन हैं जो चौरा चर्च और बुन्देलखण्ड फ्रेण्ड्स चर्च के नाम से प्रसिद्ध हैं।

कुछ प्रमुख मसीही धर्म प्रचारकों के कार्य – यह नितान्त सत्य है कि उत्तर भारत में मिशनरी केवल धर्म–प्रचार–प्रसार तथा धर्मान्तरण का उद्देश्य लेकर ही नहीं आए। वे अपने भीतर मानव हित सेवा की उत्कट अभिलाषा भी लेकर आए थे। उन्होंने भारत की ग़रीबी, बेरोज़गारी और प्रारंभिक शिक्षा व प्राथमिक चिकित्सा आदि के अभाव को जाना और उनके दुष्परिणामों का अनुभव किया। उनके निवारण का उपाय खोजने के लिए वे आतुर हो उठे। धर्म–प्रचार के साथ–साथ उन्होंने मानव के सर्वांगीण विकास को भी अपना मिशन–कार्य बनाया। सन् 1580 ई0 में मुगल दरबार में उनके पदार्पण से लेकर आज तक वे विद्यालयों, चिकित्सालयों और अन्य समाज–सेवा–संगठनों की स्थापना कर इस मिशन–कार्य को मूर्त रूप दे रहे हैं।

1. शैक्षणिक सेवा – यह एक वास्तविकता है कि सम्पूर्ण भारत में मिशनरी ही आधुनिक शिक्षा के प्रसार में अग्रणी हैं। शिक्षा के क्षेत्र में उनके द्वारा लाई गई क्रांति का समाज पर इतना प्रभाव पड़ा है कि आज माँ–बाप और अभिभावकों के बीच अपने बच्चों को मिशन स्कूलों, मिशनरी स्कूलों

या कान्वेण्ट स्कूलों में भर्ती करने की होड़–सी मची हुई है। मिशनरियों द्वारा संचालित विद्यालयों में अध्ययन करना या अध्यापन–कार्य करना प्रतिष्ठा का विषय बना हुआ है। गैर–मसीही भी *'मोण्टेसरी कान्वेण्ट स्कूल ऑफ एक्सेलेन्स', 'गंगा कान्वेण्ट स्कूल', 'मानस कान्वेण्ट स्कूल', 'सन्त अतुलानन्द कान्वेण्ट स्कूल'* आदि नामों से विशेषकर अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की स्थापना कर मिशनरी स्कूलों की ख्याति का लाभ उठा रहे हैं। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि आज मिशनरी स्कूल और उनके शिक्षक–शिक्षिकाएँ आदर्श विद्यालय और आदर्श शिक्षक–शिक्षिकाओं के पर्याय बन चुके हैं। "आज भारत में प्रोटेस्टेंट और रोमन काथलिक चर्चों के स्कूलों और कॉलेजों तथा अन्य प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या लगभग 64,000 है" (सी0डब्ल्यू0डेविड, " भारत में ख्रीस्तीय साक्षी–कार्य", पृष्ठ– 36)। सन् 1998 ई0 के आँकड़ों के अनुसार देश में मात्र काथलिक मिशनरियों द्वारा 3785 नर्सरी स्कूल, 7319 प्राइमरी स्कूल, 3765 उच्च माध्यमिक स्कूल और 240 कॉलेज संचालित हैं (दि काथलिक डायरेक्टरी ऑफ इण्डिया, C.B.C.I. सेन्टर, नई दिल्ली, 1998)। चेन्नई से प्रकाशित 'न्यू लीडर' नामक पत्रिका के वर्ष 2001, जून 1–15, अंक 10 में प्रकाशित एक लेख के अनुसार आज भारतवर्ष में 300 कॉलेज, 4000 माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्कूल, 13,800 प्राइमरी और प्री–प्राइमरी स्कूल तथा 1900 तकनीकी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण स्कूल काथलिक मिशनरियों द्वारा संचालित हैं। काथलिक मिशनरियों द्वारा भारत के अनेक शहरों में संचालित सेण्ट ज़ेवियर, लोयोला, सेण्ट जोसेफ, सेण्ट जॉन, सेण्ट डॉन बास्को, सेण्ट मेरीज, जीसस एण्ड मेरी, लोरेटो आदि स्कूल व कॉलेजों की श्रृंखलाएँ और प्रोटेस्टेंट मिशनरियों द्वारा संचालित सेण्ट स्टीफन कॉलेज, दिल्ली, विल्सन कॉलेज, मुम्बई, क्रिश्चियन कॉलेज, चेन्नई आदि उच्चकोटि की शिक्षण संस्थाएँ मानी जाती हैं।

उत्तर भारत में यद्यपि मिशनरियों के आगमन काल सन् 1580 ई0 से लेकर सन् 1842 तक कुछ इने–गिने प्रयासों को छोड़ मिशनरियों की कोई ठोस, संगठित शैक्षणिक गतिविधि देखने को नहीं मिलती, फिर भी प्रारंभ से ही साक्षरता मिशन उनके मिशन–कार्य के अति महत्वपूर्ण अंग के रूप में प्रतिभासित होता है। उत्तर भारत में सर्वप्रथम शिक्षण कार्य करने वाले मिशनरी येशु समाजी मोन्सेरेट थे जिन्होंने बादशाह अकबर के आदेश पर राजकुमार मुराद को पुर्तगाली भाषा सिखाई और नैतिकता का पाठ पढ़ाया। मुगल दरबार में आए तीसरे दल के सदस्यों को एक विद्यालय प्रारंभ करने की अनुमति दी गई जिसमें सामन्तों और राजकुमारों ने शिक्षा प्राप्त की (ई0 मैकलेगन, "दि जस्टिस एण्ड दि ग्रेट मुगल", पृष्ठ– 54, 133–136, 275)। जहाँगीर के शासनकाल में मिर्ज़ा जुल्करनैन ने आगरा में एक कॉलेज की स्थापना की जो एक शिक्षा–केन्द्र होने के साथ–साथ येशु समाजियों का निवास–स्थान भी रहा। प्रारंभिक मिशनरियों का शैक्षणिक कार्य–कलाप प्रायः नैतिक–धार्मिक शिक्षा तक ही सीमित रहा। उनकी विद्वत्ता और सौम्यता से प्रभावित होकर कतिपय राजा–महाराजाओं ने उनके विशेष ज्ञान का लाभ उठाया। उदाहरणार्थ खगोल–विज्ञान में रूचि रखने वाले जयपुर के राजा सवाई जयसिंह के आमंत्रण पर सन् 1740 ई0 में दो बवेरियन येशु समाजी खगोलवेत्ता – गबेल्सपेर्जेर और स्ट्रोब्ल जयपुर आए। उन्होंने जयपुर, दिल्ली, मथुरा, उज्जैन और बनारस (वाराणसी) आदि शहरों में वेधशालाएँ स्थापित करने में राजा की सहायता की।

संप्रेषणीयता के लिए भाषा के ज्ञान की आवश्यकता होती है और भाषा जन–सामान्य को अपना बना लेती है। एक शिक्षक, उपदेशक, प्रचारक और जन–सेवक के लिए यह आवश्यक है कि वह स्थानीय भाषा व संस्कृति को सीखे जिससे वह जन–सामान्य के दुःख–सुख का सहभागी बन सके, अपनी बातों को प्रभावी ढंग से उन तक पहुँचा सके और उनका विश्वास प्राप्त कर सके। इस

सन्दर्भ में यह कहना उचित होगा कि जितने भी विदेशी मिशनरी भारतवर्ष आए, प्रायः उन सब ने अपने मिशन कार्य को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से बड़ी लगन और तन्मयता के साथ स्थानीय भाषा व संस्कृति को सीखा और अपनाया। कुछ लोग तो इतने उच्चकोटि के विद्वान् हो गए कि आज उनकी रचनाएँ मानक और मार्गदर्शक मानी जाती हैं।

काथलिक मिशनरियों ने सन् 1842 ई0 में तत्कालीन *'तिब्बत–हिन्दुस्तान–मिशन'* के उपधर्माध्यक्ष जोसेफ एण्टनी बोर्घी द्वारा आगरा में सेण्ट पैट्रिक स्कूल की नींव डालने के साथ ही उत्तर भारत में अपने संगठित शैक्षणिक प्रयास का आरंभ किया। बालिकाओं की शिक्षा के लिए स्थापित सेण्ट पैट्रिक स्कूल के संचालन का दायित्व उन्होंने *'जीजस एण्ड मेरी'* धर्मबहनों को सौंप दिया' (पी0जे0एलाइस, "दि रोमन काथलिक मिशन आगरा", पृष्ठ– 161)। इससे पहले सन् 1838 ई0 में सरधाना के *'गिरजे की कोठरी'* नामक स्थान पर मसीही बच्चों के लिए एक छोटा सा स्कूल खोला गया जो कालान्तर में अनाथालय के रूप में परिवर्तित कर दिया गया (डिसूजा, "दि ग्रोथ एण्ड दि एक्टिविटीज ऑफ दि काथलिक चर्च इन नॉर्थ इण्डिया", पृष्ठ– 123)। सन् 1845 ई0 में बिशप बोर्घी ने मसूरी में एक विद्यालय की स्थापना की। तत्पश्चात् उन्होंने आगरा में सेण्ट पीटर्स कॉलेज, एक आवासीय कान्वेण्ट शिक्षण–संस्थान और कैन्टोन्मेण्ट में एक स्कूल की स्थापना की। उत्तर भारत में प्रथम काथलिक प्रेस व काथलिक बुक सोसाइटी की स्थापना का भी श्रेय उन्हीं को जाता है। बिशप बोर्घी के उत्तराधिकारी बिशप कार्ली (1849–56) भी एक महान् शिक्षाविद् थे। उन्होंने यह महसूस किया कि लोगों को व्यवसायोन्मुख शिक्षा ही जीविकोपार्जन में सहायता करेगी। अतः सन् 1850 ई0 में उन्होंने सरधाना स्थित स्कूल को सेण्ट जॉन्स व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र बना दिया। आगरा धर्मप्रान्त के सन् 1905 ई0 के कैलेण्डर के अनुसार पूरे धर्मप्रान्त में 22 शिक्षण संस्थाएँ थीं जिनमें 7 लड़कों के लिए और 15 लड़कियों के लिए थीं। पटना उपधर्मप्रान्त के बिशप हार्टमन भी शिक्षा के प्रसार के हिमायती थे। उनके बिशप बनने से पूर्व वहाँ कोई काथलिक स्कूल नहीं था। अतः कालान्तर में उन्होंने विद्यालयों की स्थापना का भरसक प्रत्यन किया। फलस्वरूप अक्टूबर 1853 में, बाँकीपुर में प्रथम काथलिक मसीही विद्यालय की स्थापना हुई और उसके संचालन की जिम्मेदारी आई0बी0वी0एम0 धर्मसंघ की बहनों को दी गई।

तत्कालीन सम्पूर्ण भारत को समेटने वाले आगरा और पटना धर्मप्रान्तों में किये गये थे शैक्षणिक प्रयास एक प्रारंभ मात्र ही माना जा सकता है। आज सम्पूर्ण उत्तर भारत में काथलिक मिशनरियों द्वारा अनेक स्कूल–कॉलेज खोले जा चुके हैं और इस महान् सेवा के लिए बहुसंख्यक स्त्री–पुरुष मिशनरियों ने अपने को पूर्ण रूपेण अर्पित किया है। पटना के सेण्ट ज़ेवियर्स कॉलेज, विमेन्स कॉलेज, मेरठ के सेण्ट जॉन्स कॉलेज, दिल्ली के जीसस एण्ड मेरी कॉलेज, अजमेर के सोफिया कॉलेज आदि उत्तर भारत के कुछ प्रमुख काथलिक कॉलेज हैं।

19वीं सदी के प्रारंभ में उत्तर–भारत आए प्रोटेस्टेंटवाद की अलग–अलग शाखाओं के मिशनरियों ने भी शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्ण योगदान किया है। सन् 1853 ई0 में चर्च मिशनरी सोसाइटी ने आगरा में सेण्ट जॉन्स कॉलेज की स्थापना की। दिल्ली का स्टीफेन्स कॉलेज, लखनऊ का ला–मार्टीनेयर कॉलेज, इलाहाबाद क्रिश्चियन कॉलेज, गोरखपुर का सेण्ट एण्ड्रू कॉलेज, कानपुर का क्राइस्ट चर्च कॉलेज, विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त इलाहाबाद इन्स्टीट्यूट ऑफ एग्रिकल्चर आदि उत्तर भारत के प्रोटेस्टेंट शिक्षण–संस्थाओं में महत्वपूर्ण हैं।

गरीबों, उपेक्षितों और शोषितों में मूल मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न कर उनके उत्थान और विकास में सहयोग करना मिशनरियों का लक्ष्य है। अतः दूर–दराज इलाकों में भी ये

शिक्षण–संस्थाएँ चलाते हैं। मिशनरी स्कूलों के सेवा–कार्यों से लोगों में नई चेतना, नई उमंग आई है, वर्षों के शोषण–दमन से मुक्ति मिली है। मिशनरियों की गतिविधियों की जाँच हेतु गठित नियोगी आयोग ने भी इस सच्चाई को स्वीकार किया है। सरकार को दी गई अपनी रिपोर्ट में उसने कहा है "आधुनिक समय में भारतीय जन–जीवन को नया स्वरूप प्रदान करने में मिशनरियों का बहुत ही प्रभावशाली योगदान रहा है। उन्होंने उपेक्षित वर्ग को उन्नत करके उच्च सामाजिक स्तर प्रदान किया तथा उच्च सरकारी पदों को प्राप्त करने योग्य बनाकर हर क्षेत्र में आत्मसम्मान के प्रति जागरूक बनाया। उन्होंने नारी शिक्षा में नेतृत्व प्रदान कर नारी–समाज के स्तर को उन्नत किया।"

2. चिकित्सकीय सेवा – पवित्र बाइबिल के 'नया–विधान' से स्पष्ट है कि प्रभु येशु ने रोगियों को स्वस्थ किया (सन्त मत्ती 8 : 16), अंधों को दृष्टि–दान (सन्त मरकुस 8 : 22–25), बहरों, गूँगों को वाणी (सन्त मरकुस 7 : 31–37), लूलों–लंगड़ों को चलने (सन्त मत्ती 15 : 30) और कोढ़ियों को स्वास्थ्य लाभ (सन्त लूका 17 : 11–19) का वरदान दिया। अतः मिशनरियों ने स्वास्थ्य–सेवा को अपना जीवन–मिशन बना लिया है। विश्वभर में आज हज़ारों संख्या में नन्स निःस्वार्थ भाव से रोगियों की सेवा–सुश्रूषा में संलग्न हैं। प्रेम एवं त्यागपूर्ण स्वास्थ्य–सेवा मिशनरियों की विशेष पहचान बन गई है। भारत में क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज – वेल्लूर और लुधियाना, सेण्ट जॉन्स मेडिकल कॉलेज, सेण्ट मार्था अस्पताल, बेंगलूर, डॉ0 मुल्लर अस्पताल, मंगलूर, सेण्ट अन्ना अस्पताल, विजयवाड़ा, लिज़्ज़ी हास्पिटल, एर्नाकुलम, स्टीफेन्स हास्पिटल, दिल्ली देश की प्रतिष्ठित मिशनरी मेडिकल कॉलेज व अस्पताल हैं। सन् 1967 ई0 के स्वास्थ्य–सेवा सम्बन्धी आँकड़ों के अनुसार, भारत में प्रोटेस्टेंट और काथलिक समुदाय के कुल 620 अस्पताल और दवाखाना थे। काथलिक अस्पतालों एवं दवाखानों में 121 डॉक्टर और नर्सें थीं। मुम्बई से प्रकाशित 'द एक्ज़ामिनर' नामक पाक्षिक पत्रिका के 23 नवम्बर, 2002 अंक में यह उल्लिखित है कि यद्यपि भारत में मसीहियों की कुल संख्या 2.5 प्रतिशत मात्र है तथापि इनके द्वारा संचालित स्वास्थ्य सेवा–संस्थाएँ देश की 33 प्रतिशत स्वास्थ्य आवश्यकताओं की सफलतापूर्वक पूर्ति करती हैं।

सन् 1739 ई0 में *'तिब्बत–हिन्दुस्तान–मिशन'* से सम्बद्ध इतालवी कपुचिन मिशनरी फादर जोसेफ मेरी बेर्निनी ने बेतिया के शासक राजा ध्रुवसिंह की पत्नी को स्वस्थ्य किया। इसी सेवा से प्रभावित होकर राजा ध्रुवसिंह ने अपने यहाँ मिशन खोलने के लिए मिशनरियों को आमंत्रित किया। यहीं से उत्तर भारत में मिशनरियों की स्वास्थ्य सेवा का प्रारंभ माना जा सकता है। फादर जोसेफ मेरी ने बेतिया में अपना अधिकांश समय रोगियों को दवा–दारू करने में ही बिताया और साथ ही धर्मोपदेश दिया। इस संदर्भ में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। फादर जोसेफ मेरी से पूर्व दो और कपुचिन मिशनरियों का नाम लिया जाता है जिन्होंने नेपाल, तिब्बत और भारत में स्वास्थ्य–सेवा की। ये थे – टूर्स के फादर फ्रांसिस मेरी और फानों के फादर डोमिनिक। फादर फ्रांसिस मेरी 'डॉक्टर' कहलाते थे। फादर डोमिनिक ने *'मेटीरिया मेडिका एट फार्मस्यूटिका'* नामक ग्रंथ लिखा। सम्प्रति काथलिक मिशनरियों द्वारा उत्तर भारत में संचालित अस्पतालों में 'होली फेमिली हास्पिटल', पटना, मण्डार, कुंकरी और दिल्ली, 'फातिमा अस्पताल' लखनऊ, मऊनाथ भंजन और गोरखपुर, 'नाज़रेत अस्पताल' इलाहाबाद, मोकामा, सेण्ट लूक अस्पताल, मेरठ, सेण्ट फ्रांसिस अस्पताल, अजमेर, सेण्ट जूड अस्पताल, सिप्री – झाँसी, होली क्रॉस अस्पताल, अम्बिकापुर, बिशप कोन्राड मेमोरियल अस्पताल, खैराबाद, सेण्ट मेरीज़ अस्पताल, वाराणसी आदि प्रमुख हैं।

प्रोटेस्टेंट मिशनरियों की चिकित्सकीय सेवाओं के सम्बन्ध में कहा जाता है कि सन् 1836 ई0 में प्रथम चिकित्सक के आगमन के साथ यह कार्य प्रारंभ हुआ। "सन् 1858 ई0 में भारत में सात

प्रोटेस्टेंट चिकित्सक मिशनरी थे।" निश्चित ही आज इन चिकित्सकों और इनके द्वारा चलाये जा रहे चिकित्सालयों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि हुई है।

3. सामाजिक सेवा के अन्य क्षेत्र – पवित्र बाइबिल का कथन है, "तुमने मेरे इन भाइयों में से किसी एक के लिए, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, जो कुछ किया, वह तुमने मेरे लिए ही किया" (मत्ती 25:40)। प्रभु येशु ने कहा था, "मैं धर्मियों को नहीं, पापियों को बुलाने आया हूँ", (मरकुस 2:17) 'सेवा कराने नहीं, सेवा करने आया हूँ' (मत्ती 20:28)। इसी प्रेरणा ने प्रभु येशु के अनुयायियों और मिशनरियों को दीन–दुःखियों की सेवा में संलग्न किया। वे सामाजिक बुराइयों तथा कुरीतियों को दूर कर समाज में न्याय, समता की स्थापना के लिए संघर्ष करते तथा जाति, धर्म, भाषा और संस्कृति के भेदभाव के बिना सबकी सेवा करते हैं। उत्तर भारत के प्रारंभिक मिशनरियों में कपुचिन मिशनरी फादर मार्को डेल्ला टोम्बा ने अपने कार्य–क्षेत्र में जातिवाद को समाप्त करने के उद्देश्य से एक पंचायत बुलाई जिसमें लोगों ने जातिवाद को त्यागने का निर्णय किया। प्राकृतिक आपदाओं के समय मिशनरियों ने अपने को पीड़ितों की सेवा, उनके पुनर्वास के कार्य में लगा दिया। युद्ध में वीरगति प्राप्त किये सैनिकों तथा अन्य लोगों के अनाथ बच्चों के लिए मिशनरियों ने मसूरी में सेण्ट फिडेलिस अनाथालय, आगरा में सेण्ट पैट्रिक अनाथालय, बांकीपुर में अनाथालय, सोमेश्वर में सेण्ट लॉरेन्स आश्रम, सरधाना में सेण्ट चार्ल्स अनाथालय आदि की स्थापना की। ग्वालियर के 40 बेरोज़गार एवं निराश्रय मसीही परिवारों के लिए देहरादून घाटी में एक बस्ती की स्थापना भी तत्कालीन मिशनरियों का एक उल्लेखनीय कार्य है। इन मिशनरियों के ये धर्मार्थ व मानवतावादी कार्य आज पूर्ववत ही नहीं, विकसित भी हैं। आज उत्तर भारत–भर में सैकड़ों संख्या में समाज सेवा–केन्द्र, अनाथालय, विधवाश्रम, वृद्धाश्रम, कुष्ठ आश्रम, नारी–उत्थान केन्द्र, विकलांगों, मंद बुद्धि के लोगों के लिए आश्रम मिशनरियों द्वारा संचालित हैं। साथ ही, सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों की रक्षा के लिए भी केन्द्र खोले गये हैं। दीन–दुःखियों और निराश्रितों की सेवा में दिन–रात लगी मदर टेरेसा की धर्मबहनों को कौन नहीं पहचानता ? कौन है जो *'चेशायर आश्रम'* से अनभिज्ञ होगा ?

बुन्देलखण्ड के प्रमुख मिशनरियों का संक्षिप्त जीवन–चरित्र

जोएल थॉमस जेनवियर – बुन्देलखण्ड का प्रथम धर्मप्रचारक बुन्देलखण्ड के बाँदा शहर में सन् 1830 में उत्पन्न जोएल थॉमस जेनवियर मेथोडिस्ट चर्च के प्रथम अत्यन्त प्रसिद्ध धर्मप्रचारक हुए हैं, जिन्होंने बुन्देलखण्ड में अनेक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की और मसीही धर्म का प्रचार किया। इनकी आरम्भिक शिक्षा बरेली और इलाहाबाद में हुयी थी और इलाहाबाद का प्रसिद्ध क्रिश्चियन कॉलेज आज भी देश का प्रमुख महाविद्यालय माना जाता है। यह मेथोडिस्ट चर्च के संस्थापक विश्वविख्यात भारत के प्रथम मिशनरी विलियम बटलर के सहयोगी थे और इन्होंने सन् 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में विलियम बटलर के प्राण बचाए थे जिसके फलस्वरूप दोनों में प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित हुए थे और जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें बरेली से अपने प्राण बचाकर भागना पड़ा। इस पलायन के बारे में विलियम बटलर ने अपने विख्यात ग्रन्थ वेदाज़ (Vedas)पृष्ठ– 256–257 में इस प्रकार लिखा है :

Joel had to flee Bareilly, taking the chaukidar with him and passed, with his little family through its terrible scenes unscathed, though sorely pressed, amid danger on every hand. With his young wife by his side, and carrying his infant girl in his arms, he walked mostly by night, through

fields and forests along bypaths, and through jungles, over 300 miles, from Bareilly to Allahabad, much of the time in the very thick of the enemy.......But the Lord brought him safely through, for He had a work for Him to do.

विलियम बटलर अपने मित्र को आर्थिक सहायता देना चाहते थे। उन्होंने एक पत्र इलाहाबाद के पते पर जोएल को भेजा भी था, जिसके प्रत्युत्तर में जोएल ने निम्नलिखित पत्र भेजा, जो आज भी इस बात का साक्षी है कि जोएल ने धर्म प्रचार के हेतु किसी भी प्रकार का विदेशी धन स्वीकार नहीं किया :

As I am at present working on the railway here and earn something to support myself and family, I do not see any necessity of your taking any further trouble about me in regard to money, until such time as I shall be with you again..............I am not at all discouraged by this trouble; on the contrary, I hope it has been sanctified to my good. God forbid that I may be discouraged ! But may He grant me that grace which may make my hope strong, and my faith firm. (जॉन एन0 हॉलिस्टर, "दि सेन्टनरी ऑफ दि मेथोडिस्ट चर्च इन साउथर्न एशिया" लखनऊ 1956 पृष्ठ– xxxi)

ग्रीन लॉरेन्स व्हार्टन – बुन्देलखण्ड के प्रमुख शहर जैसे जबलपुर, दमोह नगरों में मसीही धर्म की स्थापना करने वाले यह पायोनियर मिशनरी थे और इन्हीं शहरों में लगभग 25 वर्ष तक भिन्न–भिन्न सेवा कार्यों के द्वारा मसीही समाज की स्थापना की।

इनका जन्म यू0एस0ए0 के इण्डियाना राज्य के ब्लूमिंगटन नगर में सन् 1847 के 17 जुलाई को हुआ था। इनकी आरम्भिक शिक्षा आदि गाँव के स्कूल में ही हुयी थी और कॉलेजी शिक्षा बेतनी कॉलेज में हुयी थी। वह कॉलेज की शिक्षा के पश्चात् कुछ समय तक न्यूयार्क राज्य के बफैलो (Buffalo) नगर में एक चर्च के पास्टर रहे और 7 नवम्बर सन् 1982 ई0 को मुम्बई में जलयान से उतरे। इनके साथ अन्य मिशनरी भी थे, जिनके सामने भारत में स्थायी तौर पर मिशन केन्द्र स्थापित करने की समस्या थी। आरम्भ में व्हार्टन ने मुम्बई को केन्द्र बनाकर अमरावती, बुरहानपुर, एलिचपुर अनेक आदि स्थानों का भ्रमण किया और अन्ततः मध्य प्रदेश के खण्डवा, हरदा, सिवनी, होशंगाबाद, बैतूल आदि स्थानों में दौरा किया। वह भोपाल भी गए थे और अन्त में उन्होंने नागपुर एवं जबलपुर, दमोह का भ्रमण किया। उन्होंने इटारसी के समीप जनवरी 1883 में हरदा में क्रिश्चियन मिशन की स्थापना की और यहीं से उनका कार्य बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों में आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम उन्होंने हिन्दी भाषा सीखी और कुछ देशीय हिन्दी भजनों को गाने का अभ्यास किया। हरदा से ही उनका काम आरम्भ हुआ। यहाँ उन्होंने एक सरकारी स्कूल की भी स्थापना की। इस स्कूल के विषय में उन्होंने एक विस्तृत पत्र लिखा था, जिसके कुछ अंश इस प्रकार हैं जो तत्कालिक युग की शिक्षा सम्बन्धी समस्या आदि पर विस्तृत प्रकाश डालते हैं –

"हरदा में अशिक्षित व्यक्तियों के लिए एक विद्यालय की स्थापना की गई है जिसमें मैं एक मात्र ऐसा धर्म प्रचारक हूँ जो इस विद्यालय में नियमित रूप से जाता हूँ। इस विद्यालय का भवन मैदान में बना हुआ है। देखने में वह बहुत खराब सा लगता है। यहाँ पर 3 अध्यापक हैं तथा पढ़ने वाले छात्रों की संख्या 200 है। पढ़ने वाले छात्रों की आयु लगभग 15 वर्ष है। इसमें 100 छात्र प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करते है तथा प्राथमिक शिक्षा के लिए अध्यापक नियुक्त हैं। यहाँ पर मुख्य रूप से हिन्दी, हिन्दुस्तानी, ऊर्दू, मराठी और अंग्रेजी भाषा की शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त

गणित, भूगोल तथा धर्म शिक्षा बहुत कम दी जाती है। मुझे पढ़ाने के लिए जो कक्षाएँ दी गई हैं, वह पहली, दूसरी और तीसरी कक्षा हैं। दूसरे और तीसरे की किताब हिन्दी में है। सप्ताह में 3 दिन व्याकरण की शिक्षा दी जाती है। सभी शिष्य जमीन पर सीमेण्ट की फर्श पर बैठते हैं। अध्यापक तथा शिष्य अपने सिर पर टोपी लगाते है जो विभिन्न रंगों की होती हैं। अध्यापक के चारों ओर बैठकर छात्र शिक्षा ग्रहण करते हैं।

सरकार के द्वारा जो स्कूल खोला गया है, वह असभ्य और गवाँर लोगों के लिए है। मैंने एक या दो घण्टे रूककर देखा कि यहाँ के छात्र पढ़ाई–लिखाई के समय बहुत शोर मचाते हैं। जब अध्यापकों से छात्रों की शिकायत की जाती है तो वे छात्रों को पीटते हैं।

गर्मी के मौसम में विद्यालय प्रातःकाल छः बजे लगता था और साढ़े दस बजे छुट्टी हो जाती थी। मैं आम के पेड़ों के नीचे प्रातःकाल टहलने जाया करता था। यहाँ मुझे ताजी और अच्छी हवा मिलती थी। इसके अतिरिक्त यहीं से मैं स्कूल की गतिविधियों को भी देखा करता था। मिसेज व्हार्टन कभी–कभी मेरे साथ जाया करती थी। मुझे इस बात से कोई आश्चर्य नहीं है कि कभी–कभी हम लोग वृक्ष की झुकी हुयी डालियों से नयी और ताजी पत्तियों को तोड़ लेते थे तथा खिले हुए फूलों को भी तोड़ लेते थे। यह वह मौसम था जब पृथ्वी में गर्मी की शुरूआत हो जाती थी और जमीन दरारे फाड़ देती थी। हमारे रास्ते में लगभग आधा दर्जन कुएँ पड़ते थे। जिनमें औरतें पानी भरते नजर आती थीं। जैसे ही हम लोग घर पहुँचते थे, हमें दो औरतों की चक्की पीसने की आवाज सुनाई देती थी। यह यहाँ का नियम था जिसके हम लोग प्रत्यक्षदर्शी थे।" तत्पश्चात् इनका महत्वपूर्ण कार्य सतपुड़ा पहाड़ियों के मध्य कुर्ख और गौंड आदिम जनजातियों के बीच में आरम्भ हुआ। जिनके विषय में स्वयं उन्होंने समय–समय पर यू0एस0ए0 में अपने मित्रों को पत्र लिखे थे। जो तात्कालिक आदिम जनजातियों के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं –

"सन् 1889 में जाड़े के मौसम में मिस्टर व्हार्टन ने एक दिलचस्प कार्य का नेतृत्व किया यह कार्य उन्होंने गौंड और कुर्खु जातियों के मध्य किया। ये लोग सतपुड़ा पहाड़ में रहते थे। वे लोग इतने जंगली थे कि पहाड़ के कुछ हिस्सों में अपना निवास स्थल बनाए हुए थे तथा उन्होंने अपने घरों को एक अंग्रेज के कहने पर तोड़ दिया था। यद्यपि ये लोग अपने धर्म पर पूर्ण विश्वास करते थे तथा पूर्ण रूपेण अज्ञानी तथा मूर्ख थें। केवल उन्हीं बातों पर विश्वास करते थे जिन्हें उनके पुरखे मानते थे। केवल पूजा से ही उन्हें इस बात का बोध होता था कि कोई बड़ी शक्ति अवश्य है जिसकी उपासना ये लोग करते हैं तथा कुछ अन्य भूत–प्रेत भी है जिन्हें वे लोग उनके सामने पशु बलि देकर खुश करते थे। यह उनके जीवन का एक हिस्सा था। पूजा में ये लोग अपना परम्परागत नृत्य करते थे। उनके लिए मूर्ति, मन्दिर और पुजारी का भी महत्व था। अधिकांश व्यक्ति भूत, प्रेत, चुड़ैलों पर विश्वास करते थे तथा उनकी बाधाओं को झाड़–फूक के जरिए दूर करते थें।

यद्यपि यह जाति पढ़ी–लिखी नहीं थी न इनका कोई लिखित साहित्य था। जो गीत ये लोग गाया करते थे उनका भी कोई लिखित संग्रह नहीं था। इन गीतों में महाकाव्य तथा लम्बे गीत और छोटे गीत शामिल थे। मुख्य रूप से भारतीय तीज–त्यौहारों शादी तथा अन्य उत्सवों में ये गीत गाए जाते थे जिन्हें इन जातियों के लोग अपने माता–पिता से सीखते थे। कुछ गीत गाते थे और कुछ लोग उन गीतों की पंक्तियाँ दोहराते थे तथा हर चार पंक्तियों के बाद अन्तरा दोहराने का रिवाज था। इनमें खुद की बौद्धिक क्षमता थी। अनेक सरकारी अधिकारियों ने अनेक वर्ष उनके मध्य व्यतीत किए। इन लोगों का चरित्र बहुत अच्छा था। ये लोग सादगी से रहते थे। चरित्र की दृष्टि से ये लोग अन्य हिन्दुओं से अच्छे थे। ये लोग अपनी पहाड़ियों में बहादुरी के साथ निवास

करते थे, कठिन परिश्रम करने वाले, कार्य में लगे रहने वाले, खेती आदि करने वाले सच्चे हृदय के व्यक्ति थे। जो इनके बारे में जानकारी नहीं रखते थे वे लोग इन्हें आलसी, कायर समझते थे। ये नहीं जानते थे कि इनको दया और प्रेम से जीता जा सकता है। वास्तव में ये जाति बहुत अच्छी जाति थी तथा प्रगतिशील जाति थी। अन्य हिन्दुओं की तरह यह विभिन्न प्रकार के बन्धनों से जकड़े हुए नहीं थे। वर्तमान धर्म प्रचारकों ने इनके मध्य कार्य करने की प्रतिज्ञा की।"

यह सभी लोग अच्छी तरह जानते है कि मसीही धर्म प्रचारकों ने मध्यप्रदेश के उन पर्वतीय क्षेत्रों के मध्य में महत्वपूर्ण कार्य किया जहाँ के लोग दुःखी तथा बुखार से रोग ग्रस्त रहते थे। यह बुखार उन्हें विभिन्न मौसम में रोगग्रस्त किया करते थे। यहाँ के लोगों के साथ मिशनरियों ने दया और त्याग की भावना से कार्य किया तथा उनके कष्ट को दूर किया। जबकि दूसरे व्यक्ति प्रभु येशु मसीह के धर्म सन्देश प्रेम की भावना को सर्वत्र ले जाने में लगे थे, जहाँ यह भावना नहीं फैली थी।

जबलपुर के लिए सबसे महत्वपूर्ण देन है *'बाइबिल कॉलेज'* की, जहाँ देशीय मसीही पुरोहितों को बाइबिल शिक्षा दी जाती थी। पहले यह कार्य हरदा में किया जाता था किन्तु जब सन् 1899 हरदा का मिशन कार्य बन्द कर दिया गया तब 1903 में यू0एस0ए0 की फॉरेन क्रिश्चियन मिशनरी सोसायटी ने जबलपुर में एक बाइबिल कॉलेज स्थापित करने का निश्चय किया और इस सम्बन्ध में व्हार्टन ने यू0एस0ए0 में बाइबिल कॉलेज के लिए दान एकत्र किया। इन्हें इस कार्य में बड़ी सफलता मिली और लोगों ने मुक्त हस्त दान दिया। यू0एस0ए0 में पर्याप्त धनराशि एकत्र कर 5 नवम्बर 1904 में व्हार्टन मुम्बई बन्दरगाह में उतरे और सीधे जबलपुर की ओर रवाना हो गए जहाँ पहले से ही जॉर्ज डब्ल्यू0 ब्राउन नामक एक युवा मिशनरी 8 छात्रों के साथ स्कूल चला रहा था। वह अपने बंगले के बरामदे में ही इन युवाओं को हिन्दी भाषा में मसीही धर्म का प्रशिक्षण देता था। इस कार्य का विवरण बहुत ही चित्रात्मक शैली में स्वयं व्हार्टन की पत्नी ने अपने पति की आत्मकथा में इस प्रकार लिखा है :

"अनेक वर्षों से मिस्टर व्हार्टन की यह तीव्र उत्कण्ठा रही है कि भारत में मसीही लोग एक ऐसे कॉलेज की स्थापना करें जहाँ पर युवा पुरूष और महिलाएँ धर्म उपदेशक की शिक्षा लेकर अपने व्यक्तियों के मध्य धर्म उपदेश करे। यह हमेशा याद रखना चाहिए कि बिना किसी मुख्य संसाधन और मदद के इन्होंने कई वर्षों तक इस कार्य के लिए प्राथमिकता के आधार पर प्रयास किया। इसी समय सन् 1897 में भीषण अकाल की स्थिति पैदा हुयी, जिसका परिणाम यह हुआ कि युवा मिशनरी की कार्य समिति ने कठोर श्रम किया। वर्तमान समय में पर्याप्त धन चन्दे के रूप में उपलब्ध हुआ, जिससे यह आवश्यक हो गया कि इस प्रकार की एक संस्था बनाई जाए जो काफी बड़ी हो तथा सामान्य व्यक्तियों की इच्छा के अनुकूल हो। इस बात से पूर्ण सन्तुष्टि मिली जब वे जबलपुर पहुँचे और उन्होंने मिस्टर ब्राउन के साथ एक कॉलेज की स्थापना की योजना बनाई और कहा कि उसे बाइबिल कॉलेज का नाम दिया जाए।

जॉर्ज डब्ल्यू0 ब्राउन एक युवक पुरूष थे, अच्छे सहयोगी थे तथा वे इस काम का जोखिम उठाने के लिए आसानी से उपलब्ध हो गये थे। वे लगभग 4 वर्षों तक भारत वर्ष में रहे। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में अपने दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण कार्य किए तथा हरदा के अनेक स्कूल उनके नियन्त्रण में चल रहे थे। उन्होंने हिन्दी भाषा में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था और वे इसके अधिकारी विद्वान थे। जब मिस्टर व्हार्टन जबलपुर पहुँचे, उस समय मिस्टर ब्राउन अपने यहाँ 8 युवा विद्यार्थियों को अपने घर के बरामदा में पढ़ाया करते थे आगे चलकर उनका बंगला स्कूल रूम में परिणित हो गया और वह एक नए स्कूल के रूप में जाना जाने लगा। मिस्टर और मिसेज ब्राउन

के आमन्त्रण पर मिस्टर व्हार्टन उन्हीं के घर में रहने लगे, उन्हें यह विश्वास हो गया कि वे आगे चलकर अपनी उपयोग और रहने के लिए एक उत्तम कोटि का बंगला तलाश लेगें।

कॉलेज के लिए इच्छा के अनुकूल भवन बनवाने के लिए भूमि की उपलब्धि एक वर्ष हो गयी थी। इस समय कक्षाओं का शुभारम्भ और एक छापाखाना एक किराए के भवन में स्थापित कर दिया गया था, जबकि भवन का निर्माण कार्य चल रहा था। जनवरी 1905 में जब जाड़े का मौसम पूर्ण पराकाष्ठा पर था उस समय 18 विद्यार्थी जो विभिन्न क्षेत्रों से आए थे उनके लिए विद्यालय खोल दिया गया। इस समय कॉलेज में पढ़ाई बिना पाठ्य पुस्तकों के प्रारम्भ की गई, उस समय ऐसी कोई किताब नहीं थी जो पढ़ाने के लिए हिन्दी भाषा में सुलभ हो। मिस्टर व्हार्टन इस समय मसीही धर्म से संबंधित साहित्य की रचना के संबंध में लगे हुए थे, इस समय सन् 1905 में यह लिखा "यदि मैं हिन्दी भाषा में पर्याप्त ज्ञान रखता अथवा उसका विशेषज्ञ होता तो मुझे इस बात में ज्यादा आनन्द आता कि मैं मसीही धर्म से संबन्धित साहित्य का पाठ्यक्रम के अनुसार स्रजन करता। इस समय दो पुस्तकों की सर्वाधिक आवश्यकता है, एक पुस्तक विभिन्न धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन की, दूसरी पुस्तक चर्च संबंधित इतिहास की है। अन्य पुस्तकों की आवश्यकता उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितनी इन पुस्तकों की। मैं अगले वर्ष तक एक पुस्तक "मॉर्डन मिशन' (आधुनिक मसीही धर्म–प्रचार) विषय पर लिखूगाँ। नार्थ इण्डिया ट्रैक्ट सोसायटी इसे प्रकाशित करने के लिए तैयार है। वह मेरे लिए इसका प्रकाशन करेगी। मेरी इच्छा है कि यह पुस्तक इस वर्ष तैयार हो जाए। मैं इस विषय को अपने सामर्थ्य के अनुसार तैयार कर लूँगा। मेरे पास अनेक व्याख्यानों का संग्रह है जिन्हें मैंने अपनी कक्षाओं में प्रस्तुत किया है। उनका पुनर्लेखन विस्तार से कर लिया जाएगा। इस महत्वपूर्ण कार्य से मसीही धर्म का महत्व यहाँ के मौलिक मसीहियों पर पड़ेगा और उनके अन्दर एक नया उत्साह पैदा होगा।"

मैंने जबलपुर में स्थापित होने वाले कॉलेज की स्थिति का जायजा लिया, मैनें उसे स्वीकार किया और मैं उससे सन्तुष्ट हुआ। उन्होंने फरवरी माह में इस सन्दर्भ में एक टिप्पणी लिखी, "मैं नहीं समझता की इस स्थान में आकर मैंने कोई गलती की है। तुलनात्मक दृष्टि से मध्य प्रान्त में इससे अच्छा कोई दूसरा स्थान नहीं हो सकता। जहाँ तक मेरी सन्तुष्टि का प्रश्न है। मैं इस स्थान को देख रहा हूँ और मुझे पूरा आत्म विश्वास है कि ईश्वर की इच्छा के अनुसार यह कार्य पूरा होगा क्योंकि परमात्मा हमसे यही आशा करता है...........इस समय हम लोग जहाँ रहते हैं उसे सिविल लाइन नाम से पहचाना जाता है, तथा यहाँ अंग्रेजों की सेना रहती है जिससे उसकी पृथक पहचान थी।"

जबलपुर में चर्च की व्यवस्था 18 फरवरी सन् 1906 में की गई थी। इस समय इसके 31 सदस्य थे। वे लिखतें हैं, "इससे बड़ी खुशी का दिन और महत्वपूर्ण दिन धर्म प्रचार की दृष्टि से जबलपुर में और कौन–सा हो सकता था? सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न दिखाई दे रहे थे, हमने एक नियमित चर्च की स्थापना मध्य भारत के इस शहर में की है। यहाँ पर लोग 'एन्डेवर' (Endeavorers) की मदद भी कर रहें हैं ताकि वे संगठित होकर अपने कार्य को सुचारू रूप से चला सके। हम लोगों ने 'टेंथ लेजियन कमेटी' का गठन किया, जिसमें 25 सदस्य प्रारम्भ में हमसे जुड़े हैं। इन लोगों ने एक कमरा किराए से लिया है जिसमें वे लोग सन्डे स्कूल चला रहे हैं। मैं इन लोगों को ऐसा प्रशिक्षण देने का प्रयास कर रहा हूँ कि वे लोग बिना मिशनरी के सहयोग के अपना विद्यालय हमेशा चला सके। हम लोगों से एक बहुत बड़ी गलती हुयी है और हममें से अनेक व्यक्ति ऐसी गलती कर रहे हैं कि वे अपने धर्म उपदेशकों और अध्यापकों पर बहुत कम विश्वास करते हैं। हमने उनको यह सुवर्ण अवसर नहीं प्रदान किया कि वे शक्तिशाली और अच्छे आचरणों

G. L. Wharton
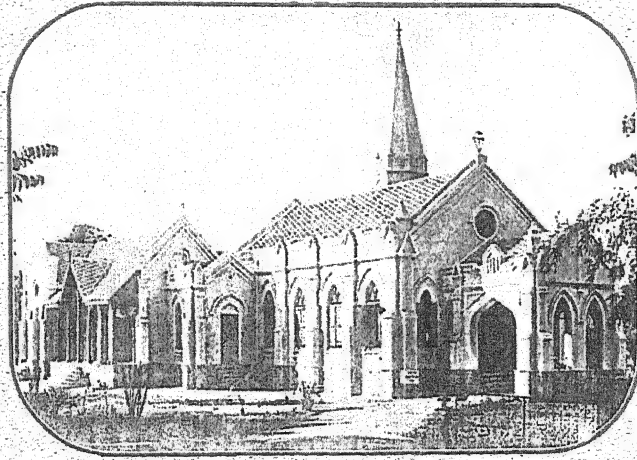
जबलपुर के डिसापल्स ऑफ क्राइस्ट चर्च तथा बाइबिल कॉलेज के संस्थापक ग्रीन लॉरेन्स व्हार्टन

छतरपुर का पहला मसीही कनवर्ट, ठा.पी.सिंह

प्रथम महिला मिशनरी, ईस्थर बेयर्ड और डेलिया फिश्टलर

वाले व्यक्ति बने और मैं इनके लिए कुछ भी नहीं कर रहा हूँ। मुझे आवश्यकता है कि वे कार्य का उत्तरदायित्व पूर्वक निर्वाह करें, उसको अपने हाथ में ले और यह जवाब दें कि कार्य ठीक ढंग से हो रहा है।"

अत्यधिक परिश्रम एवं प्रतिकूल जलवायु के कारण व्हार्टन का स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। आरम्भिक मिशनरी वास्तव में मिशन के प्रति इतने समर्पित होते थे कि अपनी शारीरिक सुविधाओं के प्रति उदासीन रहा करते थे, जिसके परिणाम स्वरूप वे आकस्मिक मृत्यु का शिकार हो जाते थे। 3 जुलाई 1906 में बाइबिल कॉलेज की नींव रखने के तदुपरान्त उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका जीवन अभिप्राय पूर्ण हो गया है। इस दौरान उन्होंने यद्यपि शिमला एवं कलकत्ता में अधिवेशनों को संबोधित किया पर वह अपने स्वास्थ्य को पुनः न प्राप्त कर सके। यद्यपि उनके मित्रों ने उनके बिगड़ते हुए स्वास्थ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया था परन्तु उन्होंने स्वास्थ्य सुधारने की ओर ध्यान नहीं दिया और अन्ततः उनके उदर में धीरे–धीरे अज्ञात बीमारी ने घर कर लिया और 20 अक्टूबर 1906 को डॉक्टर की सलाह के अनुसार कलकत्ते के अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। जहाँ से उन्होंने अपने मित्रों को अन्तिम पत्र लिखे। एक पत्र में उन्होंने अपने ऑपरेशन के पूर्व कहा –

We are all Christians and we must show how true Christians can live, suffer and die. 'To live is Christ, to die is gain.' The best is to come. For your sake and the children I would like to live a few years more. For the work in India I would like to be able to live a few more years. I like living in such a world now-living for God and every good cause. But when the Lord is ready for me to commence my service where there is no more sin, sickness, sorrow, pain or death, It will be glorious to go home where we will all soon rejoin each other. (इम्मा रिचर्ड्सन व्हार्टन, लाइफ ऑफ जी0एल0 व्हार्टन, 1913, पृष्ठ– 242–243), 4 नवम्बर 1906 को दोपहर के समय अपनी जीवन यात्रा कलकत्ते में समाप्त की।

शिक्षा–शास्त्री डॉ0 फ्रेन्क ई0 की – प्रायः भारत में विशेषकर उत्तर भारत के हिन्दी क्षेत्र में *डॉ0 फ्रेन्क ई0 की* का उल्लेख हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहासकार के रूप में स्मरण किया जाता है। उन्होंने ही हिन्दी साहित्य के इतिहास का जो काल निर्धारण किया था उसी को ही बाद के इतिहासकारों ने स्वीकार किया। उनका यह योगदान राष्ट्रभाषा की सेवा में सदा स्मरणींय है।

डॉ0 फ्रेन्क ई0 की के 'ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर' में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा इतिहास लिखने की परम्परा पूर्ण होती है। तासी के इतिहास से हिन्दी साहित्य को लेखबद्ध करने के प्रयत्न आरम्भ हुए। प्रत्येक पाश्चात्य इतिहासकार ने अपनी सीमाओं को स्वीकारते हुए अपने पूर्ववर्ती इतिहासज्ञ के इतिहास की त्रुटियों का अपने इतिहास में परिमार्जन किया है। सम्भवतः यही कारण है कि परवर्ती इतिहासज्ञ का इतिहास निखरता चला गया। *डॉ0 की* के इतिहास में हिन्दी साहित्य की रूपरेखा होते हुए भी इतने वैज्ञानिक ढंग से उस रूपरेखा को खींचा गया कि हिन्दी इतिहास की कोई विशेषता छूटने नहीं पाई। यह सत्य है कि पुस्तक का कलेवर बढ़ाने के लिए अनावश्यक रूप से फुटकर कवियों और लेखकों की चर्चा विस्तार से नहीं की गई। *डॉ0 की* का मुख्य अभिप्राय 'हिन्दी साहित्य की स्पष्ट और विश्वसनीय रूपरेखा' खींचना था। वे जानते थे कि किसी महान् इतिहास का पर्यवेक्षण करते समय उसे सीमित पृष्ठों में बाँधकर सत्यनिष्ठ मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। अतएव उन्होंने आदिकाल से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय तक एवं हिन्दी

साहित्य के ऐतिहासिक आन्दोलनों की चर्चा तक अपने को सीमित रखा है। लेखकों और कवियों के विषय में लिखते समय भी उनका दृष्टिकोण पूर्ण रूपेण तटस्थ रहा है। *डॉ0 की* ने उनके दुर्बल पक्ष को उभारा नहीं, अपितु सबल पक्ष से पाठक का परिचय करवाया।

सन् 1878 में जन्में *डॉ0 फ्रेन्क0 ई0 की* की चर्च मिशनरी सोसायटी की ओर से सन् 1908 में जबलपुर आए। वे जबलपुर के मिशन स्कूल में अनेक वर्षों तक प्रिन्सिपल रहे। अब जबलपुर के गंजीपुरा में स्थित इस स्कूल का भवन लार्डगंज पुलिस थाने के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, और स्कूल का भवन नौदरा ब्रिज के पास नए भवन में स्थान्तरित हो गया है। सन् 1957 में वे स्वदेश लौट गए। प्रायः अर्धशताब्दी तक उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में कार्य किया। इतिहास उनका प्रिय विषय था। सन् 1920 में उनकी ख्याति कृति 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' प्रकाशित हुई। सन् 1931 में उनकी एक और प्रसिद्ध रचना, 'कबीर और उनके अनुयायी' (कबीर एण्ड हिज फोलोअर्स) कलकत्ता के एसोसिएशन प्रेस (वाई0एम0सी0ए0 प्रेस जिसे 'हिन्दी के स्वीकृत शोध–प्रबन्ध' के लेखक डॉ0 उदय भानुसिंह ने आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस लिखा है) से प्रकाशित हुयी। उस पुस्तक के लिए लंदन विश्वविद्यालय ने उन्हें पी0एच0डी0 प्रदान की थी।

"एन्शियंट इंडियन एजुकेशन" (संशोधित संस्करण "ए हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान," आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) और "ए हिस्ट्री ऑफ दि सीरियन चर्च इन इंडिया" (प्रकाशन हिन्दी एस0पी0सी0 के दिल्ली द्वारा)। ये अभी भी लन्दन में वृद्धावस्था को बड़े आनन्द और सन्तोष के साथ भोग रहें हैं।

प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने डॉ0 की से पत्र लिखकर उनसे पूछा था कि वे हिन्दी साहित्य में इतनी रूचि क्यों लेते थे? उन्होंने कहा, "मुझे शिक्षा–कार्य के लिए क्षेत्रीय भाषा सीखनी थी। जबलपुर में हिन्दी भाषा का प्रचलन है। अतएव मैं उसे सीखते–सीखते उसमें रूचि लेने लगा। मुझे भारत और भारतवासियों से बहुत प्रेम है।..........इन्हीं कारणों से मैंने हिन्दी साहित्य का गहन अध्ययन किया और पुस्तकें लिखीं।" (डॉ0 जे0एच0 आनन्द, "पाश्चात्य विद्वानों का हिन्दी साहित्य", 1982, कृष्णा ब्रदर्स अजमेर, पृष्ठ– 367)

स्वीडिश मिशन के शिक्षा–शास्त्री डेनिएलसन – स्वीडन के चार तरूण 14 दिसम्बर 1877 को मुम्बई के बन्दर स्थान में उतरे। उनमें से एक थे ए0जी0 डेनिएलसन, जिन्होंने अपने बाल साहित्य से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। उन्होंने अपने अड़तालीस वर्षीय भारतीय प्रवास में हिन्दी को अनेक स्वीडिश उपन्यास और कहानियाँ दी हैं।

छिन्दवाड़ा (म0प्र0) स्वीडिश मिशन का केन्द्र था। तत्पश्चात् उनका कार्य सागर, नरसिंहपुर और बैतूल में फैल गया। उपरोक्त नगरों में गौंड–भील आदिवासियों में स्कूल खोलकर आधुनिक शिक्षा के माध्यम से हिन्दी भाषा का प्रसार किया। भाषा के सम्बन्ध में उनकी नीति थी कि गोंडों के मध्य उन्हें हिन्दी भाषा अपनानी होगी। स्वीडिश पाश्चात्यों ने अपने स्कूलों, नार्मल स्कूलों के लिए पुस्तकें स्वयं तैयार की थीं। भाषा और कृतित्व की दृष्टि से ए0जी0 डेनिएलसन उल्लेखनीय व्यक्ति हैं। ध्यान देने की बात यह भी है कि उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी रचनाएँ प्रकाशित की गई, जिन्हें वे वृद्धावस्था के अवकाश–क्षणों में लिखे गये थे। उनकी मृत्यु 16 मार्च 1926 को छिन्दवाड़ा में हुई थी। उनके सम्पूर्ण साहित्य में मौलिक और अनुदित रचनाएं हैं। कुछ आध्यात्मिक पुस्तकें हैं, और कुछ पाठ्य पुस्तकें एवं शेष कहानी संकलन। उन्होंने संभवतः श्रेष्ठ स्वीडिश साहित्य हिन्दी के माध्यम से हमें पढ़ने को दिया है।

उनकी कुछ कथा पुस्तकें पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर लिखी गयी थीं। जो प्रायः स्वीडिश

भाषा की पुस्तकों के अनुवाद थे।

1– परमप्रधान की शरण में आना (स्वीडिश उपन्यास), 2– नौ रत्न संग्रह (स्वीडिश कहानियों का संग्रह), 3– नौ मनभावनी कथाएँ (स्वीडिश कहानियों का संग्रह), 4– राजकुमार थूरे की कथा (अनुवाद), 5– बसन्त और बसन्ती नामक दो जुड़वा बालकों की कथा (अनुवाद), 6– तीन मनोरंजन कथाएँ (अनुवाद), 7– सोहन और मोहन नाम दो लड़कों की कथा (अनुवाद), 8– शांति के प्रधान की सेवार्थ (अनुवाद), 9– पाया हुआ बच्चा (अनुवाद)।

डेनिएलसन द्वारा स्थापित प्राइमरी, हाईस्कूल एवं कॉलेज छिन्दवाड़ा के आदिवासियों की सेवा में आज भी कार्यरत हैं। (डॉ जे0एच0 आनन्द, "पाश्चात्य विद्वानों का हिन्दी साहित्य", कृष्णा ब्रदर्स अजमेर, 1982, पृष्ठ– 275)।

<u>डॉ0 मारविन हेनरी हार्पर</u> – डॉ0 हार्पर सितम्बर 1927 में जबलपुर आए थे और जबलपुर के लेनॉर्ड थियोलॉजिकल कॉलेज में अध्यापन करने लगे। इनका सबसे बड़ा योगदान भारतीय चर्च के इतिहास को लिखने में है। इन्होंने ही लेनॉर्ड थियोलॉजिकल कॉलेज को दूसरे सम्प्रदाय के छात्रों के लिए खोल दिया था। इन्होंने ही अपने प्रयासों से छात्रों को वर्ष में कुछ दिनों के लिए गाँव में रहने को उत्प्रेरित किया था कि वे गाँव में रहकर गाँव वालों की समस्या को निकट से देखें। इनके प्रयासों से ही छात्र भिन्न–भिन्न समय पर आयोजित होने वाले मेलों में भाग लेते थे। यह इन्हीं का योगदान है कि लेनॉर्ड थियोलॉजिकल कॉलेज एक ओपेन थियोलॉजिकल कॉलेज बन सका।

इनके प्रयासों से ही कॉलेज में ऑडियो विजुअल डिपार्टमेंट (दृश्य–श्रृव्य विभाग) आरम्भ किया गया, जो आगे चलकर कैरव्ज के रूप में परिवर्तित हुआ। इन्होंने ही लेनॉर्ड थियोलॉजिकल कॉलेज में अनुसंधान विभाग खोला। जिसके परिणामस्वरूप लेनॉर्ड थियोलॉजिकल कॉलेज का पुस्तकालय देश का प्रमुख पुस्तकालय बन सका, जहाँ शोध छात्र आकर 18वीं और 19वीं शताब्दी के हिन्दू समाज की सामाजिक और धार्मिक स्थितियों का विशेष अध्ययन कर सकते हैं। इन्होंने ही मसीही धर्म गुरूओं को उत्प्रेरित किया कि वे हिन्दू धर्म के धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करें और हिन्दू धर्म को अच्छे ढंग से समझ सके।

डॉ0 हार्पर को जबलपुर के पुरानी पीढ़ी के लोग बड़े आदर के साथ स्मरण करते हैं कि उन्होंने भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों (धर्मावलम्बियों) में संवाद की परम्परा की शुरूआत की। वह विभिन्न अवसरों पर कॉलेज में भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों के धार्मिक अगुओं को प्रवचन के लिए बुलाते थे।

<u>डॉ0 हेनरी एच0 प्रेसलर</u> – डॉ0 हेनरी एच0 प्रेसलर भारत के आदिम धर्मों के विशेषज्ञ के रूप में विश्वविख्यात हैं और उन्होंने भारत में लगभग 40 वर्ष के प्रवास के दौरान भारत के आदिम जनजाति से संबन्धित अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया और उनके अनेक शोध लेख विदेशों की पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। इन ग्रन्थों एवं शोध पत्रों ने विदेशी विद्वानों का ध्यान भारत की ओर आकर्षित किया था। इन ग्रन्थों एवं लेखों को लिखने में डॉ0 प्रेसलर ने किताबों की सहायता नहीं ली थी वरन् स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव और ज्ञान उन स्थलों पर जाकर एवं वहाँ की आदिम जनजातियों के बीच में रहते हुए लिखा था। इनकी सर्वोत्तम ग्रन्थ का नाम 'Primitive Religions In India' जिसके अनेक संस्करण एवं विभिन्न भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। यह न केवल लेखक थे वरन् संगीतज्ञ भी थे। इन्होंने आदिम जनजाति के अनेक लोकगीतों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है। इनकी तमाम रचनाओं का संग्रह यू0एस0ए0 के वर्जीनिया राज्य की 'यूनीवर्सिटी ऑफ वर्जीनिया लाइब्रेरी के पुरातत्व विभाग' में सुरक्षित है। (Indian witness, The newspaper and Review of the methodist church In India, Vol- cxvi, Lucknow, 15 Feb 1986)।

डॉ0 प्रेसलर सन् 1937 में भारत आए थे और सन् 1973 में रिटायर्ड हुए। इस 40 वर्षों की अवधि में ये नैनीताल, वाराणसी में पुरोहिताई करते रहे। जब ये जबलपुर के लेनॉर्ड थियोलॉजिकल कॉलेज के प्राचार्य नियुक्त हुए इनके जीवन में परिवर्तन आया और इन्होंने जबलपुर के आदिम जनजातियों के धर्म एवं जीवन पद्धति का अध्ययन आरम्भ किया। कदाचित यह एकमात्र विदेशी विद्वान है जिन्होंने बुन्देलखण्ड के तमाम छोटे–बड़े मन्दिरों का गहन अध्ययन किया।

इनका जन्म यू0एस0ए0 में सन् 1909 में हुआ था और मृत्यु 89 वर्ष की उम्र में 7 नवम्बर 1998 में यू0एस0ए0 के फारगो नामक शहर में हुआ। (Archway, Annual Magazine, Leonard Theological college, 1999-2000, page- 63)।

छतरपुर के आरम्भिक मिशनरी और उनका सेवा–कार्य

बुन्देलखण्ड का सबसे पिछड़ा इलाका छतरपुर नगर तथा उसके आस–पास के सैकडों किलोमीटर में फैले हजारों गाँव थे। आरम्भिक मिशनरी जो प्रायः इंग्लैण्ड एवं यू0एस0ए0 से 19वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में भारत आए थे वे प्रायः मध्यम वर्ग के थे और उन्हें उनकी मिशन संस्थाओं ने उन्हें भारत के ग्रामीण इलाकों में पायोनीयर सेवा–कार्य, (शिक्षा, स्वास्थ्य)करने को भेजा था और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन्होंने यह कार्य बहुत समर्पित भाव से किया, यहाँ तक कि उनमें से अनेक मिशनरी यहीं, भारत की पवित्र भूमि में जीवन की अन्तिम साँस ली। ऐसे ही कुछ मिशनरी छतरपुर में भी सन् 1892 में आए थे और इनको भेजने वाली संस्था थी फ्रेण्ड्स मिशन (क्वेकर)। आरम्भिक मिशनरियों का प्रथम प्रतिवेदन (रिपोर्ट) जिसको डेलिया फिस्ट्लर (Delia Fistler) ने 12 जुलाई 1904 को अपने मिशन केन्द्र अमेरिका भेजा था। डेलिया फिस्ट्लर 1892 में बुन्देलखण्ड आयीं थीं और 1916 तक यहीं रहीं। सौभाग्यवश छतरपुर के फ्रेण्डस मिशन के तमाम सेवा कार्यों का अर्थात् लगभग 100 वर्षों का इतिहास– ऐतिहासिक, दस्तावेज–अब हमें उपलब्ध है। यह भी सौभाग्य की बात है कि प्रथम मिशनरियों के कनवर्टों की सन्तान छतरपुर तथा अन्य नगरों में उपलब्ध है जिनसे वार्तालाप के द्वारा आरम्भिक मिशनरियों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है। फ्रेण्डस मिशन ने विशेष कार्य महिलाओं के मध्य में किया। शायद इसका कारण आरम्भिक मिशनरी का एक महिला होना ही है।

डेलिया फिस्ट्लर तथा एस्थर बेयर्ड – यों तो फ्रेण्ड्स मिशन की ओर से आने वाली और भी महिलाएँ मिशनरी थीं किन्तु बुन्देलखण्ड में इन दो महिलाओं ने ही आरम्भिक सेवाकार्य किया। ये दोनों जल मार्ग से मुम्बई 28 दिसम्बर 1892 में मुम्बई बन्दरगाह में उतरी थीं और वहाँ से सीधे मथुरा आयीं थीं। पहले उन्होंने आरम्भिक चार महीने तक हिन्दी भाषा सीखी और आरम्भिक महीनों में हिमालय के नैनीताल, मसूरी हिल स्टेशनों में भाषा सीखने में समय गुजारा। एस्थर बेयर्ड मूलतः नर्स थीं और उन्होंने एक आंग्ल भारतीय लड़के को दवाखाने में कम्पाउण्ड नियुक्त किया और उसे कम्पाउण्डरी की शिक्षा दी। यह लड़का आगे चलकर यूजिन फ्रेंकलिन बेयर्ड नाम से विख्यात हुआ और एस्थर बेयर्ड का लेपालक पुत्र कहलाया।

वास्तव में 1 अप्रैल 1896 में डेलिया, एस्थर तथा एक अन्य महिला मिशनरी मार्था छतरपुर के निकट नवगाँव में आए और फ्रेण्ड्स मिशन की स्थापना की। दुर्भाग्य से इसी वर्ष छतरपुर में भयंकर अकाल पड़ा और हजारों की संख्या में गाँववासी एवं उनके पशु आदि भूख से काल कवलित हो गए। उस समय की एक सरकारी रिपोर्ट में यह कहा गया है कि दो लाख पच्चीस हजार वर्गमील के क्षेत्र में आकाल पड़ा था जिस ने छः करोड़ पचास लाख लोगों को प्रभावित किया था। इस अकाल में लगभग 9 प्रतिशत आबादी भूख से मर गयी थी (दखिए– इम्पीरियल गजेटियर ऑफ

इंडिया, 1908, पृष्ठ– 72)। इस दुर्भिक्ष में जिन बच्चों के माता–पिता भूख से मर गए थे उनको मिशन केन्द्र में लाया गया और उनके लिए अनाथालय की स्थापना की गयी। इस अनाथालय में लगभग 500 बच्चे रखे गए और शेष बच्चों को पूणे में विख्यात महाविदुषी पण्डिता रमाबाई के आश्रम में भेजा गया। पण्डिता रमाबाई तीन बार अपने जीवन में नवगॉव आयीं और अपने साथ दुर्भिक्ष से बचे हुए बच्चे और विधवाओं को अपने साथ पुणे ले गयीं। (मोरिल एम0 कॉफीन, "फ्रेण्ड्स इन बुन्देलखण्ड" बुन्देलखण्ड, मैसूर, इण्डिया, 1926, पृष्ठ– 16)।

अनाथालय के इन बच्चों के लिए नवगॉव में स्कूल आरम्भ किया गया जो मुख्यतः लड़कियों के लिए था। यह स्कूल बुन्देलखण्ड में लड़कियों का प्रथम स्कूल माना जाता है।

छतरपुर का पहला चर्च – अमरीकी फ्रेण्ड्स मिशन ने एक पत्र के द्वारा 1901 के अन्तिम महीनों में डेलिया फिस्ट्लर को यह अधिकार दिया कि वह छतरपुर (नवगाँव) में गिरजाघर की स्थापना कर सकती हैं। इस अधिकार पत्र में इस प्रकार लिखा था –

Delia A. Fistler who is now in Nowgong, India a missionary from Ohio Yearly Meeting of the Friends Church, is fully authorized by that body and by the Lord Jesus Christ Whose servant and minister she is, to organize, institute and govern a Church or Churches in said mission field, as she and her co-workers, or their successors may judge wise and right, Under the guidance of the Holy spirit and the Word of God, and that said Churches shall constitute an integral part of Ohio Yearly Meeting. (1897 का वार्षिक प्रतिवेदन, Ohio Yearly Meeting minutes (Personal Reports of All Missionary), पृष्ठ– 70)

11 अप्रैल 1902 में बुन्देलखण्ड का फ्रेण्ड्स चर्च नवगाँव (छतरपुर) में स्थापित हुआ। इस गिरजाघर के प्रथम 49 सदस्य थे और यह चर्च आस–पास के पाँच गाँव में पहले वर्ष तथा दूसरे वर्ष तीन और गाँव में धर्म–प्रचार करते थे और यह संख्या धीरे–धीरे बढ़ती गयी। इन्हीं दिनों में नवगाँव के बाजार में एक पुस्तकालय भी आरम्भ हुआ। क्योंकि कोई भी मसीही शिक्षक अध्यापन के लिए उपलब्ध नहीं था इसलिए हिन्दू अध्यापक ही अर्थात् एक महिला शिक्षिका कन्या पाठशाला में नियुक्त हुयी। महिला शिक्षिकाओं की कमी दूर करने के लिए प्रशिक्षण स्कूल भी आरम्भ हुआ। अनाथ बच्चों को अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए सन् 1904 में एक औद्योगिक प्रशिक्षण स्कूल भी आरम्भ हुआ, जिसके प्रथम वर्ष 14 अनाथ किशोर प्रशिक्षुक थे और जिसमें निम्नलिखित विषय पढ़ाये जाते थे– बाग़वानी, लोहारी, सिलाई–बुनाई, राजगीरी, चर्मकारी। इस स्कूल से अनाथालय को आर्थिक लाभ भी हुआ। यहाँ बनाया गया माल बाजार में हाथों–हाथ बिक जाता था। आगे चलकर अनाथालाय में पले–बढ़े युवक–युवतियों में विवाह भी हुआ ऐसा पहला विवाह सितम्बर 1904 में हुआ। दूल्हा–दुल्हन के क्रमशः नाम थे दलसैय्या (वर) और सुन्दरिया (वधू)। यह बुन्देलखण्ड का प्रथम मसीही विवाह संस्कार भी कहा जा सकता है।

प्रथम दवाखाना – ऐस्थर बेयर्ड प्रशिक्षित नर्स थीं और वह अपने बंगले में ही मरीजों की देखभाल करतीं थीं। जब डॉक्टर श्रीमती अबीगइल गोडार्ड उनके साथ चिकित्सा सेवा करने आयीं तो दोनों महिलाओं के गाँव–गाँव में सेवा कार्य की चर्चा होने पर अलीपुर के राजा ने नवगॉव से 19 मील दूर हरपालपुर गाँव में एक अस्पताल बनाने के लिए जमीन दान में प्रदान की और यह इच्छा जाहिर की कि इस अस्पताल में म्यादी बुखार (टायफायट), क्षय रोग, मलेरिया, और कुष्ठ रोग, चेचक, प्लेग और हैजा जैसी बीमारियों का इलाज हो। यह अस्पताल सम्भवतः छतरपुर जिले का प्रथम अस्पताल था।

अस्पताल के नर्स और डॉक्टर्स
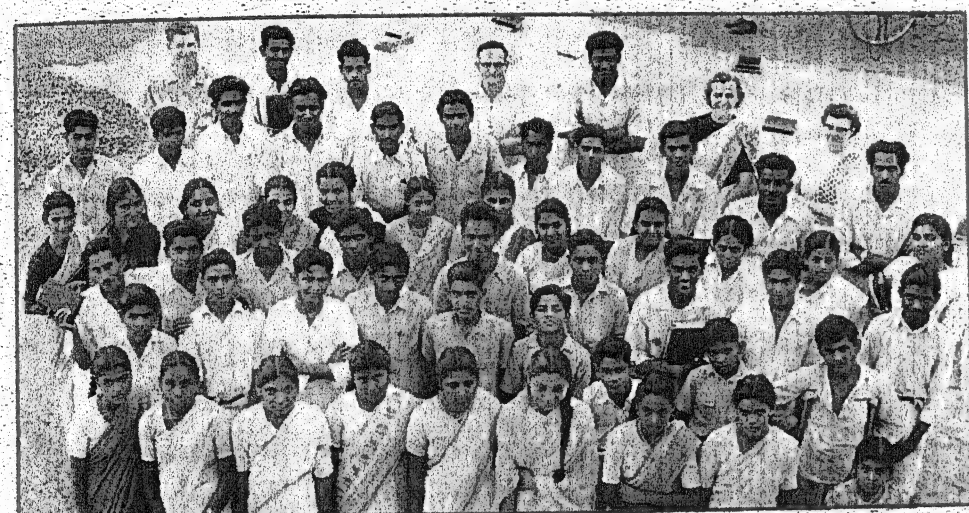
छतरपुर के कनवर्टों की प्रथम पीढ़ी (पुत्र-पुत्रियाँ)

प्रथम दवाखाना छतरपुर

क्रिश्चियन हॉस्पिटल, छतरपुर, नेत्र शिविर
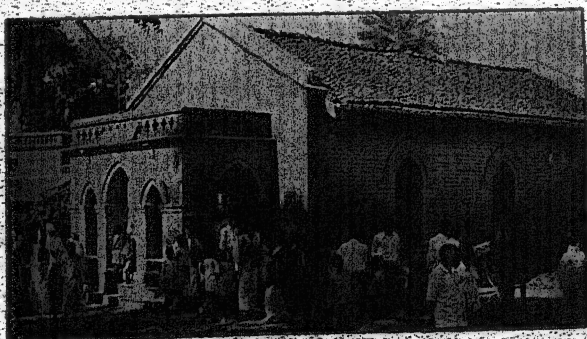
फ्रेण्ड्स चर्च, छतरपुर

इस प्रकार छोटा–सा कार्य 8 वर्षों बाद अर्थात् सन् 1906 तक छतरपुर में विशाल मिशन केन्द्र के रूप में विकसित हो गया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि फ्रेण्ड्स मिशनरी मूव्हमेंट आरम्भ में केवल महिला मिशनरी मूव्हमेंट था जिसके कारण इस मिशन ने दूर–दूर के गाँव में भी अत्यन्त प्रभावपूर्ण सेवा कार्य किया किन्तु सन् 1905 में इस सेवा कार्य में पुरूष मिशनरियों की सहभागिता होने लगी जिसके कारण नवगाँव (छतरपुर) में स्थापित मिशन कार्य छतरपुर में स्थानान्तरित हो गया जहाँ से आस–पास के लगभग 175 गाँव में भवन निर्माण (गिरजाघर, स्कूल, दवाखाने) स्थापित होने लगे।

सन् 1906 का दूसरा दुर्भिक्ष – सन् 1906 में बुन्देलखण्ड में विशेषकर वर्तमान छतरपुर जिले के आस–पास के हजारों गाँवों में दूसरी बार भयानक अकाल पड़ा। न केवल अकाल वरन् महामारी भी फैली जिसके कारण बच्चे, बुजुर्ग मरने लगे। यहाँ तक कि डेलिया फिस्ट्लर तथा अन्य महिला मिशनरी भी गम्भीर रूप से बीमार पड़ गयीं। डॉ0 गोडार्ड और एस्थर बेयर्ड हरपालपुर चिकित्सालय में अकेली महिला डॉक्टर रह गयीं। स्थिति इतनी अधिक बिगड़ी कि यू0एस0ए0 से मिशनरी महिलाएँ उनकी सहायता के लिए आयीं। इस महामारी और अकाल ने महिला मिशनरियों के स्वास्थ्य पर इतना बुरा प्रभाव डाला कि डॉ0 अबी गोइल गोडार्ड गम्भीर रूप से बीमार पड़ गयीं और 12 अगस्त 1908 को उनका देहान्त हो गया। उन्होंने केवल साढ़े चार वर्ष नवगॉव एवं छतरपुर के गाँवों में सेवा कार्य किया किन्तु इस सेवा कार्य ने फ्रेण्डस मिशन की जड़े और भी मजबूत कर दी। उनकी कबरे आज भी नवगाँव के मसीही कब्रिस्तान में स्थित है।

कंजड़पुर गाँव अर्थात् चोरों का गाँव? – कंजड़पुर गाँव का उल्लेख करना आवश्यक है। यह गाँव नवगाँव मिशन से एक किलोमीटर दूर है, जहाँ ब्रिटिश सरकार ने कंजड़ जाति जिनका पैतृक व्यवसाय चोरी करना था ब्रिटिश सरकार द्वारा बसाए गए थे और जिन्हें सरकार ने मकान, जमीन और पालतू पशु दिए थे ताकि वे लोग चोरी का काम न करके खेती बाड़ी और पशु–पालन करे। इसी कंजड़ जाति के लोगों में नवगाँव मिशन के लोगों के प्रचारकों ने स्कूल खोला जो इतना सफल रहा कि धीरे–धीरे वह स्कूल बढ़ता गया कि जब मई 1911 में ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधि कर्नल मेघावरन् उस गाँव में दौरे पर आया तो स्कूल की प्रगति देखकर उसने न केवल स्कूल की आर्थिक सहायता की वरन् कंजड़पुर गाँव में मिशन कार्य और बढ़ाने के लिए मिशन को आदेश दिया। यहीं कैरीवुड नामक मिशनरी महिला ने लड़कियों के लिए एक नया स्कूल आरम्भ किया जिसमें पहले वर्ष कंजड़ जाति कि 45 लड़कियों ने प्रवेश लिया। बाद में यही स्कूल हाईस्कूल में परिवर्तित हुआ और इसकी आरम्भिक शिक्षिकाएँ अनाथालय की ही लड़कियाँ थीं। आज वर्तमान समय में यह कंजड़पुर गाँव एक सुसभ्य कस्बा है और निःस्पृह महिला मिशनरियों का स्मरण दिलाता है।

डेलिया फिस्ट्लर का देहांत – 4 जनवरी 1913 को डेलिया फिस्ट्लर एक दीवाल से टकरा गयीं जिसके कारण उनके बाहों की हड्डी टूट गयी जो आगे चलकर इतनी बढ़ी कि उन्हें यह अनुभव होने लगा कि इस संसार से उनके प्रस्थान का समय आ गया है। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि उनके देहान्त के पूर्व उनका स्थान लेने के लिए कोई मिशनरी महिला भारत आए। डेलिया फिस्ट्लर का स्वास्थ्य इतना गिरा कि उन्हें भारत से प्रस्थान करना पड़ा। वह 7 फरवरी 1914 में यू0एस0ए0 पहुँची (Ohio Yearly Meeting Minutes, 1914, Page- 44), और 6 अगस्त 1916 में 49 वर्ष की अल्पायु में उनका देहान्त हो गया। (Rachel Pim to EB, 21 Aug. 1916)। उनकी मृत्यु पर उनकी सहयोगी एस्थर बेयर्ड ने निम्नलिखित पत्र में अपने भावोद्गार प्रकट किए हैं –

She did not rest satisfied until she was in the heart of this great unworked district of Bundelkhand. The Gospel had never been preached here until her voice firts proclaimed it in 1896.

The always frail body had brought a latent heart trouble to India, which developed quickly in this trying climate, and her first year hear she was told by the head of the English medical service that she possibly might live five years and she might drop dead any minute..........Her heart was here and she longed to stay on and suffer and pray and end her days amongst the people she loved.......She went from us two and one half years ago, with hardly a hope that she should see this place and the people she loved again.

Twenty years go when Delia Fistler came to this district it was all in dense darkness, the Gospel message had never been given and there was not a Christian. Now thousands have heard, some have accepted, a Christian community is letting its light shine in the still dense darkness, poor orphan children are still taken in and trained for lives of use fulness and service, two dispensaries are relieving the sick and at the same times speaking the words of life, schools are being taught, and the Gospel is being preached.

She hath done what she could, and her works do follow her.

The music of her life is no-wise stilled, but blended so with songs around the throne of God, that our poor ears no longer hear it. (FON. Vol - 9, No - 1, Dec. 1916, Page - 6)।

जब उनके देहान्त की खबर छतरपुर पहुँची तो सम्पूर्ण छतरपुर शहर में शोक की लहर व्याप्त हो गयी। छतरपुर में लोग उन्हें प्यार से *"प्यारी बड़ी मिस साहिबा"* कहा करते थे। वह उनको माँ, नेत्री और आदर्श महिला मानते थे। बुन्देलखण्ड फ्रेण्ड्स चर्च मन्थली मीटिंग मिनिट्स (BFC MM Minutes, 8 Nov. 1916) में उनके बारे में यह टिप्पणी अंकित की गयी है –

"After twenty-four years of loving, self-sacrificing service for India, God has called her to be with himself ". (BFC MM Minutes, 8 Nov. 1916). They noted she had lived twenty years in Bundelkhand. "Her work in this barren district of Bundelkhand is fully known to us who accompanied her from village to village through the jungles, so that when the news of her death reached here, not only we, her adopted children, wept for her, but those non-Christian people, too, among whom she had preached the Gospel". They spoke of her wisdom and of her compassion. "When any of us became ill, she came to our houses......and kneeling by the bed would take our name in prayer, the answer of which many of us have experienced and are safe to this day". They spoke of her frailty. "Even the smallest of us remember how many times she would get up in the Church to deliver the message and would have to sit down from weakness, saying, 'Who will do

this work for God in my place?' We love and mourn her as our own mother, and can never forget her great love for us". (FON. Vol - 9, No - 1, Dec. 1916, Page - 6) ।

एस्थर बेयर्ड – दि फ्रेण्ड्स फॉरेन मिशनरी सोसायटी (यू0एस0ए0) ने डेलिया फिस्टलर की मृत्यु के उपरान्त एस्थर बेयर्ड को 1916 में भारत मिशन का अध्यक्ष नियुक्त किया। इनकी अध्यक्षता में कंजड़पुर गाँव का कार्य बहुत तेजी से फैला और अनेक नयी मिशनरी महिलाएँ भी छतरपुर में आयीं। इनकी देख–रेख में चर्मकारों और कंजड़ों के बच्चों के लिए नवगाँव बस्ती एवं कंजड़पुर में स्कूल, लड़कियों के लिए अनाथालय, लड़कों के लिए अनाथालय, औद्योगिक स्कूल, हरपालपुर में स्कूल, दवाखाना, नवगाँव में दवाखाना एवं महिलाओं के लिए विशेष कार्य संचालित होता था। यद्यपि यह समय प्रथम विश्व युद्ध का था और नवगॉव में सैनिक छावनी थी जहाँ आज भी सैनिक छावनी है। ब्रिटिश सरकार ने नवगाँव के मिशनरियों से विशेषकर रेडक्रॉस सोसायटी के लिए बिस्तर, तकिया कवर, चादरें, रजाइयाँ तथा अन्य प्रकार की सामग्री माँगी। अद्भुत बात यह है कि पन्ना राज्य के महाराजा ने एस्थर बेयर्ड के इन कार्यों में पूर्ण सहयोग देने के लिए आर्थिक सहायता दी और नवगाँव का औद्योगिक स्कूल इन वस्तुओं को तैयार करने में लगा रहा। वास्तव में एस्थर बेयर्ड का कार्य इतना लोकप्रिय हुआ कि उनकी आर्थिक सहायता के लिए अमेरिका में वुमेन्स मिशनरी यूनियन ऑफ फ्रेण्ड्स इन अमेरिका (The Women's Missionary Union of Friends in America) ने एस्थर ई0 बेयर्ड लव फन्क नाम से धनराशि एकत्र करने का आन्दोलन आरम्भ किया। इस धनराशि से नवगॉव एवं छतरपुर के कार्यों में अद्भुत विकास हुआ। यहाँ तक कि छतरपुर के महाराजा ने 31 मार्च 1919 में छतरपुर में एस्थर बेयर्ड को भूमि अनुदान में दी कि वे लोग अपने रहने के लिए नए निवास स्थान बना सके। एस्थर बेयर्ड को छतरपुर फ्रेण्ड्स मिशन का निर्माता और कुशल प्रबन्धक माना जाता है। जैसे–जैसे छतरपुर में मिशन का कार्य बढ़ता गया, वैसे–वैसे एस्थर बेयर्ड की माँग हर जगह बढ़ती गयी। वास्तव में छतरपुर के महाराजा और दीवान यह चाहते थे कि छतरपुर का विकास बेयर्ड के सहयोग से जितना अधिक किया जा सके वह हो और इस विकास कार्य के लिए उन्होंने बेयर्ड से कहा कि वह अपने मिशन बोर्ड से निवेदन करे कि वह और भी महिला डॉक्टर एवं अन्य मिशनरी सेवकों को विशेषकर शिक्षकों को भेजे। अतः बेयर्ड के प्रयत्नों से अनेक मिशनरी लगातार छतरपुर में आते रहे, जिन्होंने छतरपुर तथा आस–पास के गाँव में विशेषकर गाँव के किसानों को नई–नई फसल उगाने के तरीके सिखाने के लिए आए – ग्रीष्म ऋतु में होने वाली फसल, पानी की व्यवस्था नहर, कुएँ एवं भूमि जल के लिए पम्प आदि।

एस्थर बेयर्ड की सेवाकार्यों की कीर्ति समस्त उत्तर भारत में इतनी अधिक फैल चुकी थी कि 1 जनवरी 1930 में भारत के ब्रिटिश वाइसराय ने उन्हें *'कैसर–ए–हिन्द'* का रजक पदक दिए जाने की घोषणा की और यह भी कहा कि वह स्वयं नवगॉव आकर उन्हें यह पदक प्रदान करेंगे। इस तिथि के पूर्व ही 5 दिसम्बर 1929 को स्वयं वाइसराय तथा अन्य उच्च ब्रिटिश अधिकारी नवगॉव आए और भव्य आयोजन में स्वयं अपने हाथ से यह पदक प्रदान किया। उनके साथ वाइसराय की पत्नी लेडी इरविन भी थी एवं छतरपुर के महाराजा और उनकी पत्नी भी नवगाँव का अस्पताल देखने आयीं। यह सर्वोत्तम पुरस्कार था। नए अस्पताल का उद्घाटन 26 जनवरी 1931 को किया गया।

एस्थर बेयर्ड ने 72 वर्ष की आयु में अपने अनुभवों को एक ग्रन्थ के रूप में लिखा है जो वास्तव में उनकी आत्मकथा है– *एडवेन्चरिंग विद् गॉड (Adventuring with God)*। यह आत्मकथा अत्यन्त पठनीय है और छतरपुर एवं उसके गाँवों के आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक

नवगाँव में प्रथम मिशन केन्द्र
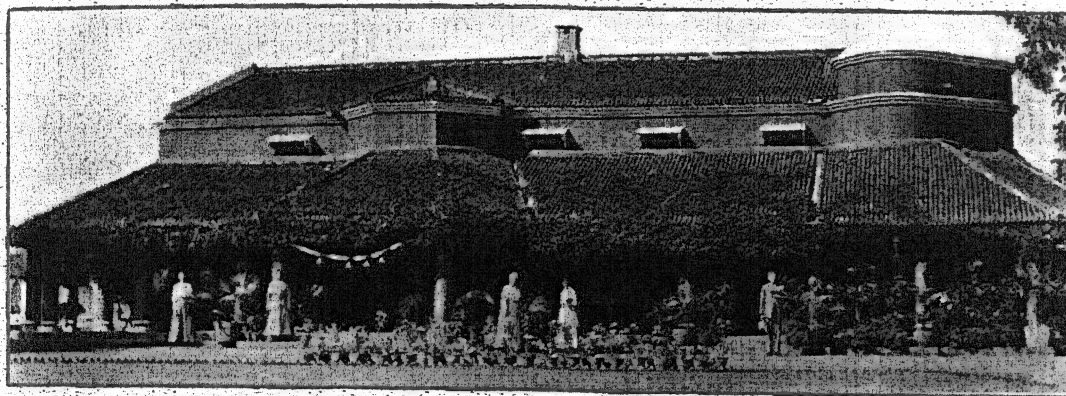
नवगाँव मिशन बंगला
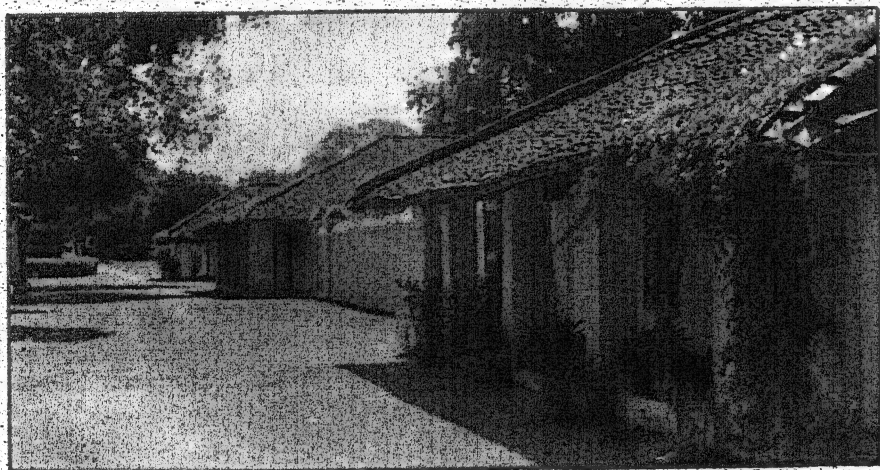
नवगाँव में अनाथालय
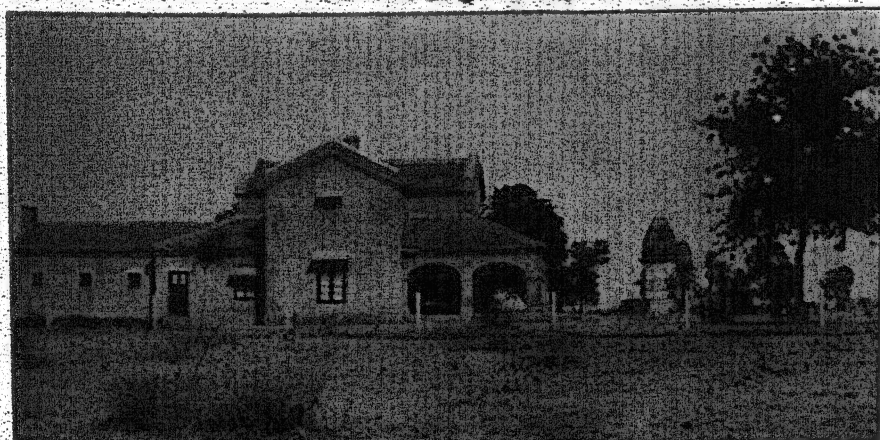
प्रथम मिशन बंगला छतरपुर

विचारों को समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस महान महिला मिशनरी जो छतरपुर की पायोनियर मिशनरी थी, का देहान्त 1 सितम्बर 1950 को यू0एस0ए0 में हुआ। अपनी मृत्यु के पूर्व स्वयं एस्थर बेयर्ड ने अपने हाथों से यह वाक्य लिखा था जो एक सफल जीवन को परिभाषित करता है – "Since I have retired, I have no greater joy than to hear that my children walk in truth" (अर्थात् क्योंकि मैं अब अवकाश प्राप्त कर चुकी हूँ, अतः अब मुझे इससे अधिक और आनन्द की अनुभूति किसी और बात से नहीं होगी कि छतरपुर के निवासी जो मेरे पुत्रवत् हैं, सत्य मार्ग पर चल रहे हैं। (FON. Vol- 39, No. 9, November 1950, Page- 4)

एवर्ट कटेल (Everett Catteal) – बुन्देलखण्ड के फ्रेण्ड्स मिशन के इतिहास काल सन् 1936–1957 का समय एवर्ट कटेल का युग कहा जाता है जिन्होंने बुन्देलखण्ड विशेषकर छतरपुर सम्भाग की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दशा पर विशेष प्रभाव डाला है। वास्तव में एवर्ट कटेल को फ्रेण्ड्स मिशन की तीसरी पीढ़ी में गिना जाता है। अब तक फ्रेण्ड्स मिशन छतरपुर सम्भाग में अपने पैर जमा चुका था। एवर्ट कटेल सपरिवार 2 सितम्बर 1936 को उन्होंने अमेरिका से प्रस्थान किया और सीधे हरपालपुर 12 अक्टूबर 1936 को पहुँचे, जहाँ एस्थर बेयर्ड ने उनका गर्मजोशी से स्वागत किया।

अब तक फ्रेण्ड्स मिशन का लक्ष्य छतरपुर सम्भाग की आर्थिक और सामाजिक उन्नति करना था किन्तु एवर्ट कटेल ने अपना बुन्देलखण्डी भाषा में धार्मिक, साहित्य की रचना में लगाया ताकि समाज के निम्न वर्ग अर्थात् दलित वर्ग, अथवा चर्मकारों (चमार) के मध्य मसीही धर्म का प्रचार–प्रसार किया जा सके। इस कार्य में उस युग के महान मिशनरी– द्वय J. Waskom Pickett (जे0 वास्कम पिकेट), डॉ0 डोनाल्ड मेघावरन (Dr. Donald McGavran) का अनुसरण किया। ये दोनों मिशनरी उत्तर प्रदेश एवं मध्यप्रदेश में समाज के तथाकथित निम्न वर्गों में सामूहिक धर्म परिवर्तन आन्दोलन चलाने में विख्यात रहे हैं। एस्थर बेयर्ड ने आरम्भ में नवगाँव के चर्मकारों में सेवा कार्य किया तो था पर उन्होंने धर्म परिवर्तन करने का प्रयास नहीं किया था। इस कार्य को एवर्ट कटेल ने पूरी तन्मयता से किया और एक संस्था स्थापित की जिसका नाम था "क्रिश्चियन एण्डेवर सोसायटी (Christian Endeavor Society)," जो आज भी कार्यरत है। यह बुन्देलखण्ड की पहली एवं महत्वपूर्ण संस्था थी, जिसने निम्नवर्ग के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान दिया। एवर्ट कटेल ने इस कार्य के हेतु एक बाइबिल स्कूल भी आरम्भ किया जहाँ समाज के निम्नवर्ग में धर्म प्रचार एवं सेवाकार्य करने के लिए विशेष शिक्षा दी जाती थी। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि "भक्त सिंह" सिक्ख कनवर्ट ने इस बाइबिल स्कूल में छात्रों को आत्म जागृति का विशेष प्रबोधन दिया था जिसके परिणामस्वरूप नवगाँव एवं छतरपुर में आत्मजागृति की अनेक सभाएँ होती रहीं जिनसे समाज के तथाकथित निम्न वर्ग अर्थात् अछूत चर्मकारों को भी आत्म जागृति का बोध हुआ। उस समय बुन्देलखण्ड की सम्पूर्ण आबादी का 15 से 20 प्रतिशत ये ही चर्मकार (चमार) थे। एवर्ट कटेल ने आरम्भ में इन चर्मकारों का विशेष अध्ययन किया। मेघावरन रिपोर्ट 1938 के अनुसार, एवर्ट कटेल ने सर्वप्रथम अपने छात्रों को यह सुझाव दिया कि वे– *'Their gods, fears, marriage customs, sins, oppressions, relationships should be studied. Funeral feasts, weddings, sabhas (meetings) should be attended by Christians......Each evangelist should get to know the names of at least 1,000 of them."*

उस समय नवगाँव एवं छतरपुर में लगभग 25,000 चर्मकार थे और उनमें से साक्षरों की संख्या प्रायः 120 थी। एवर्ट कटेल ने इन साक्षरों को धार्मिक, साहित्य देने की योजना बनायी और

इस बात पर जोर दिया कि कनवर्ट अपने गाँव में ही रहेंगे और अपना पुश्तैनी कारोबार करते रहेंगे। उन्हें उनकी जड़ों से काटकर अलग नहीं किया जाएगा।

एवर्ट कटेल का यह विश्वास था कि यदि चर्मकार मसीही–धर्म अपना लेंगे तो उनकी देखा–दाखी समाज के अन्य निम्न वर्ग जैसे – सफाई कामगार (बसोर), और अहीर (चरवाहा) भी आने लगेंगे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि छतरपुर एवं नवगाँव के पुराने मिशनरियों ने एवर्ट कटेल का आरम्भ में विरोध किया। दूसरा अवरोध स्वयं एवर्ट कटेल के गिरते हुए स्वास्थ्य ने उत्पन्न किया और उन्हें मई 14, 1939 को स्वास्थ्य सुधार के लिए आस्ट्रेलिया जाना पड़ा। उन्हें आस्ट्रेलिया में पूर्ण विश्राम मिला और पुनः स्वास्थ्य लाभ कराकर वह 4 अक्टूबर 1939 अर्थात् लगभग 8 माह बाद पुनः बुन्देलखण्ड लौटे।

यद्यपि जो सफलता बिशप पिकेट एवं डॉ0 मेघावरन को उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में मास कन्वर्ज़न में मिली थी वैसी सफलता एवर्ट कटेल को बुन्देलखण्ड में नहीं मिली। एवर्ट कटेल का सबसे बड़ा कार्य था, जो इतिहास में सदा अमर रहेगा, वह था "बुन्देलखण्डी भाषा का सर्वप्रथम व्याकरण तैयार करना, बाइबिल का बुन्देलखण्डी भाषा में सर्वप्रथम अनुवाद करना एवं बुन्देलखण्डी भाषा में अपने स्कूल के लिए धार्मिक, साहित्य की रचना करना।" इस बुन्देलखण्डी व्याकरण को लिखने में एवर्ट कटेल की पत्नी कैथरीन ने भी सहयोग दिया था और जो भी मिशनरी बुन्देलखण्ड आता था उसको वह बुन्देलखण्डी बोली सिखाने का प्रयास करतीं थीं। यह पाठ्य पुस्तक एवं बुन्देलखण्डी व्याकरण तथा बाइबिल का नया नियम जिसका अनुवाद एवर्ट कटेल ने बुन्देलखण्डी भाषा में किया था, बुन्देलखण्डी भाषा में प्रकाशित प्रथम पुस्तकें हैं। ये पुस्तकें सम्भवतः झाँसी के प्राचीन पुस्तकालयों में उपलब्ध हों। नया नियम लन्दन में बाइबिल सोसाइटी के पुस्तकालय में उपलब्ध है। इनमें से आरम्भिक पुस्तकें झाँसी के छापाखाना *'विन्ध्य प्रेस'* से प्रकाशित हुयीं थीं। इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय इतिहास ग्रन्थ है *"A Century of Planting"* इसके लेखक और प्रकाशक है – E. Anna Nixon, 1985, Friends Foreign Missionary Society Evangelical Friends Church - Eastern Region 1201 30th street NW, Canton, Ohio - 44709 (U.S.A.).

एवर्ट कटेल ने लगभग 21 वर्ष बुन्देलखण्ड में अपनी सेवाएँ दीं, विशेषकर बुन्देलखण्डी भाषा का व्याकरण एवं प्रथम पाठ्य पुस्तकों के द्वारा। यह सपरिवार जुलाई के अन्तिम दिन 1957 को स्वदेश लौट गए और इस प्रकार फ्रेण्ड्स मिशन का अन्तिम सेवाकार्य समाप्त हुआ। यद्यपि इसके बाद फ्रेण्ड्स मिशन का नेतृत्व स्थानीय लोगों के हाथ में रहा किन्तु वे इस विस्तृत कार्य को सम्भालनें में सक्षम प्रमाणित नहीं हुए।

बुन्देलखण्ड की पहली महिला डॉक्टर – छतरपुर का और महत्वपूर्ण व्यक्तित्व है जिसकी चर्चा करना आवश्यक है। वह व्यक्तित्व *"डॉ0 ग्रेस जोन्स सिंह"* है। जो सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड की प्रशिक्षित प्रथम महिला डॉक्टर थीं। इनके पति मोतीलाल बाइबिल स्कूल के संस्थापक एवं विख्यात धर्म–प्रचारक हुए हैं। यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि मोतीलाल छतरपुर के अनाथालय का ही एक बच्चा था, जिस अनाथालय की स्थापना डेलिया फिस्ट्लर ने की थी। ग्रेस जोन्स ने 28 अक्टूबर 1924 में प्रशिक्षण हेतु प्रवेश लिया था (EB Diary, Oct 24, 28, 1924) और 1929 में प्रशिक्षण के पश्चात् छतरपुर की डिस्पेन्सरी में अपना सेवाकार्य आरम्भ किया और धीरे–धीरे, जैसे–जैसे बुन्देलखण्ड के अन्य नगरों मे दवाखाना, मिशन के अस्पताल आरम्भ होते गए, जैसे नवगॉव, छतरपुर, हरपालपुर, मल्हेड़ा, बिजावर, अजयगढ़, पन्ना, परईरिया आदि वैसे–वैसे डॉ0 ग्रेस जोन्स

अपने निजी पुस्तकालय में वेरियर एल्विन

बुन्देलखण्डी व्याकरण के प्रथम रचयिता
एवर्ट कटेल

बुन्देलखण्ड की प्रथम महिला डॉक्टर
ग्रेस जोन्स सिंह

जोएल थॉमस जेनवियर बुन्देलखण्ड
का प्रथम धर्म प्रचारक

बुन्देलखण्ड (मण्डला) की आदिम
जनजाति महिलाएँ

सिंह का कार्य बढ़ता गया। वास्तव में डॉ0 ग्रेस जोन्स सिंह ने नेपाल में भी कुछ समय तक सेवाकार्य किया। ए सेन्चुरी ऑफ प्लान्टिंग के लेखिका ने इन शब्दों में डॉ0 ग्रेस जोन्स सिंह के सेवाकार्य एवं उनके व्यक्तित्व के विषय में इस प्रकार लिखा है – *She was a prestigious and highly respected woman in the community, Church, and Mission. (Page - 297)*

वेरियन एल्विन – अभी तक हमने बुन्देलखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के सेवाकार्यो से संबन्धित कुछ प्रमुख मिशनरियों का जीवन चरित्र देखा। इन सबसे हटकर एक और मिशनरी था जिसने धर्म प्रचारक के रूप में बुन्देलखण्ड में प्रवेश तो किया था किन्तु उसका सेवाकार्य मसीही धर्म से बिल्कुल अलग था और आज उसकी गणना विश्व के महानतम् मानव शास्त्रीय के रूप में की जाती है उनका नाम *'वेरियर एल्विन'* है, जिन्होंने बुन्देलखण्ड के मण्डला जिले एवं छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर जिलों में रहने वाली आदिम जनजातियों का जो अध्ययन किया– एक पायोनीयर के रूप में वह न केवल भारत में वरन् विश्व में अद्भुत माना जाता है। वह इन दोनों क्षेत्रों में 25 वर्ष रहे और यहाँ रहने वाली आदिम जनजातियों से ऐसा तादात्म स्थापित किया कि उन्हें चर्च का विरोध भी सहना पड़ा।

वेरियन एल्विन अंग्रेज थे और कहा जाता है कि वह अंग्रेजों के साम्राज्यवाद के कट्टर विरोधी थे। उनका जन्म इंग्लैण्ड में 29 अगस्त 1902 को हुआ और शिक्षा–दीक्षा ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी में हुयी थी। वह एंग्लिकन चर्च के पुरोहित के रूप में नवम्बर 1927 में भारत आए थे किन्तु भारत में उन्होंने सन्यासी के रूप में रहने का निश्चय किया और पुणे में एक आश्रम की स्थापना सन् 1927 में की जिसका नाम था *'खीस्त सेवा संघ'*। वह आश्रम में 5 वर्ष तक रहे और इन्हीं दिनों वह गाँधी जी के सम्पर्क में आए और स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़े जिसके परिणाम स्वरूप चर्च को उन्हें छोड़ना पड़ा। गाँधी जी की प्रेरणा से ही उनकी रूचि भारत की जनजातियों में जाग्रत हुयी और वह मण्डला जिले में आ गए। यहाँ उन्होंने मण्डला जिले की आदिम जनजातियों के कल्याण के लिए एक आश्रम की स्थापना की। वह बिना किसी अंग्रेज सरकार की आर्थिक सहायता के 21 वर्ष तक यहीं आदिवासियों के मध्य में रहे और उनके जैसा जीवन व्यतीत किया। गौंड जनजाति के लोग उन्हें प्रेम से *'दीन–सेवक'* नाम से पुकारते थे। उन्होंने इन जनजातियों में धर्म प्रचार तो नहीं किया जिसके कारण अंग्रेज बिशप ने 1935 में चर्च से उन्हें निकाल दिया पर उनकी रूचि जनजातियों के अध्ययन में इतनी प्रगाढ़ हो गयी की उन्होंने इन जनजातियों पर अनेक विश्व विख्यात ग्रन्थ लिखे जिनके परिणाम स्वरूप सन् 1954 में पं0 जवाहर लाल नेहरू ने उत्तर पूर्व की जनजातियों के विषय में भारत सरकार के सलाहकार के रूप में नियुक्त किया। यह वेरियर एल्विन के सद्प्रयासों का ही सुफल है कि भारत के उत्तर–पूर्वी क्षेत्र में रहने वाली जनजातियों के प्रति शेष भारतवासियों एवं सरकार की सोच में परिवर्तन आया और उन्हें भी "सभ्य" समझा गया।

यद्यपि वेरयिर एल्विन की शिक्षा पुरोहित बनने के लिए हुयी थी पर वह सामान्य अर्थ में मिशनरी कभी नहीं रहे, बल्कि उन्होंने अन्य धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन बड़ी गहराई से किया, विशेषकर आदिम जनजातियों के मूल धर्मो एवं संस्कृतियों का और इस सम्बन्ध में एक आध्यात्मिक, जिज्ञासु सन्यासी के रूप में ज्ञान, भक्ति, कर्म के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। ये सब ग्रन्थ तुलनात्मक दृष्टि से रचे गए हैं और मसीही धर्म को पुनः परिभाषित करते हैं। "क्रिश्चियन ध्यान" (प्रकाशन तिथि 1930, भक्ति सम्बन्धी विचार); रिचर्ड रोली : ए क्रिश्चियन सन्यासी (1930); द रिलीजन ऑफ अडोरिंग लव (धारावाहिक रूप में खीस्त सेवा संघ रिव्यु में

अगस्त 1931 से – मई 1932 तक प्रकाशित); संत फ्रांसिस (1933)। उन्होंने गाँधी जी और भारतीय राष्ट्रीयता पर भी पुस्तक लिखी है।

वेरियन एल्विन को आज हम जिस रूप में जानते हैं, वह है उनका *'मानव शास्त्रीय'* रूप। वह विश्व के महानतम् मानवशास्त्रीय के रूप में गिने जाते हैं। उनकी तमाम रचनाएँ हमने इस परिच्छेद के अंत में दी हैं। यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है कि अपनी मृत्यु के पूर्व (मृत्यु, शिलॉग, 1964) उन्होंने अपनी आत्मकथा पूर्ण कर ली थी– शिलॉग, जुलाई 1963। उनकी आत्मकथा 'दि ट्राइबल वर्ल्ड ऑफ वेरियर एल्विन' *(The Tribal World of Verrier Elwin An Autobiography)* इस ग्रन्थ का प्रकाशन ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने सन् 1964 में किया था।

वास्तव में यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ प्रमुख विद्वानों ने एल्विन के बारे में क्या लिखा है। जैसे– वेरियर एल्विन फिलन्थ्रोपॉलोजिस्ट (1989), सम्पादक– नरी रूस्तम जी; दीन–सेवक वेरियर एल्विन्स लाईफ ऑफ सर्विस इन ट्राइबल इण्डिया, 1993, सम्पादक– डेनियल ओ, कोन्नॉर; स्कॉल जिप्सी : ए स्टडी ऑफ वेरियर एल्विन (1946); वायोलेन्स एण्ड एटोनमेन्ट : दि मिशनरी एक्सपीरिएन्स ऑफ महात्मा गाँधी, लेखक– विलियम डब्ल्यू0 एमिलसेन; सेमुअल स्टोक्स एण्ड वेरियर एल्विन इन इण्डिया विफोर 1995 (1994); एसेज इन कॉम्मोमरेशन ऑफ वेरियर एल्विन : 1902–1964 (1969); वेरियर एल्विन : ए पायोनियर इण्डियन एन्थ्रोपॉलाजिस्ट (1973)। (सम्पादक– जेराल्ड एच0एण्डरसन, "वॉयोग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ क्रिश्चियन मिशन" संस्करण 1998, पृष्ठ– 199)

इसके अतिरिक्त एल्विन के अनेक पत्र एवं लेख आदि का संकलन इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी लन्दन तथा दिल्ली की नेहरू मेमोरियल लाइब्रेरी में उपलब्ध है। इस संक्षिप्त जीवन परिचय के अन्त में मैं वेरियर एल्विन की आत्मकथा के अन्तिम पैराग्राफ का उद्धरण देना चाहती हूँ, जिसको पढ़कर हमारे सम्मुख इस महान विदेशी पंडित की आकृति साकार हो उठती है और उसके जीवन दर्शन के बारे में, उसकी क्या सोच थी स्पष्ट होता है। अपनी आत्मकथा के अन्तिम पृष्ठ 349 पर उन्होंने यह लिखा –

"The realization of these things may not be the great treasure of which the saints and mystics *speak. But in this life we must do what we can; we may not reach to the heavens, but there is plenty to do on earth."* ("दि ट्राइबल वर्ल्ड ऑफ वेरियर एल्विन एन आटोबॉयोग्राफी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964)।

<u>वेरियर एल्विन की सम्पूर्ण रचनाएँ</u>

मोनोग्राफ :

The Baiga (Murray, 1939)
The Agaria (Oup, 1942)
Maria Murder and suicide (Oup, 1943, second edition, 1950)
Folk - Tales of Mahakoshal (Oup, 1944)
Folk - Songs of Chhattisgarh (Oup, 1946)
Myths of Middle India (Oup, 1949)
The Muria and their Ghotul (Oup, 1947)
Maisons des jeunes chez les Muria (Gallimord, 1959)
I Costumi sessuali dei Muria (Lerici, 1963)
Bondo Highlander (Oup, 1950)
The Tribal Art of Middle India (Oup, 1951)

Tribal Myths of Orissa (Oup, 1954)

The Religion of an Indian Tribe (Oup, 1955)

Myths of the North-East Frontier of India
(NEFA Administration, 1958)

The Art of the North-East Frontier of India
(NEFA Administration, 1959)

Nagaland (Adviser's Secretariat, Shillong, 1961)

सामान्य –

Leves from the Jungle (Murray, 1936, Second edition, Oup, 1958)

The Aboriginals (Oup, 1943, Second edition, 1944)

Motley (Orient Longmans, 1954)

A Philosophy for NEFA
(NEFA Administration, 1957, third edition, 1961)

When the world was young (National Book Trust, 1961)

India's North-East Frontier in the Nineteenth century
(Oup, 1959, reprinted 1962)

A Philosophy of Love (Publications Division, 1962)

उपन्यास –

Phulmat of the Hills (Murray, 1937)

A cloud that's Dragonish (Murray, 1938)

सहयोगी शामराव हिवालय के साथ –

Songs of the Forest (Allen & Unwin, 1935)

Folk - Songs of the Maikal Hills (Oup, 1944)

मदर टेरेसा – मदर टेरेसा, जिनको निकट भविष्य में सन्त घोषित किए जाने की सम्भावना है, पिछले 300 वर्षों में मसीही संस्थाओं ने जो शुभ कार्य किया है, उसकी साकार मूर्ति, मदर टेरेसा हैं। उनकी सेवाओं के सम्मान में न केवल भारत सरकार ने भारत रत्न की उपाधि से विभूषित किया वरन् विश्व स्तरीय पुरस्कार अर्थात् शान्ति का नोबेल पुरस्कार (1979) दिया गया था। ये पुरस्कार इस बात का प्रमाण है कि मसीही संस्थाएँ निःस्वार्थ भाव से समाज की सेवा करती हैं। यों तो देश और विदेश में मदर टेरेसा के द्वारा स्थापित अनेक संस्थान हैं जिनकी सूची इतनी लम्बी होगी कि हम यहाँ उनका उल्लेख करने में असमर्थ हैं फिर भी बुन्देलखण्ड क्षेत्र में उनके द्वारा किए गए सेवाकार्य– अनाथ शिशुओं की देखभाल, वृद्ध लोगों की सेवा परिचर्या, कुष्ठ रोगियों के लिए आश्रम आदि स्थापित है। ये वे स्थान है जहाँ मदर टेरेसा की अनुयायी धर्म बहनें (नन्स) आज भी अपनी निःस्पृह सेवा करती हैः जबलपुर, दमोह, झाँसी, ग्वालियर आदि स्थानों में इनके आश्रम आदि हैं।

मदर टेरेसा का जन्म 26 अगस्त 1910 में यूगोस्लाविया के स्कॉप–जे *(Skopje)* नगर में हुआ था। इनकी आरम्भिक शिक्षा काथलिक स्कूल में हुयी थी और उन्होंने 18 वर्ष की उम्र में नन् बनने का निश्चय किया था। इनका बचपन का नाम एग्नेश *(Agnes)* था। यह भारत में (पश्चिम बंगाल कोलकाता) में 16 जनवरी 1929 में आयीं थीं और बन्दरगाह से उतर कर सीधे कोलकाता से प्रायः 400 मील दूर दार्जिलिंग में चली गयीं। वहाँ ये काथलिक गर्ल्स स्कूल में अध्यापिका रहीं। तत्पश्चात् वह कलकत्ता के सेण्ट मेरी स्कूल में सन् 1937 में प्रिंसिपल बनकर आ गयीं। कलकत्ता

से ही उनकी नयी सेवा आरम्भ हुयी, जिसके बारे में विश्व के तमाम प्रबुद्ध लोग जानते हैं। उन्होंने परमेश्वर के प्रेम के निमित्त अपना जीवन अर्पित कर दिया था जो उनके निःस्वार्थ सेवाकार्यों से अभिव्यक्त हुआ। एक काथलिक नन ने उनके विषय में सन् 1991 में यह लिखा था जो वास्तव में बहुत ही सटीक है – *She is an utterly selfless creature. She is extraordinary in her sacrifice. She can do anything for the love of God endure any humiliation or sufferring. She was always free of personal bias and did not hesitate to speak out when there was something wrong.* (नवीन चावला, "मदर टेरेसा", पैंग्विन बुक, 2002, पेज– 17)।

मदर टेरेसा का देहान्त 5 सितम्बर 1997 को कोलकाता में हुआ।

<u>डोनाल्ड एन्डरसन मेघावरन</u> – यदि भारत में उत्पन्न किसी मिशनरी में अपनी सूझ–बूझ से विश्व को धर्म प्रचार के किसी मौलिक सिद्धान्त से प्रभावित किया है तो वह *'डोनाल्ड एन्डरसन मेघावरन्'* हैं। इन्हें चर्च ग्रोथ (कलीसियाई विकास) का पिता कहा जाता है और इन्होंने कलीसियाई विकास के लिए जो सिद्धान्त प्रस्तावित किए हैं वे आज समस्त विश्व के मिशनरी उनका पालन करते हैं। मेघावरन् का जन्म बुन्देलखण्ड के दमोह जिले में सन् 1897 में हुआ था। इनके माता–पिता भी अमेरिकन मिशनरी थे। इनकी आरम्भिक शिक्षा–दीक्षा यू0एस0ए0 के येल *(Yale)* राज्य की बटलर यूनीवर्सिटी में हुयी थी और भारत में डिसाइपल्स ऑफ क्राइस्ट मिशन ने इन्हें शिक्षा, धर्म–प्रचार और नए–नए गिरजाघरों की स्थापना करने की जिम्मेदारी सौंपी थी।

मेघावरन ने मेथोडिस्ट चर्च के महान मिशनरी जे0 वासकॉन पिकेट के शोध ग्रन्थ *'मास मूव्हमेंट'* की खोज पर लगभग 20 वर्ष तक अध्ययन किया और अनेक मिशनरी संस्थाओं तथा विभिन्न प्रदेशों की संस्कृतियों का अध्ययन किया और यह पता लगाया कि वे कौन से सिद्धान्त हैं जिनका मिशनरियों को पालन करना चाहिए ताकि मसीही धर्म अधिकाधिक फैल सके। उनका शोध ग्रन्थ ईश्वर के सेतु *(Bridges of God)* शीर्षक से सन् 1955 में प्रकाशित हुआ, जिसने विश्व के तमाम मिशनरियों को अपने धर्म–प्रचार के माध्यमों को बदलने पर विवश कर दिया और मेघावरन को कलीसियाई विकास आन्दोलन का पिता कहा जाने लगा (फादर ऑफ दि चर्च ग्रोथ मूव्हमेन्ट)। उन्होंने सन् 1965 में यू0एस0ए0 में अपने सिद्धान्तों की विधिवत् शिक्षा देने के लिए एक सेमिनरी की स्थापना की जिसे *'फुलर थियोलॉजिकल सेमिनरी (Fuller Theological Saminary)'* कहा जाता है।

यों तो इन्होंने भारत में विशेषकर बुन्देलखण्ड में जैसे– सागर, जबलपुर, दमोह, नरसिंहपुर, छिन्दवाड़ा, मण्डला में अनेक स्कूल एवं मिशन केन्द्रों की स्थापना की परन्तु इतिहास में गुरू घासी दास के हजारों अनुयायियों अर्थात् सतनामी सम्प्रदाय को उनके निम्न जीवन स्तर से ऊपर उठाने का एवं उन्हें शिक्षित करने का समस्त श्रेय मेघावरन को ही दिया जाता है। उन्होंने वास्तव में विशेष सेवाकार्य इसी सम्प्रदाय के मध्य में किया। मेघावरन ने अपनी आत्मकथा *(The Satnami Story)* में इन कार्यों का उल्लेख किया है। यह वास्तव में अत्यन्त पठनीय पुस्तक है। इसी ग्रन्थ में उनके धर्म प्रचार के सिद्धान्तों का व्यावहारिक रूप से प्रयोग हुआ है। इनकी अन्य पुस्तकें है –

1. *Understanding Church Growth. (1970)*
2. *How Churches Grow. (1959)*
3. *Ethnic Realities and the Church : Lessons from India. (1979)*
4. *Momentous Decisirns In Mission Today. (1984)*

5. A Fests Chrift. (1973)

6. McGavran's correspondence. (Before 1965)

सतनामी सम्प्रदाय के मध्य मेघावरन ने लगभग 18 वर्ष तक कार्य किया था। इनका देहान्त परिपक्व आयु में सन् 1990 में हुआ था।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वर्तमान आधुनिक छत्तीसगढ़ राज्य एवं म0प्र0 के कुछ जिलों के अधिकांश मसीहियों के बाप दादा सतनामी थे जो अब सुशिक्षित होकर समाज में प्रतिष्ठित हैं और शिक्षा एवं समाज सेवा कार्यों में संलग्न हैं।

उदाहरणार्थ मेघावरन द्वारा दीक्षित डॉ0 हीरालाल के पुत्र डॉ0 विजय लाल एवं उनके दो पुत्र डॉ0 राजकुमार डेविड लाल एवं डॉ0 अजय लाल उसी बंगले में रहते हैं, जो मेघावरन का मिशन केन्द्र था और जिसमें स्वयं उनका 100 वर्ष पहले जन्म हुआ था (1897)। इन्होंने दमोह में एक महाविद्यालय, एक विद्यालय एवं मल्टीमीडिया ट्रेनिंग सेण्टर स्थापित कर रखा है जिसने विश्व का ध्यान आकर्षित किया है। (विशेष अध्ययन के लिए देखिए : सम्पादक– जेराल्ड एच0 एण्डरसन, "बायोग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ क्रिश्चियन मिशन्स", 1998, पृष्ठ– 449; "डिक्शनरी ऑफ एक्युमेनिकल मूव्हमेन्ट", डब्ल्यू0सी0सी0 पब्लिकेशन जिनेवा, 1991, पृष्ठ– 1881, 182)

जेम्स एडवर्ड मेकलडाउनी (James Edward McEldowney) – कलेण्डर और ज्योतिषी गणित के अनुसार जेम्स एडवर्ड मेकलडाउनी का जन्म हेनरी के साउथ दकोटा *(Henry, South Dakota)* में 11 मार्च सन् 1907 में हुआ था। वर्तमान समय में वे पेन्नी रिटायरमेन्ट कम्युनिटी के पेन्नी फॉर्मस फ्लोरिडा में निवास करते हैं।

सन् 1928 में उन्होंने सिम्पसन कॉलेज *(Simpson College)* से बी0ए0 की परीक्षा पास की और सन् 1952 में बोस्टन यूनीवर्सिटी से एम0ए0 की परीक्षा पास की तथा सन् 1933 में बैचलर सेक्रेड थियोलॉजी *(STB)* की परीक्षा पास की, स्नातक का यह पाठ्य क्रम 2 वर्षों का था। सन् 1943 में इन्होंने शिकागो यूनीवर्सिटी से पी0एच0डी0 की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद सिम्पसन कॉलेज से सन् 1963 में "धर्म विज्ञान" पर ऑनरेरी डॉक्टरेट *(Honorary Doctor of Divinity)* की डिग्री उपलब्ध हुयी।

राजकीय सेवा – सर्वप्रथम इनकी नियुक्ति चर्च के प्रबन्धक के रूप में सन् 1927 में हुयी। इसके पश्चात् सन् 1933 में उन्हें *Lowa - Des Moines Conference* का सदस्य नियुक्त किया गया। इसके लिए उनका साक्षात्कार भी लिया गया। इसके पश्चात् सन् 1934 में वे स्थायी सदस्य नियुक्त हो गए। वे सन् 1930 से लेकर सन् 1935 तक *lowa* और *Rhode* द्वीप में पादरी का प्रशिक्षण ग्रहण करते रहे। वे सन् 1935 से 1939 तक भारत के हैदराबाद शहर में चैपेल रोड मेथोडिस्ट में पादरी रहे। सन् 1939 से 1963 तक लेनॉर्ड थियोलॉजिकल कॉलेज, जबलपुर में पुराने नियम के प्रोफेसर रहे। सन् 1947 से 1962 तक वे लेनॉर्ड थियोलॉजिकल कॉलेज में डिपार्टमेन्ट ऑफ मास कम्युनिकेशन्स के निर्देशक रहे। सन् 1962 से 1967 तक वे क्रिश्चियन एसोशिएसन फार रेडियो एण्ड आडियो विजुअल सर्विस (कैरव्ज, जबलपुर) के संयुक्त सचिव के पद पर नियुक्त रहे।

सन् 1967 में वे *Scarritt* कॉलेज के सदस्य रहे तथा अवनति के अवसर पर उन्होंने पूर्ण सहयोग दिया। सन् 1968 से 1971 तक वे प्रशासनिक निदेशक, वर्ल्ड एसोशिएसन फार क्रिश्चियन कम्युनिकेशन, लंदन के रहे। वे सन् 1971 से 1978 तक Orange *Circuit Methodist Church, Unionville* के पादरी रहे। सन् 1978 से 1986 तक वे *Shores Retirement Community, Bradenton, FL* के सदस्य रहे। सन् 1989 से 1991 तक वे फेथ यूनाइटेड

मेथोडिस्ट चर्च *Bradenton, FL* के पारिस मंत्री रहे। जब 1935 से 1971 के मध्य प्रौढ़ रविवारिय पाठशाला अध्यापक मंडल का गठन हुआ उस समय वे मसीही प्रचार समिति के सदस्य एवं सचिव बनाए गए। इस पद में वे 1971 तक बराबर बने रहे। इस प्रकार उन्होंने 36 वर्ष तक मसीही धर्म प्रचार का कार्य किया। इस समय के दौरान वे पादरी, प्रवक्ता, प्रशासक, प्रधानाचार्य, उप प्रधानाचार्य, कार्यवाहक प्रधानाचार्य तथा विभिन्न प्रचार–प्रसार समितियों के सदस्य रहे। उन्होंने धर्म से जुड़ी हुयी कई फिल्म के निर्माण में सहयोग प्रदान किया और आकाशवाणी के माध्यम से वे धर्म से जुड़े व्यक्तियों को प्रशिक्षण देते रहे, बाद में दूरदर्शन के माध्यम से भी उन्होंने यह कार्य किया। इंग्लैण्ड में रहकर उन्होंने संगठन मंत्री का कार्य *Oslo World meeting of the World Association for Christian Communication (WACC)* के लिए किया। उन्होंने *WACC* के लिए महत्वपूर्ण पुस्तकों का सम्पादन किया और उस कार्य को क्रिया में परिणित किया। उन्होंने धर्म सम्बन्धित समाचार विविध पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेजे, जिनका प्रभाव दक्षिणी समुद्री द्वीपों में था।

इन्होंने 1933 में अपना विवाह *Ruth Edna Calkins* से किया। इनकी धर्म पत्नी पूरे समय धर्म प्रचार में लगी रहती थी। उन्होंने 1935 से लेकर 1971 तक धर्म प्रचार कार्य किया तथा इन्होंने सिम्पसन कॉलेज से बी0ए0 और बोस्टन यूनीवर्सिटी से एम0ए0 की डिग्री प्राप्त की तथा उन्होंने एक धार्मिक पाठशाला में अध्यापन कार्य किया। यह विद्यालय लेनॉर्ड थियोलॉजिक कॉलेज (जबलपुर) के नाम से प्रसिद्ध था। इनकी धर्म पत्नी का स्वर्गवास 1989 में हो गया। इसके पश्चात् इन्होंने अपना दूसरा विवाह *Jeanne Nave* से किया। यह भी एक धर्म प्रचारक थी। नवम्बर 1990 में वे अपनी धर्म पत्नी के साथ *Penney Retirement Community near Jacksonville* में रहने लगे।
इनके बच्चों के नाम – एलिजाबेथ कोनार्ड, ब्रेडेन्टन ; फिलिप मेकलडाउनी, बारबरा कैरोल। इन सभी बच्चों ने वूड स्टॉक स्कूल, मसूरी, भारतवर्ष से स्नातक की उपाधि धारण की और इसके अलावा स्नातक उपाधि सिम्पसन कॉलेज से प्राप्त की। इनके पुत्र फिलिप ने वर्जीनिया विश्वविद्यालय से पी0एच0डी0 की उपाधि प्राप्त की। इनके नातियों की संख्या 8 है और पनातियों की संख्या 16 है।

प्रकाशन – इनके अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं तथा अनेक महत्वपूर्ण लेख मसीही धर्म से सम्बन्धित पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुयी हैं – *ऑडियो–विजुअल हैण्डबुक ; दि इन्टरनेशनल मिशनरी जनरल ; दि वर्ल्ड आउटलुक ; दि इण्डियन विटनेस।* इन्होंने अनेक महत्वपूर्ण किताबें लिखीं हैं, जिनका चुनाव मसीही धर्म प्रचारक समिति ने किया है तथा इन किताबों का प्रचार–प्रसार पूरे विश्व में हुआ है। लगभग 60 देश ऐसे हैं, जहाँ उन्होंने समय–समय पर यात्रा की है तथा कुछ स्थानों का फिल्मांकन भी इनके द्वारा किए गए हैं। इन्होंने 3 फिल्में बाइबिल पर बनायीं हैं। इन तीन फिल्मों के नाम – *The Good Samaritan ; The Prodigal Son ; The Transformed Life (A story of Zacchaeus)* हैं। इसके अतिरिक्त भी कई अन्य फिल्में हैं, जिनमें इन्होंने निर्माण सहयोग प्रदान किया है। भारतीय सरकार एक ऐसे चूल्हे का निर्माण कर रही है, जिसमें धुँआ नहीं उठता। इन्होंने महात्मा गाँधी के जन्म शताब्दी पर एक ऐसी फिल्म बनायी जिसका फिल्मांकन उस स्थान पर किया गया जिस स्थान पर नर्मदा नदी के किनारे उनकी भस्म सरिता में प्रवाहित की गयी थी। वह फिल्म भारतवर्ष की 16 भाषाओं में डब की गयी। इस समय उन्होंने जबलपुर के एक अंधेरे कमरे में यह कार्य किया।

इसी समय उन्हें संगीत के प्रति लगाव पैदा हुआ। उन्होंने अनेक वाद्यों का बजाना और गाना गाना सीखा और कुछ व्यक्तियों की सहायता से संगीत समिति अथवा आर्केस्ट्रा पार्टी बनायी।

इस प्रकार भारतीय संगीत को प्रोत्साहित किया गया और उसकी प्रगति की गयी। इसी समय उन्होंने रोटरी क्लब जबलपुर का सदस्य बनाया गया और उन्होंने जापान तथा जर्मनी तथा थिनलैण्ड में यहाँ का प्रतिनिधित्व किया।

बीमारी के कारण उन्होंने धार्मिक प्रचार कार्य से सन् 1971 में पूरी तरह अवकाश ले लिया था। उसके पश्चात् 5 वर्षों तक वे वर्जीनिया में पादरी के पद पर रहे तथा उन्होंने एक समिति का गठन किया, जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को शामिल किया और युवकों को प्रेरित किया कि वे सप्ताह में एक बार आपस में जरूर मिला करे। यह क्रम आज भी मौजूद है। फ्लोरिडा में वे सक्रिय हो गए तथा उन्होंने अपना कार्य स्थल रिटायरमेंट कम्युनिटी में बनाया और यहाँ के लोगों को अनेक सुविधाएँ प्रदान की। उन्होंने उन लोगों को भी श्रद्धांजलि अर्पित की जो जीवन भर धार्मिक सेवा कार्य से जुड़े रहे तथा उन्होंने ऐसे कार्य किए कि वहाँ आने वाले व्यक्ति इस स्थान को अपना निजी घर जैसा अनुभव करे तथा प्रति सप्ताह यहाँ परमेश्वर की प्रार्थना करायी जाती थी तथा कुछ लोगों को सदस्य भी बनाया गया। जो इनके कार्यक्रमों में श्रद्धा रखते थे तथा जिनके पास यह क्षमता थी कि वे दूर–दराज जाकर और समुद्र की यात्रा करके धर्म के लिए धन एकत्रित करें और धर्म प्रचार करें। उन्होंने धर्म–प्रचार के लिए जो सिद्धान्त का निर्माण किया था उसी के अनुसार वे प्रौढ़ धर्म–प्रचारकों को निर्देशित भी करते रहते थे। यात्राओं के माध्यम से व्यक्तियों को अनेक स्थलों में एकत्रित किया जाता था, उनके सम्मेलन किए जाते थे, जहाँ वे स्वतः उपस्थित रहते थे। जनवरी 2005 में उन्होंने अपनी धर्मपत्नी *Jenna* के साथ अपने *Bradenton* के मकान को बेच दिया और वे पुनः रिटायरमेंट कम्युनिटी लौट आए और वे *J.C. Penney* के साथ रहने लगे, जो संग्रह विभाग में एक कार्यकर्त्ता था और वे यहाँ रहकर अवकाश प्राप्त धर्म प्रचारकों के मध्य रहने लगे। इस स्थान पर रहने वालों की जनसंख्या 500 से अधिक है तथा इनके सभी के साथ मधुर सम्बन्ध हैं। ये अभी जीवित है, 11 मार्च सन् 2005 में वे 98 वर्ष की आयु पूरी कर चुके हैं।

मि० साइमन का बाँदा के मसीहियों पर सर्वेक्षण – मि० एस०बी० साइमन ने हिन्दू धर्म को छोड़कर मसीही धर्म ग्रहण किया था और उन्होंने इस धर्म से जुड़े लोगों का व्यापक सर्वेक्षण किया :

बाँदा में 1910 के पहले A.G. Misson आया था परन्तु इस मिशन को सफलता नहीं मिली। नवम्बर सन् 1910 में मिस डॉगमारे एंगस्ट्रम (सन् 1881 में ओस्लो, (नार्वे की राजधानी) में जन्मी) बाँदा में प्रथम मिशनरी के रूप में आयीं तथा इनके साथ आया के रूप में अन्ना जॉहन्सन एक साल बाद आयीं। बाँदा जनपद में इन्होंने अपने मिशन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य किए। सन् 1913 में नरैनी में भी धर्म प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। अन्ना जॉन्हसन तथा मिस डॉगमारे एंगस्ट्रम की कुछ कारणों से अनबन हो जाने के कारण इन दोनों ने अलग–अलग कार्य किए। सन् 1918 में अन्ना जॉन्हसन ने 8 अनाथ बच्चे पाले, सन् 1918 से लेकर 1960 तक 8 अनाथ बच्चों के परिवारों द्वारा बाँदा जनपद में क्रिश्चियानटी बढ़ी। सन् 1918 में बाँदा जनपद में 500 देशी मसीही थे। सन् 1947 में अन्द्रियासन नाम की मिशनरी आए उन्होंने बाँदा, कर्वी तथा आस–पास के अन्य क्षेत्रों में मिशनरियाँ खोंली और धर्म प्रचार में काफी कुछ कार्य किए। आन्द्रियासन जब भारत आए तो उनकी पत्नी भी आयीं सन् 1947 से 1959 तक बाँदा जनपद में कार्य किया।

सन् 1964 में अत्तर्रा का निवासी शिववरण अंगद ने (अत्तर्रा का प्रथम व्यक्ति) मसीही धर्म स्वीकार किया। इन्होंने 30 साल की अवस्था में धर्म प्रचार–प्रसार प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1965

में शम्भू प्रसाद जाति कुर्मी ने कर्वी में मसीही धर्म स्वीकार किया। सन् 1981 में हीरालाल, जखनी निवासी तथा नाथूराम आजाद, अत्तर्रा निवासी, कामता प्रसाद त्रिपाठी मड़यन निवासी ने मसीही धर्म स्वीकार किया। सन् 1991–92 में अत्तर्रा के समीपस्थ गाँव के 40 परिवारों ने मसीही धर्म ग्रहण किया। सन् 1995 से 2003 तक मसीही धर्म का प्रचार–प्रसार अत्तर्रा से शुरू होते हुए खुरहण्ड, नरैनी, बबेरू, पहाड़ी, मानिकपुर, राजापुर, कमासिन आदि में हुआ जो अब तक संचालित है। जिसमें करीब 355 लोगों ने मसीही धर्म ग्रहण किया। जिनमें से 2 ब्राह्मण, 1 कुशवाहा, 1 कुटार (कोरी), 2 यादव और अन्य विशेष जनसंख्या शामिल हैं।

सन् 1914 में बाँदा जिले का दुर्गा प्रसाद (जाति– चमार) पहला मसीही बना। नरैनी के रामचन्द्रन पहाड़ में दुर्गा प्रसाद जी को बपतिस्मा दिया गया था। इनका मूल निवास गिरवॉ था।[165]

ये लोग धर्म प्रचार के लिए सर्वप्रथम व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करतें हैं फिर धीरे–धीरे प्रभु येशु मसीह के जीवन चरित्र के बारे में समझाते हैं और बाइबिल के महत्व के बारे में समझाते हैं। धर्म प्रचार सामग्री वितरित करतें है और यह जानकारी देते हैं कि मसीही धर्म में किसी व्यक्ति के साथ जाति वर्ण के अनुसार भेद–भाव नहीं किया जाता, छुआ–छूत भी नहीं किया जाता, दीन–दुःखियों की सेवा बिना किसी भेद–भाव के ही की जाती है। उत्पीड़ित व्यक्ति के साथ सद्व्यवहार किया जाता है। इसका जीता–जागता उदाहरण मदर–टेरेसा है, जिन्होंने बिल्कुल निःस्वार्थ भाव से दीन–दुःखियों की सेवा करते–करते वास्तव में इस विश्व के *"दीन दुःखियों की माँ"* बन गयीं।

इन सभी बातों से प्रभावित होकर व्यक्ति मसीही धर्म के प्रति आकर्षित होता है और धर्मान्तरण का निर्णय लेता हैं। धर्मान्तरण के पहले व्यक्ति को मसीही तथा अन्य सभी धर्मों के बारे में बड़ी गूढ़ता से बताया जाता हैं। तत्पश्चात् उसे जलाशय में स्नान कराकर शुद्ध एवं पवित्र किया जाता हैं। फिर पुरोहित उसे शपथ दिलाता हैं कि वह प्रभु येशु मसीह और पवित्र धर्म ग्रन्थ बाइबिल के प्रति वफादार होगा, मसीही धर्म सिद्धान्तों को मानेगा और उनके नियमों का अनुपालन करेगा। फिर अन्य व्यक्तियों की तरह उसे चर्च में मिला लिया जाता हैं।

मसीही धर्म के लोग व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए अनेक प्रकार के सामाजिक कार्य करते हैं। गरीब व्यक्तियों को उनकी योग्यतानुसार नौकरी प्रदान करते हैं तथा उन्हें आवासीय सुविधा सुलभ करातें हैं। अनाथ बच्चों के लिए अनाथालय, निराश्रित और विधवा औरतों के लिए महिला केन्द्र खोलते हैं। वृद्ध व्यक्तियों की आर्थिक सहायता करते हैं।

बाढ़, भूकम्प एवं अन्य प्राकृतिक विपदाओं के समय सहायता, ट्रेक्टर, टैंकरों एवं ट्रक टैंकर द्वार पेयजल वितरण, शहरी एवं ग्रामीण अंचलों में नलकूप की खुदाई के द्वारा पेयजल की व्यवस्था करते हैं। अपंगों, निर्बलों को चिकित्सा सुविधा हेतु राशि प्रदान करते हैं।

लोगों की यह धारणा आज भी बनी हुयी है कि 'मसीहियों द्वारा इन सामाजिक कार्यों का उद्देश्य व्यक्तियों को अपने प्रभाव में लाना और उनका धर्मान्तरण करना होता हैं।' जबकि यह धारणा बिल्कुल ही असत्य है। मसीहियों को प्रारम्भ से ही प्रेम, सदाचार, सद्व्यवहार की शिक्षा दी जाती है जो उनके व्यक्तित्व के रोम–रोम में समा जाता है इसलिए वे समाज के प्रति अपना–समर्पित भाव रखते हैं और दूसरों की सेवा करना ही उनकी प्रकृति बन जाती हैं।

मसीही धर्म का मूल्यांकन

वास्तव में मसीही धर्म विश्व मानवता के सिद्धान्तों को उजागर करता है। जो व्यक्ति दूसरे जीवों पर दया दिखातें हैं, परमात्मा उनके साथ भी दया का बर्ताव करेगा। जो व्यक्ति शुद्ध हृदय के हैं, परमात्मा उनको दर्शन देगा। जो व्यक्ति मेल–जोल से रहते हैं, वे परमेश्वर के पुत्र हैं। जो व्यक्ति धर्म के लिए त्याग करते हैं, और धर्म के लिए यातनाएँ सहते हैं, वे ही स्वर्ग प्राप्त करेंगे। जो व्यक्ति झूठ बोलते हैं और धर्म का विरोध करतें है और अच्छे व्यक्तियों की निन्दा करते हैं, वे पापी हैं, उनकी बात पर ध्यान न देना चाहिए। प्रत्येक परिस्थितियों में खुश रहो जो बातें पैगम्बर ने तुम्हें बतलायीं हैं उनका अनुकरण करो।[166]

मसीही धर्म के 10 प्रमुख सिद्धान्त हैं जिनका अनुकरण करना मनुष्यों के लिए अति आवश्यक हैं :

1. परमेश्वर पर आस्था रखना, उसे सर्वोच्च मानना अन्य किसी व्यक्ति को ईश्वर के समकक्ष न मानना।
2. मूर्ति–पूजा न करना, किसी की मूर्ति न बनाना और किसी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान मूर्ति के सामने न करना। जो परमेश्वर से बैर रखता है उससे परमेश्वर बदला लेता है।
3. परमेश्वर का नाम बेवजह न लेना और न उसकी कसम खाना।
4. विश्राम के दिन को पवित्र मानते हुए याद रखना और उस दिन परमेश्वर का नाम लेना। विश्राम के दिन कोई काम न करना और न किसी से काम लेना। परमात्मा ने 6 दिन में पूरे विश्व का निर्माण किया और सातवें दिन उसने विश्राम किया।
5. अपने माता और पिता का आदर कर ना और उन पर श्रद्धा रखना।
6. किसी का खून न करना।
7. व्याभिचार न करना।
8. चोरी न करना।
9. किसी के विरुद्ध झूठी गवाही न देना।
10. किसी के घर की लालच न करना, किसी की स्त्री का लालच न करना, किसी के दास–दासी, बैल–गदहे और अन्य वस्तु का लालच न करना।

कुछ नियम उन व्यक्तियों के लिए हैं जो किसी–न–किसी चर्च के सदस्य हैं और धार्मिक कार्यों के लिए हमेशा एकत्रित होते रहते हैं। उनके लिए ये नियम हैं :

1. चर्च के ये सदस्य 8 दिन में आपस में जरूर मिलें और यह चर्चा करें कि वे आत्मिक उन्नति कैसे कर सकते हैं। इस सन्दर्भ में परामर्श करें और धर्म के लिए चन्दा इकट्ठा करें।
2. जो व्यक्ति चन्दा एकत्रित करतें हैं उनसे मिलें, बीमार व्यक्ति की सहायता करें और जो धर्म पर न चले उसकी शिकायत पुरोहित से करे। एकत्रित चन्दे को किसी जिम्मेवार व्यक्ति को सौंप दें। चर्च का सदस्य मादक पदार्थों का सेवन न करे, स्त्री–पुरूष और बच्चों को न गहन रखे और न हीं बेंचे। लड़ाई–झगड़ा न करें, गाली–गलौज न करें, लेन–देन में ईमानदारी बरतें, रूपए व वस्तु लेने–देने के बदले ब्याज न लें, बेकार की बातें न करें। यदि हम किसी के साथ परोपकार करतें हैं तो उसके बदले में कुछ न चाहें। कीमती वस्त्र न पहनें, खेल–तमाशों में मसीही को न शामिल करें, बेकार की किताबें न पढ़ें, आलस्य न करें, अपने लिए कोई सामान न एकत्र करें। अपने सामर्थ्य के अनुसार कार्य करें।

हम सदैव दूसरों की भलाई करें, कृपा करें, दया करें और मनुष्य का साथ दें। जो वस्तुएँ परमेश्वर ने हमें दी हैं हम उनका सदुपयोग करें अर्थात् भूखों को भोजन और

वस्त्रहीनों को वस्त्र प्रदान करें। बुरे समय में बन्धु–बान्धवों को सहयोग दें, व्यक्तियों को पाप करने से मना करें। सदोपदेश दें कि हमारा मन भलाई करने में लगा रहे। धार्मिक कार्य में आलस्य न करें और न किसी प्रकार का दोष अपने चरित्र पर आने दें।

3. जब धार्मिक आराधना हो तो हम सब वहाँ उपस्थित रहें। सद्‌वचन, धर्म चर्चा और सदोपदेशों को ध्यान से सुनें, प्रभु–भोज पर श्रद्धा से भाग ले, एकान्त में अपने पूरे परिवार के साथ प्रार्थना करें, बाइबिल का पाठ करें, उपवास रखें और संयम से काम ले।

जो व्यक्ति इन नियमों का पालन करता है वही सच्चा मसीही है और प्रभु–परमेश्वर का सच्चा सेवक है।

उपरोक्त सिद्धान्तों को देखने से यह प्रतीत होता है कि मसीही धर्म सम्पूर्ण मानवता का समर्थक है और वह सभी धर्मों में वर्णित मानवता के सिद्धान्त का समर्थन करता है। यदि तुलनात्मक दृष्टि से इस्लाम धर्म से उसकी तुलना की जाए तो वह इस्लाम धर्म के सर्वाधिक नज़दीक है तथा इस्लाम धर्म के समान ही एक ईश्वरवाद का समर्थक है। अन्तर सिर्फ इतना है कि इस्लाम धर्म के अनुयायी प्रभु येशु मसीह को परमेश्वर का पुत्र नहीं मानते और ज़ेहाद पर विश्वास करतें हैं, ये लोग कुरआन शरीफ, हजरत मुहम्मद साहब और खुदा की बुराई नहीं सुनते हैं। वे काफिर से नफरत करतें हैं और उनके विरुद्ध जेहाद छेड़ने के लिए तत्पर रहतें हैं। हिन्दू धर्म से मसीही धर्म नहीं मिलता क्योंकि हिन्दू धर्म के लोग बहुदेववाद के समर्थक हैं और मूर्ति–पूजा करतें हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दू धर्मावलम्बी वर्ण–व्यवस्था, जाति–पांत और ऊँच–नीच पर भी विश्वास करतें हैं।

विश्व में मानव सभ्यता के उदय के साथ उनको आदर्श स्वरूप देने के लिए अनेक धर्मों का उदय भारतवर्ष तथा विश्व के अनेक देशों में हुआ। ये धर्म वैदिक धर्म, सनातन धर्म, बौद्ध धर्म, यहूदी धर्म, मसीही धर्म और इस्लाम धर्म के नाम से विख्यात हुए। इन धर्मों के लिए सभी धर्मों से सम्बन्धित सैंकड़ों ग्रन्थों का सृजन हुआ। भारत भूमि में उत्पन्न धर्मों के ग्रन्थ वेद, पुराण तथा दार्शनिक ग्रन्थ हैं। बौद्ध धर्म का ग्रन्थ त्रिपिटक और जातक वाणी है, जैन धर्म का ग्रन्थ जिन वाणी है। इसी प्रकार यहूदियों और मसीहियों का धर्म ग्रन्थ बाइबिल है, पारसियों का धर्म ग्रन्थ जिन्द आवेस्ता है तथा इस्लाम धर्म का ग्रन्थ कुरआन शरीफ है। इन धर्मों के प्रमुख व्यक्ति महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, प्रभु येशु मसीह, जरथुस्त्र और मुहम्मद साहब हैं। भारतीय धर्मग्रन्थों के रचनाकार वाल्मीकि और वेदव्यास आदि हैं।

यदि धर्म का मूल्यांकन किया जाए तो सभी धर्म सत्य, अहिंसा, प्रेम, सदाचार, सद्‌व्यवहार और सहयोग पर बल देते हैं। कोई भी धर्म इन सिद्धान्तों की निन्दा नहीं करता, सभी धर्म परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। परन्तु जैन और बौद्ध धर्म आत्मा की श्रेष्ठता को सर्वोच्च मानते और परमात्मा को सृष्टि का कर्त्ता–धर्त्ता नहीं मानतें। इन्हीं धर्मो से सद्‌दर्शनों का उदय हुआ है। ये दर्शन वेदान्त मीमांसा, सांख्यकारिका, चार वाक्य और नास्तिकवादी दर्शन हैं। जहाँ तक प्रश्न हैं सभी धर्मों से संघर्ष केवल उपासना पद्धति और धार्मिक आचार–विचारों को लेकर है। सभी धर्म अपने को श्रेष्ठ ठहराने का प्रयत्न करते हैं और दूसरे धर्म की निन्दा करते हैं। सनातन धर्मावलम्बियों का मानना है कि सृष्टि जगत आकृतियों से युक्त है इसलिए संसार में रहने वाले प्राणी आकृति के माध्यम से ही परमात्मा की परिकल्पना कर पाता है। जिस प्रकार जीवित शरीर में आत्मा निवास करती है और यह जीवित शरीर एक मूर्ति है उसी प्रकार परमात्मा की आत्मा परिकल्पित मूर्ति में बसती है इसलिए मूर्ति के रूप में हम उसकी आराधना करते हैं। अज्ञानी व्यक्ति मूर्ति के माध्यम से ही परमात्मा की पहचान करता है जबकि ज्ञानी व्यक्ति के लिए मूर्ति का कोई महत्व नहीं हैं।

यह सच है कि दृश्य संसार नाशवान है और परिवर्तन शील है जबकि अदृश्य संसार अपरिवर्तनशील और अमर है इसीलिए जो लोग अदृश्य को मानते हैं वे लोग परमात्मा के निराकार स्वरूप के उपासक और समर्थक हैं। इस मत को मानने वाले लोग मसीही धर्मावलम्बी और इस्लाम धर्मावलम्बी हैं।

भारतवर्ष में उन धर्मों की निन्दा होती है जिनका उदय और जन्म भारतवर्ष में नहीं हुआ और जिनके क्रियाकलाप यहाँ के सामाजिक–व्यवस्था से मेल नहीं खाती उदाहरण के लिए इस्लाम धर्म का उदय अरब देश से हुआ। वहाँ के संस्कार और सामाजिक व्यवस्था भारतवर्ष की सामाजिक व्यवस्था से बिल्कुल भिन्न थी। पवित्र कुरआन शरीफ में कहीं भी भारतवर्ष का जिक्र नहीं है। यद्यपि वहाँ हजरत मुहम्मद साहब से पूर्व 19 प्रकार की देवी–देवताओं की मूर्तियाँ पूजी जाती थीं और धर्म के नाम पर पशु बलि दी जाती थी। इसी प्रकार मसीही धर्म के पूर्व इस्त्राएल में भी मूर्ति पूजा होती थी और धर्म स्थलों की वेदी में पशुबली दी जाती थी। पवित्र बाइबिल के नए नियम में मूर्ति–पूजा का विरोध किया गया और येशु मसीह के बलिदान को अन्तिम बलि के रूप में स्वीकार किया गया। भारतवर्ष में उपरोक्त दोनों धर्म विदेशी आक्रमणकारी द्वारा लाए गए जिन्होंने यहाँ पर एक लम्बी अवधि तक शासन किया और बलात् इस्लाम धर्म को लोगों पर थोपा। हिन्दु मन्दिरों को तोड़कर मस्ज़िदें निर्मित करायी गयी। इसी प्रकार मसीही धर्म के लोग व्यापारी और शासक बनकर भारतवर्ष में आये। उन्होंने व्यक्तियों को अपने धर्म से प्रभावित किया और व्यक्तियों को धर्मान्तरित करके मसीही बनाया मुसलमानों की तरह बलात् धर्म परिवर्तन के लिए किसी को बाध्य नहीं किया। यदि उपरोक्त दोनों धर्मों की यहाँ आलोचना हुयी है। तो उसके दो कारण स्पष्ट समझ में आते हैं। पहला यह है कि दोनों धर्म वर्ण और जाति व्यवस्था का समर्थन नहीं करते दूसरा यह कि हिन्दु गाय को पवित्र पशु मानते हैं और उसे माता के समतुल्य स्थान देते हैं जबकि उपरोक्त दोनों धर्म के अनुयायी गौ मांस के भक्षक हैं और उसका मांस भक्षण करते है जो संघर्ष आज भी हैं। वह केवल धर्म स्थल, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था और धर्म को लेकर है। यह विवाद उन्हीं संघर्ष को जन्म देते रहते हैं।

भारतवर्ष में मसीही धर्मावलम्बियों की जनसंख्या लगभग 4 करोड़ हैं। मुख्य रूप से इनका निवास केरल, नागालैण्ड और तमिलनाडु आदि हैं। जो भी यहाँ मसीही धर्मावलम्बी हैं उनका धर्मान्तरण आज से 200 वर्ष पूर्व या उसके बाद हुआ। वे सामाजिक व्यवस्था और तिरस्कार एवं उपेक्षा के कारण मसीही धर्मावलम्बी बनें मसीही धर्म के सिद्धान्त भारतीय धर्मों के सिद्धान्तों से कोई अलग नहीं हैं। बल्कि समस्त सिद्धान्त भारतीय धर्मशास्त्रों का समर्थन करते हैं। ये लोग उदारवादी हैं कट्टरवाद की निन्दा करते हैं। इन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य और व्यक्तियों की आर्थिकता दृष्टि से जो सेवा की हैं वह प्रंशसनीय हैं। भारतवर्ष का सम्पूर्ण समाज इनका ऋणी है। वेश–भूषा, भाषा और व्यवहारिकता की दृष्टि से यहाँ के सम्पूर्ण समाज ने मसीही धर्म को स्वीकार कर लिया, भले ही अराधना धर्म पूजा की दृष्टि से वे अपने को पृथक मानते हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. धारणाद् धर्ममित्याहु धर्मों धारयति प्रजाः।
   यत् स्याद धारण संयुक्तां, स धर्म इति निश्चयः।।
   महाभारत, कर्ण पर्व, अध्याय' 6–9, श्लोक– 58 ।
2. रवीन्द्रनाथ मुकर्जी, "भारतीय सामाजिक संस्थाएँ", पृष्ठ– 481 ।
3. एवर्ड बी टाइलर, "प्रिमिटिव कल्चर", जॉन मुरायी लन्दन, 1933, पृष्ठ– 424 ।
4. सर जेम्स फेज़र, "दि गोल्डेन बफ" (*Abridged Edition, Macmillan co. .... NewYork*), पृष्ठ– 50 ।
5. जे0एल0 गिलिन और जे0पी0गिलिन, "कल्चरल सोसोलॉजी", दि मैकमिलन न्यूयार्क, 1950, पृष्ठ– 459 ।
6. डॉ0 राधाकृष्णन्, "धर्म और समाज", पृष्ठ– 127 ।
7. मनुस्मृति, अध्याय– 2, श्लोक– 6 ।
8. नया नियम, लूका 2 : 1–7 ।
9. लूका 2 : 8–20 ।
10. लूका 2 : 40–49 ।
11. लूका 2 : 51–52 ।
12. लूका 4 : 1–24 ।
13. योहन 20 : 30–31 ।
14. मरकुस 1 : 14–15 ।
15. मत्ती 13 : 31–33 ।
16. मत्ती 13 : 44–50 ।
17. मत्ती 5 : 3–10 ।
18. मत्ती 6 : 26 ; 7 : 7–11 ; 22 : 36–40 ; 19 : 16–19 ; 18 : 7–9 ; 18 : 1–4 ।
19. लूका 18 : 9–14 ।
20. मत्ती 6 : 5–13 ।
21. लूका 18 : 1–7 ।
22. योहन 13 : 34 ।
23. मत्ती 7 : 1–4 ।
24. मत्ती 7 : 12 ।
25. मत्ती 12 : 46–50 ।
26. लूका 6 : 35–38 ।
27. मत्ती 6 : 1–4 ।
28. मत्ती 18 : 21–22 ।
29. मत्ती 16 : 25–26 ।
30. मत्ती 10 : 28–31 ।
31. मरकुस 7 : 1–15 ।
32. मरकुस 7 : 14–23 ।

33– मत्ती 5 : 23–24 ।

34. मत्ती 9 : 13 ।

35. मत्ती 12 : 11–12 ।

36. योहन 12 : 23–24 ।

37. लूका 15 : 11–32 ।

38. यहूदी जाति से अलग हुई जाति के लोग। यहूदी इन्हें धर्म च्युत मानते थे और धर्म भ्रष्ट समझकर इनसे घृणा करते थे।

39. लूका 10 : 27–37 ।

40. योहन 11 : 56–57 ।

41. योहन 12 : 12 ।

42. मत्ती 21 : 1–3 ।

43. मत्ती 21 : 6–11 ।

44. मत्ती 26 : 1–6 ।

45. मत्ती 26 : 14–16 ।

46. मत्ती 26 : 17–25 ।

47. मत्ती 26 : 69–75 ।

48. मत्ती 27 : 1–61 ।

49. मत्ती 28 : 2–4 ।

50. मत्ती 28 : 5–8 ।

51. लूका 24 : 10–11 ।

52. योहन 20 : 3–10 ।

53. वही 20 : 11–18 ।

54. लूका 24 : 13–35 ।

55. लूका 24 : 36–47 ।

56. योहन 20 : 24–29 ।

57. मत्ती 28 : 16–20 ।

58. *Gandhi Ji in Ceylon, Page- 143.*

59. स्वामी विवेकानन्द, "ईशदूत ईसा", श्रीरामकृष्ण आश्रम नागपुर, संस्करण– 1959 ।

60. डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, "भारत की अन्तरात्मा", सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली, संस्करण– 1976, पृष्ठ– 92, 95, 96, 100 ।

61. आचार्य क्लेमेन्त, "2 क्लेमेन्ट", अध्याय 14 : 211, "रचनाकाल– ई0 सन् 150"

62. पुराना नियम, नबी दानिएल 9 : 2 ।

63. मत्ती 21 : 42 ।

64. मरकुस 12 : 10 ।

65. 2 तिमुथियुस 3 : 15 ।

66 कुरआन शरीफ, सूरा. 3 ।

67. चर्च ऑफ इंग्लैण्ड, दस्तावेज की धारा VI.

68. पुराना नियम, यिर्मयाह 31 : 31 ।

69. नया नियम, इब्रानियों के नाम पत्र 8 : 13 ।

70. 1 कुरिन्थुस 11 : 25 ।

71. 2 कुरिन्थुस 3 : 14–15 ।

72. 1 कुरिन्थुस 10 : 11 ।

73. बिशप क्लेमेंट डेनियल रॉकी, ''बाइबिल परिचय'', द्वितीय खण्ड : नया नियम, प्रका0– हिन्दी थियॉलाजिकल लिटरेचर कमेटी बरेली, संस्करण– 1981 ।

74. *Vulgate Bible, Line- 3, Page- 286.*

75. मत्ती 16 : 18 ।

76. इब्रानियों 1 : 1 ।

77. डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, ''आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका'', पृष्ठ– 484 ।

78. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, '' हिन्दी साहित्य का इतिहास'', पृष्ठ– 389 ।

79. डॉ0 शमशेर सिंह नरूला, ''हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास'', पृष्ठ– 120 ।

80. डॉ0 जे0एच0 आनन्द, ''पाश्चात्य विद्वानों का हिन्दी साहित्य'', संस्करण– 1982, पृष्ठ– 149–150 ।

81. पुराना नियम, यशायाह 45 : 5–12 ।

82. नया नियम, फिलिप्पियो 2 : 5–11 ; कलुस्सियो 1 : 15–20 ; इब्रानियो 1 : 1–9

83. योहन 1 : 1–14 ।

84. पुराना नियम, राजाओं का वृतान्त : पहला भाग, 6 : 19–22 ।

85. नया नियम, योहन 3 : 3–16 ।

86. पुराना नियम, निर्गमन 28 : 2–3 ।

87. निर्गमन अध्याय– 39 ।

88. ई0आर0 हम्बे, एस0जे0, ''हिस्ट्री ऑफ क्रिश्चियानिटी इन इण्डिया'', वाल्यूम III , दि चर्च हिस्ट्री एसोशिएट ऑफ इण्डिया बैंग्लोर, संस्करण– 1997 ।

89. डॉ0 सुधीर क्षीरज नेल्सल, ''दि इण्डियन क्रिश्चियन'' N.S.K.पब्लिकेशन्स एफ्रिकाना, 2002, पृष्ठ– 16 ।

90. वही, पृष्ठ– 17 ।

91. नया नियम, प्रेरितों के कार्य 2 : 44–45।

92. ''बपतिस्मा, प्रभु भोज और धर्म सेवा, खिस्तीय प्रेषण कार्य और सुसमाचार प्रचार'', प्रका0– हिन्दी थियॉलाजिकल लिटरेचर कमेटी, 1983, पृष्ठ– 17–18 ।

93. आराधना पुस्तक, पृष्ठ– 379 ।

94. 1कुरिन्थुस 11 : 23–25 ।

95. योहन 13 : 1 ।

96 1कुरिन्थुस 10 : 16 ; 2 : 42 ; 11 : 20 ।

97. बाइबिल, मरकुस 7 : 11 ।

98 मत्ती 26 : 28 ।

99. योहन 6 : 51–58 ।

100. रोमिया 12 : 1 ; 1 पतरस 2 : 5 ।

101. मत्ती 5 : 23 ।
102. 1 कुरिन्थुस 11 : 26 ; मत्ती 26 : 29 ।
103. आराधना पुस्तक, पृष्ठ– 139 ।
104. एम0एन0 श्रीनिवास, "आधुनिक भारत में जातिवाद", प्रका0– भोपाल, संस्करण 1992 ।
105. एल0पी0 विद्यार्थी, विनय कुमार रॉय, "दि ट्राइबल कल्चर ऑफ इण्डिया", कान्सेप्ट पब्लिशिंग दिल्ली, संस्करण 1985, पृष्ठ– 25 ।
106. सम्पादक– म्यूरियल स्टीकेन्सन, "जय येशु भीली भजन संग्रह", प्रका0– बोर्ड ऑफ क्रिश्चियन सर्विस ऑफ दि मालवा चर्च काउन्सिल इन्दौर, सन् 1982, पृष्ठ– 23–24 ।
107. डा0 एम0एन0 श्रीनिवास, "सोशल चेन्ज इन मॉडर्न इण्डिया", यूनीवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1966, पृष्ठ– 6 ।
108. वही, पृष्ठ– 48 ।
109. एल्विन वैरियर, "दि बैगा", ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी लन्दन, संस्करण 1939 ।
110. एल्विन वैरियर, "ट्राइबल वर्ल्ड ऑफ वैरियर एल्विन", ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी लन्दन, संस्करण 1964 ।
111. राबर्ट एम0 क्लार्क शान्तवन जॉन, "मसीही सिद्धान्तों की रूपरेखा, वॉल्यूम II, इलाहाबाद 1961, पृष्ठ– 156 ।
112. आराधना पुस्तक, पृष्ठ– 331, 332 ।
113. आराधना पुस्तक, आइ0एस0पी0सी0के0 दिल्ली, 2001, पृष्ठ– 460, 463, 468 ।
114. *It is God's will that in marriage the love of man and woman should be fulfilled in the wholeness of their life together, in mutual companionship, helpfulness and care. By the grace of God this love grows and deepens with the years. Such love in marriage is the foundation of true family life, and, when blessed with the gift of children, is God's appointed way for the continuance of mankind and the bringing up of children in an atmosphere of security and trust. (C.N.I. Constitution Part II, Chapter VI, and C.N.I. Marriage service section 3).*
115. आराधना पुस्तक, पृष्ठ– 394 ।
116. वही, पृष्ठ– 409 ।
117. वही, पृष्ठ– 396 ।
118. 2कुरिन्थुस 5 : 17 ।
119. तीतुस 2 : 12 ।
120. योहन 11 : 25–26 ।
121. 1पतरस 1: 3–4 ।
122. कुरिन्थुस 15 : 20–23, 35–38, 42–44, 53–55, 57, 58 ।
123. भजन संहिता 103 : 8, 13–17 ।
124. मरकुस 10 : 14 ।
125. मत्ती 18 : 14 ।

126. लूका 4 : 18–19 ।

127. लूका 2 : 10–11 ।

128. जी0आर0 सिंह, सी0डब्ल्यू0 डेविड, "खिस्तीय धर्म एक परिचय", हिन्दी थियॉलाजिकल लिटरेचर बरेली, 1977, पृष्ठ– 109, 110 ।

129. योहन 13 : 34 ।

130. लूका 24 : 51 ।

131. प्रेरितों के कार्य कलाप 2 : 1–13 ।

132. "डब्ल्यू ब्रूमली इन ब्रेकर्स डिक्शनरी ऑफ थियोलॉजी", पृष्ठ– 531 ।

133. सच्चिदानन्द भट्टाचार्य, "भारतीय इतिहास कोश", प्रकाशन– पुरूषोत्तम दास टण्डन हिन्दी भवन, महात्मा गाँधी मार्ग लखनऊ, संस्करण– 1989, पृष्ठ– 57, 58 ।

134. *"From factories to forts, from forts to fortification, from fortifications to garrisons, from garrisons to armies, and from armies to conquests, gradations were natural and the result inevitable, where we could not find a danger, we were determined to find a quarrel." (Philip Farancis, speech on India affair, 1687. A.P. ;* राधाकृष्ण बुन्देली, "बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन", बुन्देलखण्ड प्रकाशन बाँदा, 1989, पृष्ठ– 137) ।

135. पं0 गोरेलाल तिवारी, "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास", पृष्ठ– 260 ।

136. राधाकृष्ण बुन्देली, "बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन", बुन्देलखण्ड प्रकाशन बाँदा, 1989, पृष्ठ– 138 ।

137. पं0 गोरेलाल तिवारी, "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास", पृष्ठ– 176 ।

138. सी0यू0 एइटचीशन, "ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज, इंगेजमेण्ट्स एण्ड सनद", पृष्ठ– 187 ।

139. वही, पृष्ठ– 127–230 ।

140. राधाकृष्ण बुन्देली, "बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन", बुन्देलखण्ड प्रकाशन बाँदा, 1989, पृष्ठ– 139 ।

141. *"To the missionaries belong the honour of being pioneers in the modern educational system of India."* (नरूल्ला व नायक, "ए हिस्ट्री ऑफ एजूकेशन इन इण्डिया", पृष्ठ– 14) ।

142. चार्ल्स ग्रांट, "ग्रेट–ब्रिटेन के एशियाई प्रजाजनों की सामाजिक स्थिति पर विचार", 1972 ।

143. *"British imperialism in India gave her a political unity under a third party inspite of many discardant demands in Indian society"* (राधाकृष्ण बुन्देली, "बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन", बुन्देलखण्ड प्रकाशन बाँदा, 1989, पृष्ठ– 187) ।

144. *"We believed with all our simple growth that even if we revolted against foreign rule we should have the sympathy of wast, We felt that England was on our side in wishing to gain our freedom."* (वही, पृष्ठ– 188) ।

145. वही, पृष्ठ– 191 ।

146. डॉ0 रमेश चन्द्र श्रीवास्तव, "बाँदा वैभव", महेश्वरी प्रेस बाँदा, 1994, पृष्ठ– 68 ।

147. *"The present district of Banda was ceded to the British by the treaty of Bassein in 1803; but Shamsher Bahadur, son of Ali Bahadur and several independent chiefs had to be separately reduced. Himmat Bahadur on the other hand, yielded and received a large jagir along the Yamuna, which lapsed to the British shortly after words. The British force could not have so easily accomplished the occupation of Bundelkhand had not Himmat Bahadur offered his services to them. He joined the British with a large body of troops."* (बाँदा गजेटियर, पृष्ठ– 57)।

148. वही, पृष्ठ– 78।

149. बाँदा गजेटियर, पृष्ठ– 70।

150. *"Most of the tract covered by the present district was ceded to the East India Company by the treaty of Bassein signed on December 31st, 1802." Dharma Bhanu, : ("History and Administration of the North western provinces" Agra, 1955, Page- 83).*

151. *"By another treaty, a year after words, the Peshwa ceded in perpetuity to the East India Company from the province of Bundelkhand, territory yielding an estimated revenue of 36 lakhs, It may easily be imagined that the terms of this treaty would seriously affect the position of Shamsher Bahadur and drive him into the confederacy for opposing the British government, formed by Daulat Rao Scindia."* (हमीरपुर गजेटियर, पृष्ठ– 47)।

152. हमीरपुर गजेटियर, पृष्ठ– 61।

153. *"Warren Hastings threw the provisions of this treaty to winds and at once despatched for that purpose a specially well equipped army by the route of Allahabad through Kalpi and other parts of Bundelkhand." (D.L. Drake Brockman, Jalaun Gazetteer, Allahabad, 1921, Page- 129).*

154. *G.S. Sardesai : "New History of the Marathas." Vol. III, Bombay 1948, Page- 69.*

155. जालौन गजेटियर, पृष्ठ– 64।

156. जालौन गजेटियर, पृष्ठ– 71।

157. *"On February 6, 1804 the British entered into a defensive alliance with Sheo Rao Bhao, by which his possessions were guaranteed to him (under the suzerainty of the Poona Court) and he was also promised protection as long as he continued to remit the annual tribute to Poona. The Subedar had to undertake not to grant protection to any one at enmity with the Brithish and agreed to assist the British forces*

with his army in their expeditions against the neighbouring chiefs." (A.S. Misra : 'Nana Saheb Peshwa', Lucknow, 1961, Page- 334).

158. झाँसी गजेटियर, पृष्ठ– 81।

159. *"The Church Missionary socity (established in 1858), the presbyterian church of the United States of America and the American Reformed Episcopal Mission (established at Jhansi in 1886). St. Jude's shrine at Jhansi (established in 1950) both under the quspices of the Roman Catholic Church and the society for the propagantion of the Gospel have been carrying out evangelical, medical and educational work in the district in their own spheres."* (झाँसी गजेटियर, पृष्ठ– 88)।

160. *"It would be an unspeakable Joy were we able to tell you of marvelous conversions and great ingatherings of souls." (Delia Fistler, Report to FFMS, July 12, 1904)*

161. *Yet a sense of the compassionate, longsuffering, and loving God, reaching out through these missionaries to a humble people in Bundelkhand is constantly present. In an earlier report Delia wrote. "The harvest is white, but the labourers are few." (E. Anna Nixon, 'A century of planting', The Barclay press America. 1985, Page- preface IX.)*

162. सांख्यिकी 1991 की जनगणना के अनुसार ली गयी हैं।

163. महेश चन्द्र चौबे, 'अतीत दर्शन, जबलपुर के इतिहास का विवेचनात्मक अध्ययन', जिला योजना मंडल जबलपुर एवं भारतीय संस्कृति निधि द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ– 333।

164. वही, पृष्ठ' 333–334।

165. एस0बी0 साइमन, बाँदा में मसीही धर्म एक सर्वेक्षण (सर्वेक्षण रिपोर्ट)।

166. बाइबिल, मत्ती 5 : 3–12।

अध्याय चतुर्थ

अध्याय– 4

✵ बुन्देलखण्ड में मसीही धर्म का धर्म के क्षेत्र में प्रभाव

: *मसीही धर्म के सामान्य सिद्धान्त।*

: *मसीही धर्म का हिन्दू धर्म पर प्रभाव।*

: *मसीही धर्म का इस्लाम धर्म पर प्रभाव।*

: *मसीही धर्म का सिक्ख धर्म पर प्रभाव।*

: *मसीही धर्म का जैन धर्म पर प्रभाव।*

: *मसीही धर्म का बौद्ध धर्म पर प्रभाव।*

अध्याय– 4

मसीही धर्म के सामान्य सिद्धान्त

मसीही धर्म (ईसाई धर्म) मूलतः एकेश्वरवादी *(Monotheism)* धर्म है। यह धर्म विश्वास करता है (बाइबिल की प्रथम पुस्तक उत्पत्ति 1 से 2) कि परमेश्वर ने सात दिनों में समस्त ब्रह्माण्ड की रचना की है, जिसमें मनुष्य भी सम्मिलित है। आधुनिक युग में विद्वान दार्शनिक ईश्वर के विचार को विभिन्न ढंग से समझाते हैं। कुछ कहते हैं कि मनुष्य अपनी असहाय स्थिति और आवश्यकता के कारण ईश्वर को मानता है। अन्य दार्शनिक कहते हैं कि ईश्वर के अस्तित्व का रहस्य ही उनकी अराधना का श्रोत है। शेष यह मानते हैं कि ईश्वर का विचार मनुष्य के स्वयं का प्रतिबिम्ब है, उसके अहम् *(Self)* का *'प्रोजेक्शन'* है और कुछ ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हैं। कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो सृष्टि की व्यवस्था से आकर्षित हो, यह जानना चाहते हैं कि सृष्टि का प्रबन्धक कौन हैं ?
परमेश्वर शब्द की व्याख्या – मसीही धर्म ईश्वर को ''विचार'' (प्रत्यय) नहीं अपितु ''व्यक्ति'' (पर्सन) मानता है। दार्शनिक शब्दावली में यह विचार (प्रत्यय) नहीं, अपितु जीवित 'अस्ति' (लीविंग बीइग) हैं। उसने मनुष्य को अपने स्वरूप में सृजा हैं, अतः वह स्वयं मनुष्य को आह्वाहन देता हैं, अर्थात् वह स्वयं को मनुष्य पर प्रकट करता हैं।

ईश्वर का शाब्दिक अर्थ पुराना नियम की इब्रानी भाषा का 'एल, एलोहिम' तथा 'एलोआह' का अनुवाद तथा नया नियम की यूनानी भाषा का *'थियोस'* का अनुवाद हिन्दी भाषा में ईश्वर अथवा परमेश्वर *(Supreme Being)* किया है। इब्रानी शब्द प्रायः पर्यायवाची है और उनका संबन्ध *'शक्ति या सामर्थ्य'*, अथवा *'बल'* से हैं। भाषा–वैज्ञानिक मानते हैं कि यूनानी शब्द *'थियोस'* संस्कृत धातु *'दिव'* से व्युत्पन्न हुआ है (लातीनी, दियुस, संस्कृत, द्युल, चमकना, उज्जवल होना) यूनानी शब्द *'थियोस'* से जुड़ा *'धातृ'* शब्द है जिसका अर्थ है सृष्टि का रचयिता, निर्माता। 'द्यो' *(Gheu)* का आह्वाहन करना, अथवा पेय बलि उड़ेलना, अतः ईश्वर का अर्थ हुआ *'आराधना का आराध्य'*। संस्कृत *'दि'* का अर्थ *'चमकना'* हैं। इसी धातु से द्यूस *Dyaus* (स्वर्ग) और *'देवस'* (देवता अथवा ईश्वर) शब्द व्युत्पन्न हुआ। इस प्रकार आरम्भिक युग में ईश्वर का अर्थ 'आकाश का प्रकाशवान ईश्वर' था। यों तो शब्दों की व्युत्पत्ति के आधार पर किसी शब्द का अर्थ स्थायी रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता है ; क्योंकि शब्दों के अर्थ उनके प्रचलन और प्रयोग द्वारा निर्धारित होते हैं, उनके सन्दर्भ उनको अर्थ देते हैं। आधुनिक मसीही समाज में अब ईश्वर शब्द के स्थान पर परमेश्वर शब्द प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ परम् अस्ति *(Supreme Being)*, सृष्टि का रचयिता तथा प्रशासक है।

मसीही लोग यह विश्वास करते हैं कि परमेश्वर विषयक जानकारी बाइबिल से प्राप्त हो सकती है क्योंकि बाइबिल में ही परमेश्वर ने स्वयं को अभिव्यक्त किया है। बाइबिल के अनुसार परमेश्वर ने स्वयं का ज्ञान सब पर प्रकट किया है, फिर चाहे वे उसके नाम से उसकी आराधना करना न जानते हों। परमेश्वर के विषय में जो कुछ जाना जा सकता है, वह बाइबिल के माध्यम से उन पर प्रकट है, यह स्वयं परमेश्वर ने उन पर प्रकट किया है।[1]

बाइबिल के दो खण्ड हैं। बाइबिल के पुराना नियम में यह बताया गया है कि परमेश्वर लोगों पर अपनी उपस्थिति राष्ट्रीय संकट के समय हस्तक्षेप करके प्रकट करता है। इस प्रकार वह इतिहास का भी प्रभु है। वह राष्ट्रों और साम्राज्यों के उत्थान और पतन का नियन्ता है। वह मनुष्य की, समाज की, राष्ट्र की घटनाओं में हस्तक्षेप करता है, अतः वह जीवित परमेश्वर है।[2] उसके जीवन्त होने से उसकी सर्वशक्तिमत्ता प्रमाणित होती है। पुराने नियम के लोग अर्थात् इस्त्राएली

कौम के लोग यह विश्वास करते हैं कि वे परमेश्वर के चुने हुए लोग हैं। अतः परमेश्वर ने उनके इतिहास में, उनके निर्माण में हस्तक्षेप किया था। यह इतिहास तीन चरणों में *(Stages)* बाँटा जा सकता है। परमेश्वर ने इतिहास के इन महान् चरणों में अपनी सामर्थ्य के महानतम् कार्य किए थे : मिस्र देश की गुलामी से मुक्त होने पर लाल सागर के जल को दो भागों में बाँटना। दूसरा : इस्त्राएलियों को दण्ड स्वरूप उनके देश (इस्त्राएल देश) से निष्कासित करना और अपने दयापूर्ण स्वभाव के कारण, उन्हें गुलामी से वापस लाना और पुनः इस्त्राएल में स्थापित करना। तीसरा : प्रभु येशु को मृतकों में से जीवित करना और यों अपने लिए नया इस्त्राएल अर्थात् चर्च स्थापित करना। परमेश्वर के मानवीय इतिहास में हस्तक्षेप के कारण बाइबिल हमें यह भी बताती है कि वह *न्यायाधीश* भी है। वह न्याय करता है, दण्ड देकर पछताता भी है। वह *क्षमाशील* और *दयालु* है। बाइबिल के पुराना नियम का ईश्वर, मसीही धर्म के अनुयायियों की दृष्टि में *जीवित* और सच्चा हैं। वह ही आकाश और पृथ्वी, और उनमें जो कुछ हैं, सब का रचयिता है। वह *सर्वशक्तिमान* है। वह *शाश्वत्* है। वह *विराट* हैं। वह अत्यन्त *उच्च* हैं। उसने समस्त विश्व के सब लोगों के उद्धार के लिए प्रभु येशु को चुना, जिनके विषय में नया नियम में यह कहा गया है कि *'वह परमेश्वर पुत्र है।'* इस्त्राएली कौम ई0पू0 सैकड़ों शताब्दियों तक मिस्त्र देश, असीरिया, बेबीलोन एवं फारस, यूनान एवं रोम के अधीन रही है। अतः इस कौम में यह विश्वास जागा था कि सृष्टि–कर्त्ता परमेश्वर उन्हें छुड़ाने के लिए एक मसीह अर्थात् बचाने वाला भेजेगा। इसी आशा ने इस्त्राएली कौम को आज के दिन तक जीवित रखा है। इस आशा को भिन्न–भिन्न समय में हुए नबियों ने अपने ढंग से अभिव्यक्त किया। जैसे नबी यशायाह[3] इस आशा को रहस्यपूर्ण ढंग से *'प्रभु के दुखभोगी सेवक'* की भविष्यवाणी में अभिव्यक्त करते हैं कि प्रभु का यह दुख भोगी सेवक अपने रक्त के बलिदान से मानव जाति के पाप की कालिमा को धो देगा और अन्त में नबी दानिएल परमेश्वर के इस मसीहा की आशा की परिपूर्ति *'मानव–पुत्र'* के दर्शन में देखते हैं जो इतिहास में परमेश्वर के सार्वभौमिक राज्य का आरम्भ करेगा।[4]

एक और नबी यिर्मयाह ने इस विचार को प्रभावपूर्ण ढंग से इस प्रकार अभिव्यक्त किया है, और परमेश्वर के अनेक कार्यो का उल्लेख किया, "आह! मेरे स्वामी मेरे प्रभु, तूने ही अपनी महान सामर्थ्य से, अपने भुजबल से आकाश और पृथ्वी की *रचना* की हैं। तेरे लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। तू लाखों पर *करूणा* करता है। *हे महान* और सर्वशक्तिमान परमेश्वर, तेरा नाम *'स्वर्गिक सेनाओं का प्रभु'* है। तू महान *परामर्शदाता* है। तू महान *आश्चर्यपूर्ण कामों* को करता है। तू सब मनुष्यों के आचरण पर *दृष्टि रखता* हैं। तू प्रत्येक मनुष्य को उसके आचरण के अनुसार, उसके कामों के अनुरूप *फल देता* है। तूने मिस्र देश में आश्चर्यपूर्ण कार्य किए थे, और अद्भुत *चिन्ह दिखाए* थे, जो आज भी तू इस्त्राएली राष्ट्र में तथा समस्त मानव–जाति के मध्य कर रहा है। यों तूने अपना नाम ऐसा प्रतिष्ठित किया जो आज तक बना है। तूने अपनी महान सामर्थ्य और भुजबल से अपने निज लोग इस्त्राएलियों को मिस्र देश की गुलामी से मुक्त कर उन्हें वहाँ से निकाला था.........और यह देश दिया........जिसकी शपथ.........तूने उनके पूर्वजों से खाई थी।..........किन्तु उन्होंने तेरी वाणी नहीं सुनी और तेरी व्यवस्था के अनुसार आचरण नहीं किया। उन्होंने वे कार्य नहीं किए, जिनको करने का आदेश तूने उनको दिया था। नबियों ने अपने भेजने वाले परमेश्वर के बारे में लोगों को बताया कि वह उनसे क्या चाहता है : "न्याय को जलधारा–सा और धर्म को निरन्तर बहने वाले झरने की तरह सदा बहने दो।"[5]

परमेश्वर पुत्र प्रभु येशु जो मसीह हैं – नए नियम में प्रभु येशु को मसीही धर्म में परमेश्वर का पुत्र अर्थात् स्वयं परमेश्वर माना गया है और यह परमेश्वर अर्थात् प्रभु येशु पुराने नियम के समान जीवित और सच्चे हैं। उनको पिता परमेश्वर ने संसार में भेजा है और उसमें और उसके द्वारा मानव–जाति के उद्धार–कार्य को पूरा किया है। यद्यपि इस कार्य में प्रभु येशु को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी किन्तु परमेश्वर ने उनको मृतकों में पुनर्जीवित किया।[6]

मसीही यह विश्वास करते हैं कि वे प्रभु येशु के बलिदान के द्वारा वे भी परमेश्वर के पुत्र बन गए हैं।[7] मसीही यह विश्वास करता है कि वह परमेश्वर के पुत्र–पुत्रियाँ होने के कारण उनके लिए यह आवश्यक है कि वे परमेश्वर की सन्तान के योग्य जीवन जीएँ,[8] अर्थात् एक–दूसरे के अपराध क्षमा करें,[9] एक–दूसरे पर दया करें[10] और एक–दूसरे से प्रेम करें।[11] सच तो यह है कि नया नियम परमेश्वर के प्रकाशन को सर्वोत्तम ढंग से संत योहन सूत्र वाक्य में इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं, "परमेश्वर प्रेम हैं।"[12]

त्रिएक परमेश्वर का सिद्धान्त – मसीही समाज पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा को एक सामूहिक नाम त्रिएक परमेश्वर से सम्बोधित करता हैं। वास्तव में परमेश्वर ने मनुष्य जाति के उद्धार–कार्य की योजना को अपने विभिन्न तीन रूपों में सम्पन्न किया है। बाइबिल में वर्णित परमेश्वर के विमोचन का इतिहास तीन चरणों में पूरा होता हैं पहले चरण में हम परमेश्वर को पिता के रूप में देखते हैं जिसका वर्णन पुराने नियम में हुआ है। वह अपने मनोनीत निज लोग इस्त्राएलियों को पिता–सदृश हाथ पकड़कर प्रतिज्ञाबद्ध देश में लाता है, उनका लालन–पालन करता है। इतिहास के दूसरे चरण नया नियम के चारों शुभ समाचारों में वह पुत्र के रूप में उस मिशन को कार्यरूप में परिणित करता है। वह पिता की इच्छा को अपने कार्यों और शिक्षाओं द्वारा पूरा करता है। तीसरा चरण मानव जाति का रिस्पोन्स है, और रिस्पोन्स का प्रेरक है पवित्र आत्मा, जो रिस्पोन्स करने वालों का *'सहायक'* है। स्वयं परमेश्वर पवित्र आत्मा के रूप में लोगों को उत्प्रेरित करता है, उनको बुलाता है कि वे अपना विद्रोही स्वभाव त्याग दें, पश्चाताप करें, और पुत्र पर विश्वास करें और इस प्रकार पुत्र में, और पुत्र के द्वारा उद्धार प्राप्त करें। रिस्पोंस–प्रक्रिया का विवरण नया नियम के ग्रन्थ *"प्रेरितों के कार्य–कलाप"* से आरम्भ होकर सन्त पौलुस के तथा अन्य प्रेरितों के पत्रों तक फैल जाता है। यह प्रक्रिया अब तक समाप्त नहीं हुयी है किन्तु इसकी समाप्ति की झलक हमें पवित्रात्मा *'प्रकाशन'* ग्रन्थ के विवरण में दिखाता है। दूसरे शब्दों में वर्तमान चर्च जो विश्वासियों का समूह हैं, में पवित्र आत्मा कार्यरत है और जब तक प्रभु येशु का पुनरागमन न होगा तब तक यह पवित्र आत्मा कार्यरत रहेगी।

यहाँ यह तथ्य भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि मसीही धर्म बहुदेववादी नहीं है। त्रिएक परमेश्वर का अर्थ अनेक ईश्वर नहीं, अपितु एक मात्र ईश्वर है : एकेश्वर, अद्वितीय, अद्वैत। इसलिए चर्च में यह विश्वास–वचन नियमित रूप से दोहराया जाता है : "मैं (हम) विश्वास करता हूँ आकाश और पृथ्वी के सृष्टिकर्त्ता एक मात्र परमेश्वर पर.........।"

त्रिएक परमेश्वर के सिद्धान्त में सबसे बड़ी समस्या कौन बड़ा, कौन छोटा अथवा कौन किसके अधीन अथवा मातहत हैं। अतः चर्च ने बाइबिल की सच्चाई के आधार पर त्रिएक परमेश्वर में समान गुणों (कामन) घोषित किए हैं, जो पिता, पुत्र और पवित्रात्मा में पूर्णतः पुष्ट किए जा सकते हैं : जैसे पिता, पुत्र और पवित्रात्मा अर्थात् तीनों व्यक्ति (पर्सन) शाश्वत हैं, अनन्तकाल से हैं, कोई भी किसी के बाद अस्तित्व में नहीं आया। तीन सर्व सामर्थी, सर्वशक्तिमान हैं। सृष्टि–रचना के कार्य में तीनों सम्मिलित हैं, तीनों सर्वज्ञ हैं और सर्वव्यापी (सब जगह) हैं। तीनों सभी को जीवन देते हैं, और सभी को बचाते हैं। यद्यपि ये आँखों से अदृश्य हैं फिर भी इनका अनुभव इनकी उपस्थिति का

अहसास किया जा सकता है। सच पूछो तो तीनों का अस्तित्व एक ही है और एक ही परमेश्वर तीन रूपों में कार्य करता है : पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के रूप में। अब हम तीनों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे :

1. परमेश्वर – मसीही धर्म में परमेश्वर या परमात्मा या परब्रह्म के संबन्ध में दार्शनिक विवेचन नहीं किया जाता। मसीही लोग प्रभु येशु में ही परमेश्वर को देखते और समझते हैं, क्योंकि प्रभु येशु यहूदी कौम में जन्में थे। अतः उन्होंने ईश्वर संबन्धी यहूदी विचार धारा को अपना जो बाइबिल के पुराना नियम में वर्णित हैं अर्थात्

परमेश्वर एक है
परमेश्वर पौरूषेय या व्यक्तित्व संपन्न है
परमेश्वर पवित्र है
परमेश्वर धर्मी है
परमेश्वर अनुग्रह करने वाला या अपार करूणामय है
परमेश्वर वाचा का परमेश्वर हैं।[13]

इस विचार में प्रभु येशु ने यह नयी बात जोड़ी कि परमेश्वर उनका पिता है अतः जो भी व्यक्ति प्रभु येशु पर विश्वास करता है उनका भी वह पिता है और यह पिता सब लोगों से प्रेम करता हैं। बाइबिल के एक स्थल पर लिखा है कि परमेश्वर प्रेम है और उसने संसार से ऐसा प्रेम किया कि उसने अपना एकलौता पुत्र दे दिया कि जो मनुष्य उसके पुत्र पर विश्वास करेगा वह नष्ट नहीं होगा, परन्तु शाश्वत जीवन पाएगा। परमेश्वर ने अपने पुत्र को संसार में इसलिए नहीं भेजा कि वह संसार को दण्ड की आज्ञा दे, वरन् इसलिए भेजा कि वह संसार का उद्धार करे।[14]

2. पुत्र अर्थात् प्रभु येशु – ***(A)*** मसीही लोग विश्वास करते हैं कि प्रभु येशु एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और वह अपने दोनों विश्वास–वचनों में यह घोषित करते हैं। नीकया के विश्वास वचन में यह कहा गया है :

हम एक प्रभु, येशु मसीह (खिस्त) पर विश्वास करते हैं।
वह परमेश्वर का एकलौता पुत्र,
सर्वयुगों से पहले पिता से उत्पन्न,
परमेश्वर से परमेश्वर, ज्योति से ज्योति
सत्य परमेश्वर से सत्य परेश्वर,
कृत नहीं वरन् उत्पन्न हैं ;
उनका और पिता का तत्व एक है।

ऐसा ही प्रेरितों के विश्वास–वचन में कहा गया है :

मैं उसके (परमेश्वर) एकलौते पुत्र, हमारे प्रभु,
येशु मसीह (खिस्त) पर विश्वास करता/ती हूँ।
वह पवित्र आत्मा के सामर्थ्य से गर्भ में आए,
और कुँवारी मरियम से जन्में।
उन्होंने पुन्तियुस पिलातुस के शासन में दुःख भोगा।
वह क्रूस पर चढ़ाए गए, मरे और गाड़े गए,
और मृतकों के लोक में उतरे।
तीसरे दिन वह जी उठे।
वह स्वर्ग पर चढ़ गए
और पिता की दाहिनी ओर विराजमान हुए।
वह जीवितों और मृतकों का न्याय करने को फिर आएगें।

परमेश्वर ने जिस मानव–पुत्र के रूप में देह धारण किया था, वह प्रभु येशु कहलाए। उन्होंने पवित्र आत्मा के सामर्थ्य से कुँवारी मरियम से जन्म लिया ; मानव जीवन बिताया ; परमेश्वर के साथ एक अद्वितीय सम्बन्ध में जीवन व्यतीत किया ; उन्होंने शिक्षा दी; आश्चर्य कर्म किए; रोमन गवर्नर पुन्तियुस पिलातुस के शासन में दुःख उठाया ; क्रूस पर चढ़ाए गए ; मरे ; कबर में गाड़े गए ; तीसरे दिन मृतकों में से जी उठे ; और चालीस दिन तक अपने चेलों और भक्तों को दिखाई देते रहे और तब स्वर्ग में चले गए। उनका जीवन निष्पाप जीवन था ; उनका जीवन आदर्श एवं सिद्ध था।[15]

(B) प्रभु येशु पूर्ण परमेश्वर और पूर्ण मनुष्य हैं ; यह मसीही धर्म का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है और इसी सिद्धान्त का स्पष्टीकरण चर्च की महासभा के अधिवेशन में ई0 स0 415 में खल्देदोन नामक स्थान में आयोजित धर्म परिषद में स्पष्टीकरण किया गया था –

'हम पवित्र धर्माचार्यों का अनुसरण कर, सब एक मत से मनुष्यों को सिखाते हैं कि एक और केवल एक ही परमेश्वर–पुत्र हमारे प्रभु येशु खिस्त पर विश्वास करे। यह ईश्वरत्व से पूर्ण हैं और मनुष्यत्व, से भी पूर्ण हैं। यह सत्य ईश्वर और सत्य मनुष्य हैं।'

मसीही लोग विश्वास करते हैं कि स्वयं प्रभु येशु अपने को परमेश्वर का पुत्र कहा करते थे। *'परमेश्वर का पुत्र'* शब्द मरकुस के सुसमाचार में आठ बार आया हैं। महापुरोहित ने फिर पूछा, *'क्या तू परम स्तुत्य का पुत्र खिस्त है ?'* प्रभु येशु ने कहा, *'मैं हूँ'*।[16] परमेश्वर का पुत्र होने का अर्थ यह है कि प्रभु येशु एक दिव्य व्यक्ति थे जो मानव रूप में प्रकट हुए। उनमें परमेश्वर की सामर्थ्य थी जिससे वह लोगों को स्वास्थ्य और उद्धार प्रदान करते थे।

संत योहन रचित सुसमाचार में परमेश्वर का पुत्रत्व इससे प्रकट होता है कि प्रभु येशु बार–बार परमेश्वर के सम्बन्ध में *'मेरा पिता'* शब्द का प्रयोग करते हैं। इस सुसमाचार में 110 बार *'पिता'* शब्द का प्रयोग परमेश्वर के संबन्ध में हुआ है।[17] सन्त योहन के 5 : 17–30 में ही दस बार प्रभु येशु अपने को *'पुत्र'* कहते हैं जिसमें एक बार 'परमेश्वर का पुत्र' कहा गया हैं। सन्त योहन 5 : 19–20 में पुत्रत्व सम्बन्धी व्याख्या है। परमेश्वर पिता और पुत्र जीवनदायक सामर्थ्य और न्याय करने के अधिकार में एक हैं। दोनों समान रूप से आदरणीय हैं। 3 : 16 में 'एकलौता पुत्र पिता के अंक में हैं ; अतएव पिता और पुत्र का सत् एक है, वे तात्विक रूप से एक हैं।' प्रभु येशु ने कहा, 'जिसने मुझे देखा उसने पिता को देखा।'[18] पिता और पुत्र की एकता का अद्वितीय कथन यह है – 'मैं केवल उनके लिए ही नहीं वरन् उन सबके लिए प्रार्थना करता हूँ जो इनके सन्देश द्वारा मुझ पर विश्वास करेंगे कि वे सब एक हों। जैसे हे पिता, मैं तुझमें हूँ और तू मुझमें, उसी प्रकार वे हम में हों, जिससे संसार विश्वास करे कि तूने मुझे भेजा है।'

'जो महिमा तूने मुझे दी है, वह मैंने उन्हें दी है कि जैसे हम एक हैं, वे भी एक हों : मैं उनमें और तू मुझमें ताकि वे पूर्ण एकता को प्राप्त करें, जिससे संसार जाने कि तूने मुझे भेजा है, और जैसे तूने मुझसे प्रेम किया है, वैसे ही उनसे भी प्रेम किया है।

'हे पिता, मैं चाहता हूँ कि जिनको तूने मुझे दिया है, वे भी जहां मैं हूँ, मेरे साथ हों, जिससे वे उस महिमा को देख सकें जो तूने मुझे दी है ; क्योंकि तूने संसार की सृष्टि के पूर्व ही मुझसे प्रेम किया है।'

'हे धर्ममय पिता, संसार ने तुझको नहीं जाना, परन्तु मैनें तुझे जाना है : और ये जानते हैं कि तूने मुझे भेजा हैं। मैंने तेरा नाम इन्हें बताया और बताता रहूँगा कि वह प्रेम जो तूने मुझे दिया है, उनमें भी हो और मैं उनमें होऊ।'[19] सन्त योहन के सुसमाचार से स्पष्ट होता है कि पुत्र का अस्तित्व सनातन है।[20] पिता के तत्व और वास्तविकता का सिद्ध और सम्पूर्ण प्रकाशन होते हुए प्रभु येशु में वही तत्व और वास्तविकता है।

3. पवित्र आत्मा – मसीही विश्वासी यह विश्वास करता है कि त्रिएक परमेश्वर का तीसरा तत्व पवित्र आत्मा है जिसे सिद्धान्त रूप में क्रमवार हम इस प्रकार कह सकते हैं :

I - पवित्र आत्मा त्रिएक परमेश्वर (पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा) में एक व्यक्ति है। वह आदि से परमेश्वर के साथ है जैसे वचन या शब्द या पुत्र परमेश्वर के साथ है। वह पिता और पुत्र दोनों से निकलता है।[21]

II - पवित्र आत्मा सृष्टि रचना में परमेश्वर और वचन का सहायक है और मनुष्य एवं प्राणियों को जीवन देता है।

III - धर्मशास्त्र की रचना में नबियों के माध्यम से और अन्य लेखकों के माध्यम से पवित्र आत्मा बोला है।

IV - परमेश्वर–पुत्र का जन्म पवित्र आत्मा के सामर्थ्य से हुआ। परमेश्वर–पुत्र प्रभु येशु के बपतिस्मा, जीवन एवं कार्य में वह सहायक रहा। परमेश्वर की सामर्थ्य (पवित्रात्मा) से प्रभु येशु मृतकों में से जिलाए गए। पवित्र आत्मा प्रभु येशु के विषय में साक्षी देता है। प्रभु येशु के विषय में वह सब बातें स्मरण कराता है।

V - पवित्र–आत्मा विश्वासियों को नया जीवन प्रदान करता है। विश्वासी पवित्र–आत्मा से भर कर प्रभु येशु के साक्षी बनते हैं और रक्त–साक्षी होने का साक्षी कार्य करतें हैं।

VI - पवित्र–आत्मा मनुष्य के उद्धार में प्रत्येक चरण में सहायता करता है – पाप से छुटकारा में, धर्मी गिने जाने में, पवित्र किए जाने में और महिमा प्राप्त करने में पवित्र आत्मा सहायक है।

VII - पेराक्लीत अर्थात् *'सहायक'* होने के कारण वह विश्वासियों का परमेश्वर पिता और प्रभु येशु मसीह अर्थात् परमेश्वर–पुत्र के समक्ष निवेदन कर्त्ता हैं, वह सहायक और शान्तिदाता हैं।

VIII - चर्च पवित्र–आत्मा की संगति है। चर्च मसीह की देह है और आत्मा उसका जीवन। पवित्र–आत्मा पवित्र सेक्रामेंतो में सहायक है। परमेश्वर के परिवार के लोगों को वह शाश्वत जीवन देता है।[22]

IX - वह पवित्र धर्म सेवा का दाता है और सेवकों को विभिन्न वरदान एवं दायित्व प्रदान करता है।

X - त्रिएक परमेश्वर चर्च की आशीष में साथ रहते हैं। "प्रभु येशु मसीह का अनुग्रह, परमेश्वर का प्रेम और पवित्र आत्मा की सहभागिता तुम सब के साथ हो।"[23]

मसीही चर्च के विश्वासों वचन नीकया का विश्वास वचन में पवित्र आत्मा का सिद्धान्त इन शब्दों में व्यक्त किया गया हैं :

"प्रभु येशु मसीह..
पवित्र आत्मा के सामर्थ्य से वह कुँवारी मरियम से जन्में।
हम पवित्र आत्मा पर विश्वास करते हैं।
वह प्रभु और जीवन दाता है।
वह पिता और पुत्र से निकलता है।
पिता और पुत्र के साथ उसकी अराधना और स्तुति की जाती है।"[24]

पवित्र बाइबिल

मसीही जन के अनुसार पवित्र बाइबिल परमेश्वर का वचन है। मसीही विश्वास करते हैं कि बाइबिल दुनिया की प्राचीनतम् पुस्तक है, जिसको लिखने में प्रायः सोलह शताब्दियाँ लगीं थीं। बिना बाइबिल पर विश्वास किए कोई भी व्यक्ति मसीही नहीं कहलाया जा सकता है। इसके विषय में हमने विस्तार से अन्यत्र लिखा है।

आदि पाप (Original-Sin)

मसीही जन यह विश्वास करता है कि वह जन्म से ही पापी हैं। जिसका सिद्धान्त इस प्रकार बाइबिल में वर्णित हुआ है –

पाप शब्द का अर्थ एवं व्याख्या *'पाप'* इब्रानी भाषा के *'हाट'* शब्द तथा यूनानी भाषा के *'हमारटिया'* शब्द का अनुवाद हिन्दी में *'पाप'* किया गया है। मूल शब्द के अर्थ हैं : गिरना, गलती, अपराध, आज्ञा उल्लंघन, कानून रहित होना, अधर्मी होना इत्यादि। बाइबिल में जो शब्द उपयोग में आये हैं उनके आधार पर पाप की परिभाषा देना असम्भव है। पर पाप का मूलभाव परमेश्वर की इच्छा के विरुद्ध जाना है। पाप की कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार की जा सकती हैं – "नियम या आज्ञा उल्लंघन ही पाप है।"[25] व्यवस्था या नियम परमेश्वर की सम्पूर्णता तथा निर्दोषता की प्रतिलिपि है। अन्य शब्दों में व्यवस्था हमें बतलाती है कि परमेश्वर कैसा है। परमेश्वर शुद्ध, पवित्र है। परमेश्वर हमसे पवित्रता तथा शुद्धता चाहता है। जो परमेश्वर हम से चाहता है उसका न होना ही आज्ञा का उल्लंघन है, पाप है। इस तरह आज्ञा उल्लंघन या पाप परमेश्वर का विरोध है।

पाप का आरम्भ – मनुष्य–जाति के मूल माता–पिता आदम–हव्वा के पतन से पाप का आरम्भ माना जाता है उत्पत्ति उस तरीके को बतलाती है जिस तरीके से पाप मनुष्य जाति में आया।[26] तीमुथियुस से ज्ञात होता है कि मनुष्य कैसे पापी हो गया।[27] आँखों की अभिलाषा से पाप शुरू हुआ। शैतान ने परमेश्वर तथा उसकी पवित्रता एवं सच्चाई के विरूद्ध आक्रमण किया।[28] उसने हव्वा को ऐसे बहकाया कि वह और उसका पति परमेश्वर के तुल्य हो जाएंगे और भले–बुरे का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। यही परमेश्वर के तुल्य हो जाने की इच्छा ने, हव्वा का ध्यान खींचा। यहीं से विद्रोह तथा अवज्ञा की शुरूआत हव्वा के हृदय तथा मस्तिष्क में हुई। हव्वा की यह प्रतिक्रिया बतलाती है कि परीक्षा करने वाले ने हव्वा का विश्वास जीत लिया, और जो वह चाहता था कि हव्वा परमेश्वर के तुल्य हो जाने की इच्छा करे वह उसने प्राप्त कर लिया।

यही पाप का आरम्भ है तथा पाप का सही स्वभाव है। पाप खुले और प्रत्यक्ष कार्य से नहीं होता वरन् मस्तिष्क तथा हृदय से निकलता है। पाप की गम्भीरता का इस बात से पता चलता है कि यह परमेश्वर के अधिकार, भलाई, विश्वास–योग्यता, न्यायप्रियता, धार्मिकता तथा परमेश्वर के अनुग्रह का उल्लंघन है। पाप परमेश्वर के अधिकार के प्रति विद्रोह है, उसकी अच्छाई पर सन्देह करना है, उसके ज्ञान के साथ विवाद करना है, उसकी धार्मिकता से विद्रोह करना है, उसकी सच्चाई का विद्रोह करना है तथा उसके अनुग्रह को ठुकराना है। यह पाप का स्वभाव एवं चरित्र है। पाप परमेश्वर के प्रति विद्रोह है।

बाइबिल सिखाती है कि परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप में सजा। इस संबन्ध में प्रश्न यह उत्पन्न होता हैं कि यदि परमेश्वर ने मनुष्य को ऐसा उत्तम बनाया तो उसके स्वभाव का बिगाड़ कब और किस प्रकार से हुआ। इस के उत्तर में दो विशेष मसीही शिक्षाओं पर विचार करना चाहिए अर्थात् कि मनुष्य जाति का अपनी प्रारम्भिक दशा से पतन हुआ और कि इस पतन के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति में और पूरी मानव जाति में आदि पाप या मूल पाप का दोष है। उत्पत्ति की पुस्तक के तीसरे अध्याय में आदम और हव्वा के प्रथम पाप का वर्णन किया जाता है। इसमें दो विशेष बातें हैं, पहली कि मनुष्य परमेश्वर के प्रति अभिमानी बनकर अपने को परमेश्वर के स्थान में रखना चाहता है, और दूसरी कि वह परमेश्वर की स्पष्ट आज्ञाओं का उल्लंघन करता है। सम्पूर्ण पुराना नियम गवाही देता है कि ये दो बातें मनुष्यों में प्रचलित रहीं। मनुष्य अपना अथवा अन्य किसी सृजी हुयी वस्तु का परमेश्वर के स्थान में आदर करते रहें तथा परमेश्वर के प्रति अवज्ञाकारी रहें। पुराना नियम

के पश्चात् के यहूदी शास्त्रियों ने सिखाया कि पाप की यह परम्परा आदम के प्रारम्भिक पाप के कारण हुयी।[29] इसका अर्थ यह नहीं है कि आदम हम सब के पाप का दोषी है और हम निर्दोष हैं, किन्तु यह कि पाप की ओर जो प्रवृत्ति आदम में थी वह हम सभी में पायी जाती है। पौलुस की यह शिक्षा संकेत करती है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी भटकी हुयी और भ्रष्ट अवस्था में *"आदम"* हैं। इस बात में परमेश्वर भी दोषी नहीं हैं। उसने मनुष्य को स्वतन्त्र बनाया कि वह अपनी इच्छा से परमेश्वर के प्रति आज्ञाकारी रहे और उसकी संगति में रहे। मनुष्य परमेश्वर के प्रति अविश्वास और विद्रोह कर परमेश्वर की संगति से पतित हुआ और पाप के बन्धन में पड़ गया है। प्रत्येक व्यक्ति और सारी मानव जाति इस बन्धन में संभागी है। इस कारण से प्रत्येक मनुष्य को परमेश्वर के उद्धार करने वाले अनुग्रह की आवश्यकता है इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए परमेश्वर ने मनुष्य के उद्धार के लिए प्रभु येशु मसीह के आने, उसके क्रूस और जी–उठने में अपना निर्णयात्मक कार्य किया।

मनुष्य के पतन और मूल पाप की शिक्षा संसार में पाप के उदगम का कोई पूरा उल्लेख नहीं करती है। अन्त में यह रहस्यमयी बात है। तो भी यह शिक्षा कुछ आवश्यक बातों को स्पष्ट करती हैं। पहली बात है कि कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं समझ सकता है कि वह किसी सरल रीति से सुमार्ग पर चलकर अपने जीवन के यथोचित लक्ष्य तक पहुँच सकेगा। स्वयं उसी में ऐसा दोष, बुराई की ओर ऐसी प्रवृत्ति है जिसके कारण यह असम्भव है और यह दोष न केवल उसके मन में किसी प्रकार का अज्ञान अथवा उसके शरीर में कोई दुर्बलता है। मनुष्य के स्वभाव का कोई भी अंश नहीं है जो इस दोष से कलुषित नहीं हैं। चाहे मनुष्य इस दोष से अभिज्ञ है चाहे नहीं, वह उसमें है। वह उन मनुष्यों में अधिक मात्रा में पाया जा सकता है जो अपने जीवन और अपनी कृतियों से सन्तुष्ट है। इस कारण से प्रभु येशु मसीह ने अपने समय के फरीसियों पर इतनी कड़ी बातें कही थी फिर यह शिक्षा पाप की गम्भीरता को स्पष्ट करती है। हम मायावादी के समान नहीं समझ सकते हैं कि मनुष्य की आत्मा विशुद्ध है और पाप केवल माया का आच्छादन है जो सिद्ध ज्ञान की प्राप्ति से दूर हो जाएगा। सम्पूर्ण मानव इस पाप में रंगा हुआ है। हम कर्म के सिद्धान्त के मानने वाले के समान ऐसा नहीं समझ सकते हैं कि पाप केवल पर्णाश्रम धर्म अथवा अन्य नियमों का उल्लंघन है। वह व्यक्तिगत परमेश्वर के प्रति मानव व्यक्ति का अविश्वास, अवज्ञा और विद्रोह है। फिर हम पारसी द्वैतवाद के समान नहीं समझ सकते हैं कि संसार में और मनुष्य में ऐसा मूल तत्व है जो परमेश्वर के विरोध में है और जिस के कारण हम में धर्म और पाप का द्वन्द है। पाप के दोषी हम ही हैं क्योंकि हम स्वतन्त्र होकर परमेश्वर के प्रति विद्रोह करते हैं। दूसरी ओर मूल पाप की शिक्षा का अर्थ ऐसा कभी नहीं है कि मनुष्य में परमेश्वर का स्वरूप पूर्णतया मिट गया है। सब से पतित मनुष्य का भी परमेश्वर के साथ इतना संबन्ध रहता है कि परमेश्वर का प्रकाशन उसके पास पहुँच सकता है और वह परमेश्वर के अनुग्रह का पात्र हो सकता है। प्रभु येशु ने सब मनुष्यों को बुलाया कि वे पश्चाताप और विश्वास कर परमेश्वर के उद्धार करने वाले अनुग्रह तथा परमेश्वर के राज्य में नवीन जीवन के वरदानों को स्वीकार करें। मनुष्य में पाप के परिणाम विविध प्रकार से आत्मा–विनाशक हैं। इन में मुख्य परिणाम ये हैं :

1. मनुष्य में परमेश्वर के स्वरूप का ऐसा विकार आ जाता है कि वह सच्चा मनुष्य नहीं रहता। उसमें सत्य, मनुष्यत्व का केवल बिगड़ा हुआ रूप रहता है।
2. मनुष्य का विवेक कलुषित किया जाता है।
3. मनुष्य अपने को परमेश्वर की आज्ञाओं का उल्लंघन करने का दोषी जानता है।

4. परमेश्वर के साथ और मनुष्यों के साथ के सम्बन्ध में विकार हो जाता है। वह जो परमेश्वर का पत्र और सब मनुष्यों का भ्राता होने के लिए सृजा गया वह दोनों का दोषी बन जाता है।
5. मनुष्य जो स्वतन्त्र होने के लिए सृजा गया वह अपनी पापमय आदतों का दास बन जाता है।[30]

मनुष्य के विचार और संकल्प ऐसे विकृत हो जाते हैं कि वह अपने पापों से घृणा नहीं किन्तु प्रेम करता है।

मनुष्य के जीवन में ये सब दुष्परिणाम पाप के कारण उपस्थित होते हैं। इनके कारण मनुष्य ऐसा पतित और आसक्त हो जाता है कि परमेश्वर ही के उद्धार करने वाले अनुग्रह को छोड़ उसके सुधार के लिए आशा नहीं हो सकती हैं परमेश्वर का धन्यवाद हो कि उसका असीम अनुग्रह जो मसीह के क्रूस में प्रकट हुआ है वह इन सारी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूर्ण रीति से पर्याप्त है। उसके अनुग्रह के द्वारा मानव स्वभाव के विकार के स्थान में परमेश्वर की नई सृष्टि है, कलुषित विवेक के लिए शोधन है, अपराधी मनुष्य के लिए क्षमा है, द्वेष के स्थान में मेल है, दासत्व के स्थान में स्वतन्त्रता है, और पतन के स्थान में जीवन का पुनर्निर्माण है। सारांश में हम पौलुस के साथ यह कह सकते हैं कि *"पाप की मज़दूरी तो मृत्यु है, परन्तु परमेश्वर का वरदान हमारे प्रभु येशु मसीह में शाश्वत जीवन है।"*[31]

मुक्ति अथवा उद्धार

यह मसीही सिद्धान्तों में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है जो मसीही धर्म को अन्य धर्म से अलग करता है। मसीही व्यक्ति विश्वास करता है कि मनुष्य न तो अपने कर्म से, न ही अपने ज्ञान से उद्धार प्राप्त कर सकता है, वरन् उसका उद्धार केवल भक्ति के द्वारा प्राप्त अनुग्रह से ही होता है। इस सिद्धान्त का हम विस्तार से अध्ययन करेंगे।

उद्धार शब्द का प्रयोग – हिन्दी भाषा में उद्धार के लिए मुक्ति और मोक्ष दार्शनिक शब्द और तारणहार जैसे सामान्य शब्द भी मिलते हैं। अंग्रेजी शब्द सेल्वेशन के लिए 'उद्धार' शब्द का प्रयोग प्रायः हुआ है। आर0एस0 व्ही की शब्द अनुक्रमणिका में बचाना या उद्धार करना और क्रिया रूप का पुराना नियम में करीब 200 बार और नया नियम में करीब 100 बार मिलता है। *'उद्धारकर्त्ता'* का प्रयोग पुराना नियम में 14 बार और नया नियम में 24 बार मिलता है। शासक ग्रन्थ में जहाँ *'मुक्त कर'* शब्द आया है।[32] पुराने नियम का मूल विचार यह है कि परमेश्वर छुड़ाने वाले या उद्धारकर्त्ता को भेजने वाला था और वास्तव में परमेश्वर ही इस्त्राएलियों का उद्धारकर्त्ता था।[33] जो व्यक्ति जोखिम में है, जो अत्याचार से पीड़ित है, जो संकट में है वह बचाया या छुड़ाया जाने वाला व्यक्ति है। परमेश्वर ही इतना सामर्थी है, उसका हाथ इतना बलशाली है कि वह छुटकारा या उद्धार कर सकता है।[34] यशायाह 40–55 अध्यायों में परमेश्वर का सामर्थी कार्य निर्बल और नम्र और निराश लोगों के बचाने में प्रकट होता है।[35] यशायाह के 53वें अध्याय में (जो काव्य का अन्तिम अंश हैं) यह विकसित विचार मिलता है कि परमेश्वर का उद्धार कार्य केवल दुःख उठाने के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। इस्त्राएल जाति का समस्त इतिहास परमेश्वर के कार्य द्वारा उद्धार का इतिहास है, जो परमेश्वर द्वारा निर्वाचित व्यक्ति था समूह द्वारा किया जाता हैं। इस प्रकार उद्धार परमेश्वर का कार्य है। उद्धार परमेश्वर हैं और परमेश्वर ही मसीहियों का उद्धार हैं।[36]

उद्धार शब्द का अर्थ – नया नियम में बचाने या उद्धार करने के मूल यूनानी शब्द *सोजो (Sozo)* है, उद्धारकर्त्ता के लिए *सोतेर (Soter)* और उद्धार के लिए *सोतेरिया (Soteria)* शब्द है। इस शब्द का अर्थ नकारात्मक नहीं है, अर्थात् किसी भी बीमारी, डर आदि से छुटकारा मात्र नहीं है परन्तु एक सकारात्मक अर्थ है। इसीलिए छुटकारा या मुक्ति शब्द पर्याय नहीं माना गया। उद्धार (जैसे

अछूतोद्धार, नारी–उद्धार) शब्द में एक सोजो की नजदीकी सकारात्मकता है। *सोजो* का अर्थ है पूरा बनाना *(To make whole or sound)* स्वस्थ करना, बचाना, रक्षा करना, लोगों को मृत्यु से बचाकर जीवन में लाना। नया नियम में बचाने या उद्धार करने के जो उल्लेख हैं, उनमें से एक तिहाई में बंधुआई, रोग और दुष्टात्माग्रसित होने से बचने[37] अन्तिम न्याय संबन्धी डरावनी बातों से बचने[38] अथवा शारीरिक मृत्यु से बचने[39] के उल्लेख हैं। केवल एक ही सन्दर्भ में उद्धार निश्चित रूप से पाप से उद्धार है : "वह पुत्र को जन्म देगी, और तू उसका नाम येशु रखना, क्योंकि वह अपने लोगों को उनके पापो से छुड़ाएगा।"[40] पर लूका में (मैं खोए हुए को ढूँढ़ने और बचाने आया हूँ)[41] पाप से बचाने के संकेत हैं। ध्यान रखना चाहिए कि उस युग में बंधुआई, रोग, दुष्टात्माग्रसित होने में परमेश्वर की आज्ञा के उल्लंघन और पाप का परिणाम माना जाता था। इसलिए मत्ती1:21 में नया नियम में उद्धार की धारणा और सिद्धान्त का मूल अर्थ है। पाप से उद्धार की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में नया नियम में मिलती है :– अंधकार से प्रकाश में आना उद्धार है, न कुछ होने से परमेश्वर की प्रजा बनना उद्धार है,[42] इस्त्राएल की नागरिकता से बाहर होने, प्रतिज्ञा की वाचा से अपरिचित होने, आशा से वंचित होने और संसार में परमेश्वर से अलग होने से मसीह येशु के रक्त द्वारा परमेश्वर के समीप आना उद्धार है।[43] पापों की क्षमा पाना उद्धार (विमोचन) है।[44] विरोधी शक्तियों के भय से छुटकारा और आश्वासन प्राप्त करना उद्धार है।[45] गुलामी से स्वतन्त्रता प्राप्त करना उद्धार है,[46] नई सृष्टि और परमेश्वर से मिलाप उद्धार है।[47]

हिन्दू धर्म में मनुष्य के पाप का और कर्म के सिद्धान्त का निकट का संबन्ध है। कर्म के सिद्धान्त के द्वारा संसार में पाप और दुःख की समस्या पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जाता है किन्तु मसीही धर्म में मनुष्य के कर्म से उसके उद्धार का कोई संबन्ध नहीं है। मनुष्य के कर्म उसके दैनिक, सांसारिक आचरण को उसके दुःख सुख को अवश्य प्रभावित करते हैं ; परन्तु मसीही धर्म यह मानता है कि मनुष्य जन्म से ही पापी होता है और उसके इस पाप से मुक्ति अथवा पाप–क्षमा के लिए परमेश्वर–पुत्र प्रभु येशु ने सलीब पर अपने प्राण देकर सब मनुष्यों के पापों की क्षमा परमेश्वर से प्राप्त की है। बाइबिल में मनुष्य के इस पाप दशा का बड़ा सुन्दर चित्रण एवं उसकी विवशता का चित्रमय वर्णन मसीही धर्म के एक प्रमुख प्रचारक सन्त पॉल ने इस प्रकार किया है, "जिस अच्छे काम की मैं इच्छा करता हूँ वह तो नहीं करता, परन्तु जिस बुराई की इच्छा नहीं करता वही किया करता हूँ"[48] अपनी इस दशा पर पॉल रोता है, "मैं कैसा अभागा मनुष्य हूँ। मुझे इस मृत्यु की देह से कौन छुड़ाएगा ?"[49]

इस स्थिति से उबरने के लिए मनुष्य को तीन बातों की आवश्यकता होती है अर्थात् उसकी पुरानी पाप करने की इच्छा और प्रवृत्तियाँ नष्ट हों और उसमें नवीन इच्छा और प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हों। उसे ऐसी सहायता प्राप्त हो जिससे वह, जो उसे करना चाहिए, उस कार्य को करने में वह समर्थ हो जाए। मसीही धर्म के सिद्धान्त के अनुसार ये तीनों कार्य प्रभु येशु की मृत्यु एवं उनके पुनरूत्थान तथा स्वर्गारोहण के पश्चात् पवित्र आत्मा के अवतरण ने इन तीनों आवश्यकताओं को पूर्ण कर दिया है। 'प्रभु येशु मनुष्य में रहते हैं और मनुष्य उनका जीवन जीता है'।[50] वह परमेश्वर की नयी सृष्टि है। उसके जीवन की पुरानी बातें बीत गयी ; सब कुछ नया हो गया है।[51]

वह जो पहले परमेश्वर और परमेश्वर के नियमों से डरता था, अब परमेश्वर के साथ उसका मेल–मिलाप हुआ है। वह परमेश्वर के साथ सत्य धर्म के संबन्ध में रहता है। उसे पवित्र आत्मा के द्वारा ऐसा प्रकाश और ऐसी सहायता मिलती है कि जिन प्रेम और परोपकार के कर्मों को करना चाहिए उन्हें करने में वह समर्थ हो जाता है। वह पुराने बन्धनों से स्वतन्त्र है और वह ऐसे सत्य

शाश्वत जीवन में प्रविष्ट हुआ हैं जो मनुष्य के जीवन का परम् लक्ष्य है।

उद्धार के संबन्ध में एक और महत्वपूर्ण बाइबिल का उद्धरण उल्लेखनीय है, जो मसीही उद्धार सम्बन्धी सिद्धान्त का स्पष्टीकरण माना जाता है, "विश्वास के द्वारा अनुग्रह ही से तुम्हारा उद्धार हुआ और यह तुम्हारी ओर से नहीं वरन् परमेश्वर का वरदान है।"[52] जो कार्य मनुष्य स्वयं अपने लिए नहीं कर सकता है उसे परमेश्वर अपने अनुग्रह से करता हैं और मनुष्य इसको वरदान के रूप से परमेश्वर से स्वीकार कर सकता है।

अनुग्रह का अर्थ *'करूणा'* भी है। करूणा परमेश्वर का प्रेम है जो मनुष्य परमेश्वर के साथ संबन्ध रखतें हैं, उनके साथ यह क्रियाशील रहती है। यही प्रेम मनुष्य के उद्धार की आशा का मूल है, जैसे एक प्राचीन इस्त्राएली कवि ने अपनी इस कविता में इस प्रकार कहा है :

ओ इस्त्राएली राष्ट्र , प्रभु की आशा कर!
क्योंकि प्रभु के साथ करूणा है।
प्रभु के साथ अपार उद्धार है।
वह इस्त्राएली राष्ट्र को
उसके समस्त अधर्म से छुड़ाएगा।[53]

संत योहन द्वारा लिखित प्रभु येशु के जीवन चरित्र *(Gospel)* के अनुसार प्रभु येशु के जीवन का सारांश ही परमेश्वर का अनुग्रह है। जो उन्होंने अपनी शिक्षाओं और कार्यों द्वारा मनुष्य जाति पर प्रकट किया। इस बात को सन्त योहन ने अपने *'गॉस्पल'* (शुभ समाचार) में "मसीह में अनुग्रह और सत्य की परिपूर्णता है और उस परिपूर्णता में से उसके शिष्यों ने पाया था।"[54] (शब्द देह धारी हुआ और उसने हमारे मध्य निवास किया। हमने उसकी ऐसी महिमा देखी जैसी पिता के एकलौते पुत्र की महिमा, जो अनुग्रह और सत्य से परिपूर्ण हैं। हम सबको उसकी परिपूर्णता में से अनुग्रह पर अनुग्रह प्राप्त हुआ हैं)

परमेश्वर के अनुग्रह का सिद्ध प्रकाशन मसीह के क्रूस में है। परमेश्वर का अनुग्रह उसका प्रेम है जिस रूप में वह प्रेम मनुष्य के उद्धार के लिए क्रियाशील रहता है क्रूस में परमेश्वर ने मनुष्यों के प्रति ऐसा प्रेम प्रकट किया जो पापी मनुष्य को कदापि छोड़ने के लिए तैयार नहीं, किन्तु उसे वापिस लाने के लिए असीम दुःख उठाने को तैयार हैं। मसीह के क्रूस में परमेश्वर प्रकट करता है कि वह स्वयं कैसा है। क्रूस में परमेश्वर अपना *"धर्म"* अर्थात् अपना स्वभाव और अपना स्वाभाविक कार्य प्रकट करता है।[55] मसीह का क्रूस सिद्ध करता है कि इस विश्व का अन्तिम सत्य न तो भौतिक न तो शैतानी है, किन्तु ऐसा अनुग्रह है जो प्रेम के कारण स्वयं पापों का भार उठाता है। मसीह ने पाप का दुःख और भार इसलिए उठाया कि वह परमेश्वर का पुत्र है। मसीह का क्रूस मसीहियों के उद्धार के लिए परमेश्वर का सिद्ध और सफल कार्य है, वह प्रेम का सफल सिद्ध कार्य है। परमेश्वर मसीह में होकर न केवल मनुष्यों का पाप उठाता है, वह उसे उठा ले जाता है। "हमारा पाप हमारे और परमेश्वर के बीच बाधक के रूप में नहीं रहता है इसलिए मसीह का क्रूस हमारी शान्ति का कारण है।[56]

मसीह ने स्वयं पिता की इच्छा के अनुसार प्रेम के कारण मनुष्यों के पाप का परिणाम अपने पर लिया। परमेश्वर ने मसीह में होकर यह कार्य किया। इस कार्य के द्वारा परमेश्वर ने मनुष्यों के लिए पाप के बन्धनों को तोड़ दिया कि मनुष्य उसकी संगति में आ जाए और उसकी सेवा के लिए स्वतन्त्र हो जाए। पाप का जो दुःख रूपी फल मनुष्यों ने कमाया उसे मसीह ने भोगा। पाप के जिन बन्धन में मनुष्य असक्त रहते थे उन्हें मसीह ने तोड़ दिया। जो कार्य मनुष्य अपने लिए

कदापि नहीं कर सकता उसने मनुष्यों के लिए किया है। अब प्रत्येक पापी मनुष्य निश्चय से जान सकता है कि उद्धार का द्वार उसके लिए खुल गया है और कि मसीह में उसके लिए उद्धार और भावी सार्थक जीवन की पूरी आशा हो जाती है।

चर्च

चर्च से हमारा अर्थ हैं *'कलीसिया'* भवन नहीं। भवन को हमने गिरजाघर शब्द से सम्बोधित किया है, किन्तु कलीसिया शब्द हिन्दी भाषा में प्रचलित नहीं है इसलिए हम अंग्रेजी शब्द चर्च को प्रयुक्त कर रहें हैं।

चौथा सिद्धान्त चर्च (कलीसिया) है। मसीहीजन विश्वास करता है कि मसीहीजन को बिना चर्च के सदस्य हुए वह मसीही नहीं कहलाया जा सकता है। चर्च के सम्बन्ध में मसीही विद्वानों के यह विचार हैं :

अर्थ – हिन्दी भाषा इस मामले में समृद्ध है कि वह यूनानी और इब्रानी के दो शब्दों के लिए दो अलग–अलग शब्दों का इस्तेमाल करती है जबकि अंग्रेजी भाषा केवल एक ही शब्द *'चर्च'* का प्रयोग करती है। चर्च का अर्थ प्रायः हिन्दी भाषा में 'गिरजाघर', 'आराधनालय', 'उपासनालय' आदि ऐसे भवन से है जहाँ मसीही लोग परमेश्वर की आराधना करते हैं। यूनानी भाषा में *'कुरिआकोन' (Kuriakon)* शब्द है, जिसका अंग्रेजी भाषा में *'चर्च'* अनुवाद किया जाता है। गिरजाघर शब्द पुर्तगाली भाषा के माध्यम से हमें हिन्दी भाषा में प्राप्त हुआ है। मसीही धर्म के इतिहास की प्रथम शताब्दी में मसीही लोगों के पास आराधना के लिए कोई भवन था ही नहीं, या तो यहूदियों के सभाघर (सिनोगॉग) या फिर विश्वासी भाइयों–बहिनों के घर, या फिर किसी एकान्त स्थान में *'रोटी तोड़ने'* (प्रभु भोज), प्रार्थना करने और शिक्षा देने के लिए ये लोग एकत्र हुआ करते थे।

हिन्दी बाइबिल के अनुवादकों ने नया नियम के यूनानी शब्द *'एक्कलेसिआ' (Ekklesia)* शब्द का अनुवाद *'कलीसिया'* किया जिसका अर्थ लोगों की 'सभा', 'मंडली', कांग्रीगेशन, असेम्बली होता है। नया नियम के समय में यहूदा प्रदेश के बाहर, अन्य प्रदेशों के नगरों में विशेष उद्‌देश्य से बुलाई गयी नागरिकों की सभा को यूनानी भाषा में *'एक्कलेसिआ'* कहा जाता था।[57]

नया नियम का यह शब्द पुराना नियम के इब्रानी शब्द *'काहाल'* का पर्यायवाची शब्द बन गया है, जिसके कारण पुराना नियम के यूनानी अनुवाद *(LXX (70))* में इस्त्राएली मंडली, धर्मसभा को 'एक्कलेसिआ' कहा गया जिसका संस्थापन सीनय पर्वत पर परमेश्वर के द्वारा हुआ था। अतः वे प्रतिवर्ष यरूशलेम के मन्दिर में राष्ट्रीय पर्वों पर उपस्थित होते थे।[58]

यह विवाद का विषय हो सकता है कि नया नियम की पुस्तकों–पत्रों के लेखकों ने कलीसिया शब्द इसी अर्थ में यहूदियों से अथवा यूनानी भाषा–भाषियों से लिया था, अथवा नहीं। किन्तु एक बात तो निश्चित है कि आरम्भ में कलीसिया का अर्थ *'संगठित संस्था'* अथवा समाज नहीं था, बल्कि 'सभा, बैठक' (अंग्रेजी शब्द मीटिंग) था। चर्च की मुख्य विशेषता थी, उसकी संस्थिति, स्थानीयता, स्थान से जुड़ा होना। स्थानीय चर्च की सार्वलौकिकता, विश्व–व्यापकता का विचार ही विरोधाभास लगता है।

इब्रानी बाइबिल में काहाल का पर्यायवाची शब्द *'एदाह' (Edah)* है, जिसको यूनानी बाइबिल *(LXX)* में *'सिनेगॉग'* शब्द से अनूदित किया गया है। सिनेगॉग एक तकनीकी विशिष्ट शब्द था। इसका अर्थ था, जब यहूदी लोग विश्राम दिवस (सबत्) पर तोराह (पंच ग्रन्थ, विशेषकर व्यवस्था ग्रन्थ) का अध्ययन करते तथा प्रभु परमेश्वर की आराधना करते थे तब उस सभा को सिनेगॉग कहते थे। निर्वासन (बन्धुआयी) से लौटने के बाद यहूदी समाज में इस शब्द का अर्थ

नियमित हो गया था : तोराह के अध्ययन और प्रभु परमेश्वर की आराधना के लिए सबत् के दिन होने वाली सभा। बाद में इसका गौण अर्थ भवन हो गया। प्रकाशन ग्रन्थ 3 : 9 को छोड़कर नया नियम के हर स्थल में इसी गौण अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी में *'सभागृह'* शब्द है। आरंभिक मसीही समाज, जो प्रायः यहूदी या, और जिसके धर्मशास्त्र की भाषा इब्रानी थी, और जो *'काहाल'* से परिचित था, जब उसके हाथ में लिखित यूनानी भाषा में पुराना नियम आया, और उसने काहाल का अनुवाद *'एक्कलेसिया'* और *'एदाह'* का *'सिनेगॉग'* पाया तो वह स्वाभाविक ही अपनी सभाओं—बैठकों को *'एक्कलेसिआ'* कहने लगा। आगे की शताब्दियों में जब शब्दों—विचारों को लेकर मसीही समाज में बहुत खण्डन—मंडन हुआ तब चर्च और सिनेगॉग क्लासिक युग्म बन गए। पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि गिरिजाघर और गिरजाघर में होने वाली परमेश्वर की आराधना—पद्धति तथा सप्ताह में निश्चित एक स्थान पर एक होना, सिनेगॉग की परम्परा से ही मसीही समाज ने लिया हैं।

<u>कलीसिया शब्द के सन्दर्भ</u>

(A) अंग्रेजी भाषा का चर्च शब्द यूनानी एक्कलेसिया शब्द से व्युत्पन्न हुआ है, जिसके कारण अंततोगत्वा उसका एक मात्र अर्थ ऐसा भवन हो गया, जहाँ मसीही लोग आराधना के लिए एकत्र होते हैं : किन्तु नया नियम में एक्कलेसिआ का अर्थ भवन कहीं नहीं है ; क्योंकि आरंभिक मसीहियों के पास आराधना के लिए भवन थे ही नहीं। अतः हिन्दी भाषा में दो शब्दों का प्रयोग अलग—अलग अर्थ अभिव्यक्त करता है। किन्तु दूसरी ओर कलीसिया शब्द हिन्दी भाषा और साहित्य में अब तक मान्यता नहीं प्राप्त कर सका है। यह केवल मसीही समाज की आराधना—पुस्तकों तथा अन्य धार्मिक विधि—विधानों में सिमट कर रह गया है। यहाँ तक कि सामान्य मसीहीजन भी कलीसिया शब्द का अर्थ नहीं जानता। दूसरी तरफ अंग्रेजी भाषा के दैनिक जन—जीवन पर पड़ते और बढ़ते प्रभाव के कारण *'चर्च'* शब्द अधिक प्रचलित हो गया है। किन्तु प्रश्न फिर भी उठता है कि चर्च के लाक्षणिक अर्थ—भवन, और आराधकों के समुदाय— में जो गहरा संबन्ध है, उसको कैसे प्रकट किया जाए।

चर्च अर्थात् भवन, गिरजाघर को हम सहज ही मसीही समाज का प्रतीक मानते हैं ; क्योंकि मसीही समाज अर्थात् विश्वासियों का समूह— कलीसिया *'मसीह की देह'* हैं, अतः स्वयं मसीह को मूर्तरूप में दिखाने के लिए सोच—बूझकर, सोच—समझकर, विविध तथा आकार के गिरजाघर बनाए गए। इन गिरजाघरों को धरातलों का नक्शा सलीब के आकार का होता है। प्रायः प्रत्येक गिरजाघर का धरातल सलीब के आकार का होता है।

एक और धर्म वैज्ञानिक सत्य : मसीही समाज स्वयं को परमेश्वर का अथवा पवित्र आत्मा का मन्दिर अथवा भवन मानता है।

पर इन सब गिरजाघरों की बनावट में एक बात समान थी : मध्य युग में निर्मित गिरजाघरों ने विशेषकर कथीड्रल और बसिलिका ने प्राचीन यरूशलेम के यहूदी (इस्त्राएली) मन्दिर की विशिष्टता, भव्यता, साज—सजावट को अपना लिया। यदि कहा जाए कि यह गिरजाघर वास्तुकला एक ऐसा माध्यम है जो गिरजाघर के ईंट—पत्थरों पर अदृश्य लिपि में लिखित प्रभु येशु के वचनों सम्प्रेषित करते हैं, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इन गिरजाघरों के माध्यम से नया नियम की मसीही मंडली तथा उसके धर्म में पुराना नियम के इस्त्राएली लोग तथा उनका धर्म समाहित हो गया है।

वर्तमान युग में मसीही मंडली के पास अनेकानेक परमेश्वर के भवन, भव्य, समृद्ध

संस्कारिक प्रतीक, पवित्र स्थान, संतों और शहीदों के समाधि–स्थल हैं जिनसे वह अलंकृत है, और ऐसा दिखाई दे रहा है कि वह धर्म के प्रति उदासीन समाजों को पुनः धार्मिक कर्मकाण्डों के द्वारा धर्म के प्रति आकर्षित कर रहा है।

(B) नया नियम में एक्कलेसिआ शब्द का प्रमुख सन्दर्भ 'आराधना के लिए एकत्र हुयी वास्तविक मंडली की सभा (बैठक) है'[59] आगे चलकर कलीसिया शब्द उन विश्वासी लोगों के समूह को कहा जाने लगा, जो किसी विशेष स्थान से जुड़े थे। अर्थात् स्थानीय समुदाय के विश्वासी लोग।[60] चर्च प्रभु येशु के विश्वासियों का ऐसा स्थापित समुदाय था जो विशेष स्थान में नियमित तौर पर सामूहिक रूप से आराधना के लिए एकत्र हुआ करता था। यह स्थान यहूदी सभागृह– जैसे था, और आगे चलकर सभागृह के नमूने पर ही यह विशिष्ट स्थान चर्च में विकसित हो गया।

(C) एक्कलेसिआ शब्द का केवल विशिष्ट नहीं, बल्कि सामान्य रूप से सब विश्वासियों के समुदाय के लिए भी प्रयुक्त हुआ है उस युग में प्रथम पीढ़ी के विश्वासियों ने विश्व कलीसिया की कल्पना भी न की होगी। परन्तु उस युग की दार्शनिक सोच के अनुरूप संत पौलुस– जैसे शुभ समाचार प्रचारकों ने चर्च अर्थात् मसीह की देह को स्थान– विशेष से न बाँध कर उसको रहस्यमय विचार के रूप में परिभाषित किया है।[61] किन्तु धर्म वैज्ञानिक कहते हैं कि यहाँ *'काहाल'* की ओर संकेत है : पुनर्जीवित, पुनः स्थापित नई इस्त्राएली कौम की ओर :[62] किन्तु दूसरी ओर कुछ ऐसे भी धर्म वैज्ञानिक हैं, जो मानते हैं कि ये सन्दर्भ विश्व कलीसिया की ओर इंगित करते हैं। सन्त पौलुस *'मसीह की देह'* का जब–जब रूपक इस्तेमाल करते हैं, उनका संकेत स्थानीय चर्च की ओर होता है।

(D) नया नियम की रचनाओं के लिखे जाने के युग के पश्चात् आरंभिक चर्च के धर्माचार्य द्वारा लिखित साहित्य में चर्च क्रमशः विश्वव्यापी रहस्यात्मक रूप धारण करती जाती है।

एक्कलेसिआ शब्द के साथ विशेषण 'काथलिक' अर्थात् सार्वलौकिक अथवा सार्वभौमिक शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अंताकिया के धर्माचार्य इग्नातियुस *(Ignatius)* ने सन् 109 ई0 में स्मुरना की चर्च *(Smyrnah)* को लिखे पत्र में *'काथलिक'* (Catholic) शब्द का प्रयोग किया था। तत्पश्चात् यह शब्द बार–बार प्रयुक्त होने लगा और अन्ततः चर्च के विश्वास–वचनों (प्रेरितों का, नीकया का विश्वास–वचन) में यह प्रमुख रूप से प्रयुक्त होने लगा : "मैं (हम) विश्वास करता/करती हूँ पवित्र काथलिक और प्रेरितीय कलीसिया पर" ....। "एक, पवित्र, काथलिक और प्रेरितीय काथलिक" पर। किन्तु यह विश्वास विश्व–व्यापी मसीही समाज नहीं, बल्कि चर्च के स्तर पर एक गूढ़, भेदपूर्ण, रहस्यात्मक विचार ही था।

किन्तु जैसे–जैसे समय गुजरता गया, स्थानीय चर्च शब्द का विकास होता गया। वर्तमान युग में चर्च शब्द कहने से केवल स्थानीय मसीही विश्वासियों का बोध नहीं होता, बल्कि अब मसीही अमरीकी, भारतीय, अफ्रीकी, फ्रांसीसी, इंग्लिश, स्काटिश, आयरिश कहने लगे हैं। किन्तु जो अर्थ एक्कलेसिआ शब्द का है, फिर चाहे वह स्थानीय हो अथवा विश्वीय वह विशिष्ट है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। अर्थात् चर्च विश्वासियों का झुण्ड, मंडली, समुदाय है। चर्च एक ऐसा समुदाय है, जो प्रभु येशु के विश्वास के बंधन से जुड़ा है।

(E) काथलिक चर्च से विच्छेद तथा मसीही समाज में विभाजन, फूट के कारण एक्कलीसिया, अर्थात् कलीसिया व शब्द में *'डिनोमिनेशन'* शब्द का अर्थ जुड़ गया। अर्थात् कलीसिया शब्द के अर्थ में परिवर्तन आया और वह चर्च से *'डिनोमिनेशन'* हो गयी। हिन्दी भाषा में डिनोमिनेशन शब्द

के लिए *'सम्प्रदाय'* शब्द प्रचलित है। अतः मेथोडिस्ट चर्च, लूथरन चर्च, रोमन काथलिक चर्च, आर्थोडॉक्स चर्च, ये कलीसिया के विभिन्न सम्प्रदाय हैं, जो अपने को कलीसिया शब्द से सम्बोधित तो करते हैं किन्तु वे दूसरों की दृष्टि में सम्प्रदाय ही कहलाते हैं, यद्यपि वे विश्वव्यापी हैं, और स्वयं को प्रभु येशु का अनुयायी मानते हैं।

आज विश्व में जितने नगर हैं, या घराना या कुटुम्ब हैं, उतनी ही चर्च अथवा मंडलियाँ हैं, यहाँ तक कि एक नगर में भी अनेक चर्च हैं, जिनको हम *'डिनोमिनेशन'* (सम्प्रदाय) शब्द से सम्बोधित करते हैं। नया नियम केवल एक ही एक्कलीसिआ के बारे में कहता है ; और यह एक एक्कलीसिआ अनेक मंडलियों, सम्प्रदायों (डिनोमिनेशन) का न तो सम्मिश्रण है, और न ही संघ हैं। यह ऐसी दैवीय वास्तविकता है, जो इस संसार के रूप आकार की नहीं हैं, अपितु वह पुनरूत्थान की महिमा के क्षेत्र की है जहाँ मृत्युंजय पुनरूत्थित प्रभु येशु परमेश्वर के दाहिनें हाथ पर विराजमान है।[63] फिर भी, क्योंकि स्थानीय एक्कलीसिआ मृत्युंजय प्रभु येशु के नाम में एकत्र होती थी और अपने मध्य में पुनरूत्थित मसीह की उपस्थिति अनुभव करती थी।[64] अतः उसने आने वाले युग की सामर्थ्य का स्वाद चखा था, और वह युगान्त के चर्च का प्रथम फल थी। इस कारण स्थानीय, व्यक्तिगत चर्च को नया नियम में *'परमेश्वर का चर्च'* कहा गया है जिसको उसने अपनी रक्त (बलिदान) से खरीदा है।[65]

मसीही धर्म के सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति निजी तौर पर अपने परमेश्वर की आराधना कर सकता है किन्तु, क्योंकि वह चर्च का सदस्य है इसलिए उसे चर्च में जाकर अन्य आराधकों के साथ परमेश्वर की आराधना करना अनिवार्य है। यह धार्मिक सिद्धान्त की बात है। यदि व्यक्ति किसी चर्च का सदस्य नहीं है तो उसे एक प्रकार से समाज–बहिष्कृत समझा जाता है और वह मसीही धर्म के सिद्धान्त के अनुसार मसीही संस्कारों से वंचित रहता है। न तो वह मसीही–धर्म के अनुसार विवाह कर सकता है और नहीं मृत्यु के उपरान्त मसीही कब्रिस्तान में दफ़नाया जा सकता है। वह एक प्रकार से गैर–मसीही माना जाता है।

पुरोहित

मसीही धर्म के सिद्धान्त के अनुसार आराधना का संचालन तथा अन्य धार्मिक विधियाँ (प्रभु–भोज, बपतिस्मा, विवाह, अन्तिम क्रिया आदि) केवल पुरोहित ही सम्पन्न कराता है। प्रायः पुरोहित का परिधान, जिसे अंग्रेजी में *'केसेक'* कहते हैं, पुरोहितों की पहचान है। इसकी परम्परा लगभग ईसा पूर्व 3000 (तीन हजार) वर्ष मानी जाती है। पुरोहित बनने के लिए मसीही युवा को 'थियोलॉजिकल कॉलेज' (धर्म विज्ञान महाविद्यालय) में तीन वर्ष से लेकर सात वर्ष तक लगभग 28 विषयों का अध्ययन करना पड़ता है। जिनका संबन्ध बाइबिल की मूल भाषाएँ, चर्च का इतिहास, मसीही दर्शन–शास्त्र, प्रभु येशु खीस्त की जीवन–चरित्र, इस्त्राएली कौम का इतिहास, इस्त्राएली देश का भौगोलिक वर्णन इत्यादि से होता है। इन विषयों का अध्ययन वैसे ही किया जाता है, जैसे किसी भी सेक्युलर विषय का (धर्म–निरपेक्ष) अध्ययन कॉलेज में किया जाता है। अध्यापक ऊँची शिक्षा पाए हुए धर्म–गुरू होते हैं। ये छात्र कॉलेज कैम्पस के अन्दर ही अध्ययन करते हैं अर्थात् 'रेसीडेन्शियल छात्र' होते हैं। धर्म विज्ञान की दृष्टि से इस प्रक्रिया को *'फॉर्मेसन ऑफ ए प्रीस्ट'* कहा जाता है। यह प्रायः गुरूकुल परम्परा के सदृश्य ही मानी जा सकती है। इन विषयों में सलाना वार्षिक परीक्षा होती हैं और उत्तीर्ण छात्र को सिरामपुर (जो कोलकाता के पास एक पुराना कॉलेज है और जिसे कोलकाता विश्वविद्यालय की ओर से यह अधिकार प्राप्त है कि वह विश्वविद्यालय के सदृश्य उन्हें बी०डी० एवं एम०टी०एच० और पी०एच०डी० की उपधि दे।) से बी०डी० एवं एम०टी०एच०डी० की उपाधि दी जाती है।

सफलता पूर्वक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् छात्र को विधिवत् निम्न धर्म–विधि से अभिषिक्ति किया जाता है। इस विधि के दौरान जो बाइबिल पाठ एवं प्रार्थनाएँ की जाती हैं उनके कुछ अंश उल्लेखनीय हैं जैसे बाइबिल पाठ। संक्षिप्त धर्म–विधि यह है :

प्रत्याशियों का प्रस्तुतिकरण तथा स्वीकृति

सब लोग बैठ जाएंगे। धर्माचार्य (बिशप) अपना आसन ग्रहण करेंगे। जिनका पुरोहित–पद पर अभिषेक होने वाला है, वे सामने लाए जाएंगे और धर्माचार्य के सम्मुख खड़े होगें। जो व्यक्ति इनको प्रस्तुत करने के लिए नियुक्त किया गया है, वह उन्हें धर्माचार्य (बिशप) के समक्ष यह कहते हुए प्रस्तुत करेंगे :

परमेश्वर में आदरणीय पिता, मैं आपके सामने पुरोहित–पद
पर अभिषिक्त होने के लिए इन व्यक्तियों– को प्रस्तुत करता हूँ।

पुरोहित–पद पर अभिषिक्त होने वाले प्रत्येक व्यक्ति का नाम पुकारा जाता है और साथ ही जिस पास्तरीय–क्षेत्र अथवा जिस कार्य के लिए वह नियुक्त किया गया है, वह भी बताया जाता है।

सब लोग खड़े होंगे। अभिषिक्त होने वाले व्यक्ति मंडली की ओर मुख करेंगे। धर्माचार्य (बिशप) खड़े होंगे, और उन प्रत्याशियों को मंडली के सामने प्रस्तुत करेंगे, और मंडली से यह कहेंगे :

मसीह में प्रिय भाइयों और बहिनों, हमारा यह इरादा है कि हम परमेश्वर के नाम में इन व्यक्तियों का चर्च के सेवाकार्य के लिए पुरोहित के पद पर अभिषेक करें।
जिन लोगों को यह कार्य सौंपा गया था कि इन के संबन्ध में जाँच–पड़ताल करें और इनकी परीक्षा लें, उन्होंने जान लिया है कि ये व्यक्ति सद्ज्ञानी और सद्चरित्रवान् हैं। उनका विश्वास है कि ये वास्तव में परमेश्वर की विशेष सेवा के लिए बुलाए गए हैं। अतः क्या आप चाहते हैं कि ये व्यक्ति पुरोहित के पद पर अभिषिक्त किए जाएँ ?

लोग ऊँचे स्वर में उत्तर देंगे :

सब — *हम चाहते हैं।*
धर्माध्यक्ष — *क्या आप इनके सेवाकार्य में इन्हें संभालेंगे ?*
सब — *हम इन्हें संभालेंगे।*

प्रस्तुतिकरण और सहमति के पश्चात् धर्माचार्य (बिशप) अपने आसन पर बैठे–बैठे प्रत्याशियों के लिए निम्नलिखित प्रवचन पढ़ेंगे :

हम प्रभु के नाम में आप लोगों से कहते हैं कि आप उस धरोहर की महानता को जो आप को सौंपी जाने वाली है, ध्यान में रखें। आपको प्रभु के संदेशवाहक, पहरेदार, प्रबन्धक होना है। इसलिए आपका यह कर्त्तव्य होगा कि आप प्रभु के परिवार को शिक्षा और चेतावनी दें, और उसको जीवन की रोटी खिलाएँ। आपको सांसारिक प्रलोभनों के जंगल में प्रभु के खोए हुए बच्चों को भी ढूँढना होगा ताकि वे मसीह के द्वारा सदा के लिए बचाए जाएँ।

आप यह सदा स्मरण रखें कि जो खजाना अब आप को सौंपा जाएगा वह मसीह का अपनी भेड़ों का झुंड है, जो उन्होंने अपने क्रूस पर बहाए गए रक्त से मोल लिया है। चर्च और वह मंडली जिसमें आप सेवा करेंगे, प्रभु के साथ एक हैं, वे उसकी देह है। यदि आपकी उपेक्षा के कारण चर्च या उसकी सदस्य को हानि या बाधा पहुँचेगी तो आप जानते हैं कि आपका दोष कितना बड़ा होगा!

आप परमेश्वर की संतान के बीच अपनी सेवा पर निरन्तर विचार करते रहें। प्रेम से उनकी सेवा करें। उनके विश्वास का निर्माण करते रहें ; और यथाशक्ति ऐसी कोशिश करते रहें कि वे मसीह के प्रति प्रेम से आज्ञा–पालन करते रहें।

इस सेवा का दायित्व संभालना सरल काम नहीं है। इसलिए पवित्र–आत्मा के वरदान के लिए आप लगन से प्रार्थना करें। यह प्रार्थना कीजिए कि वह प्रतिदिन धर्मशास्त्र संबन्धी आपकी समझ को बढ़ाए और उसको प्रकाशित करे। इस प्रकार जैसे–जैसे आप परमेश्वर के वचन के आधार पर अपने जीवन और अपने लोगों के जीवन का निर्माण करते जाएंगे, वैसे–वैसे आप प्रतिदिन अपनी सेवा में अधिकाधिक परिपक्व और सबल बनते जाएंगे।

हमें पूरी आशा है कि बहुत पहले से आपने इन सब बातों पर गहन सोच–विचार किया है और कि परमेश्वर के अनुग्रह से आपने पूरा निश्चय कर लिया है कि आप स्वयं को परमेश्वर की सेवा में पूरी तरह अर्पित करते हुए अपने मन और आत्मा की समस्त शक्ति इस सेवा में लगाएंगे। फलस्वरूप जब आप प्रतिदिन अपने प्रभु येशु मसीह के नमूने पर चलते तथा उनकी शिक्षा का अनुसरण करते हैं, तब उनके पवित्र आत्मा की ईश्वरीय सहायता से आप मसीह के अनुरूप बनते जाएंगे और जिन लोगों में आप सेवा–कार्य करेंगे, उन सबका जीवन पवित्र बनाएंगे।

विश्वास–स्वीकरण और प्रतिज्ञाएँ

पुरोहित के पद पर अभिषिक्त होने वाले व्यक्तियों से धर्माचार्य यह कहेंगे :

हम प्रभु येशु मसीह के नाम में, जो चर्च के सिर हैं, यहाँ एकत्र हुए हैं कि प्रार्थना और हाथ रखने के द्वारा पुरोहित–पद पर आपका अभिषेक करें। हम विश्वास करते हैं कि परमेश्वर इस अभिषेक के कार्य के द्वारा आपको अनुग्रह और अधिकार देता है कि आप जिस पद और कार्य के लिए बुलाए गए हैं, उसको सम्पन्न कर सकें। हमें इस बात का पक्का भरोसा है कि परमेश्वर अपनी चर्च की प्रार्थनाओं के उत्तर में तथा उसके द्वारा नियुक्त धर्म–सेवकों के वचनों एवं कार्यों के माध्यम से यह अभिषेक करता है।

हम एक मात्र, पवित्र सार्वलौकिक तथा प्रेरितीय चर्च के एक अंग के रूप में तथा उस विश्वास में जो हमने विश्वास–वचन के शब्दों में घोषित किया है, यह कहते तथा कार्य करते है।

हम जानना चाहते हैं कि आप ऐसा ही विश्वास करते तथा अपनी धर्म सेवा को करने के लिए परमेश्वर के अनुग्रह की कामना करते हैं, इसलिए हम आप से पूछतें हैं,

धर्माचार्य— क्या आपको पूर्ण विश्वास है कि वास्तव में परमेश्वर ने आपको अपनी चर्च में पुरोहित के पद और सेवा—कार्य के लिए बुलाया है ?

उत्तर— *मुझे पूर्ण विश्वास है कि परमेश्वर ने मुझे बुलाया है।*

धर्माचार्य— क्या परमेश्वर की महिमा की धुन, प्रभु येशु मसीह से प्रेम और मनुष्यों के उद्धार की कामना, जहाँ तक कि आपका हृदय गवाही देता है, इस सेवा को स्वीकार करने के आपके मुख्य उद्देश्य हैं ?

उत्तर— *जहाँ तक मेरा हृदय गवाही देता है, ये ही मेरे उद्देश्य हैं।*

धर्माचार्य— क्या आप स्वीकार करते हैं कि जो बातें प्रभु येशु मसीह पर विश्वास करने से उद्धार के लिए आवश्यक हैं, वे पवित्र बाइबिल में पायी जाती हैं, और पवित्र बाइबिल हमारे विश्वास का सर्वोच्च और निर्णायक माप—दंड है ?

उत्तर— *हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ/करती हूँ।*

धर्माचार्य— क्या आप पवित्र बाइबिल को पढ़ने में तथा उसके ऐसे अध्ययन में जिससे उसका बोध गहरा होता है, निरन्तर परिश्रम करेंगे ?

उत्तर— *हाँ, मैं परमेश्वर की सहायता से ऐसा ही करूँगा/करूँगी ।*

धर्माचार्य— क्या आप प्रार्थनामय और अनुशासित जीवन बिताने का प्रयत्न करेंगे और अपने परिवार का ऐसा मार्गदर्शन करेंगे कि आप और आपका परिवार मसीह के झुंड के लिए अच्छा नमूना बनें ?

उत्तर— *हाँ, मैं परमेश्वर की सहायता से ऐसा ही करूँगा/करूँगी।*

पुरोहित का पद और सेवा—कार्य

धर्माचार्य (बिशप) यह कहेंगे :

पुरोहित अपने धर्माचार्य, अपने सह—पुरोहितों और परमेश्वर के लोगों के साथ सेवा—कार्य करने के लिए बुलाए गए हैं। वे उस स्थान में जहाँ वे भेजे जाएंगे, रखवाले, शिक्षक और सेवक होंगे। उनका यह दायित्व है कि वे सब लोगों को मसीह का शुभ—समाचार प्रचार करें, पापियों को पश्चाताप का आह्वाहन करें और उनको परमेश्वर की करूणा का विश्वास दिलाएँ और बपतिस्मा दें। उनका यह भी कर्त्तव्य है कि वे अपने वचन और अपने जीवन के उदाहरण से उन लोगों को जो उनकी देखभाल के लिए सौंपे गए हैं, शिक्षा दें और उनको प्रोत्साहित करें तथा हमारे पवित्रतम विश्वास में उनका निर्माण करें। वे प्रार्थना और आराधना में लोगों की अगुआई करेंगे, प्रभु—भोज के अनुष्ठान का संचालन करेंगे और पश्चातापियों को मसीह के नाम में परमेश्वर की क्षमा की घोषणा करेंगे। वे बपतिस्मा प्राप्त व्यक्तियों को दृढ़ीकरण के लिए तैयार करेंगे और मरने वालों को मृत्यु का सामना करने के लिए तत्पर करेंगे। वे अपने लोगों की देखभाल करने में, अच्छे मेषपाल प्रभु येशु मसीह को अपनी बुलाहट का नमूना बनाएंगे।

हे मेरे भाइयों और बहिनों, पुरोहितों का इस प्रकार का दायित्व है। यह सरल और हलका काम नहीं है। क्या आप परमेश्वर की सहायता से इस दायित्व को अपने ऊपर लेने को तैयार हैं ?

उत्तर— *हाँ, मैं परमेश्वर की सहायता से ऐसा करने के लिए तैयार हूँ।*

धर्माचार्य— क्या आप पवित्र आत्मा की सहायता से परमेश्वर के उपहार को, जो आप में है, निरन्तर क्रियाशील बनाए रखेंगे ताकि मसीह को सब मनुष्यों पर प्रकट करें ?

उत्तर— *हाँ, मैं परमेश्वर की सहायता से ऐसा ही करूँगा/करूँगी।*

धर्माचार्य– क्या आप अपने लोगों के सच्चे पहरेदार और चरवाहे बने रहेंगे? क्या उन लोगों में शान्तिऔर प्रेम बनाए रखने का, पापियों से पश्चाताप कराने का और उनको परमेश्वर की क्षमा घोषित करने का प्रयास करेंगे।

उत्तर– हाँ, मैं परमेश्वर की सहायता से ऐसा ही करूँगा/करूँगी।

धर्माचार्य– क्या आप मसीह के लिए बीमारों से मिलने, गरीबों और जरूरतमन्द लोगों की देखभाल करने और दलितों की सहायता करने में विश्वसनीय रहेंगे।

उत्तर– हाँ, मैं परमेश्वर की सहायता से ऐसा ही करूँगा/करूँगी।

धर्माचार्य– क्या आप अपने लोगों की सहायता करेंगे कि वे परमेश्वर के विविध वरदानों के अच्छे भंडारी हों जिससे प्रत्येक सदस्य सेवा–कार्य के योग्य बन सके और मसीह की सारी देह प्रेम में निमित्त हो सके ?

उत्तर– हाँ, मैं परमेश्वर की सहायता से ऐसा ही करूँगा/करूँगी।

धर्माचार्य– आप मानते हैं कि परमेश्वर ने आपको उत्तर भारत की चर्च के अन्तर्गत इस सेवा के लिए बुलाया है। इसलिए क्या आप इस चर्च का अनुशासन स्वीकार करते हैं और शुभ समाचार की सेवा में उन अधिकारियों के अधीन रहेंगे जिनको यह चर्च आप पर अधिकारी नियुक्त करेगी ?

उत्तर– हाँ, मैं परमेश्वर की सहायता से ऐसा ही करूँगा/करूँगी।

सब घुटने टेकेंगे। जो व्यक्ति पुरोहित–पद पर अभिषिक्त होंगे, वे धर्माचार्य के सामने घुटने टेकेंगे। धर्माचार्य खड़े होकर यह कहेंगे :

सर्वशक्तिमान परमेश्वर, हमारा स्वर्गिक पिता, जिसने आपको इन सब कामों को करने की इच्छा दी है, आपको अनुग्रह भी दे ताकि आप उनको पूरा कर सकें। आपको बुलाने वाला परमेश्वर विश्वसनीय है, वह ऐसा ही करेगा।

सब – आमीन।

<u>प्रार्थनाएँ</u>

प्रत्याशी घुटने टेके रहेंगे।

धर्माचार्य मंडली से प्रार्थना करने का अनुरोध करेंगे और यह कहेंगे :

प्रिय भाइयों और बहिनों, इससे पहले कि हम इन व्यक्तियों
का अभिषेक करें और इनको उस कार्य के लिए भेजें जिसके
लिए, हम विश्वास करते हैं कि पवित्र आत्मा ने इनको बुलाया
है, हम प्रार्थना में अपने–आप को अर्पित करें।

सब मौन रहकर प्रार्थना करेंगे।

इस मौन के पश्चात् धर्माचार्य या अन्य कोई धर्म–सेवक निम्नलिखित परहित निवेदन में अगुआई करेगा :

हे स्वर्गिक पिता,
हम आपको उन सेवकों के लिए आपको धन्यवाद देते हैं जिन्होंने
युग–युगों से आपके नाम में मानव–जाति की सेवा की है।
अब हम इन व्यक्तियों के लिए प्रार्थना करते हैं जो आपकी
चर्च के पुरोहित अभिषिक्त किए जाने वाले हैं/की जाने वाली हैं।
हम सब धर्मसेवकों के लिए प्रार्थना करते हैं

कि वे अपने जीवन और सेवा से मसीह को प्रकट करें,
कि वे और आपके सब लोग मसीह में भरपूर जीवन
प्राप्त करें ;
कि वे आपके प्रेम और शान्ति के साधन बन सकें,
हे दयावान प्रभु

सब — *हमारी प्रार्थना सुनिए।*

हम प्रार्थना करते हैं कि वे आपके कार्य और लक्ष्य को पहचानें,
कि वे न्याय और सच्चाई के लिए खड़े हों,
कि वे उस मार्ग पर जहाँ दूसरे लोग लड़खड़ाते हैं,
निडर होकर अगुआई करें,
हे दयावान प्रभु

सब — *हमारी प्रार्थना सुनिए।*

हम प्रार्थना करते हैं कि अपने सेवकों में आपके पवित्र आत्मा
के वरदानों की बढ़ती कीजिए
दुर्बलता के समय उनको सहारा दीजिए और उन्हें संभालिए ;
निराशा में उन्हें बुद्धि, समझ और विश्वास का वरदान दीजिए ;
हे दयावान प्रभु

सब — *हमारी प्रार्थना सुनिए।*

हम प्रार्थना करते हैं कि अपने पवित्र वचन और आत्मा से
उनके जीवन का निर्देशन कीजिए ;
उनके परिवारों को अपनी उपस्थिति से आशीषित कीजिए
और उन्हें अन्त तक विश्वासी बनाए रखिए ;
हे दयावान प्रभु

सब — *हमारी प्रार्थना सुनिए।*

धर्माचार्य (बिशप) खड़े होंगे और यह कहेंगे :

हे सर्व शक्तिमान परमेश्वर, आपने वचन दिया है कि जो
व्यक्ति आपके पुत्र के नाम से आपसे प्रार्थना करते हैं, आप
उनकी प्रार्थनाएँ सुनते हैं। वर दीजिए कि जो कुछ विश्वास
से हमने माँगा है, वे आपकी इच्छानुसार हमें प्राप्त हो ;
हमारे प्रभु येशु मसीह के द्वारा।

सब — *आमीन।*

अभिषेक

अभिषेक की प्रार्थना के पूरे समय धर्माचार्य तथा उनकी सहायता करने वाले पुरोहित। पुरोहिता खड़े रहेंगे। जिन व्यक्तियों का पुरोहित–पद पर अभिषेक होने वाला है, वे घुटने टेके रहेंगे। उनकी ओर धर्माचार्य तथा पुरोहित मुख करेंगे। धर्माचार्य उनकी ओर मुख करके यह प्रार्थना करेंगे :

हे अत्यन्त दयालु पिता, हम आपकी स्तुति और महिमा
करते हैं कि आपने मनुष्यों के उद्धार की अपनी योजना
पूरी करने के लिए प्रत्येक देश में अपनी पवित्र प्रजा, राज–पुरोहितों

का समाज एवं सार्वलौकिक चर्च स्थापित की है। आपने अपने महान् प्रेम के कारण अपने एकलौते पुत्र प्रभु येशु मसीह को दे दिया कि वह हमारे विश्वास के प्रेरित और महापुरोहित और हमारी आत्मा के चरवाहा और संरक्षक हों।

उन्होंने हमारा मानव स्वभाव धारण किया और हमारे लिए मृत्यु स्वीकार कर मृत्यु की शक्ति नष्ट कर दी। अब वह आपके दाहिने हाथ पर ऐश्वर्य के साथ विराजमान होकर हम पर अपने अनुग्रह के विविध वरदानों की वर्षा करते हैं। वह कुछ को प्रेरित, कुछ को नबी, कुछ को प्रचारक, कुछ को पास्टर और कुछ को शिक्षक बनाते हैं, कि वे आपकी सेवा में कार्य करने के लिए आपके लोगों को तैयार करें और उनकी देह, अर्थात चर्च का निर्माण करें।

इसलिए, हे स्वर्गिक पिता, उन्हीं के द्वारा हम आपसे विनम्र विनती करते हैं कि ...

धर्माचार्य (बिशप) प्रत्येक अभिषिक्त होने वाले व्यक्ति के सिर पर बारी–बारी हाथ रखेंगे और सहायता करने वाले पुरोहित भी अपना दाहिना हाथ रखेंगे। धर्माचार्य (बिशप) प्रत्येक से यह कहेंग :

अपना पवित्र आत्मा अपने सेवक/सेविका (नाम)
.................को अपनी चर्च में पुरोहित/पुरोहिता (प्रेसबिटर)
के पद और सेवा–कार्य के लिए भेजिए।

प्रत्येक बार सब यह कहेंगे : आमीन।

जब धर्माचार्य (बिशप) सब पर हाथ रख चुकेंगे तब प्रार्थना को जारी रखते हुए यह कहेंगे :

हे पिता, हम प्रार्थना करते हैं, अपने इन सेवकों को अपने अनुग्रह से परिपूर्ण कीजिए। वर दीजिए कि ये आपकी प्रजा के राज–पुरोहितीय समाज के अन्तर्गत अपना पुरोहितीय सेवाकार्य सच्चाई से कर सकें। इन्हें सच्चे पास्टर बनाइए कि ये उन लोगों की जो उनको सौंपे गए हैं, रखवाली करें ; जो भटक गए हैं, उनको इकट्ठा करे ; जो गुमराह हो गए हैं उनको लौटा लाएँ ; और जो खो गए हैं, उनको ढूँढ़ कर ले आएँ। इनको सबल बनाइये कि ये आपके उद्धार का शुभ सन्देश साहस के साथ सुनाएँ। इनको अनुग्रह दीजिए कि ये आपके लोगों के साथ आपको स्वीकार–योग्य आत्मिक बलि चढ़ाएँ और नई वाचा के पवित्र सेक्रामेन्तों को सम्पन्न करें। वर दीजिए कि ये बुद्धि और समझ में बढ़ते जाएँ ताकि ये उन लोगों का जो विश्वास में कमजोर हैं, उचित परामर्श दे सकें और जो पश्चाताप करते हैं उनको पाप–क्षमा की घोषणा सुना सकें। धर्म–सेवा में सह पुरोहित भाइयों और बहिनों के साथ और आपकी चर्च के प्रमुख पास्टरों के साथ ये धर्मोत्साही और निष्ठावान सहकर्मी बनें। परीक्षाओं में इनको सहारा दीजिए और अन्त तक अपनी सेवा में इनको दृढ़ बनाए रखिए ; और अन्त में ये आपके सब सच्चे और विश्वास–योग्य सेवकों के साथ शाश्वत् आनन्द में प्रवेश करें ; आपके पुत्र हमारे प्रभु येशु मसीह के द्वारा जो आपके और पवित्र आत्मा के साथ जीवित और राज्य करते हैं, और अब और सदा–सर्वदा सब आदर, महिमा और धन्यवाद के योग्य हैं।

सब – आमीन।[65]

मृत्यु

मृत्यु के सम्बन्ध में मसीही धर्म के अनुसार यह जीवन मृत्यु से समाप्त नहीं हो जाता, बल्कि व्यक्ति केवल सो जाता है। मसीही धर्म मानता है कि जैसे प्रभु येशु सशरीर स्वर्ग गये थे (स्वर्गारोहण) वैसे ही वह युगान्त में वापिस आएंगे और जो मसीही मृत हैं वे पुनः जीवित हो जाएंगे। इसलिए प्रत्येक मसीही व्यक्ति अपनी निजी आराधना अथवा गिरजाघर में सामूहिक आराधना के दौरान अपने इस विश्वास को दोहराता है –

'हम मृतकों के पुनरूत्थान की
और आने वाले युग के जीवन की प्रतीक्षा करते हैं।'[66]

मृत्यु के संबन्ध में मसीही धर्म सिद्धान्त इस प्रकार है :

अर्थ – पुराना नियम में मूल इब्रानी शब्द *'मावेत' (Maweth)* का अनुवाद मृत्यु है और नया नियम में मूल यूनानी शब्द थेनाटॉस *(Thanatos)* का अर्थ मृत्यु है। दोनों शब्दों का शाब्दिक अर्थ शारीरिक मृत्यु है जो सब प्राणियों की होती है।

(A) मनुष्य मर्त्य* है : बाइबिल के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि मनुष्य परमेश्वर के स्वरूप में बनाया गया पर वह परमेश्वर से इस बात में भिन्न है कि परमेश्वर शाश्वत है, अविनाशी है, पर मनुष्य अन्य प्राणियों के समान मर्त्य है। इसका अर्थ यह नहीं है कि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का किसी प्रकार का अस्तित्व नहीं। परमेश्वर ने मनुष्य को मिट्टी से बनाया। इसलिए शरीर मिट्टी में मिलेगा ही। पर उसमें परमेश्वर का श्वास है इसलिए उसका अस्तित्व बना रहता है और वह मृत्यु के पश्चात् निष्प्राण स्थिति में मानो विद्यमान रहता है।

दूसरी ओर कुछ विद्वान यह मानते हैं कि मनुष्य को परमेश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया इसलिए उसे अमरता प्रदान की। परमेश्वर ने मनुष्य से कहा था : "भले–बुरे के ज्ञान के पेड़ का फल न खाना, क्योंकि जिस दिन तुम उसका फल खाओगे, तुम मर जाओगे।"[67] पर मनुष्य ने शैतान की बात मानकर पेड़ का फल खाया और फलस्वरूप शाप–वश, उस पर मृत्यु आई (उत्पत्ति 3 : 19, तू तो मिट्टी है, और मिट्टी में ही मिल जाएगा)। जो विद्वान मनुष्य को अमरता संपन्न नहीं मानते उनका कहना है कि 2 : 17 में परमेश्वर के कथन में *'मर जाने'* का भाव है, परमेश्वर या जीवन से पृथक हो जाना अर्थ है। उत्पत्ति में यह बताया गया हैं कि मनुष्य "उस समय तक अपने पसीने की रोटी खाएगा जब तक उस मिट्टी में न मिल जाए जिससे तू बनाया गया था (क्योंकि) तू तो मिट्टी ही है और मिट्टी में मिल जाएगा।"[68] शाप मृत्यु का नहीं है, क्योंकि वह तो मनुष्य की होगी ही, परन्तु शाप उसके मृत्यु आने तक पसीने की रोटी खाने का है (जीविका उपार्जन के लिए कठोर परिश्रम करने का श्राप)। अतः उपरोक्त संदर्भ में परमेश्वर की संगति से अलग हो जाना ही आदम और हव्वा की मृत्यु है।

(B) पुराना नियम में मृत्यु संबन्धी विचार : मनुष्य के मृत्यु के उपरान्त जीवन के विचार की स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं मिलती। पूरी वृद्धावस्था को प्राप्त कर मृत्यु स्वाभाविक एवं संतोषप्रद बात मानी जाती थी।[69] समय से पूर्व मृत्यु को प्राप्त होना एक खेद जनक बात थी।

पुराना नियम में पाप और मृत्यु के आपसी संबन्ध का विचार भी पहले ही से मिलता है (उत्पत्ति 3)। यहेजकेल में इस तथ्य का विवेचन है कि "जो प्राणी पाप करता है, केवल वही मरेगा।"[70] मृत्यु कैसे आई बाइबिल में इसकी दार्शनिक व्याख्या नहीं है। इस बात का विवेचन नहीं है कि मनुष्य का अन्तिम शत्रु, मृत्यु[71] कैसे इस संसार में आया। पर परमेश्वर की और मनुष्य की

---

* *मर्त्य अर्थात् मृत्यु तुल्य।*

संगति पर बल दिया गया है। पुराना नियम में यह बताया गया है कि पाप के कारण मनुष्य का परमेश्वर से अलगाव (मृत्यु) हो गया है और मिलाप के लिए कुछ बलि–विधानों का वर्णन किया गया है पर शाश्वत जीवन की प्राप्ति अथवा मृत्यु के विनष्ट किए जाने का वर्णन या विचार नहीं है।

(C) नया नियम में मृत्यु संबन्धी विचार : पुराना नियम के मृत्यु उपरान्त जीवन के संकेतों का नया नियम में प्रस्फुटन अर्थात् विकास हुआ है और यह मानव पुत्र की मृत्यु से पुनरूत्थान के कारण हुआ है। नया नियम में अनेक स्थलों में हमें ये स्पष्ट विचार मिलते हैं :

1. पाप की मजदूरी मृत्यु है, परन्तु परमेश्वर का वरदान है शाश्वत जीवन जो हमारे प्रभु येशु मसीह में है।[72] मृत्यु का डंक पाप है, और पाप को बल मिलता है व्यवस्था से। परन्तु परमेश्वर की स्तुति हो, वह हमारे प्रभु येशु मसीह द्वारा हमें मृत्यु पर विजय प्राप्त कराता है।[73]
2. मृत्यु मनुष्य और परमेश्वर के बीच सहभागिता का टूटना है। मसीह ने क्रूस पर पापी मनुष्य की श्रापित मृत्यु को पवित्र बलिदान में ऐसा बदल दिया कि पापी मनुष्य का परमेश्वर से मेल–मिलाप हो गया।[74]
3. प्रभु येशु के साथ जीना मृत्यु पर विजय प्राप्त करना है। प्रभु येशु ने कहा, ''पुनरूत्थान और जीवन मैं हूँ : जो कोई मुझ पर विश्वास करता है, वह मर भी जाए तो भी जीएगा, और जो जीवित है तथा मुझ पर विश्वास करता है, वह कभी नहीं मरेगा अर्थात् परमेश्वर से कभी अलग न होगा।''[75]
4. मसीह के साथ मरना उसके जीवन में भागी होना है। मसीहीजन बपतिस्मा लेने से मानो पार हो जाता है।[76]
5. धन्य हैं वे मृतक जो प्रभु में (प्रभु के विश्वास में) मरते हैं।[77] इसलिए सन्त पौलुस कहते हैं, ''जीना मेरे लिए मसीह है और मर जाना लाभ।''[78]
6. नया नियम में दूसरी मृत्यु का उल्लेख है।[79] जिसका नाम जीवन की पुस्तक में लिखा हुआ नहीं मिला, वह अग्निकुंड में फेंक दिया गया। यह अग्निकुंड द्वितीय मृत्यु है। इससे जो अग्निकुंड में फेंके जाएंगे उनके अन्तिम रूप से नष्ट होने का संकेत मिलता है। इसका धर्म वैज्ञानिक अर्थ है कि उन लोगों के लिए परमेश्वर की सहभागिता की आशा का द्वार सर्वदा के लिए बंद हो जाएगा।

नया नियम में विनाश का वर्णन बहुत कम, बचाव का ही संदेश अधिक मिलता हैं, क्योंकि ''परमेश्वर ने संसार से प्रेम किया कि उसने अपना एकलौता पुत्र दे दिया कि जो मनुष्य उस पर विश्वास करेगा वह नष्ट नहीं होगा परन्तु शाश्वत जीवन पाएगा।''[80]

युगान्त

मसीही धर्म सिद्धान्त में युगान्त का विषय बड़ा महत्वपूर्ण माना जाता है। इसका उल्लेख स्वयं प्रभु येशु ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में प्रवचन करते समय उल्लेख किया था।[81] युगान्त यूनानी शब्द *'एस्कातास'* से निकला है जिसका अर्थ *'अन्तिम'* है। इस विषय के अन्तर्गत चार प्रमुख बातें आतीं हैं– मृत्यु, न्याय, स्वर्ग और नरक एवं प्रभु येशु का पुनरागमन।[82]

पुराना नियम में व्यक्ति की मृत्यु के उपरान्त की दशा के संबन्ध में बहुत कम चर्चा है। इसका मुख्य कारण यह है कि यहूदियों को मृत्यु के बाद जीवन की बहुत कम आशा थी। वे अधोलोक *(Sheol)* में आस्था रखते थे अर्थात् वह स्थान जहाँ भय और दुःख ही दुःख होता है, वहाँ से मनुष्य परमेश्वर के साथ कोई सम्पर्क नहीं रख सकता।[83] वे मृत्यु की अपेक्षा जीवन में ही परमेश्वर के साथ संगति करने की कामना करते थे।[84] पुराना नियम में अध्ययन से यह स्पष्ट ज्ञात

होता है कि यहूदियों की आशा अधोलोक से कहीं अधिक 'प्रभु के दिन' का व्यापक प्रयोग किया है।[85] कुछ ऐसे भी वर्णन हैं जिसमें युगान्त को शेष, क्रोध, निर्दयता तथा संकट का दिन बताया गया है। एक ऐसा दिन जो समस्त विश्व के परिवर्तन की धुरी होगा और उसी दिन दुष्टों को दण्डित भी किया जाएगा।[86] प्रभु का दिन नए युग की ओर इंगित करता है अर्थात् मसीह का राज्य जिसमें मसीह दाऊद के वंश का राजा राज्य करेगा।[87]

मसीह के आगमन से युगान्त विचारधारा ने नया मोड़ ले लिया। उस आने वाले युग *'परमेश्वर के राज्य'* का आरम्भ हो गया जिसकी पूर्णता *(Consummation)* अभी भी शेष है। *'परमेश्वर के राज्य'* के प्रचार से प्रभु येशु ने नए युग का उद्घाटन कर दिया तथा यहूदियों की आशा की ओर संकेत करके कहा कि परमेश्वर का राज्य निकट है तथा प्रभु येशु के कार्य उस राज्य के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।[88] सन्त पौलुस के पत्रों में भी युगान्त–विषयों की शिक्षा स्पष्ट है। वह मसीह के पुनरागमन तथा विश्वासियों के पुनरूत्थान पर पूर्ण निश्चय प्रकट करते हैं।[89] सन्त पौलुस को निश्चय है कि हमारा पुनरूत्थान भी वैसा ही होगा जैसा मसीह का[90]; क्योंकि भावी युगान्त की पक्की नींव है। वह बताते हैं कि पुनरूत्थान के बाद 'देह' हमारी वर्तमान देह से बिल्कुल भिन्न होगी–आत्मिक देह होगी, ठीक वैसी ही जैसी मसीह की देह पुनरूत्थान के बाद थी। मसीह की पुनरूत्थित देह आत्मा नहीं थी, क्योंकि व्यक्तित्व के गुण उसमें विद्यमान थे। शिष्य और दूसरे परिचित लोग मसीह को पहचान सकते थे।

परन्तु यहूदी जन आत्मा, देह और प्राण को अलग–अलग नहीं समझता, वह सम्पूर्ण देह, व्यक्तित्व को एक इकाई मानता है।[91] सन्त पौलुस के कहने का आशय यह है कि *'व्यक्ति' की मृत्यु हो जाती है, परन्तु व्यक्तित्व अमर रहता है।*

सी0एच0डाड नामक धर्म वैज्ञानिक ने *'उपलब्ध युगान्त' (Realized Eschatology)* का विचार प्रस्तुत किया। उनकी शिक्षा थी कि परमेश्वर का राज्य कोई वस्तु नहीं है जिसकी हमें प्रतीक्षा करनी है परन्तु वह राज्य हमारे मध्य आ चुका हैं। पिन्तेकुस्त के दिन से ही वह राज्य आरम्भ हो गया। इस तरह वह व्यक्ति जो अपना जीवन मसीह को समर्पित कर देता है, वह स्वर्गिक *'महिमा की आशा*[92] के जीवन का आनन्द पाने लगता है। यहाँ तक कि दुःख भी उस आनन्द को प्रभावित नहीं कर सकता। इसी अनुभव को ही साधु सुन्दर सिंह ने *''क्रूस ही स्वर्ग है''*, बताया हैं। भारतीय धर्म वैज्ञानिक पी0डी0 देवनन्दन भी *'उपलब्ध युगान्त विद्या'* के समर्थक थे।

मसीही धर्म के सिद्धान्त तद्युगीन परिस्थितियों के उपज हैं उस समय यहूदियों के देश में धर्म सिद्धान्त को लेकर जो भ्रम पैदा हो गया था उस भ्रम का निवारण मसीही धर्म से हुआ। मसीही धर्म के प्रणेता प्रभु येशु मसीह थे, जिन्होंने विषम परिस्थितियों में युग यथार्थ की अनुभूति की और व्यक्तियों को मोक्ष दिलाने के लिए नवीन सिद्धान्त सृजित किए। प्रभु येशु मसीह जिन्हें मसीही धर्म का प्रणेता, परमात्मा का पुत्र माना जाता है उन्होंने कहा संसार में परमात्मा एक है वह सम्पूर्ण विश्व का स्वामी है, वह सर्वज्ञ सर्वव्यापी है, उसने सारे संसार को उत्पन्न किया है। प्राणी मात्र उसकी कृति है वही विश्व मानवता और प्रेम का जनक है। उन्होंने बाइबिल जैसे पवित्र ग्रन्थ को प्रेरित किया और समग्र मानवता के सिद्धान्त को सृजित किया उनका कहना है कि व्यक्ति परमात्मा पर विश्वास करे समस्त प्राणियों तथा मनुष्यों की सेवा करे और आवश्यकता पड़ने पर आत्म बलिदान भी कर दे। जीवन का अन्त हो जाने पर परमात्मा उसके कर्मो के अनुसार उसे स्वर्ग और नरक प्रदान करता है। संक्षेप में मसीही धर्म एकेश्वरवाद पर विश्वास करता है मूर्ति पूजा को स्वीकार नहीं करता वह बाइबिल को पवित्र ग्रन्थ मानता है और प्रभु येशु मसीह को परमात्मा का पुत्र के रूप में स्वीकार करता है। उनके पवित्र धर्म–स्थल चर्च है तथा इनके पुरोहित को पादरी या प्रीस्ट *(Father)* के नाम से पुकारा जाता है।

हिन्दू धर्म

हिन्दू शब्द हमारे प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता है। भारतवर्ष में इसका सबसे पहला उल्लेख ईसा की आठवीं सदी में लिखे गए एक तन्त्र–ग्रन्थ में है, जहाँ इस शब्द का प्रयोग धर्मावलम्बी के अर्थ में नहीं किया, जाकर गिरोह या जाति के अर्थ में किया गया है। डॉक्टर राधा कुमुद मुखर्जी के अनुसार भारत के बाहर इस शब्द का प्राचीनतम उल्लेख अवेस्ता में डेरियस (522 – 486 ई0पू0) के शिलालेखों में प्राप्त है तथा वे यह भी कहते हैं कि "हिन्दू शब्द विदेशी है तथा संस्कृत और पाली में इसका कहीं भी प्रयोग नहीं मिलता। इस शब्द का जो इतिहास है, उसके अनुसार यह किसी धर्म का वाचक नहीं माना जा सकता, बल्कि इसका वास्तविक अर्थ भारत का कोई भी निवासी हो सकता है।" सातवीं सदी में इत्सिंग नामक एक चीनी यात्री भारतवर्ष आया था। उसने लिखा है कि मध्य एशिया के लोग भारतवर्ष को हिन्दू कहते हैं, यद्यपि यहाँ के लोग अपने देश को आर्य देश कहते हैं। सिन्धु नदी भारत की पश्चिमोत्तर सीमा के पास पड़ती थी और उधर से आने वाले लोग उसी नदी से इस देश की पहचान करते थे। उनमें से ईरान और उसके पास वाले लोग *'स'* का सही उच्चारण न कर सकने के कारण सिन्धु को हिन्दू कहने लगे और यूनान वाले लोग *'स'* और *'द'* का सही उच्चारण नहीं कर सकने के कारण हिन्दू को इण्डो कहने लगे। इस प्रकार, आर्यावर्त का नाम *'हिन्दू – हिन्दुस्थान'* और *'इण्डो – इण्डिया'* पड़ गया। यहाँ पर मुख्य रूप से उस समय निम्न सम्प्रदाय थे, जिन्हें सामूहिक रूप से हिन्दू धर्म के नाम से पुकारा जाता था :

प्रकृति उपासक – मुख्य रूप से यहाँ के मूल निवासी जिन्हें हम अनार्य, जातुधान, राक्षस, कोल–भील, गौंड, बैगा, खैरवार आदि नामों से पुकारते थे। इनका रंग काला होता था और तन चिकना होता था। ये लोग मुख्य रूप से प्रकृति उपासक थे। ये लोग सूर्य, चन्द्रमा, सरोवर, सरिता तथा वृक्षों की पूजा करते थे। मुख्य रूप से पीपल, बरगद, तुलसी तथा अन्य वृक्ष की उपासना करते थे। कालान्तर में अनार्य अनेक कल्पित देवताओं की पूजा करने लगे।

'बुन्देलखण्ड के देहातों में कई देवता और उनकी मूर्तियाँ या स्थान, मन्दिर आदि पूजे जाते हैं। इनमें से कई एक हिन्दू धर्म के और कई अनार्य प्रथा के हैं, कई वीरत्व अथवा विशेष कीर्ति के संबन्ध में पूजे गए और कितने ही केवल भूत–प्रेत हैं। कोई–कोई देवता किसी विशेष स्थान या प्रान्त में माना जाता है, अन्य स्थानों में वह नहीं मिलता।'[93]

अनार्य लोग मिड़ोहिया, घटोइया, नागदेव, गौंडबाबा, पोंरिया बाबा, मसान बाबा, नट बाबा, छींद या रकसा, मढ़ई देवी, गुरैया बाबा, भिया राने, बरमदेव आदि कल्पित ग्रामीण देवताओं की पूजा करते हैं तथा इनकी मूर्तियाँ वृक्षों के नीचे स्थापित करतें हैं।

शक्ति उपासक – यहाँ के लोग शक्ति की उपासना करतें हैं। उनके मतानुसार शक्ति ने ही सृष्टि का सृजन किया तथा उसी ने सृष्टि को पल्लवित किया और वही संहारक भी है। यहाँ काली, दुर्गा, गौरी, चण्डिका, रक्त दन्तिका, लक्ष्मी, कुष्माण्डा, कात्यायनी, ब्रह्माणी, भद्रकाली, महेश्वरी इत्यादि देवियों की पूजा की जाती है। भारतवर्ष में अनेक शक्ति पीठ हैं, जिनके मन्दिरों में नवरात्रि के अवसर पर तथा अन्य अवसरों में देवी भक्त उपासना करतें हैं तथा अनुष्ठान और यज्ञ के अवसर पर नर–बलि तथा पशु–बलि चढ़ाते हैं। इन मन्दिरों में भैंसा, बकरा आदि की बलि अनिवार्य रूप से दी जाती है। अब शक्ति मत को शैव मत से जोड़ दिया गया है।

शैव मत – शैव मत भी यहाँ की प्राचीनतम मत है। यहाँ पर शिव की उपासना आदिदेव के रूप में की जाती है। शिव की मूर्ति और लिंग दोनों की उपासना होती है। एक मुखी, पंचमुखी और

सहस्रलिंगी महादेव की उपासना यहाँ होती है तथा उनकी उपासना में विविध प्रकार की विधियाँ प्रचलित हैं। शिव के अतिरिक्त शिव का परिवार भी पूज्यनीय है। इनकी पत्नी पार्वती (गौरी), पुत्र गणेश, स्वामी कार्तिकेय की पूजा होती है। बुन्देलखण्डी क्षेत्र में शिव की उपासना का महत्व हैं : *Siva, one of the foremost deities of the Hindu Trinity, was equally popular in Bundelkhand. The important centres of Saivism, like Bhita, Kosam and Kalanjara are known through the epigraphic and sculptural evidence which suggest that the Saivism was flaurishing from 2nd century B.C. The panchmukha Linga from Bhita was installed in the 2nd century B.C. Nagasri, son of Vasathi, as per the inscription on the shaft.*[94]

शैव मत में ही यहाँ अनेक उप सम्प्रदाय भी हैं। भगवान शिव को अघोर पन्थ, सद्योजात और वामदेव पन्थ के लोग भी मानते हैं तथा इन्हें नीलकण्ठ, महेश्वर, शिव, भोलानाथ आदि नामों से भी पुकारा जाता है।

वैष्णव मत – हिन्दू धर्म में वैष्णव मत की भी उपासना होती है। भगवान विष्णु यहाँ के उपास्य देव है। इनकी उपासना भगवती लक्ष्मी के साथ होती है। भगवान विष्णु अपने भक्तों की रक्षा के लिए नाना प्रकार के अवतार धारण करतें है। इनके मुख्य अवतार मत्स्य, कश्यप, नरसिंह, राम तथा कृष्ण आदि हैं। ये करूणा करने वाले और दया करने वाले देवता हैं। भागवत पुराण, विष्णु पुराण, नरसिंह पुराण, मत्स्य पुराण और गीता इस धर्म से जुड़े हुए प्रमुख ग्रन्थ हैं। भगवान विष्णु अपने समस्त अंगों तथा कलाओं के साथ अवतार धारण करते हैं और वे प्रमुख देवता हैं। *"Vishnu was the most popular deity of Bundelkhand during the Gupta age. The Ramayana and the Mahabharata were very popular. The Gadhwa stone Inscription of the year 148 records the grant of a land to the temple of Vishnu, under the name Chitrakutasvamin, Which refers to Rama who lived at Chitrakuta while in exile. The scenes from the Ramayana and the Mahabharata depicted in the sculptural decor of the Deogarh and several other temples of the Gupta period reaffirm the popularity of Vishnu. The Vishnu temples at Udayagiri, Eran, Gadhwa, Deogarh etc. attest the same."*[95]

वैदिक धर्म – वैदिक धर्म आर्यो का आदि धर्म है। इस धर्म के अन्तर्गत आर्य लोग ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते थे। उसे सृष्टि का निर्माता, सृष्टि का पालनकर्त्ता और संहारक माना जाता है। वही सब देवों का देव भी है। यथा –

"ओउम् यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

X X X

ओं यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

X X X

ओं यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।"[96]

अर्थात् (यह भूमि जिसके चरणों जैसी, अन्तरिक्ष उदर जैसा, द्युलोक को जिसने अपनी

मूर्धा बनाया, उस ज्येष्ठ ब्रह्म को नमस्कार। सूर्य और चन्द्रमा दोनों फिर–फिर नए होते हुए जिसकी आँखे हैं, अग्नि को जिसने मुख बनाया उस ज्येष्ठ ब्रह्म को नमस्कार। वायु जिसकी प्राण और अपमान है, प्रकाश की रश्मियाँ जिसकी दृष्टि हैं, दिशाओं से जिसके व्यवहार का विशेष ज्ञान होता है, उस पर–ब्रह्म को नमस्कार)।

वेदों के अन्तर्गत अनेक देवताओं की परिकल्पना की गयी है। जब कोई व्यक्ति यज्ञ करता था तो वह सर्वप्रथम अग्नि देवता का स्मरण करता था।

"अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम्"।।[97]

अर्थात् (ये बढ़ाने वाले अग्निदेव मनुष्यों (यजमानों) को प्रतिदिन विवर्धमान (बढ़ाने वाला) धन, यश एवं पुत्र–पौत्रादि वीर पुरूष प्रदान करने वाले हैं)।

अग्नि के अतिरिक्त वायु को देवता के रूप में स्वीकार किया गया है, क्योंकि वह सोमरस प्रदान करने वाला और जीवन का रक्षा करने वाला है :

"वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जारितारः। सुतसोमा अहर्विदः।।"[98]

इन्द्र देवता का भी वैदिक धर्म में महत्व है :

"इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः।।"[99]

अर्थात् (हे अद्भुत दीप्तिमान् इन्द्रदेव! अँगुलियों द्वारा स्त्रवित, श्रेष्ठ पवित्रता युक्त यह सोमरस आपके निमित्त हैं। आप आयें और सोमरस का पान करें)।

वैदिक धर्म के अन्य देवता वरूण देव हैं। ये जल के देवता हैं। इसी प्रकार विष्णु तीन डगों में ब्रह्माण्ड को नापने वाले देवता हैं। इसके अतिरिक्त मित्र, सोम, यम आदि का भी महत्व वैदिक धर्म में है।

आर्य लोग देवता को प्रसन्न करने के लिए नाना प्रकार के यज्ञ किया करते थे। वेदों के अतिरिक्त इनके अन्य ग्रन्थ 'आरण्यक', 'उपनिषद' आदि हैं। उपनिषदों में कौशीतकी, केनोपनिषद, छांदोग्य उपनिषद, बृहदारण्यक उपनिषद, तैत्तरीयोपनिषद, कठोपनिषद, श्वेताश्वतर उपनिषद, मैत्रायणीय उपनिषद, मुण्कोपनिषद, मांडूक्योपनिषद, प्रश्नोपनिषद आदि प्रसिद्ध वैदिक धर्म ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों से वैदिक धर्म की जानकारी उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ भी हैं।

हिन्दू धर्म की विशेषताएँ [100]

हिन्दू धर्म की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं। उन विशेषताओं के कारण हिन्दू धर्म की पहचान अलग से हो जाती है। हिन्दू धर्म भारतीय दर्शन पर विश्वास करता है। मुख्य रूप से ये अध्यात्म दर्शन, वैदिक दर्शन जिसके अन्तर्गत अनेक वैदिक देवता शामिल हैं, पर विश्वास करता है। इसके अतिरिक्त उपनिषद, आजीवक–दर्शन, भागवत गीता–दर्शन, न्याय–दर्शन, वैशेषिक–दर्शन, सॉख्य–दर्शन, योग–दर्शन, मीमांसा–दर्शन, शंकर पूर्व वेदान्त–दर्शन, अद्वैत वेदान्त–दर्शन, विशिष्टद्वैत वेदान्त–दर्शन, वैष्णव सम्प्रदाय, सन्त–दर्शन, आदि पर हिन्दू धर्म के लोग आस्था और विश्वास रखते हैं। इसकी निम्न विशेषताएँ हैं, जो पं0 सत्यदेव परिव्राजक ने अपनी पुस्तक *'हिन्दू धर्म की विशेषताएँ'* में बतायीं हैं :

परमात्मा के अस्तित्व और उसकी सर्वव्यापकता पर विश्वास; ईश्वर के सगुण और निर्गुण स्वरूप पर विश्वास; ईश्वर की पूजा उपासना यज्ञ, भक्ति पर विश्वास; ईश्वर के अवतार पर विश्वास; विभिन्न देवी–देवताओं के स्वरूपों और उनके अस्तित्व पर विश्वास; पुनर्जन्म और मोक्ष पर विश्वास; स्वर्ग–नरक के अस्तित्व पर विश्वास; पाप और पुण्य पर विश्वास; भाग्य पर विश्वास; कर्मफल पर विश्वास; मन्दिरों तथा पूजा स्थलों की उपयोगिता पर विश्वास; धर्मशास्त्र– चार वेद, अठ्ठारह

उपनिषद, अनेकों पुराण, रामायण, महाभारत एवं भगवद्गीता के पठन–पाठन पर विश्वास; धार्मिक परम्पराओं एवं तीज़–त्यौहारों का अनुसरण करने पर विश्वास।[101]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू धर्म अनेक विशेषताओं के साथ अनेक रूपों में बुन्देलखण्ड में विद्यमान है। हम राष्ट्रीय कवि *'श्री रामधारी सिंह दिनकर'* के शब्दों में हिन्दू संस्कृति की विशेषताओं का सारांश बताते हुए यह कह सकते हैं– वास्तव में, हजरत येशु ने जैसे मसीहयत और हजरत मुहम्मद ने जैसे इस्लाम को जन्म दिया, हिन्दू–धर्म ठीक उसी प्रकार, किसी एक पुरूष की रचना नहीं है। यही कारण है कि अगर आप किसी हिन्दू से यह पूँछे कि तुम्हारा धर्म–ग्रन्थ कौन सा है तो वह सहसा कोई एक नाम नहीं बता सकेगा। इसी प्रकार, अगर उससे यह प्रश्न कर दें कि तुम्हारा अवतार, मुख्य धार्मिक नेता, नबी या पैगम्बर कौन हैं, तब भी किसी एक अवतार या माहात्मा का नाम उससे लेते नहीं बनेगा। और यही ठीक भी है, क्योंकि हमारा धर्म न तो एक महात्मा से आया है और न किसी एक सम्प्रदाय से।

हिन्दू–धर्म किसी एक विश्वास पर आधारित नहीं है। प्रत्युतं वह अनेक विश्वासों का समुदाय है। जिस प्रकार, भारतीय जनता की रचना उस अनेक जातियों को लेकर हुई जो समय–समय पर इस देश में आती रही, उसी प्रकार हिन्दुत्व भी इन विभिन्न जातियों के धार्मिक विश्वास के योग से बना है। शिक्षित व्यक्ति हिन्दू–धर्म के दार्शनिक पक्ष में विश्वास करता है, किन्तु जो अशिक्षित हैं, उनमें अंधविश्वासों और रूढ़ियों के लिए भी मोह है ; फिर भी, अनपढ़ से अनपढ़ हिन्दुओं में भी एक प्रकार की दार्शनिकता पायी जाती है जो इस देश की छह हजार साल पुरानी संस्कृति का परिणाम है।

जब आर्य यहाँ आए, उसके पहले ही सभ्यता का विकास यहाँ हो चुका था और धर्म तथा संस्कृति के अनेक अंग, रूप ग्रहण कर चुके थे। आर्यों ने इन सबको लेकर आर्य–धर्म का संगठन किया। इसके बाद भी जो जातियाँ भारतवर्ष में आयीं, वे यद्यपि, भारतीय संस्कृति के समुद्र में विलीन हो गयीं, फिर भी, हमारी संस्कृति को उनकी भी कुछ–न–कुछ देन है। हिन्दुओं ने उनको भी अपना पूज्य अवतार मान लिया जो किसी समय हिन्दू–धर्म के खिलाफ बगावत करने को उठे थे। हमारे दर्शनों में नास्तिक दर्शनों की भी संख्या काफी है, और समाज में उनका भी आदर है। हमारे आदि कवि ने रावण का भी उल्लेख, अक्सर महात्मा विशेषण के साथ आदरपूर्वक किया है। ये सारी बातें बतलाती हैं कि इस देश में, आरंभ से ही, धर्म के विषय में बड़ी ही सहिष्णुता और उदारता बरती गयी है। हिन्दू–संस्कृति ने अपने को कूप–मंडूक नहीं बनाया और इसे जहाँ से भी कोई अच्छी चीज मिलने वाली थी, उसे इसने आगे बढ़कर स्वीकार कर लिया। यही कारण है कि हिन्दू–धर्म में विश्व के तमाम धर्मों के असली तत्वों का निचोड़ जाते हैं। यहीं नहीं, बल्कि, भारतवर्ष के लम्बे इतिहास में जब भी कोई अद्भुत धार्मिक चिन्तन किया गया, हिन्दुत्व ने उसे प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। इसलिए, अब हमारी संस्कृति वही नहीं है जो वेदकालीन आर्यों की थी, और शुद्ध–शुद्ध वह भी नहीं जिसकी रचना आर्यों और द्रविड़ों ने मिलकर की थी। आर्यों और द्रविड़ों के मिलन के बाद भी, अनेक जातियाँ इस देश में आयीं और उन सबने हमारी संस्कृति को कुछ–न–कुछ अंशदान दिया है। हमारे अपने देश में बुद्ध और महावीर के नेतृत्व में प्रबल धार्मिक क्रांति हुई और उस क्रांति की भी कुछ–न–कुछ छाप हमारे धर्म और संस्कृति पर मौजूद है।

अनेक जातियों के देवी–देवताओं के आ मिलने के कारण बहुदेववाद हिन्दुत्व का अनिवार्य अंग बन गया। अतएव सब हिन्दू किसी एक देवता को नहीं पूजते हैं। अनेक देवी–देवताओं के आने से उनके माहात्म्य की भी अनके कथाएँ पुराणों में आ मिलीं, जिससे पुराण भी किसी एक दिशा में

इंगित करने में असमर्थ है। जिन विभिन्न नृवंशों की सन्ततियों को लेकर हिन्दू–जाति की रचना हुई, उनके विभिन्न उपासना–मार्ग भी हिन्दुत्व के अपने अंग बन गए, अतएव स्पष्ट नहीं कह सकते कि हिन्दुत्व की अपनी उपासना–पद्धति कौन–सी है। इस स्थिति को देखकर ही लोकमान्य तिलक ने धर्म की यह नवीन परिभाषा बनाई थी, जो व्यंग्यवत् दिखने पर भी व्यंग्य नहीं, सत्य है :–

"प्रमाण्यबुद्धिर्वेदेषु साधनानामनेकता।

उपास्यानामनियमं एतद्धर्मस्य लक्षण्म्।"[102] अर्थात् (वेदों को प्रमाण मानना, साधनों की अनेकता में विश्वास रखना तथा उपासना में किसी एक देवता का नियम नहीं रखना, यह धर्म का लक्षण है)।

हिन्दू धर्म और मसीही धर्म में विलक्षण समानताएँ पायी जाती हैं। धर्म का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के जीवन को निर्मल बनाना है, ताकि वह अपने कर्त्तव्यों का पालन नैतिक आधार पर करे और किसी भी पाप को जन्म न दे। संसार की तीन मुख्य चीजें हैं – पहली वस्तु परमात्मा हैं, जो सारे संसार का निर्माता, पालक, संहारक और कर्म फल दाता हैं। इस सिद्धान्त को हिन्दू तथा मसीही धर्म दोनों ही स्वीकार करते हैं।

सृष्टि सृजन पर विश्वास – मसीही मतावलम्बी एवं हिन्दू धर्म के अनुयायी दोनों ही सृष्टि का स्रजेता परमात्मा को मानते हैं। सृष्टि रचना बाइबिल पवित्र शास्त्र का एक प्रमुख विषय है। वास्तव में बाइबिल का आरम्भ सृष्टि रचना के विवरण से होता है। नया नियम में भी सृष्टि एक प्रमुख धारणा है। नया नियम शास्त्र का अन्त नई सृष्टि के दर्शन से होता हैं।[103] जब परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी को बनाना आरम्भ किया तब पृथ्वी आकार–रहित और सुनसान थी। अथाह सागर के ऊपर अन्धकार था। जल की सतह पर परमेश्वर का आत्मा (प्रचण्ड पवन अथवा गुम्बज) मंडराता था।

परमेश्वर ने कहा, *'प्रकाश हो'*, और प्रकाश हो गया। परमेश्वर ने देखा कि प्रकाश अच्छा है। परमेश्वर ने प्रकाश को अन्धकार से अलग किया। परमेश्वर ने प्रकाश को *'दिन'* तथा अन्धकार को *'रात'* नाम दिया। सन्ध्या हुई, फिर सबेरा हुआ। इस प्रकार पहला दिन बीत गया।

परमेश्वर ने कहा, 'जल के मध्य मेहराब* हो, और वह जल को जल से अलग करे।' परमेश्वर ने मेहराब बनाया, तथा मेहराब के ऊपर के जल को, उसके नीचे के जल से अलग किया। ऐसा ही हुआ। परमेश्वर ने मेहराब को *'आकाश'* नाम दिया। संध्या हुई, फिर सबेरा हुआ। इस प्रकार दूसरा दिन बीत गया।

परमेश्वर ने कहा, 'आकाश के नीचे का जल एक स्थान में एकत्र हो, और सूखी भूमि दिखाई दे।' ऐसा ही हुआ। परमेश्वर ने सूखी भूमि को *'पृथ्वी'* तथा एकत्रित जल को *'समुद्र'* नाम दिया। परमेश्वर ने देखा कि वे अच्छें हैं। तब परमेश्वर ने पृथ्वी को आज्ञा दी कि वह वनस्पति, बीजधारी पौधे और फलदायक वृक्ष उगाए। पृथ्वी पर उन वृक्षों की जाति के अनुसार उनके फलों में बीज भी हों। ऐसा ही हुआ। पृथ्वी ने वनस्पति, जाति–जाति के बीजधारी पौधे, फलदायक वृक्ष जिनके फलों में बीज थे, उनकी जाति के अनुसार उगाए। परमेश्वर ने देखा कि वे अच्छे हैं। सन्ध्या हुई, फिर सबेरा हुआ। इस प्रकार तीसरा दिन बीत गया।

परमेश्वर ने कहा, 'दिन को रात से अलग करने के लिए आकाश में मेहराब में ज्योति–पिण्ड हों। वे ऋतु, दिन और वर्ष के चिन्ह बनें। पृथ्वी पर प्रकाश करने के लिए आकाश के मेहराब में ज्योति–पिण्ड हों।' ऐसा ही हुआ। परमेश्वर ने दो विशाल ज्योति–पिण्ड बनाए : अधिक शक्तिवान ज्योति–पिण्ड को दिन का शासक, और कम शक्तिवान ज्योति–पिण्ड को रात का शासक बनाया।

** प्राचीन विश्वास के अनुसार मेहराब अपने ऊपर के जल को नीचे गिरने से रोकता था।*

उसने तारे भी बनाए। परमेश्वर ने उन्हें आकाश के मेहराब में स्थित किया कि वे पृथ्वी को प्रकाशित करें, दिन और रात पर शासन करें और प्रकाश को अन्धकार से अलग करें। परमेश्वर ने देखा कि वे अच्छे हैं। सन्ध्या हुई, फिर सबेरा हुआ। इस प्रकार चौथा दिन बीत गया।

परमेश्वर ने कहा, 'समुद्र जीवित जलचरों के झुण्ड उत्पन्न करें तथा पक्षी पृथ्वी पर आकाश के मेहराब में उड़े।' इस प्रकार परमेश्वर ने बड़े–बड़े जल जन्तुओं और गतिमान जलचरों को, जो झुण्ड के झुण्ड समुद्र में तैरते हैं, उनकी जाति के अनुसार उत्पन्न किया। उसने सब पंख वाले पक्षियों को भी उनकी जाति के अनुसार उत्पन्न किया। परमेश्वर ने देखा कि वे अच्छे हैं। परमेश्वर ने उन्हें यह आशीष दी, 'फलो–फूलो, और समुद्रों को भर दो। पक्षी भी पृथ्वी में असंख्य हो जाएँ। सन्ध्या हुई, फिर सबेरा हुआ। इस प्रकार पांचवाँ दिन बीत गया।

परमेश्वर ने कहा, 'पृथ्वी जीव–जन्तुओं को उनकी जाति के अनुसार उत्पन्न करें, अर्थात् प्रत्येक की जाति के अनुसार पालतू पशु, रेंगने वाले जन्तु और धरती के वन पशु।' ऐसा ही हुआ। परमेश्वर ने धरती के वन पशुओं, पालतू पशुओं और भूमि पर रेंगने वाले जन्तुओं को उनकी जाति के अनुसार बनाया। परमेश्वर ने देखा कि वे अच्छे हैं।

परमेश्वर ने कहा, 'हम मनुष्य को अपने स्वरूप में, अपने सदृश बनाएँ, और समुद्र के जलचरों,** आकाश के पक्षियों, पालतू पशुओं, धरती पर रेंगने वाले जन्तुओं और समस्त पृथ्वी पर मनुष्य का अधिकार हो।' अतः परमेश्वर ने अपने स्वरूप में मनुष्य को रचा। परमेश्वर के स्वरूप में उसने मनुष्य की सृष्टि की। परमेश्वर ने उन्हें नर और नारी बनाया। परमेश्वर ने उन्हें यह आशीष दी, 'फलो–फूलो और पृथ्वी को भर दो, और उसे अपने अधिकार में कर लो। समुद्र के जलचरों, आकाश के पक्षियों और भूमि के समस्त गतिमान जीव–जन्तुओं पर तुम्हारा अधिकार हो।'

हिन्दू धर्म में सृष्टि रचना का विवरण श्वेताश्वेतर उपनिषद में इस प्रकार हैं :

वह जो समस्त श्रोतों पर शासन करता है,
जिसमें समस्त विश्व एकत्र और विलीन होता है,
प्रभु हैं, आशीष दाता हैं, समादर के योग्य ईश्वर हैं–
उसकी आराधना से चिर शान्ति प्राप्त होती है।
वह सूक्ष्म से अति सूक्ष्म है, वह अव्यवस्था के बीच
सब का सृष्टिकर्त्ता है, अनन्त रूपों का रचयिता है,
वह समस्त विश्व में व्याप्त है –
जो उसको दयावान जानता है, वह चिर शान्ति प्राप्त करता है।
जो उसको, जो सब वस्तुओं में अदृश्य रूप से विद्यमान है, दयावान जानता है,
जो सूक्ष्म है, जैसे मलाई मक्खन से सूक्ष्म है,
जो समस्त विश्व में व्याप्त है –
उस ईश्वर को जानने से मनुष्य सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है।
उसका रूप अदृश्य है,
कोई भी उसको अपनी आँखों से नहीं देख सकता,
जो अपने मन और हृदय में उसे अन्तर्यामी जानते हैं,
और इस रूप में अपने हृदय में स्थान देते हैं, वे अमरता प्राप्त करते हैं।[104]

'सृष्टि' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की सृज् धातु से है जिसके अर्थ हैं– त्यागना, मुक्त करना, फेंकना,

** मछलियाँ।

To emnate, to let loose. सृष्टि ब्रह्म की रचनात्मक शक्ति की अभिव्यक्ति है। सृष्टि का आधार ब्रह्म है। दूसरे शब्दों में केवल ब्रह्म ही निरपेक्ष और स्वतन्त्र सत्ता है; अन्य सब कुछ उस पर निर्भर है, अतः सापेक्ष है।

शंकराचार्य की आलोचना की जाती है कि उन्होंने सिखाया कि जगत् माया है, उसकी स्थिति नहीं है। श्री राधाकृष्णन का कहना है कि वास्तव में शंकर का यह मत नहीं है। लोगों ने शंकर की शिक्षा को ठीक–ठीक नहीं समझा। शंकर तीन प्रकार की सत्ता मानते है : (A) पारमार्थिक सत्ता अर्थात् ब्रह्म जो निरपेक्ष और निरूपाधि है और सर्वदा एक सा है। (B) व्यावहारिक सत्ता अर्थात् जगत् और उसमें होने वाली घटनाएँ। यह जगत आद्यन्तवन्त है, परिवर्तनशील है, क्षणभंगुर है; और यदि *'सत्य'* के अर्थ हैं *'तीनों काल में एक सा रहने वाला' (त्रिकालाबाध्यं सत्यम्)* तो जगत् *'सत्य'* नहीं है। शंकराचार्य ने कभी यह नहीं कहा कि जगत का अस्तित्व नहीं हैं। 'जगत मिथ्या है' – इसके अर्थ हैं कि जगत सापेक्ष है, ब्रह्म पर निर्भर है। (C) प्रातिभासिक सत्ता, जैसे स्वप्न में राजा हो जाना, या भ्रामक ज्ञान जैसे रज्जु को सर्प समझ बैठना। यह कल्पना जन्य ज्ञान है, अज्ञान है। भिलाई और राउरकेला, ब्लाक डेवलपमेंट, युद्ध, अकाल आदि, अर्थात् व्यावहारिक सत्ता के अन्तर्गत आते हैं। इनका अस्तित्व है।

माया शब्द अनेकार्थ वाची है। श्री राधाकृष्णन ने इन अर्थो का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। (A) माया अर्थात् सापेक्ष परतन्त्र सत्ता *(Derived and dependent being)* इस अर्थ में सृष्टि माया हैं, सापेक्ष हैं, परतन्त्र हैं; दूसरी ओर ब्रह्म माया का स्वामी है, निरपेक्ष है, स्वतन्त्र है। (B) नश्वर, परिवर्तनशील वस्तु। संसार माया हैं अर्थात् परिवर्तनशील और नाशवान है; किन्तु ब्रह्म शाश्वत और अविनाशी है। (C) सृजन शक्ति; माया शब्द की उत्पत्ति *'मा'* धातु से है, जिसके अर्थ हैं निर्माण करना, रूप देना। तात्पर्य यह कि ये देवता अपना माया या सृजन शक्ति से सृष्टि रचना करते हैं। (D) माया अर्थात् रहस्य। ब्रह्म स्वयं पूर्ण हैं ; वह जगत का आधार या सृष्टि का श्रोत कैसे हो सकता है ? क्या सृष्टि का वर्तमान स्वरूप सर्वोत्तम है ? परमेश्वर ने इससे उत्तम सृष्टि क्यों नहीं बनाई ? आदि अनेक प्रश्न हैं, जिनका समाधानकारी उत्तर नहीं दिया जा सकता। मानना पड़ता है कि यह समस्त सृष्टि *'रहस्यमय'* है, *'माया'* है। (E) सृष्टि रचना के द्विविध रूप। सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरूष के योग से सृष्टि की उत्पत्ति मानी गई है। इस द्विविध रूप को *'माया'* कहा गया है। (F) अविद्या। इसके कारण हमसे सृष्टि का यथार्थ स्वरूप छिपा हुआ है। अविद्या या माया को न तो हम सत् कह सकते हैं और न असत्। इसे *'सदसदविलक्षण'* कहा गया है। इस अविद्या से अलग रहने में ही हमारा कल्याण है, क्योंकि यह सत्य के विषय भ्रम उत्पन्न करती है।[105]

श्री राधाकृष्णन की व्याख्या के अनुसार शंकर का मायावाद बताता है कि संसार का यथार्थ मूल्य क्या है। संसार स्वप्न नहीं है, हमें संसार में रहना है, यहाँ के कर्त्तव्य कर्म करने हैं ; परन्तु यह मानना मूर्खता होगी कि संसार ही सब कुछ है। हमें जगत कल्याण में लगना है परन्तु अविद्या से मुक्त होना है।[106]

ऋग्वेद में सृष्टि के विषय में विस्तार पूर्वक दिया गया है – प्रलय की दशा में न असत् था और न सत् था, उस समय न लोक थे और न अंतरिक्ष था, न कोई आवरण था और न ढ़कनें योग्य पदार्थ था। कहीं भी न कोई प्राणी था और न कोई सुख पहुँचाने वाला भोग था। उस समय गहन गंभीर जल भी नहीं था। उस समय न मृत्यु थी और न अमृत था, न रात्रि थी और न दिन का ज्ञान था, उस समय एकमात्र ब्रह्मा ही स्वधा के साथ प्राण युक्त था, उससे बढ़कर अन्य कुछ भी नहीं था।

प्रलय दशा में सब कुछ अंधकार से घिरा हुआ था एवं सब ओर अंधकार था, यह सारा दृश्यमान जगत् जल के रूप में अज्ञात था, सारा विश्व तुच्छ अंधकार से ढका था, महान् तप के कारण कार्यरूप–विभाग से रहित ब्रह्म उत्पन्न हुआ।

परमेश्वर के मन में सबसे पहले सृष्टि रचना की इच्छा उत्पन्न हुई। वही सब से पहले मन में सृष्टि का बीज बनी। विद्वानों ने बुद्धि से हृदय में विचार किया एवं असत् में सत् के कारण को खोजा।

आकाश आदि की सृष्टि करने वाले परमात्मा के तेज की किरणें क्या तिरछी थीं, नीचे की ओर थीं अथवा ऊपर की ओर थीं? बीज रूप कर्म को धारण करने वाले जीव थे एवं महान् आकाश आदि भोग्य थे। उस समय अन्न निकृष्ट एवं भोक्ता उत्कृष्ट था।

कौन संपूर्ण रूप से जानता है और कौन इस सृष्टि के विषय में कह सकता है ? यह सृष्टि किन–किन कारणों से उत्पन्न हुई है ? देवगण भूत सृष्टि के बाद उत्पन्न हुए हैं। यह विश्व जिससे उत्पन्न हुआ है, उसे कौन जानता है ?

यह विशेष सृष्टि जिससे उत्पन्न हुई है, पता नहीं वह इसे धारण करता है अथवा नहीं। विस्तृत आकाश में जो इस सृष्टि का अध्यक्ष है, पता नहीं वह उसे जानता है या नहीं जानता।[107]

परमात्मा से सबसे पहले प्रजापति उत्पन्न हुए। वे उत्पन्न होते ही सब जगत के स्वामी बने, उन्होंने धरती एवं इस द्यौ को धारण किया। हम पुरोडाश आदि के द्वारा दिव्य प्रजापति की सेवा करे।

जो प्रजापति आत्माओं तथा बलों को देने वाले हैं, सभी विश्व के प्राणी जिन की आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं, मरण एवं अमरता जिनकी छाया हैं, हम उन्हीं दिव्य प्रजापति की पुरोडाश आदि से सेवा करते हैं।

जो अपने महत्व से सांस लेने वाले, पलक झपकाने वाले एवं गतिशील प्राणियों के एकमात्र राजा हुए हैं, जो दो पैरों वाले मानवों एवं चार पैरों वाले पशुओं के स्वामी हैं, उन्हीं प्रजापति की पूजा हम हव्य द्वारा करें।

जिसकी महिमा से ये हिम वाले पर्वत उत्पन्न हुए हैं एवं यह सागर सहित धरती जिसकी कही जाती है, ये सब दिशाएँ, जिसकी भुजाएँ हैं हम उन्हीं प्रजापति की हव्य द्वारा पूजा करें।

जिन्होंने द्यौ एवं विस्तृत धरती को स्थिर किया है, जिन्होंने स्वर्ग तथा आदित्य को धारण किया है एवं जो अंतरिक्ष में जल को बनाने वाले हैं, उन्हीं प्रजापति की पूजा हम हव्य द्वारा करें।

जिन्होंने रक्षा के विचार से शब्द करती हुयी द्यावा पृथ्वी को स्थिर किया एवं दीप्तियुक्त इन दोनों को महिमा वाला समझा, जिनके आधार के कारण उदित हुआ, सूर्य प्रकाशित होता है, हम उन्हीं प्रजापति की पूजा हव्य द्वारा करें।

विस्तृत जल ने सारे संसार को ढ़क लिया था, जल ने गर्भ धारण करके अग्नि, आकाश आदि को जन्म दिया। इसके बाद देवों का एकमात्र रक्षक उत्पन्न हुआ।

प्रजापति को धारण करने वाले एवं यज्ञ को उत्पन्न करने वाले जल को प्रजापति ने अपने महत्व से देखा, जो सभी देवों के मध्य एकमात्र देव हुए। जो धरती को जन्म देने वाले हैं अथवा जिस सत्य धर्म वाले ने स्वर्ग को उत्पन्न किया है एवं जिन्होंने आनन्दवर्धक विस्तृत जल को उत्पन्न किया है। हे प्रजापति! तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई भी इन समस्त उत्पन्न भूतों को अधीन नहीं कर सका।[108]

सृष्टि बनाते समय विश्वकर्मा का आधार क्या था ? उन्होंने सृष्टि का आरम्भ कहाँ और किस प्रकार किया ? विश्व को देखने वाले विश्वकर्मा ने किस स्थान पर स्थित होकर धरती के बाद आकाश को बनाया ?

विश्वकर्मा की आँखें, मुख, बाहु एवं चरण सब ओर फैले हुए हैं, उस देव ने अकेले ही बाहुओं और चरणों से भली–भाँति गति करके द्यावा और भूमि को बनाया। वह कौन सा वन एवं वृक्ष है जिसने द्यावापृथिवी को निष्पादित किया।[109]

मसीही धर्म के लोगों में सृष्टि का सृजन का एक ही मत प्रमाणित होता है, परन्तु हिन्दू धर्म के विद्वानों ने इसी मत को अपने–अपने ढंग से प्रमाणित किया है।

स्वर्ग–नरक के अस्तित्व पर विश्वास – मसीही धर्मावलम्बी स्वर्ग और नरक पर विश्वास करते हैं। नया नियम में स्वर्ग न केवल आनन्द, वैभव, महिमा और परमेश्वर की उपस्थिति का स्थान है, वरन् इन सब गुणों से भरपूर एक स्थिति भी है। सन्त पौलुस बताते हैं कि ख्रिस्त स्वर्गों के ऊपर चढ़ गए।[110] सन्त पौलुस कहते हैं कि वह स्वयं दर्शन में तीसरे स्वर्ग तक ऊपर उठाए गए।[111]

अर्थात् स्वर्ग वहाँ है जहाँ परमेश्वर की उपस्थिति है।[112] स्वर्ग वह है जहाँ स्वर्गदूत विद्यमान हैं।[113] स्वर्ग में परमेश्वर के छुड़ाए हुए लोग अन्त में पहुँचेंगे। वहाँ परमेश्वर की शाश्वत काल तक महिमा होगी।[114] न्याय करने या दिलाने का विपरीत विचार ही न्याय को बिगाड़ना, भ्रष्ट करना या पाप करना है।

हिन्दू धर्म में भी स्वर्ग और नरक की परिकल्पना की गयी है। गरूण पुराण में इसका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध है :

"ये हि पापरतास्ताक्ष्र्य दयाधर्म विवर्जिताः।।
दुष्टसङ्.श्च सच्छास्त्रसत्सङ्.तिप राङ्.मुखाः।।[115]

अर्थात् (जो पाप में आसक्त, दया धर्म से रहित, दुष्ट पुरूषों की संगति और सत् शास्त्र एवं सत्संग से विमुख है, अपने को प्रतिष्ठित मानने वाले जड़, धन–मान के मद से युक्त, असुर भाव दैवी सम्पत्ति से रहित है, जिनका मन अनेक विषयों में फँसा है तथा जो इच्छाओं तथा स्त्री आदि के सुख में आसक्त हैं वे पुरूष नरकगामी होते हैं)।

जो व्यक्ति धर्म की श्रद्धा से ओत–प्रोत होता है, वे स्वर्ग प्राप्त करतें हैं। यथा–

"श्रद्धया धार्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः।
निष्किञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवंगताः।।"[116]

अर्थात् (धर्म की धारणा श्रद्धा से होती है, बहुत धन से नहीं। बहुत ही दीन धन हीन मुनि लोग श्रद्धालु होने से स्वर्ग गये)।

विभिन्न धर्मशास्त्र – विश्व की लगभग सब प्रमुख धर्म परम्पराओं के अपने–अपने धर्मशास्त्र हैं। ये धर्मशास्त्र या तो लिखित हैं या मौखिक हैं। ये धर्मशास्त्र उनके धर्म विश्वास के श्रोत हैं और बहुधा सीधे दिव्य प्रकाशन से प्राप्त हुए हैं।

हिन्दू धर्मशास्त्र – जैसे गीले ईंधन पर अग्नि रखी जाए तो धुएँ के बादल अलग उठते हैं। उसी प्रकार महान् सत् (ब्रह्म) से श्वसित हुआ वह जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं।[117]

वेदों को श्रुति कहते हैं (अर्थात् जो सुना गया है)। शेष धर्मलेखों को स्मृति कहते हैं (अर्थात् वह जो स्मरण किया गया है)। कहा जाता है कि महाऋषि मुनियों ने धर्म के अनन्त सत्यों को सुना और दूसरों के लाभ के लिए उनका अभिलेख छोड़ गए। इसलिए वेदों को शाश्वत कहा जाता है, और उनके रचयिताओं को केवल माध्यम माना जाता है जिनके द्वारा सर्वोच्च्य के प्रकाशन प्राप्त हुए है।[118]

पूजा विधि, ग्रन्थ पाठ और प्रभु–भोज में समानता – मसीही धर्म के समस्त धर्म स्थल कलीसिया या चर्च हिन्दू धर्म स्थलों के समान ही हैं। वहाँ वही कार्य होता है जो हिन्दू धर्म के धर्म स्थलों में होता है। इनके धर्म स्थलों में मूर्ति के स्थान पर क्रूस होता हैं और धर्म ग्रन्थों में

बाइबिल और उसके सिद्धान्त का समर्थन करने वाली अन्य पुस्तकें होती हैं। इनका पठन–पाठन नियमित रूप से होता है। कुछ चर्च में मरियम की मूर्ति की भी पूजा होती है तथा उपासना के समय वहाँ मोमबत्ती या अगरबत्ती जलाने की प्रथा है। यहाँ का पुरोहित हिन्दू मन्दिरों में नियुक्त पुरोहित या पुजारी की ही तरह होता है। मसीही धर्म स्थलों में बाइबिल का पाठ किया जाता है, उसी प्रकार भारतीय धर्म स्थलों में वेद, पुराण, गीता, रामायण आदि ग्रन्थों का पाठ होता है और देवताओं के आरती उतारी जाती है। मसीही धर्म स्थलों में धार्मिक कार्यों के उपरान्त प्रसाद बाँटने का नियम है। प्रसाद के रूप में यहाँ *'दाखरस'* दिया जाता है तथ समय–समय पर तीज–त्यौहारों और धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों में प्रभु–भोज का आयोजन होता है। ठीक इसी प्रकार हिन्दू धर्म में देव पूजन, ग्रन्थ पाठ, यज्ञादि के पश्चात् प्रसाद वितरण और भण्डारे का आयोजन होता है।

नैतिक सिद्धान्तों में समानता – सत्य, अहिंसा, प्रेम, सदाचार, सद्भाव, सहयोग, दया तथा करूणा और मानव सेवा की भावना मसीही धर्म और हिन्दू धर्म दोनों में एक से हैं। अंग्रेजी शब्द *'एथिक' (Ethics)* की व्युत्पत्ति यूनानी शब्द *'इथोस' (Ethos)* से हुई है, जिसका अर्थ है, किसी विशेष समाज अथवा संस्कृति के विशिष्ट गुण, जातिगत स्वभाव, आचार अथवा व्यवहार। सन्त पौलुस कुरिन्थ नगर की कलीसिया को लिखे गए अपने पहले पत्र में नैतिकता को उत्तम चरित्र *(Ethe Chresta)* कहते है।[119] अतः नैतिकता शब्द मनुष्य के व्यवहार, आचरण अथवा चरित्र की ओर संकेत करता है।

इसी प्रकार दीनों का हित चिन्तन भी हिन्दू धर्म का विशेष गुण है। भगवान श्री कृष्ण ने गरीब मित्र सुदामा पर यही करूणा भाव दर्शाया था :

''सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरङ्.सङ्.ातिनिर्वृतः।
प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः।।''[120]

अतः समस्त मानवीय गुण और नैतिक सिद्धान्त मसीह धर्म और हिन्दू धर्म में एक जैसे हैं।

पुनर्जन्म तथा नया जन्म – उत्तर वैदिक काल में कर्म सिद्धान्त के साथ–साथ *'पुनर्जन्म'* तथा *'नया जन्म'* जैसी धार्मिक धारणाएँ भी लोगों के जीवन में स्थापित हो चुकी थीं। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है :

'तद्यदेत दिदम्मयोऽदोमय इति यथाकारी यथाचारी तथा भवति'।

अर्थात् मनुष्य की जो दशा अब है, वह उसके अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार है। जिस प्रकार के उसके कर्म है तथा जिस प्रकार का उसका आचरण है उसी के अनुसार उसका जन्म है।

नया जन्म से अभिप्राय जन्म था पुनर्जन्म का चक्र है। इस धारणा के अनुसार जीव–आत्मा ब्रह्मण् का अंश है, उसी प्रकार जैसे अग्नि से निकली चिंगारी या समुद्र के जल की एक बूँद। अपने कर्मों के अनुसार आत्मा भिन्न–भिन्न जन्मों भिन्न–भिन्न शरीर धारण करती है। यह जन्म का चक्र निरन्तर चलता रहता है एक जन्म में आत्मा देव शरीर धारण करती है तो दूसरे जन्म में मनुष्य, पशु या वनस्पति, और यह चक्र तब तक चलता रहता है जब तक आत्मा मोक्ष को प्राप्त नहीं होती।[121]

मसीही धर्म में पुनर्जन्म की परिकल्पना नहीं है। व्यक्ति मृत्यु के उपरान्त सो जाता है और वह युगान्त में प्रभु येशु के पुनरागमन पर पुनः जीवित होगा। हाँ नया जन्म का अर्थ है– जब व्यक्ति प्रभु येशु पर विश्वास कर बपतिस्मा लेता है तब वह पुनः नवीन बन जाता है अर्थात् पुराने स्वभाव को छोड़कर नया स्वभाव धारण करता है। इसलिए बपतिस्मा संस्कार पुनर्जन्म का प्रतीक माना जाता है। जो व्यक्ति बपतिस्मा लेता है, मानो वह पुनर्जन्म लेता है। ''नया जन्म अर्थात् मन के नवीन

होने से मानव में पूर्ण परिवर्तन होता है, जिससे मानव परमेश्वर की इच्छा का अनुभव करता है कि उसकी दृष्टि में उत्तम, रूचिकर और पूर्ण क्या हैं।''[122] आत्मिक भावना से मन नया बनता है और मनुष्य नवीन स्वभाव धारण करता है जिसकी रचना सच्ची धार्मिकता और पवित्रता के साथ, परमेश्वर के अनुरूप हुई।[123]

हिन्दू धर्म एवं मसीही धर्म में अवतारवाद की अवधारण (Concept) – अवतारवाद हिन्दू संस्कृति का एक प्रधान अंग है। बौद्धों ने कल्पना की कि कोई मामूली जीव प्रयत्न पूर्वक उन्नतिकारी सद्गुणों में पारमिता प्राप्त करते–करते बोधिसत्व होता है और बोधिसत्व अपनी साधना चलाते–चलाते जब सब तरह की पारमिताओं में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब वह अर्हत् अथवा बुद्ध बनता है।[124]

उच्च स्थान से निम्न स्थान पर उतरना ही अवतरण या अवतार है (अवतरणमवतारः)[125] भगवान् का बैकुण्ठ धाम से भू–लोक पर लीलादि के निमित्त अवतार होता है। 'महाभारत के हरिवंश पर्व में अवतार के स्थान पर आविर्भाव *(Evolution)* शब्द प्रयुक्त किया गया है।[126] उनके अवतार का उद्देश्य *'श्री मद्भागवद्गीता'* के शब्दों में है :

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।'[127]

उत्पत्ति, स्थिति और लय (संहार) सृष्टि के शाश्वत धर्म हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीन धर्मों के प्रतिनिधि देवता है। विष्णु सृष्टि पालन के प्रतीक होने से अधिक लोकप्रिय हैं अतः इन्हीं के अवतारों की अधिक कल्पना की गयी है। कहा जाता है कि बुद्ध की देवताओं के समान गणना होने के पश्चात् से ही अवतारवाद का प्रचलन हुआ और पुराणों ने इसे पुरस्सर तथा प्रचारित किया।[128] परन्तु अवतारों के बीज वैदिक साहित्य में भी खोजे गए हैं। *'शतपथ ब्राह्मण'* में मत्स्यावतार[129] तथा कूर्मावतार (7/3/3/5), *'तैत्तिरीय संहिता'* (7/1/5/1) और *'तैत्तिरीय ब्राह्मण'* (1/1/3/5) एवं *'शतपथ ब्राह्मण'* (1/2/5/10) में वामनावतार का उल्लेख है। ऋग्वेद में विष्णु की तीन डगों से सृष्टि नापने की कल्पना है।[130] ऐतरेय ब्राह्मण तथा *'छान्दोग्योपनिषद'* (3/10) में देवकी पुत्र कृष्ण तथा *'तैत्तिरीय आरण्यक'* (19/1/6) में वासुदेव श्री कृष्ण का उल्लेख है। वैदिक ग्रन्थों में इन्हें ब्रह्मा का अवतार कहा है, परन्तु पुराणों में ये विष्णु के अवतार माने गए हैं।

पुराणों में विष्णु के अनेक अवतारों की कल्पना की गयी है। प्रत्येक पुराणों में उनकी संख्या एक–सी नहीं है। किसी में 6 है, किसी में 12 है और किसी में दस। विष्णु के दस अवतार प्रसिद्ध हैं, जो निम्न हैं – 1– मत्स्य, 2– कूर्म, 3– बराह, 4– वामन, 5– नृसिंह, 6– परशुराम, 7– राम, 8– कृष्ण, 9– बुद्ध, 10– कल्कि। इन दस में राम और कृष्ण के अवतार अति प्रसिद्ध हैं।[131]

पुराणों में भगवान के कुल 24 अवतार वर्णित हैं। वे हैं – 1– नारायण (विराट–पुरूष), 2– ब्रह्म, 3– सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, 4– नर नारायण, 5– कपिल, 6– दत्तात्रेय, 7– सुयज्ञ, 8– हयग्रीव, 9– ऋषभ, 10– पृथु, 11– मत्स्य, 12– कूर्म, 13– हंस, 14– धन्वन्तरि, 15– वामन, 16– परशुराम, 17– मोहिनी, 18– नृसिंह, 19– वेदव्यास, 20– राम, 21– बलराम, 22– कृष्ण, 23– बुद्ध, 24– कल्कि। ये लीलावतार के नाम से प्रसिद्ध हैं।

मसीही धर्म में केवल एक ही अवतार का उल्लेख हुआ है और वह हैं स्वयं परमेश्वर– जिन्होंने प्रभु येशु के रूप में जन्म लिया था। प्रभु येशु को बाइबिल में स्वयं परमेश्वर कहा गया है (जिसने मुझे देखा उसने परमेश्वर को देखा, मैं सृष्टि के आरम्भ से हूँ)। नया नियम की पुस्तक सन्त योहन रचित शुभ समाचार में स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार लिखा है – 'आदि में शब्द (वचन)

था; – शब्द परमेश्वर के साथ था और शब्द परमेश्वर था। वह आदि में परमेश्वर के साथ था'।[132] इसी अध्याय में परमेश्वर के अवतार के विषय में यह भी कहा हैं– 'शब्द देहधारी हुआ और उसने हमारे मध्य निवास किया। हमने उसकी ऐसी महिमा देखी जैसी पिता के एकलौते पुत्र की महिमा, जो अनुग्रह और सत्य से परिपूर्ण है।'[133]

'परमेश्वर को कभी किसी ने नहीं देखा, पर एकलौते–पुत्र ने जो स्वयं–परमेश्वर है, और जो पिता की गोद में है, उसको प्रकट किया है।'[134]

मसीही धर्म में अवतार का उद्देश्य – यद्यपि *'श्री मद्भागवद् गीता'* में अवतार लेने का यह कारण बताया गया है कि "साधू पुरूषों का उद्धार करने के लिए और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिए तथा धर्म स्थापन करने के लिए युग–युग में प्रकट होता है।"(अध्याय– 4, श्लोक– 8)

किन्तु मसीही धर्म में परमेश्वर के अवतार का यह कारण बताया गया है "परमेश्वर ने संसार से ऐसा प्रेम किया कि उसने अपना एकलौता पुत्र दे दिया कि जो मनुष्य उसके पुत्र पर विश्वास करेगा वह नष्ट नहीं होगा, परन्तु शाश्वत जीवन पाएगा। परमेश्वर ने अपने पुत्र को संसार में इसलिए नहीं भेजा कि वह संसार को दण्ड की आज्ञा दे, वरन् इसलिए भेजा कि वह संसार का उद्धार करे।"

जो मनुष्य उस पर विश्वास करता है, उस पर दण्ड की आज्ञा नहीं होती।[135] मसीही धर्म यह विश्वास करता है कि मनुष्य जन्म से पापी है। अतः परमेश्वर उसको दण्ड देगा किन्तु परमेश्वर प्रेमी पिता है। अतः वह अपनी सृष्टि को दण्ड देना नहीं चाहता इसलिए उसने अपने पुत्र को भेजा अर्थात् स्वयं पुत्र के रूप में इस धरती पर आया कि लोग उस पर विश्वास करे कि वह उनका परमेश्वर है। अतः जो मनुष्य उस पर विश्वास करता है, उस पर दण्ड की आज्ञा नहीं; परन्तु जो मनुष्य उस पर विश्वास नहीं करता, उसे दण्ड की आज्ञा हो चुकी है ; क्योंकि उसने परमेश्वर के एकलौते पुत्र पर विश्वास नहीं किया (संत योहन 3 : 18)।

नए नियम की एक और पुस्तक में सन्त लूका द्वारा रचित शुभ समाचार में (19 : 10) स्वयं प्रभु येशु ने यह घोषित किया कि "मैं खोए हुओं को ढूँढ़ने और उनका उद्धार करने आया हूँ।[136]

अतः मसीही धर्म में एक ही अवतार *'प्रभु येशु'* मसीह के बारे में वर्णन है। और मसीही धर्म के लोगों में भी परस्पर समता का भाव विद्यमान है। इस धर्म के लोग न किसी जात–पात, छूआ–छूत को मानते, और न ही किसी वर्ण–व्यवस्था को मानते। जिस प्रकार इस धर्म के लोग बहुदेव को न मानकर, अपने एक ही इष्ट परमेश्वर पुत्र *'प्रभु येशु'* को मानते हैं, उसी प्रकार ये सिर्फ मसीही के नाम से जाने जाते है। बाइबिल में इस विषय में इस प्रकार कहा गया है :

'विश्वास द्वारा तुम सब मसीह प्रभु येशु में परमेश्वर की सन्तान हो। तुममें से जितनों ने मसीह में बपतिस्मा लिया है, उन्होंने मसीह को धारण कर लिया है। अब न कोई यहूदी है और न यूनानी, न गुलाम है और न स्वतन्त्र, न पुरूष है और न स्त्री ; क्योंकि तुम सब प्रभु येशु में एक हो गए हो।'[137]

मसीही धर्म का हिन्दू धर्म पर प्रभाव[138]

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का आगमन विक्रमी संवत् सन् 1835 में उस समय हुआ जब वे उत्तर भारत से दक्षिण भारत जाने के लिए कालपी से होकर निकलना चाहते थे। उन्होंने कालपी में आक्रमण किया उसके पश्चात् वे कालिंजर के जागीरदार की सहायता से दक्षिण भारत की ओर गए। इस समय कालिंजर का जागीरदार कायम जी चौबे थे। तत्पश्चात् 1804 के लगभग

बुन्देलखण्ड के राजाओं की सन्धियाँ अंग्रेजों से हुयी। अतः अंग्रेज यहाँ स्थायी रूप से रहने लगे। उन्होंने अपने धर्म का अनुपालन करने के लिए अनेक स्थानों पर चर्च की स्थापना की तथा उनका संबन्ध यहाँ के मूल निवासियों से हुआ। मुख्य रूप से आर्य जाति के चारों वर्णो के वे लोग जो अंग्रेजों के अधीन कोई–न–कोई कार्य करते थे, वे इनके सम्पर्क में आए। ऐसे सामन्त जिनकी सन्धियाँ अंग्रेजों से थी, वे सर्वप्रथम अंग्रेजों के सम्पर्क में आए। उसके पश्चात् जिन लोगों ने अंग्रेजों की सेना में सैनिकों की तरह कार्य किया अथवा उनके व्यक्तिगत सेवकों के रूप में कार्य किया, वे उनके सम्पर्क में आए।

जब दो जीवन्त संस्कृतियाँ आपस में टकराती हैं तब वे एक–दूसरे को प्रभावित करती हैं। यही बात मसीही संस्कृति एवं हिन्दू संस्कृति के विषय में कही जा सकती है। मसीही धर्म–प्रचारकों पर जो प्रतिबन्ध ब्रिटिश कम्पनी सरकार ने लगाया हुआ था (सर सुन्दर लाल, "भारत में अंग्रेजी राज" वॉल्यूम एक, सूचना प्रसारण मंत्रालय, संस्करण– 1967, पृष्ठ– 119) वह सन् 1813 में उठा लिया गया, परिणामस्वरूप समस्त उत्तर भारत में मसीही धर्म प्रचारकों की बाढ़ ऐसी आ गयी अनेक ऐसे मिशनरी भी आए जिन्होंने खुले शब्दों में हिन्दू–संस्कृति एवं हिन्दू समाज में प्रचलित कुरीतियों के विरोध में अनेक ग्रन्थ लिखें। जगह–जगह सभाओं में उनके विषय में लोगों को बताया और आधुनिक शिक्षा देने के लिए अनेक स्कूल और कॉलेज आरम्भ किए ताकि हिन्दू युवक उन कुरीतियों को दूर कर सकें। अंग्रेजी शिक्षा से जो प्रकाश निकला उससे हिन्दू युवक सभी दिशाओं से मुड़कर केवल पश्चिम की ओर देखने लगे। उन्होंने जो दृष्टि प्राप्त की उससे हिन्दू धर्म में उन्हें केवल दोष ही दोष दिखाई देने लगे।

निदान, हिन्दू कॉलेज से निकला हुआ हिन्दू युवकों का पूरा का पूरा दल, एकदम बहक गया और वह बड़ी ही निर्ममता के साथ ठीक उसी प्रकार हिन्दुत्व की निन्दा करने लगा जिस प्रकार से मसीही मिशनरी कर रहे थे। ये युवक प्रतिमा–भंजक क्रान्तिकारी थे। उन्होंने सचमुच ही मूर्तियों पर तो हाथ नहीं उठाया, किन्तु अपने पूर्वजों के धार्मिक और नैतिक कार्यो पर उनकी कोई श्रद्धा नहीं रह गयी। घर–घर में यह विवाद छिड़ गया कि ईश्वर को मानना ठीक है या नहीं। ईश्वर साकार है या निराकार ? मन्दिरों में जाना अन्ध–विश्वास और मूर्ति की पूजा रूढ़ि की आराधना क्यों नहीं है ? जाति की प्रथा दूषित और सारा हिन्दू धर्म ही कलंकित और दोषपूर्ण क्यों नहीं माना जाए? उनका निश्चित मत हो गया कि पुराण की कथाएँ गप्पों का अम्बार हैं और यज्ञोपवीत, चन्दन, कंठी माला और शिखा ये फालतू चीजें हैं। जो युवक कुछ अधिक जोशीले थे उन्होंने मदिरा–पान आरम्भ किया और अपने पिता, चाचा और बांधवों को वे यह दिखलाने लगे कि हम तुम से सर्वथा भिन्न हैं। इनसे भी अधिक उन्मुक्त नवयुवक कई प्रकार से अपने बाप–दादों को चिढ़ाने लगे और मन्दिरों में गो मांस अथवा गाय की हड्डी फेंक देना आम बात हो गयी।

इनमें से जो अधिक विचारवान थे, उन्होंने भी घोषण कर दी कि हिन्दुत्व के नवीन और प्राचीन, वैदिक और पौराणिक, साकारवादी और निराकारवादी सभी रूप व्यर्थ हैं। पाठ्यक्रम में धर्म का स्थान नहीं रहने के कारण इन्हें अपने धर्म से तनिक भी परिचय नहीं था। संस्कृत भाषा से वे अनभिज्ञ थे, यदि संस्कृत ये पढ़ते भी थे तो काव्य और नाटक के लिए। इसके विपरीत उन विज्ञान समस्त विचारों से ये ओत–प्रोत थे जिनकी कसौटी पर मसीही धर्म में इस धर्म की आलोचना चल रही थी। फिर, अपने धर्म की निन्दा भी हिन्दू धर्म के लोग सुन रहे थे। परिणाम यह हुआ कि धर्म के मामले में वे बिल्कुल शून्य में जा लटके। ये लोग अपने को मुक्त चिन्तक कहते थे। विचारों से वे अंग्रेजो की सन्तान हो गए थे, किन्तु सामाजिक दृष्टि से वे किसी भी समाज के सदस्य नहीं

थे। अपने घर में वे विदेशी थे तथा अपने गाँव में उनका कोई आत्मीय नहीं था। ये ठीक उसी प्रकार के भारतीय थे जिनकी कल्पना मेकाले ने की थी – 'तन से भारतीय, किन्तु मन से अंग्रेज।' ये ही वे शिक्षित युवक थे जिन्हें देखकर शासकों और धर्म–प्रचारकों को यह आशा हो चली थी कि भारतवासियों को मसीही बनाने के लिए किसी विशेष आयोजन की आवश्यकता नहीं है, केवल अंग्रेजी पढ़ाना काफी होगा। इनकी वाणी, इनके विचार और इनके व्यवहार से सारा हिन्दू समाज दुःखी हो उठा और वे हिन्दुत्व के सब से बड़े शत्रु माने जाने लगे। पी0 परसिवल ने अपनी "लैण्ड आव् द वेदाज" नामक पुस्तक में तत्कालीन एक समाचार–पत्र का उद्धरण दिया है जिसमें सम्पादक ने कहा था कि "क्या हिन्दू–कॉलेज में एक नए ढंग के मनुष्यों की नींव नहीं रखी जा रही है ? हिन्दू–कॉलेज से समाज की धार्मिक भावनाओं को जैसी गहरी ठेस पहुँची है, क्या उसका शतांश भी मिशनरियों के आन्दोलनों से पहुँची थी?"

भारतीय युवकों में जो उच्छृंखलता दिखायी पड़ी, वह मसीही धर्म का परिणाम नहीं थी। धर्म का काम मनुष्यों को उच्छृंखल बनाना नहीं है और न मसीही धर्म इस नियम का अपवाद है। उच्छृंखलता का कारण अंग्रेजी साहित्य में अभिव्यक्त निर्बन्ध विचार थे, उच्छृंखलता का कारण अंग्रेजों से गृहीत यह विश्वास था कि धर्म की हो अथवा व्यवहार की, कोई भी ऐसी बात मानने योग्य नहीं है जो बुद्धि के पकड़ में नहीं आती हो। भारतवर्ष में मुक्त चिन्तन का मार्ग कई सौ वर्ष पहले ही अवरूद्ध हो चुका था। धर्म और समाज, दोनों ही क्षेत्रों में भारतवासी अपने शास्त्र को देखकर चलते थे और शास्त्र के अन्दर वे सभी पुराण भी थे जिनमें परस्पर विरोधी बाते गुँथी हुयी थी। भारतवासियों की बुद्धि इतनी जड़ हो गयी थी कि कोई यह सोचता ही नहीं था कि छुआछूत मनुष्यता के प्रति घोर पाप है, कि विधवा–विवाह नहीं होने देना नारी–जाति के प्रति अन्याय है, कि शूद्र और नारी को वे ही अधिकार मिलने चाहिए जो उच्च्य वर्णो के पुरूषों को प्राप्त हैं। समाज में भ्रूण–हत्याएँ चलती थीं, बालिकाओं का वध चलता था, जहाँ–तहाँ सती की प्रथा भी कायम थी। किन्तु, इन बातों के खिलाफ समाज में कोई नहीं सोचता था। तीर्थों में व्यभिचार के अड्डे बने हुए थे, महन्तों के घर पापाचार के आश्रय थे और मूर्तियों को पुजवाने वाले पंडे विलास में डूबे हुए थे। किन्तु इन बातों को रोकने वाला कोई नहीं था। सब समझते थे कि इन्हें रोकने से धर्म का अपमान होगा।

मसीहियों से जो ज्ञान हुआ था उसके प्रकाश में हिन्दू धर्म के लोग समाज की बुराइयों और धर्म की रूढ़ियों को स्पष्ट देखने लगे। मसीही धर्म और हिन्दू धर्म की टकराहट से एक बार फिर वह भाव सोते से जग पड़ा जो बुद्ध के समय प्रकटा था, जो कबीर के समय प्रत्यक्ष हुआ था और लोग गंभीरता से धर्म और समाज के ढाँचे पर एक बार फिर उसके मूल से ही सोचने लगे। किन्तु, ये चिन्तक सामान्य कोटि के लोग थे। वास्तव में, उन्हें चिन्तक कहना भी नहीं चाहिए। वे शंकाओं से त्रस्त छोटे–छोटे मनुष्य थे जिन्हें हिन्दुत्व की हर चीज छूँछी और निस्सार दिखायी देती थी, जो अपने समाज और धर्म की कुरूपताओं से शरमाए हुए थे और जिन्हें इस रहस्य का तनिक भी पता नहीं था कि बुद्धिवाद और उदारता के तत्व भी हिन्दुत्व में विद्यमान हैं। इन नव–शिक्षितों की मनोवृत्ति पराजितों की मनोवृत्ति हो गयी और अपने मसीही शिक्षकों, मसीही दोस्तों एवं अंग्रेजी से रोशन दिमाग वालों के सामने अपने मस्तक को उठाए रखने के लिए उन्होंने खुलकर अपने धर्म की भर्त्सना आरम्भ कर दी। धर्म–त्याग इनमें से थोड़े ही लोगों ने किया। किन्तु जो किसी भी कारण से अपने धर्म के भीतर रह गए, वे भी हिन्दुत्व को निर्ममता से झकझोरने लगे। ये भारतवर्ष में प्रविष्ट अंग्रेजों के नवीन विचारों के आरम्भिक नेता थे और घर, छात्रावास, गाँव, शहर, एवं विद्यालयों में

इनकी जो बकवास चलती थी, उससे हिन्दुत्व का पक्ष दिनों–दिन, कमजोर पड़ता जा रहा था और मसीही धर्म का मार्ग खुलता जा रहा था परन्तु पूर्ण रूप से नहीं खुला, क्योंकि भारत के नवशिक्षित, हिन्दू धर्म की निन्दा और मसीहयत की प्रशंसा चाहे कितनी भी करते हों किन्तु स्वयं उनके भीतर धार्मिकता का कोई चिन्ह नहीं था। अंग्रेज हैट–बूट से सुसज्जित घोर रूप से संसारी मनुष्य थे, जिनके आमिष–भोजन और मदिरा–पान की कहानियाँ सर्वत्र प्रचलित थीं। हिन्दू धर्म में धर्म के साथ एक प्रकार की फकीरी, एक प्रकार का आत्म–त्याग और अपरिग्रह का भाव सदा से वर्तमान रहा है। अतः इन बकवासी युवकों का हिन्दू धर्म पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उलटे, हिन्दू धर्म के लोग उनसे घृणा करने लगे।

हिन्दू धर्म में मसीहत अंग्रेजों के प्रताप के काल में उतना नहीं फैल सकी, जितने की आशंका थी और इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि वह हिन्दू धर्म का वरण करने में असमर्थ रही। मसीही धर्म इस देश को यूरोप बनाना चाहता था। सन् 1931 ई0 में प्रोफेसर शेषाद्रि ने एक बार कहा था कि 'भारतीय मसीही होते हुए मांस खाना, हैट पहनना, शराब पीना और भारतीयता की द्योतक प्रत्येक वस्तु से अपने आप को अलग रखना समझने लगते हैं।' आरम्भ में स्वयं गांधी जी भी यह समझते थे कि जो व्यक्ति मसीही बनना चाहता है उसे गो मांस खाना, शराब पीना और यूरोपीय लिबास पहनना पड़ेगा। केशवचन्द्र सेन ब्रह्म समाजी थे किन्तु विचारों में वे सोलह नहीं तो बारह आना मसीही अवश्य थे। किन्तु, उन्हें भी मसीहयत का यह पाश्चात्य रूप खटकता था। उन्होंने एक बार कहा था कि ''लगता है कि मसीह हम लोगों के बीच अंग्रेज बन कर आये हैं। उनके रंग–ढंग और तौर–तरीके अंग्रेजी हैं। उनका मिजाज और उनकी आत्मा भी अंग्रेजों का मिजाज और अंग्रेजों की आत्मा है इसलिए हिन्दू उनसे बिदकते हैं। यदि आप मसीह को हमारे बीच लाना ही चाहते हैं तो उन्हें सुसभ्य यूरोपीय व्यक्ति बनाकर मत लाइए। बल्कि, उन्हें एशिया के सन्त के रूप में भेजिए जिसकी सारी पूँजी उसकी समाधि और जिसका सारा धन उसकी प्रार्थना में है।''

स्वयं विवेकानन्द जी महाराज को तत्कालीन शिक्षित युवकों से असंतोष था। ''तुम बकवास करते हो, आपस में विवाद और झगड़े करते हो तथा उन सभी वस्तुओं की खिल्ली उड़ाते हो जो हमारे लिए पवित्र हैं। तुम्हें इसका ध्यान ही नहीं है कि प्राचीरों के बाहर असंख्य भारतीय जनता उस अमृत की एक बूँद पीने को बेचैन है जो हमारे प्राचीन शास्त्रों में भरा पड़ा है।''[139] मसीह का यूरोपीय रूप विवेकानन्द को भी पसन्द नहीं था। अपने भाषण में उन्होंने कहा था कि ''लोग अक्सर यह भूल जाते हैं कि मसीह एशियाई थे। वे चित्रों में मसीह की आँखें नीली और बाल पीले दिखलाते हैं। मसीह तो फिर भी एशियाई ही हैं। बाइबिल में जो उपमाएँ हैं, जो चित्र हैं, जो दृश्य, प्रवृत्ति, काव्य और प्रतीक हैं, वे एशिया के हैं, पूर्वी विश्व के हैं। बाइबिल का आकाश चमकीला है उसके वातावरण में गर्मी है, उसके भीतर मरू प्रदेश का सूर्य है, उसके भीतर प्यासा आदमी और पिपासित जीव है। बाइबिल में उन कूपों का उल्लेख है जिनसे पानी लेने को नर और नारियाँ दूर गाँवों से आते हैं – ये सारे दृश्य एशिया के हैं, यूरोप के नहीं।''[140]

हिन्दू समाज पर ऐसा प्रभाव इसलिए पड़ा कि नवशिक्षित हिन्दू युवक लिबास और विचार से अंग्रेज हो रहे थे एवं भारतीयता की द्योतक प्रत्येक वस्तु से उन्हें घृणा होने लगी थी। नयी शिक्षा आवश्यक थी क्योंकि रोजगार फारसी से नहीं अंग्रेजी पढ़ कर ही मिलता था। किन्तु अंग्रेजी का प्रभाव हिन्दुत्व के लिए घातक होता जा रहा था। जो मिशनरी थे, पुस्तकें छापकर, अखबार निकालकर और सड़कों, गलियों, कचहरियों, बाजारों और स्कूलों तथा कॉलेजों में भाषण देकर निर्भिकतापूर्वक हिन्दू धर्म की धज्जियाँ उड़ा रहे थे और घरों में नवशिक्षित हिन्दू युवकों का तेजस्वी

समुदाय था जो हिन्दुत्व को सैकड़ों प्रकार से अपमानित करके अपने समाज की छाती कुरेद रहा था। राजा मसीही, प्रचारक मसीही, शिक्षा मसीही और शिक्षितों पर मसीहयत का दिनों–दिन बढ़ता हुआ व्यापक प्रभाव। धर्म एक बार फिर महाविपत्ति के घेरे में था और आस्तिकों के मन में भगवान् की यह वाणी अस्फुट स्वरों में गुँज रही थी –

यदा–यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

गीता का यह वचन ठीक है कि जब–जब धर्म का पतन और अधर्म का उत्थान होता है तब–तब संसार में ऐसी आत्माएँ अवतीर्ण होती हैं जिन्हें अवतार कहते हैं। उन्नीसवीं सदी से हिन्दू समाज में जो भी सुधारक संत हुए, उनका एकमात्र विषय धर्म था, क्योंकि धर्म की तत्कालीन समाज की मुख्य सांस्कृतिक धारा थी एवं राजनीति और समाज की चेतना तब तक उसके वृत्त से बाहर थी अर्थात् राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना तब तक उतनी नहीं बढ़ी थी कि वह धर्म को भी प्रभावित करे, किन्तु उन्नीसवीं सदी तक आकर समस्या का रूप बदल गया और जो धर्म पहले अपने आप में ही पूर्ण समझा जाता था उसकी जाँच अब सामाजिकता की कसौटी पर की जाने लगी। हिन्दू धर्म में अंग्रेजों के प्रभाव के बाद हिन्दू समाज की जो आलोचना चलने लगी थी, उसका भी मुख्य कारण यह नहीं था कि हिन्दू धर्म मसीहयत के सामने तुच्छ थे अथवा हिन्दू धर्म की त्रुटियाँ मसीही धर्म में नहीं थी बल्कि इस आलोचना की प्रेरणा इस बात से मिल रही थी कि मसीही धर्म चाहे जैसा भी रहा हो, किन्तु मसीही समाज हिन्दू समाज से अधिक जाग्रत, अधिक कर्मठ और अधिक उन्नत एवं उदार था। हिन्दू धर्म अंग्रेजों के साथ आने वाले धर्म से नहीं डरा, बल्कि भय उसे अंग्रेजों के विज्ञान को देखकर हुआ, उसकी बुद्धिवादिता, साहस और कर्मठता से हुआ। अतएव, हिन्दू–समाज में नवोत्थान का जो आन्दोलन उठा उसका लक्ष्य अपने धर्म, अपनी परम्परा और अपने विश्वासों का त्याग नहीं, प्रत्युत मसीहियों की विशिष्टताओं के साथ उनका सामंजस्य बिठाना था।

हिन्दू नवोत्थान का एक प्रधान लक्षण अतीत की गहराइयों का अन्वीक्षण था। जब–जब हिन्दुओं में नवोत्थान हुआ हैं, तब–तब वेदान्त की भूमिका मनुष्य के सामने प्रकाशित हो उठी हैं। वेदान्त ने बुद्ध को दिया, वेदान्त के आधार पर कबीर और नानक सत्य सिद्ध हुए और उसी वेदान्त की नयी व्याख्या करके रामानुज ने भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। जब मसीहयत और विज्ञान भारत पहुँचे और भारत को उनके स्वागत–सत्कार की व्यवस्था करनी पड़ी, तब हिन्दुओं ने एक बार फिर वेदान्त का सहारा लिया। जिस नवोत्थान का आरम्भ राममोहन राय, दयानन्द और विवेकानन्द ने किया था और जिसकी धारा में हम आज भी तैरते हुए आगे जा रहें हैं, वेदान्त उस आन्दोलन की रीढ़ है।

नवोत्थान का दूसरा प्रधान लक्षण निवृत्ति का त्याग था। स्वामी विवेकानन्द और लोकमान्य तिलक ने वेदान्त और गीता की ही नयी व्याख्या करके यह प्रतिपादित किया कि हिन्दू वैदिक धर्म का मूल उपदेश निवृत्ति नहीं प्रवृत्ति है।

राममोहन साधक की अपेक्षा राजनीतिज्ञ और सामाजिक नेता अधिक थे। उन्होंने जो कुछ किया, उसे हम सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का कार्य कह सकते हैं। भारत की राजनीतिक राष्ट्रीयता इसी सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का विकसित रूप है। हिन्दू धर्म में व्याप्त सती–प्रथा का विरोध राजा राममोहन राय ने मसीही धर्म के प्रभाव में आने के बाद ही किया। उन पर मसीही धर्म का इतना अधिक प्रभाव था कि उन्होंने स्वयं बाइबिल के मूल भाषाओं में पढ़ने के लिए इब्रानी और ग्रीक भाषाएँ सीखी और नए नियम में अनुवाद के कार्य में कुछ समय तक मिशनरियों की सहायता भी की। इस

सम्पर्क और अध्ययन के फलस्वरूप राजा राममोहन ने कहा है, "मैंने धर्म के सम्बन्ध में दीर्घकाल से गहरा चिन्तन किया है। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि खिस्त के सिद्धान्त तर्क सम्मत है, कोई अन्य सिद्धान्त उनकी तुलना में ठहर नहीं सकता।"[141]

इसी प्रकार महात्मा गाँधी जैसे हिन्दुओं ने जातिवाद और ऊँच–नीच तथा छुआ–छूत का घोर विरोध किया और सर्वधर्म समर्थन पर बल दिया। उनका मानना है कि मसीहियों ने ही उन्हें नवीन वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की तथा वैज्ञानिक सोच प्रदान की इसलिए अनेक लोग हिन्दू धर्म का परित्याग करके मसीही धर्म की ओर आकर्षित हुए। प्रश्न उठता है कि खिस्तीय धर्म के प्रति गाँधी जी का क्या मनोभाव था ? बचपन में उन्होंने सड़कों के किनारे खिस्तीय प्रचारकों के व्याख्यान सुने थे। उन दिनों दूसरे धर्मो के खंडन करने का बहुत रिवाज था। स्वभावतः गाँधी जी को यह प्रचार बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। इंग्लैण्ड में उन्होंने खिस्तीय धर्म के सुन्दर पक्ष को देखा। वही उन्होंने बाइबिल का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा। विशेषकर वह प्रभु येशु के 'पर्वतीय उपदेश' से आकर्षित हुए। "यहाँ मुझे कोई ऐसी बात नहीं मिली जो अन्यत्र न कही गयी हो। हाँ, कहने की शैली अवश्य अनुपम और अतुलनीय थी।" इन पंक्तियों के लेखक से उन्होंने कहा था, 'मैंने हिन्दू धर्म ग्रन्थों की अपेक्षा बाइबिल और खिस्तीय धर्म के ग्रन्थों को अधिक पढ़ा।'

गाँधी जी की शिक्षा–दीक्षा इंग्लैण्ड में हुयी थी और वे दक्षिण अफ्रीका के प्रवास में अनेक मिशनरियों के सम्पर्क में आए थे विशेषकर सी0एफ0 एण्ड्रूज ने, जो बाद में गाँधी जी के साथ ही आश्रम में रहने लगे थे और गाँधी जी के घनिष्ठ मित्र बन गये, जिनको दीनबन्धु के नाम से भारतवर्ष में पहचाना जाता है। गाँधी जी के मसीही प्रभाव के संबन्ध में अपने ग्रन्थ 'गाँधीज आइडियॉज' *(Mahatma Gandhi's Ideas)* में इस प्रकार कहा है[142] :

"प्रभु येशु उनके आदर्श थे और वह दुनिया के श्रेष्ठतम् गुरूओं में प्रभु येशु को मानते थे उन्होंने समय–समय पर अपने अंग्रेजी अखबार *'यंग इण्डिया'* एवं हिन्दी अखबार *'हरिजन'* में इस प्रकार लिखा है – अनेक वर्षों से मैं नासरत के प्रभु येशु को विश्व के महान गुरूओं में से एक मानता आया हूँ और यह बात मैं बड़ी विनम्रता से कह रहा हूँ। *(For many years I have regarded Jesus of Nazareth as one among the mighty teachers that the world has had, and I say this in all humility.)* (आनन्द टी0 हिंगोरानी का गाँधी जी से वार्तालाप, पृष्ठ– 143)

गाँधी जी पर प्रभु येशु खीस्त का जो प्रभाव पड़ा है, उस पर गाँधी जी ने हिंगोरानी से वार्तालाप के दौरान जो कुछ बातें कही उसका संकलन ए0टी0 हिंगोरानी ने अपने लेख 'बापू– मेरे मसीही' में इस प्रकार किया है : *"Then I can say that Jesus occupies in my heart the place of one of the great teachers who have made a considerable influence on my life."*[143] अर्थात् (तब मैं यह निश्चय के साथ कह सकता हूँ कि प्रभु येशु का स्थान मेरे ह्रदय में एक महानतम् गुरू के रूप में है। जिसने मेरे जीवन को बहुत प्रभावित किया हैं।)

"There is one thing which came forcibly to me in my early studies of the Bible. It seized me immediately when I read on passage. The text was this: 'Seek ye first the kingdom of God and this righteousness and all other things will be added upto you.' I tell you that if you will understand, appreciate, and act upto the spirit of this passage, then you will not even need to know what place Jesus, or any other teacher, occupies in your heart or my heart," अर्थात् (बाइबिल के आरम्भिक अध्ययन से एक बात ने मुझ पर अत्यधिक प्रभाव डाला है

जब मैंने निम्नलिखित उद्धरण को पढ़ा तो उसने मानो मुझको एकदम पकड़ लिया। ये उद्धरण था, "तुम सबसे पहले परमेश्वर के राज्य और उसकी धार्मिकताा की खोज करो तो ये सब वस्तुएँ भी तुम्हें मिल जाएंगी" (मत्ती 6 : 33)। मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि यदि आप इस उद्धरण को समझ लें और इसकी सच्चाई को स्वीकार करें तो आपको यह जानने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी कि आपके हृदय में प्रभु येशु अथवा किसी अन्य गुरू का कौन–सा स्थान हैं)

"And because the life of Jesus has the significance and the transcendency to which I have alluded, I believe that He belongs not solely to Christianity, but to the entire world, to all races and people- it matters little under what flag, name or doctrine they may work, profess a faith, or worship a God inherited from their ancestors." (The Modern Review, Magazine, october 1941) अर्थात् (क्योंकि प्रभु येशु खीस्त का जीवन महत्वपूर्ण एवं ईश्वरीय गुणों से परिपूर्ण है इसलिए मेरा यह मानना है कि वह केवल मसीही समाज के ही गुरू नहीं हैं बल्कि विश्व के तमाम कौमों तथा देशों के हैं फिर चाहे ये लोग किसी भी रंग के, किसी भी राष्ट्र के क्यों न हों और उनका धर्म विश्वास आराधना विधियाँ भिन्न क्यों न हो, वे ईश्वर को किसी भी नाम से क्यों न पुकारते हों और अपने को किसी भी पूर्वज का वंशज क्यों न कहते हों। कहने का अर्थ यह है कि प्रभु येशु केवल एक समुदाय के ही नहीं वरन् सारे विश्व के हैं)

"It is first class human tragedy that peoples of the earth who claim to believe in the message of Jesus whom they describe as the Prince of peace, show little of that belief in actual practice."[144] अर्थात् (यह संसार की सबसे बड़ी मानवीय दुर्घटना है कि जो लोग प्रभु येशु के सन्देश पर विश्वास करने का दावा करते हैं और उनको शान्ति का राजकुमार कहतें हैं, वे ही लोग अपने इस विश्वास को व्यवहार में बहुत कम प्रकट करते हैं कि वह शान्ति के राजकुमार हैं)

मसीही समाज एवं प्रभु येशु के विषय में समय–समय पर गाँधी जी ने जो कहा उसका संकलन अँग्रेजी पुस्तक *"क्रिश्चियन मिशन"* में संकलित किया गया है जिसका प्रकाशन 'नवजीवन प्रेस अहमदाबाद' सन् 1941 में हुआ था। इस पुस्तक में गाँधी जी के लगभग 42 लेख हैं और कुछ लेख महादेव देसाई, प्यारेलाल, राजकुमार अमृत कौर एवं चन्द्रशेखर शुक्ल के आलेख भी संकलित हैं जो गाँधी जी के प्रभु येशु संबन्धी विचारों को प्रकट करते हैं।

इन आलेखों को पढ़कर एक बात तो स्पष्ट हैं कि गाँधी कन्वर्जन के विरुद्ध थे और वे चर्च के द्वारा किए जा रहे कन्वर्जन को पसन्द नहीं करते थे।

यंग इण्डिया, दिसम्बर 8, 1927 के अंक में गाँधी जी का यह कथन उल्लेखनीय है : "प्रभु येशु का यह सन्देश का सार जैसा मैंने समझा है वह *पर्वतीय प्रवचन* के शब्दों में इस प्रकार निहित है – जैसा रूढ़िपंथी इस प्रवचन की व्याख्या करते है उनसे कुछ हटकर मेरी विनम्र व्याख्या है। मैं बेहिचक यह कह सकता हूँ कि हाँ मैं क्रिश्चियन हूँ, *'Oh yes, I am a Christian*; मेरा यह कहना अनेक रूढ़िपंथी मसीहियों को स्वीकार नहीं होगा, क्योंकि पर्वतीय प्रवचन की व्याख्या के परिप्रेक्ष्य में स्वयं को मसीही मान सकता हूँ।"[145] गाँधी जी का यह कन्फेशन मसीही समाज में बार–बार उद्धृत किया जाता है।

हिन्दू धर्म की त्रुटियाँ जानते और मानते हुए भी गाँधी जी ने मसीही समाज में अपना कन्वर्जन नहीं किया। वे मसीही धर्म को मानते हुए पुर्णरूपेण हिन्दू धर्मावलम्बी थे। वह गीता के परम्

भक्त थे, तुलसी का माला उनके तकिए के नीचे रहती थी, मरते समय उनके मुँह में *'राम'* का नाम था। वह प्रच्छन्न मसीही नहीं, सच्चे हिन्दू थे।[146]

अतः सम्पूर्ण देश में हिन्दू नवोत्थान को लेकर जो परिवर्तन आया उसके पीछे हम कह सकते हैं कि मसीही धर्म का प्रभाव ही था। बुन्देलखण्ड में धार्मिक, सामाजिक और शैक्षणिक परिवर्तन समस्त देश में आए हुए नवोत्थान का प्रभाव ही माना जाएगा। 19वीं शताब्दी में बुन्देलखण्ड के प्रमुख नगरों झाँसी, कर्वी, बाँदा, हमीरपुर, ललितपुर, ग्वालियर, टीकमगढ़, छतरपुर, दमोह, सागर, सतना, जबलपुर, जालौन आदि में स्कूल, कॉलेज हॉस्पिटल, मन्दिर, गिरजाघर न केवल मिशनरियों द्वारा स्थापित किए गए बल्कि नवोत्थान के प्रमुख नेता राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी आदि से प्रभावित पढ़े–लिखे हिन्दू सामाजिक कार्यकर्त्ताओं ने भी स्कूल, कॉलेज प्रारम्भ किए और इस प्रकार आधुनिकता का आरम्भ हुआ।

150 वर्षों तक बुन्देलखण्ड के निवासियों का सम्पर्क अंग्रेजों से रहा। इसलिए हम और हमारे हिन्दू समाज के अनुयायी मसीही धर्म से पूर्ण–रूपेण प्रभावित हुए, दोनों समाज को एक–दूसरे से परिचित होने का मौका मिला तथा मसीही सम्प्रदाय के लोगों ने हिन्दुओं पर एक ऐसा स्थायी प्रभाव डाला जिसे हिन्दू कभी भुला नहीं सकेंगें। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि पाश्चात्य शिक्षा जो मसीही धर्म के माध्यम से बुन्देलखण्ड वासियों को प्राप्त हुयी, के परिणाम स्वरूप बुन्देलखण्ड आज एक आधुनिक विकासशील प्रदेश बन गया है। अतः बुन्देलखण्ड में प्रचार–प्रसार के पीछे मसीही धर्म का न केवल नकारात्मक हाथ था, अपितु सकारात्मक प्रभाव भी था।

गाँधी जी को मसीह धर्म से प्रभावित देखकर उनके दोस्त ने जॉर्ज मेथसन की कविता की कुछ पंक्तियाँ गाँधी जी के पास भेजी :

"मेरे हाथ–पाँव जंजीरों से जकड़े हुए हैं, इसलिए मैं उड़ सकता हूँ।
मेरे दुःखों के कारण ही मैं आत्मा के आकाश में आजादी से विहार कर सकता हूँ।
मैं पीछे हटता हूँ, इसलिए तो आगे–आगे दौड़ सकता हूँ।
अपने आँसुओं के बल पर ही मैं अनन्त की यात्रा कर सकता हूँ।
अपने क्रूस की निसैनी से चढ़कर ही मैं मनुष्य के हृदय में पहुँचता हूँ।
इसलिए हे भगवान, मेरा क्रूस, मेरा दुःख, मेरी तकलीफें मुझे बढ़ाने दे!"[1]

(नयी दिल्ली, 3–10, 1947 ; मोहनदास करम चन्द गाँधी, "हरिजन सेवक", 19 अक्टूबर, 1947, पृष्ठ– 315)

इस्लाम धर्म

अरबी शब्द *'इस्लाम'* का अर्थ है आत्मत्याग या समर्पण। इसी शब्द से संज्ञा मुस्लिम निकली है जिसका अर्थ है आत्म समर्पण करने वाला। वह जो इस्लाम को ग्रहण करता है मुस्लिम कहलाता है। इस धर्म का विश्वास है कि परमेश्वर एक है जो इस संसार का प्रभु तथा संचालक है। प्रत्येक प्राणी की नियति उसके अधीन है। इस्लाम को 'दीन; मिल्लत तथा मजहब भी कहा गया है। विश्व के प्रमुख मिशनरी धर्मों में बौद्ध धर्म तथा मसीही धर्म के बाद इस्लाम का स्थान है। इस्लाम एकेश्वरवादी धर्म है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसका अभ्युदय संसार के प्राचीन धर्मों के बहुत बाद में हुआ। *'इस्लाम'* का नाम स्वयं इस धर्म के संस्थापक ने उन क्रांतिकारी विचारों तथा विश्वासों को दिया जो अब इस धर्म के बुनियादी सिद्धान्त है।

इस्लाम धर्म का उद्‌भव अरब देश में हुआ। जिस काल में इस धर्म का अभ्युदय हुआ उस समय अरब देश में खाना बदोशी कबीले निवास करते थे। ये अरब वासी प्राचीन काल से आदिम विश्वासी तथा मूर्ति पूजक थे। इस्लाम धर्म से पूर्व ये लोग सूर्य, चन्द्रमा, तारागण तथा प्रेतात्माओं आदि की मूर्तियों के रूप में उपसना करते थे। कालान्तर में इन उपास्य मूर्तियों की संख्या में वृद्धि होती गयी तथा इनका धर्म बहु ईश्वरवाद में परिणत हो गया। देवी–देवताओं की उपासना के साथ–साथ अरब निवासी प्रकृति में प्रेतात्माओं के अस्तित्व में भी विश्वास रखते थे, जिन्हें वे 'जिन्न' कहते थे। जिन्न, जल श्रोतों, चट्टानों, खजूर के वृक्षों तथा पर्वत–शिखरों में निवास करते थे। उनका यह भी विश्वास था कि कुछ जिन्न अन्य जिन्नों से अधिक शक्तिशाली होते थे। मूर्ति पूजा के इस युग को अंधकार युग या जहालत (अज्ञानता) युग भी कहा जाता है।

हज़रत मोहम्मद का जीवन, कार्य – हज़रत मोहम्मद मक्का में सन् 570 ईस्वी में उत्पन्न हुए। इनके पिता का नाम हज़रत अब्दुल्ला था जो कुरैश कबीले के एक सम्मानित सदस्य थे। हज़रत मोहम्मद के जन्म के पूर्व ही उनके पिता का देहान्त हो गया। जब हज़रत मोहम्मद केवल छः ही वर्ष के थे तब वह अपनी माता की मृत्यु के कारण मातृ–प्रेम की सुखमय छाया से भी वंचित हो गए। अनाथ अवस्था में इनके दादा अब्दुल मुत्तलिब ने इन्हें गोद लिया। फिर दो वर्ष बाद उनकी मृत्यु होने पर उन के चाचा हज़रत अबुतालिब ने इन्हें पाला पोसा। इन के दोनों पालक भी कुरैशी कबीले के शेख थे जो मक्का के पवित्र स्थल के संरक्षक थे। हज़रत मोहम्मद का बचपन तथा युवाकाल मक्का के धार्मिक वातावरण में बीता।

जब वे युवावस्था को प्राप्त हुए तो इनकी आर्थिक स्थिति विशेष अच्छी नहीं थी। उन्हें अपने पिता की ओर से केवल पाँच ऊँट, कुछ बकरियों का एक रेवड़ और एक कनीज (दासी) विरासत में मिले थे। उन्होंने ऊँट चलाने का व्यवसाय संभाला तथा मक्का से आने–जाने वाले व्यापारिक काफिलों का मार्ग–दर्शन करने लगे। जब वह 25 वर्ष के थे तो उन्होंने एक धनवान विधवा खदीजा के यहाँ नौकरी कर ली तथा उसके व्यापारिक काफिलों के साथ वह शाम (सीरिया) जाने लगे। यद्यपि हज़रत मोहम्मद पढ़ना–लिखना नहीं जानते थे परन्तु उनकी यमन, शाम, अबीसीनिया, फारस, मिस्र की व्यवसाय संबंधी यात्राओं के दौरान उनकी भेंट यहूदी तथा मसीही व्यापारियों तथा धर्मानुयायियों से प्रायः होती रहती थी। इस प्रकार के सम्पर्क से इन्हें इन धर्मों के विषय में पर्याप्त जानकारी हो गयी। मरूस्थल को पार करते समय वह लम्बी तथा नीरस और उबा देने वाली यात्राओं के दौरान धर्म के गूढ़ पहलुओं के विषय में चिन्तन करते रहते थे। कुछ दिनों बाद हज़रत मोहम्मद का खदीजा से विवाह हो गया। यद्यपि खदीजा का पहले दो बार विवाह हो चुका था तथा खदीजा हज़रत मोहम्मद से आयु में भी बड़ी थी, फिर भी यह विवाह सुखी सिद्ध हुआ।

इसके साथ मोहम्मद साहब को व्यावसायिक कार्य भार से निवृत्ति प्राप्त हुई, समाज में और अधिक सम्मानित स्थान मिल गया। खदीजा के धन के साथ उन्हें पर्याप्त अवकाश प्राप्त हो गया जिसमें वह और अधिक चिन्तन करने लगे। खदीजा से उन्हें तीन पुत्र तथा चार पुत्रियाँ भी प्राप्त हुयीं जिनमें से केवल एक पुत्री फ़ातिमा ही जीवित रही।

हज़रत मोहम्मद अति गम्भीर प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। अरब कबीलों की पारस्परिक शत्रुता एवं प्रतिद्वन्द्विता से वह अति दुःखी थे। वह सांसारिकता के जीवन से पृथक रहकर एकान्त तथा निर्जन स्थान में चिन्तन करने में लीन रहने लगे। वह मक्का निवासियों तथा कुरैश कबीले के परम्परागत धार्मिक विचारों का ही अनुसरण करते थे; परन्तु जब उनकी आयु लगभग 40 वर्ष की हुई तो उनके जीवन में एक क्रांतिकारी परिवर्तन तथा उथल–पुथल हुई। वह प्रायः हिरा पर्वत की एक गुफा में बैठकर ध्यान मग्न रहा करते थे। एक बार जब वह इसी प्रकार ध्यान मग्न थे तो एक अद्‌भुत घटना घटी। अचानक उन्हें एक वाणी द्वारा आदेश सुनायी दिया– ''पढ़ो''। हज़रत मोहम्मद ने उत्तर में कहा कि 'मैं पढ़ना नहीं जानता।' फिर जब तीन बार उसी वाणी द्वारा उन्हें यही आदेश मिला तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'मैं क्या पढ़ूँ?' तो वाणी द्वारा उन्हें उत्तर मिला :

''पढ़ साथ नाम परवरदिगार अपने के,
जिसने पैदा किया
पैदा किया आदमी को जमे हुए लहु से,
पढ़ परवरदिगार तेरा बहुत करम करने वाला है
जिसने सिखाया साथ कलम के सिखाया
आदमी को जो कुछ नहीं जानता था।''

होश में आने पर हज़रत मोहम्मद को जो कुछ उस वाणी ने कहा था इतनी अच्छी तरह स्मरण रहा जैसे किसी ने वह उनके ह्रदय में लिख दिया हो। जब वह गुफा से बाहर आए तो उन्हें पुनः वह वाणी सुनाई दी – ''मोहम्मद साहब आप अल्लाह के पैगम्बर हैं, और मैं जिबरील''। इस दैवी प्रकटन से मोहम्मद साहब पर मानो एक बोझ आ पड़ा। यहाँ तक कि उन्हें अपने होश हवास पर भी सन्देह होने लगा। उन्होंने खदीजा से इस रहस्यमय घटना का जिक्र किया। उन्होंने उन्हें धैर्य और विश्वास दिलाया कि यह सब ईश्वर की ओर से है। इसके बाद ऐसे दैवी प्रकटन अथवा दर्शन बार–बार उनके जीवन में घटने लगे। खदीजा ने एक विद्वान लिपिक द्वारा इन वाणियों को लेखबद्ध करवा लिया। उन्हें विश्वास हो गया कि यह रहस्यवाणी परमेश्वर के सन्देश वाहक दूत जिबरील द्वारा प्रकटन अथवा दर्शन के रूप में उनको इसलिए दी गयी थी ताकि वह इस संदेश को अरब निवासियों तक पहुँचाए। परमेश्वर की ओर से जिबरील द्वारा उन्हें इन वाणियों को पढ़ने का आदेश हुआ था इसलिए हज़रत मोहम्मद ने इनको *'कुरआन'* कहा (कुरआन शब्द इकरा से निकला है, जिसका अर्थ है ''पढ़'')। कालान्तर में हज़रत मोहम्मद ने प्रचार द्वारा इस सन्देश को मक्का निवासियों के सन्मुख रखा जिन्होंने पहले तो उनके प्रचार पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, पर बाद में जब हज़रत मोहम्मद के अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी तथा उन्होंने मूर्ति–पूजा का घोर खण्डन करना आरम्भ किया, तब उनके विरोध के साथ उन पर अत्याचार भी होने लगा। मक्का निवासी उनके विरुद्ध षड़यन्त्र रचने लगे और उनके प्राणों की घात में लग गए। उन्होनें मक्का में उनका जीना दूभर कर दिया। अन्त में 622 ई0 में मोहम्मद साहब ने मक्का छोड़ने का निर्णय किया। इसी समय इनकी पत्नी खदीजा की मृत्यु हो गयी जिससे मोहम्मद साहब को भारी आघात पहुँचा।

मोहम्मद साहब एक ऊँट पर बैठकर आठ दिन की यात्रा के पश्चात् दो सौ मील दूर स्थित यात्रिब नाम के नगर पहुँचे जहाँ के निवासियों ने इनका स्वागत किया। इनके सम्मान में यात्रिब नगर का प्राचीन नाम परिवर्तित करके मदीना रखा गया।

हज़रत मोहम्मद को मदीना की यहूदी बिरादरी से स्वागत की भारी आशा थी। उनका विचार था कि यहूदी उन्हें अपने पवित्र शास्त्र के अनुसार आने वाले मसीहा के रूप में ग्रहण करेंगे परन्तु उन्हें निराशा मिली। यहूदी उनके मसीहा होने के दावे के कायल नहीं हुए बल्कि इसके विपरीत उन्होंने मोहम्मद साहब का विरोध किया। उनको इस प्रकार दूरदर्शिता का अनुभव हुआ कि अल्लाह की ओर से उन्हें यह धर्म यहूदियों के लिए ही नहीं बल्कि अरब देश के समस्त निवासियों को पहुँचाने के लिए दिया गया। फलस्वरूप मदीना में एक आराधना स्थल का निर्माण किया गया, जो अब इस्लाम की प्राचीन मस्जिदों में से एक है। इस स्थान पर ही *"जुम्मे की नमाज"* या आराधना की परम्परा की नींव पड़ी। इस नए धर्म का इब्राहिम तथा प्राचीन काल के नबियों से घनिष्ठ सम्बन्ध था परन्तु इनकी वंशावलियों में महत्वपूर्ण अन्तर था। नए धर्म के अनुयायियों का धार्मिक केन्द्र यरूशलेम नगर के बजाय मक्का था जो एक पवित्र स्थल बन गया। अब तक हज़रत मोहम्मद यरूशलेम नगर की ओर मुख करके प्रार्थना करते थे परन्तु उन्होंने इस परम्परा को बदलकर अब मक्का की ओर मुख करके प्रार्थना करने का आदेश दिया। यहाँ से इस्लाम का जहाँ–जहाँ भी प्रसार हुआ वहाँ दीन तथा देश प्रेम दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा।

ई0 सन् 619 में हज़रत खदीजा की मृत्यु से मोहम्मद साहब को भारी आघात पहुँचा था। मक्का की शानदार विजय तथा हज्ज के पश्चात् जब मोहम्मद साहब मदीना लौटे तो अस्वस्थ्य हो गए। बीमारी की हालत में मोहम्मद साहब ने वहाँ की मस्जिद में अपना अन्तिम उपदेश दिया। दिन–प्रतिदिन शरीर दुर्बल होता गया, और ई0 सन् 442 में 63 वर्ष की आयु में मोहम्मद साहब का देहान्त हो गया।

इस्लाम धर्म को मानने वाला मुसलमान यह विश्वास करता हैं कि हज़रत मोहम्मद साहब ने 40 वर्ष की आयु में घोर तप किया था। जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। अल्लाह के फ़रिश्ते उनके पास रमज़ान के महीने में कुरआन शरीफ की आयतें लाते थे। ये आयतें मुहम्मद साहब के मस्तिष्क में समा जातीं थी। सम्पूर्ण कुरआन रमज़ान के महीने में लिखा गया। इस धर्म के सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'उस्वए रसूले अकरम' (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से जानकारी प्राप्त होती है। मुहम्मद साहब ने इस धर्म को इस प्रकार परिभाषित किया है – "इस्लाम का अर्थ है खुदा की इबादत करो, किसी को उसका शरीक न ठहराओ, बजाबित नवाज पढ़ो, ज़कात अदा करो, रमज़ान में रोजे रखा करो, बैतुल्लाह का हज्ज करो, भली बात बताया करो, बुरी बात से रोका करो, घर वालों को सलाम किया करो"।[147]

इस्लाम धर्म के अनुसार ईश्वर से सुन्दर कोई नहीं है, वही सर्वशक्तिमान है और वही इब़ादत के काबिल भी। परमात्मा पर विश्वास करने की सलाह देता है तथा पाँच महत्वपूर्ण बातों की ओर संकेत करता है –

(A) मोहम्मद साहब ने फरमाया हराम बातों से दूर रहना, बड़े इबादत गुज़ार बन्दों में शुमार होना।

(B) अल्लाहतआला जो तुम्हारी तकदीर में लिख चुका है, उस पर राज़ी रहना, बड़े बेनियाज़ बन्दों में हो जाओगे।

(C) जो बात अपने लिए चाहते हो, वही दूसरों के लिए पसन्द करना, काबिल मुसलमान बन जाओगे।

(D) अपने पड़ोसी से अच्छे सुलूक करते रहना, मोमिन बन जाओगे।

(E) बहुत कहकहे न लगाना क्योंकि यह दिल को मुर्दः बना देता है।[148]

ईश्वर से प्रेम करना ही इस्लाम धर्म का मूल सिद्धान्त है। मनुष्य उन्हीं लोगों से प्रेम करे जो खुदा से प्रेम करते हैं। वह अच्छे लोगों की संगति करे, दूसरों के साथ भलाई करे, किसी को न सताए, व्यक्ति संयम से रहे और कोई भी काम ऐसा न करे जो शैतान का कार्य हो। वह किसी के माल को हड़पे नहीं, वह किसी के ऊपर जुल्म न करे। यदि उसके पास धन हो तो वह नेक काम में खर्च करे। यदि वह गरीब है तो भी नेक काम करता रहे। यदि किसी व्यक्ति को सम्पत्ति मिल जाए तो वह उसे गलत कार्यों में न खर्च करे। जो व्यक्ति दिमाग़ नहीं रखते और गुनाह करते, मज़हब को नहीं मानते हैं वे ठीक नहीं हैं।[149]

अच्छे कार्य करने वाले को खुदा ज़न्नत देता है। वह कहता है कि– ये मेरे बन्दे है। इन्हें जन्नत का दरवाजा खोल दो, इन्हें जन्नत की पोशाक पहना दो ताकि इन्हें जन्नत की हवा और खुशबू मिलती रहे।[150] मुसलमानों को यह हिदायत दी गयी है कि वे धर्म का प्रचार करें, वे परमेश्वर से डरे और उस पर विश्वास करें, न्याय के रास्ते पर चले, किसी को अपमानित न करें। हर व्यक्ति के साथ अच्छे रिश्ते कायम करें। दूसरों के लिए क्षमा–भावना रखें, हमेशा शान्त रहें, कभी झूठ न बोले, माता–पिता की आज्ञा मानें, मादक पदार्थो का सेवन न करें, नमाज़ पढ़े, गुनाहों से बचें, धर्म के लिए ज़ेहाद करें, फिजूल खर्च न करें, परिवार वालों को आदर करना सिखाए, परमात्मा से भयभीत रहें। गुनाहों के लिए प्रायश्चित करें और दुबारा गुनाह न करें, फरिश्तों के अस्तित्व पर विश्वास लाए, प्रलय पर विश्वास करें, भला–बुरा सब कुछ अल्लाह करता है इस पर विश्वास करें, शरीर को शुद्ध रखें, स्नान करें, मोहम्मद साहब को पैगम्बर माने और कुरआन शरीफ़ को खुदाई किताब मानें। इस्लाम धर्म के निम्नलिखित ग्रन्थ हैं – कुरआन शरीफ, सुन्ना, इज्मा, क्यास, सुन्नत–उल–कौल, सुन्नत–उल–फेल, सुन्नत–उल–तकरीर, अहदीस–ऐ–मुतबातर, अहदीस–ऐ–मशहूर, अखबारी–ऐ–बाहिद आदि।

इस्लामी धर्मावलम्बी निम्न भागों में विभाजित हैं –

<u>मुस्लिम धर्म का विभाजन</u> (जाति के आधार पर)
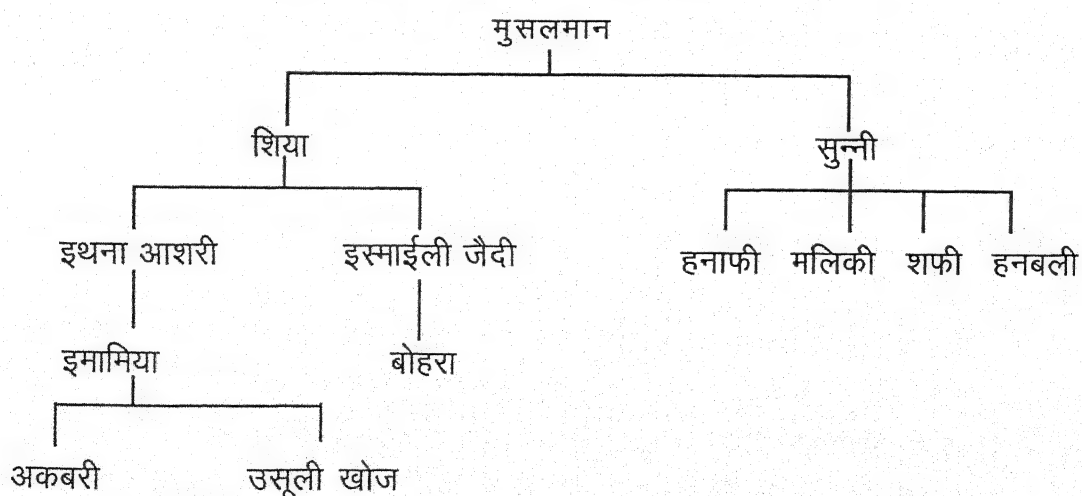
<u>इस्लाम के धार्मिक चिन्ह</u> – इस्लाम धर्म ने द्वितीया के चन्द्रमा को, जिसके ऊपर सितारा होता है, को धर्म चिन्ह के रूप में स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त हरा रंग, हरे रंग का ध्वज इनकी धार्मिक चिन्ह है।

<u>धार्मिक पहचान</u> – विश्व के सम्पूर्ण मुसलमान अपनी पृथक पहचान रखते हैं। ये लोग तुर्की टोपी,

कुर्त्ता–पैजामा, तहमत, शेरवानी और साफ़ा बाँधते हैं। मुसलमान औरतें सलवार–कुर्त्ता, गरारा, जम्फर आदि पहनतीं हैं और सिर के ऊपर बुर्का, चादर ओढ़ती हैं। पुरूष वर्ग दाढ़ी रखते हैं। ये लोग ऊर्दू, अरबी ज़बान बोलते हैं।

धार्मिक स्थल – इस धर्म के व्यक्ति मस्जिद, ईदगाह और दरगाहों को पवित्र धार्मिक स्थल मानते हैं तथा रमज़ान के महीने में रोज़ा रखना और कुरआन शरीफ का पाठ करना इनका पवित्र धार्मिक कृत्य है तथा इनके पवित्र तीर्थ–स्थल मक्का और मदीना हैं। ये लोग पवित्र धार्मिक स्थलों में नमाज़ पढ़ते हैं, दरगाहों में चादर चढ़ाते हैं और बकरीद आदि अवसरों में पशुओं की कुर्बानी देते हैं।

इस्लाम धर्म के त्यौहार – ईद, बकरीद, सबेरात, मुहर्रम और बाराबफात आदि हैं। समय–समय पर ये लोग मीलाद का आयोजन करते हैं और धार्मिक स्थलों पर उर्स का आयोजन करते हैं।

इस्लाम धर्म के छः मूल विश्वास[151] – इस्लाम के मूल विश्वास को *'ईमान'* कहा गया है जो शब्द अमन से निकला है। अमन तात्पर्य शान्ति तथा सुरक्षा से है। इस्लाम में ईमान के निम्नलिखित सैद्धान्तिक अंगों पर विश्वास लाना अनिवार्य है :

1– अल्लाह अर्थात् परमेश्वर, उसके नाम, गुण तथा आज्ञाओं पर विश्वास लाना तथा उन्हें ग्रहण करना, 2– स्वर्गदूतों अर्थात् फरिश्तों पर विश्वास, 3– अल्लाह की किताबों पर विश्वास, 4– रसूल तथा नबियों पर विश्वास, 5– क़ियामत (अन्तिम न्याय और पुनरूत्थान के दिन) पर विश्वास, 6– तक़दीर या पूर्व निश्चित भाग पर विश्वास।

विश्वासी को अलमोमिन की संज्ञा दी गयी है अर्थात् वह जो शान्ति और सुरक्षा के अन्तर्गत आ चुका है। विश्वास या ईमान से इनकार करने वालों को काफ़िर कहा गया है।

इस्लाम धर्म तथा मसीही धर्म के सिद्धान्तों में काफी कुछ असमानता होते हुए भी समानताएँ हैं। इस्लाम धर्म का उदय इस्त्राएल के यहूदी धर्म से हुआ, मसीही धर्म का उदय भी इसी धर्म से हुआ, इसलिए धर्म–दर्शन की दृष्टि से दोनों धर्म की पृष्ठभूमि एक जैसी है। कुरआन शरीफ में वही सब वर्णित है जो बाइबिल के पुराने नियम के अन्तर्गत वर्णित है।

कुरआन शब्द का अर्थ *''पढ़ना''* अथवा ऊँचे स्वर में सुनना हैं। कुरआन में एक सौ चौदह अध्याय है जिन्हें अरबी में सूरः कहते हैं। प्रथम अध्याय *'सूरः अल–फातिहः'* कहलाता है। प्रत्येक सूरः का अपना एक विशेष नाम है जो प्रायः उस सूरः में वर्णित किसी घटना, व्यक्ति, पशु या स्थान से सम्बद्ध है। जैसे– सूरः मरियम, सूरः अंकबूत (मकड़ी) आदि। मुस्लिम विश्वास के अनुसार प्रथम नबी हज़रत आदम तथा अन्तिम नबी हज़रत मुहम्मद हैं। नबी तथा रसूल के साथ–साथ पैगम्बर शब्द का भी प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ भी परमेश्वर की ओर से सन्देशवाहक है। कुरआन में कई नबियों का उल्लेख मिलता है जिनमें से प्रमुख के नाम *हज़रत नूह, इसहाक, यूनस, याह्या, इब्राहिम, याकूब, अय्यूब, मूसा, सुलेमान,* ज़करिया, *ईसा* तथा *मुहम्मद* हैं। इन नबियों को निम्नलिखित को विशेष उपाधियों से विभूषित किया गया हैं – हज़रत *आदम* को सफ़ी अल्लाह (परमेश्वर द्वारा मनोनीत), हज़रत *मूसा* को कलीमुल्लाह (परमेश्वर से वार्तालाप करने वाला), हज़रत नूह को नजी अल्लाह (परमेश्वर के द्वारा बचाया गया), हज़रत *इब्राहिम* को खलीलुल्लाह (परमेश्वर का मित्र), हज़रत *ईसा* को रूह अल्लाह (परमेश्वर का आत्मा), तथा हज़रत *मुहम्मद* को रसूललुल्लाह (परमेश्वर का संदेशवाहक) आदि।

कुरआन शरीफ में प्रभु येशु के बारे में वर्णित है – ''यह मरयम के बेटे ईसा हैं (और यह) सच्ची बात है जिसमें लोग शक करते है। खुदा की शान नहीं कि किसी को बेटा बनाए, वह पाक है, जब किसी चीज़ का इरादा करता है तो उसको यही कहता है कि हो जा, तो वह हो जाती हैं।''[152]

इस्लाम धर्म से जुड़े हुए लोग ईश्वर की सर्वव्यापकता पर विश्वास करते हैं तथा परमेश्वर को सृष्टि–स्रजेता कर्मफल का दाता मानते है। वह स्वर्ग का अधिकारी है, अपने बन्दों पर रहम करने वाला है तथा प्रलय के दिन वह हमारे कर्मानुसार समुचित फल देने वाला है। सद्कर्मों का फल स्वर्ग तथा दुष्कर्मों का दण्ड नरक होगा। अतः इस्लाम धर्म के लोग भी स्वर्ग–नरक पर विश्वास करते हैं। स्वर्ग को अरबी भाषा में *'जन्नत'* तथा फ़ारसी भाषा में *'बहिश्त'* और *'फ़िरदौस'* कहा गया है। नरक को अरबी में *'जहन्नम'* तथा फ़ारसी में *'दोज़ख'* कहा गया है। जन्नत का वर्णन कुरआन शरीफ में इस प्रकार दिया है – "जो खुदा के खास बन्दे हैं, यही लोग हैं जिनके लिए रोज़ी मुक़र्रर है। (यानी) मेवे और उनका एज़ाज़ किया जाएगा। नेमत के बाग़ों में, एक–दूसरे के सामने तख़्तों पर बैठे होंगे।"[153] दोज़ख़ का वर्णन इस प्रकार है :

"खुदा के पास बेशक फ़ैसले का दिन मुक़र्रर है। जिस दिन सूर फूँका जाएगा, तो तुम लोग गुट के गुट आ मौजूद होगे, और आसमान खोला जाएगा, तो (उसमें) दरवाज़े हो जाएंगे, और पहाड़ चलाए जाएंगे, तो वे रेत होकर रह जाएंगे। बेशक दोज़ख़ घात में है। (यानी) सर–कशों का वही ठिकाना है। उस में मुद्दतों पड़े रहेंगे। वहाँ न ठंडक का मज़ा चखेंगे, न (कुछ) पीना (नसीब होगा), मगर गर्म पानी और बहती पीप, (यह) बदला है पूरा–पूरा। ये लोग हिसाब (आख़िरत) की उम्मीद नहीं रखते थे। और हमारी आयतों को झूठ समझकर झुठलाते रहते थे और हमनें हर चीज़ को लिखकर ज़ब्त कर रखा है। सो (अब) मज़ा चखो। हम तुम पर अज़ाव ही बढ़ाते जाएंगे।[154]

मसीही धर्म में स्वर्ग–नरक को अंग्रेजी में *Heaven & Hell* कहते हैं।

इस्लाम धर्म के अनुयायी मोहम्मद साहब के जीवन को आदर्श जीवन मानतें हैं और वे उनके जीवन का अनुकरण करतें हैं। मोहम्मदसाहब परमात्मा से डरते थे हमेशा दूसरों के साथ नेकी करते थे। सदैव ईमानदारी से चलते थे, धर्माचरण करते थे, शारीरिक सफाई का ध्यान रखते थे, लोगों को दुआएँ देते थे। व्यक्तियों का सम्मान करते थे, धर्म स्थलों का आदर करते थे तथा सभी व्यक्तियों से मानवतापूर्ण व्यवहार करते थे।

इसी प्रकार प्रभु येशु मसीह का जीवन भी त्यागमयी जीवन था। उन्होंने जनकल्याण के लिए अनेक आश्चर्यकारी कर्म किए। जैसे– अन्धों को दृष्टिदान, गूंगे, भूतग्रस्त को स्वस्थ्य करना, मिरगी से पीड़ित बच्चे को स्वस्थ्य करना,[155] कुबड़ी स्त्री को स्वस्थ्य करना, जलन्दर के रोगी को स्वस्थ्य करना, कोढ़ियों को स्वस्थ्य करना,[156] सूखे हाथ वाले को स्वस्थ्य करना,[157] शतपति के दास को स्वस्थ्य करना इत्यादि।

इस्लाम धर्म के लोग दो प्रकार के दैवी शक्तियों पर विश्वास करते हैं। पहले प्रकार की दैवी शक्ति वह शक्ति है जो मानवों का कल्याण न करके अकल्याण करतीं हैं। इस शक्ति को शैतानों के नाम से जाना गया है। दूसरी प्रकार की, जो दैवी शक्ति अच्छे कार्यो में सहयोग प्रदान करतें हैं, उस दैवी शक्ति को फ़रिश्ते के नाम से पुकारा गया है। खुदा ने फ़रिश्ते और जिन्नों का निर्माण इस प्रकार किया है – "खुदा ने इन्सानों को खनखनाते सड़े हुए गारे से पैदा किया है और जिन्नों को इन से भी पहले बे– धुएँ की आग से पैदा किया था, और तुम्हारा परवरदिगार ने फ़रिश्तों से फ़रमाया कि मैं खनखनाते हुए सड़े गारे से एक बशर बनाने वाला हूँ। जब उसको (इन्सानी शक्ल में) ठीक कर लूँ और उसमें अपनी (क़ीमती चीज यानी) रूह फूँक दूँ, तो उसके आगे सजदे में गिर पड़ना तो फ़रिश्ते तो सब के सब सज्दे में गिर पड़े। मगर शैतान की उसने सज्दा करने वालों के साथ होने से इंकार कर दिया।"[158]

मसीही धर्म में भी देवता और दैत्य जिन्हें *God, Devil, Satan, Ghost* आदि नामों से

पुकारा जाता है। लोग इन शक्तियों पर विश्वास करते हैं।

इस्लाम धर्म में व्यक्ति का अन्तिम संस्कार विशेष प्रकार से किया जाता है। इस धर्मानुसार मृत्यु एक स्वाभाविक प्रक्रिया है इसमें बहुत अधिक दुःख नहीं करना चाहिए किन्तु मरे हुए व्यक्ति के लिए आँसू बहाना जायज़ है तथा मरे हुए व्यक्ति का चुम्बन लेना जायज़ है।[159] उसे जल्द ही दफ़न कर देना चाहिए तथा मृतक के परिवार वालों को शान्ति देनी चाहिए। सबसे पहले मृतक को स्नान कराना चाहिए, फिर उसे वस्त्र पहनाना चाहिए तत्पश्चात् उसे कफ़न ओढ़ाना चाहिए। फिर जनाज़ः के साथ दफ़न की जगह तक जाना चाहिए और कब्र इतनी गहरी, लम्बी खोदनी चाहिए जिसमें मृतक को ठीक से रखा जाए। दफ़नाते समय उसके कफ़न को खोल दें और मृतक को कब्र में रख दें। फिर कब्र में मिट्टी डाले। इस प्रकार मृतक को दफ़्न करें तथा कब्र पर कभी नहीं चलें, ना ही उस पर बैठे।

मसीही धर्म के लोग भी मृतक व्यक्ति का ठीक इसी प्रकार अन्तिम संस्कार करते हैं, तथा कब्र खोदकर सुनिश्चित कब्रिस्तान में दफ़न करते हैं और मृतक के लिए उसी प्रकार दुआ करते हैं जैसे मुसलमान अलविदा की नमाज़ पढ़ते है।[160]

इस्लाम धर्म में काफ़िरों के विरूद्ध ज़ेहाद करने की सलाह दी गयी है। उनका मानना है कि जो व्यक्ति इस्लाम धर्म नहीं मानते और मूर्ति–पूजा करते हैं, वे काफ़िर हैं। उनके विरुद्ध धर्म युद्ध या लड़ाई की जा सकती है तथा काफ़िरों को दबाने के लिए धर्म युद्ध या जेहाद किया जाना वाज़िब है। कुरआन शरीफ में काफ़िरों को इस प्रकार परिभाषित किया गया हैं :

"(ऐ पैग़म्बर! इस्लाम के इन मुन्किरों से) कह दो कि ऐ काफ़िरों! जिन (बुतों) को तुम पूजते हो, उन को मैं नहीं पूजता, और जिस (खुदा) की मैं इबादत करता हूँ, उसकी तुम इबादत नहीं करते, और (मैं फिर कहता हूँ कि) जिनकी तुम पूजा करते हो, उनकी मैं पूजा करने वाला नहीं हूँ।"[161]

किन्तु मसीही धर्म में किसी प्रकार के धर्म युद्ध करने की कोई चर्चा नहीं है और न किसी को बलात् मसीही बनाने का प्रावधान है। लोग स्वेच्छा से मसीही धर्म ग्रहण करते हैं। जबकि इस्लाम धर्म भारतवर्ष में तलवार के बलबूते पर विकसित हुआ। कुतुबुद्दीन ऐबक ने कांलिजर में आक्रमण करके वहाँ के धर्म स्थलों को ध्वस्त किया। "कांलिजर दुर्ग जो विश्व भर में सिकन्दर की दीवार की भाँति मजबूती के लिए प्रसिद्ध था, ले लिया गया। मन्दिर मस्जिद बना दिए गए। सौजन्य के स्थान, अक्षमाला के जप करने वालों के स्वर और प्रार्थना करने के लिए आमन्त्रित करने वालों की वाणी सबका अन्त हो गया। मूर्ति–पूजा का नाम ही मिटा दिया गया। 50 हजार व्यक्ति गुलाम बनाए गए। वह भाग हिन्दू विहीन हो गया"।[162]

<u>मसीही धर्म का इस्लाम धर्म पर प्रभाव</u>

इस्लाम धर्म मूलतः मसीही धर्म से निकला हैं। यद्यपि मसीही धर्म में भी पूजा–पाठ, देवी–देवताओं का निषेध किया गया है ; क्योंकि मसीही धर्म एकेश्वरवादी है फिर भी मसीही धर्म में अहिंसा, प्रेम एवं बल प्रयोग न करने की प्रवृत्ति होने के कारण जेहाद जैसी कल्पना नहीं की गयी थी, जिसके कारण मध्यपूर्व देशों में जो वास्तव में मसीही देश थे उनमें बुत परस्ती बढ़ गयी थी और मसीही लोग भी पूजा–पाठ करने लगे थे। जिसके कारण पैगम्बर हज़रत मुहम्मद का पादुर्भाव हुआ और उन्होंने एक प्रकार से बाइबिल की पुनर्व्याख्या की और उसको *'कुरआन शरीफ'* कहा। यही कारण है कि बाइबिल की बहुत सी बातें *कुरआन शरीफ* में पायी जाती है।

मुसलमान मसीहियों से प्रभावित होकर एकेश्वरवाद पर दृढ़ता से विश्वास करने लगे और उन्हें इस बात का ज्ञान हो गया कि इस्त्राएल से मसीही धर्म का उदय हुआ है और यहीं इस्लाम

धर्म का उदय हुआ है क्योंकि कुरआन शरीफ में अनेक स्थलों में उन्हीं सब बातों का विवरण है जिनका विवरण बाइबिल में उपलब्ध होता है। कुरआन शरीफ में मरियम का पुत्र येशु मसीह का वर्णन है। इसलिए मुसलमान लोग यह अच्छी तरह जानते है कि मसीही धर्म और इस्लाम धर्म में कोई खास फर्क नहीं हैं किन्तु कट्टर पंथी मुसलमान मसीही धर्म के सिद्धान्तों का घोर विरोध करते हैं जो वास्तव में पश्चिमी देशों की आराधना पद्धति का विरोध है अर्थात् मुसलमानों का विरोध मसीही धर्म से नहीं बल्कि पश्चिमी देशों की सभ्यता संस्कृति से है।

जो मुसलमान मसीहियों के प्रभाव में आएँ है, उन्होंने धार्मिक कट्टरता का परित्याग किया है। उन्हें ऐसा लगता हैं कि मुसलमान और मसीहियों की सामाजिक आचार–व्यवहार में कोई अन्तर नहीं है और न मजहबी सिद्धान्तों में कोई अन्तर है। इस समानता के कारण इन दोनों समाजों में रोजी–बेटी का सम्बन्ध सहज ही हो जाता है।

मसीही धर्मावलम्बियों की कोई एक भाषा नहीं है वे जिस प्रदेश में रहते हैं उस प्रदेश की भाषा ही आराधना एवं आचार–व्यवहार की भाषा होती है। जैसे बुन्देलखण्ड में रहने वाले मसीहियों की भाषा हिन्दी है। सम्राट बहादुर शाह जफर के जमाने से मुसलमान, मसीहियों के सम्पर्क में है कुछ मुसलमानों ने मसीहियों के यहाँ नौकरी करना प्रारम्भ कर दिया। इन्होंने उनके सम्पर्क में रहकर अंग्रेजी भाषा सीखी और उनकी तरह कपड़े पहनना प्रारम्भ कर दिया। मसीहियों के प्रभाव में आकर अब अनेक मुसलमान दाढ़ी नहीं रखते और न ही बाल बड़े रखते। उन्होंने मजहबी और सांस्कृतिक दृष्टि से अपने को पूरी तरह परिवर्तित कर लिया तथा बोल–चाल में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करना सीख लिया तथा उनकी जीवन शैली मसीहियों जैसी हो गयी है। अब वे केवल मुसलमानी नाम रखते हैं। यद्यपि इनकी धार्मिक भाषा एवं घर की मातृभाषा प्रायः ऊर्दू ही होती है। इसी प्रकार अनेक मुसलमान लड़कियाँ भी मसीहियों के प्रभाव में आकर कट्टरपंथी नियमों का पालन, पर्दा नहीं करतीं।

मुसलमान अपने बालकों की शिक्षा–व्यवस्था कुरआन में निर्देशित कायदे–कानून के अनुसार करते थे। ये लोग मदरसे में मौलवियों और उलेमाओं के माध्यम से बालकों को कुरआन शरीफ की शिक्षा देते थे, अरबी, फारसी सिखाते थे और धर्म से जुड़े कायदे–कानून सिखलाते थे किन्तु मसीहियों के प्रभाव में आने के कारण अपनी शिक्षा–व्यवस्था का परित्याग कर इन्होंने मसीही शिक्षा प्रणाली को अपनाया तथा विभिन्न विषयों की शिक्षा महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के माध्यम से ग्रहण की। अनेक मुसलमान विज्ञान, अन्वेषणों से जुड़े ; भारत के वर्तमान राष्ट्रपति ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम भी एक महान वैज्ञानिक हैं।

भारत की जनसंख्या में मुसलमानों का भी पर्याप्त शुमार है तथा भारतीय मुस्लिम नेताओं में सर सैय्यद अहमद खाँ प्रख्यात सुधारक हुए हैं तथा राजनैतिक क्षेत्र में मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद का नाम उल्लेखनीय है। विभाजन से पूर्व के भारत में भी डॉ0 मुहम्मद इकबाल के विचारों ने मुस्लिम जगत को एक नयी चेतना प्रदान की। वर्तमान इस्लाम अब सैक्युलर धाराओं के सन्मुख प्रतिक्रिया तथा समायोजन द्वारा स्वयं को अनुकूल बनाने के कार्य में लगा है। उदाहरण के लिए नए दार्शनिकविदों, विज्ञान तथा मशीनी युग की चुनौतियों के प्रति इस्लामी जगत में नयी धारणाएँ उभर रही हैं।[163]

मसीही धर्म के अनुयायी भारतवर्ष और बुन्देलखण्ड में मुसलमानों के बाद आएं। इनका आगमन उस समय हुआ जब दिल्ली में मुगल सत्ता थी। मुख्य रूप से इनका आगमन सम्राट जहाँगीर के शासन काल में हो गया था। 18वीं शताब्दी के मध्य में अंग्रेजों का आगमन हो गया

था। सन् 1757 की प्लासी युद्ध के बाद अंग्रेजों की नींव पक्की हो गयी। सन् 1764 के लगभग अंग्रेज कर्नल मिल ने जर्मनी के साथ मिलकर बंगाल, बिहार और उड़ीसा में विजय प्राप्त करने की योजना बनायी थी। इस समय बंगाल का नवाब सिराजुद्दौला था। इस प्रकार सर्वप्रथम अंग्रेज मुसलमानों के सम्पर्क में बंगाल में आए।

मुसलमान अपने धार्मिक कृत्य अरबी और फारसी में किया करते थे तथा बोलने के लिए लश्करी जबान अथवा ऊर्दू का प्रयोग किया करते थे ईश्वर की प्रार्थना या खुदा का नाम इस प्रकार लिया करते थे :

अ़र्रहमानिर्रहीमि मालिकि योमिद्दीनि
अिय्याक नाबुदु व अयि़याक नस्तअीनु अिह् दिनस – सिरातल्मुस्तक़ीम
सि़रातल्लीजीन अन्अम्त अलैहिम् धैरिल – मग़दूबि अ़लैहिम् वलाड्डाल्लीन आमीन!

अर्थात् (अल्लाह के नाम से जो निहायत रहमवाला बेहद मेहरबान है। हर तरह की तारीफ अल्लाह (ही) के लिए है, जो सारे संसार का पालनहार (रय) है। नियाहत ही दयावान बेहद मेहरबान है। जजा (अन्तिम न्याय) के दिन का मालिक है। (या अल्लाह!) हम तेरी ही इबादत (भक्ति) करते हैं और तुझ ही से मदद चाहते हैं। हमको सीधी राह चला, उन लोगों की राह जिनकों तूने निअ़मत (पुरस्कृत) किया न कि उनकी (राह) जो तेरे ग़ज़ब (प्रकोप) में पड़े और न भटके हुओं (पथ भ्रष्टों) की)।[164] ब्रिटिश शासन इस देश में स्थापित होने के बाद मसीही शासकों को यह ज्ञात हुआ कि इस देश की बोलचाल की भाषा हिन्दुस्तानी है जो हिन्दी और ऊर्दू का सम्मिश्रण है अतः उन्होंने इसी हिन्दुस्तानी को *'न्याय की भाषा'* अर्थात् *'कचहरी'* और *'अदालत'* की भाषा बनाया। जो आज भी बुन्देलखण्ड के उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में अदालत की यही भाषा है।

मुसलमानों का शासन भारतवर्ष में 11वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी के मध्य तक रहा। उसके बाद यहाँ अंग्रेज मसीही धर्मावलम्बियों का शासन स्थापित हुआ। शेरशाह सूरी के शासनकाल में शासन व्यवस्था को एक नया स्वरूप प्रदान किया। भूमि की पैमाइश, राजस्व वसूली के नियम तथा प्रशासनिक व्यवस्था को नया स्वरूप प्रदान किया गया था जो सम्राट अकबर से लेकर बहादुर शाह जफर तक बराबर चलता रहा। जब अंग्रेजों का राज्य स्थापित हुआ उस समय उन्होंने उसी शासन व्यवस्था को बनाए रखा। जमीन की पैमाइश और लगान निर्धारण के नियम मुग़लों जैसे ही थे तथा प्रशासनिक व्यवस्था के लिए अपनायी जाने वाली भाषा अंग्रेजी के साथ–साथ ऊर्दू और फारसी बनी रही। उस समय के अनेक दस्तावेज़ ऊर्दू, फारसी और अरबी में उपलब्ध होते हैं। हिन्दी का प्रचलन बहुत कम था।

यह सुनिश्चित है कि मुसलमानों ने मसीहियों को प्रभावित किया और मसीहियों ने मुसलमानों को प्रभावित किया तथा दोनों ने एक–दूसरे की सभ्यता–संस्कृति से बहुत कुछ सीखा तथा दोनों यह मानते हैं कि दोनों की संस्कृतियाँ एक–दूसरे का पूरक हैं। धार्मिकता के आधार पर दोनों एक हैं। यथा–

तआवनू अलल्बिर्रि वत्तक़वा व ला तआवनू अलल् इस्मे वल्उद्वान्। वला तहेनू
फ़िब्तेग़ाअल्क़ौमे वला तकुल्लिल्ख़ाएनीना ख़सीमा। वला तोजादिल अनिल्लज़ीना
यख़तानूना अन्फ़ोसाहुम इन्नल्लाहा ला योहिब्बो मन काना ख़व्वानन असीमा।[165]

अर्थात् अपनी जाति की सहानुभूति और सहायता केवल भले कर्मों में ही करनी चाहिए। अत्याचारों और अनुचित कर्मों में उनकी सहायता कदापि नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार जाति की सहानुभूति में सदैव सतर्क रहो। उसमें थको मत। धरोहरों को खा जाने वालों के पक्ष में मत झगड़ो अर्थात् उनका पक्षपात न करो। जो बेईमानी करने से दूर नहीं होते और प्रायश्चित् नहीं करते, परमेश्वर ऐसे बेईमानों को पसन्द नहीं करता, और उनसे परमात्मा की मित्रता नहीं हो सकती।

सिक्ख धर्म

श्री गुरूनानक देव जी महाराज हमारे देश के महान् दार्शनिक और विचारक के रूप में पूजित हैं। सन्त परम्परा में नानक देव जी का स्थान अग्रणी है। वह मंत्रदृष्टा और सिक्ख धर्म के प्रवर्तक हैं। श्री नानक देव जी की वाणियों एवं विचारधारा से अनुप्रमाणित होकर हमारे देश के एक विशिष्ट समुदाय ने सिक्ख धर्म ग्रहण किया और धीरे–धीरे सारे देश में इसका प्रचार और विस्तार हो गया।

मध्यकालीन धर्म–संस्थापकों में श्री गुरू नानक देव का महत्व इसलिए और भी बढ़ गया कि उन्होंने भक्ति, कर्म, ज्ञान के साथ ही तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का भी सम्यक् अनुशीलन एवं विश्लेषण किया। सजग, सचेष्ट देशभक्ति की श्रोतस्विनी भी उनकी वाणियों से फूट निकली।

श्री गुरुनानक देव की वाणी में जहाँ एक ओर गुरु गाम्भीर्य और ज्ञान–वैराग्य–भक्ति का अमृत–मंथन है, वहीं उनकी भाषा में अद्भुत ओज और शक्ति है। उनकी रचना शैली में काव्य का लालित्य, माधुर्य, विचार–सम्पन्नता सबकुछ है। उनकी वाणी की सरलता सुबोधता का क्या कहना! उसमें साहित्य, संगीत एवं कला के विभिन्न गुणों का अद्भुत, सहज समन्वय है। फलतः उनकी वाणी ह्वदय और मस्तिष्क को स्पर्श ही नहीं करती, प्रत्युत उन्हें अनुप्रमाणित भी करती है।

श्री नानक देव की समस्त वाणी सिक्खों के पूज्य धर्म ग्रन्थ *'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब'* में संकलित हैं। यह संकलन श्री गुरु अर्जुन देव ने सन् 1604 ई0 में किया था। सिक्खों का पूज्य धर्म ग्रन्थ होने के कारण *'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब'* के पाठ की पंक्ति–पंक्ति और शब्द–शब्द की बड़ी सावधानी से रक्षा की गयी है। अतः सन् 1604 ई0 से आज तक श्री गुरु नानक देव वाणी के पाठ में कोई भी परिवर्तन, परिवर्द्धन नहीं होने पाया है।[166]

'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' में गुरु नानक देव जी की जो *'वाणियाँ'* संग्रहीत हैं, उनमें 1604 ई0 के पश्चात् निश्चित रूप से कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वे ज्यों की त्यों, उसी रूप में हैं। यह निश्चित है कि गुरू नानक जी पढ़े–लिखे और मननशील थे। उनमें परमात्मा–प्रदत्त असाधारण कवित्व–शक्ति विद्यमान थी। वे अपनी वाणियों के संग्रह के प्रति जागरूक थे। जब उन्होंने लोक–कल्याण के निमित्त सांसारिक सुखों का परित्याग किया और लोगों का दुःख दूर करने के लिए दूर–दूर देशों की यात्राएँ की, तो उनके मन में अपनी वाणियों के संग्रह की भावना निश्चित रूप से जगी होगी। यह सम्भव नहीं प्रतीत होता कि अनजान प्रदेश वाले लोग उनकी वाणियाँ लिखते। गुरूनानक के सहवासी सिक्ख मरदाना आदि इतने पढ़े–लिखे नहीं थे कि उनकी वाणी लिख सकते। यह भी असंगत प्रतीत होता है कि गुरूनानक सदैव संगीतमय वाणी में ही उपदेश देते रहे। उनकी कुछ वाणी उदाहरणार्थ, *'जपु जी'*, *'सिध गोसटि'* तथा *'ओअंकारू'* आदि असमान रूप से लम्बी हैं। क्या वे प्रारम्भ से लेकर अन्त तक गायी गयीं थीं? यदि गायी गयीं थीं, तो कितना समय लगा होगा? इन परिस्थितियों में यह बिल्कुल स्पष्ट हैं कि गुरू नानक देव ने अपनी वाणियाँ स्वयं लिखीं थीं और वे उन्होंने इसलिए लिखीं थीं कि भावी पीढ़ी उनसे लाभ उठाए।[167]

गुरूनानक का जीवन परिचय – सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरू नानक का जन्म खत्री परिवार में तलबन्डी नामक गाँव में (आधुनिक ननकाना) सन् 1469 ईस्वी में बैषाख शुक्ल तृतीया को हुआ था इनके दो पुत्र थे। इस समय पंजाब में तुर्कों का शासन था इसलिए उन्होंने फ़ारसी और संस्कृत दोनों भाषाओं की शिक्षा प्राप्त की। इस समय नानक नाम हिन्दू और मुसलमान दोनों में ही होता था। गुरु नानक ने कुछ दिन नवाब दौलत खाँ लोधी के यहाँ नौकरी की। 30 वर्ष की आयु में उन्होंने

फ़क़ीरी या सन्यास ग्रहण कर लिया तथा अपने मुसलमान शिष्य मरदाना के साथ उन्होंने भारत, लंका, ईरान और अरब देशों की यात्रा की। इन्होंने पानीपत के शेख शरफ़, मुलतान के पीरों, बाबा फ़रीद के उत्तराधिकारी शेख ब्रह्म (इब्राहिम) आदि सफ़ियों के साथ इन्होंने बहुत दिन तक धर्म चर्चा की। गुरू नानक की मृत्यु सन् 1538 में जालन्धर दोआब में स्थित करतारपुर में हुयी थी। इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके अस्तित्व को लेकर हिन्दू और मुसलमानों में झगड़ा हुआ। अन्त में हिन्दुओं ने उनकी स्मृति में एक 'समाधि' बनायी और मुसलमानों ने एक 'मज़ार' बनायी, किन्तु दोनों ही स्मृति चिन्ह रावी नदी की बाढ़ में बह गए। श्री गुरू, नानक जी ने कहा :–

"न मैं हिन्दू न मुसलमान अल्लाह राम के पिन्ड पराण।" गुरू नानक स्वयं को न तो हिन्दू मानते थे, न मुसलमान और जिसे वे सिक्ख कहते थे वह उनकी दृष्टि के अनुसार, सुधरा हुआ हिन्दू और सुधरा हुआ मुसलमान दोनों हो सकता था। आरम्भ में उनके पंथ में बहुत से मुसलमान दीक्षित हुए थे और कहते हैं जब नानक की मृत्यु हुयी तब उनकी लाश को जलाने और दफनाने के लिए हिन्दू और मुसलमान उसी प्रकार झगड़ पड़े, जिस प्रकार वे कबीर की लाश पर झगड़े थे। फिर भी कालान्तर में सिक्खों का मुसलमानों से वैर हो गया। इसे हम शासकों की धर्मान्धता का ही परिणाम कहेंगे।[168]

गुरू–शिष्य परम्परा का सूत्रपात – गुरूमुखी शब्द *'सिक्ख'* की उत्पत्ति संस्कृत शब्द शिष्य से हुई है। सिक्ख दस गुरूओं तथा पवित्र ग्रन्थ साहिब के विश्वासी, अनुयायी तथा शिष्य को माना गया है। गुरू नानक ने गुरू को सर्वोपरि माना है। उन्होंने सुप्रसिद्ध गुरू ग्रन्थ साहब में अनेक शिक्षाएँ संचालित की और वे स्वतः सिक्खों के गुरू बने और उन्होंने सिक्खों को उपदेश दिए। इनके पश्चात् पंजाब के अनेक स्थानों में गुरूद्धारा की स्थापना हुयी और वहाँ गुरू ग्रन्थ साहब की प्रतियाँ रखी गयीं। उसके पश्चात् इस मत में गुरू शिष्य परम्परा का शुभारम्भ हुआ। कालान्तर में सिक्ख पंथ के 10 गुरू हुए – गुरूनानक, अंगददेव, अमरदास जी, रामदास जी, अर्जुन देव, हरिगोविन्द, हरराय जी, हरकृष्ण, तेग बहादुर, गुरू गोविन्द सिंह आदि।

प्रत्येक गुरू, अन्त समय में, अपने उत्तराधिकारी को अपना पद सौंप कर उसे पन्थ का गुरू घोषित कर दिया करते थे। गुरू गोविन्द सिंह जब स्वर्गवासी होने लगे, तब उन्होंने ग्रन्थ को ही पंथ का गुरू घोषित किया और यह आज्ञा दे दी कि अब से कोई व्यक्ति गुरू नहीं होगा।[169]

गुरू नानक देव के वचनों को, पहले–पहल गुरू अंगद ने 'गुरूमुखी' लिपि में लिखा। तभी से यह लिपि प्रारम्भ हुयी है। सिक्खों के मुख्य धर्म–ग्रन्थ, 'ग्रन्थ साहिब' का संकलन और सम्पादन सन् 1604 ई0 में पाँचवे गुरू अर्जुन देव ने किया। इस ग्रन्थ में आदि के पाँच गुरू और नवें गुरू तेग बहादुर के वचन और पद संग्रहीत हैं। एक दोहा गुरू गोविन्द सिंह जी का भी है एवं इस ग्रन्थ में अन्य हिन्दू–सन्तों और सुधारकों के भी पद हैं। गुरू गोविन्द सिंह साहित्य के बहुत बड़े विद्वान कवियों के प्रबल संरक्षक और स्वयं भी हिन्दी के अच्छे कवि थे। उनकी सभी रचनाओं को सिक्ख *'दशम ग्रन्थ'* के नाम से अभिहित करते हैं। उन्होंने विचित्र–नाटक, जफरनामा, सौ साखी, जाप और चंडी चरित्र आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की थी।

गुरू गोविन्द सिंह ने ही चार ककारों का प्रचलन किया जिन्हें धारण करना प्रत्येक सिक्ख के लिए आवश्यक माना जाता है। ये चार ककार हैं– 1– कंघी (बाल साफ करने के लिए। कुछ गुरू बाल रखते थे, इसलिए शिष्यों ने भी उसे धारण किया)।, 2– कच्छा फुर्ती के लिए; 3– कड़ा (यम, नियम और संयम के लिए), 4– कृपाण (आत्म रक्षा के लिए)।

सिक्ख धर्म की धार्मिक पहचान – इस मत के अनुयायी सिर में केश धारण करते हैं, दाढ़ी

रखते हैं, पगड़ी बाँधते हैं। इसके अतिरिक्त हाथ में लोहे का कड़ा धारण करते हैं। वस्तुतः सिक्ख धर्म और हिन्दुत्व, ये दो नहीं, एक ही धर्म हैं। हिन्दुत्व का स्वभाव है कि उस पर जब जैसी विपत्ति आती है तब वह वैसा ही रूप अपने भीतर से प्रकट करता है। इस्लामी हमलों से बचने के लिए अथवा उनका उत्तर देने के लिए, हिन्दुत्व ने इस्लाम के अखाड़े में अपना जो रूप प्रकट किया, वही सिक्ख या खालसा–धर्म है। सिक्ख गुरूओं ने हिन्दू–धर्म की रक्षा और सेवा के लिए अपनी गरदनें कटायीं। अपने जीवन का बलिदान दिया तथा उन्होंने अपना जो सैनिक संगठन खड़ा किया, उसका लक्ष्य भी हिन्दू धर्म को जीवित एवं जागरूक रखना था। इसी कारण सिक्ख सारे भारतवर्ष में हिन्दुओं के प्रिय रहें हैं।[170]

सिक्ख धर्म सिद्धान्तों का संक्षेप में यह सार है कि सिक्ख को एक सच्चे परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए। दस गुरू, उनकी वाणियाँ तथा श्री गुरु ग्रन्थ साहिब विशेष रूप से श्रद्धा के पात्र हैं। सिक्ख को हिन्दू या किसी भी अन्य धर्म में विशेष विश्वास रखने की आवश्यकता नहीं। सिक्ख के लिए जाति– भेद पूर्ण रूप से वर्जित है। जटिल अनुष्ठान, तीर्थ यात्राएँ अन्य धर्मावलम्बियों को सताना, नशीले पदार्थों का उपयोग, चोरी, व्यभिचार, हत्या, जुआ तथा दहेज प्रथा आदि वर्जित हैं। गुरू गोविन्द सिंह ने कहा है :

"चक्र, चिन्ह, अरू वर्ण जाति
अरू पाति नहिन जिहु
रूप, रंग अरू रेखा, भेखा
कोई कहि न सकत जिहु

अचल मूर्ति, अनुभव प्रकाश
अमृत ओज कहिजै!
कोटि इन्द्र इन्द्रान
शाह शाहान गनिजै

त्रिभुवन महीप, सुर, नर, असुर
नेति नेति वन त्रन कहत
तव सर्व नाम कथई कवन
कर्म नाम वरणत सुमन!

एक मूर्ति अनेक दर्शन
कीन रूप अनेक
खेल खेल अखेल खेलन
अन्त को फिर एक!"[171]

अर्थात् ऐ तू, जिसकी न कोई अलामत है न निशानी, न कोई रंग न कोई जात–पाँत न कोई रूप है न कोई सूरत, न लिबास, न कोई जिसे बयान कर सकता है। जो अचल है, जो रूह के अन्दर अनुभव से ही जाना जा सकता है, जिसे अमृत यानी आबे हयात का चश्मा कहा जा सकता है। जो करोड़ो इन्द्रों का इन्द्र और बादशाहों का बादशाह है। जो तीनों दुनियाओं का राजा है, जिसे देवता, आदमी, असुर और फूल–पत्ते तक कहते हैं कि *'वह यह भी नहीं हैं' यह वह भी नहीं है'* तेरे नाम और काम कौन बयान कर सकता है ? सब नाम तेरे नाम है। सब काम तेरे काम है। तू एक है, तेरे दर्शन अनेक है। तूने अनेक रूप धारण कर रखे हैं। तू तरह–तरह के खेल खेलता है और आखिर में फिर अकेला एक है।

राजनीतिक स्थिति – संत कवियों में गुरू नानक देव ही ऐसे कवि हैं, जिनकी देश की दुर्दशा के ऊपर पैनी दृष्टि थी। उन्होंने देश की राजनीतिक दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया है। उस समय देश में मुसलमानों का राज्य पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका था। उदार से उदार मुसलमान शासक में धर्मान्धता कूट–कूट कर भरी थी। *'तारीख–ए–दाऊदी'* के लेखक ने सिकन्दर लोदी की मुक्त–कंठ से प्रशंसा की है, "सुल्तान सिकन्दर अत्यन्त यशस्वी शासक था। उसका स्वभाव अत्यन्त उदार था। वह अपनी उदारता, कीर्ति और नम्रता के लिए प्रसिद्ध था। उसे तड़क–भड़क, बनाव–श्रृंगार में कोई रूचि नहीं थी। धार्मिक और गुणी व्यक्तियों से वह सम्बन्ध रखता था।" किन्तु श्री बनर्जी के अनुसार सिकन्दर की यह न्यायप्रियता और उदारता संकीर्णता से युक्त थी। उसको यह न्याय प्रियता और उदारता अपने सहधर्मियों तक ही सीमित थी।[172] भाई गुरूदास जी ने भी इस बात का संकेत किया हैं कि काजियों में रिश्वत का बोलबाला था।[173]

गुरूनानक के शब्दों में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति :

"कलियुग में लोग कुत्ते के मुँह वाले हो गए हैं और उनकी खाद्य वस्तु मुरदे का मांस हो गयी है। अर्थात् इस युग में लोग कुत्तों के समान लालची हो गए हैं और रिश्वत तथा बेईमानी से पैसे खाते हैं। वे झूठ बोल–बोल कर झूँकते हैं।"[174]

गुरू नानक देव ने राजाओं और उनके कर्मचारियों का चित्रण इस भाँति किया है –

राजे सीह मुकदम कुते। जाइ जगाइन बैठे सुते।।
चाकर नहदा पाइन्हि घाउ। रतु पितु कुतिहो चटि जाहु।।
जिथै जीआं होसी सार। नकीं बढ़ी लाइतबार।।

(नानकवाणी, मलार की वार, श्लोक– 13)

अर्थात् "इस समय राजागण सिंह के समान (हिंसक) तथा चौधरी कुत्ते के समान (लालची हो गए हैं)। वे सोती हुई प्रजा को जगाकर (उसका मांस भक्षण कर रहे हैं)। (राजाओं के) नौकर अपने तीव्र नाखूनों से घाव करते हैं और लोगों का खून कुत्तों (मुकद्दमों) के द्वारा चाट जाते हैं। जिस स्थान पर प्राणियों के कर्मों की छानबीन होगी, वहाँ उन लाइतबारों की नाक काट ली जाएगी।"

एक स्थल पर गुरू नानक देव ने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का बड़ा हृदयग्राही वर्णन किया हैं –

कलि काती राजे कासाई धरमु पंखु करि उड़रिआ।
कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ।।
हउ भालि विकुंनी होई। आधेरै राहु न कोई।।
विचि हउमै करि दुःखु रोई। कहु नानक किनि विधि गति होई।।[175]

अर्थात् "कलियुग (यह बुरा समय) छुरी है, राजे कसाई हैं; धर्म अपने पंखों पर (न मालूम कहाँ) उड़ गड़ा है, झूठ रूपी अमावस्या (की रात्रि) है। (इस रात्रि में) सत्य का चन्द्रमा कहाँ उदय हुआ हैं ? (वह) दिखलाई नहीं पड़ता। मैं (उस चन्द्रमा को) ढूँढ़–ढूँढ़ कर व्याकुल हो गई हूँ ; अन्धकार में (सृष्टि) अंहकार के कारण दुखी होकर रो रही है। हे नानक, (इस भयावह दुःखद स्थिति से) किस प्रकार छुटकारा हो ?"

उपर्युक्त पद में समय की भयावहता, तत्कालीन जागीरदारों की नृशंसता और क्रूरता, झूठ की प्रबलता, लोगों की कारूण्य–भावना का मार्मिक चित्रण मिलता है।

इतिहास में बाबर के आक्रमण प्रसिद्ध हैं। सन् 1521 ई0 में उसने ऐमनाबाद पर आक्रमण करके उसे नष्ट–भ्रष्ट कर दिया। स्त्रियों की दुर्दशा की गई। गुरूनानक ने ऐमनाबाद के आक्रमण

को स्वयं देखा था। उन्होंने उस रोमांचकारी दृश्य का हृदयद्रावी चित्रण किया है –

"जिन स्त्रियों के सिर की माँग में पट्टी थी और उस माँग में (श्रृंगार के लिए) सिन्दूर डाला गया था, (उनके) उन सिरों (की केशराशि) कैंची से मूँड़ दी गई है और धूल उड़–उड़ कर उनके गले तक पहुँचती है। (जो स्त्रियाँ) महलों के अन्तर्गत निवास करतीं थीं, उन्हें अब बाहर भी बैठने का स्थान नहीं मिलता है। .... वे स्त्रियाँ विवाहिता थीं और अपने पतियों के पास सुशोभित थीं। वे उन पालकियों पर बैठकर आई थीं, जो हाथी दाँत के टुकड़ों से जड़ी थीं। उन स्त्रियों के ऊपर पानी छिड़का जाता था और हीरे–मोती से जड़े हुए पंखे उनके पास चमकते थे। एक लाख रूपए तो उनके खड़े होने पर और एक लाख रूपए उनके बैठने पर न्यौछावर किए जाते थे। जो स्त्रियाँ गरी–छुहारे खाती थीं और सेजों पर रमण करती थीं, उनके गले में रस्सी पड़ी हुयी है और उनके मोती की लड़ियाँ टूट रही हैं।"[176]

आसा रागु की 12वीं अष्टपदी में गुरू नानक ने युद्ध के परिणामों को भी दिखलाया हैं :

"तुम्हारे वे खेल, अस्तबल और घोड़े आदि कहाँ हैं? तुम्हारे नगाड़े और शहनाइयाँ भी नहीं दिखाई पड़ रही हैं। वे सब कहाँ हैं? तलवारों की म्यानें तथा रथ कहाँ हैं? वे दर्पण और वे सुन्दर मुख कहाँ हैं? यहाँ तो वे सब नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। ....तुम्हारे वे घर, दरवाजे, मंडप और महल कहाँ हैं ? तुम्हारी सुखदायिनी सेज और उसे सुशोभित करने वालों कामिनी कहाँ हैं? वे पान देने वाली तंबोलिनें और परदों में रहने वाली स्त्रियाँ कहाँ हैं ? वे सब तो माया की छाया के समान विलीन हो गयी हैं।"

इस अष्टपदी में आगे यह भी बताया गया है कि बाबर के आक्रमण होने पर बहुत से पीरों ने उसे रोकने के लिए टोने–टुटके के प्रयोग भी किए किन्तु कुछ भी परिणाम न निकला।

मुग़लों और पठानों की लड़ाई का भी चित्रण इसी अष्टपदी में मिलता है, "मुग़लों और पठानों में घमासान युद्ध हुआ। रण में तलवारें खूब चलाई गईं। मुग़लों ने तान–तान कर तुपकें चलाईं और पठानों ने हाथी उत्तेजित करके आगे बढ़ाया।" इतिहास इस बात का साक्षी है कि मुग़लों की जीत का प्रमुख कारण, तुपकों का प्रयोग था।

गुरू नानक देव ने इसी अष्टपदी में यह भी बताया है कि मुग़लों ने हिन्दुओं अथवा मुसलमानों, किसी को भी नहीं छोड़ा :

"जिन स्त्रियों की दुर्दशा मुग़लों ने की, उनमें से कुछ तो हिन्दुवानियाँ, कुछ तुरकानियाँ, कुछ भाटिनें और कुछ ठकुरानियाँ थीं। इनमें कुछ स्त्रियों अर्थात् तुरकानियों के बुरके सिर से पैर तक फाड़ दिए गए और कुछ को अर्थात् हिन्दू स्त्रियों को शमशान में निवास मिला अर्थात् मार डाली गईं।"

इस प्रकार गुरु नानक देव सच्चे अर्थ में देश भक्त थे। देश का निवासी चाहे हिन्दू रहा हो, चाहे मुसलमान सभी के लिए उनके हृदय में महान् प्रेम, सहानुभूति और अनुराग था। सभी की दुर्दशा पर उन्होंने आँसू बहाया। गुरूनानक देव ऐसे पहले धार्मिक सन्त हैं, जो राजनीतिक दुर्व्यवस्था को सहन न कर सके। उन्होंने इसके विरुद्ध आवाज उठायी।

<u>सामाजिक स्थिति</u> – राजनीतिक धर्मान्धता का सामाजिक संघटन पर प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी हैं। मुसलमान शासकों ने धर्म परिवर्तन के कई अस्त्र निकाले, जिनमें यात्रा कर, तीर्थयात्रा कर, धार्मिक मेलों, उत्सवों और जुलूसों पर कठोर प्रतिबन्ध, नए मन्दिरों के निर्माण तथा जीर्ण मन्दिरों के पुनरूद्धार पर रोक, हिन्दू–धर्म और समाज के नेताओं का दमन, मुसलमान होने पर बड़े–बड़े पुरस्कार देने आदि मुख्य थे। इन्हीं अस्त्रों के द्वारा वे लोग हिन्दू धर्म को सर्वथा मिटा देना चाहते थे।[177]

इन अत्याचारों का परिणाम तत्कालीन जनता पर बहुत अधिक पड़ा। हिन्दुओं का अनुदार वर्ग और भी अधिक अनुदार हो गया। वे अपनी सामाजिक स्थिति के रक्षण के प्रति और भी अधिक सचेष्ट हो गए। इसका परिणाम हिन्दू मात्र के लिए अत्यन्त भयावह सिद्ध हुआ। हिन्दुओं का उच्च वर्ग असहिष्णु, अनुदार और संकीर्ण हो गया। अपने को विधर्मी प्रभावों से बचाना उसका उद्देश्य हो गया। युग धर्म, लोक धर्म से पराङ्मुख हो बाह्याचारों, रूढ़ियों के कवच से अपने को सुरक्षित रखना यही उनका सबसे बड़ा प्रयास था। उनकी यह पराङ्मुखता अन्य धर्मावलम्बियों तक सीमित नहीं रही, बल्कि अपने सहधर्मियों के साथ भी व्यापक रूप में परिलक्षित हुई। इसी कारण सामाजिक व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो गयी। हिन्दुओं का वर्णाश्रम धर्म कहने मात्र को रह गया। ब्राह्मण अपनी दैवी सम्पदा को त्याग कर धर्म के बाह्य रूप में अनुरक्त हो गए। इसी प्रकार क्षत्रियों ने भी अपने क्षात्र धर्म को त्याग दिया। वे अपनी भाषा और संस्कृति के अभिमान को त्याग कर उदर पोषण के निमित्त अरबी–फारसी के अध्ययन में रत हुए। गुरूनानक देव ने इस परिस्थिति का बड़ा सुन्दर आभास दिया है :

अखी त मीटहिं नाक पकड़हि ठगण कउ संसारू।।
आंट सेती नाकु पकड़हि सूझते तिनि लोअ।
मगर पाछै कछु न सूझै एहु पदमु अलोअ।।
खत्रीआ त धरमु छोडिआ मलेछ भाखिआ गही।
सृसटि सभइक बरन होई धरम की गति रही।। (रागुधनासरी, सबद 8)

अर्थात् "(पाखण्डी ब्राह्मण) संसार के ठगने के निमित्त आँख बन्द करके नाक पकड़ते हैं, (जैसे कि समाधि द्वारा प्राणायाम में स्थित हो रहे हैं)। अंगूठे और पास की दो अंगुलियों की सहायता से नाक पकड़ते हैं (और यह दम्भ करते हैं कि प्राणायाम द्वारा समाधि में स्थित होकर मुझे) 'तीनों लोकों का ज्ञान हैं' ; किन्तु पीछे (की रखी हुई) वस्तु उन्हें सुझाई नहीं पड़ती। यह (कैसा अनोखा) पद्मासन है! क्षत्रियों ने (दासता में पकड़कर अपना) धर्म त्याग कर दिया। सारी सृष्टि एक वर्ण–वर्ण संकर हो गई है, (तात्पर्य यह है कि लोग तमोगुणी हो गए है, उन्हें अपने कर्म–धर्म की ओर तनिक भी ध्यान नहीं है)।"

हिन्दू धर्म पर केवल मुसलमानों का ही अत्याचार नहीं था, बल्कि सवर्ण हिन्दुओं का अत्याचार उससे भी अधिक था। शूद्रों को नीच समझा गया, उच्च वर्ण वालों ने उन्हें सारे अधिकारों से वंचित कर दिया। वेदों और शास्त्रों का अध्ययन उनके लिए त्याज्य बताया गया। अन्त्यजों की दशा तो और भी अधिक सोचनीय हो गयी। वे मन्दिरों में देवताओं के दर्शन से भी बहिष्कृत किए गए। उनकी छाया के स्पर्श मात्र से उच्च वर्ण के हिन्दुओं का शरीर अपवित्र हो जाता था। गुरू नानक की वाणी से यह बात भली–भाँति सिद्ध हो जाती है कि उस समय जातिगत अंहकार का प्राबल्य कितना अधिक था। उन्होंने इसका संकेत इस भाँति किया है –

जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न हे।[178]

अर्थात् "मनुष्य मात्र में स्थित परमात्मा की ज्योति ही को समझने की चेष्टा करो। जाति–पाँति के टेटे–बखेड़े में मत पड़ो। यह निश्चित समझ लो कि आगे (वर्ण व्यवस्था के निर्माण के पूर्व) कोई भी जाति–पाँति नहीं थी।"

"मुसलमानों के शासन काल में भारतीय नारियों के ऊपर अत्याचार तो अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। यह परम सोचनीय बात थी कि उनका सम्मान उनके परिवार में ही समाप्त हो गया। अमरत्व–प्राप्ति की साधना के सारे अधिकारों से वे वंचित कर दी गयी थीं। उनका कोई निजी कर्म

ही न रह गया। वे आध्यात्मिक उत्तरदायित्व से हीन थीं। उनका कोई अधिकार भी न रह गया। वेदों–शास्त्रों का अध्ययन उनके लिए वर्जित था। गृह–परिचर्या हो उनकी साधना थी और उसी में उन्हें संतोष करना पड़ता था।"[179]

इतना ही नहीं संत–महात्माओं की दृष्टि में भी वे हेय समझी जाने लगीं। *'नारी नरक का मूल'* मानी जाने लगीं। सामाजिक दृष्टि से उनका तिरस्कार किया जाने लगा। लोग उनकी निन्दा करने में भी नहीं चूकते थे। सारंग की वार के 22वें 'श्लोक' में गुरू नानक ने इसका संकेत किया है कि "स्त्रियाँ मूर्ख और पुरूष शिकारी– जालिम हो गए हैं। "गुरू नानक देव ने हिन्दू जाति के उपेक्षित नारी–समाज को गौरव के आसन पर बिठाने की चेष्टा की। उन्होंने उनके गौरव का तर्क पूर्ण शैली में समर्थन किया :

"स्त्री से ही मनुष्य जन्म लेता है। स्त्री के ही उदर में प्राणी का शरीर निर्मित होता है। स्त्री से ही सगाई और विवाह होता है। स्त्री के ही द्वारा अन्य लोगों से सम्बन्ध जुड़ता है और स्त्री से ही जगत की उत्पत्ति का क्रम चलता है। एक स्त्री के मर जाने पर दूसरी स्त्री की खोज की जाती है। स्त्री ही हमें सामाजिक बन्धन में रखती हैं। ऐसी परिस्थिति में उस स्त्री को बुरा क्यों कहा जाए, जिससे बड़े–बड़े राजागण जन्म लेते हैं? स्त्री से ही स्त्री उत्पन्न होती हैं। इस संसार में कोई भी प्राणी स्त्री के बिना नहीं उत्पन्न हो सकता। केवल एक सच्चा प्रभु ही है, जो स्त्री से नहीं जन्मा है।"[180]

इस प्रकार गुरू नानक जी क्रांतिकारी सुधारक थे। उन्होंने जाति–प्रथा को निरर्थक और निस्सार बताया तथा स्त्रियों को गौरव एवं सम्मान प्रदान किया। वे इस बात का अनुभव करते थे कि मनुष्य के आधे अंग की उपेक्षा करने से समाज एवं राष्ट्र का न तो उत्थान हो सकता है और न कल्याण ही।

धार्मिक स्थिति – भारतवर्ष में सदैव से ही धर्म ने राजनीति और समाज का संचालन किया। धर्म ही समाज और राजनीति का मेरूदण्ड रहा। गुरू नानक देव के समय में राजनीतिक एवं सामाजिक संकीर्णता एवं अत्याचारों और अनाचारों का मूल कारण धार्मिक संकीर्णता थी। उस काल के हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपने धर्म की उदार और सार्वभौमिक मान्यताओं को भूलकर साम्प्रदायिकता के गड्ढे में पड़े हुए थे। गुरू नानक देव ने उसका सजीव चित्रण अपने शिष्य, भाई 'लालो' से इस प्रकार किया हैं :

"शरम और धर्म दोनों ही इस संसार से विदा हो चुके हैं और झूठ प्रधान होकर फिर रहा है। काजियों और ब्राह्मणों की बातें समाप्त हो गयी हैं और अब विवाह शैतान करवाता है।"[181]

धर्म का वास्तविक स्वरूप लोग भूल गए थे। बाह्याडम्बरों का बोलबाला था। बहुत से लोग तो भय से और मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए कुरआन इत्यादि पढ़ते थे। गुरू नानक के ही शब्दों में–

गऊ बिराहमण कउ करू, लावहु गोबरि तरणु न जाई।
धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछां खाई।।
अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई।
छोडीले पाखंडा। नामि लइऐ जाहि तरंदा।।[182]

अर्थात्, "ऐ समृद्धिशाली हिन्दुओं, एक ओर तो तुम मुसलमानों का शासन सुदृढ़ बनाने के लिए गौओं और ब्राह्मणों पर कर लगाते हो और दूसरी ओर गौ के गोबर (अर्थात् गौ के गोबर आदि की गौरी, गणेश आदि की प्रतीक–मूर्ति) के बल पर तरना चाहते हो। (भला यह कैसे सम्भव हो सकता हैं)? धोती पहनते हो, टीका लगाते हो, गले में जप की माला धारण किए हो, किन्तु धान्य

तो म्लेच्छों का ही खाते हो। अपने संस्कारों के वशीभूत भीतर–भीतर तो पूजा करते हो, किन्तु मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए बाहर कुरआन आदि पढ़ते हो और सारे आचरण तुरकों के समान करते हो। इस पाखण्ड को छोड़ो इसमें कोई भी लाभ नहीं है। नाम का स्मरण करो, जिससे तर जाओ।'' इस प्रकार आसा की वार के 34वें श्लोक में भी हिन्दू–मुसलमानों, दोनों के पाखण्डों का गुरू नानक देव ने हृदयग्राही चित्रण किया हैं :

मुसलमान काजी तथा अन्य हाकिम हैं तो मनुष्य–भक्षी–रिश्वतखोर, पर पढ़ते हैं नमाज़। उन काजियों और हाकिमों के मुंशी ऐसे खत्री हैं जो छुरी चलाते हैं, तात्पर्य यह कि ग़रीबों के ऊपर अत्याचार करते हैं, पर उनके गले में जनेऊ है ब्राह्मण उन अत्याचारियों के घर जाकर शंख बजाते हैं अतएव उन ब्राह्मणों को भी उन्हीं पदार्थों के स्वाद आते हैं, भाव यह कि वे ब्राह्मण भी उसी अत्याचार के कमाए हुए पदार्थ को खाते हैं। उन लोगों की झूठी पूँजी है और झूठा ही व्यापार है। झूठ बोल कर ही वे लोग गुजारा करते हैं। शर्म और धर्म का डेरा दूर हो गया है। सभी स्थानों में झूठ व्याप्त हो गया है।

''इतने से ही बस नहीं, उनका भोजन वह बकरा है, जो मुसलमानों का कलमा पढ़कर हलाल किया गया है ; किन्तु वे लोग यही कहते हैं कि हमारे चौके में कोई न आए। वे चौका देकर लकीर खींच देते हैं। किन्तु इस चौके में वे झूठे आकर बैठते हैं। वे चौके में बैठकर कहते हैं– 'मत छुओ, मत छुओ 'नहीं तो' हमारा अन्न अपवित्र हो जाएगा।' वे अपवित्र शरीर से मलिन कर्म करते हैं और झूठे मन से कुल्ले करते हैं।''

एक स्थान पर गुरू नानक देव ने यह कहा है कि अब परमात्मा का नाम *'खुदा'* अथवा *'अल्लाह'* हो गया है। कलियुग में अथर्ववेद प्रधान हो गया है। (जगत् के स्वामी का नाम *'खुदा'* और *'अल्लाह'* पड़ गया है ; तुर्कों और पठानों का राज्य हो गया है)। ''जगत् के स्वामी का नाम *'अल्लाह'* और *'खुदा'* हो गया है'' में कितना मार्मिक व्यंग है। (नानक वाणी, आज्ञा की वार, श्लोक 26)

''हिन्दू बिल्कुल भूले हुए कुमार्ग पर जा रहे है। जो नारद ने कहा है, वही पूजा करते है। उन अंधों और गूंगों के लिए घनघोर अंधकार है। वे मूर्ख और गंवार पत्थर लेकर पूज रहे हैं। हे भाई, जिन पत्थरों की तुम पूजा करते हो, यदि वे स्वयं ही पानी में डूब जाते हैं, तो उन्हें पूज कर तुम संसार–सागर से किस प्रकार तर सकते हो।''[183] इस प्रकार अपनी वाणी में नानक देव ने स्थान–स्थान पर मूर्ति पूजा का निषेध किया है।

तत्कालीन मुसलमान धर्म के आतंक का चित्रण भी नानक जी ने किया है – ''कलियुग में, तात्पर्य यह है कि इस युग में कुरआन ही प्रामाणिक ग्रंथ है। पोथी, पंडित और पुराण दूर हो गए हैं। इस युग में परमात्मा का नाम भी 'रहमान' पड़ गया है।''[184]

गुरू नानक जी ने धर्म को बाह्याडम्बरों और रूढ़ियों से मुक्त करना चाहा। यही कारण है कि जो व्यक्ति जिस स्थिति में था, उसे उसी स्थिति से ऊपर उठाना चाहा। उन्होंने धर्म के आन्तरिक भावों को ग्रहण करने के निमित्त बल दिया। उन्होंने उन गुणों को अपनाने के लिए मनुष्यों को प्रेरित किया, जिनसे मानवता का कल्याण हो, भ्रातृ–भाव बढ़े, सहृदयता, सहिष्णुता की भावना का प्रसार हो, लोग सत्य, संयम, दया, लज्जा आदि गुणों की ओर आकृष्ट हों। उदाहरणार्थ :

''प्राणियों के ऊपर दया–भावना को मस्जिद बनाओ और श्रद्धा को मुसल्ला। हक की कमाई को कुरआन और बुरे कर्मो के प्रति लज्जा को सुन्नत मानो। शील–स्वभाव को रोजा बनाओ ; हे भाई इस विधि से मुसलमान बनो। शुभ कर्मो को रोजा, सच्चाई को पीर, सुन्दर और दयापूर्ण कर्म को ही कलमा और नमाज बनाओ। जो बात खुदा को अच्छी लगे, उसी को मानना तुम्हारी तसबीह है।

खुदा ऐसे ही मुसलमान की लज्जा रखता है।"[185]

गुरूनानक देव ने धर्म के बाह्याडम्बरों को त्याग कर उसका वास्तविक स्वरूप अपनाने के लिए बल दिया है। उन्होंने संयम के ऊपर बहुत जोर दिया है। उन्होंने सभी प्रकार के धर्म–साधकों को संयम–निर्वाह की अत्यधिक महत्ता बताई हैं। उदाहरणार्थ, उन्होंने योगियों को इस प्रकार उपदेश दिया है–

"हे योगी, तू जगत् को तो उपदेश देता हैं, किन्तु अपनी पेट–पूजा के निमित्त मठ बनाता है। स्वयं तो अडोलता के आसन को त्याग बैठा है, भला सत्य कैसे पा सकता है? तू ममता, मोह और स्त्री का प्रेमी है। तू न तो त्यागी है और न संसारी ही है। हे योगी, अपने स्वरूप में स्थिर हो जाओ, जिससे तेरे द्वैतभाव और दुःख दूर हो जाएँ। तुझे घर–घर माँगते हुए लज्जा नहीं लगती? तू अलख निरंजन का गीत तो गाता है, किन्तु अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचानता। तेरा लगा हुआ परिताप किस प्रकार दूर हो? हे योगी, गुरू के शब्दों में अपने मन को प्रेम से अनुरक्त कर साथ ही सहजावस्था की भिक्षा विचार पूर्वक खा। तू भस्म लगाकर पाखण्ड करता है ; माया और मोह में पड़कर यमराज के डंडे सहता है। तेरा हृदयरूपी खप्पर फूट गया है, जिससे भाव–रूपी भिक्षा उसमें नहीं आती। तू माया के बंधनों में बाँधा जाकर इस संसार चक्र में आता–जाता रहता है। तू वीर्य की तो रक्षा नहीं करता, फिर भी *'यती'* कहलाता है। तीनों गुणों में क्षुब्ध होकर माया माँगता हैं। तू दया रहित है, अतएव परमात्मा की ज्योति का प्रकाश तेरे अन्तःकरण में नहीं होता। तू नाना प्रकार के सांसारिक जंजालों में डूबा हुआ है। तू नाना प्रकार के वेश बनाता है और बहुत प्रकार के कंथे सजाता है। मदारी की भाँति अनेक प्रकार के झूठे खेलों को खेलता है। तेरे हृदय में चिन्ता की अग्नि बड़े वेग से जल रही है। बिना शुभ कर्मों के तू संसार सागर से कैसे पार हो सकता है?" (नानक वाणी, रामकली, अष्टपदी 2)

गुरू नानक देव अपूर्व धर्म–सुधारक, महान् देशभक्त, प्रचण्ड रूढ़ि–विरोधी और अद्‌भुत युग–पुरूष थे। इसके साथ ही उनके हृदय में वैराग्य और भक्ति की मन्दाकिनी सदैव प्रवाहित होती रहती थी तथा मस्तिष्क में विवेक और ज्ञान का मार्तण्ड अहर्निश प्रकाशित रहता था। वे अपूर्व दूरदर्शी थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह समझ लिया था कि वर्तमान परिस्थितियों में कौन–सा धर्म भारत के लिए और वह भी विशेषतः पंजाब के लिए श्रेष्यकर होगा। इसी विचार से उन्होंने अपनी वाणी के द्वारा 'सिक्ख धर्म' की संस्थापना की। यद्यपि मध्ययुग में भारतवर्ष में अनेक धर्म–सुधारक हुए, पर उन्हें वह सफलता नहीं प्राप्त हुयी, जो गुरू नानक देव को प्राप्त हुई। कनिंघम महोदय के शब्दों में– "यह सुधार के गुरू नानक के लिए अवशिष्ट था। उन्होंने सुधार के सच्चे सिद्धान्तों का सूक्ष्मता से साक्षात्कार किया और ऐसे व्यापक आधार पर अपने धर्म की नींव डाली, जिसके द्वारा गुरू गोविन्द सिंह जी ने अपने देशवासियों का मस्तिष्क नवीन राष्ट्रीयता से उत्तेजित कर दिया और उन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप दिया कि छोटी और बड़ी जाति तथा उनके धर्म समान हैं। इसी भाँति राजनीतिक सुविधाओं की प्राप्ति में भी सभी की समानता है।"[186] गुरू नानक देव ने देशवासियों के दुःखों, क्लेशों, अड़चनों का व्यापक अध्ययन किया। उन्होंने युग की नाड़ी पहचानकर, तदनुरूप उसका निदान किया। समाज की सुरक्षा के लिए गुरू नानक द्वारा संस्थापित धर्म की विशेषताओं को दो भागों में विभाजित किया –

1. व्यावहारिक पक्ष – राधाकृष्णन् का कथन है कि प्रत्येक मौलिक धर्म–संस्थापक अपनी व्यक्तिगत, समाजगत तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुरूप ही अपने धार्मिक संदेश देता है।[187] अतएव गुरू नानक के धर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रवृत्ति मूलक है और राजनीतिक

परिस्थितियों के प्रति भी जागरूक है।

गुरू नानक द्वारा संस्थापित धर्म की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें पाखण्डों और बाह्याडम्बरों का जोरदार खण्डन प्राप्त होता है, चाहे वह पाखण्ड हिन्दू ब्राह्मणों का हो, चाहे जैनों का हो, चाहे योगियों का हो और चाहे मुल्लाओं और काजियों का हो। बाह्याडम्बरों की लड़ाई–झगड़े और संकीर्णता के कारण होते हैं। धर्म के आन्तरिक स्वरूप में तो बहुत कम लड़ाई–झगड़े की गुंजाइश होती है।

गुरू नानक के धर्म की तीसरी विशेषता यह है कि उसमें समाज के उत्थान के प्रति उदार विचार प्राप्त होते हैं। जातिगत प्रथा की आन्तरिक दुर्बलता को समझकर उन्होंने इसके विरूद्ध आवाज उठाई–

''जाणहु जोति न पूछहु जाति आगै जाती न हे।।''

(नानक वाणी, रागु आसा, सबद 3)

उन्होंने हिन्दू जाति के उपेक्षित नारी–समाज को फिर से प्रतिष्ठा एवं गौरव के आसन पर बिठाया। उन्होंने 'आसा की वार' में स्त्रियों के अधिकारों का तर्कपूर्ण समर्थन किया। आध्यात्मिक साधनों में स्त्रियों की महत्ता स्वीकार करके, राष्ट्र के कमजोर पक्ष को सबल बनाने की चेष्टा की।

गुरू नानक द्वारा संस्थापित धर्म की चौथी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने धर्म को किसी निश्चित परम्परा में नहीं बाँधा। इसकी विकासोन्मुखी प्रवृत्ति को नहीं रोका। यही कारण है कि कम से कम दसवें गुरू गोविन्द सिंह जी तक इसकी विकासोन्मुखी प्रवृत्ति अक्षुण्ण बनी रही। यदि गुरू नानक जी अपने धर्म को निश्चित परम्पराओं में बाँध देते, तो वह भी कबीर–पंथ, दादू पंथ अथवा रेदास पंथ की भाँति एक सीमा में केन्द्रीभूति हो गया होता। किन्तु इसके विपरीत गुरूनानक के अनुयायी, अन्य सिक्ख गुरूओं ने धर्म के आन्तरिक सिद्धान्तों को कस कर पकड़े रखा, किन्तु वे बाह्याचारों अथवा धर्म के बाह्य रूपों में परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन करते गए।

गुरू नानक के धर्म की पाँचवी विशेषता यह है कि उन्होंने भक्ति मार्ग को उसके दोषों से बचा रखा। भक्ति मार्ग के तीन दोष मुख्य हैं – ''पहला तो यह कि इष्टदेव के नाम–भेद के कारण पारस्परिक झगड़े हो जाया करते हैं। दूसरा दोष यह है कि अंध श्रद्धा के कारण लोग प्रायः इष्टदेवों की मर्जी पर इतने अधिक निर्भर हो जाते हैं कि व्यवहार में भी स्वावलम्बी बनना छोड़कर एकदम आलसी और निकम्मे से रहते हैं तथा अपनी कमजोरियों और आपत्तियों का दोष अपने–अपने इष्टदेवों के मत्थे मढ़कर चुप हो जाया करते हैं। तीसरा दोष यह है कि अन्धविश्वास का प्राबल्य कभी–कभी इतना अधिक हो जाता है कि लोग दम्भियों के चक्कर में पड़कर दुःख भी खूब उठाते हैं।''[188]

गुरू नानक जी ने भक्ति के उपर्युक्त तीनों दोषों को अत्यन्त सतर्कता से दूर किया। पहले दोष को मिटाने के लिए तो उन्होंने यह उपाय किया कि परमात्मा को रूप और आकार की सीमा से परे माना। उन्होंने ऐसे इष्टदेव की कल्पना की, जो 'अकाल मूरति', 'अजूनों' (अयोनि) तथा 'सैभं' (स्वयंभू) हैं। दूसरे दोष को मिटाने के लिए गुरूनानक देव ने यह किया कि धर्म में प्रवृत्ति और लोक–संग्रह को महत्ता प्रदान की। तभी तो बाबर के आक्रमण करने पर परमात्मा से यह प्रश्न किया, ''इतनी मारकाट हुई और इतनी करूणा व्याप्त हुई, किन्तु हे प्रभु, तुझे कुछ भी दर्द नहीं हुआ?'' इसी कारण उन्होंने अपने धर्म में सेवाभाव पर बहुत अधिक बल दिया। तीसरे दोष के परिहार के निमित्त, उन्होंने बाह्याडम्बरों की महत्ता समाप्त की तथा आन्तरिक प्रेम और भक्ति की मर्यादा प्रतिष्ठापित की।

उनके सिक्ख–धर्म की छठी विशेषता यह है कि उन्होंने जनता की निराशावादिता को दूर

कर उसमें आशा, विश्वास और पौरूष की भावना जागृत की। उन्होंने निराशों में यह भावना भरी कि उनका शरीर परमात्मा के रहने का पवित्र स्थान है। उन्होंने गीता के 'युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु' को व्यवहृत रूप दिया। गुरू नानक की इन्हीं शिक्षाओं का यह परिणाम था कि उनके अनुयायियों ने राष्ट्र निर्माण और राष्ट्र–सेवा में अनुपम योग दिया। उनके अनुयायी सिक्ख *'अहंभाव'* को त्यागकर लोक–संग्रह और मानव–सेवा के माध्यम द्वारा परमात्म–चिन्तन में प्रवृत्त हुए।

गुरू नानक के धर्म की सातवीं विशेषता यह है कि उसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की गई है। गुरू नानक देव यह भली–भाँति जानते थे कि हिन्दू–मुसलमानों के पारस्परिक मनोमालिन्य को दूर करने के लिए सहज मार्ग यही है कि उन दोनों की पारस्परिक अच्छाइयों को ग्रहण करके, उनके बाह्याडम्बरों को दूर किया जाए।

इस धर्म की आठवीं विशेषता यह है कि यह निर्माणकारी प्रवृत्तियों से ओत–प्रोत है। जो यह समझते हैं कि इसमें विध्वंसक प्रवृत्तियाँ हैं वे गुरू नानक देव व्यक्तित्व को समझने में भूल करते हैं। उन्होंने किसी भी धर्म को बुरा नहीं कहा, बल्कि उसमें फैली हुयी बुराइयों को बुरा कहा।

उन्होंने हिन्दू–मुसलमानों की निन्दा इसलिए नहीं की कि उनके धर्म बुरे थे, बल्कि उनकी निन्दा इसलिए की कि वे वास्तविक मार्ग को भूलकर कुराह पर जा रहे थे। उन्होंने क्षुब्ध होकर दोनों की क्रूरताओं की तीव्र भर्त्सना की। उन्होंने कहा है, "मनुष्य–भक्षक (मुसलमान) नमाज़ पढ़ते हैं और जुल्म की छुरी चलाने वाले (हिन्दू) जनेऊ धारण करते हैं।"

"माणस खाणे करहिं निवाज। छुरी बगाइन तिन गलि ताग।"

(नानक वाणी आसा की वार, श्लोक 34)

गुरूनानक की उपर्युक्त भर्त्सना का यही आशय प्रतीत होता है कि हिन्दू–मुसलमान अपनी–अपनी कमजोरियों को समझें और उन्हें दूर करके अपने धर्मों का ठीक–ठीक पालन करें। गुरूनानक के धर्म की अन्तिम और नवीं विशेषता यह है कि इसमें सभी धर्मों के प्रबल व्यावहारिक पक्ष अत्यन्त उदारतापूर्वक संग्रहीत हैं। मुसलमानों के भाईचारे और एकता का सिद्धान्त जितना इस धर्म में दिखाई पड़ता है, उतना भारत के अन्य किसी भी धर्म में नहीं हैं। बौद्धों की संगठन–भावना भी इस धर्म में पूर्ण रूप से व्याप्त है। इसी भाँति वैष्णवों की सेवा भावना भी इस धर्म का प्रधान अंग है।

2. सैद्धान्तिक पक्ष – गुरू नानक देव ने परमात्मा का साक्षात्कार किया और प्रत्याक्षानुभूति प्राप्त की। उसी अनुभूति को उन्होंने लोक भाषा के माध्यम द्वारा अभिव्यक्त किया। आन्तरिक अनुभूतियों की एकता के संबन्ध में *'मिस अंडरहिल'* का कथन सत्य प्रतीत होता है, "कोई भी व्यक्ति सच्चाई से यह बात नहीं कह सकता कि ब्राह्मण, सूफ़ी और मसीही रहस्यवादियों में कोई महान अन्तर हैं".[189] अतएव गुरू नानक के उपदेश में वही अनुभूति है, जो हिन्दूओं प्रस्थानत्रयी– उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा श्री मद्भगवद्गीता, – मुसलमानों के कुरआन और मसीहियों के धार्मिक ग्रन्थ बाइबिल में मिलती हैं। संसार में जितने भी पैगम्बर हुए हैं, सभी अपने अपरोक्ष ज्ञान के बल पर मनुष्यों को उपदेश देते हैं। इसी से उनकी वाणी में चुम्बक–शक्ति होती है। गुरू नानक देव ने चरम सत्य परमात्मा को बतलाया और उसी को जनता के सम्मुख रखा। उस समय भारत वर्ष के पढ़े–लिखे दार्शनिक तो परमात्मा का अव्यक्त स्वरूप मानते थे, किन्तु अनपढ़ों में अनेक देवी–देवताओं की उपासना प्रचलित थी।[190] गुरू नानक देव ने परमात्मा को *'अव्यक्त निर्गुण'* स्वरूप में प्रतिष्ठित किया और लोक भाषा के माध्यम से उसे सर्वग्राह्य बनाया। उन्होंने अवतार वाद का खण्डन करके एकेश्वरवाद का स्वरूप प्रतिष्ठित किया। परमात्मा के स्वरूप–निर्धारण के संबन्ध में गुरू नानक देव के विचार उपनिषदों की विचारधारा से साम्य रखते हैं। जीव, आत्मा, मनुष्य के सम्बन्ध में भी उनके

निजी विचार हैं। परमात्मा ने अपने आप बिना किसी अन्य सहायता के सृष्टि रची। उनके अनुसार सृष्टि–रचना का समय अनिश्चित है। कहीं–कहीं सृष्टि और परमात्मा के बीच अभिन्नता दिखलाई है और यह बतलाया है कि परमात्मा ही स्वयं सृष्टि के रूप में परिवर्तित हुआ है। गुरू नानक देव ने सृष्टि को मिथ्या न मानकर सत्य माना है और माया को स्वतन्त्र मानकर परमात्मा के अधीन माना है। उनकी वाणी में स्थान–स्थान पर माया के प्रबल स्वरूप का चित्रण मिलता है। आध्यात्मिक रूपकों द्वारा उन्होंने माया की मोहिनी शक्ति का चित्रण किया है। अन्त में माया के तरने के लिए विविध उपाए भी बताए हैं।

गुरू नानक देव ने अहंकार और द्वैतवाद का विशद निरूपण किया है। अहंकार के विविध स्वरूपों तथा इसके होने वाले परिणामों की ओर उनकी व्यापक दृष्टि पड़ी है। उन्होंने अहंकार नाश के विविध उपायों को भी बताया है। अहंकार और मन के संबन्ध की भी चर्चा उन्होंने की है। मन के विविध स्वरूप, उसकी प्रबलता और चंचलता की भी विवेचना गुरू नानक की वाणी में प्राप्त होती है।

उन्होंने परमात्मा–प्राप्ति ही जीवन का प्रथम पुरूषार्थ और फल माना है। उसकी प्राप्ति में कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति सबकी सार्थकता बताई है। गुरू नानक द्वारा निरूपित कर्ममार्ग, योगमार्ग तथा ज्ञानमार्ग भक्ति के अधीन बताए गए हैं। उनके योग एवं हठयोग में विभिन्नता है। उन्होंने अपने योग को *'राजयोग'* की संज्ञा दी है। उनके इस योग में कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग का विचित्र सामंजस्य है। ज्ञानयोग के प्रति गुरू नानक देव की पूरी आस्था है। अद्वैतवाद की अनुभूति ही *'ज्ञान'* अथवा *'ब्रह्मज्ञान'* है चाहे उनकी प्राप्ति का जो भी माध्यम हो। अद्वैतवाद को सिद्ध करने के लिए गुरू नानक देव ने कहीं–कहीं जीव और ब्रह्म की एकता मानी है, हालांकि व्यावहारिक दृष्टि से वे जीव और परमात्मा को भिन्न मानते हैं। पारमार्थिक दृष्टि से दोनों में भेद नहीं मानते है। उन्होंने अद्वैतवाद की पुष्टि के लिए स्थान–स्थान पर ब्रह्म और सृष्टि की एकता भी प्रदर्शित की है। ज्ञान–प्राप्ति के साधनों का भी गुरू नानक की वाणी में उल्लेख प्राप्त होता है।

इस प्रकार व्यावहारिक और सैद्धान्तिक दोनों ही दृष्टियों से गुरू नानक देव का धर्म सुधारकों में मौलिक एवं विशिष्ट स्थान है। उनके सुधार देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप थे। यही कारण है कि उनका धर्म शक्तिशाली धर्म में विकसित हुआ और इतने बड़े जन–समुदाय को अपनी ओर आकृष्ट कर सका। गुरू नानक देव में यदि संकीर्णता होती, तो एक निश्चित सीमा में आबद्ध हो गया होता।

मसीही धर्म का सिक्ख धर्म पर प्रभाव

मसीही धर्मावलम्बी भारत वर्ष में बहुत समय बाद आए हैं जबकि सिक्ख धर्म उनके आने से 400 वर्ष पूर्व यहाँ प्रारम्भ हो गया था किन्तु जब भारत वर्ष में अंग्रेजों का राज्य स्थापित हुआ तथा उन्होंने अपना साम्राज्य पंजाब में सुदृढ़ करना चाहा। उस समय उनका परिचय गुरू नानक पंथियों अथवा सिक्खों से हुआ। अंग्रेजी शासनकाल में पंजाब में रणजीत सिंह का शासन था। ये बहुत पराक्रमी थे तथा इनकी सेना बहुत बहादुर एवं लड़ाकू सेना थी। इन्होंने अपने जीवनकाल में अंग्रेजों से अनेक बार युद्ध किया किन्तु जब उन्हें अंग्रेजों की शक्ति का पता लग गया तो वे कटुता के साथ–साथ उनसे मित्रतापूर्ण बर्ताव भी करते रहे। इस समय अंग्रेजी शासन लार्ड विलियम बैंटिक के हाथ में था। अंग्रेज गवर्नर भी रणजीत सिंह का ध्यान सिंध प्रान्त से हटाने के लिए उनसे मैत्री बनाए रहा।

सिक्ख धर्म पर मसीही धर्म के प्रभाव पर जब हम विचार करते हैं तो हमारा ध्यान इस बात

की ओर जाता है कि अंग्रेजों के साथ सिक्ख राजाओं की सन्धि स्थापित होने के पश्चात् जब सिक्ख सैनिकों को अंग्रेजी फौज में भर्ती किया जाने लगा और उन्हें अंग्रेजी राज्य में जैसे इंग्लैण्ड, कनाडा आदि में बसने की अनुमति मिली तो उन पर अंग्रेजी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था और क्योंकि अंग्रेज मसीही धर्म के अनुयायी थे। अतः उनकी बहुत सी धर्म विधियाँ, रीति–रिवाज़ गुरू ग्रन्थ साहिब के प्रति बाइबिल जैसा दृष्टिकोण विकसित हुआ। दूसरे शब्दों में कहें तो हम कह सकतें हैं कि सिक्ख धर्म के अनुयायियों पर भी आधुनिकता का प्रभाव इसी अंग्रेजों के सहयोग के कारण हुआ। जैसे गुरू प्रसाद (गुरू प्रसाद– बाँटना, यह प्रथा प्रभु–भोज के सदृश्य है) ग्रन्थी (अर्थात् जो व्यक्ति गुरू ग्रन्थ साहब का पाठ करता है।) सेमिनरी अथवा थियॉलाजिकल कॉलेज के सदृश्य होती है। चर्च–प्रबन्धन के सदृश्य गुरूद्धारों में भी गुरूद्धारा प्रबन्धक कमेटी होती है। शिक्षा के प्रचार–प्रसार में भी सिक्ख सम्प्रदाय ने भी मिशनरी संस्थाओं का अनुसरण किया है और अब वे अपने धर्म का प्रचार–प्रसार भी भिन्न–भिन्न देशों में तथा अनेक सम्प्रदायों में भी मिशनरियों के सदृश्य कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त वे बाइबिल के अनुवाद के सदृश्य गुरू ग्रन्थ साहब का भी विश्व के भिन्न–भिन्न भाषाओं में करने लगें हैं। विदेशी महिलाओं के साथ विवाह करने के कारण भी सिक्ख धर्म पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ रहा है। आधुनिक युवक–युवतियाँ खालसा पन्थ के प्रतीक चार ककार के प्रति भी उदासीन हो गए हैं।

इस सन्दर्भ में यहाँ स्मरण दिलाना आवश्यक है कि पंजाब के अनेक प्रतिष्ठित राजघराने मसीही प्रभाव के कारण अपना धर्म छोड़कर मसीही हो गए जैसे कपूरथला की राजकुमारी अमृतकौर, महाराजा रणजीत सिंह के पुत्र दलीप सिंह एवं बम्बई के प्रथम राज्यपाल महाराज सिंह।

पंजाब के सिक्ख जो गुरू नानक पर पूर्ण श्रद्धा रखते थे उन्होंने बाइबिल का अध्ययन किया और यह अनुभव किया कि बाइबिल और गुरू ग्रन्थ साहब दोनों एक ही प्रकार के सिद्धान्तों का अनुपालन करते हैं। दोनों एक ईश्वरवाद के समर्थक हैं तथा दोनों ही धर्म छुआ–छूत, जात–पाँत को नहीं मानते तथा दोनों ही अन्ध विश्वास के घोर विरोधी हैं इसलिए वे मसीही धर्म से प्रभावित हुए तथा उन्होंने मसीही धर्म संस्कृति को अपनाया।

अंग्रेज जब भारत वर्ष में आए उस समय वे नवीन शिक्षा प्रणाली लेकर आए। यह प्रणाली शोध–परख और वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित थी। इसके पहले सम्पूर्ण भारत वर्ष में वैदिक शिक्षा प्रणाली, इस्लामिक शिक्षा प्रणाली और नानक पंथी शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी, और पढ़ाने वाले गुरू प्राचीन शैली से पढ़ाते थे तथा शिक्षा ग्रहण करने वालों की संख्या भी प्रोत्साहन न मिलने के कारनण बहुत कम हुआ करती थी। भारत वर्ष के विद्वानों के पास ज्ञान का अथाह सागर था, किन्तु उसका अभिव्यक्ति कारण और विश्लेषण करने की क्षमता किसी के पास नहीं थी। ए० कनिंघम, बी०ए० स्मिथ, कागबर्न तथा अनेक विद्वानों ने यहाँ पर अनेक शोध कार्य किए हैं। जिनके सन्दर्भ में भारतीय अनभिज्ञ थे। लार्ड मैकाले के पश्चात् जो शिक्षा नीति बनी उससे गुरू नानक पंथ के अनुयायी सिक्ख समुदाय के लोग प्रेरित हुए तथा उन्होंने मसीही शिक्षा प्रणाली और विज्ञान के अध्ययन को अपनाया। उन्होंने ऐसे विविध प्रकार के विषय पढ़े जो पहले कभी नहीं पढ़ाए जाते थे। ये विषय गणित, विज्ञान, जीवविज्ञान, दर्शन शास्त्र, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान तथा शिक्षा शास्त्र से संबन्धित थे। पंजाब में विश्वविद्यालय की स्थापना होने के पश्चात् अनेक सिक्खों ने नवीन शिक्षा प्रणाली के प्रति रूचि दिखलायी।

मसीही यह जानते थे कि सिक्खों की कौम एक बहादुर कौम है, ये जिस बात का वचन देतें हैं उसको पूरा भी करतें हैं। वे कुशल प्रशासक और कर्मठ हैं। उन्होंने अनेक युद्धों में सिक्खों

की बहादुरी देखी थी इससे मसीही लोग इनसे बहुत प्रसन्न रहते थे। जिस पद पर इन्हें बैठाया गया उस पद का निर्वाह इन्होंने बड़ी व्यवहार कुशलता के साथ किया। इनकी कटुता और मित्रता दूसरे पक्ष की कटुता और मित्रता से जुड़ी हुयी होती थी। जहाँ सिक्ख लोग उग्र, क्रोधी होते हैं, वहीं वे विनम्र और वचन पर जान देने वाले व्यक्ति भी होते हैं। उदाहरण के लिए सरदार भगत सिंह पंजाब के रहने वाले एक बहादुर सिक्ख थे। उन्होंने यदि अंग्रेजों का विरोध किया तो जीवन के अन्त तक किया। वे वतन के नाम पर कुर्बान हो गए। अंग्रेज उनका लोहा मानते थे। अंग्रेजों ने उनकी बहादुरी से खुश होकर सिक्ख और जाट रेज़ीमेण्ट का गठन पृथक् रूप से सेना में किया था और सेना में 30% नौकरियाँ सिक्ख युवकों के लिए सुरक्षित रखीं गयीं जो आजादी के बाद भी आरक्षण बना रहा।

जैन धर्म

जैन धर्म बौद्ध धर्म की अपेक्षा में अत्यधिक प्राचीन है, बल्कि यह उतना ही पुराना है, जितना कि वैदिक धर्म। जैन अनुश्रुति के अनुसार मनु चौदह हुए हैं। अन्तिम मनु नाभिराम थे। उन्हीं के पुत्र ऋषभ देव हुए जिन्होंने अहिंसा और अनेकान्तवाद का आदि प्रवर्तन किया। जैन पंडितों का विश्वास है कि ऋषभ देव ने ही लिपि का आविष्कार किया तथा क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन जातियों की रचना की। भरत ऋषभदेव के ही पुत्र थे जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा। जब ऋषभदेव वैराग्य लेकर संसार से अलग हो गए, तब उनके पुत्र भरत ने ही, "तीन वर्णों में से व्रत और चरित्र धारण करने वाले सुशील व्यक्तियों को ब्राह्मण वर्ण बनाया।" जैन अनुश्रुति में नेमिनाथ श्री कृष्ण के चचेरे भाई माने जाते हैं ; किन्तु, वे मात्र बाईसवें तीर्थकर थे जिसका अर्थ यह होता है कि श्रीकृष्ण से पूर्व जैनों के इक्कीस तीर्थकर हो चुके थे। यदि यह बात सत्य हो तो जैन धर्म की परम्परा भगवान श्री कृष्ण से हजार नहीं तो सैकड़ों वर्ष पूर्व पहुँच जाती है। कुछ विद्वान यह भी कहने लगे हैं कि मोहनजोदड़ो में पाये गए निशानों में से कुछ निशान जैन धर्म के भी हैं।[191]

जैन धर्म की दो बड़ी विशेषताएँ अहिंसा और तप है ; इसलिए, यह अनुमान तर्क सम्मत लगता है कि वेदों में जो अहिंसा और तप के बारीक बीज थे, उन्हीं का विकास जैन धर्म में हुआ है। यह बात जैन धर्म के इतिहास से भी प्रमाणित होती है। महावीर वर्द्धमान ई0पू0 छठी शताब्दी में हुए हैं और उन्होंने जैन–मार्ग का जो जोरदार संगठन किया, उससे उस मार्ग के प्रधान नेता वे ही समझे जाने लगे किन्तु जैन धर्म में चौबीस तीर्थंकर (धार्मिक नेता, पैगम्बर) हुए हैं और महावीर वर्द्धमान चौबीसवें तीर्थंकर थे। उनसे पूर्व तेईस तीर्थंकर और हुए थे, जिनके नाम निम्नलिखित हैं – 1– ऋषभ, 2– अजीत, 3– सम्भव, 4– अभिनन्दन, 5– सुमति, 6– पद्मप्रभ, 7– सुपार्श्व, 8– चन्द्रप्रभ, 9– सुविधि, 10– शीतल, 11– श्रेयाँस, 12– वासुपूज्य, 13– विमल, 14– अनन्त, 15– धर्म, 16– शान्ति, 17– कुन्य, 18– अर, 19– मत्तिल, 20– मुनिसुव्रत, 21– नेमि, 22– अरिष्ट नेमि, 23– पार्श्वनाथ, 24– महावीर स्वामी।

जिस प्रकार जैन धर्म के प्रवर्तक को भी हिन्दू विष्णु का ही अवतार मानते हैं, उसी प्रकार, इनके दर्शनों को भी वे अपना ही दर्शन मानते हैं। अन्तर यह है कि हिन्दू दर्शन आस्तिक और नास्तिक विभागों में बँटे हुए हैं। सांख्य और योग न्याय; वैशेषिक तथा मीमांसा (पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा) ये छह दर्शन आस्तिक हैं, क्योंकि वे वेदों का विरोध नहीं करते। इसके विपरीत जैन, बौद्ध और चार्वाक, ये तीन दर्शन नास्तिक हैं, क्योंकि वे वेदों का विरोध करते हैं (यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि जड़ता और निरे भोगवाद का प्रचार केवल चार्वाक दर्शन ने ही किया, जिसके विचार इस देश में कभी भी स्वीकृत नहीं हो सके, क्योंकि यह देश जीवन में त्याग को प्रतिष्ठा देने वाला रहा है और शुद्ध भोगवाद की प्रवृत्ति को इसने कभी भी प्रोत्साहित नहीं किया)। ऋषभदेव, अरिष्टनेमि और पार्श्वनाथ तथा महावीर वर्द्धमान इन सबके प्रति हिन्दुओं का आदर भाव रहा है, क्योंकि इन ऋषियों ने वेद और वैदिक धर्म की चाहे जो भी निन्दा की हो, लेकिन स्वयं इन्होंने जिस धर्म का प्रवर्तन किया, वह भोग नहीं, त्याग का धर्म था और भारत वर्ष की त्यागमयी आध्यात्मिक परम्परा को त्याग से ही शक्ति प्राप्त होती थी।

जैन–दर्शन के सिद्धान्त

जैन–दर्शन के प्रमुख प्रमेय उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य हैं। उत्पाद का अभिप्राय यह है कि सृष्टि में जो कुछ है वह पहले से ही उत्पन्न है तथा जो नहीं है उससे किसी भी तत्व की उत्पत्ति नहीं होती। व्यय का तात्पर्य है कि प्रत्येक पदार्थ अपने पूर्व पर्याय (रूप) को छोड़कर क्षण–क्षण

नवीन पर्यायों को धारण कर रहा है और ध्रौव्य यह विश्वास है कि पदार्थों के रूपान्तरण की यह प्रक्रिया सनातन है, उसका कभी भी अवरोध या नाश नहीं होता। "जगत् का प्रत्येक सत् प्रतिक्षण परिवर्तित होकर भी कभी नष्ट नहीं होता। वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, इस प्रकार त्रिलक्षण है। कोई भी पदार्थ चेतन हो या अचेतन, इस नियम का अपवाद नहीं है"[192]

जैन धर्म यह मानता है कि सृष्टि अनादि है और वह जिन छः तत्वों से बनी हुई है वे तत्व भी अनादि हैं। ये छः तत्व हैं — 1— जीव, 2— पुद्गल, 3— धर्म, 4— अधर्म, 5— आकाश और 6— काल। इन छः तत्वों में से केवल पुद्गल ही ऐसा है जिसका हम रूप देख सकते हैं अथवा जिसका अनुभव हमें स्पर्श घ्राण अथवा श्रवण से होता है। पुद्गल को मूर्त्त द्रव्य भी कहते हैं। बाकी सभी द्रव्य ऐसे हैं जो अमूर्त्त हैं, जिनका आकार नहीं है दूसरी बात यह है कि इन छः द्रव्यों में से केवल जीव ही ऐसा है जिसमें चेतना है, बाकी पाँचों द्रव्य निर्जीव अथवा अचेतन है। तीसरी बात यह कि संसार में जीव निर्जीव (पुद्गल) के बिना नहीं ठहर सकता। निर्जीव (पुद्गल) के सहवास से छुटकारा उसे तब मिलता है जब वह संसार के बन्धनों से छूट जाता है। वास्तव में, जैन—दर्शन के जीव के प्रायः वे ही गुण हैं जो आत्मा के लिए वेदान्त में कहे गए हैं।

जो मूर्त्त द्रव्य अर्थात् पुद्गल है वह परमाणुओं के योग से बना हुआ है और यह सारी सृष्टि ही परमाणुओं का समन्वित रूप है। जीव और पुद्गल ही मुख्य द्रव्य हैं, क्योंकि उन्हीं के मिलन से सृष्टि में जीवन देखने में आता है। आकाश वह स्थान है जिसमें सृष्टि ठहरी हुयी है। जीव और पुद्गल में गति कहाँ से आती है, इसका रहस्य समझाने के लिए धर्म की कल्पना की गयी है। धर्म वह अवस्था है जिससे जीव और पुद्गल को गति मिलती है। चलने की शक्ति तो सक्रिय द्रव्य में स्वयं है, लेकिन जैसे मछली चलने की शक्ति रखते हुए भी पानी के बिना नहीं चल सकती, वैसे ही सक्रिय द्रव्य भी धर्म के बिना नहीं चल सकते। धर्म उनकी गति को संभव बनाता है। इसी प्रकार, चलने वाली चीज जब ठहरना चाहती है तब भी उसे कोई—न—कोई आधार चाहिए। पक्षी उड़ता तो अपनी शक्ति से है और वह ठहरता भी अपनी शक्ति से है किन्तु, जमीन या वृक्षादि का आधार लिए बिना वह ठहर नहीं सकता। इसी तरह, सक्रिय द्रव्य के ठहरने को संभव बनाने वाला गुण अधर्म है। धर्म और अधर्म, वे गुण हैं जो विश्व को क्रमशः गतिशील रखते हैं और उसे अव्यवस्था में गिफ्तार होने से बचाते हैं। काल की कल्पना इसलिए की गयी कि जैन धर्म संसार को माया नहीं मानता, जैसा कि शांकर मत में माना जाता है। संसार सत्य है और उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। इसी परिवर्तन का आधार काल है क्योंकि काल के अस्तित्व को माने बिना, संसार में किसी तरह के परिवर्तन की कल्पना नहीं की जा सकती। काल मनुष्य की जवानी, बुढ़ापे और मृत्यु, सबका कारण है।

जैन—दर्शन के छह द्रव्यों में से सिर्फ धर्म और अधर्म ही ऐसे हैं जिनका हिन्दुओं में कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। बाकी जीव, पुद्गल, काल और आकाश ऐसे हैं जो किसी—न—किसी रूप में आये हैं। ये बहुत कुछ पंच—तत्वों के समान हैं जिनसे हिन्दुओं के अनुसार सृष्टि की रचना हुई है।

हिन्दू जैसे स्थूल शरीर के भीतर एक सूक्ष्म शरीर की सत्ता में विश्वास करते हैं, उसी प्रकार, जैन दर्शन के अनुसार भी, स्थूल शरीर के भीतर एक सूक्ष्म कर्म शरीर है। स्थूल—शरीर के छूट जाने पर भी यह कर्म—शरीर जीव के साथ रहता है और वही उसे फिर अन्य शरीर धारण करवाता है। आत्मा की मनोवैज्ञानिक चेष्टाओं—वासना, इच्छा, तृष्णा आदि से इस कर्म—शरीर की सुपुष्टि होती है। इसलिए, कर्म—शरीर तभी छूटता है जब जीव वासनाओं से ऊपर उठ जाता है, जब उसमें किसी प्रकार की इच्छा नहीं रह जाती। जैन—दर्शन के अनुसार भी मोक्ष की व्यवस्था यही है।

जैन—दर्शन *'आस्रण'* के सिद्धान्त में विश्वास करता है, जिसका अर्थ यह है कि कर्म के

संस्कार क्षण–क्षण स्रवित या प्रवाहित हो रहे हैं, जिनका प्रभाव जीव पर क्षण–क्षण पड़ता जा रहा है। इस प्रभाव से बचने का उपाय यह है कि मनुष्य चित्–वृत्तियों का विरोध करे, मन को काबू में लाए, योग की समाधि का अवलम्ब ले और तपश्चर्या में लीन रहे।

कैवल्य या मोक्ष

कैवल्य–साधना के, जैनों के यहाँ सात सोपान माने गए हैं। ये सात सोपान ही जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष नामक सात तत्व हैं। जीव आत्मा है। अजीव वह ठोस द्रव्य है (अर्थात् शरीर) जिसमें आत्मा निवास करती है। जीव और अजीव का मिलन ही संसार है। अतएव मोक्ष–साधना का मार्ग यह है कि जीव को अजीव से भिन्न कर दिया जाए अर्थात् मनुष्य यह ज्ञान प्राप्त करे कि वह आत्मा है और शरीर से बिल्कुल भिन्न है। किन्तु, जीव अजीव से बँधा कैसे है? इसका उत्तर आस्रव है। कर्मों से जो संस्कार क्षरित होते हैं उन्हीं के कारण अजीव से बँध जाता है। अतएव, इस बंधन को नष्ट करने का उपाय यह है कि साधक कर्म से क्षरित होने वाले संस्कारों से अलिप्त रहने का उद्योग करे। यह प्रक्रिया संवर कहलाती है किन्तु, इतना ही यथेष्ट नहीं है। आत्मा को तो पूर्वार्जित संस्कार भी घेरे हुए हैं। इन पूर्वार्जित संस्कारों से छूटने की साधना का नाम निर्जरा है। जीवन–नौका में छेद हैं, जिनसे पानी भरता जा रहा है। छेदों को बन्द करना ही संवर की साधना है और नाव में पहले से जो पानी भरा हुआ है, उसे निकालने को निर्जरा कहते हैं। संवर और निर्जरा के द्वारा जिसने अपने को संस्कारों अथवा आस्रवों से मुक्त कर लिया, वही मोक्ष प्राप्त करता है।

जैन–दर्शन में मोक्ष की साधना केवल सन्यासी कर सकते हैं। इनकी पाँच कोटियाँ हैं जिनका समन्वित नाम *'पंच परमेष्ठी'* है। ये पंच परमेष्ठी हैं– अर्हत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और साधु। साधुओं के उपदेष्टा उपाध्याय और आचार्य कहलाते हैं। सिद्ध वह है जिसने शरीर छोड़कर मोक्ष प्राप्त कर लिया है और अर्हत तीर्थंकरों को कहते हैं। अर्हत तो चौबीस ही हुए हैं, किन्तु, सिद्ध कोई भी जीव हो सकता है। जिसकी वासना छूट गयी, जो सुख–दुःख से ऊपर उठ गया, जिसकी इन्द्रियाँ वशीभूत है, वह सिद्ध है। सिद्ध की कोटि परमात्मा की कोटि है। अन्तर यह है कि सामान्य हिन्दू–दर्शन में परमात्मा एक माना गया है किन्तु, जैन धर्म के अनुसार जो भी व्यक्ति सिद्ध हो गया वह स्वयं परमात्मा है।

हिन्दू–दर्शन में मोक्ष वह अवस्था है जब कि आत्मा–परमात्मा में विलीन हो जाती है। बौद्ध–दर्शन में इस अवस्था की संज्ञा निर्वाण है जब कि आत्मा की सत्ता का लोप हो जाता है किन्तु, लुप्त होकर आत्मा कहाँ चली जाती है, यह रहस्य बौद्ध–दर्शन हमें नहीं बतलाता। जैन–दर्शन में इस स्थिति को कैवल्य कहते हैं। जैनों का विश्वास है कि अदृश्य जगत् में कहीं कैवल्य लोक है जहाँ सिद्धों की आत्माएँ शुद्ध–बुद्ध रूप में विराजा करती हैं। जो आत्मा सिद्ध अथवा मुक्त हो गयी वह चार गुणों से युक्त होती है। ये गुण हैं अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य। रूप, रस, गन्ध और वर्ण, ये पुद्गल के गुण हैं। पुद्गल के बन्धन से छूटते ही जीव अनन्त चतुष्टय से युक्त हो जाता है।

अनेकान्तवाद

भारत में जितने भी धार्मिक सम्प्रदाय विकसित हुए, उनमें से अहिंसावाद को उतना महत्व किसी ने भी नहीं दिया जितना कि जैन धर्म ने दिया है। बौद्ध धर्म में फिर भी अहिंसा की एक सीमा है कि स्वयं किसी जीव का वध न करो, किन्तु, जैनों की अहिंसा बिल्कुल निस्सीम है। स्वयं हिंसा करना, दूसरों से हिंसा करवाना या अन्य किसी भी तरह से हिंसा में योग देना, जैन धर्म में सबकी

मनाही है और विशेषता यह है कि जैन–दर्शन केवल शारीरिक अहिंसा तक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत, वह बौद्धिक अहिंसा को भी अनिवार्य बताता है। यह बौद्धिक अहिंसा ही जैन–दर्शन का अनेकान्तवाद है।

अनेकान्तवाद का दार्शनिक आधार यह है कि "प्रत्येक वस्तु अनन्त गुण, पर्याय और धर्मों का अखण्ड पिण्ड है। वस्तु को तुम जिस दृष्टि से देख रहे हो, वस्तु उतनी ही नहीं है। उसमें अनन्त दृष्टिकोणों से देखे जाने की क्षमता है। उसका विराट स्वरूप अनन्त धर्मात्मक है। तुम्हें जो दृष्टिकोण विरोधी मालूम होता है, उसका ईमानदारी से विचार करो तो उसका विषयभूत धर्म भी वस्तु में विद्यमान है। चित्त से पक्षपात की दुरभि–संधि निकालो और दूसरे के दृष्टिकोण के विषय को भी सहिष्णुतापूर्वक खोजो, वह भी वहीं लहरा रहा है।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनेकान्त का अनुसंधान भारत की अहिंसा–साधना का चरम उत्कर्ष है और इसे जितने ही शीघ्र जो अपनाएगा उसे शान्ति और आत्म–संतुष्टि भी उतनी ही शीघ्र स्थापित होगी।

स्याद्‌वाद

अहिंसा की चरम मानसिक शक्ति अनेकान्तवाद है जो हमें यह चेतावनी देता है कि बहस के समय अपनी आँखों को लाल मत बनाओ, न कभी इस भाव को मन में स्थान बनाने दो कि तुम जो कुछ कहते हो एक मात्र वह सत्य है। किन्तु, मन में इस अहिंसा युक्त भाव को हम किस प्रकार प्रकट कर सकते हैं? इस जिज्ञासा का समाधान जैन दर्शन ने स्याद्‌वाद से किया। अनेकान्त चिंतन की अहिंसामयी प्रक्रिया का नाम है और स्याद्‌वाद उसी चिन्तन की अभिव्यक्ति की शैली को कहते हैं, अर्थात् अनेकान्तवाद का संबन्ध मनुष्य के विचार से है किन्तु स्याद्‌वाद उस विचार के योग्य अहिंसायुक्त भाषा की खोज करता है। स्याद्‌वाद के अनुसार, सच्चा अहिंसक यह नहीं कहेगा कि *"यह बात सत्य है"*, उसके मुख से बराबर यही निकलेगा। *"स्यात् यह ठीक हो।"*

धर्माचरण के सिद्धान्त – अहिंसा जैनों का परम धर्म है और इस बात पर वे जितना अधिक जोर डालते हैं उतना और किसी बात पर नहीं। जब जैन धर्म के उत्कर्ष का समय था तब जैन मुनि खेती का विरोध करते थे ; क्योंकि खेत जोतने से मिट्टी में पड़े जीव मारे जाते थे। वे पानी को केवल छानकर ही नहीं, खौला कर पीते थे, जिससे जीव उनके मुख में नहीं चले जाएँ ; वे मधु नहीं खाते थे, क्योंकि मधु लाने के क्रम में मक्खियों का नाश होता है, वे दीपक को बराबर कपड़े से आवृत रखते थे जिससे पतंगे उस पर आकर जल नहीं जाएँ और आगे की राह को वे बुहारते (फूंकते) चलते थे जिससे चींटियों और कीट–पतंगों पर उनके पाँव न पड़े।

जैन धर्म की दूसरी विशेषता अपरिमित कष्ट सहने की प्रवृत्ति है। जैन महात्मा इन्द्रिय–सुखों के घोर शत्रु हैं। कर्म के आस्रव के प्रभाव से बचने के लिए, वे संसार के प्रत्येक सुख से अलग भागने को धर्म समझते हैं। भोग के बारे में दो प्रकार के सम्प्रदाय हैं; एक वे जो यह कहते हैं कि ईश्वर, स्वर्ग, नरक, पाप और पुण्य, ये सब–के–सब झूठे हैं; आदमी जब मर जाता है तब फिर उसकी कोई बात शेष नहीं रह जाती है। इसलिए अच्छा यही है कि हम जब तक संसार में जियें तब तक सुख से जियें और सभी प्रकार के भोगों से अपने को तृप्त कर लें; क्योंकि पाप और पुण्य के मानसिक भय से डरना व्यर्थ है। असली भय पुलिस का है और अगर पुलिस से बचकर तुम इच्छित भोग पा सकते हो तो उसे जरूर भोगो। यह संप्रदाय जड़वादियों का है। इसके विपरीत, दूसरी ओर वह संप्रदाय है जो यह कहता है कि ईश्वर है और दुनिया उसी की बनायी हुयी है। हम जो जन्म लेकर आए हैं सो हमारा जन्म पूर्वजन्म के पापों के कारण हुआ है। हम अगर पाप नहीं करते तो हमारा जन्म नहीं होता। पाप करने से पुनर्जन्म होता है और अधिक पाप करने से मनुष्य को विवाह करना

तथा गृहस्थी के अनेक जंजालों में पड़ना पड़ता है। मनुष्य का लक्ष्य मोक्ष है। मोक्ष से दूर होने के कारण, मनुष्य जन्म लेता है एवं उससे और अधिक दूर होने के कारण वह विवाह करके सांसारिकता में गिरफ्तार होता है। पुनर्जन्म से छूटने का उपाय यह है कि भोग को छोड़े, क्योंकि भोगासक्ति ही पाप है। यह संप्रदाय, जिसे यती संप्रदाय *(Ascetic)* कह सकते है हर खूबसूरत चीज को गुनाह की जगह और प्रत्येक सुख को दुःख का कारण मानता है। भारत में इस यती–वृत्ति का चरम–विकास जैन साधुओं के बीच हुआ। ये जैन साधु शरीर को आत्मा का दुश्मन मानते थे और वे चुन–चुन कर उस मार्ग पर चलते थे जिससे शरीर को अपरिमित कष्ट हो। आज भी, वे सवारी पर नहीं चढ़ते, दूर–दूर तक पैदल ही चले जाते हैं। वे दाढ़ी–मूँछ भी नाई से नहीं बनवाते, बल्कि, राख लगाकर खुद ही उन्हें नोच डालते हैं। जब जैन धर्म अपने पूरे उत्कर्ष पर था तब, कहते हैं, जो साधक बारह साल तक धर्म की साधना कर लेता था, उसे यह अधिकार मिल जाता था कि वह चाहे तो उपवास करके अपने प्राण दे दे। अनशन और उपवास से आत्म–हत्या करने की जैन धर्म में बड़ी महिमा है। जैन लोगों का विश्वास है कि मौर्यवंशी सम्राट चन्द्रगुप्त, अपने अन्तिम दिनों में, जैन हो गए थे और, जब मगध में अकाल पड़ा, तब वे बहुत से धर्म बन्धुओं को साथ लेकर दक्षिण भारत की ओर चले गए जहाँ उन्होंने उपवास करके अपना शरीर छोड़ दिया। जैन धर्म के अनेक महात्मा इसी विधि से मरे हैं।

जैन धर्म का त्रिरत्न (सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र) वास्तव में, हिन्दुओं के भक्ति योग, ज्ञानयोग और कर्मयोग का ही दूसरा रूप है। यहाँ एक अन्तर है कि हिन्दू–धर्म में ज्ञान, कर्म और भक्ति में से कोई भी एक मार्ग मुक्ति के लिए यथेष्ट समझा जाता है किन्तु, जैन धर्म मोक्ष–लाभ के लिए सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र, तीनों को आवश्यक मानता है।

त्रिरत्न में पहला स्थान सम्यक् दर्शन का आता है जिसके पालन के लिए आवश्यक है कि मनुष्य तीन प्रकार की मूढ़ताओं और आठ प्रकार के अहंकारों को बिल्कुल छोड़ दे। तीन प्रकार की मूढ़ताएँ हैं – लोक मूढ़ता, देव–मूढ़ता, और पाषण्ड–मूढ़ता। नदियों में स्नान करने से शुचिता ही नहीं, पुण्य भी बढ़ता है, और ऐसी अनेक भ्रांतियाँ लोक–मूढ़ता के उदाहरण हैं, जो त्याज्य हैं। देवी–देवताओं की शक्तियों में विश्वास करना देव–मूढ़ता है तथा साधु–फकीरों के चमत्कार में विश्वास करना पाषण्ड–मूढ़ता है। जैन धर्म में वे सभी अंध–विश्वास त्याज्य हैं। जब तक ये अन्ध–विश्वास नहीं छूटते, मनुष्य, धर्म के सच्चे मार्ग पर नहीं आ सकता।

जिस धर्म ने अहिंसा पर इतना जोर डाला वहाँ विनम्रता का गुण अनिवार्य है। इसलिए, जैन धर्म में आठ प्रकार के अहंकार भी त्याज्य बताए गए हैं। ये हैं – 1– अपनी बुद्धि का अहंकार, 2– अपनी धार्मिकता का अहंकार, 3– अपने वंश का अहंकार, 4– अपनी जाति का अहंकार, 5– अपने शरीर या मनोबल का अहंकार, 6– अपनी चमत्कार दिखाने वाली शक्तियों का अहंकार, 7– अपने योग और तपस्या का अहंकार, 8– अपने रूप और सौन्दर्य का अहंकार। इतनी तैयारी कर लेने के बाद ही सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र का फल साधक को मिल सकता है।

जैन धर्म कर्मवादी है और उसका उद्देश्य मनुष्यों के कर्मों का परिष्कृत एवं उन्नत बनाना है। प्रत्येक जैन गृहस्थ को पंचव्रत का प्रण लेना पड़ता है जिनके नाम अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह है। खेती–बारी में जो जीव–हिंसा अनिच्छित ढंग से हो जाती है, वह गृहस्थों को क्षम्य है। इसी प्रकार, ब्रह्मचर्य के मामले में भी परस्त्री–गमन ही वर्जित है और अपरिग्रह के द्वारा गृहस्थ को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि वह अपनी आवश्यकता से अधिक संपत्ति अपने पास नहीं रखेगा, उसे दान में दे देगा। शायद, इसी व्रत का पालन करने के लिए आज भी जैन

गृहस्थ अपनी आय का एक भाग दान के लिए उत्सर्ग कर देते हैं।

गृहस्थों के लिए जो व्रत परिमित रखे गए हैं, श्रमणों और संन्यासियों पर वे ही व्रत अत्यन्त कठोरता से लागू किए जाते हैं, क्योंकि उन्हें छूट की आवश्यकता नहीं है तथा उन्हें प्राणपन से इन व्रतों के पूर्ण पालन का प्रयास करना ही चाहिए।

जैन धर्म का इतिहास

ऋषभदेव और अरिष्टनेमि को लेकर जैन धर्म की परम्परा वेदों तक पहुँचती है। महाभारत–युद्ध के समय, इस संप्रदाय के एक नेता नेमिनाथ थे जिन्हें जैन अपना तीर्थंकर मानते हैं। ई0पू0 आठवीं सदी में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ हुए जिनका जन्म काशी में हुआ था। काशी के पास ही, ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ का जन्म हुआ था। जिनके नाम पर सारनाथ का नाम चला आता है। जैन–धर्म के अन्दर, श्रमण–संप्रदाय का पहला संगठन पार्श्वनाथ ने किया था। ये श्रमण वैदिक प्रथा के विरूद्ध थे और महावीर तथा बुद्ध के काल में, ये ही श्रमण कुछ बौद्ध और कुछ जैन हो गए तथा दोनों ने अलग–अलग अपनी संख्या बढ़ा ली।

जैन–पंथ के अन्तिम तीर्थंकर महावीर वर्द्धमान हुए जिनका जन्म ई0पू0 599 में हुआ था। वे 72 वर्ष की अवस्था में स्वर्गीय हुए। महावीर स्वामी ने मरने के पूर्व, इस संप्रदाय की नींव और भी अधिक पुष्ट कर दी, अहिंसा को उन्होंने पक्के तौर पर स्थापित कर दिया और जब वे मरे, तब उनका संप्रदाय, पूर्णरूप से संगठित और सक्रिय था। सांसारिकता पर विजयी होने के कारण, वे जिन (जयी) कहलाए और उन्हीं के समय से इस संप्रदाय का नाम जैन हो गया।

जब सिकन्दर भारत आया था, तब जैन साधु सिन्धु के तट पर भी बसे हुए थे। चन्द्रगुप्त मौर्य जैन हुए थे या नहीं, इस विषय में अभी भी सन्देह है, किन्तु अशोक के अभिलेखों से यह पता लगता है कि उसके समय में मगध में जैन–धर्म का प्रचार था। लगभग इसी समय, मठों में बसने वाले जैन मुनियों में यह मतभेद शुरू हुआ कि तीर्थंकरों की मूर्तियाँ कपड़े पहना कर रखी जाएँ या नग्न ही तथा मुनियों को वस्त्र पहनना चाहिए या नहीं। यह मतभेद इतना बढ़ा कि ईसा की पहली सदी में आकर जैन मतावलम्बी मुनि दो दलों में बँट गए। एक दल, श्वेताम्बर जिसके साधु श्वेत वस्त्र पहनते थे और दूसरा दल, दिगम्बर जिसके साधु नग्न ही घूमते थे।

मौर्यकाल में भद्रबाहु के नेतृत्व में, जैन श्रमणों का दल दक्षिण गया और मैसूर में रहकर अपने धर्म का प्रचार करने लगा। ईसा की पहली शताब्दी में कलिंग के राजा खाराबेल ने जैन–धर्म स्वीकार किया। ईसा की आरंभिक सदियों में, उत्तर में मथुरा और दक्षिण में मैसूर (श्रमण बेलजोला) जैन–धर्म के बहुत बड़े केन्द्र थे। पाँचवीं से बारहवीं शताब्दी तक दक्षिण के गंग, कदम्ब, चालुक्य और राष्ट्रकूट राजवंशों ने जैन–धर्म की बहुत सेवा की और उसका काफी प्रचार किया। इन राजाओं के यहाँ अनेक जैन कवियों को भी आश्रय मिला था जिनकी रचनाएँ आज तक उपलब्ध हैं। ग्यारहवीं सदी के आस–पास, चालुक्य–वंश के राजा सिद्धराज और उनके पुत्र कुमारपाल ने जैन–धर्म को राजधर्म बना लिया तथा गुजरात में उसका व्यापक प्रचार किया। जैन विद्वान, हेमचन्द्र कुमार पाल के ही दरबार में रहते थे। जैन धर्म का राजपूताने में भी अच्छा प्रचार था। चूंकि जैन धर्मावलम्बी बहुत ही शान्तिप्रिय होते थे, इसलिए मुसलमानों के शासन–काल में उन पर अधिक जुल्म नहीं हुए, बल्कि अकबर ने उनकी थोड़ी बहुत सहायता ही की थी। परन्तु, धीरे–धीरे जैन मठ टूट गए और मुगलों के समय में ही, उनका प्रभाव जाता रहा। अब इस देश में केवल बारह–चौदह लाख जैन रह गए हैं जो, मुख्यतः व्यापार करते हैं। तब भी, इस देश में दान धर्म के अनेक चिन्ह (धर्मशाला, विद्यालय, मठ–मन्दिर आदि) इस संप्रदाय वालों के बनवाए हुए हैं।

मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण भी जैन संप्रदाय ने खूब किया। बहुत से स्तूप जैनों के भी हैं। मथुरा में पाये जाने वाले जैन स्तूप सबसे पुराने हैं। बुन्देलखण्ड में ग्यारहवीं और बारहवीं सदियों की जैन मूर्तियाँ ढ़ेर–की–ढ़ेर मिलती हैं। मैसूर के श्रमण बेलजोला और करकल नामक स्थानों में गोमतेश्वर या बाहुबली की विशाल प्रतिमाएँ हैं। ग्वालियर के पास चट्टानों में जैन मूर्तिकारी के जो नमूने हैं वे पन्द्रहवीं सदी के हैं। जैनों ने पर्वत काटकर कन्दरा–मन्दिर भी बनवाए थे जिनके ई0पू0 द्वितीय शती के नमूने उड़ीसा के हाथी गुम्फा कन्दरा में मिलते हैं।

निष्कर्ष

भारतीय धर्मों में जैन धर्म भी एक ऐसा धर्म है जो सर्वाचीन होने के कारण अभी तक विदेशी धर्म अर्थात् पाश्चात्य मसीही धर्म से एकदम अछूता रहा है न तो जैन धर्मावलम्बी अपने धार्मिक विश्वासों में प्रभावित हुए है और न ही उन्होंने मसीही धर्म के किसी धार्मिक सिद्धान्त को अपनाया। इसके विपरीत जैन धर्म ने मसीही धर्म के प्रेम, करूणा, अहिंसा के सिद्धान्तों को बौद्ध धर्म के माध्यम से परोक्ष रूप में प्रभावित किया है, क्योंकि मसीही धर्म 2000 वर्ष प्राचीन होने पर भी जैन धर्म की तुलना में नया है। जैन धर्म अपने निवृत्ति मूलक दृष्टिकोण के कारण मसीही धर्म के प्रवृत्ति मूलक दृष्टिकोण से एकदम उलट है। जैन धर्म की कृच्छ जैसी साधना मसीही धर्म में सम्भव ही नहीं है। जैन धर्माचार्य आज भी अपनी पुरानी भाषा 'अपभ्रंश' का ही प्रयोग करते हैं जबकि मसीही धर्म समय और देश के अनुरूप बाइबिल का अनुवाद करवातें हैं और अपनी आराधना में आधुनिक भाषाओं का ही इस्तेमाल करते हैं। मसीही धर्म में संन्यास जैसा कुछ नहीं है और मसीही पुरोहित विवाह आदि कर, गृहस्थ होते हुए भी मसीही समाज को प्रवचन आदि सुनाता है, और आराधना विधियों को सम्पन्न करता है जबकि जैन धर्माचार्य मुनि और साध्वी के रूप में सन्यासी जैसा जीवन व्यतीत करतें हैं। यदि मसीही धर्म ने जैन धर्म को प्रभावित भी किया है तो वह अपने पाश्चात्य रूप में ऐसा किया है, अर्थात् आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा एवं ज्ञान–वैज्ञानिक दृष्टिकोण जिसको आधुनिक जैन युवकों ने अपनाया है। जैन महिलाएँ अब भी परम्परावादी हैं और किसी भी वर्तमान आधुनिक सोच–विचार से परे हैं।

एक और विशेष अन्तर दोनों धर्मों में है, वह है मोक्ष के प्रति दोनों धर्मों का दृष्टिकोण। जैन धर्म में मोक्ष की साधना केवल सन्यासी कर सकते हैं जबकि मसीही धर्म में मोक्ष सब को सुलभ है और यह केवल व्यक्ति को प्रभु येशु पर विश्वास करने से ही प्राप्त कर सकता है।

जैन धर्म मूलतः एक दार्शनिक धर्म है जबकि मसीही धर्म का दर्शन से कुछ भी लेना–देना नहीं है, वह अत्यन्त व्यावहारिक धर्म है अर्थात् व्यक्ति जैसा विश्वास करता है वैसा ही उसको आचरण भी करना पड़ता है।

बौद्ध धर्म

बुद्ध देव का जन्म और उनके द्वारा चलाए गए धर्म का उत्थान कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। वास्तव में बौद्ध धर्म उस विचारधारा का स्वाभाविक परिणाम था जो कर्मकांड, हिंसायुक्त यज्ञ के आडम्बर और पुरोहितवाद के विरुद्ध पहले से ही बहती आ रही थी और जिसकी आवाज हम उपनिषदों और गीता में भी सुनते हैं। वेद और उपनिषद पढ़ने का अधिकार शूद्रों को नहीं दिया गया था।* न उन्हें यही अधिकार था कि द्विजों की तरह वे भी यज्ञ करके लोक और परलोक में सुख भोगने की योग्यता प्राप्त करें। उस समय का समाज, सचमुच ही, बौद्धिक संकट का सामना कर रहा था। जन साधारण की कठिनाई यह थी कि यज्ञ करने को छोड़कर उसके आगे धर्म का कोई और मार्ग नहीं था। किन्तु, समाज के प्रायः सभी चिन्तक यज्ञ के खिलाफ होते जा रहे थे और साधारण गृहस्थ को भी यह ज्ञान हो गया था कि यज्ञों के आलोचक झूठ नहीं कहते हैं। दूसरी ओर, उपनिषदों की चोटी से जो ज्ञान आ रहा था उस समय तक साधारण मनुष्य की पहुँच नहीं थी। देश में विभिन्न मत–मतान्तरों के जो झकोरे चल रहे थे, वे भी उसे बेचैन किए हुए थे। ऐसी हालत में, जनता कोई ऐसा धर्म चाह रही थी जो सुगम और सुबोध हो, जिसमें पशुबलि की क्रूरता भी नहीं हो और व्यर्थ का आडम्बर भी नहीं, जो मनुष्य को अतिभोग से भी दूर रखे और तपस्या तथा बलि–वृत्ति की कठोरता से भी; जो मनुष्य के ध्यान को धर्म की ओर तो अवश्य ले जाए, किन्तु बीसों प्रकार के ऊहापोह में उसे उलझाए नहीं। वास्तव में, जनता कोई व्यावहारिक धर्म चाह रही थी और बुद्धदेव ने वही धर्म उसे दिया भी। वे हिन्दू धर्म से दूर नहीं गए, उन्होंने हिन्दू धर्म के मूल पर प्रहार नहीं किया, बल्कि उनकी चोटों के निशान हिन्दू धर्म की कुरीतियाँ और कमजोरियाँ थीं। इसलिए, यह मानना अधिक युक्ति युक्त है कि बौद्ध धर्म कोई नया धर्म नहीं, बल्कि हिन्दुत्व का ही संशोधित रूप है। वास्तव में, अपनी कुरीतियों से लड़ने के लिए हिन्दुत्व ने ही बौद्ध धर्म का रूप लिया था जैसा कि वह प्रत्येक संकटकाल में लेता रहा है, और जिन आचार्यों ने बुद्धदेव की गिनती हिन्दू धर्म के दशावतार में की, उनका भी यही भाव रहा होगा कि बुद्ध पराए नहीं अपने हैं और *'धर्म संस्थापनार्थ'* विष्णु जैसे राम और कृष्ण बनकर आए थे, वैसे ही, पशुहिंसा को रोकने के लिए, इस बार, वे बुद्ध बनकर आए हैं।[193] वे प्रचलित धर्म के भंजक नहीं, सुधारक थे।

बुद्ध–चरित – ईसा पूर्व 623 में बुद्ध का जन्म हुआ। उनके पिता शुद्धोदन, कोशल के अधीन सूर्यवंशी राजा थे जो शाक्य गणतन्त्र प्रमुख शासक थे। उनकी माता महामाया कपिलवस्तु से अपने मायके देवदह जा रही थी जब लुम्बिनी वन में सुपुष्पित दो शाल वृक्षों के बीच में बुद्ध का जन्म हुआ। ढाई सौ वर्ष बाद अशोक ने बुद्ध के जन्म–स्थान पर जो स्मारक बनवाया वह आज भी इस घटना का साक्षी है। आसित नामक एक वृद्ध सन्यासी शुद्धोदन के महल में आए और उन्होंने नवजात शिशु को देखा। उसके सौभाग्यशाली लक्षणों को देखकर उन्होंने प्रसन्नता से कहा कि दुनिया में एक उद्धारक आ गया है। उनकी आँखों से आँसू झर पड़े, क्योंकि अतिवृद्ध होने से वह इस बालक की उपलब्धियाँ देखने के लिए जीवित नहीं रह सकेंगे। बालक का नाम गौतम रखा गया, जबकि उसे सिद्धार्थ कहकर पुकारा जाता था। शाक्य जन बुद्ध का जन्मोत्सव मना रहे थे कि बुद्ध–जन्म के सात दिन बाद महामाया की मृत्यु हो गई। गौतम का पालन उसकी सौतेली माँ और महामाया की बहन महाप्रजापति गौतमी ने किया। बचपन से ही गौतम एकान्त प्रिय, गम्भीर और मननशील थे। यह देखकर पिता ने उनके लिए तीन ऋतुओं में विलास–योग्य तीन प्रासाद बनवा दिए, यशोधरा

---

* *"शुद्र चलता–फिरता शमशान है, उसके इतने समीप अध्ययन न करे कि उसे सुनाई दे। यदि वह जानबूझ कर श्रुति सुने तो लाख या शीशा गलाकर उसके कान में डालना चाहिए।"*

से उनका विवाह करा दिया। कई प्रकार के नृत्य संगीत के प्रबन्ध करा दिए, परन्तु होनी कुछ और ही थी। कोमल हृदय राजपुत्र ने एक जरा जर्जर, एक रोग–जर्जर और एक मृत व्यक्ति को देखा, और बाद में एक विरक्त सन्यासी को देखा। उनके मन में दुःख का कारण जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। गौतम को यशोधरा से एक पुत्र भी हुआ। यह समाचार सुनकर गौतम ने कहा कि एक राहुल (बाधा) पैदा हुई है। शुद्धोदन ने सोचा कि चलो इसका नाम राहुल ही रख दें। शायद इसी कारण संसार में बुद्ध का मन लगा रहेगा परन्तु एक मध्यरात्रि को जब नर्तिकाएँ बुद्ध के मन को बहलाने का यत्न कर रहीं थीं, तो गौतम का मन बिल्कुल भी नहीं लगा। वे अपने पत्नी और बच्चे को सोता हुआ छोड़कर, जिससे किसी को पता न चले ऐसे चुपचाप, घोड़े पर सवार होकर जंगल की ओर चले गए। वहाँ उन्होंने अपने राजसी परिधान छोड़ दिए, तलवार से अपने लम्बे बाल काट डाले और वे विरक्त बन गए।

सबसे पहले वह एक गुरू आडार कालाम के पास गए, फिर दूसरे गुरू उद्रक रामपुत्र के पास। उन्होंने उनसे जो कुछ सीखना था सीख लिया, फिर भी उनकी सत्य–ज्ञान की प्यास अनबुझी रही। वे अन्त में बोधगया के पास एक सुरम्य प्रदेश में पहुँचे, जहाँ चारों ओर घने जंगल थे, रूपहली रेती के बीच से झरने बहते थें। गौतम ने इस सामान्य विश्वास से कि शरीर–यातना से मन अधिक उदात्त बनता है, कई प्रकार की तपस्याएँ की। परन्तु उन्होंने देख लिया कि इस मार्ग से कुछ नहीं मिलता। छः वर्ष तपस्या करने पर, जब वे 36 वर्ष के थे, उनके मन में यह भाव जगा कि वे संबोधि प्राप्त करेंगे। दोपहर को सुजाता ने उन्हें खीर दी। शाम को एक घास काटने वाले ने उन्हें सूखी घास की पूलियाँ सोने के लिए दीं। इन्हें शुभ शकुन मानकर एक पीपल के वृक्ष के नीचे वे जमकर बैठ गए, यह निश्चय करके कि "चाहे मेरा चर्म, मेरी नाड़ियाँ और मेरी हड्डियाँ गल जाएँ, मेरा रक्त सूख जाए, मैं इस मुद्रा से नहीं उठूँगा, इसी आसन पर दृढ़ रहूँगा, जब तक कि मुझे ज्ञान प्राप्त न हो।"[194] यह प्रतिज्ञा करने पर मार ने उन्हें डराने के लिए पहले झंझावत चलाए, प्रभंजन भेजे। परन्तु मार के अस्त्र बोधिसत्व तक न पहुँच सके, वे फूलों से परिणित हो गए। बोधिसत्व को स्वर्ग में पुनर्जन्म के प्रलोभन भी मार ने दिए, पर उनका कुछ भी प्रभाव न हुआ। मार आखिर पराजित होकर चला गया, उसकी सेना सब दिशाओं में भाग गई। उसी रात को गौतम को कारण–चक्र का पता लगा। इसका विचार पहले किसी चिन्तक ने नहीं किया था। इस विचार से बोधिसत्व बुद्ध बन गए। विनयपिटक के महावग्ग में लिखा है कि "जब उस जिज्ञासु के लिए सब बातें स्पष्ट हो गई, मार की सेनाओं को भगाकर वह आकाश के सूर्य की भाँति प्रदीप्त हुआ।"[195]

इस प्रकार चार सप्ताह उन्होंने बोधिवृक्ष के नीचे साधना में बिताए। इसके बाद वे यात्रा पर निकले। राह में मार की लड़कियों ने उन्हें घेर लिया और उन्हें लुभाने की बड़ी कोशिश की। परन्तु भगवान दृढ़चित्त रहे। उन्होंने कहा कि ऐसे प्रयत्न उन पर प्रभाव डाल सकते हैं जिन्होंने अपने मन को वशीभूत नहीं किया है, परन्तु उनका बुद्ध पर कोई प्रभाव नहीं हो सकता।[196] बाद में बुद्ध को दो व्यापारी मिले, जिनके नाम *'तपुस्स'* और *'मल्लिक'* थे। उन्होंने बुद्ध को जौ और मधु का खाद्य दिया। वे बुद्ध के पहले शिष्य बने। बुद्ध के मन में पहले यह शंका हुई कि लोभ और द्वेष से भरी दुनिया में अपना यह सत्य मैं क्यों बताऊँ ? परन्तु बाद में उन्हें आत्म–विश्वास हुआ कि कुछ लोग तो ऐसे मिलेंगे ही जिनकी दृष्टि साफ होगी। वे इसी विचार से बनारस के पास ऋषिपत्तन (सारनाथ) में मृग–वन में पहुँचे, जहाँ उन्होंने धर्मचक्र–प्रवर्तन किया। यही माध्यम–मार्ग का पाँच शिष्यों को उपदेश कहा जाता है, और संघ की स्थापना हुयी। जो इस प्रकार है –

उरूवेला का कश्यप एक अग्निपूजक जटाधारी ब्राह्मण था जो बड़ा यज्ञ कर रहा था। बुद्ध

ने वहाँ एक लोकोत्तर चमत्कार दिखलाया। बुद्ध की अनुमति के बिना ब्राह्मण अग्नि प्रज्जवलित न कर सके। जब अग्नि जल उठी तो बहुत बड़ी बाढ़ आ गई। बुद्ध ने यज्ञ करने वालों को बचा लिया। काश्यप और उसके चेले बुद्ध के शिष्य बन गए। बुद्ध उन सबको लेकर गयाशीर्ष में गए और वहाँ से मगध की राजधानी राजगृह में गए। मगध के राजा बिंबिसार ने एक वंश वन संघ को विहार के रूप में दान दिया था। मगध में संजय रहते थे, जिनके कई शिष्य थे। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन भी उन्हीं में से थे। सारिपुत्र ने एक बौद्ध भिक्षु अश्वजित के मुँह से सुना था कि :

"उन वस्तुओं के बारे में जिनका कारण है, और जो कारण हैं, उसके बारे में बुद्ध ने ज्ञान दिया है, और उनका दमन भी किस प्रकार किया जाय यह भी उस महान विरक्त ने बता दिया है।"[197] सारिपुत्र भी बुद्ध का शिष्य बन गया और उसके पीछे मौद्गल्यायन भी। संघ में ये दो बुद्धिमान ब्राह्मण आ जाने से उनका गौरव बढ़ा। वे भगवान बुद्ध के प्रधान शिष्य बने। उनके अस्थि–अवशेष आज भी सुरक्षित हैं और बौद्ध तीर्थों में पूजे जाते हैं।[198]

संबोधि के एक वर्ष के बाद शुद्धोदन ने अपने पुत्र को कपिलवस्तु में बुलाया। शुद्धोदन ने अपने पुत्र की अगवानी की। बुद्ध अब एक साधु पुरूष हो गए थे। दूसरे दिन बुद्ध ने नगर की फेरी की और भिक्षा माँगी। पत्नी यशोधरा को बुद्ध अब अधिक दिव्य पुरूष जान पड़े। वह उनके चरणों में अर्पित हो गई, और अपने पुत्र से बोली, "राहुल अपने पिता से दया माँग।" बुद्ध ने उसे भी अपना शिष्य बनाकर संघ की शरण में ले लिया। परिवार का 'नापित उपाली' भी भिक्षु बना। श्रावस्ती के एक धनी व्यापारी अनाथ–पिंडिक' ने पूरा जेतवन, इतनी सुवर्ण मुहरें देकर जिनसे सारी जमीन ढ़क जाए, खरीद लिया और वहाँ जेतवन विहार बनवा दिया। कोशल का राजा प्रसेनजित विशाखा नामक एक धनी स्त्री और कोशल के कई अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति बुद्ध के शिष्य बन गए। वह बाद में राजगृह गए वहाँ वे बीमार पड़ गए। जीवक नामक राज–वैद्य (कुमार–भृत्य) ने उनका इलाज किया। जीवक भी बुद्ध के शिष्य हो गए।

तीन साल बाद शाक्यों और कोलियों के बीच नदी के पानी को लेकर बड़ा झगड़ा पैदा हो गया। भगवान बुद्ध ने बीच–बचाव न किया होता तो बहुत बड़ा फसाद बन जाता। इसके बाद ही शुद्धोदन की मृत्यु हो गई। गौतमी ने अपने पुत्र से कहा कि मुझे भी संघ में ले लो। बुद्ध के प्रधान शिष्य आनन्द ने उनका समर्थन किया और वे प्रथम भिक्षुणी बनीं। इस प्रकार भारत में पहली बार एक स्त्री के लिए भी घर छोड़ कर आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग खुल गया। कई वर्ष बीत गए। बुद्ध और उनके शिष्य देश भर में भ्रमण करते रहे।

जब बुद्ध 72 वर्ष के हुए तो अजातशत्रु ने मगध के राजा अपने पिता बिंबिसार की हत्या करा दी। यह नया राजा संघ के एक भिक्षु देवदत्त का चेला था। दोनों ने मिलकर बुद्ध के प्राण लेने के यत्न किए, परन्तु नतीजा उल्टा ही निकला। देवदत्त ने एक बहुत बड़ा पत्थर बुद्ध पर बड़ी ऊँचाई से गिराने का यत्न किया, परन्तु जरा सी चोट ही उन्हें लगी। अन्त में उन पर एक पागल हाथी छोड़ा गया। उसने भी बुद्ध के आगे झुककर प्रणाम किया। देवदत्त ने इन सब प्रयत्नों में निराश हो संघ में फूट डालने की कोशिश की। नया संघ भी बनाया, पर अन्त में देवदत्त मुँह से खून गिरने के कारण मर गया। वह और षड़यन्त्र न कर सका।

भगवान बुद्ध की मृत्यु के दो वर्ष पूर्व उसके संघ को एक बड़े दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा। कोशल के राजा प्रसेनजित का शाक्य रानी से एक पुत्र था, जिसका नाम विडूड़भ था। अपनी माता के घर उसका नीच कुल में उत्पन्न होने के कारण अपमान किया गया। उसने गुस्से में प्रतिज्ञा की कि मैं शाक्यों से बदला लेकर रहूँगा। अपने पिता की मृत्यु के बाद उसने पूरी शाक्य जाति को

तलवार के घाट उतार दिया। जब वृद्ध बुद्ध ने यह समाचार सुना तो उनको अत्यधिक दुःख हुआ। फिर भी वे जगह–जगह घूमते रहे और शान्ति, विश्वबन्धुत्व, प्रेम और पवित्रता का उपदेश देते रहे।

अस्सी वर्ष की आयु में बुद्ध को लगा कि अब उनका अन्त निकट आ गया है। उन्होंने आनन्द को समझाया कि अब बुद्ध–वाणी ही उनकी निर्देश–दायिनी रहेगी। शाक्यों के कत्ले–आम के बाद एक ही सप्ताह में सारिपुत्र और मौद्‌गल्यायन मर गए। तब बुद्ध पावा में थे। चुन्ड. नाम के एक लुहार ने उन्हें चावल, रोटि और सूकरमद्‌दव खाने के लिए बुलाया। ('सूकरमद्‌दव' शब्द के अर्थ पर बहुत से मतभेद हैं, कुछ लोग इसे सुअर का नरम मांस मानते हैं, कुछ लोग एक प्रकार की खाद्य–वनस्पति'।) बुद्ध को वह खाद्य वस्तु पची नहीं, और उन्हें पेचिश हो गई। उसी बीमारी में वे कुशीनगर पहुँचे। वहाँ दो शालवृक्षों के नीचे उन्होंने आनन्द से एक वस्त्र बिछाने के लिए कहा। दो शाल–वृक्षों के बीच में ही वे जन्में थे, उसी स्थान पर वे मरे। वे एक सिंह की भाँति लेटे रहे, उन्होंने हजारों भिक्षुओं को उपदेश दिया। उनके अन्तिम शब्द थे : ''अब, भिक्षुओं, मुझे तुम्हें और कुछ नहीं कहना है। केवल यही कहना है कि जो कुछ बना हुआ है, वह क्षय होगा। निर्वाण के लिए अपने आप उत्साह से यत्न करो।''[199] बड़े राजसी सम्मान से उनका अन्तिम संस्कार हुआ। बुद्ध की अस्थियों को लेकर जो झगड़ा शिष्यों में हुआ, वह द्रोण नामक एक ब्राह्मण ने शान्त किया। भारत के विभिन्न भागों में आठ स्तूप बनाए गए। वहाँ उनके धातु रखे गए। वैशाखी पूर्णिमा की रात्रि को 483 ई0पू0 में बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ। वैशाखी पूर्णिमा को ही उनका जन्म हुआ था। वैशाखी पूर्णिमा को ही उन्हें संबोधि प्राप्त हुई थी। अतः यह तीन प्रकार के पवित्र दिवस माने जाते हैं।

निश्चित ही महात्मा बुद्ध एक महान व्यक्ति थे। *"Even if judged from the posthumous effects on the world at large he was certainly the greatest man to have been born in India"*[200] अर्थात् (यदि विश्व के ऊपर मरणोत्तर प्रभावों के आधार पर भी उनका मूल्यांकन किया जाए तो वे भारत में जन्में महानतम् व्यक्ति थे)।

'बुद्धिस्ट चायना' नामक बौद्धमत की पत्रिका में भगवान बुद्ध के द्वारा कही हुयी बातें हैं जो हरिजन सेवक में उद्‌धृत हैं, भगवान बुद्ध ने कहा है –

''हम ही बुरा काम करते हैं,
(और) हम ही कष्ट सहते हैं।
हम खुद ही बुराइयों से छूटते हैं,
(और) खुद ही पाक बनते हैं। हमारे सिवा दूसरा कोई हमें नहीं बचाता,
न कोई बचा सकता और न कोई बचाएगा; हमें खुद ही अपना रास्ता
तय करना चाहिए, बुद्ध तो सिर्फ तरीका बतलाते है।''[201]

यही बात गीता में भी सार रूप में प्रकट किया गया है – ''आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः''[202] अर्थात् इन्सान खुद ही अपना दोस्त है और खुद ही अपना दुश्मन है। अर्थात् कोई दूसरा शत्रु या मित्र नहीं है।

बौद्ध धर्म के सिद्धान्त

महात्मा बुद्ध ने जिस बौद्ध धर्म को जन्म दिया उस धर्म के सिद्धान्त 2 भागों में विभाजित हैं :

1. बौद्ध धर्म के दार्शनिक सिद्धान्त – महात्मा बुद्ध ने अपने धर्मोपदेश में कहा कि वे कोई नए धर्म का प्रचार नहीं कर रहे। अपितु पुरातनकाल से चलें आ रहे धर्म की स्थापना कर रहे हैं। महात्मा बुद्ध ने मुख्य रूप से अपने नैतिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत कर्म को सर्वोच्च प्राथमिकता दी है।

कर्मवाद – महात्मा बुद्ध का यह मानना है कि व्यक्ति अपने कर्म के अनुसार फल की प्राप्ति करता

है। उसी से जन्म–मृत्यु और निर्वाण की प्राप्ति होती हैं। इसलिए हर व्यक्ति को नैतिक आदर्शों से संबन्धित कर्म करना चाहिए।

कारणवाद – महात्मा बुद्ध यह मानते थे कि किसी रोग और दुःख का कारण जाने बिना उसका निधान सम्भव नहीं है। इसी प्रकार धर्म स्थापना का भी कोई कारण होता है और उसका अन्त भी किसी कारण से होता है।

प्रयोजनवाद – बौद्ध धर्म की वैचारिक प्रणाली में प्रयोजनवाद की प्रधानता है। उन्होंने व्यर्थ की प्रणालियाँ – हवन, यज्ञ आदि की आलोचना की है।

अनीश्वरवाद – महात्मा बुद्ध का विचार है कि निर्वाण की प्राप्ति ईश्वर से नहीं हो सकती। उन्होंने ईश्वर की सत्ता को नहीं स्वीकारा और न अपने धर्मोपदेश में कहीं ईश्वर का नाम लिया।

अनात्मवाद – महात्मा बुद्ध इस बात का उत्तर नहीं दे सके कि मृत्यु के बाद क्या होता है। उनका विचार था कि शरीर अनेक तत्वों से बना है इसलिए ये तत्व मृत्यु के बाद अपने–अपने तत्वों में विलीन हो जाते हैं।

क्षणवाद – महात्मा बुद्ध के अनुसार यह जगत क्षणिक और परिवर्तनशील है। यहाँ की कोई वस्तु शाश्वत नहीं है।

निर्वाण – महात्मा बुद्ध के अनुसार निर्वाण उस जीवित अवस्था का नाम है जिसमें ज्ञान की ज्योति द्वारा अज्ञान रूपी अन्धकार की समाप्ति होती है। जब निर्वाण प्राप्त होता है वहीं पर शोक, सन्ताप, तृष्णा, पापादि का नाश हो जाता है।

2. *बौद्ध धर्म के व्यावहारिक सिद्धान्त* – महात्मा बुद्ध ने दार्शनिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ व्यावहारिक सिद्धान्तों पर बल दिया है। जो निम्नलिखित हैं –

चार आर्य सत्य

(A) दुःख आर्य सत्य– इस जीवन के प्रमुख चार सत्य हैं।

1– यह जीवन सर्वदुःखमय है।, 2– दुःखों का कुछ–न–कुछ कारण होता है।, 3– हर मनुष्य को यह विचार करना चाहिये कि वह दुःख के कारण को रोके।, 4– हर मनुष्य को यह मार्ग खोज करना चाहिये कि वह दुःखों को दूर करने के लिए कौन सा मार्ग अपनाए। आष्टांगिक मार्ग से ही उसके दुःख दूर हो सकते हैं।

(B) आर्य आष्टांगिक मार्ग– आष्टांगिक मार्ग वह मार्ग है जिससे दुःख दूर होते हैं, तृष्णा का नाश होता है। ये मार्ग तीन प्रमुख भागों में विभाजित है –

1– प्रज्ञाज्ञान, 2– शील, 3– समाधि। ये आष्टांगिक मार्ग– सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीव, सम्यक् प्रयत्न, सम्यक स्मृति और सम्यक् समाधि है।[203]

(C) दस आचरण– प्रत्येक व्यक्ति को दस प्रकार के आचरण करना चाहिए –

1– सत्य बोलना, 2– अहिंसा का पालन करना, 3– ब्रह्मचर्य रहना, 4– चोरी न करना, 5– धन संग्रह की प्रवृत्ति का त्याग करना, 6– सुगन्धित पदार्थों का त्याग करना, 7– कोमल शैय्या का त्याग करना, 8– गायन, मादक पदार्थ एवं काम उत्प्रेरक वस्तुओं का त्याग करना, 9– असमय भोजन का त्याग करना, 10– कुविचारों का त्याग करना।

(D) चार सम्यक् प्रधान – चार सम्यक् प्रधान होते है। इसी प्रकार चार ऋषिपाद भी होते हैं। जैसे– चन्द, वीर्य, चित्त, विमर्श।

(E) पाँच इन्द्रियाँ – बौद्ध धर्म के अनुसार पाँच इन्द्रियाँ – श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा हैं।

(F) पाँच बल – महात्मा बुद्ध ने पाँच शक्तियों को महान शक्ति माना है। ये शक्तियाँ – श्रद्धाबल,वीर्यबल, स्मृतिबल, समाधिबल और प्रज्ञाबल हैं।

(G) सात बोध्यंग – महात्मा बुद्ध का मानना है कि निम्न प्रकार से व्यक्ति ज्ञानवान् बन सकता है। 1– स्मृति, 2– धर्म विजय, 3– वीर्य, 4– प्रीति, 5– प्रश्रब्धि, 6– समाधि, 7– उपेक्षा। उन्होंने निर्वाण के समय भिक्षु समुदाय को संबोधित करते हुए कहा था –

"भिक्षुओं! वे कौन से धर्म हैं, जिन्हें स्वयं जानकर, स्वयं अनुभव कर, मैंने तुम्हें उपदेश दिया है, जिन्हें तुम्हें बढ़ कर सीखना है ? वे हैं चार स्मृति प्रधान, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋषिपाद, पाँच बल, आर्य आष्टांगिक मार्ग तथा सात बोध्यंग।"[204]

यदि हम बौद्ध धर्म का मूल्यांकन करते हैं तो हमें यह जानकारी प्राप्त होती है कि बौद्ध धर्म में कुल 37 सिद्धान्त हैं जिनका अनुपालन बौद्ध धर्म के अनुकरण कर्त्ता करतें हैं। यह धर्म तीन प्रमुख भागों में विभाजित हैं –

हीनयान सम्प्रदाय

यह सम्प्रदाय कट्टर बौद्ध भिक्षुओं का सम्प्रदाय था। इस सम्प्रदाय के अनुसार बौद्ध धर्म से संबन्धित संगीत समितियों में कोई परिवर्तन नहीं होने चाहिए। ये देववाद के विरोधी थे। हीनयान का एक नाम *'श्रावकयान'* भी है। इस सम्प्रदाय के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं –

- महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन करने पर ही निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है।
- निर्वाण प्राप्ति के लिए किसी देवी–देवता की उपासना करना निरर्थक है।
- सृष्टि का आधार कर्म है।
- पूर्वजन्म के कर्मानुसार ही वर्तमान जीवन का निर्धारण होता है।
- मनुष्य स्वावलम्बन तथा स्वयं के प्रयत्नों द्वारा ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है।
- निर्वाण मार्ग कठिन तथा दुरूह है।
- बुद्ध की भगवान के रूप में उपासना नहीं करना चाहिए।
- बौद्ध संगीतियों द्वारा किया गया परिवर्तन धर्म विरुद्ध है।
- ये पवित्रता, सदाचार, व्यवहार निष्ठा तथा धर्म नियमों में पूर्ण आस्था रखते हैं।
- इस सम्प्रदाय के सभी ग्रन्थ पाली भाषा में हैं।
- इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या अपेक्षाकृत सीमित है।

महायान सम्प्रदाय

महायान सम्प्रदाय बौद्ध धर्म के कठोर नियमों में परिवर्तन किए जाने का पक्षपाती है। इसका एक नाम *'बोधिसत्वयान'* है। इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

- इस सम्प्रदाय का उद्देश्य सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके समस्त मानव जाति के दुःखो का निवारण करना था।
- महायान सम्प्रदाय के अनुसार इस जीवन में जीवित रहते हुए निर्वाण की प्राप्ति की जा सकती है।
- महायान सम्प्रदाय के अनुयायी बुद्ध को ईश्वर का अवतार मानकर उनकी उपासना करते थे।
- इस सम्प्रदाय के नियम अत्यन्त सरल, स्पष्ट, आकर्षक, उदार तथा व्यावहारिक हैं।
- महायान सम्प्रदाय मूर्ति पूजा का समर्थक तथा संस्कारों का पक्षपाती है।
- यह सम्प्रदाय समयानुकूल में आस्था रखता है तथा रूढ़िवाद का घोर विरोधी है।

बौद्ध धर्म के सन्दर्भ में –

"शनैः शनैः महायान धर्म में अनेक वैदिक देवताओं का बौद्ध स्वरूप प्रस्तुत किया गया। नागार्जुन ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव और काली को हिन्दू धर्म के अनुकूल ही उपास्य माना। त्रयस्त्रिंशलोक के अधिपति शतमन्यु या वज्रपाणि वैदिक को इन्द्र कहा गया। अन्यत्र बौद्ध देवता मंजुश्री को ब्रह्मा के समकक्ष माना। इनकी दो पत्नियाँ लक्ष्मी और सरस्वती बतायी गयीं। बोधिसत्व अवलोकितेश्वर या पद्मपाणि वैदिक धर्म के विष्णु समान बताए गए।[205]

"It broadened the original scope of the Buddhism, so for as it did not contradict the inner significance of the teachings of the Buddha."[206] (महायान ने बुद्ध की शिक्षाओं के आन्तरिक महत्व का खण्डन किए बिना बौद्ध धर्म के मौलिक क्षेत्र को विस्तृत कर दिया)।

वज्रयान सम्प्रदाय

वज्रयान सम्प्रदाय का उदय बौद्ध धर्म में उस समय हुआ जब बौद्ध धर्म पूर्ण विकसित हो चुका था। इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त महायान सम्प्रदाय से कुछ–कुछ मिलते हैं। सम्प्रदाय के विचारानुसार वज्र एक आलौकिक तत्व है। यह हीरे की तरह कठोर, शून्य की विशुद्ध तथा वज्र की तरह अजेय है इसीलिए इसे परम् सत्य और संबोधि माना है। वज्रयानी मन्त्र–तन्त्र आदि क्रियाओं पर विश्वास करते हैं। इसका विकास 8वीं शताब्दी में हुआ। वज्रयानी हिन्दू धर्म एवं जैन धर्म से प्रभावित हैं। इनके मुख्य देवता *'बोधिसत्व'* हैं। ये लोग देवियों पर भी विश्वास करते थे। इन्होंने नारी की उत्पादन शक्ति को प्राचीन ऋग्वेद के विचारानुसार स्थापित किया। इस संप्रदाय ने स्त्री और पुरूष दोनों को समागम का अधिकार दिया। इसे धर्म का अंग माना तथा तांत्रिक व्यवहार में भी किसी प्रकार का अवरोध न था। स्त्री–पुरूष समागम, मद्य सेवन, पशुओं की हत्या, मांस खाना तथा कभी–कभी मानव मांस का भक्षण भी मान्य था, परन्तु यह सब पवित्र धार्मिक समारोहों में कड़े नियन्त्रण में ही होता था।" दार्शनिक आधार पर कहा जा सकता है कि तन्त्र पर आधारित वज्रयान के सिद्धान्त निर्वाण के साधनों को निर्दिष्ट करते हैं। इसके अनुयायी को विभिन्न प्रकार की मानसिक व आध्यात्मिक क्रियायें करनी पड़ती थीं तथा सिद्धान्त व दर्शन वज्रयान में भ्रष्ट तथा अनैतिक आचरण का मार्ग नहीं था। सभी की क्षमता और धैर्य समान न होने के कारण, वज्रयान के व्यवहार को अनेक अनुयायियों ने विलासिता के रूप में अपना लिया और इससे इस सम्प्रदाय की बड़ी हानि हुयी।[207]

बौद्ध धर्म से संबन्धित अनेक प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। ये ग्रन्थ पाली भाषा में है। इस धर्म का प्रथम ग्रन्थ बुद्ध वचन है। इसके अलावा दूसरा ग्रन्थ त्रिपिटक है। इस ग्रन्थ के तीन भाग हैं – सूत्रपिटक, विनयपिटक, अभिधर्म पिटक। इन ग्रन्थों के माध्यम से बौद्ध धर्म के सन्दर्भ में पूर्ण जानकारी उपलब्ध हो जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ ग्रन्थ संस्कृत भाषा में भी उपलब्ध होते हैं। इन ग्रन्थों की संख्या 22 है :

1– अभिधर्म कोश, भाष्य एवं व्याख्या, 2– अभिधर्मसार, 3– अभिधमीमृत, 4– अभिधर्म दीप, 5– महावस्तु अथवा महावस्तु अवदान, 6– ललित विस्तर, 7– सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र, 8– अष्ट साहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता, 9– अवदान शतक, 10– दिव्यावदान, 11– निदान, 12–कल्पनामण्डितिका (कुमार लता) 13– चतुः शतक स्तोत्र, 14– मैत्रेय व्याकरण, 15– जातक माला, 16– बुद्ध चरित, 17– विज्ञप्ति मात्रता सिद्धि, 18– शिक्षासमुच्चय, 19– बोधिचयवितार, 20– माध्यमिक शास्त्र, 21– कर्मशतक, 22– अवदान कल्पलता (क्षेमेन्द्रकृत) आदि।

बौद्ध धर्म के 6 तीर्थांकर थे। इनके नाम पूर्णकाश्यप, मक्खलि गोसाल, प्रकुध कात्यायन,

अजित केशकम्बली, संजय वेलट्ठिपुत्त, निगण्ठ नाथ पुत्त आदि थे। इन तीर्थंकरों ने 6 सम्प्रदायों को जन्म दिया और बौद्ध धर्म में नए सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया किन्तु इन सिद्धान्तों का कोई विशेष प्रचार–प्रसार नहीं हो सका। बौद्ध धर्म में दुःख को और उसके कारण को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। मूर्ख व्यक्ति दुःख के कारण को नहीं समझ पाते इसलिए उन्हें महान दुःख होता है।

ऊर्णापक्ष्म यथैव हि करतलसंस्थं न वेद्यते पुम्भिः
अक्षिगतं तु तथैव हि जनयत्यरतिं च पीड़ां च।
करतल सदृशो बालो न वेत्ति संस्कार दुःखतापक्ष्म
अक्षिसदृशस्तु विद्वांस्ते नैवो द्वेज्यते गाढ़म।[208]

तुलनात्मक दृष्टि से और धर्म दर्शन की दृष्टि से बौद्ध दर्शन तद्युगीन परिस्थितियों के अनुकूल था। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि बौद्ध धर्म के अन्तर्गत ईश्वर अपरिभाषित और अस्तित्व विहीन है। इसी प्रकार आत्मा भी अपरिभाषित है। मृत्यु के बाद आत्मा की क्या गति होती है इस पर बौद्ध धर्म अपना कोई दृष्टिकोण नहीं देता।

ईसा और बुद्ध के जीवन में विलक्षण समता है। बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व, बुद्ध को मार की चढ़ाइयों का सामना करना पड़ता था, और ईसा को भी शैतान ने लुभाने के अनेक प्रयत्न किए थे। ईसा ने सिद्धि–प्राप्ति के पूर्व, चालीस दिनों का उपवास किया था, बुद्ध के विषय में भी है कि नेरंजना–नदी के तट पर सुजाता के हाथों खीर खाने के दिन से लेकर बुद्धत्व–प्राप्ति के समय (अर्थात् 49 दिनों) तक उन्होंने वायु के सिवा कोई आहार नहीं लिया। बुद्ध ने अंगुलिमाल डाकू का उद्धार किया एवं वेश्या अम्बपाली को संन्यासिनी बनाया, ईसा द्वारा भी शरणागत चोरों और वेश्याओं के सद्गति दिए जाने की बातें बाइबिल में उद्धृत हैं।

यहूदी धर्म के दो पैगम्बरों के नाम हजरत *'दाऊद' (David)* और हजरत *'मूसा' (Moses)* है। बाइबिल दो प्रकार की मिलती हैं। इन दोनों बाइबिलों में बहुत कुछ वही संबन्ध है जो संबन्ध वेद और उपनिषद अथवा वेद और बौद्ध धर्म में हो सकता है। भारत का वैदिक धर्म प्रवृत्ति मार्गी धर्म था। उसमें यज्ञों की प्रधानता थी। पशु–हिंसा निषिद्ध नहीं थी, और यज्ञ लोग इसलिए करते थे कि यज्ञों से वृष्टि होती थी अच्छी फसल उपजती थी, देवता प्रसन्न और शत्रु दुर्बल होते थे किन्तु पशु हिंसा की अति से जब चिंतको का जी उकताने लगा, तब उन्होंने, कर्मकांड–प्रचुर वैदिक धर्म में से उपनिषदों का ज्ञानमार्ग निकाला और यही ज्ञानमार्ग बौद्ध धर्म के अभ्युदय का भी कारण हुआ। नयी बाइबिल का मसीही धर्म भी, इसी प्रकार, पुरानी बाइबिल में प्रतिपादित यहूदी धर्म का सुधरा हुआ रूप है। यहूदी–भाषा (हेब्रू) में ईश्वर को *"इलोहा"* (अरबी "इलाह") कहते हैं। किन्तु, हजरत मूसा ने यहूदियों के मुख्य उपास्य देव का नामकरण *"जिहोवा"* कर दिया। यह जिहोवा शब्द यहूदी भाषा का शब्द नहीं है। वह खाल्दी भाषा के *"यवे"* (संस्कृत– "यल्ह") से निकला है। वस्तुतः ईसा और बुद्ध के व्यक्तित्व तथा उपदेशों में इतनी अधिक समता है कि लोग यह विश्वास करने लगे कि ईसा अपने साधना के दिनों में भारत आए थे और उन्होंने यहाँ के साधुओं की संगति की थी और बौद्ध धर्म का विशेष रूप से अध्ययन किया था।[209]

यह सत्य है कि मसीही धर्म का विकास बुद्ध के प्रयोगों की दिशा में हुआ है क्योंकि जिस भू–भाग में मसीही धर्म उठा वहाँ ईसा के बहुत पूर्व से ही, बौद्ध साधुओं का आना–जाना जारी था। आरम्भ में मसीही धर्म में भी त्याग, सन्यास और साधना का वही महत्व था जो भारतीय अथवा एशियाई धर्मों का लक्षण था। यदि समानता है भी तो प्राचीन विद्वानों ने जिन्होंने सर्वप्रथम बौद्ध धर्म का अध्ययन किया था और भगवान गौतम बुद्ध को निकट से समझने का प्रयास किया था,[210]

उन्होंने प्रभु येशु की शिक्षाएँ एवं गौतम बुद्ध की शिक्षाओं में सामंजस्य ढूँढ़ने की कोशिश की थी और इस निष्कर्ष में पहुँचे थे कि प्रभु येशु की शिक्षाओं पर गौतम बुद्ध की शिक्षाओं पर असर पड़ा था। विशेषकर प्रभु येशु खीस्ट की शिक्षाओं में प्रेम, क्षमा, करूणा, अहिंसा के ये तत्व गौतम बुद्ध की शिक्षाओं में भी पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त जैसे गौतम बुद्ध ने अपने युग के रूढ़िवादी ब्राह्मणों के कर्मकाण्डों का विशेषकर बलि प्रथा का विरोध किया था वैसे ही प्रभु येशु ने अपने युग के कट्टरवादी यहूदियों की कुछ प्रथाओं का विरोध किया था। प्रभु येशु ने भी गौतम बुद्ध के समान निर्जन प्रदेश में 40 दिन और रात 'कृच्छ–साधना' की थी। वह भी गौतम बुद्ध के समान साधु–सन्यासी जैसे एक स्थान से दूसरे स्थान में उपदेश देते और लोगों को उनके दुःखों से मुक्त करते थे। वास्तव में प्रभु येशु खीस्ट के अनुयायियों ने भी गौतम बुद्ध के अनुयायियों के समान उनकी शिक्षाओं– 'बुद्धं शरणं गच्छामि! धम्मं शरणं गच्छामि! संघं शरणं गच्छामि!' के समान प्रचार–प्रसार किया था। उनका लोगों को यह आह्वाहन था– कि प्रभु परमेश्वर बुलाता है (बुद्धं शरणं गच्छामि)। प्रेरितों की शिक्षा, सत्संग, प्रभु–भोज (धम्मं शरणं गच्छामि)। नया नियम की पुस्तक प्रेरितों के कार्य में यह लिखा है– वे अपनी चल और अचल सम्पत्ति बेच देते और जिसको जैसी आवश्यकता होती थी उसके अनुसार आपस में बाँट लेते थे (संघं शरणं गच्छामि)।

<u>मसीही धर्म का बौद्ध धर्म पर प्रभाव</u>

यद्यपि बौद्ध धर्म भारत भूमि पर 500 ई0 पू0 उदित हुआ और वह बड़ी तेजी से विश्व के अनेक देशों में प्रचारित–प्रसारित हुआ, इसके प्रचार में सर्वाधिक भूमिका मौर्य शासक सम्राट अशोक की रही। इसने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को धर्म प्रचार के लिए श्रीलंका भेजा था उसके अन्य दूत एशिया के अन्य देशों में भेजे गए थे। मसीही धर्म के पहले यह विश्व का सबसे बड़ा धर्म था। सम्भव है कि जब इस्त्राएल में प्रभु येशु मसीह का प्रभाव बढ़ा उस समय वहाँ के लोग बौद्ध धर्म से परिचित रहें हों। प्रभु येशु मसीह ने जब बाइबिल के नए नियमों को सृजित करने की प्रेरणा दी उस समय वे बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से परिचित थे। महात्मा बुद्ध की करूण भावना और संसार के दुःख की परिकल्पना ने मसीही धर्म को प्रभावित किया। बौद्ध धर्म जिस निर्वाण की स्थिति को स्वीकार करता है, वह निश्चित ही मसीही धर्म के मोक्ष के सिद्धान्त से मिलता–जुलता है।

यों तो बौद्ध धर्म मसीही धर्म के उद्‌भव से 500 वर्ष प्राचीन है और मसीही धर्म का प्रभाव बौद्ध धर्म पर पड़े यह सम्भव नहीं दिखता लेकिन भारत से बौद्ध धर्म के लोप होने पर विशेषकर एशिया के दूरवर्ती देश जैसे म्यांमार, थाईलैण्ड, फिलिपिन्स, सिंगापुर, जापान, चीन, मलेशिया, इण्डोनेशिया आदि देशों के बौद्धों पर आधुनिक मसीही धर्म का प्रभाव देखा जा सकता है। वास्तव में हमें इसको मसीही धर्म का प्रभाव न कहकर पाश्चात्य प्रभाव कहना उचित होगा। जिसने उपरोक्त देशों के बौद्ध समाज को प्रभावित किया है विशेषकर आधुनिक शिक्षा और ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में एक प्रकार से मसीही धर्म में बौद्ध विद्वानों को आधुनिकता की ओर उत्प्रेरित किया था।

आधुनिक युग में मसीही धर्म का प्रभाव नव बौद्धों पर स्पष्ट देखा जा सकता है विशेषकर डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के जीवन, दर्शन, कार्य–कलाप पर। डॉ0 भीम राव अम्बेडकर की शिक्षा–दीक्षा विदेशों में हुयी थी जहाँ मसीही धर्म का प्राबल्य है। डॉ0 जेम्स मैसी ने अपने एक शोध प्रबन्ध *(Dr. B.R. Ambedkar A study in just society)* में यह प्रमाणित किया है कि डॉ0 अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म के संबन्ध में जो कुछ भी लिखा विशेषकर सामाजिक न्याय–व्यवस्था *(Just society)* वह न केवल विचार वरन् शब्दावली भी मसीही धर्म से प्रभावित थी। नव बौद्ध धर्म अर्थात् डॉ0 अम्बेडकर द्वारा प्रतिष्ठित और उनके अनुयायियों द्वारा मान्य मसीही धर्म की

न्यायिक व्यवस्था से अत्यन्त प्रभावित है। सच पूछा जाए तो दलित आन्दोलन का नेतृत्व मसीही अगुओं ने ही आरम्भ किया था जो बाद में राजनीतिज्ञों के हाथ में चला गया। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि नव बौद्ध धर्म की चेतना मसीही धर्म से प्रसूत हुयी है। जिसके अग्रगामी डॉ0 भीमराव अम्बेडकर थे।

मसीही धर्म का संबन्ध आधुनिक ज्ञान–विज्ञान से होने के कारण उसका प्रभाव सब धर्मों पर पड़ा है और इस प्रभाव से प्रमाणित हुआ कि हम धर्म को अपने जीवन में कैसे धारण कर सकते हैं ? ऐसा ही कुछ नव बौद्ध धर्म के विषय में भी कहा जा सकता है जिसका प्रतिनिधित्व डॉ0 अम्बेडकर करते थे। उन्होंने शिक्षा के विषय में यह कहा है............ "मैं समझता हूँ कि हम छोटी जातियों के लोगों को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए बहुत कम प्रेरित कर पाते हैं और यदि हम शिक्षा का अपने मनोनुकूल विस्तार करने में सफल होते हैं तो हमें श्रमिक वर्ग का अधिक बौद्धिक विकास करना होगा, भले ही इसमें अधिक धनाढ्य व्यक्तियों की उपेक्षा हो जाए।

इसके परिणामस्वरूप किसी स्वस्थ्य समाज की स्थापना नहीं होगी। हमारी सरकार छोटी जाति के सर्वाधिक शिक्षित व्यक्ति की उस महत्वाकांक्षा को पूरा कराने के साधन भी उपलब्ध नहीं करा सकी जो हमने उनके मन में जगाई थी।"

दलितों को शिक्षित करने का जिम्मा जो संस्था ले सकती थी वह केवल मसीही मिशनरी थी। माऊंट स्टुअर्ट एलफिंस्टोन के शब्दों में उन्हें 'दलित जातियाँ सर्वोत्तम जातियाँ लगीं।'[211]

"सबसे पहला मुद्दा जो मैं उनके ध्यान में लाना चाहता हूँ, वह यह है कि अपने बच्चों की शिक्षा के मामले में हमारी प्रगति बहुत धीमी है। भारत सरकार ने हाल ही में शिक्षा की प्रगति के बारे में जो रिपोर्ट जारी की है, उसे पढ़कर बहुत दुःख होता है। उसमें कहा गया है कि अगर शिक्षा की प्रगति इसी वेग से चलती रही, जो आज चल रही है, तो स्कूल जाने वाली उम्र के लड़कों को 40 साल और लड़कियों को 300 साल शिक्षित बनाने में लगेंगे।"[212]

वह अपने समाज दलितों के आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक विकास के लिए मसीही दृष्टिकोण से प्रभावित हैं और कहा करते थे कि हमारा विकास हमारी सामाजिक स्थिति केवल शिक्षा के माध्यम से ही हो सकती है। अतः हर दलित व्यक्ति को शिक्षित होना चाहिए। इस समस्या को देखने का दृष्टिकोण उन्हें मसीही धर्म से ही प्राप्त हुआ था।

मसीही धर्म बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव से लगभग 500 वर्ष बाद हुआ था और विद्वानों ने दोनों धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि मसीही धर्म की 90 प्रतिशत बातें सार रूप में बौद्ध धर्म से ली गयीं हैं। ऐसा ही विचार डॉ0 अम्बेडकर ने *'दस स्पोक अम्बेडकर'* में अभिव्यक्त किए हैं।[213] अम्बेडकर के जीवन में एक समय यह भी आया था कि वह मसीही धर्म अपनाने को तत्पर हो गए थे किन्तु राजनैतिक कारणों से मसीही धर्म को नहीं अपनाया था और उन्होंने कहा था "यदि वे मसीही धर्म स्वीकार करेंगे तो मसीहियों की संख्या 5 से 6 करोड़ हो जाएगी। इससे अंग्रेजों को देश पर कब्जा बनाए रखने में बड़ी सहायता मिलेगी। इसके विपरीत यदि वे सिक्ख बनेंगे तो वे देश की नियति को कोई नुकसान नहीं पहुँचाएगें, बल्कि उसमें सहायक ही होंगे।[214] फिर भी प्रभु येशु एवं मसीही धर्म के प्रति उनका आदर सम्मान नहीं घटा और वे अपने अनुयायियों को मसीही समाज के सदृश शिक्षित होने का आह्वाहन देते रहे।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप हम यह कह सकते हैं कि –

विश्व के धर्मों में हिन्दू और यहूदी धर्म अत्यधिक प्राचीन है। हिन्दू धर्म आर्यो के बीच उत्पन्न

हुए और यहूदी–धर्म सामी जाति के बीच जनमा। जिस प्रकार प्राचीन हिन्दुत्व (वैदिक धर्म) से बौद्ध धर्म की उत्पत्ति हुई, उसी प्रकार मसीही धर्म भी यहूदी धर्म की कुक्षि से उत्पन्न हुआ है। यहूदी धर्म से मसीहयत और इस्लाम दोनों का सम्बन्ध है। यहूदियों की तरह मसीही और मुहम्मद भी सामी जाति के सदस्य थे। सामी जाति घोर रूप से मूर्तिपूजक थी। मूर्तिपूजा छोड़ने का उपदेश सबसे पहले हजरत इब्राहीम ने दिया, जो यहूदियों के आदि पैगम्बर हुए हैं। चूँकि हजरत *'इब्राहीम'* ने मूर्तिपूजा का विरोध किया और एकवाद की प्रथा चलायी, इसलिए मुसलमान भी उनकी पैगम्बरी में विश्वास करते हैं। उन्हीं हजरत इब्राहीम के खानदान में ईसा और मुहम्मद दोनों हुए हैं। हजरत दाऊद, ईसा और मूसा ये तीन पैगम्बर हजरत इब्राहीम के बड़े बेटे हजरत इसहाक के खानदान में हुए और हजरत मुहम्मद इब्राहीम के छोटे बेटे इस्माइल के वंश में हुए हैं।

यहूदी लोग नयी बाइबिल को नहीं मानते। इसी प्रकार मसीहियों का विश्वास पुरानी बाइबिल में नहीं है। मुसलमान जनता दाऊद, मूसा और ईसा को पैगम्बर जरूर मानती है, परन्तु इस्लाम यह स्वीकार नहीं करता कि हजरत ईसा परमात्मा के पुत्र थे। फिर भी, इन पैगम्बरों के प्रति इस्लाम के बड़े ही आदरयुक्त भाव हैं। मुसलमान हजरत मूसा को कलीम–उल्लाह (प्रभु से बातें करने वाला), हजरत ईसा को रूह–उल्लाह (प्रभु की आत्मा) और हजरत मुहम्मद को रसूल–उल्लाह (प्रभु का दूत) कहते हैं।

वास्तव में मसीही धर्म का प्रभाव उसके पाश्चात्य रूप में पड़ा है। पाश्चात्य रूप से हमारा अर्थ है पश्चिमी–यूरोपीय एवं अमरीकी लोग जो अपने साथ पश्चिमी ज्ञान–विज्ञान लेकर आए थे। भारत मसीही धर्म से नहीं डरा बल्कि आधुनिक ज्ञान–विज्ञान से जिसने भारतीय शिक्षा ज्ञान–विज्ञान में क्रांति उत्पन्न कर दी।

भारत की शिक्षा–पद्वति जीर्ण–शीर्ण, गतानगतिक और निष्प्राण थी। जो पुरानी बातें लिखीं हुयी थीं उन्हें लोग पढ़ाते जा रहे थे। नयी बातें सोचने अथवा नए–नए ज्ञान को संगठित करने की ओर किसी का ध्यान नहीं था। व्याकरण, साहित्य और दर्शन के सिवा यदि कोई और पाठ्यक्रम था तो वह अत्यन्त सामान्य गणित का था, इतिहास, भूगोल, ज्यामितीय और स्वास्थ्य–विज्ञान तक का प्रचार इस देश से उठ गया था। पुराणों में जो कुछ लिखा था अथवा बाप–दादों से अतिरंजित कथाओं के रूप में जो सुनने को मिल जाता था, वहीं तक छात्रों की इतिहास–विषयक शिक्षा थी, धार्मिक शिक्षा के नाम पर मुसलमानों के यहाँ कुरआन और हिन्दुओं के यहाँ स्रोत रटवाने की परिपाटी थी। कविता और काव्य शास्त्र का देश में अच्छा प्रचार था, किन्तु, अन्य आवश्यक विद्याएँ अत्यन्त सीमित अवस्था में थी।

मसीही धर्म के आगमन से ही अंग्रेजी भाषा का प्रचार–प्रसार हुआ, जिसके कारण भारत विदेशों के सम्पर्क में आया और उसने आधुनिकता की ओर कदम बढ़ाए। यद्यपि ब्रिटिश सरकार यह अंग्रेजी भाषा की पाठशालाएँ एवं शिक्षा प्रबन्ध हेतु नयी पाठशालाएँ नहीं खोलना चाहते थे, किन्तु मसीही धर्म के प्रचारकों ने इस ओर अधिक ध्यान दिया और पूरे देश में आधुनिक शिक्षा, अंग्रेज भाषा एवं देशीय भाषाओं में अपने धर्म प्रचार–प्रसार के लिए साहित्य लिखने–लिखवाने लगे। अतएव यह आवश्यक था कि जनता में शिक्षा का प्रचार हो जिससे वह लिखित साहित्य से प्रभावित की जा सके। धर्म–प्रचार के हित में मिशनरी स्कूलों की भी जरूरत समझी गयी क्योंकि छात्रों के धार्मिक विश्वास में सीधे हस्तक्षेप नहीं करने पर भी स्कूलों में उन्हें अन्य बीसियों प्रकार से प्रभावित किया जा सकता था। सिरामपुर मिशन वालों ने अपना छापाखाना ही नहीं, कागज का कारखाना भी खोल रखा था और उन्होंने बाइबिल का अनुवाद इस देश की छब्बीस भाषाओं में प्रकाशित कर दिया था।

इन अनुवादों का सदुपयोग तभी सम्भव था जबकि देशी भाषाओं के स्कूल खुलते और खास ढंग की स्कूली पुस्तकें तैयार की जाती।[215]

शिक्षा की दिशा में ये सब के सब, गैर–सरकारी प्रयत्न थे। सरकारी प्रयत्न का वास्तविक आरम्भ तो सन् 1813 ई0 के ईस्ट इंडिया एक्ट में हुआ जिसमें पहले पहल कानूनी तौर पर यह बात दर्ज की गयी कि भारत में शिक्षा के काम पर भी प्रतिवर्ष सरकारी कोष का एक लाख रूपया खर्च किया जा सकता है। किन्तु इस अनुदान की रकम भी शिक्षा–प्रसार के नाम पर कलकत्ता बुक सोसायटी और कलकत्ता स्कूल सोसायटी को दे दी गयी। असल में, एक लाख रूपया भी सरकार ने इसलिए दिया था कि उससे भारतीय विद्याओं की रक्षा और उन्नति की जा सके। अभी तक सरकार ने यह बात स्वीकार नहीं की थी कि भारतवासियों को अंग्रेजी पढ़ाने का काम आरम्भ किया जाए। अतएव, राजा राम मोहन राय के आग्रही बने रहने पर भी कि भारतवर्ष में संस्कृत की शिक्षा फैलाने से प्रकाश नही आएगा, सरकार ने एक कॉलेज कलकत्ते में (सन् 1824 ई0) तथा दूसरा दिल्ली में (सन् 1825 ई0) इस उद्देश्य से खोल दिया कि इन संस्थाओं के द्वारा भारत की तीन प्राचीन भाषाओं (संस्कृत, अरबी और फारसी) की शिक्षा दी जा सके। सरकार के इस कृत्य की राममोहन राय ने घोर रूप से आलोचना की और लार्ड एमहर्स्ट को पत्र लिखकर उन्होंने यह कहा कि इंग्लैण्ड की पार्लमेंट के सदस्य यह चाहते ही नहीं कि भारत में ज्ञान का प्रकाश फैले अन्यथा वे अंग्रेजी के बदले भारत की प्राचीन भाषाओं का इतना पिष्टपेषण क्यों करते? राममोहन राय दूरदर्शी पुरूष थे। वे समझ गए थे कि भारत का भविष्य विज्ञान, शिल्प, इतिहास, राजनीति और पाश्चात्य शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने में है और यह ज्ञान भारत में अंग्रेजी के द्वारा ही फैलाया जा सकता है।

शिक्षा के लिए जितना सुचिन्तित प्रयास बंगाल में किया गया, उतना अन्यत्र नहीं। मद्रास में टूटी–फूटी अंग्रेजी का ज्ञान बहुत से लोगों को हो गया था, क्योंकि वहाँ अंग्रेजी कितने ही भारतवासियों के बीच भी स्थानीय बोली के समान चलने लगी थी। बम्बई में अरबी, फारसी और संस्कृत का स्थान सुदृढ़ नहीं था। उधर के लोग देशी–भाषा के पक्ष में थे और देशी भाषाओं की शिक्षा के क्रम में अंग्रेजी आ गयी थी। लार्ड मेकाले के परामर्श से लार्ड विलियम बेंटिक ने अपनी सन् 1835 ई0 वाली घोषणा में यह ऐलान किया कि भारतवर्ष में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होगी। ये बड़े ही महत्व की घोषणा थी, क्योंकि इसी के कारण भारत का मानसिक कायाकल्प पूर्ण हुआ और इससे सभी धर्मो में जबरजस्त प्रभाव पड़ा। इस घोषणा के अनुसार प्रत्येक जिलें में एक जिला स्कूल खोलने का कार्य तुरन्त आरम्भ हो गया। यह ज्ञान की अपूर्व जागृति का समय था। कॉलेज से पढ़ लिखकर निकले हुए व्यक्ति जगह–जगह स्कूल खोलकर लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देने लगे और प्रत्येक धर्म के अंग्रेजी पढ़े–लिखे व्यक्ति को सरकारी नौकरी से मिलने वाली प्रतिष्ठा और सुविधा का उपभोग करते देख कर बहुत से छात्र अंग्रेजी शिक्षा की ओर दौड़ पड़े। अंग्रेजी शिक्षा सहसा इतनी लोकप्रिय हो उठी की उत्सुक सभी धर्मो के छात्रों के लिए स्कूलों और स्कूली किताबों का प्रबन्ध करना सरकार और गैर–सरकारी संस्थाओं के लिए असम्भव हो गया।

शिक्षा–प्रचार के पीछे मसीही धर्म–प्रचारकों का जो इतना बड़ा समर्थन रहा, उसका कारण यह था कि भारतीयों के बीच अपने ढंग की शिक्षा–पद्धति चलाकर इस देश भर को मसीही बनाना चाहते थे। आदिम जातियों के बीच उनका प्रवेश शिक्षा के सहारे हुआ था और शिक्षा के सहारे ही उन्होंने इन जातियों के लोगों को अपने धर्म में भी दीक्षित किया था। उच्च वंशीय धर्मो के लोग भी शिक्षा के जाल में ही खिसकते–खिसकते मसीही हो गए थे। अतएव धर्म प्रचारकों को बहुत बड़ी

आशा थी कि शिक्षा के माध्यम से ही वे सारे धर्म–समाज को मसीही बनाने में समर्थ हो जाएंगे। सरदार के0एम0 पनिक्कर का भी अनुमान है कि अंग्रेजी को भारत में शिक्षा का माध्यम बनाने वाले अधिकारियों के मन में यही आशा थी।[216] सरदार पनिक्कर के अनुमान का थोड़ा–सा समर्थन मोनियर विलियम्स की बातों से भी होता है। उन्होंने संस्कृत, इंगलिश–डिक्शनरी नामक अपने महाग्रन्थ में लिखा है मेरे गुरू कर्नल बोडेन की अन्तिम इच्छा थी कि ''मसीहयत के धर्म ग्रन्थों का अनुवाद संस्कृत में किया जाना चाहिए जिससे हमारे देशवासी भारतीयों को मसीहयत में दीक्षित करने के कार्य में प्रगति कर सकें।'' मोनियर विलियम्स ने भी अपने गुरू का अनुसरण करते हुए यह वृहत् कोष तैयार किया जिससे मसीही धर्म ग्रन्थों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद के काम में सहायता हो और धर्म–प्रचारकों को यह पता चल सके कि ''हमारे पूर्वी सम्राज्य के लोगों की धार्मिक आवश्यकताएँ क्या हैं?''[217]

हमारी एकता का सबसे बड़ा आधार अंग्रेजी भाषा ही है, जिसमें हमारी सरकार और संसद के अधिकतर काम चल रहे हैं। देश ने यह निर्णय किया है कि जिस राष्ट्रीय एकता को आज अंग्रेजी संभाले हुए है, वह बोझ हिन्दी उठा ले और जनता अपनी देश–भाषाओं में ही अपना काम करे, किन्तु ऐसा लगता है कि यह कार्य शनैः शनैः ही पूरा होगा। स्कूलों और कॉलेजों में जो यूरोपीय ज्ञान सिखाया जा रहा था, वह मनुष्य की आँख खोलने वाला था, किन्तु, इसके साथ ही, एक और कार्य हुआ जिसने धीरे–धीरे भारतवासियों में आत्म–गौरव की भावना को जगाया और अन्त में उनके भीतर यह विश्वास कूट–कूट कर भर दिया कि भारत महान देश है, उसकी सभ्यता अत्यन्त प्राचीन है और उसका प्राचीन साहित्य और दर्शन ऐसा है, जिसकी बराबरी संसार के अन्य देशों के दर्शन और साहित्य नहीं कर सकते। इस कार्य का श्री गणेश सन् 1784 ई0 में बंगाल की एशियाटिक सोसायटी की स्थापना से हुआ। किन्तु, उसके बाद ही अनेक यूरोपीय विद्वान भारत के प्राचीन साहित्य में डूब कर उसके लुप्त इतिहास को जीवित स्वरूप देने लगे। फिर, उनकी देखादेखी भारतीय विद्वान भी अनुसंधान के क्षेत्र में आए और उनकी सेवाओं से भी भारत का प्राचीन इतिहास देदीप्यमान हो उठा। इतिहास लिखने की कला की शिक्षा भी भारत को विदेशी मिशनरियों से ही प्राप्त हुयी है।

वर्तमान युग में गरीबी और बेहिसाब धन–सम्पत्ति, राष्ट्रों में शस्त्र एकत्र करने की होड़ वैश्यविक (व्यापार) एवं, गरीब राष्ट्रों का शोषण बड़े राष्ट्रों के द्वारा मानवीय मूलाधिकारों का हनन, अन्यायपूर्ण अर्थव्यवस्था, जाति एवं रंगभेद की नीति महिलाओं एवं बच्चों पर अत्याचार साम्प्रदायिक लड़ाई–झगड़े एवं भ्रष्टाचार आदि राजकीय एवं सामाजिक स्तर पर इन बुराइयों के प्रति मसीही धर्म ने ही अन्य धर्मावलम्बियों का ध्यान आकर्षित किया है और अन्य धर्मावलम्बी भी इन बुराइयों की ओर गम्भीरता से सुलझाने का प्रयास कर रहें हैं। अन्यथा इनकों भी पिछले जन्म के कर्म का फल समझ लिया जाता। वस्तुतः उपरोक्त बुराइयों के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने को मसीही धर्म की आधुनिक शिक्षा ने ही दृष्टि दी है। यह बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव माना जा सकता है।

परमात्मा के प्रति हम विश्वास किसी भी रूप में कर सकते हैं। हम, सभी धर्म के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि *''परमात्मा''* सिर्फ *''परमात्मा''* है, न वह हिन्दू है, न वह मुसलमान है, और न ही वह मसीही है। परमात्मा सिर्फ एक है। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, मसीहियों आदि के कोई अलग–अलग परमात्मा, या ईश्वर नहीं हैं। ऐसा नहीं कहा जाता है कि हिन्दुओं के परमात्मा का रूप दूसरा, मुस्लिम के परमात्मा का रूप अलग है, मसीहियों के परमात्मा का रूप तीसरा है, या जैन सिक्ख के परमात्मा का रूप सभी से बिल्कुल भिन्न हैं, अर्थात् अलग–अलग धर्म के

अलग–अलग परमात्मा नहीं हैं। परमात्मा एक है, उन्हीं परमात्मा को मानने वाले लोगों का धर्म अलग है, जो स्वयं अलग धर्म बनाते चले गए। परमात्मा का किसी भी धर्म से लेना–देना नहीं है। धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति, वंश और क्षेत्र से नहीं है, बल्कि होना यह चाहिए कि व्यक्ति जिस धर्म को चाहे, जिसमें उसकी आस्था विश्वास हो उसे वह अपना ले। धर्म परिवर्तन कोई अपराध नहीं है, किन्तु भारत वर्ष के लोग धर्म परिवर्तन में प्रतिबन्ध चाहतें हैं और उनका यह मानना है कि कोई व्यक्ति अपने मौलिक धर्म का परित्याग करके दूसरा धर्म ग्रहण न करे। जब किसी व्यक्ति को अपने मौलिक धर्म में कोई आदर–सम्मान नहीं मिलता और वह तिरस्कृत किया जाता है तो वह ऐसे धर्म को अपनाने का प्रयत्न करता है जहाँ उसका आदर–सम्मान हो, जो सरल हो, जिसमें सामाजिक समरसता हो और जो मानव–कल्याण से जुड़ा हो। इसलिए लोग मसीही धर्म के प्रति ज्यादा आकर्षित होते हैं और अपना धर्म त्याग कर मसीही बन जाते हैं। धर्म परिवर्तन के कारण अन्य धर्म धर्मों के प्रति संघर्ष की भावना उत्पन्न होती है क्योंकि ये लोग मसीही धर्म को विदेशियों का धर्म मानतें हैं और उसकी आलोचना करते हैं।

There are millions of Indians who think of Christianity as nothing more than a 'Western Cult.' They are not to be blamed for this misconception. It is the Christian leaders, theologians, writers and the Christian community at large, which has remained isolated from the non-Christian communities of the country. It is unfortunate, but the Indian church can be likened to an impregnable fortress. All that is communicated inside this fortress remains the internal matter of Christians and never permeates out.[218]

सन्त सर्वेश्वर दास का यह विचार है कि जब तक हिन्दू धर्म में वर्ण–व्यवस्था, ऊँच–नीच और छूआ–छूत की भावना बनी रहेगी तथा जब तक व्यक्ति अन्ध विश्वास और परम्पराओं के जंजीरों में जकड़ा रहेगा उस समय तक व्यक्ति हिन्दू धर्म से बगावत करके मसीही धर्म अपनाते रहेंगे। भारत वर्ष में 5 करोड़ से भी अधिक मसीही, 22 करोड़ से अधिक मुसलमान और 4 करोड़ जैन तथा 2 करोड़ बौद्ध हैं। आगे आने वाले समय में हिन्दू धर्मावलम्बियों की संख्या घटेगी और दूसरे धर्मावलम्बियों की संख्या बढ़ेगी। इसलिए आवश्यकता है कि हिन्दू धर्म में नैतिक मूल्यों का समावेश किया जाए और इसे बचाया जाए।[219]

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. नया नियम, रोमियो 1 : 19
2. पुराना नियम, यहोशु 3 : 10; होशे 1 : 10; 1 तिमुथियुस 3 : 15; इब्रानियों 9 : 14; 10 : 31।
3. पुराना नियम, नबी यशायाह, अध्याय– 42।
4. पुराना नियम, दानिएल 7 : 14।
5. पुराना नियम, आमोस 5 : 24।
6. नया नियम, इफिसियो 1 : 20।
7. मत्ती 12 : 50, इफिसियो 1 : 5–6।
8. मत्ती 5 : 48।
9. मत्ती 6 : 14–15।
10. लूका 6 : 36।
11. 1 योहन 4 : 7।
12. 1 योहन 4 : 7–21।
13. खिस्तीय धर्म एक परिचय, पृष्ठ– 65।
14. योहन 3 : 16–17।
15. जी0आर0सिंह, सी0डब्ल्यू0डेविड, ''खिस्तीय धर्म एक परिचय'', 1977, पृष्ठ– 62।
16. मरकुस 14 : 61–62।
17. नया नियम, योहन 5 : 17–30।
18. योहन 14 : 9।
19. योहन 17 : 20–26।
20. योहन 1 : 1–14।
21. योहन 14 : 16, 26; 15 :26; 16 : 17।
22. 1 कुरिन्थुस 13 : 14।
23. 2 कुरिन्थुस 13 : 13।
24. सी0डब्ल्यू डेविड, बाइबिल शब्द कोश, पृष्ठ– 43।
25. 1 योहन 3 : 4।
26. उत्पत्ति, अध्याय– 3।
27. पहला तीमुथियुस 2 : 10।
28. उत्पत्ति, 3 : 4।
29. रोमियों 5 : 12–19।
30. राबर्ट एम0 क्लार्क, "शान्तवन जान, मसीही सिद्धान्तों की रूपरेखा (दूसरा भाग)" प्रकाशन– मसीही आध्यात्मिक साहित्य समिति, 1961, पृष्ठ– 35–38।
31. रोमियों– 6 : 23।
32. शासक ग्रन्थ 2 : 18 ; 6 : 14।
33. निर्गमन 14 : 30 ; 1 शमूएल 10 : 19।
34. 1 शमूएल 4 : 3 ; 7 : 8 ; 9 : 16 ; भजन संहिता 98 : 1 ; अय्यूब 4 : 14।

35. यशायाह 40 : 18–20 ; 44 : 9–20 ; 46 : 6–7।
36. भजन संहिता 3 : 8 ; 1 शमूएल 14 : 39 ; 1 इतिहास 16 : 35 ; यशायाह 33 : 22।
37. लूका 8 : 36।
38. मरकुस 13 : 20।
39. मत्ती 8 : 28 ; प्रेरितों के कार्यकलाप 27 : 20।
40. मत्ती 1 : 21।
41. लूका 19 : 10।
42. 1 पतरस 2 : 9, 10।
43. इफिसुस 2 : 12–13।
44. कुलस्सियों 1 : 14।
45. 2 तिमोथी 1 : 7 ; 1 योहन 4 : 18।
46. गलातिया 5 : 1।
47. 2 कुरिन्थुस 5 : 16–21।
48. राबर्ट एम0 क्लार्क, शान्तवन जान, "मसीही सिद्धान्तों की रूपरेखा भाग– 2", 1961, पृष्ठ– 74।
49. रोमियो 7 : 19, 24।
50. गलातिया 2 : 20।
51. 2 कुरिन्थुस 5 : 17।
52. इफिसियों 2 : 8।
53. भजन संहिता 130 : 7–8।
54. योहन 1 : 14, 16।
55. रोमियो 3 : 26।
56. राबर्ट एम0 क्लार्क, शान्तवन जान, "मसीही सिद्धान्तों की रूपरेखा भाग– 2", 1961, पृष्ठ– 78।
57. प्रेरितो 19 : 39।
58. व्यवस्था 5 : 19 ; 23: 2–9 ; 1 इतिहास 28 : 8, गणना 16 : 3 ; 20 : 4 ; मीकाह 2 : 5।
59. कुरिन्थुस 11 : 18 ; 14 : 19, 35।
60. प्रेरितों 5 : 11 ; 8 : 1, 3 ; 15 : 22।
61. संतमत्ती 16 : 18।
62. इफिसुसियो 1 : 22 ; 3 : 10 ; 5 : 23–24।
63. इब्रानियों 2 : 12 ; 12 : 23।
64. सन्त मत्ती 18 : 20 ; पतरस 5 : 2।
65. आराधना पुस्तक, आई0एस0पी0सी0के0 दिल्ली, 2001, पृष्ठ– 491–501।
66. वही – पृष्ठ– 490।
67. उत्पत्ति 2 : 17।
68. उत्पत्ति 3 : 19।
69. अय्यूब 5 : 25–26।
70. यहेजकेल 18 : 4।

71. 1 कुरिन्थुस 15 : 26।

72. रोमियो 6 : 23।

73. 1 कुरिन्थुस 15 : 57।

74. गलातिया 3 : 13 ; 1 कुरिन्थुस 5 : 7 ; 2 कुरिन्थुस 5 : 16–21।

75. योहन 11 : 25–26।

76. रोमियो 6 : 3–11।

77. प्रकाशन 14, 13।

78. फिलिप्पी 1 : 21।

79. प्रकाशन 2 : 11 ; 20 : 6, 14 ; 21 : 8।

80. योहन 3 : 16–18।

81. बाइबिल : मत्ती 24–25 अध्याय, विशेषकर 25 : 31–46।

82. नया नियम कुरिन्थुस 15 : 20 ; कुलुस्से 3 : 1।

83. भजन संहिता 6 : 5।

84. पुराना नियम, यशायाह 38 : 18।

85. आमोस 5 : 18–24।

86. योएल 1 : 15 ; 2 : 3, 31।

87. यहेजकेल 34 : 23।

88. मत्ती 3 : 17 ; 12 : 28।

89. थिस्सलूनी 2 : 19 ; 5 : 2।

90. 1 कुरिन्थुस 15 : 22।

91. उत्पत्ति 2 : 7।

92. कुलुस्से 1 : 27।

93. दीवान प्रतिपाल सिंह, "बुन्देलखण्ड का इतिहास", प्रथम भाग, पृष्ठ– 216।

94. ऑक्र्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, 1909–10, पृष्ठ– 146।

95. एम0एल0 निगम, "कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड", सन्दीप प्रकाशन, 1983, पृष्ठ– 101।

96. अथर्ववेद, मण्डल– 10, अध्याय– 7, श्लोक संख्या– 32, 33, 34।

97. ऋग्वेद संहिता, मण्डल– 1, सूक्त– 1, श्लोक– 3।

98. वही, श्लोक– 11।

99. वही, सूक्त– 3, श्लोक– 4।

100. टी0एम0पी0 महादेवन, "आउट लाइन्स ऑफ हिन्दूज्म", चेतना प्रकाशन बॉम्बे, संस्करण– 1984।

101. पं0 सत्यदेव परिव्राजक, "हिन्दू धर्म की विशेषताएँ", राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, 1971।

102. रामधारी सिंह दिनकर, "संस्कृति के चार अध्याय", राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, 1956, पृष्ठ– 73–75।

103. बाइबिल, उत्पत्ति 1 : 1–28।

104. आर0ई0 ह्यूम, "दी थरटीन प्रिंसिपल उपनिषद", लन्दन ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971, पृष्ठ– 404–405।

105. डा0 एस0जे0, ''इन्ट्रोडक्शन टू राधाकृष्णन'', पृष्ठ– 45–46।

106. यीशु दास तिवारी, ''हिन्दू धर्म में नई जागृति'', लखनऊ पब्लिशिंग हाऊस, 1966, पृष्ठ– 108–110।

107. ऋग्वेद, मंडल– 10, सूक्त– 129।

108. वही, सूक्त– 121।

109. वही, सूक्त 81 : 2, 3 , 4।

110. इफिसुस 4 : 10।

111. 2 कुरिन्थुस 12 : 1।

112. मत्ती 5 : 12, 16, 45, 48 ; 23 : 9।

113. मत्ती 24 : 36 ; 28 : 2 ; मरकुस 13 : 32 ; लूका 22 : 43।

114. प्रकाशन 21 : 24।

115. गरूण पुराण, अध्याय– 1, श्लोक– 14।

116. गरूण पुराण, अध्याय– 8, श्लोक– 110।

117. वृहद्आरण्यक उपनिषद 2 , 4, 10।

118. डी0एस0 शर्मा, ''दी नेचर एंड हिस्ट्री ऑफ हिन्दूइज्म'' सम्पादक के0डब्ल्यू0 मोगरन, ''दी रिलीजन ऑफ दी हिन्दूज'', पृष्ठ– 8।

119. 1 कुरिन्थुस 15 : 33।

120. श्री मद्भागवत महापुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय– 80, स्कन्ध– 10, श्लोक– 19।

121. जी0आर0 सिंह, डॉ0 सी0डब्ल्यू0 डेविड, ''विश्व के प्रमुख धर्म'' लखनऊ पब्लिशिंग हाउस, 2002, पृष्ठ– 34, 35।

122. रोमियो 12 : 2।

123. तीतुस 3 : 5 ; इफिसियों 4 : 24।

124. काका कालेलकर, ''युगानुकूल हिन्दू जीवन दृष्टि'', भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, संस्करण– 1970, पृष्ठ– 345।

125. विनय मोहन शर्मा, ''हिन्दी साहित्य कोश'', वॉल्यूम– 1, ज्ञानमण्डल वाराणसी, संस्करण– संवत् 2015, पृष्ठ– 69।

126. महाभारत, हरिवंशपर्व 41 : 17–20।

127. श्री मद्भागवत गीता, अध्याय– 4, श्लोक– 8।

128. विनय मोहन शर्मा, ''हिन्दी साहित्य कोश'', वॉल्यूम– 1, ज्ञानमण्डल वाराणसी, संवत् 2015, पृष्ठ– 69।

129. शतपथ ब्राह्मण, मत्स्यावतार, मण्डल– 2, अध्याय– 9, सूक्त– 1, श्लोक– 1।

130. ऋग्वेद, मण्डल– 1, सूक्त– 154, श्लोक– 2।

131. जयदेव, 'गीत गोविन्द', सर्ग– प्रथम, प्रबन्ध– 1।

132. बाइबिल, सन्त योहन 1 : 1, 2।

133. वही, 1 : 14।

134. वही, 1 : 18।

135. वही, 3 : 16–17।

136. सन्त लूका 19 : 10।

137. बाइबिल, गलातियो 3 : 26–28।

138. (A) सम्पादक– ज्ञान रॉबिन्सन, "इन्फ्लूएन्स ऑफ हिन्दूइज्म ऑन क्रिश्चियानिटी", तमिलनाडु थियॉलॉजिकल सेमिनरी मदुरई, संस्करण– 1980।
(B) एस0जे0 हन्स स्टेफनर, "जीजस क्राइस्ट एण्ड दि हिन्दू कम्युनिटी", गुजरात साहित्य प्रकाशन, संस्करण– 1988।
(C) स्वामी अभिषिक्तानन्द, "हिन्दू क्रिश्चियन मीटिंग प्वाइंट विद इन केव ऑफ दि हार्ट", दि इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डिया कल्चर बॉम्बे, 1969।

139. कलकत्ता– अभिनन्दन का उत्तर।

140. क्राइस्ट, द मेसेंजर।

141. यीशुदास तिवारी, "हिन्दू धर्म में नई जागृति", लखनऊ पब्लिशिंग हाउस, संस्करण– 1966, पृष्ठ– 12–13।

142. सी0एफ0 एण्ड्रू , "महात्मा गाँधीज आइडियॉज", पृष्ठ– 92।

143. बिशप जॉन डब्ल्यू सादिक, "दि क्रिश्चियन सिग्नीफिकेन्स ऑफ महात्मा गाँधी", प्रोड्यूस बाई दि ऑथर फार प्राइवेट सरकुलेशन, 1969, पृष्ठ– 18–19।

144. आर0के0 प्रभु एण्ड यू0आर0 राव, "दि माइन्ड ऑफ महात्मा गाँधी", पृष्ठ– 456।

145. बिशप जॉन डब्ल्यू सादिक, "दि क्रिश्चियन सिग्नीफिकेन्स ऑफ महात्मा गाँधी", प्रोड्यूस बाई दि ऑथर फार प्राइवेट सरकुलेशन, 1969, पृष्ठ– 18।

146. यीशु दास तिवारी, "हिन्दू धर्म में नई जागृति", लखनऊ पब्लिशिंग हाऊस, संस्करण– 1966, पृष्ठ– 91–92।

147. डॉ0 मोहम्मद अब्दुल हई, 'रसूले अकरम (सल्लल्लाहू अलैहि वसल्लम)', संस्करण– 1997, प्रकाशन– मिल्लत प्रेस दोहापुर अलीगढ़, यू0पी0, पृष्ठ– 176।

148. मुस्नदे अहमद, 'तिर्मिजी', तर्जुमानुस्सुन्नः।

149. जामे तिर्मिजी, मुआरिफुल, हदीस।

150. मुस्नदे अहमद हयातुल मुस्लमीन।

151. डॉ0 साम0 ह्वी0 भजन, डॉ0 बी0 खान, "इस्लाम एक परिचय", हिन्दी थियॉलोजिकल लिटरेचर कमेटी जबलपुर।

152. कुरआन शरीफ, सूरः मरयम 19, पृष्ठ– 487।

153. कुरआन शरीफ, सूरः स़फ़्फ़ात 37, पृष्ठ– 711।

154. कुरआन शरीफ, सूरः नबा 78–80, पृष्ठ– 935।

155. मत्ती 9 : 27–31 ; 17 : 14–21।

156. लूका 13 : 10–17 ; 14 : 1–6 ; 17 : 11–19।

157. मरकुस 3 : 15।

158. कुरआन शरीफ, सूरः हिज्र 15, पृष्ठ– 417।

159. डॉ0 मुहम्मद अब्दुल हई, "सर्वश्रेष्ठ रसूस मुहम्मद का आदर्श जीवन", संस्करण– 1997, पृष्ठ– 668।

160. 2 कुरिन्थुस 5 : 1।

161. कुरआन शरीफ, सूरः कफ़िरून 18, पृष्ठ– 371।

162. केशव चन्द्र मिश्र, "चन्देल और उनका राजत्व काल", संस्करण– 1975, पृष्ठ– 68।

163. डॉ0 साम0 व्ही0 भजन, डॉ0 बी0 खान, ''इस्लाम एक परिचय'', हिन्दी थियॉलाजिकल लिटरेचर कमेटी, जबलपुर, पृष्ठ– 144।

164. सम्पादक– सर्वधर्म मिलन, ''शान्ति का मार्ग'', लखनऊ पब्लिशिंग हाउस, 1987, पृष्ठ– 155, (कुरआन शरीफ, सूरः 1)

165. वही, पृष्ठ– 198।

166. डॉ0 जयराम मिश्र, ''नानक वाणी'', मित्र प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण– संवत् 2018, पृष्ठ– 10 (ग्रन्थ के सम्बन्ध में)।

167. साहिब सिंह, ''कुछ होर धारमिक लेख'', पृष्ठ– 9–21।

168. रामधारी सिंह दिनकर, ''संस्कृति के चार अध्याय'', राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, 1956, पृष्ठ– 324।

169. वही, पृष्ठ– 321।

170. वही, पृष्ठ– 326।

171. डॉ0 भगवान दास, ''सबधर्मों की बुनियादी एकता'', चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण– 1961, पृष्ठ– 91।

172. इन्दू भूषण बनर्जी, ''इवोल्यूशन ऑफ द खालसा'', भाग– 1, पृष्ठ– 29।

173. भाई गुरूदास की बार, वार– 1, पउड़ी– 30।

174. *''कलि होई कुते पुहीं खाजु होआ मुरदारू'',*
''नानक वाणी'', सारगं की वार, श्लोक– 21।
(वार– वार उस कविता को कहते है जिसमें किसी योद्धा के शौर्य की कोई प्रसिद्ध कहानी कही जाती है। पंजाब में वारों का उस प्रकार प्रचार था, जैसे उत्तर प्रदेश में 'आल्हखण्ड' का प्रचार है। ये रचनाएँ वीर रस में होतीं थीं। इनका प्रचार साधारण जनता में बहुत अधिक था। गुरूनानक देव ने जनता में भक्ति–भावना के प्रचार के लिए वारों का प्रयोग किया।)

175. नानक वाणी, माझ की वार, महला– 1, श्लोक– 35।

176. नानक वाणी, रागु आसा असटपदी– 11।

177. इन्दू भूषण बनर्जी, ''इवोल्यूशन ऑफ द खालसा'', भाग– 1, पृष्ठ7 43।

178. नानक वाणी, रागु आसा, महला– 1, सबद– 3।

179. तेजा सिंह, एसेज़ इन सिक्खिज्म, पृष्ठ– 12–13।

180. नानक वाणी, आसा की वार, श्लोक– 41।

181. नानक वाणी, रागु तिलंग, सबद– 5।

182. नानक वाणी, आसा की वार, श्लोक– 33।

183. नानक वाणी, विहागड़े की वार, श्लोक– 2।

184. नानक वाणी, राग रामकली, प्रथम अष्टपदी।

185. नानक वाणी, माझ की वार, श्लोक– 10।

186. जे0डी0 कनिंघम, ''हिस्ट्री ऑफ दि सिक्खिज्म'', पृष्ठ– 38–39।

187. डॉ0 राधाकृष्णन, ''दि हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ'', पृष्ठ– 25।

188. बलदेव प्रसाद मिश्र, ''तुलसी–दर्शन'', पृष्ठ– 79–80।

189. डॉ0 राधाकृष्णन, ''द हिन्दू व्यू लाइफ'', पृष्ठ– 34।

190. जोगिन्दर सिंह, ''ट्रान्सफारमेशन ऑफ सिक्खिज्म'', पृष्ठ– 3।

191. श्री मुनिकान्त सागर, 'खण्डरों का वैभव' ।
192. जैन–दर्शन।
193. 'निन्दसि वेद विधेरदृह श्रुतिजातम्, सदह–हृदय–दर्शित–पशुघातम्, केशव घृतबृद्ध शरीर, जय जगदीश हरे!' (गीत गोविन्द जयदेव कृत)।
194. महानिद्देस, पृष्ठ– 476।
195. विनयपिटक, महावग्ग, खण्ड– 1, अध्याय– 1, श्लोक– 7।
196. निदान कथा, पैरा0– 131।
197. विनयपिटक, महावग्ग, खण्ड– 1, अध्याय– 1, श्लोक– 23।
198. "नवम्बर 1952 में ये अस्थि अवशेष साँची में एक विशेष रूप से निर्मित स्तूप में पुनः प्रतिष्ठित किए गए। ये पहले साँची से लन्दन के एक म्यूजियम में ले जाए गए थे। ये वापिस लाए गए हैं।" (सर्वपल्ली राधाकृष्णन, "बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष", पब्लिकेशन्स डिवीज़न, दिल्ली, 1950, पृष्ठ– 25)।
199. सर्वपल्ली राधाकृष्ण, "बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष", पब्लिकेशन्स डिवीज़न दिल्ली, 1956, पृष्ठ– 22–27।
"हदं दानि भिक्खवे, आमंतयामि वो, वयधम्मा संखरा, अप्पंमादे न सम्पादेयाति"।
200. ए0एल0 बाशम, "द वन्डर दैट वाज इण्डिया", पृष्ठ– 256।
201. हरिजन सेवक, 24 अगस्त 1947, पृष्ठ– 242।
202. 'श्री मद्भगवद्गीता' अध्याय– 6, श्लोक– 5।
203. डॉ0 गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, 'स्टडीज इन द ओरिजन्स ऑफ बुद्धिज्म'।
204. डॉ0 ईश्वरी प्रसाद, "भारतीय इतिहास संस्कृति कला, राजनीति, धर्म दर्शन", मीनू पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1990, पृष्ठ– 675।
205. वही, पृष्ठ– 678।
206. आउटलाइन्स ऑफ महायान बुद्धिज्म, पृष्ठ– 10।
207. डॉ0 ईश्वरी प्रसाद, पृष्ठ– 680।
208. आचार्य वसुबंधु, "अभिधर्म कोश भाष्य", पृष्ठ– 329।
209. (A) *"या शिष्य ईसा हिंदुओं का यह पता भी है चला।*
ईसाइयों का धर्म भी है बौद्ध साँचे में ढला।"

(भारत–भारती, 'मैथिलीशरण गुप्त')।

(B) "नेपाल के एक बौद्ध मठ के ग्रंथ में यह स्पष्ट वर्णन है कि उस समय ईसा हिन्दू–स्थान में आए थे और वहाँ उन्हें बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त हुआ। यह ग्रन्थ निकोलस नोटोविश नाम के एक रूसी के हाथ लग गया था। उसने फ्रेंच भाषा में अनुवाद सन् 1894 ई0 में प्रकाशित किया है।"

(बालगंगाधर तिलक "गीता रहस्य" परिशिष्ट, भाग– 7)

(C) *"There was a book written a year or two ago by a Russian gentleman, who claimed to have found out a very curious life of Jesus Christ and in one part of the book he says that Christ went to the temple of Jagannath to study with the Brahmins, but became disgusted with their exclusivenese and their idols and so he went to the Lamas of Tibet instead, became perfect and*

went home." (विवेकानन्द, 'द सेजेज आव् इंडिया)

210. मोनिअर विलिएम्स, "हिन्दूइज्म", प्रकाशन सुशील गुप्त कलकत्ता, 1951, पृष्ठ– 51।

211. बाबा साहेब डॉ० अम्बेडकर, "सम्पूर्ण वाड्.मय", खण्ड– 4, डॉ० अम्बेडकर प्रतिष्ठान दिल्ली, 1994, पृष्ठ– 135–137।

212. बोम्बे लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स, खण्ड– 19, 12 मार्च 1927, पृष्ठ– 76।

213. श्री भगवान दास, "दस स्पोक अम्बेडकर", वॉल्यूम– 2, खण्ड– 2, प्रकाशन– जालन्धर, 1977, पृष्ठ– 132।

214. (A) मधुलिमए, "बाबा साहब अम्बेडकर एक चिन्तन", आत्माराम एण्ड संस दिल्ली, 1991, पृष्ठ– 112।

(B) सम्पादन बी०जी० कुंटे, "सोर्स मैटीरियल ऑन बाबा साहेब अम्बेडकर एण्ड दि मूवमेंट ऑफ अन्टचेबल्स", बंबई, 1985, खण्ड– 1, पृष्ठ– 148–149।

215. रामधारी सिंह दिनकर, "संस्कृति के चार अध्याय", पृष्ठ– 416।

216. *It is true the authors of the scheme had hoped that as a result of infiltration, Indian society which was then considered to be in the process of dissolution, would disappear and the population of India would be seved for Christ.*

217. मोनियर विलियम्स, "संस्कृत–इंगलिश डिक्शनरी", 1899, पृष्ठ– भूमिका।

218. *Dr. Nelson Sudhir kshiraj, "The Indian Christian", N.S.K. publications : Jabalpur, 2002, Page- 15.*

219. सन्त सर्वेश्वर दास, हिन्दू धर्म और अब, पृष्ठ– 81।

अध्याय पंचम्

अध्याय– 5

✵ बुन्देलखण्ड में मसीही धर्म का कला साहित्य पर प्रभाव

: *बुन्देलखण्ड के वास्तुशिल्प में मसीही धर्म का प्रभाव।*

: *बुन्देलखण्ड के विविध कलाओं में मसीही धर्म का प्रभाव–*

धातुकला

काष्ठकला

संगीत एवं नाट्य कला।

: *बुन्देलखण्ड के साहित्य पर मसीही धर्म का प्रभाव।*

अध्याय – 5

बुन्देलखण्ड में मसीही धर्म का कला, साहित्य पर प्रभाव

मानव मस्तिष्क चिन्तनशील और कल्पनाशील है। वह जो भी देखता है तथा जो भी सुनता है, उसकी प्रतिक्रिया उसके मस्तिष्क में होती है तथा वह अनेक प्रकार की परिकल्पनाएँ अपने मस्तिष्क में करता है। उन्हीं परिकल्पनाओं के फलस्वरूप नाना प्रकार के मनोरथ जागृत अवस्था में मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं। इन मनोरथों को पूरा करने के लिए व्यक्ति संसाधन जुटाता है तथा इन संसाधनों से वह अपने मनोरथों को पूरा करता है। जब मानव मस्तिष्क में कोई वासनात्मक आवेग तेजी से उत्पन्न होता है तब उसे हर तरह से पूरा करने का प्रयत्न करता है। जब उसके पास निजी संसाधन नहीं होते तो वह अपनी परिकल्पनाओं को प्रक्रियात्मक रूप देने के लिए दूसरे के लिए कार्य करता है तथा किसी भी परिकल्पना का प्रक्रियात्मक स्वरूप कला को जन्म देता है, वही कला है।

उपरोक्त परिभाषा इस ओर संकेत देती है कि मानव मस्तिष्क में उत्पन्न परिकल्पना का साकार रूप ही कला है। सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्राइड का कथन है कि "मानव मस्तिष्क में अनेक प्रकार के वैचारिक द्वन्द होते रहते हैं। जिनसे अति तीव्र वासनात्मक मनोरथ जन्म लेते रहते हैं। जो मनोरथ साधनों की सुलभता से पूर्ण हो जाते हैं, उनका मस्तिष्क में तृप्ति के बाद कोई असर नहीं रहता। किन्तु जो मनोरथ पूर्ण नहीं हो पाते अथवा जो वासनाएँ अतृप्त रहतीं हैं। वे ही कला को जन्म देती हैं। मुख्य रूप से काव्य कला के माध्यम से व्यक्ति अपनी अतृप्त भावनाओं का अभिव्यक्तिकरण करता हैं तथा अतृप्ति और आभाव ही काव्य का जनक है, और यही अतृप्ति, अभाव अन्य कलाओं का जन्मदाता भी।"[1]

कला शास्त्रियों ने कला का विभाजन 16 प्रकार का किया है। ये कलाएँ– (1) काव्य कला, (2) नृत्य कला, (3) संगीत गायन कला, (4) अभिनय एवं नाट्य कला, (5) चित्रकला, (6) सौन्दर्य कला, (7) पाक कला, (8) धातु कला, (9) वास्तु कला, (10) मूर्ति कला, (11) युद्ध कला, (12) शिल्प कला, (13) वस्त्र कला, (14) आभूषण कला, (15) काष्ठ कला, (16) चर्म कला आदि।

इन कलाओं के माध्यम से व्यक्ति अपने मस्तिष्क और शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन संसाधनों की सहायता से करता है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में इनके अनेक उदाहरण अनेक स्थलों में उपलब्ध होते हैं। सर्वाधिक उदाहरण वास्तु शिल्प के हैं। यह वास्तु शिल्प दुर्गों, राजप्रसादों, सरोवरों, धर्म स्थलों और मूर्तिशिल्प के रूप में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं। डॉ0 एस0डी0 त्रिवेदी ने गुर्जर प्रतिहारों की वास्तुशिल्प की प्रशंसा की है।[2]

बुन्देलखण्ड में गुप्त युग से लेकर गुर्जर–प्रतिहार युग, चन्देल युग, तुर्क और मुगल युग तथा ब्रिटिश शासन काल के वास्तुशिल्प उन स्थलों में विशेष रूप से उपलब्ध होते हैं जहाँ इनका प्रभाव रहा है और आज भी ये उस युग की याद दिलाते हैं।

वास्तु शिल्प के अतिरिक्त इस क्षेत्र में मूर्ति शिल्प का भी व्यापक प्रभाव रहा है। मूर्ति शिल्प के उत्कृष्ट उदाहरण गुप्त युग से लेकर चन्देल युग और उसके बाद के यहाँ सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। तुर्क और मुगल काल में पत्थरों की मूर्तियों के स्थान पर धातुओं की मूर्तियाँ निर्मित हुयीं क्योंकि इस युग के शासकों ने मूर्ति कला को जरा भी प्रोत्साहित नहीं किया। ब्रिटिश शासन काल में व्यक्तिगत मन्दिरों में मूर्तियाँ स्थापित की गयीं किन्तु ये मूर्तियाँ अधिक कलात्मक नहीं थीं।

मूर्तिकला के अतिरिक्त यहाँ पूर्व मध्य युग और मध्य युग में चित्रकला को प्रोत्साहित किया

गया। यों तो चित्रकला अत्यन्त प्राचीन है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अनेक स्थानों में शैल चित्र उपलब्ध होते हैं। उसके पश्चात् शैल चित्र ओझल हो गए। किन्तु उत्तर मध्य युग में ओरछा तथा अन्य देशी नरेशों के माध्यम से अनेक चित्रों का निर्माण महलों में कराया गया और उन्हें रंगा गया। चित्रकला के साथ–साथ कागजों पर भी चित्रों का निर्माण किया गया तथा कुछ चित्र काँच पर भी बनाए गए। इस सन्दर्भ में एस0डी0 त्रिवेदी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य महत्वपूर्ण हैं – "बुन्देलखण्ड क्षेत्र में भित्तिचित्रों के साथ–साथ लघु चित्रों के बनाने की परम्परा भी विद्यमान थी। अनेक ग्रन्थ बुन्देलखण्ड की कलम में चित्रित प्राप्त हुए हैं। फाइन आर्ट म्यूजियम, बोस्टन (यू0एस0ए0) की रसिक प्रिया चित्रावली वीरसिंह देव के समय की है।"[3]

जब यहाँ अंग्रेजों का आगमन हुआ उस समय भी चित्रकला की परम्परा बनी रही और इसका व्यापक विकास हुआ। भित्ति चित्रों के अतिरिक्त काग़ज पर सुन्दर चित्र बनाए गए तथा कपड़ों पर भी चित्रकारी की गयी। काँच पर तैल चित्रों का निर्माण किया गया। इन चित्रों के नमूने अनेक स्थलों में उपलब्ध होते हैं।

चित्रकला के अतिरिक्त धातुकला भी प्राचीन युग से विकसित हुए। मुख्य रूप से जो धातुएँ बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होती थीं उनसे अनेक वस्तुओं का निर्माण किया गया। गुप्त युग से लेकर मुगल काल तक इस कला का सतत् विकास हुआ है। इसके पश्चात् ब्रिटिश शासन काल में किसी भी स्तर में धातुकला में कमी नहीं आयी। विविध धातुओं से मूर्तियाँ, घर में प्रयुक्त होने वाले बर्तन, धर्मस्थलों में प्रयुक्त होने वाले विविध धातु के पात्र तथा युद्धकला में प्रयुक्त होने वाले विविध प्रकार के अस्त्र–शस्त्र बनाए जाते रहे। कीमती धातुओं से स्वर्णकार लोग विविध प्रकार के आभूषण बनाया करते थे। तुर्क और मुगल काल में काँच और चीनी पत्थर के विविध प्रकार के पात्र बनाए जाते रहे। जिनका निर्माण ब्रिटिश शासन काल में होता रहा।

काष्ठ कला भी बुन्देलखण्ड में विकसित हुयी। भवन में प्रयुक्त होने वाले दरवाजे, खिड़कियाँ तथा विश्राम करने के लिए तख्त–पलंग, चौकियाँ, अलमारी आदि लकड़ी के बनते रहे। लकड़ी से कुछ कलात्मक वस्तु का निर्माण भी हुआ।

संगीत–गायन, नृत्य तथा अभिनय कला का विकास भी गुप्त युग से लेकर ब्रिटिश काल तक होते रहे। इस क्षेत्र में लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत दोनों का विकास हुआ तथा यह विकास ब्रिटिश काल तक जारी रहा।

बुन्देलखण्ड के वास्तुशिल्प में मसीही धर्म का प्रभाव

मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ मानव की आवश्यकताएँ बढ़ीं तथा उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति ने अथक प्रयास किया। पुरापाषाण युग में मानव कन्दराओं में निवास करता था और खुले मैदानों में विचरण करता था। वह समूह बनाकर भोजन की खोज में इधर–उधर भटकता था। चारागाह युग आने तक उसने पशु पालन करना सीख लिया था किन्तु वह एक जगह स्थिर न रहने के कारण अपना स्थिर निवास नहीं बना पाता था और प्राकृतिक प्रकोपों से स्वयं को नहीं बचा पाता था। भूगर्भ में छिपी सम्पदा का भी उसे बोध नहीं था। वह प्रकृति के पलने में पलने वाला एक अबोध शिशु था किन्तु जब वह कृषि युग में प्रवेश करने लगा तब उसे स्थायी आवास की आवश्यकता पड़ी। उसी समय उसने प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों से अपने लिए आवास बनाए। प्राथमिक आवासों में मिट्टी, बांस तथा लकड़ी और घास–फूस का प्रयोग किया गया तथा वह इन मकानों में विश्राम करने के लिए और प्राण रक्षा के लिए रहने लगा। हजारों बर्षों तक उसकी यही आवासीय स्थिति रही।

चन्देल युग के आने तक आवासीय व्यवस्था पर व्यापक परिवर्तन हुआ। नगर और ग्रामों का विकास हुआ और उनकी रक्षा के लिए दुर्गों का निर्माण हुआ तथा धार्मिक संस्कारों के लिए मन्दिरों का निर्माण हुआ। ''इस देश की परम्परा में वास्तु का विकास एक बृहद् विज्ञान के रूप में होता गया। यांत्रिक परिसीमाओं के अतिरिक्त रचना शैली, भेद, वास्तु–स्थापन, विन्यास और वास्तु फलाफल की जितनी छानबीन और जितना सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन इस देश में हुआ, उतना अन्यत्र नहीं। वास्तु–निर्माताओं के आध्यात्मिक एवं लौकिक ज्ञान की पहुँच असामान्य थी। यों तो इस शास्त्र को अनेक ग्रन्थों ने समय–समय पर निबद्ध किया है किन्तु जिन ग्रन्थों ने यहाँ की परम्परा को निरन्तर प्रवाहित किया है, उनमें उल्लेखनीय नाम बराहमिहिर की बृहत् संहिता, विश्वकर्मा रचित विश्वकर्म प्रकाश तथा विश्वकर्मीय शिल्प शास्त्र, मयदानव रचित मय–शिल्प तथा मयमत, काश्यप और भारद्वाज–रचित वास्तु तत्व तथा बैखानस और सनत्कुमार–रचित वास्तु शास्त्र आदि हैं।''[4]

चन्देलों के समय में वास्तु शिल्प की प्रगति इसलिए हुयी क्योंकि वास्तु निर्माण में जनता और नरेश दोनों ही अपनी सहभागिता निभाते थे। सुप्रसिद्ध कला मर्मज्ञ पारसी ब्राउन का मत है कि ''कला में भारतीयों के आदर्श विशिष्ट रूप से प्रतिस्फुटित होते हैं और चन्देल ललित कलाएँ इसकी अपवाद नहीं है। स्थापत्य कला के प्रत्येक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विकास में कोई–न–कोई महत्वपूर्ण अनुभूत सिद्धान्त निहित है। ग्रीक के लोग उसे सौष्ठवपूर्व पूर्ति पर अधिक बल देते हैं। रोमन वैज्ञानिक कौशल तथा इटैलियन, विद्वता पर अधिक जोर देते हैं किन्तु भारतीय आध्यात्मिक तुष्टि पर विशेष बल देते है। भारतीय कलाकृतियाँ भारतीयों की धार्मिक भावनाओं से ओत–प्रोत है। भारतीय स्थापत्य कला की इस विशेषता के कारण भारत में असंख्य मन्दिरों का निर्माण हुआ और इसी कारण बुन्देलखण्ड में भी मन्दिरों का बाहुल्य है।''[5]

वास्तु निर्माण के पहले वास्तु–विन्यास होता है। उसी के अनुसार भवन, देवालय, राजप्रसाद और दुर्ग आदि निर्मित होते हैं। इस शास्त्र के अनुसार सबसे पहले भूमि का परीक्षण व निरीक्षण किया जाता है। सर्वप्रथम राजप्रसाद का निर्माण होता है। ''राजप्रसादों की भूमि की लम्बाई– 135 हाथ, चौड़ाई– 108 हाथ हो वही उत्तम माना जाता है। शेष चार प्रकार के प्रसादों का मान क्रमशः 8 हाथ कम होता जाएगा। सेनापति के गृह की भी ऐसी ही पाँच कोटियाँ हैं। उत्तम सेनापति निवास का 64 हाथ और 74 हाथ 16 अंगुली निर्धारित किया गया है।[6] आमात्य वास स्थानों के भी पाँच भेद रखे गए हैं। वैसे ही मानदण्ड के अनुसार राजमहिषियों और युवराजों के भी वास–गृहों के प्रभेद हैं। सामन्त और उच्च राजपुरूषों के गृहों के भी परिणाम निर्धारित हैं, यहाँ तक कि देवता, पुरोहित, चिकित्सक, कंचुकी, वेश्या और नृत्य–गीत के गृह भी निर्धारित परिणाम के बनाए जाते थे।

सामाजिक संघटन में विभिन्न वर्णों के वास स्थानों का भी वर्णन बराहमिहिर ने किया है। श्रेष्ठता के दृष्टि से इनमें से प्रत्येक की कोटियाँ है। ब्राह्मणादि वर्णों और अंत्यजों के वासगृहों का पृथुत्व व्यास अलग–अलग निम्न रूप से माना गया है[7] :–

वर्ण	उत्तम	मध्योत्तम	मध्यम	अधम	अधमाधम
ब्राह्मण ...	32	28	24	20	16
क्षत्रिय ...	28	24	20	16	0
वैश्य ...	24	20	16	0	0
शूद्र ...	20	16	0	0	0
अन्त्यज ...	16	0	0	0	0

यह प्रकट करता है कि ब्राह्मण इस प्रकार के पृथुत्व–व्यास वाले पाँच गृहों के, क्षत्रिय चार के, वैश्य तीन के, शूद्र दो के और अंत्यज एक प्रकार के गृह के अधिकारी माने गए थे। इसी प्रकार के न जाने कितने ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेद–प्रभेद वास्तु स्थानों के किए गए थे।

वास्तु रचना – गृह बनाते समय वीथिका छोड़ने की पद्धति भी थी। यह भूमि यदि गृह के पूर्व की ओर छोड़ी जाए तो इसे *'सोष्णीष'*, पश्चिम की ओर तो *'साश्रय'*, उत्तर व दक्षिण की ओर छोड़ी जाने पर *'सावष्टम्भ'* कहा जाता है। यदि यह वीथिका वास्तु–भवन के चारों ओर छोड़ी जाए तो उसे *'सुस्थित'* कहा जाता है। ऐसी विधि से बने वास्तु शुभप्रद माने जाते हैं। वास्तु–शास्त्रों में गृहों के ही परिणाम से उनके द्वारों के निर्धारण का सिद्धान्त बतलाया गया है। उदाहरण के लिए– राजा और सेनापति के गृहों का जो व्यास हो उसमें 70 जोड़कर 11 से भाग दें। भागफल जो होगा उसके प्रधान द्वार का विस्तार उतना ही होगा। ब्राह्मणादि वर्णों के गृह–व्यास के पंचमांश में 12 अंगुल जोड़ देने से जो होगा वही उनके गृह–द्वार का परिणाम है। द्वार–परिणाम का अष्टमांश द्वार का विष्कम्भ और विष्कम्भ से दूनी द्वार की ऊँचाई होनी चाहिए।

गृह में प्रयुक्त होने वाले स्तम्भों का भी परिणाम और फलाफल निर्धारित किया गया है। भिन्न–भिन्न प्रकार के स्तम्भों का अलग–अलग नाम है। चारकोना स्तम्भ को 'रूपक', अठकोना होने पर 'वज्र', सोलह कोना होने पर 'द्विवज्र' बत्तीस कोना होने पर 'प्रलीनक' तथा वृत्ताकार होने पर 'वृत्त' कहते हैं। ये ही सब स्तम्भ शुभ–फलदायक माने जाते हैं। जिस वास्तु के चारों ओर द्वार होते हैं उसे 'सर्वतोभद्र' वास्तु कहते हैं। ऐसे निवास राजाओं, राजाश्रितों और देवताओं के लिए कल्याणकारी माने गए हैं।[8]

वास्तु शिल्प की यह विधा 11वीं शताब्दी तक बनी रही तथा इसी विधा के अनुसार कारीगर और श्रमिक वास्तु का निर्माण करते थे। गरीबों के मकान कच्चे तथा मध्य वर्ग के व्यक्तियों के मकान अपनी आर्थिक क्षमतानुसार बनते थे। धनी, व्यक्तियों और राजा–महाराजाओं के मकान अत्यन्त आकर्षक कला और वैभव के प्रतीक होते थे। तद्‌युगीन मकानों के भग्नावशेष बुन्देलखण्ड में सर्वत्र उपलब्ध होते हैं।

स्थापत्यकला की निर्माण सामग्री – तद्‌युगीन भवन प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों से निर्मित होते थे। मुख्य रूप से पत्थरों का प्रयोग सर्वाधिक होता था क्योंकि बुन्देलखण्ड के प्रत्येक क्षेत्र में पत्थर पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। पत्थरों के अतिरिक्त लकड़ी और बांस का प्रयोग भी मकानों में पर्याप्त मात्रा में किया जाता था। इसका कारण यह है कि यहाँ सर्वत्र जंगल है और जंगलों में इमारती लकड़ी पर्याप्त मात्रा में होती है और बांस भी उपलब्ध होता है। कालान्तर में यहाँ पत्थरों के कंकड़ों से चूना बनाया जाने लगा तथा उस चूने को *'पेर कर'* तथा उसमें बालू डालकर चुनाई और छपाई का मसाला बनाया जाता था। कुछ समय बाद अग्नि और मिट्टी के प्रयोग से ईंटों का निर्माण किया गया तथा उन ईंटों का प्रयोग दीवालों में किया जाने लगा। इसी के साथ–साथ मकान छाने के लिए घरिया और खपड़े भी बनाए जाने लगे। कभी–कभी गरीब लोग अपने मकानों के छप्पर को बाँधने के लिए मूँज, सूमा और सुतली तथा रस्सी का प्रयोग करने लगे। मसाले के साथ–साथ सबसे अधिक महत्व पानी का था क्योंकि बिना पानी के मकान बनाना सम्भावित नहीं है।

स्थापत्य के विविध रूप – चन्देल युग में जो भी निर्माण कार्य हुए वे मठों और मन्दिरों तक सीमित नहीं थे बल्कि यहाँ चौड़ी सड़कों का निर्माण हुआ, पुलों का निर्माण हुआ, सड़क के दोनों ओर यात्रियों के लिए विश्राम–स्थलों का निर्माण हुआ। ''सिंचाई और स्नान के बृहत्तकाय जलाशय, जिनकी ईंट–पत्थर की बनी सुन्दरता ने अलबरूनी आदि प्रारम्भिक मुसलमान यात्रियों को आश्चर्य

चकित कर दिया था, इस युग में जाल की भाँति अगणित संख्या में बने। चन्देल शासकों ने अनेक पर्वतीय और मैदानी दुर्ग भी बनवाए जो उनके स्थापत्य और यान्त्रिक उत्थान की गरिमा प्रकट करते हैं। इन लौकिक प्रयोजनों की कृतियों के अतिरिक्त आध्यात्मिक परिचर्या के स्थल देवालयों के निर्माण ने तो इस युग को अद्वितीय बना दिया।[9] वास्तु शिल्प निम्न रूपों में देखने को मिलता है :–

1. जलाशय – मनुष्य के लिए जल सबसे आवश्यक वस्तु है क्योंकि बिना जल के किसी भी प्राणी का जीवन सम्भव नहीं है। चन्देलकाल में सर्वाधिक जलाशयों और सरोवरों का निर्माण किया गया, आज भी ये जलाशय अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। जहाँ कहीं भी ढालदार भूमि है और वह स्थल दो पर्वतों के बीच का है वहाँ नालों को बन्द करके तालाब बना दिए गए हैं। इन तालाबों के चारों ओर घाट हैं तथा उनके किनारे सुन्दर मन्दिर भी बने हुए हैं। इसके अतिरिक्त पोखरों और कृत्रिम झीलों का निर्माण अजयगढ़, कालिंजर और महोबा के आस–पास हुआ है। चन्देल युग में अनेक कुएँ और सुन्दर बावलियों का निर्माण हुआ है।

चन्देल सरोवरों के सन्दर्भ में डॉ0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय का मत विशेष रूप से दृष्टव्य है – ''चन्देल तड़ागों की मुख्य विशेषता उनका मन्दिरों से संयोजन था। इन तड़ागों में गढ़े हुए पत्थरों का उपयोग किया गया है। अधिकांश तड़ाग किसी–न–किसी देवी–देवताओं के नाम से प्रसिद्ध है : जैसे 'शिवसागर', 'रामसागर', आदि। किन्तु ऐसे भी तड़ाग हैं, जो अपने निर्माणकर्त्ता अथवा जिस स्थान में स्थित है, उसके नाम से प्रसिद्ध है।[10] इस क्षेत्र में अनेक सुप्रसिद्ध जलाशय उपलब्ध होते हैं – 1– खजूर सागर[11] (खजुराहों के समीप स्थित), 2– मदन सागर, 3– कीरत सागर, 4– कल्याण सागर, 5– विजय सागर (महोबा में स्थित)[12], 6– रसिन का अधिक ताल, 7– अजगढ़ के तड़ाग, 8– दुधई का रामसागर, 9– कालिंजर का स्वर्गारोहण ताल[13] 10– पाताल गंगा, 11– कालिंजर का पाण्डु कुंड, 12– कालिंजर का बूढ़ी–बुढ़िया का ताल, 13– कालिंजर की मृगधारा, 14– कालिंजर का कोटितीर्थ[14]।

2. दुर्ग या सैनिक स्थापत्य कला – चन्देल काल में बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में सुदृढ़ दुर्गों का निर्माण हुआ। इन दुर्गों में सैनिकों का निवास था। इसके अतिरिक्त बाहर से आक्रमण को रोकने के लिए सुरम्य राजधानियाँ और नगर दुर्भेद्य प्राचीरों द्वारा परिवेष्टित किए गए थे। भहात नगर की विजय के लिए प्रयाण करते समय सुल्तान उस नगर का वर्णन कर रहा है– ''नगर के चारों ओर एक प्राचीर है, जिसकी ऊँचाई केवल गृधों से नापी जा सकती है। इसके रक्षक सैनिक यदि चाहें तो तारिकाओं से बातें कर सकते हैं। .... इनका शिखर उत्तुंगतम आकाश की ऊँचाई के समान है और मीन राशि के समानान्तर है।''[15] इससे चन्देल शासकों के समय में नगर–निर्माण तथा उनकी रक्षा की कला की एक झलक प्राप्त होती हैं।

जिस युग में चन्देल सत्ता का उत्थान तथा पतन हुआ, वह मध्यकालीन शौर्य तथा पराक्रम का युग था। उस युग में देश में अनेक छोटे–बड़े राज्य थे, जिनमें एक दूसरे से बढ़ जाने की प्रतिद्वन्दिता थी। उन दिनों विशाल एवं एकान्त दुर्गों का बड़ा महत्व था। उनमें किसी राज्य के बनाने तथा बिगाड़ने की सामर्थ्य थी। गुप्त तथा वर्द्धन नरेशों के बाद उत्तरी भारत में चन्देल अग्रणी बने, क्योंकि उनके पास कालिंजर सदृश्य अजेय दुर्ग थे, जिसकी ख्याति दूर–दूर तक फैली थी।[16]

बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध दुर्गों में कालिंजर दुर्ग सबसे प्रसिद्ध दुर्ग है। इसके प्रवेश के लिए सात द्वार हैं। यह सुदृढ़ अजेय और इतिहास प्रसिद्ध दुर्ग है।[17] इसके अतिरिक्त अजयगढ़ दुर्ग, मड़फा दुर्ग, मनियागढ़, कालपी दुर्ग, महोबा दुर्ग, हटा दुर्ग, गुढ़ा दुर्ग सुप्रसिद्ध दुर्ग हैं। वास्तु शिल्प की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं।[18]

3. धर्म स्थल – चन्देलों ने अनेक धर्म स्थलों का निर्माण कराया। जहाँ–जहाँ चन्देलों का राज्य था, वहीं–वहीं इन धर्म स्थलों का राज–निर्माण हुआ। सर्वश्रेष्ठ मन्दिर खजुराहों में उपलब्ध होते हैं। ये मन्दिर 900 ईस्वी से लेकर 1050 ईस्वी तक के हैं।[19]

खजुराहो के ये मन्दिर एक विशेष कला–पद्धति का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनकी विशेषताएँ अद्वितीय हैं। अलंकरण की गहनता और विविधता में उनका दूसरा उदाहरण इस देश में अन्यत्र नहीं मिलता। अलंकरण की मूर्तियों और पच्चीकारी द्वारा जीवन और प्रकृति के अनेक मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण किया गया है। उनमें कल्पना की सूक्ष्मता, वृत्ति–वैभव और विश्लेषण जितना ही परम्परागत है उतना ही नूतन। उसके सम्मुख भुवनेश्वर की मौलिकता बहुत पीछे छूट जाती है। सामान्य दृष्टि वालों के यहाँ के मन्दिरों की दुःसाध्य रचना जहाँ स्तम्भित करती है, वहाँ असाधारण सुविज्ञों के लिए जीवन के स्थूल–दृश्यों द्वारा आध्यात्म की ग्रन्थियों का उद्घाटन भी करती है।

साधारणतया खजुराहो के मन्दिर आयताकार नागर–शैली अर्थात् 'इण्डोआर्यन' शैली पर बने हैं। खजुराहो के कुछ ही मन्दिर 'पंचायतन' शैली के हैं। ऐसे मन्दिरों के अलिंद के कोनों पर चार गर्भगृह बने हैं जिनमें मन्दिर के देवता के उप–देवताओं की स्थापना की गयी है। कहीं–कहीं मंडप के सामने देव–वाहन के लिए एक और गर्भगृह बना पाया जाता है।[20]

बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध मन्दिरों में 2 प्रकार की स्थापत्य कला का प्रयोग हुआ है। प्रथम कला– धार्मिक स्थापत्य कला है। यह स्थापत्य कला विविध धर्मों से जुड़ी हुयी है। इस कला के अन्तर्गत जैन, बौद्ध, शिव, शक्ति, विष्णु सम्प्रदाय के मन्दिर आते हैं। इस कला को *'ब्राह्मण स्थापत्य कला'* के नाम से भी पुकारा गया है किन्तु यह कला जैन और बौद्ध धर्मों में लागू नहीं होती। कला की दृष्टि से इन मन्दिरों का विभाजन इस प्रकार किया गया है–

"मन्दिरों के तीन मुख्य भाग हैं (1) गर्भगृह, (2) मण्डप तथा (3) अर्द्ध मण्डप। इनके अतिरिक्त कुछ मन्दिरों में अन्तराल का भी प्राविधान होता था और कुछ बड़े मन्दिरों में महामण्डप तथा गर्भगृह की परिक्रमा का भी विधान था। प्रत्येक भाग की स्वतन्त्र (अलग–अलग) गोलाकार छत होती थी जो समान रूप से अर्द्ध मण्डप की छत से प्रारम्भ होकर गर्भगृह के उच्चतम शिखर तक जाती है। ये मन्दिर अन्दर तथा बाहर दोनों ओर अलंकृत किए जाते थे। ये अलंकारिक मूर्तियाँ यद्यपि विशाल एवं सुन्दर होती थीं, किन्तु कभी–कभी उनसे अश्लीलता टपकती थी।"[21]

बुन्देलखण्ड में निम्नलिखित धार्मिक स्थल स्थापत्य कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं : (1) कन्दरिया महादेव मन्दिर, (2) महादेव मन्दिर, (3) विश्वनाथ मन्दिर, (4) मृतंग अथवा मृत्युंजय महादेव मन्दिर, (5) नीलकण्ठ मन्दिर[22] (खजुराहो), (6) जतकारी शिव मन्दिर, (7) ककरा मठ (महोबा), (8) शिवमन्दिर (दौनी), (9) देवी जगदम्बा मन्दिर, (10) चतुर्भुज मन्दिर (खजुराहो), (11) वाराह मन्दिर, (खजुराहो), (12) वामन मन्दिर (खजुराहो), (13) जबरा मन्दिर (खजुराहो), (14) ब्रह्मा अथवा गदाधर मन्दिर (खजुराहो), (15) लक्ष्मीनाथ मन्दिर (खजुराहो), (16) चतुर्भुज मन्दिर (जतकारी), (17) मदारि मन्दिर (महोबा), (18) गोंड का विष्णु मन्दिर, (19) बिलहरिया का विष्णु मन्दिर, (20) दुधई का ब्रह्मा मन्दिर, (21) खजुराहो का पार्वती मन्दिर, (22) मनिया देवी मन्दिर, (23) मैहर का शारदा देवी का मन्दिर, (24) रसिन का चण्ड.–माहेश्वरी मन्दिर, (25) घंटई मन्दिर (खजुराहो), (26) पार्श्वनाथ (खजुराहो), (27) जिननाथ मन्दिर (खजुराहो), (28) जैन मन्दिर (दुधई), (29) नेमिनाथ मन्दिर (कुण्डलपुर), (30) मदनपुर का जैन मन्दिर।[23]

4. आवासीय स्थापत्य कला – चन्देल नरेशों ने अपने आवास के लिए बुन्देलखण्ड के अनेक

क्षेत्रों में अनेक राज–प्रसादों का निर्माण कराया तथा कहीं–कहीं पर विजय स्तम्भ भी स्थापित कराए। इस सन्दर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य कुछ इस प्रकार हैं –

"चन्देल प्रासादों का निर्माण आयोजन साधारणतः एक ही प्रकार था। एक खुले आंगन के चारों ओर कमरे बने होते थे। उनमें खुले हुए स्तम्भ युक्त बरामदे भी होते थे। राज महिषियों के एकान्त के विचार से लकड़ी अथवा कपड़े के पर्दे का प्रबन्ध किया जाता था, जिसके चिन्ह अब परिलक्षित नहीं होते हैं।[24]

सामान्य जन के लोग ग्रामों, कस्बों और नगरों में निवास करते थे। इन स्थलों में गरीबों के मकान कच्चे होते थे। जिनमें शौचालय नहीं होते थे। आँगन और उसके चारों ओर कच्चे कमरे होते थे। प्रदूषित जल निकास का कोई संसाधन नहीं था। मध्य वर्ग के लोगों के मकान आधे कच्चे और आधे पक्के होते थे। इनमें ड्योढ़ी, बरामदा तथा आँगन और उसके चारों ओर विविध प्रकार के कमरे होते थे। मकान में स्नान घर और पाठशाला होती थी। नगरीय योजना के अन्तर्गत अलग–अलग जातियों के निवास के ये अलग–अलग स्थल होते थे। इसी प्रकार ब्राह्मण और व्यावसायियों के लिए अलग स्थल होते थे। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में सुप्रसिद्ध आवासीय स्थल इस प्रकार थे – (1) राजप्रसाद (महोबा), (2) मदन महल (जबलपुर), (3) गढ़ाकोटा महल, (4) बाराखम्भा महल (हटा), (5) मदनपुर बारादरी, (6) हाटा का महल (यह महल हाटा दुर्ग के अन्दर है), (7) चिल्ला का महल।[25]

5. <u>चन्देल कालीन स्तम्भ</u> – जब कोई नरेश किसी स्थान पर आक्रमण करता था अथवा राज्य का सीमांकन करता था, उस समय वहाँ अनेक प्रकार के स्तम्भों की स्थापना करता था। मुख्य रूप से 'जय–स्तम्भ', 'तीर्थ–स्तम्भ' तथा अन्य प्रकार के स्तम्भ स्थापित किए जाते थे। इनका उद्‌देश्य नरेशों के शासनकाल की स्मृति बनाए रखना भी था। ये निम्नलिखित थे :

(1) अकोरी का जय–स्तम्भ, (2) महोबा का दिया अथवा दीवट, (3) चांदपुर का गज–स्तम्भ, (4) आल्हा की गिल्ली, (5) महोबे का चण्ड मतावर आदि प्रसिद्ध स्तम्भ हैं।[26] इसके अतिरिक्त दतिया तथा अन्य स्थलों में मौर्य काल और गुप्त काल के अनेक स्तम्भ उपलब्ध होते हैं।

6. <u>मूर्ति कला</u> – बुन्देलखण्ड में निर्मित होने वाली मूर्तियाँ मूर्ति–कला की दृष्टि से अति सुन्दर हैं तथा उनका विभाजन नहीं हो सकता। यथा – "चन्देल–युगीन स्थापत्य और मूर्ति–कला अविभाज्य हैं। उत्तर और दक्षिण भारत के स्थापत्य का विकास वस्तुतः पाँचवीं सदी के गुप्तों और वाकाटकों के राजप्रसादों के काष्ठ–शिल्प से ही हुआ। क्रम से इसकी अपनी ईकाई बनी। समय के साथ काष्ठ–शिल्प का विलोप ही होता गया। केवल अजंता की भित्ति पर वह अवशिष्ट हैं, जहाँ भित्ति चित्रों ने उसकी विभुता को अब भी सुरक्षित रखा है।[27]

चन्देल मूर्ति–कला के नमूने दो रूपों में प्राप्त होते हैं। एक तो हैं अलंकरण के रूप में प्राप्त मन्दिरों के बाहरी और भीतरी भागों में। दूसरे हैं मन्दिरों के विविक्त स्थानों में प्रतिष्ठित मूर्तियाँ। चन्देल मूर्तियों के रचना–सौष्ठव, भंगिमा, अंग–विन्यास, गठन तथा कला–पक्ष में अध्ययन की प्रचुर सामग्री प्रस्तुत होती है किन्तु उससे भी अधिक महत्व की सामग्री उनके द्वारा निरूपित होने वाला आध्यात्म–पक्ष प्रस्तुत करता है। यहाँ निम्न प्रकार की मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं –

1. <u>देव प्रतिमाएँ</u> – हिन्दू–धर्म से जुड़े हुए अनेक देवी–देवताओं की मूर्तियाँ यहाँ उपलब्ध होती हैं। ये मूर्तियाँ पौराणिक आख्यानों के अनुसार निर्मित हैं। मुख्य रूप से दशावतार, दिक्पाल, इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत्र, वरूण, वायु, कुबेर और ईशान आदि मूर्तियाँ प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा शक्ति की अनेक मूर्तियाँ मन्दिरों के अनेक स्थलों में स्थापित की गयीं हैं। दूसरे

प्रकार की वे मूर्तियाँ हैं, जो भीतर ही मंडप और अर्ध मंडप के अलंकरण के लिए प्रयोग में लायी गयी हैं। तीसरे प्रकार की वे मूर्तियाँ हैं– जो मन्दिर की बाहरी भित्ति पर कटि भाग के ऊपर बनीं हैं। इन मूर्तियों की क्रम से तीन पंक्तियाँ प्रत्येक चौड़ी पेटी में–गयी हैं। इनमें एक श्रेणी तो उन मूर्तियों की हैं जो हिन्दू देवताओं और देवियों की हैं। दूसरी श्रेणी दिक्पालों और स्त्री–पुरूष वेश में नाग–देवों की हैं। तीसरी श्रेणी अप्सराओं और सामान्य नारियों की है। इस तीसरी श्रेणी की मूर्तियाँ सभी प्रकार के मान्मथ और रतिविषयक हाव, भंगिमा और मुद्राओं का नग्न प्रदर्शन कर रहीं हैं। इनमें कामशास्त्र की कितनी ही उत्कृष्ट, उद्दीपन–भरी मूर्तियाँ है। पवित्र देवालयों पर इन मूर्तियों की साहस के साथ प्रतिष्ठा न केवल विस्मय का बल्कि एक गवेषणा का विषय बन गया है।

2. <u>अन्य विविध प्रतिमाएँ</u> – जहाँ तक कला में नग्न मूर्तियों के प्रदर्शन का प्रश्न है, यह भारतीय कला में पुरातन मनोवृत्ति है। कला में यक्ष और यक्षिणी की परम्परा इस भावना के मूल में है। शुंगयुगीन जो यक्ष और यक्षिणियाँ साँची और भारहूत के तोरणों से लगी मिलती हैं कुशाण और गुप्त युग तक इसकी बहुलता हो जाती है। जैसे रीतिकाल में हिन्दी कवियों ने राधाकृष्ण को नायिका–नायक के लिए पकड़ लिया, उसी प्रकार यक्ष–यक्षिणी को इन सम्प्रदायों ने अपनी लिप्सा के लिए पकड़ा। स्तूपों के साथ जो वैचित्र्यपूर्ण संबन्ध नग्न यक्षिणियों का है, वही सम्बन्ध उन मान्मथ मूर्तियों का देवालय की पावन–पूज्य मूर्तियों के साथ है। उसी मूलरूप भावना का विकास है। एक विश्व है तो दूसरा आध्यात्म की अलौकिक विभुता संस्पर्श। खजुराहों की मान्मथ मूर्तियों का तात्पर्य इससे अन्यथा नहीं लिया जा सकता।[28]

सारांश यह है कि बुन्देलखण्ड में चन्देल चेदि कला केन्द्र की मूर्तिकला अपनी पूर्णता को पहुँच गयी थी। केश–विन्यास, मुख की भाव–भंगिमा तथा शरीर के व्यापारों के निर्दोष कृतित्व में शिल्पकारों ने पूर्ण निपुणता प्राप्त कर ली थी। अधिकांश मूर्तियों में महोबा में प्राप्त काले संगमरमर का प्रयोग हुआ है, किन्तु विन्ध्य पर्वत से प्राप्त लाल–पत्थर का भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है ; क्योंकि इस पत्थर में भी सुन्दर ओप होती है।

यदि बुन्देलखण्ड की मूर्तिशिल्प का विवेचन किया जाए तो इस क्षेत्र में अधिकांश प्रतिमाएँ मध्यकाल (600 ई0 से 1200 ई0) की मिलती हैं। इनमें भी चन्देलकालीन कलाकृतियों की संख्या सर्वाधिक है। प्रतीहार कालीन कुछ प्रतिमाएँ उपलब्ध हुयी हैं। गुप्त युगीन कलाकृतियों की संख्या भी बहुत अधिक नहीं है लेकिन जो कला अवशेष उपलब्ध हैं, वे कला की दृष्टि से अनुपम हैं। इस युग की मूर्तियाँ अधिक प्रभावोत्पादक तथा सुन्दर हैं। आकृतियों के अंकन में गतिशीलता है। सौन्दर्य विधान के अवधारित मानदण्डों का प्रयोग कलाकार ने बड़ी सावधानी से प्रतिमा निर्माण में किया है। शरीर की स्थूलता समाप्त हो गयी और उसमें छरहरापन आ गया। अर्द्ध मुकलित चक्षु, मुख पर शान्त भाव, आकर्षक केश विन्यास, पारदर्शक वस्त्र परिधान इस युग की अपनी विशेषताएँ हैं।[29]

<u>तुर्क एवं मुगुल का स्थापत्य कला में प्रभाव</u>

बुन्देलखण्ड की स्थापत्य कला तुर्कों और मुगुल काल में परिवर्तित हुयी। यहाँ की कला में तुर्कों और मुगुलों का व्यापक प्रभाव पड़ा। "तुर्कों की भारत विजय के समय तक मध्य एशिया की विभिन्न जातियों ने स्थापत्य कला की ऐसी शैली विकसित कर ली थी जो कि एक ओर ट्रान्स आक्सियाना, ईरान, अफगानिस्तान, इराक, मिस्र, उत्तरी अफ्रीका तथा दक्षिणी पश्चिमी यूरोप की स्थानीय शैलियों और दूसरी ओर अरब की मुस्लिम शैली के समन्वय से बनी थी। ईरान स्थापत्य कला की कुछ मौलिक विशेषताओं जैसे नोकदार तिपतिया मेहराब *(Trefoil Arches)*, मेहराब डाटदार छतें *(Transverse Vault)*, इमारतों की अठपहला रूपरेखा, गुम्बज आदि का जन्म तो

वैसे भारत में हुआ था पर उनका पूर्ण विकास ईरान में ही हुआ।[30] जो शैली तुर्कों के माध्यम से भारत आयी, वह पूर्णरूपेण अरबी और तुर्की शैली नहीं थी। "इस विदेशी स्थापत्य कला की मुख्य विशेषताएँ चार थीं – गुम्बद, ऊँची–ऊँची मीनारें, मेहराब और मेहराबी डाटदार छतें। लेकिन तुर्की आक्रमणकारियों ने भारत में एक बहुत ही विकसित स्थानीय स्थापत्य कला की शैली पायी जो तीरा–ब्रेकेट *(Beam-Bracket)* के सिद्धान्त पर आधारित थी और जिसकी विशेषताएँ थीं : (1) पटी हुयी छतें, (2) आगे निकले हुए ब्रेकेट *(Corbel Bracket)*, (3) शिखर, (4) घोड़ियों पर आधारित मेहराब *(Arches built on cantilever principle)*, (5) चौड़े छज्जे *(Caves)* और (6) छोटे–छोटे गोल और चौकोर खम्भे। लेकिन मुसलमान विजेता थे, इसलिए उन्होंने देश में इमारतों की रचना के अपने विचार, अपनी रूपरेखा और तरीके प्रचलित किए।[31]

सल्तनत काल में अनेक इमारतों का निर्माण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में हुआ। इनका निर्माण कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर अलाउद्दीन खिलजी, गियासुद्दीन तुगलक, सैय्यद और लोदी वंश के शासकों ने कराया। इस युग में हिन्दू स्थापत्य कला भी अपने अस्तित्व बनाए रही। हिन्दुओं की तीरा–घोड़ी *(Trabeate)* शैली के मुख्य अंग ये हैं : (1) छोटे–छोटे चौकोर स्तम्भ, (2) कारबेल ब्रेकेट *(Corbel bracketes)*, (3) घोड़िया–छज्जों के सिद्धान्त *(Cantilever principle)* पर बने हुए गावदुम मेहराब *(Tapering arch)*, (4) पटी हुयी छतें, (5) चौड़े–चौड़े छज्जे, (6) सजावटी डिजाइनें। हिन्दू इमारतें कुछ–कुछ अँधेरी रहस्यमयी–सी और वे हवा और सूर्य के प्रकाश के लिए चौड़ी और खुली नहीं होती थीं।

नए शासकों की पहली आवश्यकताओं में से एक थी रहने के लिए घरों की एवं उनके समर्थकों या अनुचरों हेतु पूजा–स्थलों की। पूजा–स्थल के लिए पहले तो उन्होंने मन्दिरों एवं अन्य मौजूद भवनों को ही मस्जिदों में रूपान्तरित कर दिया। इस प्रयोजन से उन्होंने अधिकांशतः देशी शिल्पकारों, जैसे पत्थर–तराशों, राजमिस्त्रियों आदि, का प्रयोग जो अपने कौशल के लिए विख्यात थे, बाद में पश्चिम एशिया से कुछ विशेषज्ञ वास्तुकार भारत पधारे। अपने भवनों में तुर्कों ने बड़े पैमाने पर मेहराबों और गुम्बदों का प्रयोग किया। न तो मेहराब और न ही गुम्बद कोई तुर्की अथवा मुस्लिम अविष्कार था। अरबों ने उन्हें बाइजेंटाइन साम्राज्य के जरिए रोम से ग्रहण किया था उन्हें विकसित कर अपना बना लिया था।[32]

मुगुल काल में वास्तु शिल्प में परिवर्तन हुआ। जब भारत वर्ष में बाबर की सत्ता स्थापित हुयी, उस समय उसने वास्तु–शिल्प से जुड़ी कला–कृतियों का अध्ययन यहाँ किया था। "बाबर को अपनी कड़ी आलोचनात्मक प्रवृत्ति के कारण दिल्ली और आगरा की तुर्की तथा अफगान सुल्तानों की बनवायी हुयी इमारतें पसन्द नहीं आयी थीं। लेकिन वह ग्वालियर की स्थापत्य कला से बहुत ही प्रभावित हुआ था। उसने "मानसिंह और विक्रमाजीत के सभी महल घूम–घूमकर देखे थे" और "अलग–अलग स्थानों पर बिना किसी निश्चित योजना के बने हुए होने पर भी वे उसे बहुत ही सुन्दर" लगे थे।[33] ग्वालियर के महल 16वीं सदी के प्रथम चतुर्थांश की हिन्दू कला के सुन्दर उदाहरण थे और जब बाबर अपने लिए महल निर्मित कराने लगा तो वे उसके लिए नमूने बन गए।"

सम्राट जहाँगीर ने भी अनेक स्थलों पर निर्माण कार्य कराए। किसी भी इमारत के निर्माण में जहाँगीर भी अकबर की भाँति निर्माण कार्य में दिलचस्पी लेता था। औरंगजेब ने किसी भी निर्माण

कार्य में कोई दिलचस्पी नहीं ली। बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में विविध प्रकार के निर्माण कार्य हुए :

तुर्क और मुगुल काल के बुन्देलखण्ड के वास्तुशिल्प

क्र0सं0	जिला	स्थान	स्मारक का नाम
1	झाँसी	एरच	जामा मस्ज़िद
2	ललितपुर	दुधई	वनबाबा
		सीरोन खुर्द	धोबी का पौर
3	जालौन	उरई	मस्जिद
		काल्पी	चौरासी खम्भा
		काल्पी	दुर्ग के भग्नावशेष
		काल्पी	गुम्बदीय इमारत
		कोंच	बारा खम्भा
		जालौन	कब्रिस्तान
4	हमीरपुर	महोबा	जामा मस्जिद
5	बाँदा	बाँदा	जामा मस्जिद
6	सागर	धामोनी	गुम्बद और मस्जिद
7	टीकमगढ़	ओरछा	जहाँगीर महल
		ओरछा	प्रवीण राय महल
8	दमोह	रानेह	प्राचीन मठ
		हटा	रंगमहल
9	दतिया	दतिया	वीरसिंह देव महल
10	चन्देरी (जिला गुना)	चन्देरी	किला
		चन्देरी	बड़ा मदरसा
		चन्देरी	बादल महल द्वार
		चन्देरी	जामा मस्जिद
		चन्देरी	कोशक महल
		चन्देरी	शहजादा का रोजा
		चन्देरी	हिजामुद्दीन–परिवार का मकबरा

तुर्क एवं मुगुल काल में भवन निर्माण सामग्री में भी व्यापक परिवर्तन हुआ। निर्माण सामग्री के रूप में पत्थर के साथ–साथ इमारती लकड़ी, चूना और ईंट का प्रयोग होने लगा तथा छपाई करने के लिए चूना और बालू के साथ उर्द की दाल, गुड़ और सन का प्रयोग होने लगा तथा चूने से ही विविध प्रकार की पच्चीकारी (नक्काशी), जालियाँ और झरोखे बनाए जाने लगे। इनके समय में भवनों और मस्जिदों में मीनारों का निर्माण होने लगा।

दुर्ग निर्माण शैली में भी अनेक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। पहले ये दुर्ग 'मानसार ग्रन्थ' के अनुसार निर्मित होते थे।[34] ये दुर्ग गिरिदुर्ग, बन दुर्ग, सलिल दुर्ग, पंक दुर्ग, रथ दुर्ग और मिश्र दुर्ग के रूप में निर्मित होते थे।

अग्नि पुराण के अनुसार "धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, वृक्षदुर्ग, जलदुर्ग और पर्वत दुर्ग– ये ही छः प्रकार के दुर्ग हैं। इनमें पर्वत दुर्ग सबसे उत्तम है। वह शत्रुओं के लिए अभेद्य तथा रिपुवर्ग का भेदन करने वाला है। दुर्ग ही राजा का पुर या नगर है। वहाँ हाट–बाजार तथा देवमन्दिर आदि का होना आवश्यक है। जिसके चारों ओर यन्त्र लगे हों, जो अस्त्र–शस्त्रों से भरा हो, जहाँ जल का सुवास हो तथा जिसके सब ओर पानी से भरी खाइयाँ हो, वह दुर्ग उत्तम माना गया है।"[35] प्राचीन दुर्ग शैली विधा में व्यापक परिवर्तन हुआ। सन् 1613 में ओरछा नरेश वीर सिंह जू देव ने झाँसी का दुर्ग बनवाया। इस दुर्ग में किले के परकोटे के बीच–बीच में ऊँचे बुर्ज और कंगूरे बने हुए हैं तथा दीवालों में छोटे–छोटे छेद हैं। इस समय के दुर्ग बड़े दुर्ग और छोटे दुर्गों में विभक्त थे। छोटे दुर्गों को गढ़ी कहा जाता था। इस प्रकार के दुर्ग टीकमगढ़, समथर, बिजना, छतरपुर तथा पन्ना में उपलब्ध हैं।

आवासीय व्यवस्था में भी अनेक परिवर्तन हुए हैं। मुगल वास्तुशिल्प के साथ–साथ बुन्देलखण्डी वास्तुशिल्प का सम्मिश्रण हुआ है। ओरछा का राम राजा मन्दिर चन्देरी के कुशल महल से मिलता जुलता है। जिसका निर्माण सन् 1575 ईस्वीं में राजा मधुकर शाह ने कराया था। इसके अतिरिक्त जहाँगीर महल का निर्माण ओरछा में वीर सिंह जू देव ने कराया था। इसमें आठ गुम्बदें हैं। इसी प्रकार का एक महल दतिया में सन् 1620 में महाराजा वीर सिंह जू देव ने कराया था। इसे ग्रेनाइट की चट्टाने काटकर बनवाया गया था। इसके प्रत्येक कोने में गुम्बदें हैं तथा यह महल पाँच मंजिल का है। इसके बाहरी भाग में टेकदार छज्जे, झरोखेदार खिड़कियाँ और सुन्दर नक्काशी है। इस प्रकार सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में तुर्क और मुगुल की वास्तु शिल्प में व्यापक परिवर्तन हुआ।

मसीही धर्मावलम्बियों का वास्तुशिल्प में प्रभाव

जब मसीही धर्मावलम्बियों का आगमन भारत वर्ष और बुन्देलखण्ड में हुआ। उस समय उन्होंने तद्युगीन प्रचलित वास्तुशिल्प को प्रभावित किया। वे अपने साथ पश्चिमी देशों की वास्तुशिल्प तकनीक लाए। जब इन्होंने इंजीनियरिंग कॉलेज (यांत्रिक महाविद्यालय) खोले। उस समय सिविल इंजीनियरिंग के रूप में वास्तुशिल्प का बोध यहाँ के नवयुवकों को कराया। जिससे यहाँ वास्तुशिल्प निर्माण में व्यापक परिवर्तन हुए। जो निम्नलिखित हैं :–

1. वास्तुशिल्प सामग्री में परिवर्तन – सन् 1804 से लेकर सन् 1947 तक मसीही अंग्रेजों का प्रभाव बुन्देलखण्ड में रहा। उस समय इन्होंने अनेक इमारतों का निर्माण कराया। उन इमारतों में अपनायी गयी निर्माण सामग्री परम्परागत निर्माण सामग्री से भिन्न थी। इनमें पत्थरों की जगह ईंटों का प्रयोग किया गया तथा पत्थर की गिट्टियों का प्रयोग बीम डालने और स्लेप डालने के लिए किया गया तथा स्लेप को साधने के लिए लोहे गाटर, टी आयरन का प्रयोग किया गया और स्लेप के लिए छड़ों का प्रयोग हुआ। परम्परागत मसालों से हटकर स्लेप और छपाई के लिए सीमेण्ट का अविष्कार किया गया और उसका प्रयोग किया जाने लगा। जिस प्रकार के औजार पहले कारीगर भवन निर्माण के लिए किया करते थे उन औजारों में भी परिवर्तन हुआ किन्तु भवन निर्माण के लिए बुन्देलखण्ड के श्रमिक ही शारीरिक श्रम से जुड़े रहे तथा कार्य की देख–रेख सिविल–इंजीनियर और ओवर–सियर किया करते थे। स्लेप आदि डालने के लिए विविध प्रकार की लकड़ी बाँस बल्ली प्रयोग में लायी जाती थी।

2. निर्माण विधि में परिवर्तन – मसीहियों के समय में वास्तु–शिल्प की निर्माण विधि में व्यापक परिवर्तन हुए। अब इसी वास्तु के निर्माण में सर्वप्रथम भूमि का चुनाव किया जाता है और भूमि का निरीक्षण और सर्वेक्षण सिविल इंजीनियर और ओवर–सियर द्वारा किया जाता है। जिस

प्रकार के वास्तु का निर्माण किया जाना है, उसका प्लान–मैप सर्वप्रथम बनाया जाता है तथा उस प्लान–मैप के अनुसार निर्माण कार्य प्रारम्भ कराया जाता है। सबसे पहले नींव खोदी जाती है, फिर दीवार खड़ी की जाती है। इन दीवालों में यथास्थान दरवाजे, खिड़की, रोशनदान और अलमारियों का निर्माण किया जाता है तथा आवासीय भवन में ड्राइंग रूम, गेस्ट रूम, स्टोर रूम, स्लीपिंग रूम, किचिन, आँगन तथा बाथरूम का निर्माण किया जाता है, तथा प्रदूषित जल के निष्कासन के लिए नावदान और नालियाँ बनायी जाती हैं। मकान के बाहरी हिस्से पर बरामदे का निर्माण होता है। बाहर वाहन आदि खड़े करने के लिए स्थल बनाए जाते हैं। तत्पश्चात् जो जमीन शेष बचती है, वहाँ लॉन या बगीचे बना दिया जाता है तथा भवन को चारों ओर से बाउण्ड्री से घेर दिया जाता है। यदि वास्तु–शिल्प का निर्माण किसी अन्य उद्देश्य से कराया जा रहा हो, वहाँ उन उद्देश्यों की पूर्ति को ध्यान में रखकर यह निर्माण कार्य होता है।

वास्तुशिल्प निर्माण के विविध स्वरूप

बुन्देलखण्ड में मसीहियों के समय में निम्न निर्माण कार्य हुए, जो अपनी पृथक पहचान रखते हैं :–

1. आवासीय बस्तियों के निर्माण – बुन्देलखण्ड में जहाँ भी मसीहियों का प्रभाव रहा। वहाँ इन्होंने अपने आवास के लिए बस्तियाँ बनायीं। ये बस्तियाँ पाश्चात्य शैली तथा बुन्देलखण्ड वास्तुशैली का सम्मिश्रण है। इनमें अनेक आवासीय मकान होते थे और उनके मध्य में आने–जाने के लिए सड़कों का निर्माण होता था। गन्दे पानी के निष्कासन के लिए सड़क के दोनों ओर नालियाँ बनायी जाती थीं। इसके अतिरिक्त जलापूर्ति के लिए कुँओं और तालाबों का निर्माण भी होता था। बाहर के मेहमानों के लिए इन बस्तियों के एक कोने में डाक बंगले की व्यवस्था होती थी तथा वाहनों को खड़ा करने के लिए अलग व्यवस्था होती थी। इनकी बस्तियाँ मुख्य रूप से नवगाँव छावनी, झाँसी, ग्वालियर, सागर और जबलपुर में थी।

2. सैनिक बस्तियों के निर्माण – अंग्रेजों ने अपनी सुरक्षा और साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से अनेक स्थलों पर सैनिकों के निवास के लिए बस्तियाँ बनायीं। ये बस्तियाँ नवगाँव छावनी, सागर जबलपुर, बाँदा, कालपी, झाँसी आदि में बनायी गयीं। इन स्थलों में पैदल सेना व घुड़सवार रहा करते थे। इन्हीं स्थलों में आयुध भण्डार गृह (जहाँ अस्त्र–शस्त्र रखे जाते थे), तथा सैनिकों को प्रशिक्षित करने के लिए प्रशिक्षण स्थल या मैदान होते थे। सैन्य अधिकारियों के लिए अलग आवासीय व्यवस्था होती थी तथा सैनिकों की चिकित्सा के लिए सम्पूर्ण सुविधा युक्त चिकित्सालय भी यहाँ होते थे। कहीं–कहीं इन्हीं स्थलों पर आयुध निर्माण और उनकी मरम्मत के लिए कारखाने भी होते थे।

3. सड़क निर्माण – अंग्रेजों के समय में बुन्देलखण्ड को एक स्थान से दूसरे स्थान को जोड़ने के लिए सड़कों का निर्माण किया गया। इलाहाबाद से लेकर ग्वालियर तक, कानपुर से लेकर सागर, दमोह, जबलपुर तक तथा महाराष्ट्र से लेकर बुन्देलखण्ड के विविध क्षेत्रों के लिए सड़कों का निर्माण किया गया। कहीं तो ये सड़कें कच्ची बनायीं गयीं तो कहीं इन सड़कों में गिट्टी और तारकोल का प्रयोग किया गया। तथा रेल यातायात के लिए विविध रेल लाइनों का निर्माण हुआ, विविध सड़कों में मोटर, कार, बस तथा ट्रक आने जाने लगे। इनसे अंग्रेजों को भी लाभ हुआ और आने–जाने वाली जनता को भी लाभ हुआ।

4. पुलों का निर्माण – आवागमन के साधन में बाधा उस समय उपस्थित होती थी जब नदी और नालों को पार करने के लिए कोई संसाधन नहीं होते थे। आवागमन को अबाध रूप से संचालित

करने के लिए नदी, नालों में पुल निर्माण करने की आवश्यकता थी। यद्यपि पुल निर्माण विधा भारतीयों की वास्तुशिल्प में वर्णित है तथा जिसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण आदि में हुआ है। तुर्कों और मुगलों के समय में भी अनेक पुलों का निर्माण हुआ है किन्तु अंग्रेजों के समय में पुल निर्माण शैली में व्यापक परिवर्तन हुए और विविध सड़कों में प्राकृतिक जलाशयों में पुलों का निर्माण किया गया। ये पुल सड़क यातायात और रेल यातायात दोनों के लिए सुलभ कराए गए। पुल निर्माण विधा में जलाशयों के मध्य चौड़े और लम्बे स्तम्भ उठाए जाते थे तथा दो स्तम्भों के बीच बीम, स्लेप अथवा लोहे के गाटरों के माध्यम से उन्हें पाटने की विधा थी। तत्पश्चात् उसके ऊपर सड़क बना दी जाती थी तथा पुल के दोनों ओर स्तम्भ या दीवार उठा दी जाती थी ताकि वहाँ कोई भी वाहन दुर्घटना ग्रस्त न हो। कहीं–कहीं पर नाव या पीपे के पुल भी बनाए जाते थे किन्तु इन पुलों में वर्षा के मौसम पर कोई भी यातायात सम्भव नहीं था। बाँदा का रेलवे पुल सन् 1910 का बना है तथा यहाँ पर रेल यातायात सन् 1914 से प्रारम्भ हो गया था।

5. धर्म स्थल – मसीहियों ने बुन्देलखण्ड में अनेक स्थलों में अपने धर्म संस्कारों को सम्पन्न करने के लिए गिरजाघर अथवा चर्च का निर्माण कराया। ये चर्च एक विशेष शैली के अन्तर्गत नियमित किए जाते थे। इनमें भारतीय वास्तु शिल्प और पाश्चात्य वास्तु शिल्प का सम्मिश्रण देखा जा सकता है। इन चर्चों में एक बड़ा हाल तथा पादरी के बैठने के लिए अलग स्थल होता है। चर्च में प्रवेश के लिए अनेक द्वार निर्मित किए जाते हैं। हवा और रोशनी आने के लिए खिड़कियाँ और रोशनदान होते थे। अधिकांश चर्च की छत खप्पर से निर्मित होती थीं। बाद में ये छतें पक्की बनने लगीं तथा ये छतें ढालदार होती थीं। प्रत्येक चर्च में 200 से अधिक व्यक्तियों के लिए स्थान होता था। इस युग में हिन्दू और इस्लाम धर्म के भी धर्म स्थलों का निर्माण हुआ, जिसमें बुन्देलखण्डी और पाश्चात्य शैली का सम्मिश्रण देखा जा सकता है। मुख्य रूप से बाँदा जनपद और उसके आस–पास हिम्मत बहादुर गोसाईं ने अनेक धर्म स्थलों का निर्माण कराया। जिनमें पाश्चात्य वास्तु शिल्प का प्रभाव है।

6. जलाशय – बुन्देलखण्ड की जलीय समस्या एक ज्वलन्त समस्या है। समाधान के लिए मसीहियों ने अथक प्रयत्न किए। अनेक स्थानों पर कुँओं, तालाबों और बावलियों का निर्माण कराया। सिंचाई के संसाधन में वृद्धि करने के लिए अनेक स्थलों में नहरें बनवायीं। बड़े बाँध और चेक डैमों का निर्माण कराया। बुन्देलखण्ड में रनगवां, गंगऊ, बरियारपुर बाँध अंग्रेजों के समय के हैं। ललितपुर का माताटीला बाँध तथा जबलपुर का बरगी बाँध भी उसी युग का है। इन बाँधों के माध्यम से नहरें निकाल सिंचाई की व्यवस्था की जा रही है तथा वर्तमान समय में इन बाँधों से बिजली भी पैदा की जा रही है।

7. दुर्ग एवं गढ़ी – मसीहियों ने सुरक्षा की दृष्टि को ध्यान में रखकर कुछ पुराने दुर्गों और गढ़ियों का जीर्णोद्धार कराया था। ताकि वहाँ ये लोग स्वतः अपनी सेना सहित रह सके तथा जिन दुर्गों और गढ़ियों को इन्होंने अनुपयोगी समझा उसे विध्वंस भी किया। कालिंजर दुर्ग का विध्वंस अंग्रेजों द्वारा सन् 1860 के बाद किया गया, क्योंकि यहाँ क्रांतिकारी आकर छिपे थे। अंग्रेजों ने दुर्गों के निर्माण शैली में भी परिवर्तन किया ताकि वहाँ आसानी से आधुनिक अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग किया जा सके। यह सुधार उन्होंने सन् 1857 की क्रांति के परिणामों को देखते हुए किया। इसी समय कुछ देशी नरेशों ने भी अपने दुर्गों और राजप्रसादों में मसीही वास्तुशिल्प के अनुसार परिवर्तन किए।

8. मनोरंजन स्थलों का निर्माण – मसीहियों ने अनेक मनोरंजन स्थलों को या तो स्वतः निर्मित कराया या फिर दूसरों को इन स्थलों को निर्माण के लिए प्रेरित किया। जब चलचित्र गृहों का प्रचलन नहीं था। उस समय बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों में नाट्य शालाओं और नाचघरों का

निर्माण किया गया। इन स्थलों में विविध प्रकार के नाटक, रामलीला, रासलीला, नौटंकी, प्रहसन और विविध प्रकार के नृत्यों का आयोजन होता था। इन नाट्य शालाओं में दर्शकों के बैठने के लिए एक बड़ा हाल होता था और नाटक के मंचन के लिए एक बड़ा रंगमंच होता था। कलाकारों के सजने और रूप सँवारने के लिए एक पृथक कक्ष होता था। नाट्य शालाएँ की छत ढालदार खप्पर अथवा टीन की होती थी। इस प्रकार की नाट्य शालाएँ चरखारी, नवगाँव, झाँसी और ग्वालियर में थीं। लेकिन जब चलचित्र गृहों का प्रचलन हुआ उस समय अनेक धनी व्यक्तियों ने बाँदा, झाँसी, ग्वालियर तथा जबलपुर में चलचित्र खोले और उनका निर्माण भी नाट्यशाला, वास्तुशिल्प के अनुसार हुआ। नाट्यशाला बुन्देलखण्ड के लिए कोई नवीन वास्तुशिल्प नहीं थी। चन्देलकाल में ऐसी नाट्य शालाएँ कालपी और खजुराहो में थीं किन्तु इनकी निर्माण शैली वर्तमान निर्माण शैली से भिन्न थीं।

9. मृत्यु स्मारक या कब्रिस्तान – मसीहियों ने अनेक मृत्यु स्मारकों अथवा कब्रिस्तानों का निर्माण कराया। यों तो मृत्यु स्मारक और कब्रिस्तान तुर्कों और मुग़लों के समय से बनने लगे थे किन्तु मसीहियों के मृत्यु स्मारक मुसलमानों के मृत्यु स्मारकों से भिन्न होते थे तथा उनकी निर्माण शैली भी भिन्न होती थी। इनकी कब्र जमीन से 6 फुट गहरी होती थी तथा ये लोग शव को एक ताबूत में रखकर दफन करते थे। बुन्देलखण्ड में सर्वाधिक अंग्रेजों की मृत्यु 1857 की क्रांति में हुयी थी। उसके पश्चात् मसीही लोग स्वभाविक मृत्यु से मरते रहे। इनकी मृत्यु स्मारकों में उनके नाम और मृत्यु की तारीख लिखी जाती थी और कहीं–कहीं स्मारक स्तम्भ भी खड़े किए जाते थे। इनकी मृत्यु स्मारकों में दरगाहों की भाँति गुम्बद आदि बनाने का नियम नहीं था तथा उनकी वास्तुशिल्प मुसलमानों की वास्तुशिल्प से भिन्न थी।

वास्तु–शिल्प का मूल्यांकन

यदि चन्देलकाल से लेकर अंग्रेजों के समय तक की वास्तुशिल्प का मूल्यांकन किया जाए तो चन्देल युगीन वास्तुशिल्प सर्वश्रेष्ठ और चिरकालिक वास्तु शिल्प है। यह शिल्प बृहद संहिता मय दानव कृत वास्तुशिल्प एवं विश्वकर्मा विज्ञान के अनुसार यहाँ वास्तुशिल्प का निर्माण हुआ। "इस वास्तुशिल्प में भी पूर्ववर्ती समय में सभी के पास बड़े स्थान में भवन बनाने की सुविधा थी। उस समय 16 खण्डों में कक्षों आदि का विभाजन कर प्रत्येक कार्य के लिए पृथक–पृथक दिशा का उल्लेख किया गया था।"

1. जल–निकासी का मार्ग पूर्व, ईशान, उत्तर और वायव्य की तरफ होना चाहिए।
2. सीढ़ी का घुमाव पूर्व से दक्षिण, दक्षिण से पश्चिम, पश्चिम से उत्तर होना चाहिए।
3. भारी सामान दक्षिण में या दक्षिण–पश्चिम (नैर्ऋत्य) में रखना चाहिए।
4. पलंग का सिरहाना पूर्व या दक्षिण की तरफ होना चाहिए। उत्तर या पश्चिम की तरफ सिर करके सोने से आयु क्षीण होती है और रोग पैदा होतें हैं।
5. पूजागृह में विष्णु और शिव का मुख किसी भी दिशा में हो सकता है। इन्द्र, सूर्य और कार्तिकेय का मुख पूर्व या पश्चिम की ओर होना चाहिए। कुबेर, भैरव, चामुण्डा, षोऽशमातृका का मुख दक्षिण की ओर होना चाहिए। हनुमान जी का मुख नैर्ऋत्य की ओर होना चाहिए।"[36]

प्राचीन वास्तुशिल्प चिरकालिक और सुदृढ़ था। उसके पुरावशेष अभी भी उपलब्ध होते हैं। मध्यकालीन वास्तुशिल्प भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं रहा, और उसमें सुदृढ़ता भी नहीं थी। जो चन्देल कालीन वास्तुशिल्प की शैली में थी किन्तु ब्रिटिश शासन का वास्तुशिल्प मध्ययुगीन वास्तु

शिल्प से भी सुदृढ़ता की दृष्टि से कमजोर था परन्तु उसमें बाह्य आकर्षण था। ब्रिटिश काल का वास्तुशिल्प चिर स्थायी कभी भी नहीं हो सकता। भवनों के विध्वंस 200 वर्षों में पूरी तरह हो सकते हैं। उसके पश्चात् उनकी स्मृतियाँ भी शेष नहीं रहेंगी। प्रसिद्ध वास्तुविद् रिचर्ड ब्राउन के अनुसार *''वास्तु शिल्प पिछले 200 वर्षों से स्थायित्व की ओर नहीं बढ़ रहा। जिस वास्तु सामग्री का सहयोग वास्तुकारों द्वारा किया जा रहा है। वह स्थिर नहीं हैं, वह कदापि चिर कालिक नहीं हो सकती। यद्यपि उसमें बाह्य आकर्षण और सुविधाएँ व्यक्तियों की इच्छा के अनुकूल हैं किन्तु उनमें टिकाऊपन का अभाव है। जब इनका विध्वंस हो जाएगा, उस समय उनके पुरावशेष इतिहास की वस्तु नहीं रह जाएगें। जबकि मौर्यकाल से लेकर चन्देल युग तक के पुरावशेष हमारी चिरजीवी संस्कृति का यशोगान करतें हैं।''*[37]

मूल्यांकन की दृष्टि से भारतीय वास्तुशिल्प तुर्क और मुगुल वास्तुशिल्प और पाश्चात्य वास्तुशिल्प से श्रेष्ठ है। यद्यपि यहाँ मिश्रित शैली का उपयोग वास्तुकार कर रहें हैं।

चर्च का वास्तु शिल्प

सभ्यता का विकास एवं पतन वास्तु कला का जितना प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करती है उतना मानवीय संस्कृति की कोई भी शाखा अभिव्यक्त नहीं करती। भारतीय वास्तुकला के इतिहास में हम स्पष्टतः धार्मिक एवं सामाजिक अभिव्यक्तों एवं जीवन के प्रति बदलती प्रवृत्तियों का स्पष्टतः दर्शन कर सकतें हैं। मुख्यतः सौन्दर्य और कार्य की संयुक्त अभिव्यक्ति अत्यन्त प्रबल दिखायी देती है। भारतीय वास्तुकला का मूल तत्व सदा से धार्मिक विश्वासों की अभिव्यक्ति रहा है, जिसके अनुसार मनुष्य के चार पुरूषार्थ कला–कृतियों से अभिव्यक्त करते हैं। ये चार पुरूषार्थ– अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष आदि हैं। जैसे खजुराहो के मन्दिर के आस–पास अंकित मूर्तियों की अभिव्यक्तियाँ, जिनमें काम को मोक्ष का साधन बतलाया गया है।

मसीही वास्तुकला – प्रश्न उठता है कि क्या मसीही गिरजाघरों के वास्तुशिल्प पर क्या भारतीय सोच का प्रभाव पड़ा है? शायद इसका उत्तर नाकारात्मक हो, क्योंकि मसीही धर्म को उत्तर भारत में लाने वाले मिशनरी पश्चिमी जगत के निवासी थे और यह स्वाभाविक ही था कि वे अपने–अपने देशों की वास्तुकला गिरजाघरों को बनाने में इस्तेमाल करते। मसीही यह अनुभव करता है कि गिरजाघर उनके आध्यात्मिक जीवन का दृश्यवान् प्रतीक है। इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दू, बौद्ध (पागोड़ा), जैन, मुस्लिम और सिक्ख वास्तुशिल्प एकदम भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं। मसीहियों के काथलिक और प्रोटेस्टेंट गिरजाघरों का वास्तुशिल्प भी भिन्न–भिन्न होता है। वास्तव में काथलिक गिरजाघर हिन्दू शिल्प से प्रभावित जान पड़ता है। परन्तु प्रत्येक गिरजाघर का धरातल सलीब के आकार का होता है।

काथलिक गिरजाघर प्रायः मध्यकालीन इतालवी (इटली) वास्तुकला के आदर्श पर बनाए गए हैं। इस पन्थ के गिरजाघरों में काँच पर प्रभु येशु के जीवन से संबन्धित विषयों पर आधारित यूरोपियन शैली की स्टेन ग्लास पेंटिंग बनी रहती हैं। यहाँ तक कि मूर्तियाँ भी दिखायी देती हैं। जिनके मूर्तिकार इतालवी चित्रकारों के प्रभाव से ग्रसित दिखायी देते हैं। ये मूर्तियाँ प्रभु येशु के शिष्य एवं माँ मरियम की होती है। विशेषकर गिरजाघर के बाहर जिनकी पूजा–आराधना न केवल काथलिक मसीही करते हैं वरन् अन्य धर्मी भी बिल्कुल भारतीय संस्कृति के अनुरूप उनको चढ़ावा भी चढ़ाते हैं।

जबलपुर का सेण्ट पीटर एण्ड पॉल कथीड्रल चर्च नक्काशीदार कला से निखारा गया है और इसमें काथलिक गौथिक शैली आर्क का भी उपयोग किया गया है। जिसकी विशेषताएँ

अलंकरण, अभिलंभ, कमानी, मेहराबी छत, नुकीला गुच्छेदार स्तम्भ है। स्तम्भ से लगी बाहरी दीवार पर पुस्तें भी होते हैं। चर्च में 1939 में प्रधान वेदी के पास रंगीन काँच की कलात्मक खिड़कियाँ लगाई गयी। ये खिड़कियाँ हॉलैण्ड से भेजी गयीं परन्तु गलती से चीन पहुँच गयी फिर 10 महीने बाद वापस आई। इस गिरजाघर के कम्पाउण्ड के प्रवेशद्वार पर एक भव्य गेट (द्वार) बनाया गया है जिस पर महागिरजाघर का नाम और प्रतीक चिन्ह दृष्टव्य हो रहे हैं। दूर से भव्य और विशाल गिरजाघर अपने सफेद रंग में अपनी अलग छटा बिखेर रहा है। सफेद रंग उज्जवलता, सादगी और गौरव का प्रतीक है। गिरजाघर के सामने विशाल मैदान है। भव्य और बड़े विशाल गिरजाघर के ऊपर जाने के लिए नौ राउण्डअप सफेद एवं ग्रीन संगमरमर की सीढ़ियाँ हैं। इस गिरजाघर में एक मुख्य प्रवेशद्वार हैं एवं 5 प्रवेशद्वार हैं, 20 खिड़कियाँ, 20 रौशनदार (दोनों ओर 25–25) बनाए गए हैं। मुख्य दरवाजे पर क्रूस का चिन्ह अंकित है। इस गिरजाघर की अंदरूनी ऊँचाई 40 फीट है और इसमें ऊपर चार बीमों पर गिरजाघर की ऊपरी छत का पूरा भार आता है। तीन डूम बेदी के ऊपर निश्चत है जिसमें सूर्य का प्रकाश सीधे पूजा स्थल में आता है। इस महागिरजाघर की लम्बाई 85 फीट और चौड़ाई 75 फीट है। गिरजाघर की खिड़कियों में कलात्मक काँच का उपयोग किया गया है। यह गिरजाघर गोलाकार आकार में निर्मित है जिसमें चर्च में किसी भी कोने से मुख्य बेदी स्पष्ट दिखाई देती है। इस गिरजाघर में घण्टे के स्थान पर इलेक्ट्रिक बेल लगायी गयी है।

सेण्ट पीटर एण्ड पॉल कथीड्रल चर्च यरूशलेम नगर में स्थित महागिरजाघरों की याद दिलाता है। जो विशाल और भव्य प्रभु मंदिर थे। जिसमें सूर्य का प्रकाश आसानी से प्राकृतिक रूप में उपलब्ध होता था और हजारों श्रद्धालु भक्तिमय भावना से उसमें आते थे। इसके साथ ही यह महागिरजाघर उत्तर भारत के वाराणसी महानगर में सेण्ट मैरिज कथीड्रल चर्च के समान गोलाकार आकृति में बना है। साथ ही उसके समान ही एक बेदी *(Alter)* है। सूर्य का प्रकाश गुम्बदों द्वारा प्राकृतिक रूप से आता है। यद्यपि सेण्ट मैरीज कथीड्रल चर्च वाराणसी इन बातों में जबलपुर सेण्ट पीटर एण्ड पॉल चर्च से भिन्न है कि उसमें बेसमेंट है जिसमें बाइबल प्रदर्शनी का लोग सजीव दर्शन करते हैं। उत्तर भारत के झाँसी में स्थित सेण्ट जूड श्राईन में बालकनी बनी हुयी हैं जिसका कि इस गिरजाघर में अभाव है। सेण्ट पीटर एण्ड पॉल चर्च में बाई तरफ बाइबिल स्टैण्ड और दाँई तरफ टबरनकल स्थित है। टबरनकल क्रॉस के आकार में पवित्र होली कम्यूनियन सफेद मारबल द्वारा निर्मित किया गया है। जिस पर पीतल की परत चढ़ी हुई है जिसमें रोटी, मछली और पवित्रात्मा का प्रतीक और क्रॉस का चिन्ह अंकित है। चर्च के मेन बेदी *(Alter)* यरूशलेम नगर में स्थित *'गतसमनीबारी'* में जहाँ प्रभु येशु ने अन्तिम बार पूरी दुनिया के लिए प्रार्थना की थी, जिस सफेद चट्टान पर प्रभु येशु घुटने टेककर प्रार्थना किए थे उसी चट्टान पर वेदी निर्मित की गई है। उस वेदी को कटोरे का आकार दिया गया है क्योंकि प्रार्थना करते समय प्रभू येशु के शरीर से खून और पसीना बह रहा था। उस स्थान पर चर्च ऑफ ऑल नेशन्स बना हुआ है। उसी वेदी के डिजाइन पर महागिरजाघर में वेदी के नीचे चेलीस (कटोरा) बना हुआ। प्रभु येशु के जन्म स्थान पर स्थित *'चर्च ऑफ ऑल नेशन्स'* मेन आल्टर के डिजाइन पर बनाया गया है। इसके साथ ही गिरजाघर में प्रभु येशु के जीवन की दुःख भोग यात्रा में 14 स्मरणीय क्षणों को ग्लास पेंटिंग के द्वारा श्री अल्बन ग्रेगरी ने प्रस्तुत किया है। 14 स्थानों के चित्रों में निम्न दृश्य हैं :

1– प्रभु येशु को प्राण दण्ड की आज्ञा मिलती है, 2– प्रभु येशु के कंधे पर क्रूस लादा जाता है, 3– प्रभु येशु क्रूस के नीचे पहली बार गिरते हैं, 4– प्रभु येशु और उनकी शोकित माँ की भेंट, 5– सिरीनी शिमौन क्रूस ढोने में प्रभु येशु की सहायता करते हैं, 6– बेरोनिका प्रभु येशु का चेहरा

पोंछती हैं, 7– प्रभु येशु दूसरी बार गिरतें हैं, 8– यरूशलेम की स्त्रियाँ प्रभु येशु के लिए रोती कलपती है, 9– प्रभु येशु तीसरे बार गिरते हैं, 10– प्रभु येशु के कपड़ों को उतारा जाता हैं, 11– प्रभु येशु को क्रूस पर ठोका जाता है, 12– प्रभु येशु क्रूस पर मर जाते हैं, 13– प्रभु येशु को क्रूस से उतारा जाता है, 14– प्रभु येशु को कबर में रखा जाता है।

महागिरजाघर के दाँये तरफ कोने के कमरे में 14 कबरें हैं। बाँये तरफ कमरे में सेक्रेस्टी पूजा सामग्री कक्ष है जहाँ फादर पवित्र मिस्सा बलिदान के पूर्व तैयार होकर गिरजाघर में प्रवेश करते हैं।

प्रोटेस्टेंट गिरजाघर भी मध्य काल के यूरोपीय गिरजाघरों की कलाकृतियों के अनुरूप उत्तर भारत में निर्मित किए गए हैं। इनकी रचना प्रायः प्रभु येशु के क्रूस के जैसी होती है। अमरीकी मिशनरियों द्वारा निर्मित गिरजाघर प्रायः ऐसे ही होते हैं उनमें अनेक कलाकृतियाँ एवं झरोखों के काँचों में किसी भी प्रकार की मानवीय आकृति या चित्रकला अथवा पेंटिंग नहीं होती। अतः हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि प्रोटेस्टेंट चर्चों की वास्तुकला में सादगी अधिक है और मध्यकालीन सजावट से दूर रखा गया है।

प्रोटेस्टेंट गिरजाघर केवल आराधना स्थल नहीं है वरन् मसीही मण्डली के अन्य कार्य जैसे– मीटिंग तथा अन्य सामाजिक कार्य भी सम्पन्न किए जाते हैं। कहने का अर्थ है कि काथलिक सम्प्रदाय के मसीही लोग गिरजाघर के भवन को पवित्र स्थल मानतें हैं और उसमें आराधना के अतिरिक्त किसी भी कार्य को सम्पन्न नहीं करते वह केवल परमेश्वर का पूज्य स्थल है। ऐसा दृष्टिकोण प्रोटेस्टेंट मसीहियों में नहीं है।

गिरजाघर की दूसरी विशेषता यह है कि जैसे मन्दिर में केवल एक ही प्रवेश द्वार होता है वैसा गिरजाघरों में नहीं होता बल्कि अनेक प्रवेश द्वार एवं खिड़कियाँ होती हैं। इसका धर्म वैज्ञानिक अर्थ है कि परमेश्वर किसी भी दिशा से भवन में प्रवेश कर सकता है। मसीही आराधक विश्वास करते हैं कि परमेश्वर की आराधना केवल गिरजाघर में ही नहीं वरन् जहाँ दो या तीन विश्वासी व्यक्ति प्रभु येशु के नाम में एकत्र होते हैं वहाँ परमेश्वर की आराधना की जा सकती है क्योंकि स्वयं प्रभु येशु ने यह कहा है : "परमेश्वर आत्मा है ; और यह आवश्यक है कि उसके आराधक आत्मा और सच्चाई से उसकी आराधना करें।"[38]

पुलपिट वह स्थान है जहाँ से पादरी उपदेश देते हैं, वेदी *(Alter)* वह पवित्र स्थान है जहाँ आराधना विधि से संबन्धित पात्र एवं बाइबिल आदि रखी जाती है। प्रायः काथलिक पुरोहित बिना विशिष्ट पोशाक पहनें वेदी पर नहीं चढ़ते। यह स्थल सामान्यतः चबूतरे की सदृश्य कुछ ऊँचा होता है और इस पर चप्पल या जूते उतारकर ही पुरोहित चढ़ते हैं। इस स्थान को *'वेदी'* कहते हैं और इसकी परम्परा यहूदियों की प्राचीन परम्परा यरूशलेम के मन्दिर जो ईसा पूर्व डेढ़ हजार वर्ष पूर्व राजा सुलेमान के द्वारा बनाया गया था और जिसका विवरण बाइबिल की निर्गमन पुस्तक में दिया गया है। यह विवरण प्राचीन वास्तुशास्त्र का एक अनुपम उदाहरण है जिसमें स्वयं परमेश्वर भवन का *'ब्लू प्रिंट'* राजा को बताते हैं यह परम्परा प्रायः प्रत्येक गिरजाघर में पालन की जाती है और यथासम्भव चर्च का एक भाग वेदी के रूप में निर्मित किया जाता है, जहाँ पुरोहित तमाम धार्मिक विधियाँ सम्पन्न करता है। जबलपुर के क्राइस्ट चर्च कथीड्रल में जिस संगमरमरी वेदी का निर्माण किया गया है, वह आज भी देश की सुन्दरतम् वेदियों में से एक मानी जाती है।

कुछ अमरीकी या यूरोपीय प्रभाव के कारण या शहरों में जगह की कमी के कारण नए गिरजाघरों का भवन बहुउपयोगी दृष्टिकोण से सपाट एवं काँक्रीट बनाया जाने लगा है जहाँ धार्मिक विधि के अलावा अन्य सामाजिक गतिविधियाँ भी सम्पन्न की जाती हैं। इसका अर्थ हुआ कि

आधुनिक गिरजाघर केवल परमेश्वर का भवन नहीं रहा वरन् सामान्य सभा स्थल हो गया अर्थात् परमेश्वर किसी विशेष स्थान से जुड़ा हुआ नहीं रहा वरन् वह सर्वत्र उपलब्ध माना जाने लगा। शायद इसी दृष्टिकोण के कारण चर्च के अधिकारी गिरजाघर को डी कन्सीक्रेट करके तोड़ भी देते हैं या भवन का उपयोग अन्य बातों के लिए भी करने लगते हैं और वह स्थान आराधना स्थल नहीं रहता। जैसे कि उत्तर भारत में अंग्रेजों के समय में बनाए गए अनेक गिरजाघर अब अन्य कार्यों में इस्तेमाल किए जा रहें हैं। हाँ यह कथन काथलिक गिरजाघरों पर लागू नहीं होता।

"चर्च प्रभु येशु के विश्वासियों का ऐसा स्थापित समुदाय था जो विशेष स्थान में नियमित तौर पर सामूहिक रूप से आराधना के लिए एकत्र हुआ करता था। यह स्थान यहूदी सभागृह–जैसे था, और आगे चलकर सभागृह के नमूने पर ही यह विशिष्ट स्थान गिरजाघर में विकसित हो गया। भारत के चर्च के संस्थापक प्रभु येशु के स्वयं एक शिष्य संत थॉमस थे (ई0 सन् 52–56)।[39] जो धीरे–धीरे बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों के द्वारा बनाए जाने लगे।
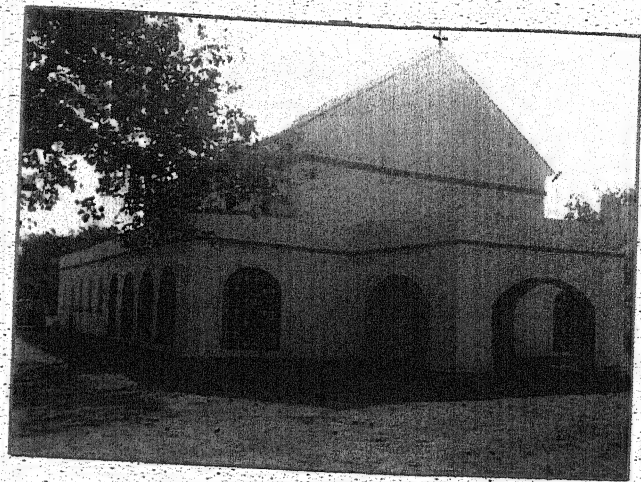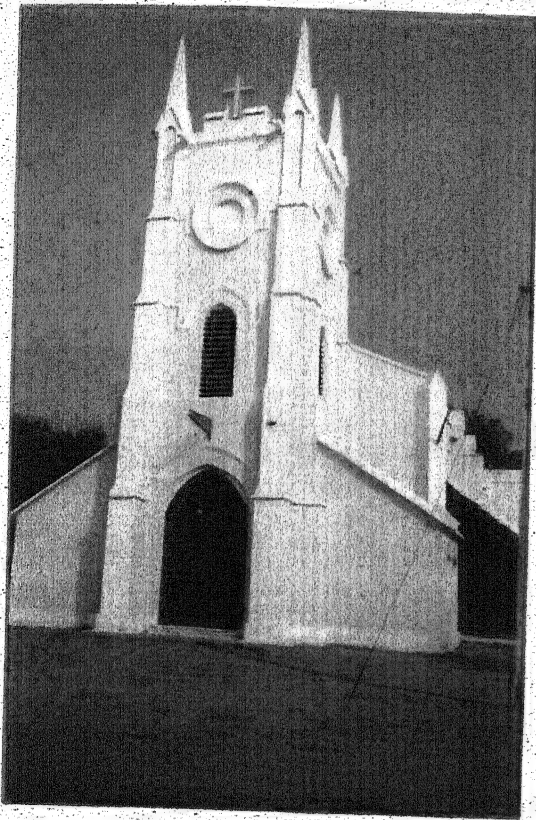
प्रोटेस्टेंट चर्च (जबलपुर)

प्रोटेस्टेंट चर्च (दमोह)

चर्च के भीतर की सजावट

चर्च के भीतर का दृश्य
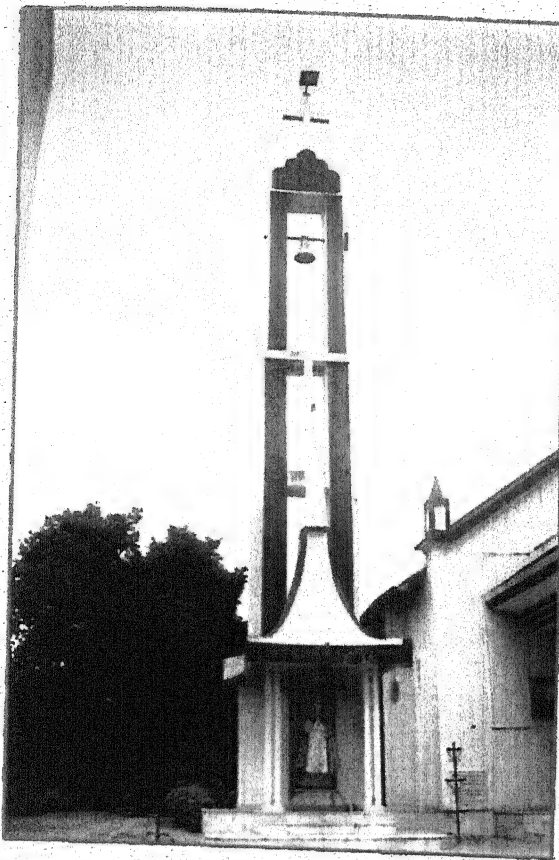
आधुनिक चर्च
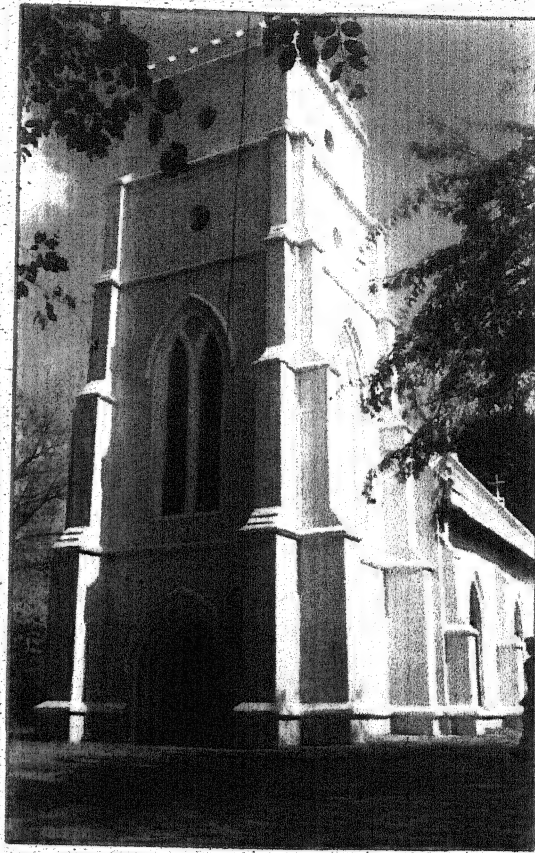
चर्च (बाँदा)
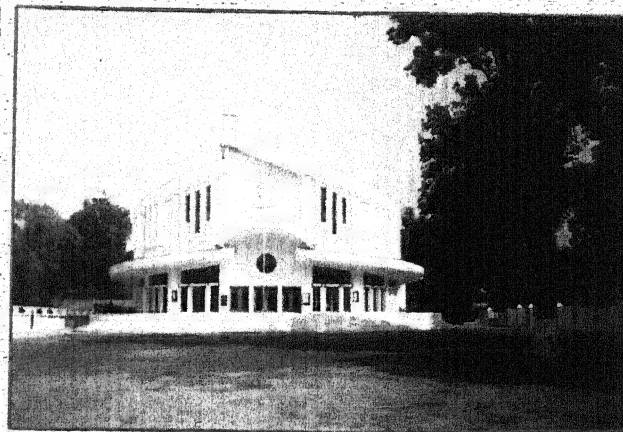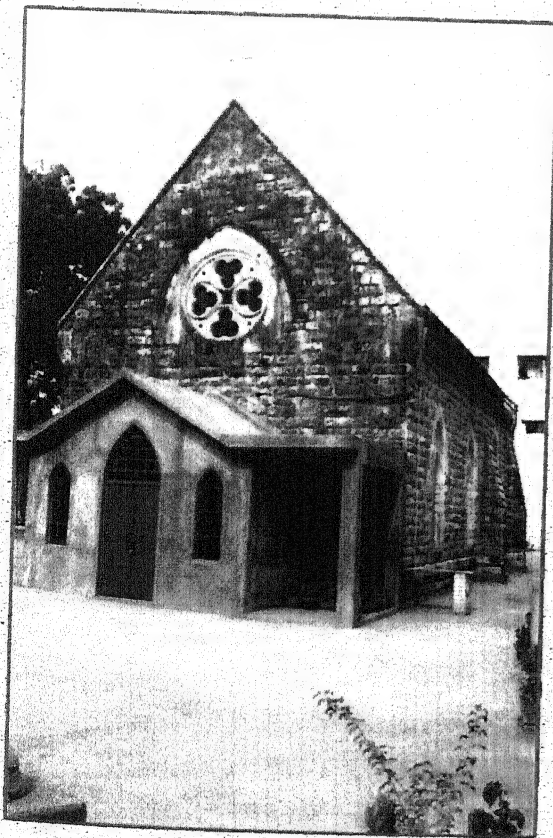
आधुनिक काथलिक चर्च

प्रोटेस्टेंट प्राचीन चर्च (जबलपुर)

बुन्देलखण्ड के विविध कलाओं में मसीही धर्म का प्रभाव

बुन्देलखण्ड की पावन भूमि यह विश्वास करती है कि परम्पिता परमात्मा जब भी अवतरित हुए वे अपने 12 कलाओं अथवा 16 कलाओं के साथ अवतरित हुए। अब यह विचार करना आवश्यक है कि ये 12 अथवा 16 कलाएँ क्या हैं ? कतिपय विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि मस्तिष्क में छिपी हुयी प्रतिभा जब प्रक्रियात्मक स्वरूप धारण कर सम्मुख आ जाती है, उस समय उसे कला की संज्ञा दी जाती है। यह कला दृश्य एवं श्रव्य दो भागों में विभाजित होती है। कुछ कलाएँ दृश्य अथवा श्रव्य दोनों ही होती हैं। कला की अनुभूति हमें ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होती हैं। ये कलाएँ क्षणिक, अल्प कालिक और दीर्घकालिक होती हैं।

कला मानव मस्तिष्क में जन्म लेती है। वासनात्मक वृत्तियों के आवेग के कारण कलाकार उस कला को मूर्ति स्वरूप प्रदान करता है तथा उसके लिए संसाधन की खोज करता है और कला सामग्री का संचय करता है तत्पश्चात उपयुक्त स्थान पर उसका प्रदर्शन करता है। जब यह कला एक हाथ से दूसरे हाथ में हस्तान्तरित होती है उस समय उस कला के लिए कुछ नियम विधान बनाए जाते हैं तथा उन्हें विभिन्न कला–शास्त्रों के नाम से पुकारा जाता है। उदाहरण के लिए– संगीतशास्त्र, नाट्य शास्त्र, वास्तु शास्त्र, सौन्दर्य शास्त्र, कामसूत्र तथा काव्य शास्त्र आदि। उत्सुक व्यक्ति जो इन कलाओं को सीखना चाहता है वह इन शास्त्रों से नियम विधानों का अध्ययन करता है। तत्पश्चात् उसे प्रक्रियात्मक स्वरूप देने के लिए सतत् प्रयास करता है। उस प्रयत्न के फलस्वरूप वह कला का साधक बन जाता है।

बुन्देलखण्ड में अनेक कलाओं का जन्म हुआ और उनका पूर्ण विकास भी यहीं हुआ। जिन दर्शकों ने उन कलाओं को अपने नेत्रों से देखा है तथा कलाओं का मूल्यांकन किया है उन्होंने कलाकारों की महानता को स्वीकार किया है। कालिंजर, खजुराहो, देवगढ़ आदि में उपलब्ध वास्तुशिल्प कलाकारों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। इसी प्रकार वाल्मीकि, कृष्ण द्वैपायन व्यास, जनकवि जगनिक, सन्त तुलसी दास, पद्माकर, केशव, बिहारी जैसे महाकवि यहाँ उत्पन्न हुए। जिन्होंने काव्य–कला को नवीन कलेवर प्रदान किया है। रायप्रवीण, बैजू बावरा और तानसेन जैसे संगीतज्ञ तथा कुदऊ महाराज जैसे मृदंग वादक यहाँ उत्पन्न हुए हैं। यह कला अपने विविध स्वरूपों में बुन्देलखण्ड के ऐश्वर्य को चारों ओर पुष्प के सुगन्ध की भाँति बिखेर रही है। यह निम्न प्रकार की है –

चित्रकला – बुन्देलखण्ड में चित्रकला का इतिहास अत्यधिक प्राचीन है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में सैकड़ों स्थानों पर शैलचित्र उपलब्ध होते हैं। जिन्हें हम चित्रकला का जनक मानते हैं।[40] ऐसे शैलचित्र बुन्देलखण्ड में बाँदा जनपद के प्रस्थानों में उपलब्ध हुयी हैं।

निर्माण विधि

शैल चित्र के निर्माता इन चित्रों के निर्माण के लिए सामान्य विधि का प्रयोग करते हैं। ये गुफाओं के अन्दर या बाहर उपलब्ध प्राकृतिक रंगों से अपनी इच्छानुसार चित्रों का निर्माण करते हैं और जिन रंगों का प्रयोग अथवा रंगने के लिए ब्रश आदि का प्रयोग ये करते थे, वे भी स्थानीय थे। ये लोग बाँस के टुकड़े को कूट कर ब्रश बनाते थे। कभी–कभी उंगलियो का प्रयोग भी करते थे। रंग फैलाने के लिए पानी का इस्तेमाल करते थे। सामान्य रूप से काले अथवा लाल रंग के रंगों का प्रयोग चित्र बनाने के लिए होता था। कभी–कभी जमीन की मिट्टी घोलकर उसे रंग के रूप में प्रयुक्त किया जाता था।

अधिकांश चित्र जो उपलब्ध हुए हैं उनमें शिकार के दृश्य अधिक हैं। इनमें व्यक्ति

धनुष–बाण लिए हुए शिकार करते दर्शाए गए हैं। शिकार के लिए कुत्तों का प्रयोग किया जाता था। कहीं–कहीं पर इन चित्रों में भैंस, सांड, घोड़े, बारहसिंगा, हिरन, सियार आदि भी दिखलाए गए हैं। तथा कहीं पर ऐसे चित्र उपलब्ध होते हैं जिनमें लोग नाच और गा रहे हैं। कुछ–कुछ ऐसे भी चित्र उपलब्ध होते हैं जिनमें बिना पहिए की बैलगाड़ी दिखलायी गयी है।

इन चित्रों के निर्माता वे लोग थे जो गुफाओं के अन्दर निवास करते थे। उनके चित्र निर्माण के क्या उद्देश्य हो सकते थे? यह बतलाना कठिन है, किन्तु यह निश्चित है कि ये चित्र आज से हजारों वर्ष पहले निर्मित किए गए थे।[41]

जो शैल चित्र उपलब्ध हुए हैं। वे अधिकांशतः गुफाओं के अन्दर हैं जो जंगलों से घिरी हुयी हैं। ये चित्र गुफाओं की दीवालों में बने हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये चित्र पाषाण युगीन भारतीय संस्कृति के परिचायक हैं।[42] बुन्देलखण्ड की संस्कृति के अनुसार चित्र बनाना यहाँ की परम्परा है। आज भी विवाह और तीज–त्यौहारों पर स्त्रियाँ घर के दीवारों पर चित्र बनाती हैं। मुख्य रूप से नागपंचमी, करवाचौथ, हालसा अष्टमी के अवसर पर चित्र बनाने की प्रथा है।

चन्देल युग में प्राचीन चित्रकला का लोप हो गया था। केवल मूर्तियों पर के आलेखन ही इनके उदाहरण हैं। अनेक मूर्तियाँ नीले, हरे, लाल और पीले रंगों से रंगी गयी थी। खजुराहो के जैन मन्दिरों में भी केवल रंग लेप के रूप में चित्रकला के उदाहरण मिलते हैं।[43]

पूर्व मध्य युग और मध्य युग में बुन्देलखण्ड में चित्रकला का विकास हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानीय नरेशों ने चित्रकारों को आश्रय प्रदान किया। जिन्होंने अनेक चित्र विविध स्थानों में निर्मित किए। ये चित्र दीवाल, कागज, लकड़ी और कपड़ों पर बनाए गए। सर्वाधिक चित्र दीवालों पर बनाए गए हैं तथा निम्न स्थलों में उपलब्ध होते हैं :

1. मदनपुर के मन्दिर के भित्ति चित्र।
2. ओरछा में चतुर्भुज मन्दिर, राजमहल, जहाँगीर महल, रायप्रवीन महल, लक्ष्मी मन्दिर आदि के चित्र।
3. दतिया की छतरी तथा अन्य इमारतें।
4. नृसिंह मन्दिर (तालबेहट किला)।
5. बानपुर का किला।
6. पन्ना का मन्दिर।
7. छतरपुर के मकोरवा
8. टीकमगढ़ में वृन्दावन बाग स्थित इमारत, मड़िया तथा किला।
9. झाँसी स्थित गोसाइयों की छतरियाँ, तेली मन्दिर तथा रानीमहल।
10. टोड़ी फतेहपुर (जिला झाँसी) का राम जानकी मन्दिर।
11. विजना का शिव मन्दिर।
12. टहरौली का किला।
13. अमरागढ़ का किला।
14. गुरूसराँय का किला।[44]

जो चित्र बुन्देलखण्ड में उपलब्ध हुए हैं। उनमें पशु–पक्षी, प्राकृतिक दृश्य, विविध लीलाओं के दृश्य अंकित हैं। इन चित्रों में काला, पीला, नीला, लाल रंग अधिक प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य रंग भी हैं। इन चित्रों के निम्न विशेषताएँ हैं–

1. चित्रों में सबसे ऊपर जाम (याम) और घड़ी का नाम लिखा है। इसके नीचे दोहा और

मध्य में चित्र बनाया गया है। सबसे नीचे कवित्त है। कुछ चित्रों पर नीचे नायिका का नाम भी उल्लिखित है।

2. इन चित्रों में रंग चटकीले प्रयुक्त हुए हैं। पीले रंग की पृष्ठ भूमि में गेरूये रंग से ऊपर दोहा और नीचे कवित्त लिखा है। हाशिया सादा और लाल रंग का है।
3. आकाश चपटा सा दिखलाया गया है। ऊपर थोड़े से बादल कहीं–कहीं दिखाए गए हैं।
4. भवन के पीछे छोटे–छोटे वृक्ष हैं। कांगड़ा तथा अन्य शैलियों की भाँति बड़े–बड़े वृक्ष नहीं बनाए गए हैं। यह पहचानना कठिन है कि यह किस का है।
5. भवन बड़े भव्य तो हैं पर उनमें जीवन और चहल–पहल प्रतिबिम्बित नहीं होती।
6. दरवाजे–खिड़कियों पर विभिन्न रंगों के सुन्दर परदों का प्रयोग किया गया है।
7. सामने के बगीचे का अंकन अलौकिक है।
8. मुख आनुपातिक दृष्टि से बड़े हैं और उनकी अपेक्षा बाकी शरीर छोटा बनाया गया है।
9. वस्त्र और परिधानों की बारीकी तथा अंग प्रत्यंगों का कामुकतापूर्ण आलेखन चित्रकार ने बड़ी सावधानी से किया है।
10. इस प्रति में बुन्देली बोली के शब्दों का प्रयोग किया गया है।
11. इन चित्रों की निश्चित तिथि (सं0 1838) ज्ञात होने के कारण चित्रकला के इतिहास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

यह चित्रकला अपने विविध गुणों के सहित विकसित होती रही।

<u>मसीहियों का चित्रकला पर प्रभाव</u>

बुन्देलखण्ड में अनेक ऐसे चित्र उपलब्ध हुए हैं। जिनमें मसीहियों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। ओरछा के लक्ष्मी मन्दिर में दक्षिण दिशा वाले भाग में रासलीला, कृष्ण कथानक के अन्य दृश्य पंचमुखी शिव, भैरव, गज–लक्ष्मी, शेषशायी विष्णु, दुर्गा, हनुमान, कृष्ण आदि के चित्र बने हैं। चौथे दालान में एक दीवार पर अंग्रेज दिखाए गए हैं और सामने भित्ति पर जीवन चर्या से सम्बन्धित कुछ दृश्य अंकित हैं।[45]

अंग्रेजों के आने के पश्चात् चित्रकला को विशेष प्रोत्साहन दिया गया तथा इस क्षेत्र में निम्न कार्य हुए –

1. <u>विषय के रूप में चित्रकला का अध्यापन</u> – जब मसीहियों की शिक्षा नीति बनी उस समय से चित्रकला का अध्यापन प्राथमिक कक्षाओं और पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में अनिवार्य कर दिया गया। विद्यार्थी गण कागजों में चित्रांकन करते थे और उन्हें विविध पानी वाले रंगों से रंगते थे। इसके अतिरिक्त कपड़ों में भी विविध चित्र साँचा बनाकर बनाए जाने लगे। शिक्षा की उच्च्य कक्षाओं में हाईस्कूल स्तर से लेकर स्नातक स्तर तक की कक्षाओं में आर्ट एण्ड पेन्टिंग वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जाने लगा। इस शिक्षा के अन्तर्गत आलेखन प्राकृतिक दृश्य अंकन पेड़–पौधों का अंकन मानवों का अंकन और स्मृति चित्रों का अंकन छात्रों को पढ़ाया जाने लगा। इसके अतिरिक्त उन्हें पेंसिल आर्ट भी सिखायी जाती थी। पाठ्यक्रम में चित्रकला को शामिल किए जाने से चित्रकला प्रोत्साहित हुयी।

2. <u>कला–सामग्री पर प्रभाव</u> – मसीहियों के प्रभाव के कारण कला–सामग्री में व्यापक परिवर्तन हुआ। सामान्य कागज के स्थान पर आर्ट–पेपर का प्रयोग चित्रों के लिए होने लगा तथा दीवालों में बनाए जाने वाले चित्रों की शैली भी परिवर्तित हुयी। इनमें परम्परागत रंगों के स्थान पर ऑयल पेंट और वार्निश के पेन्ट प्रयुक्त होने लगे। इनमें मूल–प्राकृतिक रंग और मिश्रित रंग बनाकर लगाए

जाने लगे। कागज और दीवालों की चित्रकारी के अतिरिक्त लकड़ी और काँच तथा कपड़े की चित्रकारी के लिए चित्रकला सामग्री में व्यापक परिवर्तन हुए। परम्परागत रंगाई में आने वाले संसाधनों के स्थान पर उत्तम कोटि के पतले और मोटे ब्रशों का प्रयोग होने लगा। ये ब्रश पशुओं के बालों से बनाए जाते थे। इस युग में विविध प्रकार के चित्रों का निर्माण हुआ।

(A) धर्म से संबन्धित चित्र – बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में जिन चित्रों का निर्माण 18वीं शताब्दी के बाद हुआ है। उन चित्रों में हिन्दू धर्म के अनेक देवी–देवताओं के चित्र हैं तथा उनसे जुड़ी अनेक लीलाओं के चित्र सम्बन्धित है।

(B) पशु–पक्षियों के चित्र – इस युग में पशु–पक्षियों के भी अनेक चित्र उपलब्ध होते हैं। इनमें हाथी, घोड़ा, ऊँट, हिरण, बारहसिंगा तथा गाय–बैल आदि के हैं तथा कुछ चित्र शिकार से सम्बन्धित हैं।

(C) प्राकृतिक दृश्य – बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में अनेक चित्र सुरम्य प्राकृतिक दृश्यों के हैं। इनमें जलाशय, वृक्ष, सूर्योदय, सूर्यास्त तथा पशु–पक्षियों के उड़ने का सुन्दर चित्रांकन किया गया है।

(D) ऐतिहासिक घटनाओं से संबन्धित चित्र – इस क्षेत्र में ऐसे भी चित्र बने हुए हैं जो ऐतिहासिक घटनाओं से संबन्धित हैं। इस सन्दर्भ में यह दृष्टिकोण प्रगट किया जाता है ''यद्यपि लक्ष्मी मन्दिर के प्रदक्षिणा पथ के उत्तर की ओर अंग्रेजों के अंकन से इस मान्यता को और बल दिया जाता रहा है। यहाँ तक कि इसमें रानी लक्ष्मी बाई और चुंगल चिड़ियाँ का चित्रण बताकर इन्हें और इधर का सिद्ध करने का प्रयास भी किया है। जहाँ तक अंग्रेजों के अंकन का प्रश्न है, यह बात समझ में नहीं आती कि उनके टोप पर मुस्लिम संस्कृति का प्रतीक अर्द्धचन्द्र का निशान क्यों बना हुआ है ? हो सकता है कि ऐसे चित्र किसी ऐतिहासिक स्थलों से संबन्धित हो। अनेक चित्र युद्धों से सम्बन्धित भी उपलब्ध होते हैं जिनका सम्बन्ध किसी–न–किसी ऐतिहासिक घटनाओं के हैं।

(E) व्यक्तियों के चित्र – बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में अंग्रेजों के शासनकाल के अनेक चित्र उपलब्ध होते हैं। ये चित्र बुन्देलखण्ड रियासत के राजा–महाराजाओं, सामंतों और उनकी रानियों, मन्त्रियों और सेनापतियों के हैं तथा कुछ चित्र अंग्रेज पॉलिटिकल एजेण्टों के भी हैं। इनका चित्रांकन दीवालों के अतिरिक्त ऑयल पेन्ट के माध्यम से काँच में किया गया है।

इस क्षेत्र में फुटकर चित्र तथा व्यक्ति चित्र भी बने हैं परन्तु अधिकांश चित्र प्रकाश में नहीं आए हैं। अधिकांश पुराने राज परिवारों में लघु चित्र संग्रहीत हैं। छतरपुर, टीकमगढ़, दतिया, पन्ना, चरखारी, समथर, विजना आदि रजवाड़ो में इस तरह के चित्र सुरक्षित हैं। इनमें बहुत से चित्र व्यक्तिपरक हैं और उस राजघराने विशेष से संबन्धित हैं।[46]

दतिया से प्राप्त एक चित्र वीर सिंह बुन्देला का भारत भवन में संग्रहीत है जो 18वीं शती का है। इसमें राजा पगड़ी, जामा और पैजामा पहनें, ढाल, तलवार कमर में खोंसे कहीं जाते हुए चित्रित हैं।[47] इसी प्रकार के चित्र चरखारी में भी पाए गए हैं।

(F) पुस्तकों में बने चित्र – तुर्क शासन काल से लेकर अंग्रेजों के समय तक अनेक पुस्तकों का सृजन हुआ है। इस समय प्रेस (छापाखाना) का आगमन बुन्देलखण्ड में नहीं हुआ था। इन पुस्तकों को हाथ से लिखा गया है तथा इनके मुख्य पृष्ठ या मध्य भाग में अनेक चित्र बने हुए हैं। ये चित्र भी चित्रकारों द्वारा बनाए गए हैं।

फाइन आर्ट म्यूजियम, बोस्टन (यू0एस0ए0) की रसिक प्रिया चित्रावली वीरसिंह देव के समय की है। इस पर मुगल प्रभाव स्पष्ट झलकता हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित

रसिक प्रिया का एक पृष्ठ लगभग 1660 ई0 का माना जाता है। इसी संग्रहालय की रामायण–चित्रावली में बुन्देली भाषा और बुन्देली कलम प्रयुक्त हुयी है।[48]

(G) फोटोग्राफी एवं चलचित्र – ब्रिटिश शासन काल में फोटोग्राफी के लिए कैमरे का निर्माण हुआ तथा कैमरे से ही चलचित्रों का छायांकन होने लगा। जिनका प्रदर्शन छविगृहों (सिनेमाघर) में किया जाने लगा। फोटोग्राफी और चलचित्रों की वजह से चित्रकला को गहरा धक्का लगा और उसका विकास रूक गया।

धातुकला

धातुकला का इतिहास बुन्देलखण्ड में अति प्राचीन है। सर्वप्रथम मनुष्य ने मिट्टी को ही धातु समझा, और उसी से अपने उपयोग की वस्तुएँ बनाना प्रारम्भ कर दिया। बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों में उत्खनन के दौरान अनेक मिट्टी के कलात्मक भाजन (बर्तन) उपलब्ध हुए। मुगुल काल में इस कला को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया गया तथा मिट्टी के स्थान पर चीनी मिट्टी के बर्तन बनने लगे। ''मुगुल काल शान्ति, अमन–चैन और कलाओं के शाही संरक्षण का काल था, इसलिए अन्य कलाएँ जैसे मिट्टी और धातु की सजावटी बनाने की कलाएँ भी सारे उत्तरी भारत में बहुत ही विकसित अवस्था में थीं। हिन्दू युग में मिट्टी के बर्तन बनाने की कला बहुत उन्नति नहीं कर सकी थी।[49]

मुगुल काल के पूर्व यहाँ के लोग पाषाण युग से लेकर मुगुल युग और उसके बाद तक मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग विभिन्न कार्यों के लिए करते थे। यहाँ पर 600 ई0पू0 से लेकर 200 ई0पू0 तक के मिट्टी के बर्तन खुदाई से निकले तथा कुछ मिट्टी के बने पहिए भी उपलब्ध हुए हैं। 11वीं शताब्दी के बाद मिट्टी की कला में व्यापक परिवर्तन हुआ तथा घड़ों के स्थान पर सुराही का प्रयोग होने लगा। इसके अतिरिक्त टोटीदार मिट्टी के लोटे, मिट्टी के तवे, हुक्के की चिलम और गमलों का प्रयोग होने लगा। चीनी मिट्टी के बर्तन पहले भारत वर्ष में नहीं बनते थे। ये बाहर से मँगवाए जाते थे। ''मुगुल, मिट्टी के कीमती बर्तनों का उपयोग करते थे और चीनी मिट्टी के बर्तनों को बाहर से मँगाते थे। फलस्वरूप लाभदायक होने के कारण इन बर्तनों के उद्योग विकसित हो उठे और मुगुल काल में तो वे बहुत ही उच्च स्तर पर पहुँच गए।[50]

बुन्देलखण्ड में रहने वाले मुसलमान भी अपनी आवश्यकतानुसार मिट्टी के बर्तन कुम्हारों से बनवाते थे और उनका उपयोग करते थे तथा इमारतें बनवाने के लिए ककई ईंट और बड़े ईंट के भट्टे लगवाते थे। जिनके मकान कच्चे होते थे, वे उसे छाने के लिए खप्पर और घरिया का प्रयोग करते थे। बुन्देलखण्ड में मिट्टी के अतिरिक्त अन्य धातुओं का कार्य बहुत प्राचीनकाल से हो रहा है। इनमें पीतल, सोना, चाँदी और अन्य धातुओं के सुन्दर और जड़ाऊ काम के बर्तन बनने लगे। पीतल के खिलौने, उभरी नक्काशी के नायक–नायिकाओं के चित्र सुसज्जित ढालें और नक्काशीदार प्लेटें, फूलदान, उभरे काम के धातुदार थालियाँ, जालीदार दीपदान तथा पानी भरने का बर्तन, सुराहियाँ और धूपदानियाँ अति सुन्दर ढंग से बनायी जाती रहीं हैं।

विशेष प्रकार का श्रृंगार करने के लिए विविध प्रकार के आभूषणों का प्रयोग बुन्देलखण्ड में अति प्राचीन काल से हो रहा है। यहाँ के स्त्री–पुरूष दोनों ही आभूषण धारण करते थे। यह आभूषण स्त्रियाँ सिर के ऊपर, कण्ठ में, नाक और कान में, हाथ–पैरों में तथा कमर में पहनतीं थीं। ''बुन्देलखण्ड के भाग में आभूषणों का प्रचलन उस समय अपेक्षाकृत अधिक था। स्त्रियाँ और बालक पैर में पैजना, साँकर, बिछिया और अनोटा पहनते थे। गले में मूल्यवान कंठहार, खंगैरिया और हमेल की भाँति आभूषण पहनते थे। हाथ को भी विविध आभूषणों से सजाया जाता था। हाथ के लोकप्रिय

आभूषणों में खग्गा और बरा था। कान और सिर को वे मनोहर भूषणों से अलंकृत करते थे। इन आभूषणों में कर्णफूल, साँकर, शीशफूल और बीज आदि हैं। हाथ की अँगूठी, माला आदि स्त्री–पुरूष दोनों प्रेम से पहनते थे।''[51]

तुर्क और मुगुल काल में आभूषण व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुआ। मुगुल सम्राट की बेगमें तथा अन्य धनी–मानी व्यक्ति आभूषणों में अधिक धन व्यय किया करते थे। आभूषणों में विविध प्रकार के रत्नों को जड़वाने की प्रथा थी। इसके अतिरिक्त राजसिंहासनों, फर्नीचरों और महलों के इमारतों में भी रत्न जड़े जाते थे। धनी व्यक्ति वस्त्रों में भी रत्न जड़वाते थे। रत्न के अमीर, उच्च पदाधिकारी और सम्पन्न लोग भी अपने शासकों की तरह ही रत्नाभूषणों और गहनों के शौकीन थे। इस प्रकार यह चलन–सा हो गया था कि जो भी सम्पन्न लोग थे वे सोने और चाँदी के रत्न–आभूषण अवश्य ही रखते थे। मुगल साम्राज्य के पतन और अन्त से और उसके फलस्वरूप उच्च और मध्यम वर्ग के लोगों के निर्धन हो जाने से जौहरियों और सुनारों की कला–कारीगरी का फिर पतन ही होता गया।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में लोहे की धातु से भी अनेक वस्तुएँ निर्मित होती हैं। मुख्य रूप से कृषि कार्य में आने वाले औजार, मकानों में प्रयुक्त होने वाले कड़े, कुन्दे, साँकर आदि तथा विविध प्रकार के काटने के लिए प्रयुक्त औजार जैसे– हसियाँ, चाकू, गड़ासा, सरौता, खुरपी, गैती, बसूली, खुरपा, फावड़ा आदि के अतिरिक्त युद्ध में काम आने वाले अस्त्र–शस्त्र निर्मित होते थे। बुन्देलखण्ड में राजाओं के शासन के समय के निम्न अस्त्र–शस्त्र पाए जाते हैं। जिनका निर्माण लोहे तथा अन्य धातुओं से होता था :

(1) तोड़ादार बन्दूक, (2) पिस्तौल, (3) रफल, (4) शेरदहां, (5) तमंचा, (6) गुराब, (7) खुदकुला, (8) ज़िरह कुला, (9) ज़िरह चिलता, (10) चार आइना, (11) ज़िरह पायजाम, (12) दस्ताना, (13) पेटी, (14) बख्तर, (15) सैफ़, (16) तलवार, (17) तेग़ा, (18) कटार, (19) बिछुवा, (20) कत्ता, (21) खांड़ा, (22) कार बैन, (23) बरछी, (24) तोप, (25) सांग, (26) बान, (27) सूजा, (28) पट्टा, (29) बघा या बघनख़ (30) कुलंग, (31) मारू, (32) धन्नाल, (33) हाथी की पाखरी, (34) चक्कर, (35) गुप्ती, (36) गुलेल, (37) तीर कमान, (38) गुजे, (39) तबल, (40) सिप्पा आदि।

लोहे के अतिरिक्त यहाँ काँच और लाख का काम भी होता था। लाख की विविध प्रकार की वस्तुएँ तथा चूड़ियाँ बनतीं थी। इसी प्रकार काँच का भी सामान बुन्देलखण्ड में निर्मित होता था। मुख देखने के शीशे, तथा सजावट के लिए झाड़–फन्नूस तथा चिराग के शीशे आदि निर्मित होती थीं। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के काँच के बर्तन भी बना करते थे। यह कला अनवरत चलती रही।

मसीहीं धर्मावलम्बियों का धातुकला पर प्रभाव

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् यहाँ की धातुकला में कोई विशेष प्रगति नहीं हुयी और न ही इनका कोई प्रभाव पड़ा। बल्कि मशीनीकरण और औद्योगीकरण के पश्चात् कुटीर उद्योगों की स्थिति बिगड़ती ही चली गयी। जहाँ तक मिट्टी के बर्तनों का प्रश्न है ये आम जनता के घरों की शोभा बढ़ाते रहे क्योंकि यहाँ के लोग घड़ा, मटका, घैलिया, सकोरा, परइया, दिया, नांद, डहरिया आदि का निर्माण रियासती क्षेत्रों में होता रहा। इन्हें मसीही धर्मावलम्बी किसी प्रकार का कोई प्रोत्साहन नहीं दे सके। यद्यपि ऐसे मसीही जो अपना मौलिक धर्म छोड़कर मसीही बने थे वे लोग मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग घरों में करते रहे। व्यक्तिगत साक्षात्कार के बाद मिस्टर सुधीर क्षीरज नेल्सन से यह पता लगा कि जबलपुर, दमोह और छतरपुर के मिट्टी के बर्तन उत्तम कोटि के होते

थे। इनका प्रयोग मसीही अधिक किया करते थे। लेकिन इस कला को सरकार की ओर से कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया।

मुसलमानों की भाँति अंग्रेज लोग तांब–चीनी, चीनी–पत्थर, और काँच के बर्तन अधिक प्रयोग में लाते थे इसलिए मसीहियों ने बर्तन बनाने की इस कला को प्रोत्साहित किया मुख्य रूप से छोटी–बड़ी प्लेटें, कप, गुलदस्ते, पानी के गिलास, जग तथा अन्य विविध वस्तुएँ रखने के लिए इस कला का प्रयोग किया गया। मसीहियों के बंगलें में अधिकांश चीनी–पत्थर, तांब–चीनी तथा काँच के बर्तन देखने को मिलते हैं। किन्तु जो चम्मच प्रयोग में लाते थे वे अन्य धातुओं की होती थी। जबकि अन्य जातियों के लोग मुख्य रूप से जैन, बौद्ध और हिन्दू– पीतल, तांबा, कांसा आदि के बर्तन प्रयोग में लाते थे। इनमें लोटा, गड़ई, हण्डा, कोपर, परात, कलशा, बेला, कटोरा, कटोरी, गडुआ, पूजा के प्रयोग में लाए जाने वाले बर्तन– बैतरड़ी, घण्टी, पंचामृत का बर्तन, कटोरा, कटोरी, भगवान के बैठने का सिंहासन और धातु की विविध मूर्तियाँ प्रयोग में लायी जाती थीं। इनका निर्माण श्रीनगर (महोबा), छतरपुर, बिजावर और ओरछा में होता था। इस कला को भी मसीहियों द्वारा प्रोत्साहित नहीं किया गया।

मसीही लोग आभूषणों का प्रयोग बहुत कम करते थे। उनके यहाँ क्रॉस धारण करने का रिवाज़ था और अंगूठी इनका सर्वाधिक लोकप्रिय आभूषण था। जिससे वैवाहिक अवसरों पर वर–वधू एक दूसरे को आदान–प्रदान करते थे। कालान्तर में यहाँ की मूल जातियों से प्रभावित होकर मसीही धर्म में विकसित नए मसीहियों ने आभूषणों के प्रति अपनी रूचि दिखायी। उनसे प्रभावित होकर धनी अंग्रेज भी आभूषण धारण करने लगे। सोने–चाँदी, हीरे, जवाहरात के आभूषण धनी अंग्रेज महिलाओं को बहुत प्रिय लगे।

"I appriciate the Indian ornaments which all loved by Indian leadies, The ornaments are made by the gole-smith with the help of gold & silver and costly gems. I like th have a neckles around my neck.

(Mrs. M. Robert)

आभूषण की लोकप्रियता अधिकांशतः धनी वर्ग में है। गरीब व्यक्ति गिलट, कांसा एवं पीतल के आभूषण धारण करते हैं। इनमें कृत्रिम नग जड़े रहते हैं। मुख्य रूप से कड़ा, झांझे, पैजनिया, पायले, हथफूल, कर्णफूल, बाजू बन्द, सुतिया, ढुसी, जंजीर या करधनी पहनने का रिवाज बहुत अधिक था चाँदी के आभूषणों के लिए बाँदा अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ की बिछिया अधिक लोकप्रिय है।

सोने–चाँदी के आभूषण सुनार लोग साधारण तथा सभी गाँवों में बना लेते हैं। कांसा आदि के भद्दे आभूषण भी ढाले जाते हैं और उनको ग्रामीण स्त्रियाँ पहनतीं हैं। ढलाई के आभूषण बनाने वाले सुनार सर्वत्र ही नहीं हैं, वे हटा आदि में हैं। मौदहा के सुनार चाँदी की लचीली और सुन्दर मछलियाँ बनाते हैं।[52]

अंग्रेजों के समय में लोहे की वस्तुओं का निर्माण सर्वाधिक हुआ और इन्हें प्रोत्साहित भी किया गया। यद्यपि इसके पहले तांबा, पीतल और फूल के बर्तन खास नगरों में बनते हैं परन्तु बाहर का हलका माल अब इस व्यापार को दबा रहा है। छतरपुर, खरगपुर, हटा, दमोह आदि में अब भी अच्छा काम होता जाता है। श्रीनगर में पीतल की मूर्तियाँ और खिलौनें ढलते हैं। ये काम सुनार करते हैं। बुन्देलखण्ड में फूल अर्थात कांसा का काम कई जगह अच्छा होता है। धातु का काम प्रायः हर जिले और राज्य में होता है।[53]

विंध्याचल पर्वत श्रेणियों में अनेक स्थानों में लोहा उपलब्ध होता था। इस लोहे से लाखों

व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध होता था किन्तु अंग्रेजों की वजह से इस उद्योग में लगे लाखों लोहार बेरोजगार हो गए और उसके स्थान पर कच्चा लोहा यहाँ से विदेश जाने लगा और उसके स्थान पर लोहे का बना बनाया सामान तथा मशीने आदि यहाँ आने लगी। इसके पूर्व यहाँ कई जगहों पर कुल्हाड़ी, सरौंते, छुरी, अस्तुरे, कड़ाही, तवे आदि बनाए जाते हैं। विशेष कर बिजावर की कड़ाही प्रख्यात है। कोई–कोई लुहार बन्दूकें बनाते और दुरूस्त करते हैं, पर अब इस काम में बहुत छेड़–छाड़ होने से वे उसे छोड़ रहे हैं।[54]

स्पष्ट है कि धातुकला तथा अन्य कुटीर उद्योग अंग्रेजों के उपेक्षा के कारण उन्नत नहीं कर सके तथा बुन्देलखण्ड के लाखों लोग ब्रिटिश शासन के उदासीनता के कारण बेरोजगार हो गए।

काष्ठ कला

बुन्देलखण्ड में सर्वत्र वन–ही–वन है। जहाँ इमारती और जलाऊ लकड़ी सर्वत्र उपलब्ध होती हैं। इमारती लकड़ी से विविध प्रकार की वस्तुओं का निर्माण होता है। इस लकड़ी का प्रयोग भवनों के दरवाजें, खिड़की और झरोखों आदि में होता है इनके अतिरिक्त अनेक वस्तुएँ जिनका उपयोग घर में फर्नीचर आदि के रूप में होता है, लकड़ी से निर्मित होती हैं। मुख्य रूप से शयन कक्ष के पलंग, सामान रखने की अलमारी, बैठने के तख्त, कुर्सियाँ, लकड़ी के सिंहासन, ओखली, मूसर, चौकी, पटा, चकला तथा कूंडियाँ आदि लकड़ी से निर्मित होती थी। इसी प्रकार के अनेक वाहन जैसे– रथ और बैलगाड़ी, लकड़ी से निर्मित होते थे। इसके अतिरिक्त विवाह आदि संस्कारों में प्रयुक्त होने वाली पालकी लकड़ी की बनती थी। विवाह के मण्डप, तीज–त्यौहारों में निकलने वाले विमान भी लकड़ी से निर्मित होते थे। स्वास्थ्य बनाने के लिए मुगदर और मलखम्भ का निर्माण भी लकड़ी से होता था। मनोरंजन के लिए गुट्टे एवं चौपड़ खेलने के पांसे भी लकड़ी से बनते थे। बच्चों के खेलने के खूबसूरत खिलौने तथा घर को सजाने के अनेक उपकरण लकड़ी से बनते थे। सौन्दर्य प्रसाधन में बालों में प्रयोग होने वाला कंघा, ककई भी लकड़ी से ही बनते थे। लकड़ी का यह काम कुशल कारीगरों द्वारा किया जाता था, जिन्हें बुन्देलखण्ड में बढ़ई के नाम से पुकारा जाता था।

"कुन्देर लोग, लकड़ी के खिलौने, निगाली, पलंग, शतरंज के मुहरें, चकरी, भौरियाँ, कंघी आदि बनाते हैं। ये काम बहुत थोड़े व्यक्ति करते हैं।[55]

तुर्कों और मुगलों के समय में काष्ठ कला में व्यापक परिवर्तन हुए। यहाँ रहने वाले सामन्तों ने बारीक नक्काशी वाले तख्तों और पलंगों का निर्माण कराया। कमरों में आड़ बनाए रखने के लिए लकड़ी के बड़े–बड़े बोर्ड बनाए गए तथा बर्तन आदि रखने के लिए अनेक प्रकार की अलमारियों का निर्माण हुआ। लकड़ी के हुक्के उसकी नलियाँ विविध सौन्दर्य प्रसाधन एवं जेवरात रखने के बॉक्स, कपड़े रखने की पेटियाँ तथा खूबसूरत बेंतों का निर्माण लकड़ी से किया गया। कुछ देशी सामन्तों ने लकड़ी के तख्तों में सुन्दर चित्रों का निर्माण कराया तथा कुछ धनी व्यक्तियों ने अपने बच्चों के लिए लकड़ी के कलात्मक खिलौनें बनवाए। इस युग में शतरंज और पासा खेलने का खेल बड़ा लोकप्रिय था, इनकी गोट भी लकड़ी से ही बनती थी।

काष्ठ–कला पर मसीहियों का प्रभाव

अंग्रेज खाने–पीने के शौकीन और रंगीन मिजाज वाले व्यक्ति थे। इन्हें शान से रहने की आदत थी इसलिए इनका ड्राइंग रूम का फर्नीचर बहुत ही सुन्दर हुआ करता था तथा इसका निर्माण विविध प्रकार की लकड़ी से होता था। इन्होंने काष्ठ कलाकारों से अपनी इच्छानुसार फर्नीचर बनवाकर उन्हें प्रोत्साहित किया। मुख्य रूप से लकड़ी के सोफा सेट, कुर्सी, मेज, बेंच, स्टूल, अलमारी, डाइनिंग टेबुल तथा *Room-covered Board, Divider* तथा पुस्तकें और दस्तावेज

रखने के लिए अनेक प्रकार की अलमारियाँ बनायीं। इसके साथ ही साथ शीशे और फोटोफ्रेम भी लकड़ी के बनवाए। इसके अलावा बंगले के दरवाजे, खिड़कियाँ, रोशनदान अपनी इच्छानुसार नवीन शैली से निर्मित कराए। जिन वाहनों का प्रयोग वे लोग करते थे उनमें भी लकड़ी का प्रयोग अधिकतम रूप से होता था। इनके समय में टमटम और बग्घी का निर्माण भी लकड़ी से हुआ। जिनका अनुकरण देशी नरेशों ने भी किया। मुख्य रूप से कलात्मक बेंतों का प्रयोग अंग्रेजों के समय में प्रारम्भ हुआ। जब वैज्ञानिक युग आया उस समय रेल के डिब्बों, बसों के सीटों में लकड़ी का प्रयोग होता था। ब्रिटिश शासन काल में प्राचीन काष्ठ कला को प्रोत्साहन भले ही न मिला हो परन्तु नवीन काष्ठ कला को युगानुसार प्रोत्साहित किया गया।[56]

संगीत एवं नाट्यकला

बुन्देलखण्ड में संगीत कला अति प्राचीन है क्योंकि चन्देल कालीन धार्मिक स्थलों में अनेक मूर्तियाँ ऐसी उपलब्ध हुयीं हैं जिनमें सामूहिक नृत्य, एकल नृत्य का प्रदर्शन किया गया है। जिससे यह सिद्ध होता है कि गायन, वादन, नृत्य तथा अभिनय कला अति प्राचीन है। विविध शास्त्रों के अनुसार संगीत की उत्पत्ति प्रारम्भ में वेदों के निर्माता ब्रह्मा द्वारा हुयी। ब्रह्मा ने यह कला शिव को दी और शिव के द्वारा सरस्वती को प्राप्त हुयी। सरस्वती को इसीलिए *'वीणा–पुस्तक–धारिणी'* कहकर संगीत और साहित्य की अधिष्ठात्री माना गया है। सरस्वती से संगीत–कला का ज्ञान नारद को प्राप्त हुआ। नारद ने स्वर्ग के गंधर्व, किन्नर तथा अप्सराओं को संगीत–शिक्षा दी। वहाँ से ही भरत, नारद और हनुमान आदि ऋषि संगीत–कला में पारंगत होकर भू–लोक (पृथ्वी) पर संगीत कला के प्रचारार्थ अवतीर्ण हुए।

"द्रुहिणेत यदन्विष्टं प्रयुक्त भरतेन च।
महादेवस्य पुरतस्तन्मार्गाख्य विमुक्तदम्।।"[57]

(दामोदर पंडित– 'संगीत दर्पण')

अर्थात् ब्रह्मा (द्रुहिण) ने जिस संगीत को शोधकर निकाला, भरत मुनि ने महादेव के सामने जिसका प्रयोग किया तथा जो मुक्तिदायक है, वह *'मार्गी'* संगीत कहलाता है।

कुछ लोगों का यह मानना है कि पशु–पक्षियों की आवाजों से संगीत के विविध स्वरों का उदय हुआ है। ये स्वर मुख्य रूप से मोर, चातक, बकरा, कौआ, कोयल, मेंढ़क और हाथी से निकले हैं। फ़ारसी विद्वान के मतानुसार "हज़रत मूसा जब पहाड़ों पर घूम–घूमकर वहाँ की छटा देख रहे थे, उसी वक्त ग़ैब से एक आवाज़ आयी (आकाशवाणी हुयी) कि 'या मूसा हक़ीक़ी, तू अपना असा (एक प्रकार डंडा, जो फ़कीरों के पास होता है) इस पत्थर पर मार।' यह आवाज सुनकर हज़रत मूसा ने अपना असा जोर से उस पत्थर पर मारा, तो पत्थर के सात टुकड़े हो गए और हर एक टुकड़े में से पानी की धारा अलग–अलग बहने लगी। उसी जल–धारा की आवाज़ से अस्सामलेक हज़रत मूसा ने सात स्वरों की रचना की, जिन्हें 'सा रे ग म प ध नि' कहते हैं।"[58]

पाश्चात्य विद्वान फ्रायड के मतानुसार– "संगीत की उत्पत्ति एक शिशु के समान, मनोवैज्ञानिक के आधार पर हुयी। जिस प्रकार बालक रोना, चिल्लाना, हँसना आदि क्रियाएँ आवश्यकतानुसार स्वयं सीख जाता है, उसी प्रकार मानव में संगीत का प्रादुर्भाव मनोविज्ञान के आधार पर स्वयं हुआ।"[59]

संगीत की उत्पत्ति यथार्थ रूप में प्रकृति के उत्पन्न नाद के द्वारा हुयी, क्योंकि संस्कृत मनीषियों ने नाद को बह्म के रूप में माना है। जो आवाज पशु–पक्षियों के मुख से और मनुष्यों के मुख से निकलती है तथा पेड़–पौधों की वह ध्वनि जो वायु के आघात से उत्पन्न होती है तथा जल

प्लावन की ध्वनि जो जल प्रवाह के समय उत्पन्न होती है वही संगीत है। संगीत के माध्यम से व्यक्ति आनन्द और विषाद की अभिव्यक्ति करता है। संगीत को हम निम्न भागों में विभक्त करते हैं :

1. लोक संगीत – यह वह संगीत है जिसे व्यक्ति अपने परिवारों में परम्परागत तरीके से गाता है। इसका कोई शास्त्रीय विधान नहीं होता है। यह संगीत व्यक्ति अपने पूर्वजों से सीखता है और मृत्यु उपरान्त अपने उत्तराधिकारियों को दे जाता है। यह संगीत व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन, लोकाचार, जातीय एवं धर्म संस्कारों से जुड़ा होता है। जन्म से मृत्यु तक समस्त संस्कारों में यह सर्वत्र दिखायी देता है।

2. शास्त्रीय संगीत – यह संगीत विभिन्न संगीत शास्त्रीय परम्पराओं का अनुसरण करता हैं। तथा यह स्वर, लय, ताल से जुड़ी हुयी विभिन्न राग–रागनियों में गाया जाता है। इसमें गायक रागनियों के अनुसार ही गायन विधा को अपनाता है तथा यही विधा वादन में भी अपनाना पड़ती है। यह वादन प्रक्रिया विविध तालों में लयबद्ध होती हैं। यह संगीत मुख्य रूप से निम्न भागों में विभाजित हैं :

1– गायन, 2– वादन, 3– नृत्य, 4– नाट्य एवं नाटक।

बुन्देलखण्ड में संगीत की ये चारों विधाएँ चिरकाल से सर्वत्र उपलब्ध होतीं हैं। चन्देलकाल में संगीत और नृत्य कला को सर्वत्र प्रोत्साहित किया गया है।

"संगीत और नृत्य कला के विकास के लिए चन्देल शासकों ने भरपूर आश्रय प्रदान किया। नृत्य स्वतन्त्र कला के रूप में विकसित हुआ था। अभिनय के साथ उसका अंग–स्वरूप तो वह था ही। सार्वजनिक स्थान और गोष्ठी–गृहों में ऐसी कलाओं का प्रदर्शन होता था। सार्वजनिक विनोद के रूप में संगीत और नृत्य सबसे शिष्ट और उत्तम कला मानी जाती थी। संगीत सर्वाधिक लोकप्रिय कला थी। कला की दृष्टि से संगीत के अनेक वर्गीकरण हुए थे। नाटकों में नृत्य के लिए प्रचुर अवकाश दिया जाता था। इस युग में इन कलाओं पर ग्रंथों के रचे जाने की सूचना मिलती है।"[60]

संगीत के अतिरिक्त अभिनय कला का विकास भी चन्देल युग में हुआ। इस युग का सुप्रसिद्ध नाटक *'प्रबोध चन्द्रोदय'* कीर्तिवर्मन के राजभवन में अभिनीत हुआ। इसका निर्देशन सामन्त गोपाल ने किया था। अभिनय में वस्त्राभरण, रंग व्यवस्था, संगीत–व्यवस्था का वैज्ञानिक विकास हो चुका था तथा अभिनय के बीच नाट्य, नृत्य की भी योजना रहती थी। राजभवन की रंगशाला के अतिरिक्त अन्य रंग शालाएँ भी थीं। जहाँ नृत्य और संगीत के कार्यक्रम प्राथमिक रूप से हुआ करते थे। अनेक धर्म स्थलों में भी ऐसी रंग–शालाएँ थी। "जंगल, उपवन, निर्झर, उद्यान, नदी–तट, पहाड़ी, वन–पथ, मरूभूमि, खेत, भवनों के भीतर और बाहर के प्रकोष्ठ, युद्ध क्षेत्र आदि भारतीय रंगमंच पर पात्रों द्वारा ही व्यक्त हो जाते थे। 'पात्र स्वयं अपने अभिनय और बातचीत से उसका संकेत कर देते थे।"[61]

तुर्क और मुगुलों के आगमन के पश्चात् बुन्देलखण्ड की संगीत गायन–वादन शैली में व्यापक परिवर्तन हुआ। "सन् 1290 से लेकर सन् 1320 तक अमीर खुसरो ने अनेक रागों और तालों को जन्म दिया। इसी समय का एक दूसरा संगीतज्ञ गोपाल था। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर के समय अनेक संगीतज्ञ थे। जिन्होंने कव्वाली, गज़ल, ख्याल, ठुमरी का खूब प्रचार–प्रसार किया।[62] अकबर के शासन काल में 36 संगीतज्ञ रहते थे। इनमें से कुछ बुन्देलखण्ड के थे। मुख्य रूप से तानसेन अकबर से पूर्व कालिंजर नरेश रामचन्द्र बघेल के राज्य में रहते थे। "राजा मानसिंह तोमर ने ग्वालियर में एक गान विद्यालय खोला था। उसी विद्यालय में तानसेन ने शिक्षा पायी थी। कुछ गायकों का यह विचार है कि उसने राग–रागनियों को तोड़–मरोड़कर प्रस्तुत किया था

जिसके कारण कई रागनियों का लोप हो गया।"[63]

बुन्देलखण्ड में शास्त्रीय और लोक संगीत दोनों ही प्रचलित थे। यह लोक संगीत जातीय–व्यवस्था, तीज–त्यौहार और धर्म से सम्बन्धित था। समय–समय पर इनके प्रदर्शन होते थे। बाँदा जनपद का शास्त्रीय संगीत बहुत अधिक प्रसिद्ध था। बाँदा में संगीत व गाने–बजाने का बहुत जोर रहा है। बाँदा नावाब की दिलचस्पी व कदरदानी की वजह से शहर में इस कला के जानने वालों का एक पूरा मुहल्ला कलावंतपुरा के नाम से आबाद है। जहाँ का हर बालक, जवान, बूढ़ा ताल–सुर में डूबा हुआ था। नवाब के दरबार में अल्पखान तथा शहबाज खान नामी ऐसे संगीतज्ञ थे, जिन सा दूसरा मुश्किल नजर आता था। उनकी औलाद में फकीर मोहम्मद ऐसे कव्वाल थे, जो कि महफिलों में जब गाते थे, तो पूरी महफिल में समाँ सा छा जाता था।[64]

इस समय दतिया राज्य में भी संगीत कला को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। "दतिया के प्रधान शासक भगवान दास के पिता वीर सिंह जू द्वारा बनावाए सातखण्ड महल में वीणा बजाती स्त्रियाँ और मृदंग बजाते हुए पुरूषों के चित्र विद्यमान हैं। इन उदाहरणों से सहज ही यह ज्ञात होता है कि दतिया में संगीत विद्यमान था। इस कला में ध्रुपद शैली गाने की परम्परा थी।[65] इस काल में गायन की अनेक विधाएँ प्रचलित थीं। मुख्य रूप से गज़ल, दादरा, मुज़रा संगीत, ध्रुपद, ख्याल, ढमार आदि गायन विधियाँ प्रचलित थीं।

गायन विधि के साथ वाद्य–यन्त्रों का प्रयोग होता था। ये वाद्य–यन्त्र तन्तु, विततृ, सुबिर, अवनद्ध तथा धन वाद्यों में विभाजित है।[66] सारंगी, सितार, सरोद, शहनाई, बाँसुरी, कठताल, मंजीरा, जलतरंग, काष्ठ तरंग, पखावज, तबला, मृदंग, ढोल, नाल, नंगाड़ा आदि वाद्य यन्त्रों का प्रयोग गायन–वादन और नृत्य कला में होता था।

उस युग में बुन्देलखण्ड में नृत्य की अनेक विधियाँ प्रचलित थीं। इनमें लोक–नृत्य और शास्त्रीय नृत्य दोनों ही शामिल थे। इस समय नृत्यकार स्वतः गीत गाते थे और उनके साथ वादक वाद्य यन्त्र बजाते थे। कहीं–कहीं नृत्यकार तलवार की ढाल पर काँच के टुकड़ों पर जलाशय में, तथा रस्सी के ऊपर नृत्य करते थे। अनेक नृत्यांगनाएँ दीपक लेकर और सिर पर अनेक घट रखकर नृत्य करतीं थीं। ये नृत्य सार्वजनिक स्थानों और राजदरबारों, धर्म स्थलों में होते थे।

तुर्कों और मुगुलों ने नृत्य कला को विशेष प्रोत्साहन नहीं दिया। चूंकि कुरआन शरीफ के अनुसार ये विलासिता पूर्ण कलाएँ हैं, इन्हें नहीं अपनाना चाहिए। किन्तु सूफ़ी सन्त उन्माद में आकर नृत्य–मृत्य किया करते थे। बुन्देलखण्ड के राजदरबारों में ऐसे संगीत के प्रदर्शन नियमित रूप से आयोजित होते रहते थे।[67] सल्तनत और मुगुल काल में लोक–संगीत शैली में भी व्यापक परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन प्रस्तुतीकरण गायन, वादन शैली और नृत्य शैली में हुआ। मुख्य रूप से वाद्य यन्त्रों में मृदंग, ढोलक, ढोल, ताशा, नंगाड़ा, नंगड़िया, हुड़क, डफ, खंज़ली, चमिटा, मंजीरा, मटका, करताल, पपीहरी, शहनाई, बाँसुरी, चिलगोज़ा, धींचा, एकतारा, तानपुरा, सितार, तबला, सारंगी, झांझ, रमतुल्ला, तुरही आदि प्रसिद्ध वाद्य थे। इसके अतिरिक्त खाली लोटा, घंटा (घड़ियाल) घंटी, आदि वाद्य यन्त्रों के रूप में प्रयुक्त होते थे।

लोक नृत्य जातीय आधार पर प्रस्तुत होते थे। इनकी अलग पहचान थी। मुख्य रूप से कहरी, ढिमराई, कोलहाई, कुण्डारा तथा दीवाली नृत्य जातीय आधार पर प्रस्तुत होते थे। इनका प्रस्तुतीकरण ढीमर, धोबी, अहीर आदि जाति के लोग प्रस्तुत करते थे। तथा कुछ नृत्य पारिवारिक संस्कारों में प्रस्तुत किए जाते थे। इसके अलावा हिजड़े नृत्य प्रस्तुत करते थे। कहीं–कहीं पर बेड़िने राई नृत्य का प्रस्तुतीकरण किया करतीं थीं।

मसीहियों का संगीत पर प्रभाव

जब मसीही बुन्देलखण्ड क्षेत्र में आये उस समय उन्होंने बुन्देलखण्ड वासियों को अपने पाश्चात्य संगीत से परिचित कराया। जिसे वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से गाया करते थे तथा उन वाद्य यन्त्र से परिचित कराया जिसका प्रयोग बुन्देलखण्ड और भारत वर्ष में पहले कभी नहीं होता था। यह परिवर्तन निम्न शैलियों में इस प्रकार हुआ –

1. गायन शैली में परिवर्तन – पहले लोग परम्परागत लोक शैली शास्त्रीय राग–रागिनियों में संगीत का प्रस्तुतीकरण किया करते थे। कालान्तर में शास्त्रीय गायन की लोक प्रियता घटी और उसके स्थान पर पाश्चात्य शैली से प्रभावित सरल संगीत गायन विधि का प्रचार–प्रसार हुआ। मुख्य रूप से नाटकों और चलचित्रों के माध्यम से सरल संगीत गायन विधा को लोकप्रियता मिली।

2. वादन शैली में परिवर्तन – मसीहियों के आगमन के पश्चात् वाद्य यन्त्रों और वादन शैली में भी व्यापक परिवर्तन हुआ। परम्परागत वाद्यों के अतिरिक्त सारंगी, रावण हत्था, कामाइचा, रबाब, नफ़रो, क्लैरोनेट, ट्रम्पेट, गिटार, पियानो, मैण्डोलिन, माउथ ऑर्गन, साइड ड्रम, ट्राईएंगिल, केटिल ड्रम्स, टैम्बोराइन, ज़ायलोफोन, हारमोनियम आदि वाद्य यन्त्रों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया। इन वाद्य यन्त्रों की आवाज़ अत्यन्त सुरीली, अत्यन्त मनमोहक थी।

3. नृत्य कला में परिवर्तन – मसीहियों के आगमन के पश्चात् यहाँ पश्चिमी नृत्य शैली का विकास हुआ और उसकी लोक प्रियता बढ़ी। यह शैली शास्त्रीय नृत्य से और परम्परागत नृत्य शैली से बिल्कुल भिन्न थी। पाश्चात्य शैली में बैले डांस, रॉक एण्ड रोल तथा युगुल नृत्य शैली की परम्परा बढ़ी। किन्तु ये नृत्य शैलियाँ सम्भ्रान्त व्यक्तियों के मध्य ही लोकप्रिय रही। पंचसितारा होटलों में ऐसे नृत्यों का आयोजन होता रहा है तथा अनेक चलचित्रों में ऐसे नृत्य दर्शाए गए हैं।

4. अभिनय कला में परिवर्तन – प्राचीन काल में अभिनय कला भारतीय नाट्य शास्त्र के अनुसार सम्पन्न होती थी ये नाटक दो प्रकार के होते थे। पहले ये नाटक एकांकी नाटक होते थे तथा दूसरे नाटक सम्पूर्ण नाटक होते थे। इनका प्रस्तुतीकरण नट–नटनी अथवा सूत्रधार के माध्यम से होता था तथा इन नाटकों का प्रस्तुतीकरण सुखान्त और दुःखान्त नाटकों के रूप में होता था। भारतीय नाट्य शास्त्र के अनुसार रंगमंच में आग दृश्य, युद्ध के दृश्य और मैथुन के दृश्य सर्वथा वर्जित थे। रंगमंच का विकास न होने के कारण और प्रकाश आदि की उचित व्यवस्था न होने के कारण विविध प्रकार के दृश्यों को नहीं दिखाया जा सकता था। किन्तु मसीहियों के आगमन के पश्चात् रंगमंच शैली का विकास हुआ तथा ऐसे नाटक लिखे गए जो परम्परा से हटकर थे। इस समय रंगमंच दृश्य सज्जा और प्रकाश व्यवस्था से सुसज्जित हुआ। जिनके कारण नाटकों की लोकप्रियता बढ़ी। हिन्दी नाटकों की भाषा पात्रानुकूल एवं ऊर्दू मिश्रित थी तथा बीच–बीच में शेर और शायरी, गीत और कविताएँ दृश्य के अनुकूल प्रस्तुत किए जाते थे।

इसी युग में चलचित्रों का विकास हुआ। इसके माध्यम से जिन दृश्यों को हम रंगमंच के माध्यम से नहीं दिखा सकते थे वह चलचित्रों के माध्यम से दिखाए जाने लगे। कालान्तर में चलचित्रों की लोकप्रियता बढ़ गयी और रंगमंच तिरोहित होने लगे तथा ध्वनि विस्तारक यंत्रों ने शेष रंगमंचों की शोभा बढ़ाई। केवल हम इतना कह सकते हैं कि संगीत के क्षेत्र में हमने कुछ खोकर कुछ पाया है।

अनेक भारतीय संगीतकार कला विशेषज्ञ और अभिनेता इस बात से अत्यन्त दुःखी हैं कि मसीहियों ने बुन्देलखण्ड में आकर हमारी संगीत परम्पराओं का गला घोटा है। इससे परम्परागत संगीत और नृत्य मृत प्राय हो गया। यदि हम उसे पुनर्जीवित करने का प्रयास करते हैं तो व्यक्ति

हमें रूढ़िवादी होकर अपमानित करते हैं। यदि हम पाश्चात्य संगीत–कला का समर्थन करते हैं तो व्यक्ति हमें ब्रिटिश शासन का चाटुकार मानते हैं। इस प्रकार हमारी दोनों ओर से निन्दा होती है। संसाधन हीनता के कारण हम जो भी करना चाहते हैं। उसे करना असम्भव न भी हो तो कठिन अवश्य है।

आवश्यकता इस बात की है कि बुन्देलखण्ड का इतिहास संरक्षित रखने के लिए परम्पराओं को जीवित रखना भी बहुत आवश्यक है। हमें यह जागृति व्यक्तियों के मध्य विकसित करनी होगी कि व्यक्ति अपने लोक संगीत जिनका संबन्ध धर्म संस्कार, मौसम, जाति और शौर्य प्रदर्शन से है, उन्हें न भूल जाएं। यह क्षेत्र पंचदेव उपासना का केन्द्र रहा है तथा यहाँ के संस्कार जन्म से लेकर मृत्यु तक लोक संगीत से भरे हुए हैं। उनके प्रति हमें अपनी रूचि जागृत करना चाहिए, वे नृत्य जो बुन्देलखण्ड की भूमि पर पैरों को थिरकाकर किए जाते हैं उनके प्रति भी हमारे ह्रदय में श्रद्धा हो। मुख्य रूप से सावन गीत, ढिमरयाई, फ़ागे और श्रृंगार गीत हमें हमेशा याद रखने चाहिए। इसी प्रकार हमारे नाट्य परम्परा जैसे नौटंकी, हरदौल नाटक या अन्य नाटक तथा ग्रामों में प्रस्तुत होने वाले स्वांग आज भी उपयोगी हैं। पाश्चात्य सभ्यता के पीछे भागना और निजी सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा करना ठीक नहीं है। हमें वह उपाय करना चाहिए जिससे हमारे ह्रदय में व्याप्त वेदना कुछ कम हो। अन्त में हमारी अभिव्यक्ति यह है :

श्रृंगार गीत

"काय बोली रे, काय बोली, भुन्सारें चिरैया काय बोली
चिरैया काय बोली, रे बड़े तड़के चिरैया काय बोली
ठंडौ रे पानी गरम कर लाई, सपरन न पाए पिया, फिर बोली, काय...........
ताती जलेबी, दूदा के लडुवा, जेउन न पाए पिया, फिर बोली, काय........."[68]

बुन्देलखण्ड के साहित्य पर मसीही धर्म का प्रभाव

बुन्देलखण्ड की साहित्यिक गतिविधियाँ अति प्राचीन हैं। सुप्रसिद्ध संस्कृत कवि वाल्मीकी जिन्होंने वाल्मीकी रामायण का स्रजन किया वे इसी धरती के पुत्र थे तथा उनका जन्म बाँदा से इलाहाबाद जाने वाले मार्ग में स्थित लालापुर गाँव में हुआ था। इसके पश्चात् 18 पुराणों के रचयिता और वेदों के सम्पादक कृष्ण द्वैपायन व्यास का जन्म भी इसी बुन्देलखण्ड में बाँदा जनपद के पैलानी क्षेत्र में स्थित अदरी ग्राम में हुआ था। उसके पश्चात् अनेक कवि बौद्धकाल से लेकर चन्देल युग तक इस क्षेत्र की शोभा बढ़ाते रहे।

चन्देल युग के पहले यहाँ की साहित्यिक भाषा संस्कृत थी। इसी भाषा में अनेक ग्रन्थों का स्रजन किया गया था। कालान्तर में क्षेत्रीय भाषा का विकास हुआ तथा पूरे भारत वर्ष में महाराष्ट्री (मराठी), शौरसेनी, मगधी और पैशाची भाषाओं का विकास हुआ। इस क्षेत्र में पाली और संस्कृत के सहयोग से अपभ्रंश भाषा का विकास हुआ। धीरे–धीरे विविध सम्प्रदाय के माध्यम से प्राचीन हिन्दी का स्वरूप दिखलायी देने लगा। डॉ0 रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी भाषा के विकास को इसी क्रम में स्वीकार किया।[69] चन्देल साम्राज्य में स्थानीय बोलियों का विकास हुआ। "पश्चिमी हिन्दी से बुन्देलखण्डी भाषा का रूप इस समय निखर रहा था। चन्देल साम्राज्य के अधिकांश भाग में बुन्देलखण्डी भाषा अपनी अनेक स्थानीय बोलियों के साथ ग्यारहवीं–बारहवीं सदी में विकसित हो रही थीं। ऐसा क्षेत्र उत्तर प्रदेश के वर्तमान बाँदा, हमीरपुर, जालौन, झाँसी और ललितपुर जिले, मध्य प्रदेश के जबलपुर, सागर और दमोह जिले, ग्वालियर राज्य का सब पूर्वी भाग और बघेलखण्ड

का पश्चिमी भाग, प्रयाग जिले का गंगापार का भाग, भोपाल तथा सारा बुन्देलखण्ड है। चन्देल साम्राज्य के भीतर पश्चिम की ओर भदावरी, ब्रजभाषा और मालवी बोलियाँ स्वरूप धारण कर रही थीं।[70]

लेखन के क्षेत्र में देवनागरी लिपि के साथ–साथ नवीन अक्षरों का विकास हो रहा था। इस समय सर्वाधिक ग्रन्थ काव्य में लिखे गए। अनेक कवि राजाश्रय में रहते थे। वे राजाओं की प्रशंसा में कविता लिखा करते थे। परमार्दिदेव के समय में गदाधर नाम का एक कवि था तथा दूसरा कवि जगनिक था। जिसने आल्ह खण्ड की रचना की। हिन्दी साहित्य के क्षितिज पर दो प्रकार की कविताएँ– प्रथमतः लघु महाकाव्य और दूसरे गाथा–गीत दृष्टिगोचर हुयी।[71] प्रथम का महत्वपूर्ण उदाहरण तो पृथ्वी राजरासो है और दूसरे का बीसल देवरासो। लेकिन काल की दृष्टि से 'खुमान रासो' और भी प्राचीन है। इन तीनों ग्रन्थों में पृथ्वीराज रासो अपेक्षाकृत अधिक साहित्यिक मूल्य का है। यह ध्यान देने की बात है कि इन ग्रन्थों की रचना चन्देल वंश के इतिहास के उपसंहार की सदी में हुयी।

हिन्दी साहित्य के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में भी महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुयी। मुख्य रूप से अलंकार, काव्यांग, दर्शन, धर्मशास्त्र, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद और संगीत शास्त्र में अनेक ग्रन्थ लिखे गए। इसके अतिरिक्त अनेक धर्म ग्रन्थों की रचना भी हुयी। इसमें शिव, उपासना, कृष्ण कर्णामृत आदि ग्रन्थ लिखे गए। ए0बी0 कीथ ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में नीतिकार और गीतकार दो प्रकार के साहित्यकारों का वर्णन किया है।[72] इस युग में निम्नलिखित संस्कृत ग्रन्थों की रचना हुयी[73]–

1.	विश्वरूप बालकृष्ण	....	याज्ञवल्क्य स्मृतिपर।
2.	मेधातिथि	....	मनुस्मृति।
3.	देवस्वामिन्	....	निबन्ध रूप में एक ग्रन्थ।
4.	योगलोक	....	व्यवहार और कला पर।
5.	भुवदेव भट्ट	....	व्यवहार तिलक की रचना।
6.	पाविजात	....	दान के ऊपर एक ग्रन्थ।
7.	गोविन्द राज	....	स्मृति–मंजरी।

इसी समय काव्य–प्रकाश, प्रबोध चन्द्रोदय, सिद्धान्त शिरोमणि, नैषध महाकाव्य तथा विश्व का ललितमय गेय काव्य, गीत–गोविन्द इसके अप्रतिम साक्षी हैं। सचमुच भोज, मम्मट, भास्कर, रामानुज, कृष्ण मिश्र, जयदेव और श्री हर्ष तथा कुछ अन्य वरेण्य लेखकों की आकाश गंगा ने भारत वर्ष के मध्यकालीन निष्प्रभ इतिहास को भी पर्याप्त ज्योतिर्मान बना दिया है।[74] इस सांस्कृतिक संक्रमण के युग में चन्देलों–द्वारा अभिनीत आख्यान तुलना में अत्यन्त महत्वपूर्ण था। उन्हीं के यश को प्रकीर्ण करता हुआ प्रबोध चन्द्रोदय राजपूत भारत के साहित्य–संग्रहालय में आज भी गौरव से देदीप्यमान है।

बुन्देलखण्ड में बोली जाने वाली हिन्दी बुन्देलखण्डी के नाम से विख्यात है। यह भाषा बाँदा, हमीरपुर, जालौन, झाँसी, ललितपुर, ग्वालियर, सागर, दमोह और जबलपुर तथा बघेलखण्ड के पश्चिमी भाग तथा इलाहाबाद के दक्षिणी भाग में बोली जाती है। कुछ भाषाएँ बुन्देलखण्डी भाषा की उपभाषा भी हैं। इन्हें तिरहरी (यमुना किनारे का कुछ भाग), गहोरापठा, अन्तर्पठा, जुरार, कुड़री (हमीरपुर के दक्षिण), बगरावल, आधर, वनफरी (चरखारी, छतरपुर के भाग), लुधयांट (हमीरपुर, झाँसी के भाग) कहते हैं। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार बुन्देलखण्डी भाषायी स्थिति इस प्रकार है :
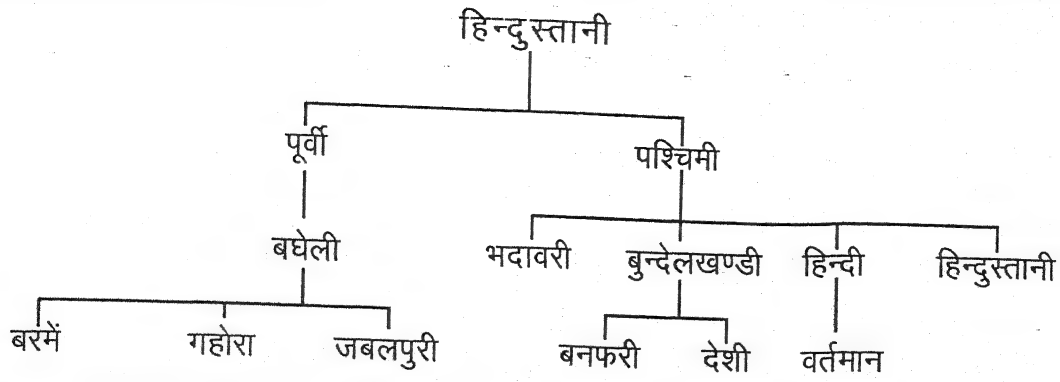
बुन्देलखण्ड में बोली जाने वाली भाषाएँ जनपदों के आधार पर इस प्रकार बोली जाती हैं –

स्टैण्डर्ड बुन्देलखण्डी – झाँसी, जालौन, हमीरपुर, पूर्वी ग्वालियर, पूर्वी भोपाल, ओरछा राज्य, सागर, नृसिंहपुर, शिवनी, होशंगाबाद।

पवारी – ग्वालियर, स्टेट दतिया।

लोधाटीं राठौरी – हमीरपुर, चरखारी, जालौन।

"खटौला" – पन्ना, दमोह।

दक्षिण में बुन्देलखण्डी – बालाघाट, छिंदवाड़ा, नागपुर।

बुन्देली भाषा में अनेक साहित्यकारों ने अपनी उत्कृष्ठ रचनाएँ सृजित की हैं। महाकवि जगनिक को बुन्देलखण्ड का प्रथम कवि माना जाता है। जिन्होंने बनाफरी भाषा में आल्ह खंड की रचना की। "बुन्देलखण्ड के हिन्दी भाषा के प्रथम कवि आल्ह खंड के रचयिता महोबा के जगनिक कवि कहे जाते हैं। ये महानुभाव 12वीं शताब्दी में पैदा हुए थे और प्रसिद्ध कवि चन्दबरदायी के समकालीन माने जाते है किन्तु इन महाभाग की कविता अप्राप्त–सी है।"[75] इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में चन्देल नरेश नन्द, गोस्वामी तुलसीदास, केशवदास, महाराजा छत्रसाल, प्राणनाथ, मेघराज, लालकवि, अनन्य, बिहारी दास मिश्र, महाराज विक्रमाजीत सिंह "लघुवंशी", विष्णु दास, सुदर्शन, कृष्णदास, श्री पति भट्ट, कोविद मिश्र, बैकुण्ठ मणि, हरिश्चन्द्र, देवीदास, रसनिधि, मोहन भट्ट, कुन्दन, दिग्गज, गुलाल सिंह, केशवराय, राजा दलपति राय, तिलोक सिंह, रसलाल, खंगराम, रतन, हरि सेवक मिश्र, हरिकेश, बख्शी हंसराज, हिम्मत सिंह, कृष्ण, गुणदेव, खण्डन, पंचम सिंह, भारथशाह, शाहजू, गोपाल भट्ट, विजयाभिनन्दन, शिवनाथ और पुण्डरीक अठारहवीं शताब्दी में श्रृंगार और वीर दोनों ही रसों की कविताओं को विशेष प्रोत्साहन मिला। इस शताब्दी में पद्माकर, ठाकुर, प्रताप नक्खान, करन, नवलसिंह, नरोत्तम, गंगाधर, पजनेस, गदाधर, अवधेश, शंकर, हृदयेश, परमानन्द, काली कवि, जनकेश, भगवानदीन, वल्देव, वर्मा, राधालाल गोस्वामी आदि मुख्य–मुख्य कवि हैं, तब से यद्यपि समय–समय पर और भी अनेकानेक कवि होते रहें हैं किन्तु वर्तमान युग में कविता की चमत्कारिक उन्नति हुयी है।

किन्तु जिन साहित्यकारों को ख्याति उपलब्ध हुयी है उनमें तुलसीदास का महत्वपूर्ण स्थान है। तथा इनके ग्रन्थ सर्वाधिक लोकप्रिय हुए हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने जीवन काल में 22 ग्रन्थों की रचना की है। लेकिन रामचरित मानस इनका सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है। इसके पश्चात् गीतावली, दोहावली, विनय पत्रिका और कवितावली का स्थान आता है। इनके पश्चात् दूसरे महत्वपूर्ण कवि बलभद्र मिश्र हैं। ये ओरछा निवासी थे। इन्होंने सात ग्रन्थों की रचना की। इन क्षेत्र के अन्य बड़े कवियों में महाराज मधुकर शाह थे। जिन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे। इसके पश्चात् केशवदास कवि थे। जिनकी सुप्रसिद्ध रचना रामचन्द्र का रसिक प्रिया तथा कविप्रिया आदि हैं।

इसके पश्चात् गोविन्द स्वामी, तानसेन, महाराजा बीरबल, राजा टोडरमल, आसकरण दास, बिहारी दास, शिवलाल मिश्र, नन्द कवि, विष्णु दास, विद्या पंडित, रामदास सरस्वत, पुरूषोत्तम, केशव की पुत्रवधू, मदन सिंह, गजेश मिश्र, मोहन दास मिश्र, पीताम्बर स्वामी, खड्गसेन कायस्थ, सुवंशराय कायस्थ, रत्नेश आदि महाकवि थे। ओरछा राज्य में रहने वाली प्रवीण राय वेश्या भी अच्छी कवियत्री थीं। वह इन्द्रजीत के दरबार की सुप्रसिद्ध गायिका भी थीं। इसे अकबर के दरबार में बुलाया गया था तथा अकबर से इसका वार्तालाप भी हुआ था। ये केशव दास की शिष्या और प्रेयसी भी थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड में काव्य–रचना को ही प्रोत्साहन दिया गया। कोई गद्य रचना लिखित रूप में प्रकाश में नहीं आयी जिसका मूल्यांकन किया जा सके। केवल अकबर और बीरबल के चुटकुले लोक रंजन के साधन थे तथा कुछ लोक कथाएँ मनोरंजन के लिए कही और सुनी जाती थीं। उनका लिखित स्वरूप प्राप्त नहीं होता।

अंग्रेजों के पूर्व का बुन्देली साहित्य का मूल्यांकन

अंग्रेजों के आगमन के पूर्व यहाँ जो साहित्य उपलब्ध होता है वह साहित्य उन रचनाकारों का है जो किसी–न–किसी राजदरबार की शोभा बढ़ाते थे तथा जिन्हें राजाश्रय प्राप्त था। तथा कुछ ऐसे भी कवि थे जिन्हें किसी प्रकार का राजाश्रय उपलब्ध नहीं था। वे स्वतन्त्र रूप से कविता करते थे। इस युग में अनेक महाकाव्य, खण्डकाव्य और मुक्तक काव्यों की रचना हुयी। ये सभी काव्य छन्द और अलंकार की दृष्टि से पिंगल ग्रन्थों का अनुसरण करते थे। मुख्य रूप से काव्य का विषय या तो वीर रस था जिसमें अनेक युद्धों का वर्णन तथा अनेक बहादुरों द्वारा शौर्य प्रदर्शन किया जाना था। कुछ काव्य श्रृंगार रस प्रधान थे जिसमें नायक–नायिका भेद एवं संयोग और वियोग श्रृंगार का हृदयग्राही वर्णन था। कुछ साहित्य शान्त और भक्ति रस प्रधान था। इनमें नीति से संबन्धित काव्य भी शामिल था। काव्य की विषय सामग्री एक न होकर अनेक थी तथा कवि विविध छन्दों के माध्यम से उत्कृष्ट काव्य कला का प्रदर्शन करता था।

काव्य की भाषा – बुन्देलखण्ड में जो भी काव्य लिखा गया। उसकी भाषा बुन्देलखण्डी थी। यह बृजभाषा से मिलती जुलती है, क्योंकि बुन्देलखण्ड की सीमाएँ बृजक्षेत्र से मिलती है। कुछ साहित्य बुन्देलखण्ड की उपभाषाओं में लिखा गया। मुख्य रूप से आल्ह खण्ड की रचना बनाफरी भाषा में हुयी। तुर्कों के आगमन के पश्चात् बुन्देलखण्डी भाषा में अरबी, फारसी की शब्दावली का प्रयोग बढ़ा। मुख्य रूप से भूषण और लाल कवि के साहित्य में अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग अधिक है। यथा–

उठ गए आलम से रूजुक सिपाहिन को,
उठि गए बँधैया सबै वीरता के बाने को।
भूषण भनत धर्म धरा से उठि गए,
उठि गए सिंगार सबै राजा रावराने को।।
उठिगे सुकवि सुशील उठिगे यशीले डील,
फैले मध्य देश में समूह तुरकाने को।
फूटे भाल भिक्षुक के जू के यशवन्तराय,
अरराय टूटे कुल खम्भ हिन्दुवानें को।।[76]

छन्दों की दृष्टि से भी अनेक प्रकार के छन्दों की रचना इस युग में की गयी। इसी युग में दोहा, कवित्त, चौपाई, छप्पय, दण्डक छन्द, सोरठा, रोला, षटपदी आदि छन्द लिखे गए। जो

काव्य की दृष्टि से अति सुन्दर हैं। कुछ कवियों कुण्डली छन्द की भी रचना की। यथा–

संप्रदाय नवधा भगति, वेद सुरसरी नीर।

ललिता सखी उपासना, ज्यों सिंहिन कौ छीर।।

ज्यों सिंहन कौ छीर रहै कुन्दन के बासन।

कै बच्चा के पेट, और घट करै बिनासन।।

'भगवत' नित्य बिहार, परे सबही को परदा।

रहै निरन्तर पास, रसिकबर "सखी सम्प्रदा"।।

अलंकारों की दृष्टि से भी तद्‌युगीन काव्य महत्वपूर्ण था। इस काव्य में अर्थालंकार और शब्दालंकार की सभी विधियाँ उपलब्ध होती हैं। रूपक, उपमा, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, क्रोक्ति, काक वक्रोक्ति, विभावना, व्याज स्तुति अलंकार आदि काव्य में सर्वत्र आए हैं। यथा :

सूनो करि गए भाल छोरि छोरिं कण्ठ माल,

दूसरो दिनेश और कौन देखिअतु हैं।

शोभित टिकैत मधुशाह अनियारोइम,

नागन के बीच मणियारौ पेखिअतु हैं।।

इस पद में रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार द्रष्टव्य हैं। रस की दृष्टि से यहाँ का काव्य नौ रसों से परिपूर्ण है। इसमें श्रृंगार रस, वीर रस, शान्त रस, हास्य रस, रौद्र रस, वीभत्स रस आदि सभी रसों के दर्शन होते हैं। वीर रस का एक उदाहरण इस प्रकार है :

धमक धमक वरछिन के धमाके उठे,

कटक कटक किरवांन सूल सटके।

फबक फबक रून्ड़म्हैलन पै धाय गिरें,

वैरिन की कारीकारी घटा घूम घटकें।।

भान भनें धन्य धन्य चम्पत के छत्रसाल,

बीरन के मुण्ड गिरें कोटि कोटि कटके।

कटर कटर नादि जम्बुक पिशाच करें,

घटर घटर काली रूधिर को गटके।। [77]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बुन्देलखण्ड का सम्पूर्ण साहित्य अवधा, लक्षणा, व्यंजना से युक्त है तथा इसकी भाषा में ओज माधुर्य और प्रसाद तीनों गुण उपलब्ध हैं। तथा कुछ काव्य साहित्य स्वतन्त्र काव्य शैली में विरचित हुआ है। जो शास्त्रीय संगीत की विभिन्न राग रागिनियों में बँधा हुआ है। मुख्य्य रूप से तुलसी दास का साहित्य शास्त्रीय संगीत के विभिन्न राग–रागिनियों से बँधा हुआ है। यथा :

दुलह राम, सीय दुलही री!

धन–दामिन बर बरन, हरन मन सुन्दरता नखसिखनि बहीं, री।।

ब्याह–बिभूषन–बसन–विभूषित, सखि अवली लीख ठगि सी रही, री।

जीवन–जनम–लाहु, लोचन फल है इतनोई, लह्यो आजु सही, री।।

सुखमा सुरभि सिंगार–छीर दुहि मयन अभियमय कियो है दही, री।

मथि माखन सिय–राम संवारे, सकल भुवन छबि मनहु मही, री।।

तुलसीदास जोरि देखत सुख सोभा अतुल, न जाति कही, री।

रूप–रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला लवनि रति–काम लही, री।[78]

उपरोक्त रचना स्वर, लय, ताल की दृष्टि शास्त्रीय राग–रागिनियों में गायी जा सकती है।

बुन्देलखण्ड का गद्य साहित्य – बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों के पूर्व किसी गद्य रचना के कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं होता। छापाखाना के अभाव के कारण कोई गद्य रचना नहीं लिखी गयी। केवल बोलचाल की भाषा में बुन्देलखण्डी गद्य प्रचलित रहा। इसके अलावा लोग व्यक्तिगत पत्रावली में गद्य का प्रयोग करते थे। बोलचाल में भी गद्य का उपयोग होता था। खड़ी बोली का प्रचलन बहुत कम था। अनेक राज्य पत्रावलियाँ गद्य में लिखीं गयीं हैं। यथा :

(दतिया के शुभकरन बुन्देला के समय का एक पत्र, जो 28 सितम्बर, 1650 ई0 को लिखा गया था। इसमें बख्शी नाम के पदाधिकारी का उल्लेख प्राप्त होता है।)

श्री

मोहार हिंदवी

श्री महराज कोमार श्री दीवान फ्तेसिंह जू देव ऐते श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव के बांच्यै आपर उहां के समाचार भले चाहिए। इिहा के समाचार भले है आगे अपने पांच हमारे हजूर आए श्री जो इसी शिवराम श्री बगसी नैनसाही श्री जसवन्त राहि इिन पांचन यह कही कै जब महाराज श्री दिवान मानधाता जू देव को मनसब पातसाही हजूर कड़ायौ हतौ तब पांच हजार रूपैया बर्चु भए हते सो ताकौ न तो उहा रूपैयन को मांगन कोउ गयो हतो अरू न जाहि आप जब अपने जांगा की व हजूदी होहि बर्चु की कुसाइिस होहि तवदै पदैवी अस्वुन सुदी 11 भौमे स. 1707 (सितम्बर 28, 1650) मुकाम जोर पहार।[79]

बुन्देलखण्ड के कथा साहित्य में भी कोई विशेष कार्य नहीं हुआ। तद्‌युगीन कथा साहित्य का स्वरूप केवल मौखिक था। व्यक्ति रात्रि में चौपालों में बैठकर कथा कहता–सुनता था। और अन्त में यह कहता था – "ये तो किस्सा आए कहबे की झूठी, बातन की मीठी, न कहबे वाले को दोष, न सुनने वाले को दोष"। मुख्य रूप से सिंहासन बत्तीसी, त्रिया चरित्र, किस्सा हातिम तायी, अकबर बीरबल के चुटकुले तथा पूत बुलाखी नाई के किस्से बहुत लोकप्रिय थे। इसके अतिरिक्त उमर खइयाम से प्रेरित लैला–मजनू, सारंगा सदा बृज की कथाएँ बड़ी लोकप्रिय थीं। किन्तु ये लिखित रूप में उपलब्ध नहीं थीं।

जहाँ तक नाट्‌य साहित्य का प्रश्न है। नाटकों का लेखन और मंचन संस्कृत नाटक के आधार पर हुआ। इसमें सर्वप्रथम ईश्वर वन्दना, तत्पश्चात् सूत्रधार नट–नटी द्वारा नाटक का परिचय के पश्चात् नाटक प्रारम्भ होता था। उत्तम कोटि की नाट्‌य शालाएँ चरखारी, झाँसी, ग्वालियर तथा अन्य रियासतों में खोलीं गयीं जहाँ तुर्क शैली में नाटकों की प्रस्तुति की गयी। इन्हें पारसी नाटक परम्परा के नाटक कहा गया –[80] तथा इसमें ऊर्दू और अरबी भाषा का बाहुल्य था। कुछ सम्पूर्ण गीत नाट्‌य भी नौटंकी शैली में लिखे गए तथा इनका मंचन भी नंगाड़े की ध्वनि के साथ किया गया। इस समय प्रहसन–चुटकुले का प्रभाव भी बढ़ा तथा इसके साथ ही साथ पहेलियाँ बुझाने का क्रम भी चलता रहा। पहेलियों के साथ–साथ गप्पे भी प्रचलन में थे। जैसे :

चीटीं चढ़ी पहाड़ पर, ढूढ़न चले चमार।
चीटीं गिरी पहाड़ से, चीरन लगे चमार।
जूता बने पाँच सौ, चप्पल बनी हजार।

शिक्षा के अभाव के कारण कहने और सुनने की परम्परा थी। बुन्देलखण्ड का साहित्य केवल पढ़े–लिखे वर्ग तक ही लोकप्रिय रहा। कुछ व्यक्ति अच्छे काव्य साहित्य को याद कर लिया

करते थे।

ऊर्दू साहित्य – जब बुन्देलखण्ड में मुसलमानों का आगमन हुआ उस समय अरबी, फारसी और ऊर्दू का प्रचार–प्रसार विविध क्षेत्रों में हुआ। अनेक मुसलमान कवि और शायर ऊर्दू में अपनी रचनाएँ लिखने लगे जो न केवल मुसलमानों के मध्य अपितु हिन्दुओं के मध्य भी लोकप्रिय हुयी। मुख्य रूप से गज़ल, शेर, कसीदा, मख्ता आदि ऊर्दू के छन्द काफी लोकप्रिय हुए। इस समय इस प्रकार की शायरी लिखी गयी :

"दिल छोड़कर जवान के पहलू पै आ पड़े,
हम लोग शाइरी से बहुत दूर जा पड़े।"
"मानी को छोड़ कर जो हों नाजुक–बयानियां,
वह शेर क्या है रंग है लफजों के खून का।।"
"मैं अपने आप में इन शाइरों में फर्क करता हूँ।
सखुन इन से संवरता है सखुन से मैं संवरता हूँ।" [81]

इस युग में ऊर्दू और हिन्दी का एकीकरण हो रहा था और जो खड़ी बोली का गद्य लिखा जाने लगा था वह ऊर्दू मिश्रित था। तथा नाटकों में ऊर्दू का प्रयोग सर्वाधिक था। नाटकों में जो गज़ले गायी जातीं थीं उनका स्वरूप कुछ इस प्रकार था–

शर्म थी आंख में पर्दे से निकलते क्योंकर।
न सही शर्म नज़ाकत से वह चलते क्योंकर।।
न नज़ाकत सही वह मेंहदी लगाए होंगे
फिर वह तलवे से दिले ज़ार को मलते क्योंकर
न सही मेंहदी किसी ग़ैर से वादा होगा
सादी कुल्कौल थे वादे को बदले क्योंकर
न सही वादा लटैं शाने पर लटकी होंगी
बोझ लेकर के वह चलते तो संभलते क्योंकर [82]

ऊर्दू शाइरी भी दिल के ज़ज्बात निकालने का एक अच्छा साधन था तथा श्रृंगार रस प्रधान रचनाएँ ऊर्दू में सर्वाधिक लिखीं गयी और लोकप्रिय हुयीं।

लोक–साहित्य – बुन्देलखण्ड का लोक साहित्य भी काफी धनी साहित्य था। जबकि इसके रचनाकारों का कोई पता नहीं है। केवल परम्पराओं के रूप में यह लोक साहित्य पनपा और सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में प्रचारित–प्रसारित और विकसित हुआ। सुप्रसिद्ध विद्वान अयोध्या प्रसाद *'कुमुद'* का मत है– "जनमानस अपना उल्लास और कसक लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त करता है। सौन्दर्यता, मधुरता, करूणा और वेदना से सराबोर यह गीत सैकड़ों वर्षों की परम्परा में जन–मन में इतने बस गए हैं कि किसी को इन गीतों के "उत्स" का पता नहीं होता है। यदि किसी गीत का रचनाकार ज्ञात होता है तो उसे लोकगीत की श्रेणी में परिगणित नहीं किया जाता है।

इन गीतों का लोकत्व यह है कि यह अपनी विशिष्ट धुनों में यमुना से नर्मदा तक और चम्बल से टौंस तक सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में एक जैसी गायी जाती रहीं हैं, गायी जातीं है और गायी जाती रहेंगी। स्थान दूरी पर होने वाले भाषागत परिवर्तनों के अलावा उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं होता है। स्वर, राग रागिनी वही रहती, केन्द्रीय भाव वही है, सम्भव है एक दो पंक्तियों को छोड़कर गीत ज्यों के त्यों मिलते हैं।[83]

यहाँ का लोक–साहित्य लोक–गीता, लोक–कथाओं, लोक–नाटकों और लोक–नृत्यों में

विभाजित है। जो गीत यहाँ उपलब्ध हैं, वे धर्म–गीत, संस्कार–गीत, उपासना–गीत, ऋतु विषयक–गीत और श्रमदान–गीत तथा शौर्य–गीतों में विभाजित हैं। धर्म–गीत का एक उदाहरण दृष्टव्य है :

मैया के दरस कों सबदल उमहे,
मठिया के खोलो किवार हो मॉय।
कै लख उमहे बम्हन बनियां,
कै लख उमहे कलार हो मॉय।
नौ लख उमहे बम्मन बनियां,
दस लख उमहे कलार हो मॉय। [84]

धर्म–गीतों के अलावा 16 संस्कारों के गीत भी यहाँ उपलब्ध होते हैं। ये गीत जन्म संस्कार से लेकर मृत्यु संस्कार तक के हैं किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार विवाह संस्कार है। जिसमें सगाई, फलदान, हल्दी, तेल, अरगना, मड़वा, चीकट, चढ़ाव, भाँवर, कन्यादान, पाँव पखराई, धान बुड़ाई, जेवनार, कुँवर–कलेवा, कंगन छोड़ना, डलिया–सजाना, विदा, सगुन चुरइया, दादरा, सुहागरात आदि नेंग दस्तूर होते हैं। जिनमें विविध प्रकार के लोक गीत गाए जाते हैं। इसमें चीकट का गीत विशेष दृष्टव्य है :

चिठिया लिखरई बहिन बिरन कौ,
बिरन मोंरे भात ल्याइयों
ससुरा कों ल्याइयों भईया पाग पिछौरा
सांसो मोरी बड़ी रंगीली
लैंगा हरौ रंगाइयो। बिरन मोरे..............
जेठा कों ल्याइयो भईया पाग पिछौरा
जिठनी मोरी बड़ी रंगीली
चुनरी लाल रंगाइयों। बिरन मोरे...........

बुन्देलखण्ड में कुछ सम–सामयिक गीत भी होते हैं। जिनका गायन कुँआरी लड़कियां किया करतीं है। मुख्य रूप से अक्ती, सुआटा, मामुलिया, नौरता, टेसू, झिंझिया, टेसू झिंझिया विवाह के गीत कुँआरी कन्याओं द्वारा गाए जाते हैं। इन गीतों में मामुलिया गीत सर्वाधिक लोकप्रिय है। जिसका गायन पितर–पक्ष में कन्याओं द्वारा किया जाता है। वह इस प्रकार है–

''मामुलिया के आए लिबौआ,
झमक चली मोरी मामुलिया,
जितै आजुल जू के बाग उतै मोरी मामुलिया,
रानी आजी देखन आई बाग, सजाय ल्याई मामुलिया।
ल्याऔ चंपा चमेली के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया। मामुलिया के..............
ल्याऔ धिया तूरैया के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया।
जितै जितै बीरन जू के बाग, उतै मोरी मामुलिया।
रानी भावी देखन आयी बाग, सजाय ल्याई मामुलिया। मामुलिया के आए....

बुन्देलखण्ड में विभिन्न ऋतुएँ होती हैं। यहाँ मुख्य रूप से वर्षा ऋतु में विरहा गीत, बारह मासा, श्रावन गीत, झूला गीत, फाग–गीत आदि गाए जाते हैं। बुन्देलखण्ड में झूला गीत सर्वाधिक लोकप्रिय है। ग्रामीण अंचलों में महिलाएँ इस गीत को श्रावण मास में गाती हैं–

"कि हरे रामा झूला घलों कदम्ब की डार
झुलावे राधा प्यारी रे हारी।"

ऋतु विषयक गीतों के अतिरिक्त यहाँ पर श्रृंगार–गीत भी लोकप्रिय है। यहाँ विरह गीत और संयोग श्रृंगार के गीत दोनों ही गाए जाते हैं–

काय बोली रे, काय बोली, भुन्सारें चिरैया काय बोली
चिरैया काय बोली, रे बड़े तड़कें चिरैया काय बोली
ठंडौ रे पानी गरम कर लाई, सपरन न पाए पिया,
फिर बोली, काय........................
ताती जलेवी, दूदा के लडुवा, जेउन न पाए पिया,
फिर बोली, काय........................

यहाँ पर कुछ लोकगीत तीज–त्यौहारों से भी संबन्धित हैं। मुख्य रूप से गनगौर, शीतला अष्टमी, जगन्नाथ की पूजा, अक्ती, अषाढ़ी देवता, सावन–तीज, नागपंचमी, तीजा, गनेश चौथ, रंग–पंचमी, अनन्त चौदस, नरक चौदस, दीवारी, गोवर्धन पूजा, गोपाल अष्टमी, देवउठानी एकादशी, भंवरात आदि त्यौहारों के अवसर पर लोकगीत गाने की प्रथा है। होली आदि त्यौहारों में फाग गाने की प्रथा है :

कारी सारी में तक मारी, मारी भर पिचकारी।
पिचकारी के लगत राधिका, चोर बोर भई भारी।
भारी भीर भई सखियन की, छेंक लए गिरधारी।
धारी धरौ मलौ मुख रोरी, कयें वृषभानु दुलारी।
लागी पकर धाए मनमोहन, नर से कर देव नार
नारी पै गंगाधर इननें, भौत करी अधिकारी।

कुछ लोक संगीत कथा से परिपूर्ण होते हैं तथा ये सैर–शैली में होते हैं। उसका उदाहरण भी द्रष्टव्य है। इसमें कोई–न–कोई कथा किसी सन्दर्भ में की जाती हैं–

जबै लक्ष्मी ने लखी, शत्रु सेन चहुं ओर।
क्षत्रानी रानी तबै, ठानी ठान कठोर।।
ठानी ठान कठोर, टोर लाज बनसीत है।
भौहें लई मरोर, वीर धरै किम धीर है।
रानी ने है अरिदल दलन को साज कीन्हों साज है।
नाही मलेक्षन को झुके मम शीश सही ताज है।
खैंची कृपान म्यान से रख आज तू अब लाज है।
चढ़ बाज पर पल में परी जिम शत्रु दल पर गाज है।
रखने को वीर बाने की करी बान है।
गौरव को गर्व गारन कीन्हों प्रयान है।
क्षण में दे भेंट दीने अरि के गुमान है।
हो क्रुद्ध युद्ध हेतु लई कर कृपान है।
रई चमक चारू चपला–सी आन बान है।
तैसई लखातरण में चारऊ दिसान है।
हो विकल शत्रु सेन लगी थरथरान है।

लोक–कथा तथा लोक–नाट्य साहित्य – बुन्देलखण्ड में लोक–कथा साहित्य भी महत्वपूर्ण साहित्य है। अनेक प्रकार के लोक कथाएँ यहाँ धर्म और तीज त्यौहारों से जुड़ी हुयीं हैं। इनका कथन और श्रवण दोनों ही पुण्य कार्य माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त वीरों की शौर्य गाथाएँ भी लोक कथाओं के रूप में प्रचलित है। मुख्य रूप से आल्हा ऊदल चरित्र, हरदौल चरित्र और छत्रसाल से जुड़ी अनेक कथाएँ कही और सुनी जाती हैं। लोक कथाओं के अतिरिक्त लोक नाट्य भी बुन्देलखण्ड में लोकप्रिय हैं। ये लोक नाट्य राम कथा, कृष्ण चरित्र, हरदौल चरित्र तथा अन्य कथाओं पर आधारित है। उनका लेखन नौटंकी तथा पारसी नाट्य शैली पर किया गया है। इसके अतिरिक्त जातीय स्वांग और प्रहसन भी लिखे गए हैं। इनका सर्वत्र प्रदर्शन होता है। बुन्देलखण्ड का लोक साहित्य बहुत धनी है।

मसीहियों के आगमन के पश्चात् बुन्देलखण्ड के साहित्य में परिवर्तन

जब कोई व्यक्ति अथवा समाज जब कहीं आते हैं। उस समय वहाँ का समाज उनसे अपरिचित होता है और वे भी उन लोगों से अपरिचित होते हैं, जहाँ वे जाते हैं, दोनों की भाषा और संस्कृति में जमीन–आसमान का अन्तर होता है। सबसे पहले व्यक्ति सांकेतिक भाषा के माध्यम से उन्हें समझने का प्रयत्न करता है। जब नज़दीकियाँ बढ़ती हैं तो दोनों एक–दूसरे की भाषा सीखते हैं। जब और नज़दीकियाँ बढ़ती हैं तो दोनों ही एक–दूसरे की संस्कृति का आदान–प्रदान करते हैं।

जब मसीही बुन्देलखण्ड में आए तो सर्वप्रथम उन्होंने बुन्देलखण्ड निवासियों की भाषा सीखी तथा अनेक पुस्तकों की रचना उनकी भाषा में की। ताकि वे मसीहियों की भावनाओं को समझ सके और उनकी संस्कृति को जान सके। सबसे पहले नार्थ इण्डियन क्रिश्चियन ट्रेक्ट एण्ड बुक सोसायटी का प्रभाव बुन्देलखण्ड में पड़ा। इस समय छापाखाना का विकास हो चुका था और आवागमन की सुविधाओं का विस्तार भी हो चुका था। कलकत्ता में क्रिश्चियन धर्म की किताबों का अनुवाद और मुद्रण होता था। उसके पश्चात् ये सब पुस्तकें सम्पूर्ण उत्तर भारत में जिसमें बुन्देलखण्ड भी शामिल था, वितरण और बिक्री को भेज दी जाती थीं। सन् 1856 में श्री ख्रीष्ट चरित्र दर्पण अथवा ह्रदय मण्डल के सत्य सूर्य का वर्णन प्रकाशित हुआ। इसके लेखक बिशप थॉमस वाल्पी थे। ये फ्रांस के रहने वाले थे। इन्होंने हिन्दी कविता में येशु चरित्र लिखा। इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

"परमेश्वर के गावें हम गुण और धन्यवाद।
वह परमात्मा अनन्त और अनाद।।
सब वस्त से स्वतन्त्र और सब का आधार।
स्वयंभु अद्वैत है अद्रष्ट निराकार।।
सृष्टि कर्त्ता सर्वरक्षक और शक्तिमान।
सर्वज्ञानी पवित्र और न्याई महान्।।
वह असम और अगम गुन सागर अपार।
वह सब का है दाता और त्रान करके हार।।" [85]

अनेक विदेशी साहित्यकारों ने हिन्दी को अपना योगदान दिया है। इनमें जॉन मरडोक, जोसेफ वारेन, आदि विद्वानों ने विविध विषयों पर पुस्तक स्रजित की। इलाहाबाद मिशन प्रेस के माध्यम से लगभग 60 पुस्तकें प्रकाशित की गयीं। इनका प्रकाशन सन् 1875 से प्रारम्भ हुआ। इनमें प्रमुख पुस्तकें इस प्रकार हैं – 1– गीत और भजन, 2– जबूर और गीत, 3– सत्य शतक, 4– अरूणोदय, 5– बणिया धर्म, 6– इतिहास मुक्तावली, 7– रत्नहार, 8– हिन्दू तीर्थावली,

9– प्रश्नोत्तर धर्म के विषय में, 10– रामकृष्ण पंथ की कथा, 11– केशवराम की कथा, 12– लोहू से मोल लिया हुआ, 13– श्रेष्ठ मार्गी, 14– पूर्ण प्रेम, 15– खीष्ट चरितामृत, 16– अद्‌भुत चरित्र दर्पण, 17– प्रभु येशु के कई द्रष्टान्त, 18– सतमत का मार्ग, 19– धर्म्मज्ञान, 20– सुन्दर पगड़ी इत्यादि।

इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों की अभिरूचि हिन्दी के प्रति उत्पन्न हुयी।

इधर बुन्देलखण्ड निवासियों की दिलचस्पी अंग्रेजी भाषा सीखने की हुयी तथा उन्होंने विभिन्न शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से अंग्रेजी भाषा का गहन अध्ययन किया तथा अंग्रेजी साहित्यकारों के प्रति उनकी अभिरूचि बढ़ी। मुख्य रूप से चाउसर, विलियम, शेक्सपीयर, चार्ल्स डिकेन, जॉन मिल्टन, विलियम वर्ड्स वर्थ, पी0बी0 शैली, जॉन कीट्स, लॉर्ड वाइरन, थॉमस ग्रे, लॉर्ड टेनिसन, रॉबर्ट ब्रॉउनिंग, मैथ्यू एरनोल्ड, रूपर्ट ब्रोक, रॉबर्ट ब्रिज जैसे कवियों, नाटककारों और उपन्यासकारों का अंग्रेजी साहित्य यहाँ के व्यक्तियों द्वारा पढ़ा गया। इसके अतिरिक्त अनेक निबन्धकारों का साहित्य बुन्देलखण्ड के निवासियों ने पढ़ा। ए0जी0 गार्डिनर, मैक्स बीरबोहम, जॉन मार्ले, ई0वी0 लाकस, रॉबर्ट लाइन्ड, स्टीफेन लीलाक, पर्ल एस0बक, सी0ई0एम0 जॉड, बर्टेन्ड रसिल, पैट्रिक प्रिंगल, नेविले कार्डस, ओ0 हेनरी, फ्रॉसिन बेकन, रिचर्ड स्टील, जोसिफ एडीसन, ऑलिवर गोल्डस्मिथ जैसे निबन्धकारों के निबन्ध बुन्देलखण्ड के उन व्यक्तियों ने पढ़े जिन्होंने अंग्रेजी साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया। उनका यह मानना था कि लेखन शैली, विषय सामग्री और भाषा की दृष्टि से अंग्रेजी साहित्य और बुन्देलखण्ड के हिन्दी साहित्य में व्यापक अन्तर है। इसलिए एक–दूसरे के साहित्य का प्रभाव भी एक–दूसरे पर पड़ा।

1857 की क्रांति के पश्चात् अंग्रेजों के प्रति दो प्रकार की धारणाएँ बनीं। एक धारणा अंग्रेजों के विपरीत थी क्योंकि उन्होंने भारत वर्ष को गुलाम बनाया था। यहाँ के उद्योग–धन्धों को नष्ट किया था और व्यक्तियों का आर्थिक शोषण करके अपना कोष सुदृढ़ किया। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य में इस प्रकार मिलता है :

"अंग्रेज राज सुखा–साज बड़ो सुखकारी
पै धन विदेश चलो जात यह है ख्वारी।"

इसके अतिरिक्त उन्होंने अंग्रेजी राज्य को अन्धेर नगरी का राज्य बतलाया।

"अन्धेर नगरी चौपट राजा।
टके शेर भाजी, टके शेर खाजा।"

इसी समय अंग्रेजों से व्यथित होकर सर सुन्दर लाल ने सन् 1882 में 'भारत में अंग्रेजी राज' नामक पुस्तक लिखी। जिसे अंग्रेजों ने जब्त कर लिया था तथा इसका प्रकाशन आजादी के बाद भारत सरकार ने कराया था। विनायक दामोदर सावरकर ने भी अंग्रेजों के अन्याय से व्यथित होकर सन् 1907 में *'1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर'* नामक ग्रन्थ की रचना की। इस समय अंग्रेजों के खिलाफ लिखना एक बहुत बड़ी साजिश थी। विनायक दामोदर को इसका दण्ड भी भुगतना पड़ा।

अंग्रेजों के प्रभाव के कारण भाषा में व्यापक परिवर्तन हो रहा था। 19वीं शताब्दी में राजनीतिक आर्थिक और धार्मिक आन्दोलन जोर पकड़ रहे थे तथा इसी समय खड़ी बोली का प्रयोग गद्य और कविता दोनों में प्रारम्भ हो गया था। लेकिन राजस्थानी और ब्रजभाषा में लिखी गयी किताबों का गद्य में अनुवाद भी हो रहा था। इस समय हिन्दी गद्य में राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द, राजा लक्ष्मण सिंह के प्रभाव के कारण कुछ लोग हिन्दी के साथ ऊर्दू और अरबी के शब्दों का प्रयोग करते थे और कुछ लोग हिन्दी के साथ संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते थे। इस समय "एक

निर्धन, पराधीन, अशिक्षित, अन्ध–परम्पराओं से संवेष्टित देश के जीवन के प्रसंग में उचित ही था। लोकमान्य तिलक, श्रीमति एनी बेसेण्ट, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, लाला लाजपत राय, योगी अरविन्द, रमण महर्षि, महात्मा गाँधी आदि भारत के आधुनिक निर्माताओं ने उपनिषदों और गीता पर आधारित यही सेवा धर्म ग्रहण किया, उसका प्रचार एवं प्रसार किया। बहु देववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद पर बल दिया गया। भारत के प्राचीन गौरव के प्रति निष्ठा उत्पन्न होना तो ऐसी परिस्थिति में स्वाभाविक ही था।[86]

इस युग में साहित्य में निम्न परिवर्तन हुए –

1. __साहित्य की विषय सामग्री में परिवर्तन__ – अभी तक जो साहित्य लिखा जाता रहा है वह साहित्य श्रृंगार विषयक साहित्य था। जो राजा–महाराजाओं और जागीरदारों की चाटुकारिता में लिखा जा रहा था, किन्तु अब साहित्य का कलेवर बदला और मुख्य रूप से राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना, श्रृंगारिकता, प्रकृति चित्रण, हास्य–व्यंग, रीति–निरूपण, समस्या पूर्ति, काव्यानुवाद आदि विषयों पर साहित्य स्रजन किया गया।

भारतेन्दु की 'विजयिनी विजय वैजयन्ती', प्रेमघन की 'आनन्द अरूणोदय', प्रतापनारायण मिश्र की 'महापर्व' और 'नया संवत' तथा राधाकृष्ण दास की 'भारत बारहमासा' और 'विनय' शीर्षक कविताएँ देशभक्ति की प्रेरणा से युक्त है। इस सन्दर्भ में उन्होंने अपने प्रति पाद्य को कहीं व्यंग्योक्तियों के माध्यम से प्रकट किया है, तो कहीं अतीत के प्रेरणादायी प्रसंगों की चर्चा द्वारा नवयुवकों को पुनर्जागरण का मन्त्र दिया है। अंग्रेजों की शोषण–नीति का भारतेन्दु द्वारा प्रत्यक्ष उल्लेख इस भावना की चरम परिणति है :

भीतर भीतर सब रस चूसै, हँसि हँसि के तन मन धन मूसै।
ज़ाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि सज्जन! नहिं अंग्रेज।।[87]

सामाजिक चेतना भी स्पष्ट रूप से इस युग के काव्य में दिखलायी देती है तथा इसी युग में व्यर्थ में भक्ति–भावना की आलोचना भी की गयी है। कुछ लोगों ने हिन्दी, ऊर्दू मिश्रित भक्ति काव्य को प्रोत्साहित किया। तथा श्रृंगारिकता भी नया स्वरूप धारण करके आयी।

अब यों उर आवत है सजनी, मिलि जाऊँ गरे लगि कै छतियाँ।
मन की करि भांति अनेकन और मिलि कीजिए री रस की बतियाँ।।
हम हारि अरि करि कोटि उपाय, लिखि बहु नेह भरी पतियाँ।
जगमोहन मोहनी मूरति के बिना कैसे कटें दुख की रतियाँ।।[88]

इसके साथ–साथ प्रकृति चित्रण, हास्य–व्यंग की साहित्य की विषय सामग्री में शामिल किए गए हैं।

जग जानै इंगलिश हमैं वाणी वस्त्रहि जोय।
मिटै बदन कर श्याम रंग जन्म सुफ तब होय।।

(प्रतापनारायण मिश्र)

कुछ कविगण पुरानी काव्य शैली में रचना करते रहे। उन्होंने पिंगल शास्त्रों का अनुसरण किया तथा काव्य कला पक्ष और भाव पक्ष दोनों रूपों में मुखरित हुआ। बुन्देलखण्ड के कुछ कवि प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते रहे जबकि मैथिलीशरण गुप्त जैसे महाकवि ने अपने विषय सामग्री में व्यापक परिवर्तन किया। यह परिवर्तन गद्य और पद्य दोनों की विषय सामग्री में हुआ।

2. __लेखन शैली में परिवर्तन__ – ब्रिटिश शासन के पूर्व हिन्दी काव्य तथा साहित्य की अन्य विधाएँ पिंगल शास्त्र का अनुकरण कर रहीं थी किन्तु ब्रिटिश युग के पश्चात् लेखन शैली में व्यापक

परिवर्तन हुआ। कविता जो ब्रज भाषा में लिखी जाती थी अब वह खड़ी बोली में लिखी जाने लगी। यद्यपि प्रारम्भिक खड़ी बोली का स्वरूप बहुत उत्तम कोटि का नहीं था। व्याकरण की दृष्टि से यह भाषा शुद्ध नहीं थी। इसमें कहीं–कहीं ऊर्दू, अरबी और संस्कृत के शब्द प्रयुक्त होते थे तथा छन्द विधान पिंगल शास्त्र के अनुकूल न होकर स्वतन्त्र छन्द विधान पर आधारित थे। मुख्य रूप से भारतेन्दु युग में पुरातन और नवीन दोनों शैली का सामंजस्य हुआ। इसलिए कहीं तो उसमें रीति युग का प्रभाव दिखता है और कहीं भक्ति कालीन आदर्शवाद के दर्शन होते हैं। प्रेम काव्य, दास्य भक्ति और माधुर्य भक्ति पर नवीन शैली की रचनाएँ लिखीं गयी। गद्य रचना में निबन्ध के दर्शन प्रारम्भिक रूप में हुए। प्रारम्भिक गद्य लेखकों में राजा लक्ष्मण सिंह, राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द तथा श्रद्धाराम फुल्लौरी के निबन्ध व्यंग्यात्मक निबन्ध थे। इसमें विषय की प्रधानता न होकर व्यंग्य की प्रधानता थी।

इस युग में जो भी नाटक लिखे गए उनमें प्रारम्भ में संस्कृत नाट्य शैली का अनुकरण किया गया किन्तु बाद में पारसी नाट्य शैली का अनुसरण हुआ। इन नाटकों में वार्तालाप के अतिरिक्त शेर और शायरी, कविता–गज़ल भरी पड़ी है। इस समय अभिज्ञान शाकुन्तला, आनन्द रघुनन्दन, रामकरूणाकर हुनमान नाटक आदि की रचना की गयी। ये नाटक सुखान्त और दुःखान्त दोनों प्रकार के थे तथा इनके रचनाकार प्राणचन्द्र चौहान, नेवाज, महाराजा विश्वनाथ सिंह, रघुराय नागर, उदय आदि उत्तम कोटि के नाटककार थे। इनमें अनेक नाटक अभिनीत भी हुए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी अनेक नाटकों की रचना की तथा अनेक संस्कृत नाटकों का अनुवाद भी हुआ। इसके अतिरिक्त 'नीलदेवी', *'संयोगिता स्वयंवर'*, *'अमर सिंह राठौर'*, और *'महाराणा प्रताप'* जैसे नाटक नई शैली में लिखे गए किन्तु इनकी भाषा प्रतीक वादी नहीं थी।

अंग्रेजी–नाटकों के सम्पर्क में आने का ही परिणाम था कि लाला श्री निवासदास ने *'रणधीर और प्रेममोहिनी'* नामक दुःखान्त नाटक की रचना की। इसके सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है : "रणधीर और प्रेममोहिनी नाम की *'रोमियो एण्ड जुलियट'* की ओर ध्यान ले जाता है।" यह संस्कार–संक्रमण का महत्वपूर्ण कार्य संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी–अनुवादों के कारण ही हुआ।[89]

इससे स्पष्ट है कि नाटकों की शैली में पाश्चात्य नाटकों के प्रभाव के कारण व्यापक परिवर्तन हुआ। इस युग में अनेक उपन्यासों की भी रचना हुयी। इसके पहले हिन्दी साहित्य में उपन्यासों का लेखन नहीं होता था। बंगला उपन्यासकारों ने अंग्रेजी के प्रभाव से उपन्यास लिखे और बंगला उपन्यासकारों के प्रभाव से हिन्दी उपन्यासकारों ने उपन्यास लिखे। श्रीनिवास दास, किशोरी लाल गोस्वामी, लालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधा कृष्णदास, लज्जा राम शर्मा, देवकी नन्दन खत्री, गोपाल शर्मा (गहमरी) आदि प्रारम्भिक उपन्यासकार थे। इस युग में ऐतिहासिक तिलस्मी–ऐयारी, जासूसी और रोमानी उपन्यास लिखे गए। धीरे–धीरे ये उपन्यास समाज की समस्याओं को लेकर लिखे गए। राधाकृष्ण दास कृत 'निस्सहाय हिन्दू' और लज्जाराम शर्मा कृत *'धूर्त रसिक लाल'* और स्वतन्त्र रमा, परतन्त्र लक्ष्मी आदि उपन्यास लिखे गए। ऐतिहासिक उपन्यास केवल बहुत काल बाद डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा ने लिखे। झाँसी की रानी, मृगनयनी, गढ़कुण्डार जैसे उपन्यास पाठकों को अत्यन्त लुभावने लगे।

3. भाषाओं में परिवर्तन – अंग्रेजों के आगमन के बाद सबसे बड़ा परिवर्तन भाषा के दृष्टिकोण से साहित्य में हुआ। भाषा ने अपना जीर्ण–शीर्ण और परम्परागत वस्त्र उतारकर फेंक दिया और उसके स्थान पर नवीन और आकर्षक वस्त्र धारण किया। इस युग में हिन्दी व्याकरण की रचना

हुयी तथा साहित्यकारों को शुद्ध लेखन विधा का बोध कराया गया। स्थानीय बोलियों के स्थान पर खड़ी बोली को प्रमुखता प्रदान की गयी क्योंकि पढ़े–लिखे व्यक्ति खड़ी बोली को दैनिक बोलचाल की भाषा में परिणित कर रहे थे। भाषा को परिमार्जित करने के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र शुक्ल और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने महत्वपूर्ण प्रयास किया। जिनके कारणों से परिमार्जित भाषा के दर्शन होने लगे। यह भाषा गद्य और पद्य दोनों क्षेत्र में अपनायी गयी।

4. नवीन विधाओं का उदय – हिन्दी साहित्य में पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से नवीन विधाओं का उदय हुआ। ये विधाएँ निम्नलिखित थीं–

1. नवीन नाटकों का उदय।
2. नवीन उपन्यास विधा का उदय।
3. नवीन कहानी विधा का उदय।
4. नवीन निबन्ध विधा का उदय।
5. नवीन आलोचना विधा का उदय।
6. आत्म–कथा विधा का उदय।
7. ज्ञान साहित्य विधा का उदय।
8. पत्र–पत्रिकाएँ के लेखन विधि का उदय।
9. नवीन काव्य शैली का उदय।

द्विवेदी युग में खड़ी बोली में काव्य की रचना हुयी तथा काव्य में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। यथा :

देशभक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।

राष्ट्रीय भावना के अतिरिक्त सामान्य मानवता के सिद्धान्त का वर्णन भी काव्य में हुआ। नीति और आदर्श भी काव्य के विषय बने। हास्य–व्यंग्य भी काव्य में समा गया। यथा –

भड़क भुला दो भूतकाल की, सजिए वर्तमान के साज।
फैशन फेर इंडिया भर के, गोरे गाड बनो ब्रजराज।।
गौर वर्ण वृषभानुसुता का, काढ़ो काले तन पर तोप।
नाथ उतारो मोर मुकुट को, सिर पै सजो साहिबी टोप।।
पौडर चन्दन पोंछ लपेटो, आनन की श्री ज्योति जगाय।
अंजन अँखियों में मत आँजो, आला ऐनक लेहु लगाय।।
खधर कानों में लटका लो, कुण्डल काढ़ मेकराफून।
तज पीताम्बर कम्बल काला, डाटो कोट और पतलून।।

इसके अतिरिक्त नयी काव्य शैलियों का उदय हुआ। छायावादी और रहस्यवादी काव्य की रचना जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने की तथा इस कविता का इतना प्रभाव पड़ा कि यह युग छायावादी युग के नाम से जाना जाने लगा। तथा इसके पश्चात् प्रगतिशील साहित्य की रचना हुयी। इस साहित्य में कविता छन्द मुक्त हो गयी तथा इसमें पिंगल शास्त्र का किसी प्रकार का अनुपालन नहीं किया गया। निराला जी ने अपने काव्य में स्वच्छन्द छन्दों को ही बल दिया और उसी की रचना की। इस परम्परा के कवियों में नागार्जुन और बाबू केदारनाथ अग्रवाल आते हैं। इन्होंने अपनी काव्य परम्परा में भी किसी छन्द का अनुसरण नहीं किया। इसी समय हरिवंश राय बच्चन ने हालावाद का शुभारम्भ किया और उन्होंने मधुशाला नामक

ग्रन्थ लिखा। इसी के साथ–साथ प्रयोगवादी रचनाओं का भी उदय हुआ। यज्ञेय इस प्रकार की रचना के सूत्रधार थे। कुछ कविताएँ आधुनिक गीत शैली में लिखीं गयीं। रामेश्वर सुख अंचल, भगवती चरण वर्मा, आरसी प्रसाद सिंह और गोपाल सिंह नेपाली ने स्वतन्त्र काव्य लिखकर कविता को नवीन स्वरूप प्रदान किया। इसी समय मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहन लाल द्विवेदी और श्यामनारायण पाण्डेय ने उत्कृष्ठ रचनाएँ कीं।

इस प्रकार अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् साहित्य विधाओं में परिवर्तन हुआ। साहित्य का पूरा कलेवर परिवर्तित हो गया तथा लोगों का सोचने का दृष्टिकोण भी बदला। कवि असहाय व्यक्तियों से संवेदना रखने लगा और उसने अपने काव्य का विषय ऐसे ही व्यक्तियों को बनाया।

चेहरे थे असंख्य
आंखे थीं
दर्द सभी में था
जीवन का दंश सभी ने जाना था
पर दो
केवल दो
मेरे मन में कौंध गयीं
मैं नहीं जानता किसकी वे आंखे थीं
नहीं समझता फिर उनको देखूंगा
परिचय मन ही मन चाहा हो उद्यम कोई नहीं किया
किन्तु उसी की कांध
मुझे फिर फिर दिखलाती है।

X X X

वही परिचित दो आंखे ही
चिर माध्यम हैं
सब आंखों से सब दर्दो से
मेरे चिर परिचय का।[90]

बाबू केदारनाथ अग्रवाल का एक व्यंग्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण दिखलायी देता है क्योंकि उसमें वर्तमान परिस्थितियों पर व्यंग कसा गया है –

"व्यास मुनि को धूप में रिक्शा चलाते देखता हूँ।
शचि सैव्या और द्रोपदी को रूप की दूकान खोले देखता हूँ।"

X X X

कक्कू पहने हैं सरताज और छोटू हैं मंत्री महाराज।

1947 तक जिस साहित्य की रचना हुयी वह अंग्रेजों और उसके शासन के विरुद्ध था किन्तु कुछ साहित्य ऐसा भी था जिसे राजनीति से कुछ लेना–देना नहीं था। छायावादी गीत और व्यक्तिवादी काव्य का राजनीति से कोई संबन्ध नहीं था। वह हृदय के भावनओं की अभिव्यक्ति सीधे–साधे ढंग से करता था। सुमित्रानन्दन पंत और निराला के गीत प्राकृतिक सौन्दर्य और हृदय से निकले प्रेम की अभिव्यक्ति के समन्वय प्रतीत होते हैं तथा जीवन के यथार्थ को इस प्रकार व्यक्त करते हैं :

खोलता इधर जन्म लोचन
मूँदती उधर मृत्यु क्षण–क्षण;

अभी उत्सव और हास हुलास,

अभी अवसाद, अश्रु उच्छ्वास!

अचिरता देख जगत् की आप

शून्य भरता समीर निः श्वास,

डालता पातों पर चुपचाप

ओस के आंसू नीलाकाश;

सिसक उठता समुद्र को मन

सिहर उठते उडुगन!

इसी प्रकार सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला भी अपना भावाभिव्यक्ति संध्या सुन्दरी को संबोधित करते हुए, करते हैं –

दिवसावसान का था समय

मेघमय आसमान से उतर रही है

वह संध्या–सुंदरी परी–सी

धीरे–धीरे धीरे

तिमिराञ्चल में चञ्चलता का नहीं कहीं आभास,

मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर, –

किन्तु जरा गम्भीर, – नहीं है उसमें हास–विलास।

काव्य विधा में हुए परिवर्तन एक ओर व्यक्तिगत जीवन से जुड़े हुए हैं तो दूसरी ओर वर्तमान परिवेश से प्रभावित भी है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. *(When any theory or imagination is changed into practice then it is converted into an art.)* शिवदान सिंह चौहान, द्वन्दात्मक भौतिकवाद।
2. *(Under the patronage of the Gurjara - Pratiharas a new style of plastic art was evolved in their vast kingdom which included parts of Gujarat. Rajasthan, Central India and Ganga-Yamuna valley. It has common characteristics usually devoid of domination of regional out look. Several traditions of classical age were continued and artists tried their best to emulate the aesthetics of the Gupta art.)* Dr. S.D. Trivedi, "The Jarai Temple At Barwa Sagar." The Government Museum. Jhansi, 1985, Page - 26
3. डॉ0 एस0डी0 त्रिवेदी, "बुन्देलखण्ड का पुरातत्व", राजकीय संग्रहालय झाँसी, 1984, पृष्ठ– 68।
4. केशव चन्द्र मिश्र, "चन्देलों का राजत्व काल", वाराणसी 1974, पृष्ठ– 223।
5. पारसी ब्राउन, "इण्डियन आर्किटेक्चर", बॉम्बे, 1949, पृष्ठ– 1।
6. हिन्दी विश्व कोष, भाग– 21, पृष्ठ– 237।
7. वही, पृष्ठ– 238।
8. वृहत् संहिता, अध्याय– 51–52।
9. केशव चन्द्र मिश्र, "चन्देलों का राजत्व काल", वाराणसी 1974, पृष्ठ– 229।
10. डॉ0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, "चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास", पृष्ठ– 211।
11. आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग– 2, पृष्ठ– 415।
12. वही, भाग– 2, पृष्ठ– 415–440।
13. अबुल फज़ल, "आइने–अकबरी", भाग– 2, पृष्ठ– 29।
14. आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग– 21, पृष्ठ– 20।
15. अलबरूनी, "मेम्वायर्स ऑफ महमूद ऑफ गजनी", पृष्ठ– 322।
16. डॉ अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, "चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास", पृष्ठ– 215।
17. आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग– 21, पृष्ठ– 20।
18. वही, भाग– 21, पृष्ठ– 46–56।
19. हिन्दू टेम्पुल, भूमिका।
20. ए गाइड टू खजुराहो, भूमिका।
21. डॉ अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, "चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास", पृष्ठ– 193।
22. आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग– 2, पृष्ठ– 419–437।
23. वही, भाग– 21, पृष्ठ– 172–173।
24. डॉ अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, "चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास", पृष्ठ– 207।
25. आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग– 2, पृष्ठ– 434 ; भाग– 7, पृष्ठ– 40–41–48 ; भाग– 10, पृष्ठ– 92–93–96 ; भाग– 21, पृष्ठ– 172–173।
26. वही, भाग– 2, पृष्ठ– 443–444 ; भाग– 7, पृष्ठ– 39 ; भाग– 10, पृष्ठ– 97।
27. आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग– 2, पृष्ठ– 429।

28. केशव चन्द्र मिश्र, ''चन्देलों का राजत्व काल'', वाराणसी 1974, पृष्ठ– 249।
29. डॉ0 एस0डी0 त्रिवेदी, ''बुन्देलखण्ड का पुरातत्व'', राजकीय संग्रहालय झाँसी, 1984, पृष्ठ– 44।
30. आर्थस सूफम पोप, ''सम इण्टर रिलेशंस बिटवीन पर्सियन एण्ड इण्डियन आर्किटेक्चर'' इण्डियन आर्ट्स एण्ड लेटर्स, भाग– 9, दिल्ली सल्तनत, 1935 ई0, पृष्ठ– 326।
31. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, ''मध्यकालीन भारतीय संस्कृति'', शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1976, पृष्ठ– 128।
32. सतीश चन्द्र, ''मध्य कालीन भारत (सल्तनत से मुगल काल तक) प्रथम भाग : दिल्ली सल्तनत (1206–1526 ई0)'', जवाहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, संस्करण– 1998, पृष्ठ– 234।
33. बाबरनामा, ''कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया'', भाग– 4, पृष्ठ– 523।
34. मानसार, अध्याय– 10, श्लोक संख्या– 90–103।
35. अग्निपुराण, अध्याय– 222, श्लोक– 1–6, पृष्ठ– 348।
36. *(A)* अग्निपुराण, पृष्ठ– 119–139, *(B)* गरूण पुराण, अध्याय– 46।
37. रिचर्ड ब्राउन, ''द हिस्ट्री ऑफ इण्डियन आर्ट एण्ड स्कल्पचर'', पृष्ठ– 93।
38. योहन 4 : 24।
39. जे0एच0 आनन्द, ''बाइबिल धर्म विज्ञान शब्दकोश'', पृष्ठ– 94–100।
40. *(All over the region of Bundelkhand, there are hundreds of rock-shelters which contain innumerable archaic paintings on the rear walls and ceilings of late, Indian and foreign scholars have evinced keen interest on the subject and brought to light a large number and variety of themes painted inside the dingy atmosphere of such early rock-shelters scattered over the Vindhyan range of mountains. The paintings are invariably done with the mineral colours which are found locally and the treatment of paintings is very naive and primitive.)* M.L. Nigam, "Cultural History of BundelKhand (3rd B.C. to A.D. 650)", Sundeep Prakashan Delhi, 1983, Page - 173-174.
41. *(And so we conclude that the artists were among the ancestors of some of the present day tribal people of Central India who sustained a shelter painting tradition for several thousand years, until the increasing pressures of more advanced cultures forced them to abandon their rock shelters and forget their painting, or transfer a greatly altered reminiscence of it to other surfaces and materials.)* *V.S. Wakankar* & Brooks Robert, "R.R. stone Age Painting in India", Bombay : 1976, Page - 21.
42. पारसी ब्राउन, ''इण्डियन पेण्टिंग'', 1932, पृष्ठ– 15–17।
43. केशव चन्द्र मिश्र, ''चन्देल और उनका राजत्व काल'', पृष्ठ– 251।
44. डॉ0 एस0डी0 त्रिवेदी, ''बुन्देलखण्ड का पुरातत्व'', राजकीय संग्रहालय झाँसी, 1984, पृष्ठ– 63।
45. ओरछा के लक्ष्मी मन्दिर में उपलब्ध अंग्रेजों के चित्र। दालान संख्या– 4।
46. एस0डी0 त्रिवेदी, ''बुन्देलखण्ड का पुरातत्व'', पृष्ठ– 70।

47. भारत कला भवन का सूची पत्र (काशी नागरी प्रचारणी सभा) संख्या– 167, पृष्ठ– 83।
48. राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली, प्रदर्श्य संख्या– 51, 34/12।
49. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, ''मध्यकालीन भारतीय संस्कृति'', शिवलाल अग्रवाल आगरा, 1976, पृष्ठ– 237।
50. वही।
51. कृष्ण मिश्र, ''प्रबोध चन्द्रोदय'', निर्णय सागर प्रेस, पृष्ठ– 187।
52. दीवान प्रतिपाल सिंह, ''बुन्देलखण्ड का इतिहास'', प्रथम भाग, संस्करण– सन् 1929 काशी, पृष्ठ– 127।
53. दीवान प्रतिपाल सिंह, ''बुन्देलखण्ड का इतिहास'', प्रथम भाग, संस्करण– सन् 1929, पृष्ठ– 126।
54. वही, पृष्ठ– 129।
55. दीवान प्रतिपाल सिंह, ''बुन्देलखण्ड का इतिहास'', प्रथम भाग, संस्करण– सन् 1929, पृष्ठ– 129।
56. *(We praised the carpenters for their artistic work because they have given new shape to the wood according to our desire and need)* ई०टी० एटकिंसन, ''स्टैटिस्टिकल, डेस्क्रेप्टिव एण्ड हिस्टॉरिकल एकाउन्ट्स ऑफ दि नार्थ– वेस्टर्न प्राविन्सेज ऑफ इण्डिया'', भाग– 1 बुन्देलखण्ड, इलाहाबाद, 1974, पृष्ठ– 197।
57. बसन्त, ''संगीत विशारद'', संगीत कार्यालय, हाथरस, संस्करण– 1997, पृष्ठ– 12।
58. *(A)* कुरआन शरीफ, सूरः बनी इस्राईल, हज़रत मूसा और नूह का वर्णन, पृष्ठ– 447।
(B) बाइबिल, पुराना नियम, निर्गमन 4–7।
59. फ्रायड, द्वन्दात्मक भौतिकवाद।
60. कृष्ण मिश्र, ''प्रबोध चन्द्रोदय'', निर्णय सागर प्रेस, पृष्ठ– 123।
61. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, ''अभिनव–नाट्यशास्त्र'', पृष्ठ– 173–174।
62. बसन्त, ''संगीत विशारद'', पृष्ठ– 21–22।
63. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, ''मुगल कालीन–भारत'', आगरा, 1981, पृष्ठ– 554–555।
64. सैय्यद अहमद मगरबी, ''बाँदा का सौहार्दपूर्ण सांस्कृतिक विरासत'', स्वर्णमा (पत्रिका)।
65. डॉ० रामस्वरूप ढेंगुला, ''बुन्देलखण्ड का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन'', संस्करण– 1987, प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ– 166।
66. संगीत रत्नाकर।
67. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, ''मध्यकालीन भारतीय संस्कृति'', संस्करण– 1973, प्रकाशन आगरा, पृष्ठ– 231–232।
68. अयोध्या प्रसाद 'कुमुद', ''लोक संस्कृति'', संस्कृति विभाग उत्तर प्रदेश, पृष्ठ– 106।
69. रामचन्द्र शुक्ल, ''हिन्दी साहित्य का इतिहास'', पृष्ठ– 4–6।
70. केशव चन्द्र मिश्र, ''चन्देलों और उनका राजत्व काल'', वाराणसी, 1974, पृष्ठ– 213।
71. रामचन्द्र शुक्ल, ''हिन्दी साहित्य का इतिहास'', पृष्ठ– 39।
72. ए०बी० कीथ, ''हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर'', पृष्ठ– 219।
73. पी०वी० काणे, ''हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्राज'', भाग– 2, पृष्ठ– 247, 276।
74. चिन्तामणि विनायक वैद्य, ''हिस्ट्री ऑफ मेडिविल हिन्दू इण्डिया'', भाग– 3, पृष्ठ– 474।

75. गौरी शंकर द्विवेदी 'शंकर', ''बुन्देल वैभव'', भाग– 1, पृष्ठ– 62।
76. कृष्ण दास, ''बुन्देलखण्ड के कवि'', पन्ना, वि०सं०– 2025, पृष्ठ– 114।
77. कृष्ण दास, ''बुन्देलखण्ड के कवि'', पृष्ठ– 50।
78. सन्त तुलसीदास, ''गीतावली''।
79. डॉ० रामस्वरूप ढेंगुला, ''बुन्देलखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन'', गोविन्द नगर कानपुर, 1987, पृष्ठ– 193–194।
80. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, ''मध्यकालीन भारतीय संस्कृति'', आगरा, 1973, पृष्ठ– 230।
81. शायर अकबर, झाँसी, सन् 1804।
82. हारमोनियम मास्टर, प्रकाशन– लाला नवल किशोर, लखनऊ, संस्करण– 1892, पृष्ठ– 146।
83. डॉ० अयोध्या प्रसाद 'कुमुद', ''लोक संस्कृति'', संस्कृति विभाग उ०प्र० सरकार, संस्करण– 2002, पृष्ठ– 73।
84. वही, पृष्ठ– 75।
85. डॉ० जे०एच० आनन्द, ''पाश्चात्य विद्वानों का हिन्दी साहित्य'', कृष्णा ब्रदर्स अजमेर, 1982, पृष्ठ– 197।
86. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, ''हिन्दी साहित्य का इतिहास'', लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ– 235।
87. डॉ० नगेन्द्र, ''हिन्दी साहित्य का इतिहास'', नेशनल पब्लिशिंग, इलाहाबाद, 1976, पृष्ठ– 460।
88. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेम सम्पत्तिलता।
89. डॉ० नगेन्द्र, ''हिन्दी साहित्य का इतिहास'', नेशनल पब्लिशिंग, इलाहाबाद, 1976, पृष्ठ– 482।
90. हीरानन्द सच्चिदानन्द वात्सायन अज्ञेय।

अध्याय षष्ठम्

अध्याय– 6

✳ बुन्देलखण्ड में मसीही धर्म का सामाजिक, आर्थिक जीवन पर प्रभाव

: *मसीही धर्म के आगमन के पूर्व बुन्देलखण्ड के निवासियों की स्थिति – सामाजिक व्यवस्था, रहन–सहन का स्तर, पहनावा, सामाजिक संस्कार, लोक आचरण, भाषा एवं आमोद–प्रमोद के संसाधन।*

: *मसीही धर्म के आगमन के पश्चात् बुन्देलखण्ड के निवासियों की स्थिति – सामाजिक व्यवस्था, रहन–सहन का स्तर, पहनावा, सामाजिक संस्कार, लोकाचरण, भाषा एवं आमोद–प्रमोद के संसाधन।*

: *मसीही धर्म के आगमन के पूर्व बुन्देलखण्ड के निवासियों की आर्थिक दशा– कृषि, खनिज–सम्पदा, व्यापार।*

: *मसीही धर्म के आगमन के पश्चात् बुन्देलखण्ड के निवासियों की आर्थिक दशा– कृषि, खनिज–सम्पदा, व्यापार।*

: *अंग्रेजों की कर नीति का बुन्देलखण्ड के निवासियों के उद्योगों एवं कृषि पर प्रभाव।*

: *बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासनकाल की आर्थिक एवं वैज्ञानिक उपलब्धियाँ।*

अध्याय – 6

बुन्देलखण्ड में मसीही धर्म का सामाजिक, आर्थिक जीवन पर प्रभाव

जब दो व्यक्ति अथवा दो परिवार या दो समाज जो एक–दूसरे से अपरिचित होते हैं और जब वे एक–दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, तो कुछ कटु और मधुर अनुभवों का आदान–प्रदान करते हैं। दोनों एक–दूसरे को समझने का प्रयत्न करते हैं और एक–दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। इस प्रकार मिली जुली संस्कृतियों का उदय होता है। भारत वर्ष अथवा बुन्देलखण्ड में यहाँ के निवासी विदेशी जातियों से अपरिचित थे। ये लोग द्रविड़ जाति के थे और प्राकृतिक धर्म का अनुपालन करते थे। सर्वप्रथम इनका परिचय आर्य जाति से हुआ। आर्य जाति के लोग पश्चिमोत्तर एशिया से भारत वर्ष आए थे। इन्होंने अनार्यों पर अपना प्रभाव छोड़ा तथा अनार्यों ने भी अपना प्रभाव आर्यों पर डाला। इससे मिली–जुली संस्कृति का उदय हुआ। बहुदेववाद प्रकृति एवं पशु–पूजा का शुभारम्भ हुआ। कुछ काल पश्चात् यहाँ यूनानी, वैक्ट्रियन, शक, कुषाण और हूणों का आगमन हुआ। मुख्य रूप से मथुरा, एरण, विदिशा तथा कौशाम्बी में ऐसे ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं जिनसे इनके आने की पुष्टि होती है।

पूर्व मध्यकाल और मध्यकाल में तुर्कों और मुगुलों का आगमन यहाँ हुआ। बुन्देलखण्ड के लोग तुर्कों और अरबों से परिचित हुए। उन्होंने इस्लाम धर्म तथा अरबी और फ़ारसी भाषा का परिचय तुर्कों से प्राप्त किया। उनके दीन धर्म पहनावा का व्यापक प्रभाव भी बुन्देलखण्ड निवासियों पर पड़ा। दोनों ने एक–दूसरे को समझा, उनमें से कुछ ने इस्लाम धर्म को भी स्वीकार किया तथा कतिपय स्थानों में मस्ज़िदों का निर्माण किया गया। इस्लाम धर्म के लोग मूर्ति पूजा के घोर विरोधी थे, जबकि हिन्दू लोग मूर्ति–पूजा के समर्थक थे। मुसलमान लोग हिन्दुओं को काफ़िर कहा करते थे और इनके विरुद्ध जेहाद छेड़ने का आह्वाहन किया करते थे। इसके विपरीत हिन्दू लोग इनके विपरीत आचरणों के कारण और गो–मांस भक्षण के कारण इनसे नफरत करते थे। फिर भी दोनों में सामाजिक समरसता और मेल–जोल स्थापित हुआ।

सत्रहवीं शताब्दी के पश्चात् मसीही धर्मावलम्बियों का आगमन बुन्देलखण्ड में हुआ और वे बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक यहाँ बने रहे। 200 वर्षों के निवास के मध्य इनके सम्पर्क हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों से हुए। यहाँ के मूल निवासियों ने मसीही धर्म और उसके सिद्धान्तों को समझा तथा अपने धर्म और समाज के सन्दर्भ में मसीही धर्मावलम्बियों को जानकारी भी दी। इस प्रकार मिश्रित धर्म संस्कृति का विकास हुआ।

मसीही धर्म के आगमन के पूर्व बुन्देलखण्ड के निवासियों की स्थिति

बुन्देलखण्ड के निवासियों की सामाजिक व्यवस्था

मसीही धर्म के आगमन से पूर्व बुन्देलखण्ड में राजपूतों का शासन था जिनके संघर्ष एक–दूसरे से होते रहते थे। इस संघर्ष का मुख्य लाभ मुसलमानों ने उठाया। "आश्चर्य का विषय यह है कि मुसलमानों के आगमन और उनकें राज्य स्थापना के साथ ही समाज में एक दूसरी प्रक्रिया का दर्शन होता है। यह गति में विलोम और धारणा में अनुदार थी। सनातन औदार्य के अंक में एक ऐसी भावना का आविर्भाव हुआ जो संकीर्ण और वर्जनशील थी तथा जिसका विकास एकान्तता में होने लगा।"[1]

इस समय बुन्देलखण्ड का समाज चार वर्णों में विभाजित था। ये वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे। समाज में सर्वाधिक सम्मान ब्राह्मणों का था। ये समस्त धार्मिक और सामाजिक उत्सवों का सम्पादन कराते थे। इस समय जातीय व्यवस्था वंश के अनुकूल हो गयी थी। "ब्राह्मणों का प्राबल्य, जन्मना जाति निर्धारण की मान्यता तथा भोजन एवं विवाह–क्रियाओं में अंतर्जातीयता का बहिष्कार, क्रम से सभी रूढ़ होने लगे थे। इनमें से किसी पर भी प्राचीन शास्त्रों की सम्मति नहीं प्राप्त थी। इनका प्रवेश भी पर्याप्त संघर्ष के उपरान्त ही हुआ, जो पूरे राजपूत–युग में चलता रहा।[2] समाज में दूसरा स्थान क्षत्रियों का था। ये लोग सेना में प्रमुख भूमिका निभाते थे और राज्य का शासन चलाते थे। तीसरा स्थान वैश्यों का था तथा चौथा स्थान शूद्रों का था। तद्युगीन इतिहासकार इब्न खुर्दद्ब ने अपने लेखों में यह कहा है, "सात वर्ग के हिन्दू हैं। पहला सब्कुत्रिया, जो सर्वोच्च माने जाते हैं; इन्हीं में से राजा बनाए जाते हैं। दूसरे वर्गों के लोग इसके प्रति पूज्य भाव रखते हैं। दूसरे ब्राह्मण हैं, जो मदिरा और आमिष व पेयों से सर्वदा दूर रहते हैं। तीसरे क्षत्रिय हैं, जो तीन चषक से अधिक मद्य नहीं पीते हैं। ब्राह्मणों की कन्या उनको विवाह में नहीं दी जाती; किन्तु ब्राह्मण उनकी कन्या ग्रहण करते हैं। चौथे बैसुर हैं जो कृषि का ही व्यवसाय करते हैं। पांचवें शूद्र हैं जो शिल्प और गृह धंधों से जीविकोपार्जन करते हैं। छठें सण्डालिया हैं, जो निम्न कोटि के भृत्य कार्य करते है। सातवां लहुड है, जिनकी स्त्रियाँ आमरण–प्रिय और पुरूष विनोदी और चमत्कारिक खेलों के प्रेमी होते है।"[3]

ब्राह्मण के सम्मान के कुछ कारण और भी थे। मजूमदार ने इसके कारणों का परिशीलन करते हुए बतलाया है कि ब्राह्मणों की निरंकुशता अनिवार्य कारण थी, जिसने यह मान्यता ठहराई कि ब्राह्ममण माता–पिता से उत्पन्न सन्तान ही ब्राह्मण हो। ब्राह्मणों ने धीरे–धीरे किन्तु निरन्तर ऐसी स्थिति उत्पन्न की कि शेष वर्ण समाज में स्पष्ट रूप से हेय बनते गए और अधीन से बन गए।[4] प्रत्येक जाति में रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास संचालित थे। अल्बरूनी ने बुन्देलखण्ड में यहाँ के सामाजिक व्यवस्था का वर्णन किया है। यह वर्णन उस समय का है, जब महमूद गजनवी ने भारतवर्ष में आक्रमण किया था। महमूद ने भारतवर्ष की सभी अर्जित थाती और उसका सौन्दर्य सोलह आने नष्ट कर दिया और ऐसा झंझावत ला दिया जिसने हिन्दुओं को रजकण की भाँति बिखेर दिया। यही कारण है कि हिन्दुओं की विद्यायें एवं ज्ञान उस भूमि से जिसे हम लोगों ने विजित किया है बहुत दूर काशी जैसे स्थानों को चली गयी, जहाँ हम लोगों के हाथ नहीं पहुँच सकते।[5]

इस समय अनेक उपजातियों का उदय हुआ। पहले ये जातियाँ व्यवसाय परक थीं। बाद में यह जातियाँ वंश परम्परा के अनुसार बन गयीं। इस समाज की प्रत्येक जाति में परिवार का प्रमुख स्थान था। परिवार में उनके माता–पिता और सन्तानें रहती थीं, बाद में परिवार की जनसंख्या बढ़ती जाती थीं। तथा परिवार का मुखिया वयोवृद्ध व्यक्ति होता था। परिवार के सदस्य अपने पैतृक व्यवसाय से जुड़े हुए थे किन्तु कभी–कभी ये लोग दूसरे कार्य भी करते थे।

विवाह किसी भी समाज और जाति का प्रमुख सामाजिक उत्सव था किन्तु विवाह के सन्दर्भ में आयु सीमा निर्धारित नहीं थी और बाल–विवाह भी प्रचलित हो गए थे। ये विवाह अपने–अपने कुलों और जातियों के हिसाब से अलग–अलग होते थे। "पहले एक हिन्दू अपने वर्ण अथवा अपने से निम्न वर्ण की कन्या से विवाह कर सकता था, किन्तु हम लोगों के समय में एक ब्राह्मण अपने वर्ण के अतिरिक्त अन्य किसी वर्ण से विवाह–संबन्ध नहीं करता है। ऐसे प्रथम विवाहों की संतति माता की जाति की मानी जाती थी। हिन्दू अल्प–वय में ही विवाह कर देते हैं। विवाह की व्यवस्था माता–पिता करते हैं।[6] इस समय बाल–विवाह और बहु–विवाह का प्रचलन था किन्तु विधवा विवाह बहुत कम होते थे।

समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। इस समय पर्दा–प्रथा प्रचलित हो गया था तथा स्त्रियों पर उनके पतियों का नियन्त्रण रहता था तथा उन्हें अनेक नियमों का पालन करना पड़ता था। "नारी जाति समाज के लिए अभिशाप बन गयी–दुर्बलताओं, बुराइयों और अन्धविश्वासों का आगार। यह ईश्वर की बड़ी देन थी कि उस दुःखावस्था से दुर्गावती जैसी वीरांगना का उदय हुआ, जिसने पुरुषत्व को चुनौती देकर स्त्री जाति की प्रच्छन्न क्षमता का ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित किया। स्त्रियों में पर्दे का प्रचलन केवल उच्च परिवारों में था, वह भी शील के रूप में ही। वे सामाजिक कार्यो में निर्बाध भाग लेते थे – यद्यपि इस अवस्था में शीघ्रता के साथ परिस्थितियाँ बाधक होती जा रही थीं।[7] फिर भी स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान था। स्त्रियों का कार्य सन्तान को जन्म देना, उसका लालन–पालन करना तथा उन्हें सभ्य नागरिक बनाना था। अधिकांश लोग स्त्रियों को कायर और डरपोक मानते थे, किन्तु महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी सलाह ली जाती थी। अधिकांश स्त्रियाँ इस्लाम धर्म के प्रभाव के कारण पर्दे में रहने लगी थी।

रहन–सहन का स्तर

बुन्देलखण्ड के निवासी पूर्व मध्यकाल और मध्यकाल में अपनी एक सुनिश्चित स्तर के अन्तर्गत निवास करते थे तथा उनका यह स्तर पर्यावरण और प्रकृति के अनुसार विभाजित था। यह विभाजन संसाधन के स्तर, बुद्धि स्तर, कर्म स्तर और आर्थिक स्तर के आधार पर वर्गीकृत था। यह स्तर निम्न प्रकार का था :

1. राजा एवं सामन्त तथा धनी वर्ग – इस वर्ग में लोग शामिल थे जिनकी आर्थिक स्थिति और आय के स्रोत बहुत अच्छे थे। ये लोग भूमि के स्वामी व सामन्त एवं मालगुजार थे इनकी आय मालगुजारी, कृषि उपज एवं बड़े व्यवसाय से होती थी। इनके रहन–सहन का स्तर बहुत अच्छा था। ये ब्राह्मणों और बुद्धिजीवियों का सम्मान करते थे तथा घर में आने वाले अतिथि भी उनके आदर के पात्र थे।

2. व्यावसायी एवं मध्य वर्ग के कृषक – इन लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी थी किन्तु ये सामन्तों की तरह धनवान और आदर के पात्र नहीं थे। ये अपने व्यवसाय और अपनी कृषि उपज से अपने घर का खर्च चलाते थे तथा इनके घर का रहन–सहन का स्तर मध्य श्रेणी का था। इस स्तर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीन वर्णो के लोग आते थे। इनमें से अधिकांश व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त जातिगत कर्म करते थे तथा कुछ लोग अन्ध–विश्वास से भी ग्रसित थे और छुआ–छूत मानते थे।

3. निम्न जात एवं कुटीर उद्योग से जुड़े व्यक्ति – बुन्देलखण्ड के इस वर्ग में दर्जी, कुम्हार, लुहार, बढ़ई, सुनार, गड़रिया, अहीर तथा अन्य जाति के लोग आते थे। ये लोग कुटीर उद्योग, कृषि एवं छोटे–मोटे व्यवसायों से अपनी जीविका उपार्जित करते थे। इनकी आर्थिक स्थिति और रहन–सहन का स्तर बहुत अच्छा नहीं था। ये लोग दूसरों के लिए कार्य करते थे और उन्हीं पर निर्भर थे। कभी–कभी बड़े व्यावसायियों और सामन्तों के शोषण का शिकार इन्हें होना पड़ता था। ये लोग अपने व्यावसाय को परम्परागत तरीके से करते थे। इस वर्ग में पूर्णतया शिक्षा का अभाव था। इनका सामाजिक स्तर अच्छा नहीं था, ये लोग बहुदेव के उपासक, टोने–टोटके मानते थे तथा इनके घर मिट्टी और घास–फूस के बने होते थे।

4. त्याज्य एवं निम्न वर्ग – बुन्देलखण्ड में एक ऐसा वर्ग था जो निम्न जाति का था तथा जिससे लोग दूर रहना पसन्द करते थे। इस वर्ग में चर्मकार, डोम, बसोर तथा चाण्डाल आदि जातियाँ आती थीं। ये लोग घृणित कार्य करते थे जैसे मैला उठाना, सड़कों आदि की सफाई करना,

मरे जानवरों को उठाना और उनके चर्म को निकाला, चर्म से अनेक वस्तुओं को बनाना आदि इनके कार्य थे। इसलिए उच्च वर्ग के लोग इनसे नफरत करते थे और इनका छुआ पानी भी नहीं पीते थे।

कुछ ऐसी प्रथाएँ बुन्देलखण्ड में प्रचलित हो गयी थीं जिनसे बुन्देलखण्ड का सामाजिक स्तर गिरा और उस सामाजिक स्तर की निन्दा की जाने लगी। "कन्याओं का परिवार में आगमन एक भयंकर अभिशाप माना गया। उन्हें गौरव गिराने वाला माना गया। फलतः धीरे–धीरे लोगों में इसके निवारण का सुगम मार्ग कन्याओं का वध चल पड़ा। जन्म के साथ ही अथवा आगे चलकर उनको समाप्त कर देने की एक निन्दनीय प्रथा खड़ी होती दिखाई देती है। बुन्देलखण्ड में कन्या–वध जैसी प्रथा तो अंग्रेजों के आने के वर्षों बाद विधान से बन्द की गयी। ऐसी कठोर प्रवृत्तियों का प्रभाव आज भी वहाँ के नारी–समाज पर दिखाई पड़ता है।

इस मनोवृत्ति ने व्यापक रूप से पारिवारिक जीवन को विश्रृंखलित किया। समाज का आधा दायित्व वहन करने वाला वर्ग हेय होता गया। सामाजिक स्थिति का प्रभाव यहाँ तक बढ़ा कि स्त्रियाँ स्वाभाविक रूप से दुष्टा और पिशाचिनी मानी जाने लगीं। स्त्रियाँ ईर्ष्या–प्रसूत कही गयीं। पुरूष उनके चरित्र को सर्वदा संदिग्ध समझते थे।[8]

इस प्रकार समाज का नैतिक स्तर धीरे–धीरे गिरता चला गया।

<u>वेश–भूषा एवं पहनावा</u>

बुन्देलखण्ड के निवासियों की वेश–भूषा अन्य क्षेत्र के निवासियों से भिन्न थी। यहाँ स्त्रियों और पुरुषों की वेश–भूषा में व्यापक अन्तर था। 'लोग शरीर के अधो भाग में नीचे तक की लम्बी धोती, कुची ताला या परदनी पहनते थे। घुटन्ना पहनने की परिपाटी भी पुरानी है। दो धोती, पगड़ी सामान्य पोशाक था। अधो–वस्त्रों में पैजामे का प्रयोग प्रचलित होने लगा था। ऊर्ध्व वस्त्रों में पुरूष मिरजई और बगलबन्दी के ढंग का वस्त्र पहनते थे। स्त्रियाँ फतुही और अंगरखा पहनती थीं। स्त्रियों के अधोवस्त्र कई प्रकार के मिलते हैं। वे बहुधा रंगीन वस्त्र ही पहनती थीं।[9]

बुन्देलखण्ड के भाग में आभूषणों का प्रचलन उस समय अपेक्षाकृत अधिक था। स्त्रियाँ और बालक पैर में पैजना, सांकर, बिछिया और अनोटा पहनते थे। गले में मूल्यवान् कंठहार, खंगैरिया और हमेल की भाँति का आभूषण पहनते थे। हाथ को भी विविध आभूषणों से सजाया जाता था। हाथ के लोकप्रिय आभूषणों में खग्गा और बरा था। कान और सिर को वे मनोहर भूषणों से अलंकृत करते थे। इन आभूषणों में कर्ण फूल, सांकर, शीशफूल और बीज आदि हैं। हाथ की अंगूठी, माला आदि स्त्री–पुरूष दोनों प्रेम से पहनते थे।[10]

यहाँ की महिलाएँ सौन्दर्य और रूप–सज्जा पर विशेष ध्यान देतीं थीं। वे शारीरिक स्वच्छता के लिए दाल, मैदा और रीठे का बना साबुन स्नान के लिए प्रयोग में लाती थीं। लोग अपने बालों में खिजाफ लगाया करते थे और बालों का गंजपन दूर करने के लिए दवा का प्रयोग करते थे। स्त्रियाँ अनेक प्रकार के लेप जिनका निर्माण चन्दन से होता था काम में लातीं थीं। स्त्रियाँ हाथ में मेंहदी, पैर में महावर और आंखों में सुरमा लगातीं थी तथा पान लिपिस्टिक का काम करते थे। इत्र और खुशबूदार तेल का प्रयोग स्त्री और पुरूष दोनों करते थे। व्यक्तिगत स्वास्थ्य रक्षा सदाचार और नैमित्तिक कार्य करना जैसे– दातून करना, आँख और मुँह का धोना मालिश करना, बदन मलना, कपड़े से बदन को रगड़ना, सुगन्धित उबटन लगाना, स्नान करना आदि कर्म रूप–सज्जा की दृष्टि से किए जाते थे।[11] इस युग में हाथ–पैर और गालों में गुदना गुदवाने का रिवाज था तथा चलने, बात करने, उठने–बैठने को भी सौन्दर्य प्रसाधन की कला से जोड़ा जाता था।

सामाजिक संस्कार

बुन्देलखण्ड के निवासी अति प्राचीन काल से सामाजिक संस्कारों पर विश्वास करता था और उनका अनुसरण करता था। इन संस्कारों का संबन्ध धर्म से भी था। मुख्य रूप से जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कार यहाँ पर अनुपालित होते थे, जो व्यक्तियों के जीवन को सभ्य और सुंस्कृत बना देते थे। 'संस्कारों के अन्तर्गत विभिन्न आयोजनों द्वारा देवताओं की स्तुति, प्रार्थना तथा ध्यान के लिए यज्ञों का आयोजन किया जाता था। प्रत्येक संस्कार के अवसर तथा विधि–विधान नियत थे। व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर पर इनका सम्पादन किया जाता था। इस प्रकार किए गए संस्कारों द्वारा जीवन को योग्य, गुणाढ्य परिष्कृत तथा व्यवस्थित स्वरूप प्राप्त होता था।'

"योग्यताच्चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यते।"[12]

संस्कारों हि नामगुणाधानेन वास्याहोषायनयनेन वा।"[13]

संस्कारों का एक ही प्रयोजन था कि व्यक्ति इन संस्कारों के माध्यम से सभ्य और सुशील बन जाता था। ये संस्कार निम्नलिखित हैं :

1– गर्भाधान (निषेक) संस्कार, 2– पुंसवन संस्कार, 3– सीमन्तोन्नयन संस्कार, 4– जातकर्म संस्कार, 5– नामकरण संस्कार, 6– निष्क्रमण संस्कार, 7– अन्नप्राशन संस्कार, 8– चूडा कर्म (मुण्डन) संस्कार, 9– कर्ण वेध (कर्ण छेदन) संस्कार, 10– विद्यारम्भ संस्कार, 11– उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार, 12– वेदारम्भ संस्कार, 13– केशान्त संस्कार, 14– समावर्तन संस्कार, 15– विवाह संस्कार, 16– अन्त्येष्टि संस्कार।

परन्तु प्रमुख संस्कारों में जन्म संस्कार, विवाह संस्कार एवं अन्त्येष्टि संस्कार ही शेष रह गए हैं। अन्य संस्कार यहाँ की अशिक्षित एवं अबोध जनता नहीं मानती है। ये संस्कार अपनी–अपनी जाति के अनुसार और क्षेत्रीय परम्पराओं के अनुसार होते हैं। विवाह संस्कार में गोत्र, वंश, जाति पर विशेष महत्व दिया जाता है। सामन्त और बड़े कुल के लोग एक पत्नी के होते हुए भी अनेक स्त्रियों से विवाह करते हैं किन्तु मध्य एवं निम्न जाति के लोग ऐसा नहीं करते हैं। कुछ जातियों में बाल–विवाह प्रचलित हैं। यहाँ विधवा–विवाह कुलीन जातियों में प्रचलित नहीं है। पुनर्विवाह की प्रथा छोटी जातियों में थी।

लोकाचरण

सुप्रसिद्ध इतिहासकार अल्बरूनी ने यहाँ के लोकाचरण के संबन्ध में अपने महत्वपूर्ण विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं :

"बुन्देलखण्ड के लोग अपने ही लोगों के प्रति नहीं, हर किसी के प्रति जो उनके यहाँ आ पड़ता था– बड़े ऊँचे आतिथ्य भाव प्रकट करते थे। ब्राह्मण के घर पर यदि कोई बाहर से आता तो द्वार के भीतर प्रवेश करने के पूर्व पाद–प्रक्षालन करना पड़ता था। ब्राह्मणों का सबके द्वार समादर और पूजन होता था। आतिथ्य की हिन्दुओं की अपनी परम्परा न केवल उत्कृष्ट थी बल्कि अन्य देशों के निवासियों से भी विशिष्ट थी। तुर्कों के प्रति उनकी धारणा का परिचय सरलता से हमें एक उद्धरण से मिल सकता है– "मैं तुरूष्क देश होकर आया हूँ, जहाँ गृह का प्रधान न तो समादरणीय अभ्यागत ब्राह्मणों और अतिथियों का पाद–प्रक्षालन करता है और न कर्मचारी उन्हें बिठाते है।"[14]

धीरे–धीरे बुन्देलखण्ड में लोक रीतियाँ, रूढ़ियों में परिणित हो गयीं तथा उनका अनुपालन व्यक्ति देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार करने लगा। *"वैशाख सुदी तीज"*, *'कृषि वर्ष'* का आरम्भ माना जाता है। उस दिन खेत और मिट्टी की पूजा की जाती थी और बीज–बोना भी आरम्भ कर दिया जाता था। वर्तमान *'अखती'* और *'हरैता'* त्यौहारों का जन्म रीति से हुआ। देवशयन का

भी संबन्ध खेती से जोड़ा गया था। आषाढ़ सुदी 11 को देवशयन, फिर कार्तिक सुदी 11 जागरण– इन दोनों अवसरों पर कृषि–संबन्ध की पूजा अनेक रीतियों से होती थी। ऐसे ही बालिकाओं और पशुओं के पूजने की रीतियाँ प्रचलित थीं।[15]

लोगों में अनेक प्रकार के अन्ध–विश्वास व्याप्त था। जब कोई दुर्भाग्य आ जाता तो वे अपने को दोष न देकर भाग्य को कोसते थे। उनका मानना था कि जो भी अच्छा–बुरा करता है वह ईश्वर करता है, मनुष्य कुछ भी नहीं करता। ''यदि विधाता ही वाम है तो क्या नहीं घट सकता।''[16] सामान्य लोगों की यही अधिकतर व्यंजना थी। उनका विश्वास था कि सुकृतियाँ दूसरे जन्म में सहायता देती हैं। गौड़–सौंर आदि अनार्य–धर्मियों का विश्वास तो सभी ओर से हटकर भूत–प्रेत में दृढ़ हो चुका था। फलस्वरूप ये अनेक काल्पनिक देवताओं की पूजा करके धर्म भावना की तृप्ति करते थे। भाव–भगत, जवारा, झाड़–फूंक पर लोगों को औषधियों से भी अधिक विश्वास था।

यह तांत्रिकों और अघोर पंथियों का युग था। इस सम्प्रदाय का व्यापक प्रभाव जन–जीवन पर पड़ा था। मंत्र–तंत्रों की शक्ति में लोगों का सर्वाधिक विश्वास था। यह विश्वास पहले तो असभ्य लोगों में ही था किन्तु क्रमशः यह विश्वास अर्ध–सभ्यों में भी घर कर गया। वर्तमान जीवन में बुन्देलखण्ड में जो अनेक देवी–देवताओं, प्रेतों की पूजा आज जगह–जगह चल पड़ी है, यह उसी भावना का परिणाम है। ऐसों में *'खेर भाता', 'मिड़ोहिया', 'घटोइया', 'गौड बाबा', 'मसान बाबा', 'नटबाबा', 'छीद',* आदि वहाँ के बड़े लोकप्रिय ग्राम देवता हैं। महामारियों के देवता भी यहाँ के लोगों ने पूजने आरम्भ कर दिए थे। कुछ जातिगत विश्वास भी वहाँ के लोगों में प्रौढ़ हो रहे थे।

'किन्तु प्रतिकूले विधातीर न सम्भाव्यते'

X X X

प्रायः सुकृति नामर्थे देवा यान्ति सहायताम्।[17]

लोकाचरण की दृष्टि से बुन्देलखण्ड के लोग पुरातन पंथी थे। वे लोग तुर्कों से घृणा करते थे साधू सन्तों का सम्मान करते थे और मन्त्रोच्चारण से संतुष्ट हो जाते थे। मिथ्या चरण, बाह्याडम्बर और अन्ध विश्वास वे इन सब के अनुयायी थे।

बुन्देलखण्ड के निवासियों की भाषा

बुन्देलखण्ड के निवासियों की भाषा प्रारम्भ में अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा थी। किन्तु कालान्तर में हिन्दी भाषा का उदय हुआ, जिसे बुन्देलखण्डी के नाम से पुकारा गया। यह बुन्देलखण्डी भी कई उपभाषाओं में विभाजित थी। मुख्य रूप से गहोरा पठा, अन्तर्पठा, कोल्हाई, बनाफरी, जाड़ जूडर, तिरहारी स्तरीय बुन्देलखण्डी, लुधाटी, पंवारी, हिण्डोल खटोला, पावकी, गौड़वानी और दक्षिणी बुन्देलखण्डी के नाम से विभाजित हुयी। बुन्देलखण्ड के 42 रियासतों के लोग बोलचाल में इस भाषा का सहयोग करते थे किन्तु बुन्देलखण्ड की साहित्यिक भाषा ब्रज भाषा थी तथा ऊर्दू का प्रयोग राज भाषा के रूप में तुर्कों और मुगुलों के यहाँ किया जाता था। कुछ लोग खड़ी बोली का प्रयोग भी करने लग गए थे। यहाँ के लोक भाषा में अनेक प्रकार के सामाजिक और संस्कारिक गीत गाने की प्रथा थी। आल्ह खण्ड यहाँ का सबसे बड़ा लोक काव्य है।

आमोद–प्रमोद के संसाधन

बुन्देलखण्ड के निवासी अपने मनोरंजन के लिए आमोद–प्रमोद के अनेक संसाधन का प्रयोग करते थे। ''यहाँ के निवासियों का अत्यन्त प्रिय विनोद मृग था। चन्देलों का साम्राज्य विशेष रूप से वनाच्छादित प्रदेश में ही फैला था। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति आखेट में प्रवीण होता था इस देश के आखेटकों द्वारा पशुओं का पीछा करते हुए जिस उच्चकोटि की वीरता और कौशल का प्रदर्शन

किया जाता था उससे अलबरूनी बहुत ही प्रभावित था। गाँवों के सामान्य जनों के विनोद के लिए तो पर्यटनशील सपेरे, अभिचारी और ऐंद्रजालिक बहुत काम के थे। सुशिक्षित जन गायन, वादन और नृत्य से विनोद करते थे। सामाजिक रूप से अभिनय के भी आयोजन होते थे।''[18]

मनोरंजन के कई अन्य संसाधन ग्रामीण क्षेत्रों में भी उपलब्ध थे। लोक संगीत के आयोजन तीज–त्यौहारों में विशेष रूप से हुआ करते थे। कुछ विशेष जातियों के पास अपना निजी लोक संगीत था। धुरिया, कहार, ढीमर, धोबी, कुम्हार तथा मेहरे का लोक संगीत मनोरंजन का प्रमुख आधार था। कभी–कभी भाट और कुम्हार जाति के लोग स्वांगों के माध्यम से जनता का मनोरंजन करते थे। रात्रि में कहानी कहने और पहेली बुझाने का रिवाज था। कभी–कभी विशेषज्ञ अवसरों पर रासलीला, रामलीला तथा नौटंकी के आयोजन भी ग्रामीण और शहरी अंचलों में होते थे। आवागमन के संसाधनों का आभाव होने के कारण लोक–कलाओं का प्रचार–प्रसार अधिक नहीं हो पाता था। कभी–कभी मल्ल युद्ध, पटा भनैती, पशु युद्ध, सांप नेवले की लड़ाई, नटों के खेल–तमाशे भी लोगों का मनोरंजन करतें थे। इन्हें देखने के लिए बड़े–बड़े सामन्त और जागीरदार भी उपस्थित रहा करते थे। प्रकाश की व्यवस्था विशेष न होने के कारण कार्यक्रम या तो सुबह होते थे या फिर 2 बजे से प्रारम्भ होकर संध्या 6 बजे तक चलते थे। बड़े–बड़े सामन्तों का मनोरंजन नर्तकियों के नृत्य से होते थे। कुछ नर्तकी इनके राजदरबार में नृत्य करतीं थीं। कालिंजर राज दरबार में महानचनी पद्मावती रहा करती थी। इस सन्दर्भ में कालिंजर के एक स्तम्भ पर अभिलेख उपलब्ध होता है।[19] इसके अतिरिक्त भी मनोरंजन के अन्य साधन जैसे– चौपड़–पासा, गिल्ली–डंडा, कन्चें तथा लुका–छिपी, कबड्डी आदि खेल प्रचलित थे।

मसीही धर्म के आगमन के पश्चात् बुन्देलखण्ड के निवासियों की स्थिति

अंग्रेजों का आगमन बुन्देलखण्ड में सन् 1804 के बाद स्थायी रूप से हुआ। पहले ये लोग ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधि और कर्मचारी के रूप में आए। तत्पश्चात् वे ब्रिटिश प्रशासन के प्रतिनिधि और कर्मचारी बनकर आए। उन्होंने सर्वप्रथम यहाँ अपने धर्म का प्रभाव डाला उसके पश्चात् अपनी शिक्षा नीति लागू की तथा अपनी प्रशासनिक नीति भी लागू की। इन लोगों ने अपनी धर्म और संस्कृति का प्रभाव व्यापक रूप से बुन्देलखण्ड निवासियों पर डाला। जिसके परिणाम स्वरूप यहाँ के निवासियों के सामाजिक स्तर और उनकी संस्कृति में व्यापक परिवर्तन हुआ। यद्यपि यह परिवर्तन शहरी क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों और पढ़े–लिखे व्यक्तियों के मध्य सर्वाधिक हुआ। ग्रामीण अंचलों के निवासियों पर इसका कोई व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा। केवल निम्न वर्ग के व्यक्ति जो मसीही धर्म के प्रभाव में आए, उनकी स्थिति में परिवर्तन हुआ क्योंकि मसीही धर्मावलम्बियों ने उन्हें आर्थिक संसाधन प्रदान किए, उन्हें नौकरी प्रदान की तथा धर्मान्तरण करके मसीही बनाया। अभी तक मसीही धर्म से व्यक्ति अनभिज्ञ था और उसके बारे में कुछ भी नहीं जानता था।

ब्रिटिश शासन काल में कुछ अच्छे कार्य भी किए गए। जैसे– बाल–विवाह पर प्रतिबन्ध, बहु–विवाह पर प्रतिबन्ध तथा सती–प्रथा पर रोक आदि। किन्तु इन अच्छे कार्यो का व्यापक विरोध हुआ, क्योंकि कट्टरपंथी हिन्दू और मुसलमान समाज के व्यक्ति किसी विधर्मी का धर्म और समाज में हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते थे। ब्रिटिश शासनकाल में अनेक ऐसे अधिनियमों का निर्माण हुआ जो समुचित थे, किन्तु उन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता था। यहाँ के व्यक्ति राजाओं पर आस्था रखते थे इसलिए सन् 1857 में जब राजाओं का उत्पीड़न हुआ, उस समय जनता ने राजाओं

का साथ दिया और क्रांति में भाग लिया। इस सन्दर्भ में यह कथन समुचित प्रतीत होता है– ''डलहौज़ी ने अपने आठ वर्ष के राज्यकाल में बहुत से राज्यों को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया था। इनमें से युद्ध में विजय के पश्चात् प्राप्त किए गए राज्यों, जैसे पंजाब तथा पेगू–का विलयन तो स्वाभाविक रूप से स्वीकार कर लिया गया परन्तु गोद लेने की प्रथा का अन्त करके उसने सात राज्यों का विलयन किया। ये राज्य थे सतारा, संभलपुर, जैतपुर, भगत, उदयपुर, नागपुर तथा झाँसी। इस कार्य के लिए केवल डलहौज़ी को ही दोषी ठहराना न्याय संगत नहीं होगा क्योंकि उस समय अधिकतर ब्रिटिश प्रशासक तथा धर्म प्रचारक अधिक–से–अधिक क्षेत्र पर सीधा अपना नियन्त्रण स्थापित करने के पक्ष में थे। वैसे भी कंपनी ने सदा से ही विस्तारवादी नीति अपनायी थी। अन्तर केवल यह था कि डलहौज़ी ने अधिक उत्साह से तथा व्यवहार के नैतिक पहलू की पूर्ण अवहेलना करके इसे लागू किया। इसके अतिरिक्त उसने कर्नाटक, सूरत और तंजौर के राजाओं को उपाधियों से वंचित कर दिया, पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब की पेंशन बन्द कर दी और यह घोषणा की कि मुग़ल सम्राट बहादुर शाह की मृत्यु के बाद उसके वंशजों को लालकिला खाली करना पड़ेगा। इन राजाओं की मनोवृत्ति पर तो इसका प्रभाव पड़ा ही, अन्य राजाओं पर भी इसका प्रभाव पड़ा और उन्हें लगने लगा कि उनका भविष्य असुरक्षित हो गया है। साधारण जनता भी उससे प्रभावित हुयी क्योंकि नई शासन–व्यवस्था तथा तीव्र आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन के समय में वह इन देशी राज्यों के शासकों को अपनी सभ्यता, धर्म तथा संस्कृति के संरक्षक तथा प्रतीक के रूप में देखती थी। इनके विलयन से उसे लगने लगा कि उनकी संस्कृति तथा मान्यताओं में उथल–पुथल मच गयी है। वह इस विलयन के आधार को अन्यायपूर्ण तथा अनुचित मानती थी।''[20]

छोटे जमींदार, किसान और छोटे व्यावसायी प्राकृतिक आपदाओं के कारण असन्तुष्ट थे। इस समय अनावृष्टि और बहुवृष्टि से सभी वर्ग त्रस्त थे। उसके वाबजूद लगान की वृद्धि और व्यक्तियों का शोषण ब्रिटिश शासन के विरोध का कारण बना। मशीनीकरण के कारण समाज के अनेक व्यक्ति बेरोजगार हो गए। 'विधर्मी तथा विश्वासघाती सरकार' ने सभी अच्छी तथा कीमती चीजों जैसे नील, कपड़ा आदि के ऊपर एकाधिकार स्थापित कर लिया है और केवल मामूली चीजों को उनके लिए छोड़ा है। यही नहीं, इन पर भी शुल्क, स्टैम्प–ड्यूटी, टैक्स एवं चुंगी वसूल की गई। सरकारी नौकरियों के संबन्ध में यह कहा गया कि सभी ऊँची मर्यादा तथा ऊँचे वेतन वाली नौकरियाँ अंग्रेजों के लिए सुरक्षित थीं। कारीगरों के संबन्ध में इस इश्तहार में यह कहा गया कि अंग्रेजों ने विलायत में बना हुआ माल भारत में लाकर यहाँ के जुलाहों, धुनियों, बढ़इयों, लुहारों, मोचियों आदि के रोजगार छीनकर भिखमंगा बना दिया।[21] समाज में विद्रोह और समर्थन के कुछ कारण होते हैं। समाज का शोषण ही मुख्य विद्रोह का कारण था क्योंकि अंग्रेजों ने भारतीयों को हीन और निम्न स्तर का माना।[22]

भारतीय समाज में परिवर्तन करना कोई आसान कार्य नहीं था, क्योंकि यह समाज विभिन्न जातियों में विभाजित था तथा प्रत्येक जाति के पास अपना पृथक व्यवसाय था तथा प्रत्येक जाति के लोग संयुक्त परिवार में विभाजित थे। इनकी संख्या अधिक थीं किन्तु विभक्त परिवार अस्तित्व में बहुत कम थे। ''जब अंग्रेजों ने भारत पर आधिपत्य जमाया, उस समय भारतीय जात–पाँत का ढांचा गुणों और दोषों, सजीवता और कमजोरी, व्यावसायिक स्थिरता तथा गतिहीन जड़ता का मिला–जुला प्रतीक था। लेकिन गाँव की तरह जाति प्रणाली भी देश की आर्थिक व्यवस्था का एक अनिवार्य अंग थी और नई समाज व्यवस्था में प्रवेश करना इस बात पर निर्भर है कि जात–पाँत का

ढांचा कैसा है और तत्कालीन परिस्थिति के प्रति इसकी क्या प्रतिक्रिया है।[23] सामाजिक–व्यवस्था में परिवर्तन का मूल कारण मसीहियों और अंग्रेजों से सम्पर्क स्थापित करना ही था। इसी कारण सामाजिक–व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुए।

सामाजिक–व्यवस्था

अंग्रेजों के आगमन के समय बुन्देलखण्ड में हिन्दू और मुस्लिम समाज के लोग निवास करते थे। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् यहाँ तीसरा वर्ग मसीही समाज का स्थापित हो गया। जिन लोगों ने मसीही धर्म अपनाया, उन लोगों में अधिकांश उपेक्षित हिन्दू और मुस्लिम समाज के लोग थे। तीनों समाजों के एक–दूसरे के सम्पर्क में आने के कारण व्यापक परिवर्तन हुए किन्तु ये परिवर्तन उन लोगों के बीच में हुए जिनका सम्पर्क मसीही समाज से हुआ अथवा जो व्यक्ति ब्रिटिश शासन के सम्पर्क में आए, मुख्य रूप से राजा सामन्त, जागीरदार, जमींदार और सरकारी कर्मचारी के मध्य में व्यापक परिवर्तन हुआ और देखा गया।

यहाँ का हिन्दू समाज 4 वर्णों में विभाजित था। ये वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे तथा इन वर्णों में अनेकों उपजातियाँ स्थापित हो गयीं थीं। इनकी संख्या लगभग 372 उपजातियों की थी। इस समय वर्ण–व्यवस्था वंश परम्परा के अनुसार थी जातीय बन्धन अति कठोर थे। समस्त प्रकार के सामाजिक और जातीय संस्कार अपनी–अपनी जातीय परम्पराओं के अनुसार होते थे। समाज में ऊँच–नीच और छुआ–छूत की भावना बहुत अधिक थी। जातीय नियमों का बहिष्कार करना अत्यन्त कठिन था। कभी–कभी सामाजिक पंचायतें कठोर कदम उठाते हुए व्यक्तियों को दण्डित किया करतीं थीं। जिसके कारण अनेक परिवारों का सामाजिक बहिष्कार हुआ। कालान्तर में बहिष्कृत परिवारों ने मजबूरन अपना धर्म परिवर्तित किया।

मसीहियों के प्रभाव के कारण अनेक उच्च वर्ग के व्यक्तियों ने जातीय नियमों को ठुकराते हुए मसीहियों के धर्माचरण और जीवन शैली को उनके अनुसार ढाला तथा सामाजिक बन्धन जो कभी कठोर थे वे अत्यन्त ढीले हो गए। इस प्रकार अन्तर्जातीय संबन्ध और अन्तर्धमीय सम्बन्ध स्थापित होने लगे तथा समाज में प्रचलित कठोर परम्पराओं का बहिष्कार हुआ।

रहन–सहन का स्तर

इस समय समाज के रहन–सहन का स्तर सामाजिक स्थिति और आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता था तथा तद्‌युगीन राजनीतिक परिस्थितियों ने भी रहन–सहन के स्तर को प्रभावित किया। "निःसन्देह, कुल मिलाकर बुन्देलखण्ड समाज राजनीतिक घटनाओं के प्रति उदासीन रहा। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैले हुए ग्रामीण समुदाय पहले की भाँति अपने आप में सिमट कर लगभग एकाकी जीवन बिताते रहे। कठिन राजनीतिक समय के प्रभावों को उन्होंने भाग्यवादी बन कर झेला और जहाँ तक हो सका राजनीति से दूर ही रहे। लेकिन उनकी इस उदासीनता के बड़े दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम निकले क्योंकि ग्रामीण समाज और भी छोटे दायरे में सिमट गया तथा और अधिकाधिक अलग–थलग रहने लगा। उनका सामाजिक जीवन अधिकाधिक जड़ और निष्क्रिय बन गया। सामाजिक व्यवस्थाओं परम्पराओं और प्रभावों ने कठोर तथा ठोस रूप धारण करना शुरू कर दिया।" इससे उनके रहन–सहन का स्तर प्रभावित हुआ। व्यक्ति सामाजिक कठोरता और असंगत सामाजिक प्रथाओं के कारण रूढ़ग्रस्त हो गया तथा वह अपने धर्म को शुद्ध बनाए रखने के लिए एक–दूसरे से पृथक रहने लगे। पंडितों ने जैसा चाहा समाज को बरगलाया। इस समय मूर्ति–पूजा, जड़ पदार्थों की पूजा चरम सीमा पर पहुँच गयी।

एकेश्वरवाद और *'सर्व खल्विदं ब्रह्मा'* के सिद्धान्त वाले सर्वेश्वरवाद में विश्वास और आस्था

रखने वाले लोग थे, लेकिन अधिकांश लोग बलि, झाड़–फूंक, जादू–टोने, विभिन्न पूजाओं और समारोहों आदि में विश्वास रखते थे। तान्त्रिक क्रियाओं और साहजी वर्ग की क्रियाओं का बहुत चलन था और कुछ स्थानों पर तो कुछेक धार्मिक क्रियाएं अत्यन्त भयानक थीं। अंधविश्वासों से कोई छुटकारा नहीं था और आश्चर्य की बात तो यह है कि नरबलि के विरुद्ध भी कभी किसी ने आपत्ति नहीं उठायी।[24]

मुसलमान धर्म को मानने वाले व्यक्तियों के रहन–सहन का स्तर भी बहुत अच्छा नहीं था। ये लोग हिन्दुओं के प्रति नफ़रत की भावना रखते थे तथा सामाजिक, संस्कृति की दृष्टि से सदैव हिन्दुओं से दूरी बनाए रखते थे। इसलिए यह धर्म और इनका समाज अपनी ही रूढ़ियों के दायरे में सिमट गया। इसके विपरीत हिन्दू धर्म में पण्डितों का अस्तित्व बढ़ गया। चाहे वह धर्म ग्रन्थ पढ़ें अथवा न पढ़ें किन्तु ये लोग कर्मकाण्डों का अनुपालन अवश्य करते थे। अज्ञानता और अन्धविश्वास के बीच ऐसी सामाजिक प्रथाएँ भी धार्मिक दृष्टि से मान्य हो गयीं जो वास्तव में हानिकारक और खतरनाक थीं। पण्डित लोग सामाजिक बुराइयों को शास्त्रोचित बताते थे। "बाल–वध, बाल–विवाह, बहु–विवाह, विधवाओं को जीवित जला देना और ऐसी ही अन्य सामाजिक बुराइयों को शास्त्रोचित और धार्मिक क्रियाएँ करार दे दिया गया और इसलिए अत्यन्त जघन्य कार्य करने से पहले भी किसी के अन्तकरण को कोई क्लेश नहीं होता था। इसी प्रकार जात–पांत, अस्पृश्यता, महिलाओं को पर्दे में रखना और गुलाम प्रथा जैसी सामाजिक प्रणालियाँ शास्त्रोचित समझी गयीं, इसलिए उन्हें विधि सम्मत तथा गौरव की बात मान लिया गया।" इस समय समाज के व्यक्तियों का नैतिक स्तर बहुत गिरा हुआ था तथा सम्पूर्ण समाज रहन–सहन के स्तर से विभाजित था :

1– कुलीन एवं धनवान वर्ग, 2– मध्य वर्ग एवं उद्यमी वर्ग, 3– सामान्य वर्ग, 4– निम्न वर्ग।

"रहन–सहन का स्तर इन्हीं वर्गों के अनुसार था। सबसे ऊँची जात में भगवान के लोग थे जिनका अन्य लोग बहुत आदर करते थे। और सबसे नीचे वर्ग के लोगों को इतना हीन समझा जाता था कि उन्हें अन्य वर्गों से बिल्कुल अलग रहना होना था। लेकिन समाज में वे भी अपना वर्ण धर्म पूरा करते थे। उच्चतम और निम्नतर वर्गों के बीच कई अन्य वर्ग थे जिनका विभाजन अपनी–अपनी जात के धंधों के अनुसार किया गया था।"

मसीही धर्म के प्रभाव के कारण समाज के रहन–सहन के स्तर में व्यापक परिवर्तन हुआ। जिन लोगों ने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की और जो मसीहियों की भाँति रहने लगे उनका रहन–सहन का स्तर अच्छा माना गया और जो लोग अंग्रेजी शिक्षा तथा उनके सम्पर्क से वंचित रहे, उनका रहन–सहन का स्तर निम्न माना गया। धनी वर्ग पक्के मकानों और महलों में निवास करता था, तथा सर्व साधन सम्पन्न था जबकि गरीब वर्ग साधनहीन और उपेक्षित था।

पहनावा

बुन्देलखण्ड के निवासियों का पहनावा मसीहियों के आगमन के पश्चात् भी उसी प्रकार रहा, जैसा पहले था। यहाँ स्त्री और पुरूषों के पहनावे में व्यापक अन्तर था। पुरूष वर्ग के लोग धोती, कुर्त्ता, बण्डी, पंचा, साफी आदि धारण करते थे तथा स्त्रियाँ धोती और पोल्का धारण करतीं थीं। विवाहित स्त्रियाँ मांग में सिन्दूर धारण करतीं थीं और सिर, कण्ठ, हाथ, पैरों में विविध प्रकार के आभूषण पहनतीं थी। मसीहियों के आगमन के पश्चात् पढ़े–लिखे वर्ग में आभूषण पहनने में कुछ परिवर्तन हुआ। स्त्रियों ने भारी तथा वज़नी आभूषणों का परित्याग करके हल्के आभूषण धारण करना प्रारम्भ कर दिया तथा पढ़ा–लिखा पुरूष वर्ग परम्परागत वस्त्रों का परित्याग करके नए प्रकार के वस्त्र पहनने लगे।

"कुछ समय पहले यहाँ मामूली दुपलिया टोपी लगाने अथवा एक छोटी सी अंगोछी विशेष ढंग से सिर पर बाँधने का रिवाज था। यह पगड़ी प्रायः खोपड़ी के एक बाजू पर रहती थी। बड़े लोग पाग या मंदील सर पर बाँधा करते थे। बड़े–बड़े साफा बाँधने का रिवाज कुछ ही दिनों से यहाँ जारी हुआ है। किसी–किसी देशी दरबार में भी पगड़ी, पाग या मन्दील के सिवाय और किस्म की सिर की पोशाक की रोक है। अब दुपलिया टोपी के बदले फेल्ट–कैप के तर्ज़ की टोपी और पगड़ी के बदले साफ़े का प्रचार हो गया है। पहिले मिरज़ई, फतुहीं, बगलबन्दी या बंडी पहिनते थे। अब झोला या कुर्त्ता का आम रिवाज़ हो गया है। कोई–कोई कुर्ती, अंगरखी या रूई भरा कुर्त्ता भी पहिनते थे, परन्तु बहुत कम। रियासतों के ज़ाब्ते के दरबारों में कुछ–कुछ प्राचीन ढंग की पोशाक का व्यवहार किया जाता है। पेश्तर नीचे तक की लम्बी धोती अथवा पैजामें के बजाय कुची–ताला या परदनी अथवा घुटन्ना पहनते थे। अब टखनों तक नीचे धोती का आम रिवाज़ हो गया है।"[25]

वस्त्रों के अतिरिक्त यहाँ जूते पहनने का रिवाज़ था। यहाँ के लोग बुन्देलखण्डी जूते पहनते थे। जिनमें गोल और ऊँचे झब्बे होते थे, और उनकी नोंक मुड़ी हुयी ऊपर की ओर होती थी। पीछे एड़ी का हिस्सा 9 इंच ऊँचे लम्बे पट्टे से जुड़ा होता था। इन जूतों में बेल–बूटे का काम भी होता था किन्तु अंग्रेजी बूट आ जाने के कारण उनकी लोकप्रियता बढ़ी।

यहाँ की महिलाएँ आभूषण धारण करतीं थी। यहाँ के कुछ गहने निराले ढंग के होते हैं। वे सोना, चाँदी, कांसा, पीतल, काँच, सीप, शंख आदि के बनते हैं। पैरों के ज़ेवर पैजना, सांकर, अनोटा और बिछिया; हाथों के बरा और खग्गा; गले की खंगौरिया और हमेल; कानों के कर्णफूल और सांकर तथा माथे के बीज और शीशफूल आदि हैं। पहनावे के साथ–साथ उच्च कुल की स्त्रियाँ पर्दा किया करतीं थी। विशेष प्रकार से क्षत्रिय कुल की स्त्रियाँ अधिक पर्दा करती थी। इसके अतिरिक्त कायस्थ, लाला जाति की स्त्रियाँ पर्दा करतीं थीं। और कहीं जाने के लिए लम्बे–चौड़े चादर से अपने सब शरीर को मुसलमान स्त्रियों के बुर्के के समान लपेट कर पैदल चलती थी। मसीहियों के आगमन के पश्चात् वस्त्र आभूषण दोनों में व्यापक परिवर्तन हुआ। ग्रामीण अंचलों को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में भारी और वजनी आभूषणों के स्थान पर हल्के आभूषण पहने जाने लगे। इनमें से कुछ आभूषण पाश्चात्य शैली के थे।

सामाजिक संस्कार

बुन्देलखण्ड के निवासी संस्कारों की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त थे। पहले वे व्यक्ति थे, जो अनार्य कुल के थे तथा जंगलों में निवास करते थे। इनमें कोल, भील, गौड़, बैगा, शबर, शहरिया, खैरवार आदि लोग शामिल थे। इनके संस्कार आर्य जातियों से नहीं मिलते थे। इनके यहाँ केवल जन्म संस्कार, विवाह संस्कार और मृत्यु संस्कार सम्पन्न होते थे। जिन्हें ये अपनी परम्पराओं के अनुसार मनाते थे। मसीही के आगमन के पश्चात् इनकी संस्कार व्यवस्था में परिवर्तन हुआ तथा इनके मध्य सभ्यता के नीवन सूर्य का उदय हुआ। जिनके कारण आदिवासियों ने पुरानी परम्पराओं का परित्याग किया और संस्कारों को नए ढंग से मनाना प्रारम्भ किया। कुछ लोग तो इनके प्रभाव में आकर मसीहियों के अनुगामी बन गए।

दूसरा वर्ग समाज का वह वर्ग था जो हिन्दू समाज के नाम से विख्यात था। ये लोग सोलह संस्कारों का अनुसरण करते थे। इनके अधिकांश संस्कार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य उच्च कुल की तीन जातियों में होते थे। अशिक्षा और पिछलेपन के कारण संस्कार की संख्या घटती चली जा रही थी। मुख्य रूप से गर्भाधान संस्कार, पुंसवन संस्कार, सीमन्तोन्नयन संस्कार, जात कर्म संस्कार, छठी या दस्टौन संस्कार, नामकरण संस्कार, निष्क्रमण संस्कार, अन्नप्राशन संस्कार, चूड़ाकर्म संस्कार,

वेदारम्भ संस्कार, उपनयन संस्कार, कर्ण बेधन संस्कार, समावर्तन संस्कार, विवाह संस्कार, वानप्रस्थ संस्कार, अन्त्येष्टि संस्कार सम्पन्न होते थे। इन संस्कारों में जाति और समाज के लोगों को आमन्त्रित करने की प्रथा थी तथा इस अवसर पर स्त्रियाँ मंगल गीत भी गाया करती थीं।

बुन्देलखण्ड में निवास करने वाला तीसरा समाज मुसलमानों का था, जो हज़रत मुहम्मद साहब द्वारा रचित कुरआन शरीफ़ पर यकीन करता था। वह अपने मजहब के अनुसार अपने संस्कारों को मानता था। इस धर्म में सबसे पहला संस्कार, विवाह संस्कार है। जिसमें लड़का और लड़की दोनों की मर्ज़ी से काज़ी निकाह करवाता है तथा दोनों इसे कबूल करते हैं। लड़के के द्वारा महर की रकम कबूल की जाती है जो वह अपनी बेगम को देता है। यदि वैवाहिक जीवन कलहपूर्ण व्यतीत होता है तो पति–पत्नी दोनों को तलाक देने का अधिकार है। इस अवसर पर सामूहिक भोज भी दिया जाता है। तथा शादी के लिए यह शर्त है :

1– नसब में बराबर होना, 2– मुसलमान होना, 3– दीनदारी, 4– मालदारी, 5– पेशः या फ़न में हमपल्लः होना। (आलमगीरी, बिहिश्ती ज़ेवर)[26]

मुसलमानों का दूसरा संस्कार जन्म संस्कार होता था। सबसे पहले नवजात शिशु को नहला–धुलाकर उसके दाहिने कान में आज़ान और बायें कान में इक़ामत कही जाती थी। इस प्रकार उसे खुदा की दुआएं दी जाती थी।[27] इसके पश्चात् नामकरण संस्कार होता था। इस संस्कार के अन्तर्गत उसका नाम खुदा के नाम से जोड़कर रखा जाता था। फिर तालीम देने का संस्कार होता था, यह उस समय दिया जाता था जब बच्चा नामाज़ पढ़ने के योग्य हो जाए। जब बच्चा कुछ और बड़ा हो जाता था, उसका ख़तना संस्कार होता था। इस प्रकार वह पक्का मुसलमान बन जाता था।[28] इनका अन्तिम संस्कार मृत्यु संस्कार होता है। इसमें सबसे पहले जब कोई व्यक्ति स्वर्गवासी हो जाता है, उस समय मृत्यु पर विलाप नहीं करना चाहिए किन्तु खुदा से यह दुआ जरूर माँगना चाहिए कि खुदा उसे ज़न्नत बख्श दे, उसे रहमत दे फिर भी मैयित के लिए आँसू बहाना जायज है। मृत व्यक्ति के शरीर को चूमना और उसको याद करना तथा उसके जनाजः के लिए नामाज़ अदा करना, और उसे क़ब्रिस्तान में ले जाकर दफ़न करने का रिवाज़ है। सभी व्यक्ति मृत व्यक्ति के परिवार के साथ हमदर्दी रखते हैं।

बुन्देलखण्ड में एक चौथे वर्ग का उदय हुआ। यह वर्ग मसीही समाज के नाम से विख्यात था। इस समाज में भी अनेक प्रकार के संस्कार सम्पन्न होते थे। इन संस्कारों में जन्म संस्कार, शुद्धीकरण संस्कार, विवाह संस्कार तथा मृत्यु संस्कार प्रमुख थे। ये लोग अधिकांश संस्कार चर्च में सम्पन्न करते थे तथा समय–समय पर प्रभू–भोज का भी आयोजन संस्कारों के समय होता था। इनके यहाँ प्रीस्ट से आशीर्वाद लेने की प्रथा थी।

मसीहियों के आगमन के पश्चात् समाज के संस्कार व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुए। अब वे रूढ़ियों से हटकर नयी शैली में सम्पन्न होने लगे। उदाहरण के लिए हिन्दू लोग भी अपने बच्चे का जन्मदिन मसीहियों की तरह मनाने लगे। इस दिन वे केक बनवाते थे और मोमबत्तियाँ जलाते थे। इसी प्रकार विवाह आदि उत्सवों में नयी पद्धतियाँ अपनायी गयी। युग परिवर्तन के अनुसार संस्कारों का परिवर्तन होना स्वाभाविक था, क्योंकि जब व्यक्ति एक–दूसरे के सम्पर्क में आता है तो वह कुछ दूसरों को सिखाता है और दूसरों से कुछ सीखता है।

लोकाचरण

सन् 1813 में चार्टर एक्ट के अनुसार मिशनरियों को भारत में कार्य करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी। इस समय बुन्देलखण्ड में धार्मिक अन्ध–विश्वास था, अज्ञानता थी जिसके कारण

इस युग को अन्धकार युग के नाम से संबोधित किया जाता था। फिर भी व्यक्तियों के अन्दर एक सामाजिक नैतिकता थी। "निपट अनपढ़ और प्रकांड विद्वान दोनों को ही निश्चित रूप से यह पता था कि गलत क्या और सही क्या है, सदाचार क्या है और पापाचार क्या है। भाग्य, कर्म, जन्म, मरण और पुनर्जन्म के चक्र और ऐसी ही अन्य धार्मिक बातों में पूर्ण विश्वास के कारण लोग सत् पथ पर रहते थे। यदि किसी ने गलत प्रथा अपनायी भी तो उसका इरादा खराब कभी नहीं हुआ। प्रत्येक कार्य, धर्म और सदाचार के नाम पर होता था। इसकी अच्छाई यह थी कि लोग दैनिक जीवन में शुद्ध विचारों, धार्मिक प्रवृत्तियों और सदाचार से रहते थे। और उसकी बुराई यह थी कि धर्म के नाम पर लोग असंगत प्रथाओं को भी पंडितों के कहने पर स्वीकार कर लेते थे।[29] इस समय उच्च वर्ग स्वेच्छाचारी था। वह किसी के नियन्त्रण में नहीं था तथा मध्य वर्ग और निम्न वर्ग अधोपतित था।

मसीही धर्म धीरे–धीरे यहाँ फैला हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपना धर्म बदलने के लिए तैयार नहीं थे किन्तु मसीहियों के कहने से कुछ उदारवादियों ने भारतीय समाज को अपने मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए प्रेरित किया। कुछ लोगों ने मसीहियों की नौकरी करने के लिए अंग्रेजी सीखी और अपने लोकाचरण में परिवर्तन किया। इस समय हिन्दू अराधना विधियों के विरुद्ध समाज सुधारकों ने संघर्ष किया तथा प्रभु येशु मसीह के सदुपदेशों से प्रेरणा ग्रहण की। राजा राममोहन राय ने 1820 ईस्वीं में, येशु मसीह के उपदेश, शान्ति और सुख का मार्ग (प्रीसैप्ट्स ऑफ जीसस, द गाइड टू पीस एण्ड हैप्पीनैस) नामक पुस्तक लिखकर प्रकाशित की, जिस पर क्रिश्चियन कट्टरपंथी भी भड़क उठे। यह पुस्तक मसीही धर्म की बड़ी उदार व्याख्या थी, जिसमें प्रभु येशु मसीह के चमत्कारों की बजाय उनके आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर बल दिया गया था। लेकिन सिरामपुर के मिशनरियों और मार्श मैन ने भी उनकी कटु आलोचना की।

राजा राम मोहन राय और दूसरे धर्मोपदेशकों का प्रभाव बुन्देलखण्ड में इसलिए नहीं पड़ा क्योंकि विषम आर्थिक परिस्थितियों के कारण यहाँ का व्यक्ति गरीब होता चला गया और नैतिकता के सभी आदर्श पुस्तकों में बन्द होकर रह गयी और व्यक्ति मजबूरन आचरणहीन और भ्रष्ट हो गया। वह गरीबी के कारण वह बेईमान, चोर, डकैत और चरित्रहीन हो गया। निश्चय है कि यहाँ के व्यक्तियों का आचरण ब्रिटिश शासन काल में भी अधोपतित रहा। नैतिकता केवल भाषण तथा सदुपदेशों में सुनाई देते थे यथार्थ में नहीं।

भाषा

बुन्देलखण्ड के ग्रामीण अंचल की भाषा बुन्देलखण्डी बनी रही। यह भाषा क्षेत्रीय आधार पर विभाजित थी। उसका मूल कारण आवागमन के संसाधनों का अभाव था। यहाँ के भाषा के सन्दर्भ में यह कहावत प्रसिद्ध थी–

"कोस–कोस में पानी बदले, सवा कोस में बानी।"

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में तेरह प्रकार की बुन्देलखण्ड की उपभाषाएँ बोली जाती थीं किन्तु शहरी क्षेत्र में जहाँ पढ़ा–लिखा वर्ग निवास करता था वहाँ ऊर्दू मिश्रित खड़ी बोली, बोली जाने लगी थी किन्तु काव्य में भाषा परिवर्तन नहीं हो पाया था। 20वीं सदी के प्रारम्भ में बनारसी दास, मैथलीशरण गुप्त जैसे कवियों ने काव्य भाषा को भी परिवर्तित कर दिया। जब मसीही यहाँ पर आए और उनके साथ अंग्रेजी भाषा आयी। उस समय पढ़े–लिखे लोग हिन्दी के बीच–बीच इंगलिश भाषा के शब्द प्रयुक्त करने लगे। ताकि वे सभ्य और सुशील समझे जाएँ। मुख्य रूप से स्कूल–कॉलेज, मिनिस्पिल्टी, डिस्ट्रक बोर्ड, बैग–पर्स आदि शब्दों का प्रचलन हिन्दी के साथ होने लगा। इस प्रकार बुन्देलखण्ड की भाषा में व्यापक परिवर्तन हुआ।

आमोद–प्रमोद के संसाधन

मसीहियों के आगमन के पश्चात् आमोद–प्रमोद के प्रमुख संसाधनों के अतिरिक्त नए संसाधनों का विकास हुआ। चरखारी जैसे राज्यों में आगा हसन के माध्यम से नवीन थियेटर का उदय हुआ तथा नौटंकी के माध्यम से नवीन नाट्य शैली का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त नटों का एक समूह बनाकर सर्कस कम्पनियाँ खोली गयी। वैज्ञानिक संसाधनों के विकास के साथ–साथ सिनेमाघर बुन्देलखण्ड के कई स्थानों पर खोले गए। ग्रामोफोन का विकास हुआ तथा अंग्रेजी शासन के अन्तिम चरण में रेडियों स्टेशनों की स्थापना हुयी, जो मनोरंजन का उत्तम साधन बनें। इतना होते हुए भी परम्परागत मनोरंजन के साधनों में कोई कमी नहीं आयी। इस समय ताश के पत्तों का खेल का विकास हुआ। मनोरंजन की दृष्टि से ब्रिटिश शासन काल की प्रंशसा की जा सकती थी।

मसीही धर्म के आगमन के पश्चात् बुन्देलखण्ड की सामाजिक व्यवस्था में आंशिक परिवर्तन हुआ। रहन–सहन का स्तर बदला कुछ नवीन शैली के भवनों का निर्माण हुआ। पहनावे में परिवर्तन हुआ, सामाजिक संस्कारों में नवीनता देखी, जन–आचरण अन्ध–विश्वास, भ्रष्टाचार और भाई–भतीजेवाद में परिवर्तित हो गया। बुन्देलखण्डी भाषा जो बोलने का माध्यम थी उसके स्थान पर खड़ी बोली का महत्व बढ़ा। आमोद–प्रमोद के विज्ञान जन्य संसाधनों का विकास हुआ। इस तरह बुन्देलखण्ड की स्थिति परिवर्तित होती चली गयी।

मसीही धर्म के आगमन के पूर्व बुन्देलखण्ड के निवासियों की आर्थिक दशा

बुन्देलखण्ड विषम प्राकृतिक संरचना वाला प्रदेश है। कृष्णदत्त बाजपेयी इस प्रदेश की प्राकृतिक संरचना के बारे में अपना विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं– विन्ध्याचल पर्वत की श्रृंखलाएँ नर्मदा नदी के उत्तर में चंबल और सोन नदियों के बीच के लम्बे क्षेत्र में फैली हुयी हैं। इन श्रृंखलाओं के नाम चित्रकूट, मेकल आदि प्रसिद्ध हुए। पहले विन्ध्य पर्वत घने जंगलों से ढका हुआ था और वहाँ विविध प्रकार के अनगिनत पशु–पक्षी रहते थे। इनमें बाघ, हाथी, अरना, भैंसा, हिरन आदि भी थे। यमुना, बेतवा, धसान, केन, सोन, नर्मदा तथा उनकी अनेक सहायक नदियाँ विन्ध्य क्षेत्र में बहतीं हैं। शबर, ब्याध, निषाद आदि लोग यहाँ पहाड़ों की प्राकृतिक गुहाओं में रहते थे। उनके भोजन के लिए पशु–पक्षी और मूल–फल यहाँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान थे।

शिलागृहों की अधिकता, अच्छी जलवायु तथा खाने–पीने की पर्याप्त सामग्री के कारण विन्ध्य के पहाड़ी क्षेत्रों में बड़ी संख्या में आदिमजनों के निवास हुए। वे लोग पशु–पक्षियों का शिकार करते थे। बाद में वे कुछ पशुओं को पालतू बनाने लगे। विन्ध्याचल के अनेक शिलागृहों में बड़ी संख्या में प्राचीन निवासियों के बनाए हुए चित्र मिले हैं। उनसे उन आदिमजनों के जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। पुराणों तथा अन्य प्राचीन साहित्य से भी इन निवासियों के बारे में जानकारी प्राप्त होती हैं।[30]

बुन्देलखण्ड के निवासियों की आर्थिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें बुन्देलखण्ड में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों और खनिज सम्पदा पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। मुख्य रूप से इस परिक्षेत्र में ग्रेनाइट पत्थर, तांबा, लोहा, अभ्रक, संगमरमर तथा हीरे जैसी अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। भूमि की संरचना के अनुसार यहाँ कृषि की उपज होती है। कृषि में खाद्यान्न, तेल, बीज तथा कपास, सन आदि की उपज महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इन्हीं के आधार पर अनेक उद्योग धन्धे यहाँ चलते हैं जिनसे व्यक्ति धन अर्जित करता है। कृषि मुख्य रूप से जलवायु पर

निर्भर करती है। यहाँ ग्रीष्म, वर्षा और जाड़े की ऋतु होती है। इसी आधार पर यहाँ रवि, खरीफ और जायद की फसलें होती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पदार्थ प्रकृति के माध्यम से व्यक्ति को यहाँ उपलब्ध होती हैं जैसे– मकुइया, बेर, करौंदा, तेन्दू, अचार तथा विविध प्रकार के फूल और फल यहाँ के वनों से व्यक्तियों को उपलब्ध हो जाते हैं।

खनिज सम्पदा का धनी होते हुए भी ये प्रदेश गरीब है। यहाँ का व्यक्ति विषम आर्थिक परिस्थितियों से त्रस्त है। प्राकृतिक प्रकोप अनावृष्टि, बहुवृष्टि से यहाँ का व्यक्ति सदैव कष्ट झेलता है। गरीबी से त्रस्त होकर वह नाना प्रकार के अपराधों से जुड़कर वह अर्थ अर्जित करना चाहता हैं किन्तु गरीबी किसी भी प्रकार उसका पीछा नहीं छोड़ती। यदि वह थोड़ा बहुत धन अर्जित भी करता है तो चोर, डकैत, अराजक तत्व, सामन्त जागीरदार, सूदखोर और महाजन उस व्यक्ति का धन अपहरण करने का प्रयत्न करते हैं। धन के अभाव में यहाँ के व्यक्तियों को अनीति से समझौता करना पड़ता है और अपने बाल–बच्चों को बंधुआ मजदूर बना देने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

बुन्देलखण्ड में 'कृषि' की स्थिति

बुन्देलखण्ड में कृषि मुख्य रूप से जलवायु पर निर्भर है। यदि यहाँ की भूमि में अच्छी वर्षा हो जाए तो कृषि भी उत्तम कोटि की हो जाती थी। इसके अतिरिक्त सिंचाई के प्राकृतिक संसाधन भी कृषि को बढ़ाते थे। इस क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली यमुना, सोन, केन, धसान, बेतवा आदि नदियों ने उपजाऊ मिट्टी और विशाल मात्रा में जल प्रदान कर कृषि और प्राकृतिक उत्पादनों की वृद्धि में सहयोग दिया। प्राचीन समय के लोगों की आजीविका कृषि पर केन्द्रित थी, अतः जनता का मुख्य पेशा भी कृषि रहा होगा। खजुराहो कला में कृषि से सम्बन्धित कुछ उपकरण उत्कीर्ण हैं। इनमें खुरपी, हंसिया और हल प्रमुख हैं।[31] अनुमान होता है कि प्राचीनकाल में आजकल की ही तरह हल और बैलों से कृषि की जाती थी। वर्ण्य क्षेत्र के उत्तरी और पश्चिमी भागों में गेहूं, चना और बाजरा मुख्य फसलें थीं। यद्यपि कल्चुरी अभिलेख कलचुरियों के राज्य में होने वाली फसलों का उल्लेख नहीं करते, तथापि चन्देल अभिलेख इस विषय पर रोचक प्रकाश डालते है। त्रैलोक्यवर्मा के सागर ताम्रपत्र[32] से ज्ञात होता है कि असन, इक्षु (ईख) कुसुम, कपसि (कपास), शण (सन), आम और महुआ चन्देल साम्राज्य में अधिकता से होते थे। परमार्दिदेव के पछार ताम्रपत्र[33] में कोरदे का उल्लेख है।

प्राचीनकाल में बुन्देलखण्ड में कृषि की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। यहाँ पर कीमती पैदावार कम होती है और साल भर की सब खेती प्रायः वर्षा ऋतु की यथेष्ट वर्षा पर निर्भर रहती है। परन्तु मालवा के समान यहाँ भी कुछ भूमि में नगरवार (बिना सिंचाई) रबी के अनाज–चना, गेहूं और अलसी होते हैं।

जुलाई में वर्षा का प्रथम पानी पड़ते ही खेती का काम आरम्भ हो जाता है, और किसान लोग जल्दी–जल्दी भूमि जोतकर खरीफ यानी स्यारी की फसल के अनाज ज्वार, मूंग, उर्द, कोदो आदि बो देते हैं, और क्रम से इस फसल के सब बीज भादों अर्थात् सितम्बर तक बोते ही जाते हैं। इनमें से अधिक अनाज हल्की ज़मीन में ही वर्षा के पानी के आधार पर बोए जाते हैं। मोटी भारी ज़मीन में बीज बोने के लिए लोगों को वर्षा और ताव के मौके की राह देखनी पड़ती है।[34]

यहाँ पर राली, कुटकी, बसारा, समा, काकुन, मटा, ज्वार, बाजरा, उर्द, मूंग, मोठ, रौसा, धान, मकाई, गेहूं, बटरा, कुरथी, तिल, सरसों, अलसी, अरंडी आदि की फसलें बोई जाती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ खास उपज जैसे– गन्ना, कपास, सिंघाड़ा, सन आदि यहाँ उत्पन्न होते हैं।

बुन्देलखण्ड में नाना प्रकार के फल और सब्जियाँ उत्पन्न होतीं हैं।

फल – पाकर, भौंर–सिली या मौलसरी, खिरनी, जामुन, केला, नीबू, नारंगी, अनार, चकोतरा, खट्टा, कमरख, अमरूद, लुकाट, फालसा, आडू, अंगूर, नारियल इत्यादि। थोड़े–थोड़े बगीचों में होते हैं।

सब्जियाँ – खरबूज़, तरबूज, कलींदा, घिया, लौकी, पेठा, सीताफल, काशीफल (कुम्हड़ा), खीरा, ककड़ी, सैम, तोरई, भिंडी, फदकुल, बाकलह आदि बाड़ी, छिड़िया या कछवारे में होते हैं। गोभी, बैंगन आदि भी बगीचा व कछवारों में होते हैं।

मूल – जमींकन्द अर्थात् सूरन, अरूई (घुइयां), आलू, रतालू, शलगम इत्यादि।

भाजी – बथुवा, पवॉर, चौका, सोया, पालक, खुरफ़ा, चौलाई, नौरूपा, नौनिया आदि कई प्रकार की भाजियाँ भी बगीचों और कछवारों में होती हैं।[35]

उपरोक्त पदार्थों के अतिरिक्त यहाँ पान धनिया, मिर्च, अदरख, हल्दी, सौंफ, जीरा जैसे पदार्थ भी पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होते थे। किन्तु सिंचाई के संसाधन न होने के कारण कृषि की स्थिति पिछड़ी हुयी थी और कृषक गरीब था।

खनिज–सम्पदा

बुन्देलखण्ड में अनेक प्रकार की खनिज सम्पदा उपलब्ध होती है। चूंकि यह भाग विविध प्रकार के पर्वतों से घिरा हुआ है इसलिए यहाँ अनेक प्रकार के खनिज आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। इस भू–भाग में अनेक प्रकार के पत्थर और धातुएँ उपलब्ध होती हैं। यहाँ के पहाड़ी क्षेत्रों में चूने का पत्थर उपलब्ध होता है। इससे कलई और चूने का निर्माण होता है तथा ऐसा पत्थर भी उपलब्ध होता है, जिससे चक्की, चीप, कूड़ी, काड़ी और प्यालों का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त लोहा, तांबा, बिल्लौर, हीरा और कोयला भी उपलब्ध होता है।

मुख्य रूप से यहाँ खनिज सम्पदा में निम्न वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं –

1– कलई (चूने का पत्थर), 2– गिट्टी, 3– इमारती पत्थर, 4– गौरा पत्थर, 5– संगे–जराहत (जबलपुर), 6– बिल्लौर, 7– अगेट (शजर) बाँदा, 8– चीप कड़ी (पन्ना–चंदेरी), 9– धाऊ, 10– मेगनीज़ (जबलपुर), 11– मिट्टी, 12– मुरम, 13– बजरा, 14– अभ्रक, 15– तांबा, 16– ऐल्यूमीनियम (जबलपुर), 17– कोयला (जबलपुर, बिजावर), 18– फिटकरी (जबलपुर), 19– सोना (जबलपुर), 20– चाँदी (जबलपुर), 21– सीसा (जबलपुर), 22– हीरा (पन्ना) आदि।

वन–सम्पदा

पर्वतों की संख्या अधिक होने के कारण दक्षिणी बुन्देलखण्ड में वनों की संख्या सर्वाधिक है किन्तु उत्तरी बुन्देलखण्ड में पर्वतों के आभाव के कारण वनों की संख्या बहुत कम है। इन वनों से हमें निम्न वृक्ष एवं पौधे उपलब्ध होते हैं– 1– साल (साज), 2– सागौन, 3– तेंदू, 4– महुवा, 5– खैर, 6– बाँस, 7– चंदन, 8– लाल चन्दन, 9– इमली, 10– आम, 11– शरीफा अर्थात् सीताफल, 12– चिरौंजी, 13– ताड़, 14– खजूर, 15– बबूल, 16– बेर, 17– सैमर, 18– सलैया या सालेह, 19– गबदी या गबदू, 20– अमलतास या किरवारा, 21– हड़ुवा, 22– गूलर, कपूर या ऊमर, 23– हलदू, 24– सिंहारू, 25– कचनार, 26– स्यासा, 27– जामुन, 28– चिल्ला, 29– दुधी, 30– करधई, 31– बेल, 32– मुनगा, 33– कुसुम।

इनके अतिरिक्त हजारों पेड़ जैसे कुल्ला या कुल्लू, केमा, जामुन, बेरी, पीपल, बरगद, नीम, तिन्सा, कुमी, जमरासी, करार, बेंकल, सहनवल, चिरोल, धवा या धौ, रचोंजा या रेंवजा, कैथा, सिरसा, ऐरमा, कंजी, बीजा या बीजासाल, सेजा या लेड़िया, बकायन, अशोक, कदम, गुंजा, कांकड़, हर्र, बहेड़ा, आमला, कोहा या कवा, शीशम, छेवला या ढाक या पलास, घोंट, पापड़ा, कारी आदि और

अनेक प्रकार की बूटियाँ अथवा दवाएँ यहाँ के पहाड़ों और जंगलों में होती हैं।

झाड़ियाँ – बड़े–बड़े वृक्षों के अलावा बहुत सी कांटेदार झाड़ियाँ जंगलों में हैं। ये प्रायः निम्न जाति की हैं :– 1– करोंदा, 2– करेल, 3– रियां, 4– चमरेल, 5– माहुल, 6– इंगोट या इंगुवा, 7– सहजना, 8– जरिया या झरबेरी, 9– मकुइया या मकोर, 10– रकत–बिड़ार, 11– गटान, 12– थूहड़, 13– संपाफनी आदि।

जंगली–पैदावार – यहाँ जंगलों से लकड़ी के अलावा निम्न पैदावार भी बहुत निकलती हैं :– लाख, गोंद, मोम, शहद, वैचांदी, सफेद मूसली, बंसलोचन, कत्था, बिलाईकन्द, लक्ष्मनकन्द, कुसेरा, साँभर–सींग, चमड़ा, खखूदन, नौती, धवई, हड्डी, महुवा, अचार, आंवला, हर्र, बहेड़ा आदि।

घास – यहाँ प्रायः निम्नलिखित जाति की घासें पायी जाती हैं :–

1– पखेवा या पखी या पखा, 2– केल या कैला, 3– मुसयाल या मुसेल, 4– गनेर या गुनैया या गुनर या गुनारू, 5– सौंटा या सरका, 6– कुश या कांस, 7– धुनियां समाई, 8– सैद या भानुपूरी या सैना, 9– रोसा या रोहस, 10– उकारी, 11– दूब, 12– लियासा, 13– लंपू, 14– मुरजना, 15– गन्दली, 16– तिगुड़ा, 17– पनबसा, 18– पंडप इत्यादि।

पशु–पक्षी – पशु–पक्षियों से भी आर्थिक सम्पन्नता का पता लगता है। इस क्षेत्र में मुख्य रूप से गाय, भैंस, बकरी, भेंड़, ऊँट, घोड़ा और खच्चर आदि पशु यहाँ बहुत अधिक पाले जाते हैं। इनसे व्यक्ति को दूध, दही, मक्खन, ऊन के अतिरिक्त मांस और चमड़े की भी उपलब्धि होती हैं। बुन्देलखण्ड में निम्नलिखित जीव–जन्तु होते हैं –

1– शेर, 2– तेंदुवा, 3– चीता, 4– भालू, 5– सिंयार, 6– भेंड़िया, 7– कुत्ता, 8– खरगोश, 9– सेही, 10– सुअर, 11–हिरन, 12– रोझ या नीलगाय, 13– चिनकारा, 14– सांभर, 15– चीतल या चीतरा, 16– चौसिंगा, 17– भेंड़िया, 18– लोमड़ी, 19– खरगोश, 20– बन्दर, 21– चमगादड़, 22– नेवला, 23– सांप, 24– बीछी, 25– गोह, 26– गोहरा, 27– छिपकली, 28– गिरगिट, 29– छछून्दर, 30– मेंढ़क तथा 31– विविध प्रकार की मछलियाँ, 32– मोर, 33– बगुला, 34– सारस, 35– तोता, 36– कौआ, 37– मुर्गा, 38– बत्तख, 39– बटेर, 40– राजहंस, 41– छपका, 42– लाल मुनैया, 43– गलगलिया, 44– पनडुब्बी, 45– कबूतर आदि यहाँ उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ के जंगलों में अनेक प्रकार के हाथी उपलब्ध होते हैं। इन हाथियों को बड़े–बड़े जागीरदार और राजा–महाराजा अपने यहाँ रखते हैं तथा बैल और गायों को व्यक्ति कृषि कार्यो हेतु पालता है। अनेक स्थलों में पशु बाजार लगते हैं। जहाँ व्यक्ति पालतू पशु बैल, गाय, घोड़ा, टट्टू, खच्चर, ऊँट, गदहा, बकरी और भेड़ खरीदने जाते हैं। ये बाजार निम्नलिखित हैं –

जिला सागर में	–	गढ़ाकोटा और खुरई।
जिला दमोह में	–	दमोह नगर।
जिला हमीरपुर में	–	सुमेरपुर, राठ और महोबा।
जिला झाँसी में	–	मऊ।
जिला जबलपुर में	–	पनागर और मझोली।
जिला बाँदा में	–	पैलानी, करवी, मटौंध, अतर्रा, नरैनी और सरधुवा।

व्यापार एवं उद्योग

व्यापार के माध्यम से बुन्देलखण्ड की आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन किया जा सकता है। जब कोई उत्पादक अपने उत्पादित माल को व्यापारी के हाथ में बेंचता है और वह व्यापारी उस माल को किसी अन्य व्यापारी अथवा उपभोक्ता को लाभ की आशा से बेंचता है तो इस सम्पूर्ण प्रक्रिया

को व्यापार कहते हैं। इस व्यापार में उत्पादक थोक विक्रेता, फुटकर विक्रेता और उपभोक्ता शामिल होते है। इस व्यापार में माल के बदले माल और माल के बदले मुद्रा का आदान–प्रदान होता था। व्यक्ति अपना माल व्यापारिक स्थलों को बिक्री के लिए ले जाया करता था। माल की गुणवत्ता के आधार पर प्रचलित मुद्रा से उसका मूल्य निर्धारित किया जाता था।

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पत्थर, कोयला, लोहा, जिप्सम, गेरू और रामरज के भण्डार मिले हैं।[36] त्रैलोक्य वर्मा के सागर ताम्रपत्र[37] में सोना, लोहा और नमक का उल्लेख है। पन्ना में हीरों की प्राप्ति होती है। डॉ0 एच0डी0 सांकलिया[38] का विचार है कि पन्ना से प्राप्त हीरों के कारण चन्देलों ने स्वर्ण मुद्राएँ बनवाई और खजुराहो के भव्य एवं गगनचुम्बी देवालयों का निर्माण कराया। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि चन्देलों के किसी भी अभिलेख में हीरों का उल्लेख नहीं हुआ। जब सोना, लोहा और नमक जैसी वस्तुओं का उल्लेख दानपत्रों में किया गया है। तब यह युक्ति संगत था कि हीरा जैसी मूल्यवान वस्तु का भी उल्लेख किया जाता। चन्देलों ने सर्वप्रथम कीर्तिवर्मा के शासन काल में कलचुरि कर्ण पर विजय प्राप्त कर अपनी मुद्राओं का निर्माण कराया। इस समय तक प्रायः मन्दिरों का निर्माण समाप्त हो चुका था। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि चन्देलों की समृद्धि का कारण पन्ना के हीरे थे।

यहाँ का निवासी आवश्यक वस्तुओं की खरीद बाजार से करता था। प्राचीनकाल में भी बुन्देलखण्ड में अनेक बाजार थे। इस सन्दर्भ में टीकमगढ़ (अहार) में एक अभिलेख उपलब्ध हुआ।[39] बाजारों को *'मंडपिका'* के नाम से संबोधित किया जाता था। इन बाजारों में विविध प्रकार की वस्तुएँ खरीदी और बेची जातीं थीं तथा खरीद और बिक्री की वस्तुओं में शासन द्वारा कर भी लगाया जाता था। प्रमुख रूप से यहाँ निम्न वस्तुओं का व्यापार होता था –

1. खनिज व्यवसाय – सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जो वस्तुएँ हमें जमीन के अन्दर और जमीन के बाहर उपलब्ध होती थीं यहाँ के लोग उनका व्यवसाय करते थे। मुख्य रूप से कीमती धातुएँ लोहा, सोना, चाँदी, जस्ता आदि धातुओं का व्यवसाय करते थे। इसके अतिरिक्त ग्रेनाइट पत्थर, संगमरमर, चूने का पत्थर और इमारती पत्थर का भी व्यवसाय होता था। कीमती रत्न, हीरे, जवाहरात, मोती, माणिक्य, नीलम इत्यादि बाहर से यहाँ मंगाये जाते थे। और इनके स्थान पर हीरे का निर्यात यहाँ से होता था।

2. वन–सम्पदा का व्यवसाय – जो वस्तुएँ वन में उत्पन्न होती थीं। उनका व्यवसाय भी यहाँ होता था। मुख्य रूप से इमारती लकड़ी, जलाऊ लकड़ी, लाख तथा वन में उत्पन्न होने वाले विशिष्ट औषधियाँ, घास, फल–फूल इत्यादि का व्यवसाय यहाँ पर होता था। पशु अस्थियाँ, पशु चर्म तथा जंगली उपज जैसे मोम, शहद, लाख आदि का व्यवसाय यहाँ के व्यापारी करते थे। अतिरिक्त उपज को अन्यत्र भेजा जाता था।

3. कृषि उपज व्यवसाय – यहाँ के व्यवसायी विविध प्रकार के अनाज और तिलहन, बाजों आदि का व्यवसाय करते थे। व्यवसायी वर्ग कृषक उत्पादकों से फसल कटने के पश्चात् थोक में अनाज खरीद लेता था और उस अनाज को फुटकर विक्रेताओं को बेंच देता था। और कुछ अनाज को वह बाहर बाजारों में बिक्री के लिए भेज दिया करता था।

4. महाजनी एवं सराफा व्यवसाय – यहाँ पर अनेक व्यवसायी ऐसे थे, जो रूपये के लेन–देन का व्यवसाय करते थे। ये लोग सोना, चाँदी व जमीन जायदाद को रहन या गिरवीं रखने के पश्चात् छोटे व्यवसायियों, किसानों और मजदूरों को निश्चित ब्याज पर रूपया उधार दिया करते थे। जब कोई व्यक्ति इनका कर्ज़ अदा न कर पाता था तो ये लोग उसकी सम्पत्ति का अपहरण कर लिया

करते थे। विपत्ति के अवसर पर ये लोग राजा–महाराजाओं को भी कर्ज देते थे।[40]

कुछ व्यवसाय यहाँ पर उद्योगों पर आधारित थे। प्राचीनकाल में यहाँ कोई भी सामान कारखानों में निर्मित नहीं होता था। सभी वस्तुएँ हाथ से बनाई जाती थीं। उत्पादक वर्ग इन वस्तुओं को व्यापारी अथवा उपभोक्ताओं को बेंच देता था और इस प्रकार वह अपना काम चलाता था। ये उद्योग निम्नलिखित हैं –

1. कपड़ा उद्योग – बुन्देलखण्ड के प्रत्येक जनपदों में हाथ से कपड़ा बनाया जाता था। इस कपड़े को कबीरपंथी या कोरी या बुनकर या जुलाहे बनाते थे तथा छीपा लोग कपड़े में छपाई का कार्य करते थे। सूती कपड़ा कपास से बनता था, ऊनी कपड़ा भेड़ की ऊन से बनता था, तथा टाट पट्टी, सन और सुतली से बनती थी। रेशमी कपड़ा रेशम से बनता था। कपड़े के लिए मऊरानीपुर, कर्वी, चन्देरी, चरखारी और दतिया आदि स्थान काफी प्रसिद्ध थे।

2. धातु उद्योग – बुन्देलखण्ड में धातु उद्योग अति प्राचीन उद्योग है। यहाँ पर तांबा, पीतल और फूल के बर्तन अनेक नगरों में बनते है। मुख्य रूप से छतरपुर, खरगपुर, हटा, दमोह में धातु का अच्छा काम होता है। श्रीनगर में धातु की मूर्तियाँ और अच्छे खिलौने बनते हैं। यहाँ फूल और कांसा का काम कई स्थानों पर होता है।

सोने, चाँदी के आभूषण सुनार लोग साधारण तथा सभी गाँवों में बना लेते हैं। कांसा आदि के भद्दे आभूषण भी ढाले जाते हैं और उनको ग्रामीण स्त्रियाँ पहनती हैं। ढलाई के आभूषण बनाने वाले सुनार सर्वत्र नहीं हैं, वे हटा आदि में हैं। मौदहा के सुनार चाँदी की सुन्दर और लचीली मछलियाँ बनाते हैं।

3. प्रस्तर उद्योग – यहाँ के विविध कलाकार पत्थरों की विविध वस्तुएँ बनाते हैं। प्रमुख रूप से आटा चक्की, कूड़ियाँ, कांड़ियाँ, प्याले तथा पत्थरों की मूर्तियाँ का काम यहाँ होता है। यह काम बाँदा एवं कटनी के आस–पास प्रमुख रूप से होता है।

4. चर्म उद्योग – यहाँ अनेक क्षेत्रों में मृत पशुओं के चर्म से विविध प्रकार की वस्तुएँ बनायी जाती थी। मुख्य रूप से जूता–चप्पल, पानी भरने के मशक तथा घोड़ों की जीन्स, पशुओं के पट्टे आदि चमड़े से निर्मित होते थे। इसके अतिरिक्त अस्त्र–शस्त्र के कवर भी चमड़े से बनते थे।

5. काष्ठ उद्योग – बुन्देलखण्ड में इमारती लकड़ी सर्वत्र पायी जाती है। यहाँ के कारीगर, घर में उपयोग होने वाले विविध समानों के अतिरिक्त लकड़ी के खिलौनें, निगाली, पलंग, शतरंज की मोहरें, चक्करी, कंघी आदि निर्मित करते थे। कुछ कारीगर लकड़ी पर बहुत अच्छी नक्काशी भी करते थे।

6. मिट्टी का उद्योग – यहाँ के कुम्हार मिट्टी से विविध प्रकार के बर्तनों का निर्माण करते थे, किन्तु सर्वाधिक उत्तम कोटि के बर्तन ललगवॉ (छतरपुर), दमोह, जबलपुर आदि में निर्मित होते थे। टीकमगढ़ तथा मऊ में मिट्टी के खिलौने बहुत अच्छे बनते थे।

7. कागज उद्योग – बुन्देलखण्ड का कागज उद्योग भी मुग़ल कालीन उद्योग है। पहले यह कागज विविध वस्तुओं से निर्मित होता था। कालपी इसके लिए सबसे प्रसिद्ध स्थान था, यहाँ उत्तम कोटि का कागज बनता था। बुन्देलखण्ड के विविध रियासतों में इसी कागज पर लिखा–पढ़ी होती थी। तथा इसी पर विविध प्रकार के चित्र बनाए जाते थे। निम्नलिखित वस्तुएँ बुन्देलखण्ड से बाहर भेजी जाती थी –

कपास, अनाज, तेलहन, महुवा, घी, पत्थर, लकड़ी (जलाऊ), बाँस, बैल आदि मवेशी, घास, पान, ज्वार, तिली, अलसी, खारुवा, हड्डी, चमड़ा, चना, दाल, लाख, मोम आदि। निम्नलिखित वस्तुएँ

बाहर से बुन्देलखण्ड में आयात की जाती थी–

गेहूँ, चावल, नमक, शक्कर, बिसात खाना, मिट्टी का तेल, कपड़ा, लोहा, औषधियाँ (अंग्रेजी) इत्यादि।

व्यापार के उपयोग में लायी जाने वाली मुद्रा

प्राचीन काल में यहाँ दो प्रकार के राज्य थे। प्रथम प्रकार के राज्य वंश परम्परा के अनुसार चलते थे और द्वितीय प्रकार के राज्य गणतन्त्रात्मक राज्य थे जिन्हें महाजनपद कहा जाता था। इस क्षेत्र में अनेक प्रकार की मुद्राएँ प्रचलित थीं। मुख्य मुद्राएँ एरक[41], वेदिदस[42], त्रिपुरी[43], के नाम उत्कीर्ण हैं। प्राचीन साहित्य तथा अभिलेखों में अनेक निगमों का उल्लेख मिलता है। चेदि राष्ट्र में स्थित सहजाति ऐसी ही 'निगम' था। इसका नाम ई0पू0 तीसरी शती की एक मुहर पर *"सहजातिए निगमस"*[44] अंकित मिला है।

कुछ समय बाद यहाँ चन्देलकालीन सिक्के प्रचलन में आए। सुवर्ण, चाँदी और ताम्र के कई तौल– द्रम, अर्द्ध तथा पाद– के बराबर सिक्के मिलते हैं।[45] सिक्कों की तौल – तत्कालीन प्रायः सभी राज्यों में समान पायी जाती थी। तौल के कारण ही सुवर्ण द्रम के नाम से पुकारा जाता था। *'भारतीय–ससैनियन'* सिक्के ग्रेन के बराबर मिलते हैं। चन्देलों के यहाँ टकसाल की उत्तम पद्धति थी। इसमें सन्देह नहीं। यों तो मध्य कालीन सिक्के कला की दृष्टि से गिर गए थे, फिर भी गांगेयदेव के सिक्कों से उत्तम सिक्के चन्देलों ने परिष्कृत कर तैयार कराए।

इसी प्रकार कल्चुरियों ने भी अपनी मुद्रायें प्रचलित करायीं तथा ये भी व्यवसाय में प्रचलित रहीं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में चन्देल और बघेलखण्ड क्षेत्र में कलचुरि शक्ति का विकास हुआ। कलचुरि नरेश गांगेयदेव ने स्वर्ण, रजत तथा ताम्र मुद्राएँ चलायीं। स्वर्ण मुद्राओं को विजयसिंह के रीवा प्रस्तर अभिलेख[46] में टंक कहा गया है। इसका अधिकतम वजन 65 ग्रेन तक है। टंको के अतिरिक्त अर्द्ध टंक, चतुर्थ तथा अष्टभागी टंक तक मिले हैं। अर्द्ध टंक को धरण कहते थे।[47] अर्द्ध टंक से छोटी मुद्रा के नाम अज्ञात है। प्रतीत होता है कि चन्देलों की स्वयं की मुद्रा के पूर्व उनके साम्राज्य में गाधिया सिक्के प्रचलित थे। उनके अभिलेखों में मुद्राओं के लिए *"पल"*[48] और *"हाटक"*[49] नाम मिलते हैं।

कुछ काल बाद यहाँ तुर्क और मुगुलकालीन मुद्राएँ प्रचलन में आयीं। इस क्षेत्र में अकबरी मोहर, शाहजहाँनी, दीनार साई, औरंग साई, अहमद साई, गोपाल साई, गजा साई, राजशाही, किशोर साई, चरखारी का रूपया, राजा साई, अलीपुरा का रूपया, जालौन का रूपया, कालपी का कलदार, नाना साई, तरहवां का रूपया, मौदहा का रूपया और विविध प्रकार के सिक्के सोने, चाँदी और तांबे के चलते थे। इनसे यहाँ का व्यापार सम्पन्न होता था।

व्यापार में नाप–तौल

बुन्देलखण्ड में नाप–तौल के विभिन्न पैमाने और बाँट प्रचलित थे। प्राचीन काल में भूमि पैमाइश के लिए निवर्तन का प्रयोग होता था।[50] यह 40 दण्ड चौड़ा और 40 दण्ड लम्बा होता था तथा एक पैमाना हल होता था, जिसकी पैमाइश 5 एकड़ भूमि के बराबर होती थी।[51] इसके अतिरिक्त खाड़ी, पिटक, प्रस्थ खण्डिका, गोणी, घटी का प्रयोग होता था।[52] अनेक अभिलेखों में भरक आदि तौल के मापकों का उल्लेख मिलता है। चन्देल युग के पश्चात् यहाँ तौल के निम्न पैमाने थे :–

1– 4 पोली = 1 चौरी,
2– 2 चौरी = 1 चौथिया,
3– 2 चौथिया = 1 अद्धा,
4– 2 अद्धे = 1 पैला,
5– 2 पैला = 1 पैली
6– 2 पैली = 1 माना
7– 8 माना = 1 मानी या गौन।

कैया – मिट्टी का एक डबुलिया या कुल्हड़ होता है। इससे दूध, घी, तेल आदि द्रव पदार्थ नापते हैं। यह तौल में 4 टका भर होता है।

पौसेरिया – मिट्टी का कुल्हड़ जिसमें पाव सेर के लगभग तेल, घी, दूध आदि आता है।

बुन्देलखण्ड में आवागमन के संसाधनों का आभाव था, इसलिए आयात–निर्यात दोनों की दृष्टि से यहाँ का व्यापार बहुत उन्नतशील नहीं था। उद्योगों का लाभ चन्द पूँजीपतियों को होता था। आर्थिक दृष्टि से यहाँ की जनता शोषण का शिकार थी। खनिज सम्पदा का धनी होते हुए भी यहाँ का व्यक्ति इससे लाभ नहीं उठा सकता था। अधिकांश जनता कुटीर उद्योग और मजदूरी तथा कृषि से अपना जीवन यापन करती थीं। कभी–कभी प्राकृतिक आपदाएँ व्यक्ति को भूखा मारती थी तथा व्यक्ति आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए या तो भीषण अपराध में कूद पड़ता था, या फिर विश्वासघाती बन जाता था, यहाँ के लोग आर्थिक परिस्थितियों के कारण ही चारित्रिक दृष्टि से दुर्बल थे। अंग्रेजों के आने तक यह स्थिति बनी रही।

मसीहीं धर्म के आगमन के पश्चात् बुन्देलखण्ड के निवासियों की आर्थिक दशा

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् बुन्देलखण्ड के निवासियों की आर्थिक दशा में परिवर्तन हुआ, क्योंकि जब सन् 1804 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी यहाँ पर आयी, उस समय उसका उद्देश्य केवल यहाँ के निवासियों से आर्थिक लाभ उठाना था क्योंकि कोई भी कम्पनी जनहित में ध्यान न देकर केवल अपने लाभ के लिए कार्य करती है। उसने जिन देशी नरेशों से सन्धियाँ भी की थी, उन सन्धियों का कारण राजनीतिक कम और आर्थिक लाभ उठाना अधिक था।

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में जातीय व्यवस्था वंश परम्परा के साथ–साथ आर्थिक आधार पर भी थी। प्रत्येक जाति का अपना अलग व्यवसाय था, किन्तु कभी–कभी प्राकृतिक आपदाएँ व्यक्ति के जीवन में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न कर देती थीं। "अंग्रेजों के आगमन से पूर्व देश के आर्थिक ढाँचे के गुण अथवा दोष क्या थे ? भारतीय किसान, कारीगर और व्यापारी सदा की भाँति कृषि, कारीगरी और व्यापार में अपनी परम्परागत आस्था के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार रहे गाँवों में सदियों से चली आ रही सामाजिक व्यवस्था– जाति और संयुक्त परिवार– में रहकर लोग अपने–अपने कार्यो में दक्ष हुए। आर्थिक समन्वय तथा समायोजन की समस्या के साथ इन का गहरा संबन्ध रहा है।[53]

इस समय बुन्देलखण्ड के गाँव आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे, ये गाँव आर्थिक दृष्टि से और प्रशासनिक दृष्टि से स्वतन्त्र थे। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व ये अपनी आर्थिक आवश्यकताएँ स्वतः पूरी कर लेते थे। जब किसी गाँव में साप्ताहिक बाजार लगा करते थे उस समय वे अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ वहाँ से खरीद लेते थे। कभी–कभी वार्षिक मेलों से भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। ये लोग भोजन की सामग्री पैदा करते थे, खेती–बाड़ी के औज़ार बनाते थे और आवश्यकता के बर्तन बनाया करते थे। बढ़ई, तेली और लोहार गाँव में ही रहा करते थे, गाँव में लोग सामान के बदले सामान लिया करते थे। कभी–कभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति अपने सोने, चाँदी के ज़ेवरों को रहन कर दिया करते थे।

गाँव में रहने वाले अधिकांश किसान गरीब थे, उन्हें अपनी फसल तैयार करने के लिए पूँजीपतियों से कर्ज लेना पड़ता था। "साहूकार गरीब किसानों को मुश्किल के समय में अपना काम चलाने के लिए और उत्पादन के लिए आवश्यक पूँजी देकर एक लाभप्रद सेवा करता था। लेकिन कई बार यह साहूकार किसान का बेहद शोषण करता था। यहाँ तक कि उनकी जमीन तक हड़प

जाता था। साहूकारों की ब्याज की दर बहुत ज्यादा होती थी। अगर साहूकार के पास अपनी जमीन होती थी तो वह पैसे के बदले अनाज उधार देता था।[54]

दीवान प्रतिपाल सिंह इस बात का उल्लेख करते हैं कि बुन्देलखण्ड के राज्यों में ब्रिटिश राज्य के बड़े–बड़े बैंकों की शाखाएँ नहीं हैं। रूरल सोसाइटियाँ अथवा कोआपरेटिव सोसाइटियाँ तथा बैंक भी राज्यों में नहीं हैं। गाँवों के महाजनों अथवा राज्य के इंतिजामों पर ही लोगों के कारोबार निर्भर हैं।

अंग्रेजी जिलों में इलाहाबाद बैंक अथवा अन्य बैंकों की शाखाएँ हैं तथा कितने ही बड़े–बड़े योरोपियन तथा देशी महाजन हैं और रूरल सोसाइटियाँ जगह–जगह कायम हैं। ज़ेवर और अन्य वस्तुएँ गहने रखने का भी व्यापर बहुत चलता है परन्तु इस व्यापार के संबन्ध में चोरी आदि का माल पहुँच जाने के सिलसिले में बहुत से महाजन बरबाद होते हैं, इससे अब गिरवीं रखने का व्यापार बहुत कुछ टूट सा गया है।

गहने पर सूद का भाव कम है। वह साधारण ऋण के सूद की दर से प्रायः पौन अथवा आधा ही होता है, क्योंकि महाजन के पास माल रहता है। प्रायः देखा जाता है कि राज्यों की महाजनी गिरती जाती है, परन्तु अंग्रेजी जिलों में साधारण अथवा महाजनों आदि की स्थिति बहुत तेजी से उन्नति करती जा रही है।[55]

बुन्देलखण्ड में जातीय प्रणाली का आर्थिक गतिविधियों से घनिष्ट सम्बन्ध था। यद्यपि जातीय व्यवसाय आर्थिक दृष्टि से समान नहीं था फिर भी प्रत्येक जाति को कुछ–न–कुछ कार्य मिला हुआ था जिससे अपने घर का खर्च चलाते थे। यहाँ निवास करने वाला आदिवासी और अर्द्ध आदिवासी आर्थिक दृष्टि से कुछ–न–कुछ करता रहता था। ब्राह्मण वर्ग ही धार्मिक कार्यों के माध्यम से अपनी आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी कर लेता था। आर्थिक कमजोरी का कुछ कारण और भी थी। प्रतिस्पर्धा के कारण व्यक्ति सामाजिक समारोहों में और मेलों में बहुत अधिक पैसा खर्च कर देते थे जिनसे उनकी आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती थी। अग्रेजों के आगमन के पश्चात् जो दोहन यहाँ की जनता का हुआ उससे यहाँ की आर्थिक स्थिति काफी कमजोर हो गयी और व्यक्ति शोषण का शिकार हुए।

कृषि

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् कृषि की स्थिति में व्यापक परिवर्तन हुआ। यद्यपि कृषक भूमि की गुणवत्ता के अनुसार कृषि कार्य करता था। रवी, खरीफ और जायद की फसलें यहाँ बोई जाती थी। यहाँ का कृषक अन्ध–विश्वास का शिकार था उदाहरण के लिए आमावस्या के दिन खेत में हल न चलाना, बोआई के समय बाल न बनवाना, बोआई के खत्म होने पर हल की पूजा करंना, बोआई समाप्त होने पर बचे अनाज को दान में देना तथा कुछ गरीब जातियों को घर में आमन्त्रित करना, तथा फसल काटने के समय खेत की पूजा करना तथा कुछ विश्वास जिनकों वे मानते थे वे वैज्ञानिक भी थे और उनसे उन्हें लाभ भी होता था। वे इस प्रकार हैं :

तपैं मृगसिरा तलफें चार, बन बालक और भैंस उखार।। 1।।
मघा सुरेसा लागै जोर, उर्द तिली घर धरै बहोर ।। 2।।
बरसन लागी स्वांत बिसांत, चलै न कोलू बजै न तांत ।। 3।।
जो डारै मोय टोर मरोर, ताकौं कुठिंला डारौं फोर ।। 4।।
हथिया पूंछ डुलाई, घर बैठे जुनरी आई ।।5।।
पूर्व पुनर्बस बैये धान, और न करिए खेती आन ।। 6।।

आद्रा लगी बीज भुइँ लेय, पिया बिना को आदर देय ।। 7।।

स्वाती गोहूं आद्रा धान; ना ब्यापै कीरा और धाम ।। 8।।

हथिया बरसें तीन हों, जुनरी, तिली, कपास ।। 9।।

आद्रा झिरें पुनर्बस जाय, दीन अन्न कोऊ ना खाय ।। 10।।

असढ़ै जोतैं लरकावारें, सावन भादौं मेहर बारे।

क्वारै जोतैं घर को बेटा, तब सब जोतैं ऊंचे उनारे ।। 11।।

सावन सुक्ला सप्तमी, ऊवत देखे भान।

कै जल मिलै–समुद्र में, कै कामिनी कूप नहान ।। 12 ।।

बरसन लागी उत्तरा, कोंदों न खाय कुत्तरा ।। 13 ।।

माघे गरमी जेठे जाड़, नदी नार बहि चलै असाढ़।

अस बोलै भड्डर कै जोय, आसौं बरसा धौं कर होय ।। 14 ।।

उत्तम खेती जिन हर गहा, मध्यम खेती जो सँग रहा।

साँझ सबेरे पूछे जोत्यौ कहां, बरदा बीजौ बरिगा तहां ।। 15 ।।

उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान ।। 16 ।।

संदेसन खेती ।। 17 ।।

बरसौ राम पकै धुनियां। खाय किसान मेरे बनियां ।। 18 ।।

तपन मृगसिरा जे सहैं ते आद्रा पलुहंत ।। 19 ।।

उपरोक्त कहावतों से यहाँ की कृषि का प्रक्रियात्मक स्वरूप का पता लगता है।[56]

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् यहाँ सर्वप्रथम कृषि व्यवस्था पर ध्यान दिया गया। इसके पहले यहाँ कृषि वर्षा पर निर्भर थी। कभी–कभी अनावृष्टि–बहुवृष्टि और भयंकर तूफान आदि से फसल नष्ट हो जाया करती थी इसलिए अंग्रेजों ने पानी उपलब्धता पर सर्वाधिक जोर दिया और सिंचाई के कृत्रिम संसाधनों का विकास किया गया, इसके लिए अनेक तालाब, कुएँ खोदे गए तथा बाँध बनाकर सिंचाई के लिए नहरें निकाली गयी। बुन्देलखण्ड में कुछ प्राकृतिक झीलें भी थी जिनसे सिंचाई की जा सकती थी। बाँदा जिले के सिपून गाँव में एक झील थी जिसका उपयोग सिंचाई के लिए होता था। इसके अलावा यहाँ अनेक तालाब थे जिनका निर्माण राजा–महाराजा और भूस्वामियों ने कराया था। ये तालाब चन्देल, गौड़ तथा बुन्देले नरेशों ने बनवाए हैं। इन तालाबों में वर्षा का जल भर जाता है जिनसे सिंचाईं की जाती है। बाँदा जिलें में 2 तालाब सबसे बड़े हैं। झाँसी जनपद में 31 तालाब है, इसके अतिरिक्त अन्य तालाबों की संख्या 60 है। हमीरपुर में 39 तालाब हैं, ओरछा राज्य में 8 तालाब हैं, दतिया राज्य में 9 तालाब हैं, पन्ना राज्य में 7 तालाब हैं, चरंखारी राज्य में 5 तालाब हैं, बिजावर राज्य में 5 तालाब हैं, छतरपुर राज्य में 9 तालाब हैं।

तालाबों के अतिरिक्त अंग्रेजी समय में नहरों का निर्माण किया गया था। यहाँ के किसान कुओं और तालाबों से पानी लेकर कुछ खेती करते चले आते हैं, परन्तु यही काफ़ी नहीं है। इसलिए ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने चुने हुए प्राचीन तालाबों से नहरें निकाल देने के अलावा बड़ी–बड़ी नदियों से बाँधकर उनसे भी नहरें निकाली हैं। इन नहरों के जल से लाखों बीघे जमीन में पूर्ण भरोसे के साथ अच्छी खेती हो जाती है। अब तक इन नहरों के निर्माण से केवल अंग्रेजों की अधिकृत जमीन को ही सहायता पहुँचती है, देशी राज्यों की प्रजा को उनसे कोई लाभ नहीं होता है। अब तक सरकार ने ऐसी 8 नहरें बुन्देलखण्ड के अंग्रेजी जिलों में निकाली हैं। उनका ब्योरा इस प्रकार है :–

बाँदा जिले में – 1 केन की नहर, 2 पैसुनी की नहर और 3 ओहन की नहर।

हमीरपुर जिले में — 1 बेतवा की नहर और 2 धसान की नहर।

जालौन जिले में — 1 बेतवा की नहर।

झाँसी जिले में — 1 बेतवा की नहर और 2 पहूज की नहर।[57]

नहरों के अतिरिक्त यहाँ कुओं से भी सिंचाई होती थी। इस क्षेत्र में कुएँ हजारों की संख्या में उपलब्ध होते हैं। कृषक लोग पानी निकालने के लिए रहँट, चरसा और ढुरकी से पानी निकालते हैं। कुओं के माध्यम से बहुत बड़ी खेती की सिंचाई नहीं हो पाती। कभी–कभी ओला, टिड्डी, गिरूवा, कंडवा, पाला, खपश आदि से कृषि को नुकसान होता है। अंग्रेज सरकार ने कृषि उपज पर नाना प्रकार के कर लगाए। यह कर उन्होंने सम्पत्ति लूटने की दृष्टि से लगाए। ये कर पूंजीपतियों, व्यापारियों और कृषकों पर लगाए। जो कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी जनता से वसूल करती थी वह विदेश भेज देती थी। प्रत्येक ग्रामों में मालगुजारी पर विशेष कर लगाए गए। इसमें कुछ तरीके अन्यायपूर्ण थे।

असल में रैयतवाड़ी प्रणाली का उद्‌देश्य लगान को उसी तरह स्थायी कर देना था जिस तरह स्थाई समझौते के अन्तर्गत किया गया था। लेकिन कुछ समय के बाद सरकार ने यह फैसला किया कि कुछ अवधि के लिए समझौते करना ठीक होगा लेकिन इससे किसान को असुरक्षा की भावना का शिकार होना पड़ा। उसे इस बात की आशंका रहती थी कि लगान बहुत ज्यादा आंका जाएगा और इसलिए वह नए समझौते नहीं करना चाहता था। प्रणाली का एक और दोष यह था कि जब तक किसान लगान देता रहता था तब तक वह अपनी जमीन का मालिक था लेकिन अगर यह कभी लगान चुकाने में विफल हो जाता था तो सरकार उसकी जमीन सीधे अपने हाथ में ले सकती थी। सरकारी अधिकारियों द्वारा आंका गया लगान बहुत अधिक होता था जो कभी–कभी बेचारे किसान के लिए बहुत कष्टदायक हो जाता था। रैयत को अक्सर लगान वसूल करने वाले सरकारी कर्मचारियों के दमन का शिकार होना पड़ता था। इस प्रकार सरकार और जमीन पर हल जोतने वाले किसान के बीच सीधा संबन्ध हमेशा ही वरदान नहीं होता था।[58] करों के बोझ के कारण कृषक विभिन्न समस्याओं से ग्रसित हो गया और कृषि की स्थिति बिगड़ गयी। इसके कारण लाखों एकड़ भूमि पर कृषि नहीं की जा सकी। एक ओर शासन किसानों का खून चूस रहा था और दूसरी ओर साहूकार, जमींदार किसानों का शोषण कर रहे थे।

खनिज सम्पदा

जो खनिज सम्पदा बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होती थी उसका लाभ ब्रिटिश शासन काल में सामान्य जनता को नहीं मिला। वनों में उत्पन्न होने वाली सम्पदा जिनमें नाना प्रकार की लकड़ी, वृक्ष, झांड़ियाँ, जंगली पैदावार, घास और वन औषधि जो भी उत्पन्न होता था उसमें सामान्य व्यक्ति को केवल मजदूरी ही उपलब्ध हो पाती थी। समस्त कच्चा माल पूंजीपतियों द्वारा मजदूरों से खरीद लिया जाता था और यह सारा सामान पूंजीपति उद्योगपतियों के हाथ में बेंच दिया करते थे। इसी प्रकार नाना प्रकार की खनिज सम्पदा जिनमें विभिन्न प्रकार की धातुएँ, पत्थर, कोयला तथा कीमती रत्न शामिल थे। वे भी पूंजीपतियों को ही लाभ पहुँचाते थे। पन्ना में हीरा की खदानें कोई सामान्य व्यक्ति नहीं खुदवाता था। इन खानों को बड़े–बड़े रहीस, जमींदार, जागीरदार खुदवाया करते थे। जिसके कारण गरीब मजदूर केवल मजदूरी ही उपार्जित करते थे। आय के समस्त स्रोत या तो शासकों के हाथ में थे या फिर पूंजीपतियों के हाथ में थे। बुन्देलखण्ड में उपलब्ध खनिज–सम्पदा इतनी अधिक थी कि उससे बुन्देलखण्ड के निवासियों की आर्थिक हालत में पर्याप्त सुधार लाया जा सकता था। यह सम्पत्ति प्रतिवर्ष अरबों रूपया यहाँ के शासकों को प्रदान करती थी किन्तु उससे

जन सामान्य को कोई लाभ नहीं हुआ और न उस खनिज सम्पदा से बुन्देलखण्ड में कोई नए उद्योग स्थापित किए गए।

व्यापार एवं उद्योग

ब्रिटिश शासन काल में सरकार की वाणिज्य नीति के कारण बुन्देलखण्ड के निवासियों को व्यापक नुकसान उठाना पड़ा। यद्यपि वाणिज्य नीति में समय–समय पर परिवर्तन होते रहे परन्तु उसका लाभ बुन्देलखण्ड निवासियों को नहीं हुआ। ये वाणिज्य नीतियाँ सन् 1813 में परिवर्तित हुयीं, उसके पश्चात् 1833 में पुनः परिवर्तित हुयीं। इस समय कालिंजर में नील की खेती सन् 1812 के बाद से हो रही थी। यह नील यहाँ से विदेशों को निर्यात की जाती थी लेकिन आगे आने वाले समय में नील उत्पादकों को काफ़ी नुकसान उठाना पड़ा। बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में गन्ना उत्पन्न होता था। उस गन्ने से गुड़ व कच्ची शक्कर का निर्माण होता था लेकिन यहाँ के निवासियों को उससे कोई लाभ नहीं मिला ब्रिटिश काल में इस क्षेत्र की गरीबी बढ़ी जिसके कारण यहाँ के व्यक्तियों को नुकसान उठाना पड़ा।

अंग्रेज सरकार ने लोगों को यह बाध्य किया कि यहाँ के लोग इंग्लैण्ड के कारखानों के लिए अपने कच्चे माल का निर्यात करे और वहाँ से पक्के माल का आयात किया जाए। बाँदा जनपद और उसके आस–पास के क्षेत्र में अच्छी किस्म की कपास उत्पन्न होती थी। जिससे यहाँ के जुलाहे उत्तम कोटि का कपड़ा बनाकर बाहर भेजा करते थे। किन्तु विदेशी कपड़ों के आयात के कारण उनका उद्योग नष्ट हो गया। इसी प्रकार अन्य उद्योग भी धीरे–धीरे नष्ट हो गए। उनके स्थान पर मशीनों से बनी वस्तुओं का उपयोग ज्यादा मात्रा में होने लगा। जिसके कारण यहाँ के परम्परागत उद्योग प्रभावित हुए और वे बन्द हो गए।

इसी समय यहाँ पर यातायात के साधनों का विकास हुआ। सबसे पहले यहाँ के लोग बैलगाड़ी का प्रयोग सामान लाने और ले जाने के लिए किया करते थे किन्तु पहाड़ी इलाका होने के कारण यहाँ सड़कों की संख्या बहुत अधिक नहीं थी। लोग घोड़े, टट्टू, ऊँट, बैल, भैंस, गदहा आदि में अपना सामान ले जाया करते थे। ब्रिटिश शासन काल में यहाँ रेलों का विकास हुआ। यहाँ से अनेक रेलें विविध स्थानों को चलायीं गयीं। मुख्य रूप से ग्रेट इण्डियन–पेनिनशुला रेलवे बुन्देलखण्ड में बीना–कटनी, बीना–कोटा, बाँदा–कानपुर, झाँसी–मानिकपुर, झाँसी–कानपुर, एरच, कोंच तथा दिल्ली, बम्बई के लिए यहाँ से रेल सुविधाएँ अंग्रेजों के समय की हैं। इसी प्रकार ईस्ट इंडिया रेलवे इलाहाबाद से जबलपुर तक अपनी रेल चलाती है। इसी प्रकार बंगाल, नागपुर, रेलवे कटनी से विलासपुर तक अपनी रेल चलाती थी। ग्वालियर लाईट रेलवे, ग्वालियर–सीपरी और ग्वालियर–भिण्ड अपनी रेल लाइन चलाती थी। इन रेलों को खींचने के लिए कोयले के इंजन प्रयोग में लाए जाते थे। रेल चलाने का मुख्य उद्देश्य आर्थिक लाभ कमाना और कच्चे माल को समुद्र तक ले जाना था। जहाँ से यह माल विदेशों तक भेजा जाता था।

रेल के अतिरिक्त सड़क यातायात का विकास भी व्यावसायिक दृष्टि से यहाँ किया गया। अनेक प्रकार की सड़कों का निर्माण यहाँ हुआ। इनसे सभी रियासतों को सड़कों के माध्यम से जोड़ दिया गया। इनमें उत्तम कोटि की सवारियां चल सकती थीं। कालान्तर में जब मोटर–लारियों का विकास हुआ, उस समय समस्त व्यावसायिक सामान इन्हीं से ढोए जाने लगे। इस समय निम्नलिखित सड़के बुन्देलखण्ड में थी[59] जिनका निर्माण ब्रिटिश शासन काल में हुआ :

1. कानपुर, कालपी, उरई, एटा, समथर, पूँछ, मोंठ, चिरगाँव, झाँसी, तालबेहट, ललितपुर, सागर, दमोह, कटंगी और जबलपुर।

2. उरई, जालौन, शेरगढ़ (जालौन जिला)।
3. उरई, कूँच, एटा (जालौन जिला)।
4. कानपुर, हमीरपुर, सुमेरपुर, मौदहा, महोबा, सागर, छतरपुर, मातगुबॉ, मलारा, सागर, करेली, बम्बई।
5. फतेहपुर, बाँदा, मटौंध, महोबा, कैमाहा, नवगाँव।
6. चरखारी, महोबा, लोड़ी, चँदला, बछौन।
7. बाँदा, बबेरू (जिला बाँदा)।
8. बाँदा, अत्तर्रा, बदौसा, करवी, मानिकपुर (जिला बाँदा)।
9. बाँदा, नरैनी, चौबेपुर, नागौद।
10. अत्तर्रा, नरैनी, अजयगढ़, पन्ना, सिमरिया, गैसाबाद, हटा, दमोह।
11. दमोह, नरसिंहगढ़, बटियागढ़।
12. झाँसी, सीपरी।
13. आगरा, ग्वालियर, दतिया, झाँसी, बरूवा–सागर, मऊ, अलीपुरा, नवगाँव, छतरपुर, पन्ना, नागौद, सतना, रीवाँ।
14. पूँछ, गुरसराय, मऊ, जतारा, टीकमगढ़, महरौनी, ललितपुर।
15. गुरसरांय, गरौठा (जिला झाँसी)।
16. महरौनी, मदावरा (जिला झाँसी)।
17. सागर, राहतगढ़ (सागर जिला)।
18. दमोह, रैपुरा, शाहनगर, मैहर, झुकेही।
19. जबलपुर, नरसिंहपुर।
20. जबलपुर, सिवनी।
21. जबलपुर, मंडला।
22. जबलपुर, शाहपुरा।
23. कटंगी, सिहोरा, बिछुवा।
24. जबलपुर, सिहोरा, मुड़वारा, झुकेही, रीवाँ।
25. बमीठा, खजुराहो (छतरपुर रियासत)।
26. मलहरा, महराजपुर, लौंडी (छतरपुर रियासत)।
27. मातगवॉ, बिजावर (बिजावर राज्य)।

बुन्देलखण्ड के मार्गों का निर्माण औद्योगिक दृष्टि से किया गया था तथा इसका दूसरा उद्देश्य राजनैतिक भी था। यदि कहीं किसी प्रकार का राज्य विद्रोह हो तो उस विद्रोह को दबाने के लिए सैन्य सहायता सड़क मार्ग से भेज दिया जाए।

ब्रिटिश शासन के कारण बुन्देलखण्ड के कुटीर उद्योग नष्ट हो गए। व्यक्तियों के सम्मुख बेरोजगारी की समस्या उठ खड़ी हुयी। यहाँ की कृषि, उद्योग दोनों ही हानि की स्थिति में पहुँच गयी।

जिस समय यहाँ ब्रिटिश शासन की स्थापना हुयी उस समय अनेक राज्यों के अलग–अलग सिक्के प्रचलित थे। उनका मानक मूल्य एक जैसा नहीं था और न उन्हें हर राज्य में स्वीकार किया जाता था। इस तरह सर्वमान्य मुद्रा प्रणाली की आवश्यकता अनुभव की गयी।

"आमतौर पर लोगों में वस्तु विनिमय की पुरानी आर्थिक प्रणाली तेजी से खत्म हो रही थी

और सामान्य प्रवृत्ति नकद पैसा देकर क्रय–विक्रय करने की हो रही थी। मध्य युग की भारतीय सरकारों की प्रथाओं के विपरीत, ब्रिटिश सरकार, भू–राजस्व का भुगतान नकद सिक्कों में माँगती थी। भारत में कम्पनी के अधिकारी और सस्ता हस्तान्तरण के बाद ब्रिटिश शासक के प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार को घरेलू खर्च के रूप में जो वार्षिक भुगतान करते थे वह नकद होता था। इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति तेजी से पकड़ रही थी और अंग्रेजी व्यापारी भारत में अपने व्यापार का विस्तार कर रहे थे इसलिए उनकी ओर से नकद पैसे की ज्यादा माँग थी। इस प्रकार विभिन्न कारणों से चाँदी के सिक्कों की माँग बहुत बढ़ी लेकिन चाँदी का उत्पादन मुद्रा की आवश्यकताओं की गति के साथ नहीं बढ़ रहा था। इन कठिन परिस्थितियों में सरकार ने सोने के सिक्के या कागज की मुद्रा जारी करने की बात सोची।"[60]

ब्रिटिश शासन काल में जो मुद्राएँ प्रचलित हुयीं। वे इस प्रकार थीं :

रूपया		मूल्य
1 रू0	=	64 पैसे (16 आने)
8 आने	=	32 पैसे
4 आने	=	16 पैसे
2 आने	=	8 पैसे
1 आना	=	2 पैसे
पैसा	=	4 छदाम या 2 धेला
धेला	=	2 छदाम
छदाम	=	छदाम

ब्रिटिश काल में कागजी मुद्रा इस प्रकार थीं :

नोट		मूल्य
1 रूपए का नोट	=	64 पैसा
2 रूपए का नोट	=	2 रूपए
5 रूपए का नोट	=	5 रूपए
10 रूपए का नोट	=	10 रूपए
100 रूपए का नोट	=	100 रूपए

यही मुद्रा कालान्तर में लेन–देन के काम में आती रही। ब्रिटिश काल के कुछ नवीन माप–तौल इस प्रकार थीं :

झाँसी का सेर– यह 89) कल्दार यानी 33¾ टका बाला शाही के बराबर था और पहले चलता था।

पक्का या कलेक्टरी सेर– यह 80) कल्दार या 31 टका बालाशाही भर होता था।

अट्ठाइसा सेर– यह अट्ठाइस टका बालाशाही यानी 82 कल्दार भर होता था। इससे आटा, दाल आदि तौले जाते थें।

पच्चीसा सेर– यह पच्चीस टका बालाशाही अथवा 66 ।। =) कल्दार भर होता था। इससे घी, महुवा, तम्बाकू, नमक, गुड़ आदि तौलते थे।

चौबीसा सेर– यह 24 टका बालाशाही अथवा 64) कल्दार भर होता था। इससे पच्चीसा के समान वस्तुएँ अथवा केवल घी तौलते थे।

बीसा सेर– इसको महाराजा छत्रसाल ने चलाया था। यह बीस टका बालाशाही भर होता था।

अठरैया सेर– यह 18 टका भर होता था। इससे मेवा, शक्कर, धातु पीतल आदि तौलते थे।

सुरैया सेर– यह सोला टका भर होता था। इससे मिठाई तौली जाती थी।

तेरैया सेर– यह तेरह टका भर होता था। इससे रूई की पौनी तौली जाती थी।

बरैया सेर– यह 12 टका भर होता था। इससे रूई तौली जाती थी।

गिरैया सेर– यह 11 टका भर होता था। इससे सूत तौला जाता था।

'एक टका' दो पैसे यानी आध आने को कहते हैं। अब भी अंग्रेजी या बालाशाही कोई– से दो पैसों को एक टका कहते हैं।

ब्रिटिश युग में लम्बाई नापने के लिए कुछ पैमाने विकसित हुए जो इस प्रकार हैं :

1–	गज	=	3 फुट।
2–	1 फुट	=	12 इंच।
3–	1 इंच	=	10 सूत।
4–	222 गज	=	1 फर्लांग।
5–	8 फर्लांग	=	1 मील।
6–	2 मील	=	1 कोस।

इसी प्रकार भूमि की पैमाइश बीघा, विश्वा, विश्वांशी में की जाती थी और सोने की माप–तौल तोला, माशा और रत्ती में की जाती थी।

ब्रिटिश काल के नवीन व्यापार – ब्रिटिश काल के कुछ नवीन उद्योग स्थापित हुए। मुख्य रूप से लोहे के बड़े उद्योगों की स्थापना हुयी। कुछ स्थानों में कुल्हाड़ी, सरौते, छुरे, अस्तुरे एवं तवे और कड़ाही का निर्माण होने लगा। अनेक लोहार बन्दूकें, पिस्तौल बनाने और सुधारने लगे। बिजाबर का लोहे का काम सर्वोत्तम था।

छतरपुर में उत्तमकोटि का कपड़े का साबुन निर्मित होने लगा था। यह साबुनी गुली के तेल और रेहू से निर्मित होता था। यह बाहर भी भेजा जाता था। इस समय कालपी बुन्देलखण्ड का सबसे अच्छा व्यापारिक केन्द्र था। इसके पश्चात् मऊरानीपुर कपड़े के व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध था। इसके पश्चात् छतरपुर का बाजार भी सर्वोत्तम बाजार था। यहाँ से सभी प्रकार के माल इकट्ठा करके कालपी, कानपुर, मऊ, सागर, मिर्जापुर, जबलपुर को भेजा जाता था। इस समय हुंडी का प्रचलन हो गया था। इसके पश्चात् एरच, गैसाबाद, बाँदा, अत्तर्रा, कर्वी, मानिकपुर, हमीरपुर, महोबा, सुमेरपुर, मौदहा, जालौन, कोंच, कालपी, माधवगढ़, कोटरा, रमपुरा, झाँसी, चिरगाँव, एरच, मोंठ, गुरसरॉय, दमोह, निबोरा, नौधटा, हटा, हिंडोरिया, पथरिया, पटेरा, कुहैरा, मगरौन, रनेह, सागर, राहतगढ़, करीपुर, शाहपुर, नरयावली, धान, जैसिंहनगर, बिलहरी, पमारवेरी, सुखी, खुरई, इटावा, मालथौन, खिमलासा, पिठौरिया, देवरी, गढ़ा–कोटा, चाँदपुर, रेहली, गौरझामर, केसली, महाराजपुर, बंडा, शाहगढ़। जबलपुर, पनागर, सिलोंधी, मझोली, उमरिया, बघराजी, बरेला, बरगी, पाटन, मझगवॉ बरही, बिजयराधौगढ़, पन्ना, नरसिंहपुर, रैपुरा, मलहरा, सिमरिया, पवई, ककरहटी, सिंघपुर, हरेद, दरगवां, महाराजगंज, धौरा, सँड़वा, अमानगंज, खौंपा, बक्सवाहा, बिसानी, मोहदरा और सनवरी आदि में नियमित बाज़ार थे। जहाँ विविध स्थानों से माल विक्रय के लिए आया करता था और अनेक स्थानों को यहाँ से विक्रय के लिए माल जाया करता था। अनेक उद्योगों का वैज्ञानीकरण हो गया था इसलिए बड़े–बड़े कल कारखानें का माल भी यहाँ तैयार होकर बिकने आता था। यहाँ के व्यापार में उत्पादक थोक विक्रेता अथवा अढ़तिया, कमीशन, एजेण्ट अथवा बया, फुटकर विक्रेता और उपभोक्ता शामिल थे। जब बाजार में माल का अभाव हो जाता था उस समय वस्तुएं तेज बिकती थीं। और जब माल अधिक हो जाता था उस समय वस्तुएँ सस्ती हो जाया करती थीं।

सरकारी नीतियाँ एवं कर भी व्यापार को प्रभावित करते थे। इस व्यापार से कुछ व्यापारियों और उत्पादकों को चाहे कुछ भी लाभ हुआ हो किन्तु उपभोक्ता और गरीब किसान सदैव आर्थिक तंगी का शिकार रहा है। बड़े लोगों के मध्य स्वर्ण मुद्रा एवं रजत मुद्रा का प्रचलन रहा है किन्तु व्यक्ति की आय बहुत कम थी। कोई भी अधिकारी 10 रूपए से लेकर 100 रूपए तक का माह का वेतन पाता था। मजदूरी कौंड़ियों और पैसों में दी जाती थी। सामान सस्ता होने के बावजूद भी गरीब उसे खरीद नहीं पाता था।

<u>अंग्रेजों की कर नीति का बुन्देलखण्ड निवासियों के उद्योगों एवं कृषि पर प्रभाव</u>

जब से राज्यों की उत्पत्ति हुयी उस समय से राज्य अपना व्यय चलाने के लिए विविध प्रकार के कर की वसूली कर सकता है। इसका पता चाणक्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र से लगता है। कर वसूलने के लिए राज्य 'चुंगी घरों' का निर्माण कराता था और वहाँ विविध प्रकार के अधिकारियों की नियुक्ति करता था जो कर वसूलते थे। 'कर चोरी' करने वालों को दण्ड भी दिया जाता था।

"शुल्काध्यक्षः शुल्कशालां ध्वजं च प्राङ्.मुखम् उदङ्.मुखं वा महाद्वाराभ्याशे निवेशयेत्।

शुल्कादायिनश्चत्वारः पञ्च वा सार्थोपयातान वणिजो लिखेयुः के कुतस्त्याः कियत्पण्याः क्व चाभिज्ञानमुद्रा वा कृतेति।

कूट मुद्राणां शुल्काष्टगुणों दण्डः।"[61]

कोई भी कर माल की गुणवत्ता के आधार पर लगाया जाता था तथा कर वसूली तीन प्रकार की थी। पहला कर– अपने राज्य में उत्पन्न वस्तुओं पर लगता था। दूसरा कर– राजमहल तथा राजधानी के भीतर उत्पन्न होने वाली वस्तुओं पर लगाया जाता था। तीसरा कर– बाहर से आने वाली वस्तुओं और यहाँ से बाहर जाने वाली वस्तुओं पर लगाया जाता था। मुख्य रूप से फल–फूल कीमती रत्न, वस्त्र आदि पर कर लगता था। इस समय कर के नियम अत्यन्त कठोर थे।

1. शुल्कव्यवहारों बाह्यमाभ्यन्तरं चातिथ्यम्; निष्क्राम्यं, प्रवेश्यं च शुल्कम्।
2. प्रवेश्यानां मूल्यपञ्चभागः।
3. पुष्प फल शाक मूलकन्द वल्लिक्य बीज शुष्क मत्स्यमांसानां षड्भागं गृहीयात्।
4. शंखवज्रमणिमुक्ताप्रवालहाराणां तज्जातपुरूषैः कारयेत्, कृत कर्म प्रमाण काल वेतनफल निष्पत्तिभिः।
5. क्षौमदुकूलक्रिमितानड.टहरिताृलमनःशिलाहिड.गुलुकलोहवर्णधातूनां चन्दनागुरूकटुककिण्वाबराणां सुरादन्ताजिनक्षौमदुकूलनिक रास्तरणप्रावरणक्रिमि जातानामजैलकस्य च दशभागः, पञ्चदशभागो वा।[62]

कुल मिलाकर निम्नलिखित कर इस युग में लगते थे–

1. विभिन्न प्रकार के भू–कर यथा अनाज–उत्पादन करने वाली भूमि पर कर राजा को दिया जाने वाला अन्न भाग आदि।
2. दूसरे राज्य से आने वाले पदार्थो तथा दूसरे राज्य में जाने वाली वस्तुओं पर कर।
3. जल एवं थल मार्गो पर यात्रा करने वालों से प्राप्त कर।
4. विभिन्न बाजारों पर कर।
5. गणिकाओं, द्यूत–ग्रहों, मधुशालाओं आदि पर कर।
6. वनों एवं वनों से उत्पादित सामग्री (जैसे लकड़ी) पर कर।
7. विविध धातुओं का निर्माण करने वाली फैक्ट्रियों पर कर।
8. न्यायालयों से प्राप्त शुल्क।

9. आकस्मिक आय, उदाहरणतः किसी सम्पत्ति के स्वामी की अकस्मात् मृत्यु पर सम्पूर्ण सम्पत्ति राजा को सुपुर्द कर दी जाती थी, खोये हुए विभिन्न पदार्थों की प्राप्ति होना भी आकस्मिक आय थी।
10. अनियमित कर, जो विभिन्न उत्सवों पर, अवसर के अनुसार लगाया जाता था।
11. जनता को दिये जाने वाले ऋण पर ब्याज से होने वाली आय।[63]

गुप्त युग में भी मौर्यकालीन कर प्रणाली लागू रही। इस समय 2 प्रकार के करों का उल्लेख मिलता हैं जिन्हें *'उद्रंग'* और *'उपरिकर'* के नाम से पुकारा जाता था। बुह्लर का मत है कि *उद्रंग* राज्य के लिए प्राप्त किए जाने वाले भू–उत्पादन के अंश को कहते थे।[64] फ्लीट ने भी उनके इस कथन का समर्थन किया है।[65] घोषाल का कहना है कि यह स्थायी भूमिधरों पर लगने वाला कर था।[66] इसी प्रकार फ्लीट के मत में *उपरिकर* उन किसानों पर लगाए जाने वाला कर था, जिनका भू पर अपना कोई स्वामित्व न था। घोषाल के अनुसार यह ऐसे लगान अथवा मालगुजारी का नाम था जिसे अस्थायी किसान दिया करते थे।[67] बार्नेट उत्पादन में राज्यांश को *उपरिकर* मानते हैं।[68] समुद्रगुप्त के अनेक अभिलेखों में 2 प्रकार के कर वसूलने का विधान था। यह कर नकद और अनाज के रूप में लिया जाता था नकद कर लिए जाने वाले कर को *हिरण्य* कर के नाम से पुकारा जाता था। और जो कर वस्तुओं पर लिया जाता था उसे *भूत–प्रत्याय* कहते थे। करों की यह व्यवस्था तुर्कों के आगमन तक बनी रही।

तुर्कों और मुग़लों के काल में व्यापक परिवर्तन राजस्व में हुआ। इस समय भूमि कर 2 प्रकार से लगाया गया।

1– भूमि के पैमाइश के अनुसार, 2– भूमि के उत्पादन के अनुसार। इसके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के उत्पादन पर भी कर लगाया गया। जो वस्तुएँ बाहर से आतीं थीं और बाहर को जातीं थी, उन वस्तुओं पर मूल्य के आधार पर कर लगाया गया तथा कुछ द्रव्य शासकों को नज़राना और भेंट में मिल जाता था।

"भू–लगान बन्दोबस्त और जिन सिद्धान्तों पर यह आधारित था, उसकी अंग्रेज लेखकों ने जो ब्रिटिश–काल में भारत के माल–प्रशासन से निकट सम्बन्ध रखते थे, बहुत प्रशंसा की है, तथापि उन्होंने इस बात पर सन्देह प्रकट किया है कि जिलों और परगनों में माल विभाग के कर्मचारी शाही नियमों और आज्ञा आदेशों का ईमानदारी से पालन करते होंगे। विसेण्ट स्मिथ ने लिखा है, "लेकिन जो सिद्धान्त रूप में था वही व्यवहार में भी था, इस सम्बन्ध में शंका हुए बिना नहीं रह सकती। आजकल वर्तमान ब्रिटिश सरकार अत्यन्त सावधानी और निगरानी बरतने के बावजूद (सिद्धान्त और व्यवहार के मध्य) सामंजस्य प्राप्त करने में प्रायः असमर्थ रही है, जबकि अकबर के समय में तो आजकल की अपेक्षा इतनी निगरानी और देखभाल भी नहीं की थी[69] मालगुजारी के अतिरिक्त अन्य प्रकार के भी कर वसूले जाते थे। कई प्रकार के जुर्माना, महसीलाना भी वसूला जाता था। कुछ कर विभिन्न प्रकार के उत्पादनों से भी वसूला जाता था। यहाँ पर खनिज पदार्थ, धातुएँ, मछली, नमक, अफीम और सुरा में भी कर लगाया जाता था। अनेक स्थानों में रेशमी और सूती वस्त्र बना करते थे। इन पर भी कर लगता था। इसके अतिरिक्त लकड़ी के कारखाने, अलमारी, सन्दूक, स्टूल, चमड़े का सामान, बर्तन, कागज़ तथा ईटों पर भी कर लगता था। यहाँ से बहुत सा सामान बाहर जाता था और बाहर का सामान यहाँ आता था, उस पर भी टैक्स लगाया जाता था। बुन्देलखण्ड के अनेक देशी नरेश मुग़लों के आधीन नहीं थे। वे अपने अनुसार जनता पर कर लगाते थे और वसूलते थे।

अंग्रेजों की कर नीति

ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संबन्धित व्यक्ति और कर्मचारी यहाँ पर सन् 1804 के बाद आए तथा उन्होंने सर्वप्रथम उन राज्यों में अपना प्रभाव डाला जो मरहठों के अधीन थे। इसके पश्चात् बुन्देलखण्ड के अन्य रियासतों से उनकी सन्धियाँ हुयी। सन् 1818 में बुन्देलखण्ड के जो स्थल पेशवा के अधीन थे, उन पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इस प्रकार धीरे–धीरे अंग्रेजों के अधिकार में गढ़ा–कोटा, मालथौन, देवरी, गौरझामर, नाहर और मऊ के इलाके अंग्रेजों के आधीन हो गए तथा सन् 1821 तक दमोह और सागर का क्षेत्र भी अंग्रेजों के आधीन हो गया। इन क्षेत्रों में अंग्रेजों ने अपनी स्वतन्त्र कर नीति लागू की तथा वे स्थान जो देशी नरेशों के हाथ में थे उनमें कर वसूलने का कार्य देशी नरेश करते रहे।

ईस्ट–इण्डिया कम्पनी यह चाहती थी कि उन्हें बुन्देलखण्ड से सर्वाधिक राजस्व की प्राप्ति हो इसलिए उन्होंने मुट्ठी भर लोगों को संतुष्ट करने के लिए अपनी कर नीति का निर्माण किया। "उन्होंने अपने प्रशासनिक व्यय को पूरा करने के लिए कर लगाए। कर के पीछे लोक कल्याणकारी भावनाएं नहीं थीं। यह कर मुख्य रूप से जमीन और उसकी पैदावर पर लगाया गया। यह करीब 2 पैसा ही था जैसा मुग़लकालीन राज्य में था। परन्तु इसकी वसूली के ढंग में कुछ भिन्नता थी। इस कर को माल गुजारी के नाम से पुकारा जाता है।"[70]

भूमि पर लगाया जाने वाला कर जिसे मुग़ल काल में मालगुजारी के नाम से पुकारा गया। वह अंग्रेजों के समय में भी जारी रहा। यद्यपि लार्ड कार्नवालिस ने सन् 1793 में इस कर में संशोधन किया। इस नियम के अन्तर्गत जमींदारों को भूमि का स्वामी मान लिया गया और उन पर सदा के लिए मालगुजारी निश्चित कर दी गयी परन्तु किसानों के लिए यह कर निश्चित नहीं किया गया, जिसके कारण जमींदार किसानों का शोषण कर मनमानी कर लगाते रहे और जमींदारों के लिए कर उसी प्रकार का रहा। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अस्थाई बन्दोबस्त बना रहा। 20 वर्ष बाद इस नीति में परिवर्तन किया गया। यहाँ पर मालगुजारी का तरीका संतोषजनक नहीं था, मालगुजारी निश्चित करने वाले अधिकारी मनमानी करते थे। इस मनमानी तरीके से किसानों को बड़ा कष्ट पहुँचा। ए0के0 मित्तल ने लार्ड कार्नवालिस के लगान संबन्धी सुधार के सन्दर्भ में अपना यह दृष्टिकोण प्रकट किया है "राजस्व प्रणाली में सुधार कार्नवालिस का प्रमुख सुधार था। इस सुधार से पूर्व सर्वाधिक बोली लगाने वाले को एक वर्ष के लिए भूमि दी जाती थी। परिणामस्वरूप एक ओर तो भूमि बंजर हो गयी तथा दूसरी ओर व्यापार चौपट हो गया। जमींदार भी परेशान थे तथा जनता भी भूखों मरने लगी। लेकिन कई वर्षो तक समस्या का अध्ययन करने के उपरान्त लॉर्ड कार्नवालिस ने जमींदारों को 10 वर्ष के लिए भूमि दे दी। इस व्यवस्था के परिणाम सन्तोष जनक रहे, अतः 1793 ई0 में जमींदारों को स्थायी रूप से भूमि दे दी गयी। इस प्रकार की व्यवस्था से सरकार जनता तथा जमींदारों अर्थात् सभी वर्गों को बड़ा लाभ हुआ।[71] इस कर व्यवस्था के कुछ दुष्परिणाम भी सामने आए। काश्तकारों की इस दुर्दशा के कारण गाँव में ऋण लेने की प्रथा ने भी उग्र रूप धारण कर लिया। यद्यपि ऋण लेने की प्रथा भारत में पहले भी थी पर वह पहले शहरों तक ही सीमित थी। इस नई शासन–पद्धति में लगान या भू–राजस्व का बोझ इतना अधिक बढ़ गया कि किसानों को उसे चुकाने के लिए नियमित रूप से ऋण लेना पड़ता था। बहुत बार लगान चुकाने के बाद जो कुछ कृषक के पास बचा रहता था वह उसके अपने जीवन–निर्वाह के लिए भी पर्याप्त नहीं होता था। इसलिए जीवन–निर्वाह के लिए ऋण का सहारा लेना अनिवार्य हो जाता था। इस प्रकार ब्रिटिश शासन में उत्पन्न हुयी यह जमींदारी व्यवस्था कृषकों के निर्मम शोषण का दोहरा साधन बन

गयी– एक ओर लगान के रूप में और दूसरी ओर ऋण के ऊपर दिए जाने वाले ब्याज के रूप में।

इस शोषण तन्त्र का परिणाम यह हुआ कि कृषि से प्राप्त होने वाली मूल्य राशि अब भूमि के सुधार में या कृषि के उत्पादन में सहायक न हों सकी, क्योंकि कृषक के पास, जो ज़मीन से जुड़ा था और जो कृषि के विकास के लिए जी–जान से मेहनत कर सकता था, वित्तीय साधनों का आभाव था। साथ ही कृषि से प्राप्त होने वाले ये साधन (या मूल्यराशि) जिस ज़मींदार वर्ग के पास संचित हो रहे थे उसे कृषि से कोई लगाव नहीं था और वह इस धन राशि को अपने आमोद–प्रमोद के लिए निरर्थक ही व्यय कर रहा था।[72]

अंग्रेजों के समय में बुन्देलखण्ड में भूमिकर का निरीक्षण करने के लिए एक जाँच समिति की नियुक्ति सन् 1924 में हुयी। उस समय मालगुजारी की स्थिति इस प्रकार थी "भारतीय कर जाँच समिति ने सन् 1924 में इसकी आलोचना की। 19वीं शताब्दी के अन्त तक यह भारत की आय का मुख्य स्त्रोत था। सन् 1793–94 में 69% ,सन् 1850–51 में 66.5%, सन् 1891–92 में 49.03% मालगुजारी से प्राप्त धन था। परन्तु अधिकाधिक शोषण के कारण यह घटता चला गया। सन् 1919–20 में यह 27.9% रह गया। सन् 1939–40 में यह घटकर 19.09% रह गया। इस राजस्व में कमी आने के कारण सरकार को आय के दूसरे साधनों पर ध्यान देना पड़ा। कलेक्टमैन के अनुसार नवाब अली बहादुर के रियासत की आय लगभग 33 लाख रूपया वार्षिक थी। वह घटकर सन् 1857 के पश्चात् 9 लाख रूपया रह गयी। अंग्रेजी शासनकाल में कई बार दुर्भिक्ष आए और ज़मींदारों की उदंडता के कारण लोग कृषि से ऊबते चले गए।

इसके सुधार के लिए एक जाँच आयोग की नियुक्ति की गयी जिसमें यह सिफारिश की कि सभी राज्यों में मालगुजारी की दरें एक होनी चाहिए। प्रत्येक दस वर्ष में मालगुजारी की दरों में परिवर्तन होना चाहिए। इनकी परिवर्तन विधि एक होना चाहिए। मालगुजारी की दर में परिवर्तन कीमतों के अनुपात में नहीं होना चाहिए विशेष परिस्थितियों में ये बदली जाय। मालगुजारी के निर्धारण के लिए स्थानीय सरकारों की सहायता ली जाए और मालगुजारी का 15% इन स्थानीय सरकारों को दिया जाए।[73]

भूमिकर के अतिरिक्त कुछ अन्य कर भी ब्रिटिश शासन ने बुन्देलखण्ड निवासियों पर लगाए थे जो इस प्रकार थे–

1. आयकर एवं सम्पत्ति कर – यह कर ब्रिटिश शासनकाल में राजा–महाराजाओं, सामन्तों, जागीरदारों, ज़मींदारों पर लगाया गया था। जब कोई राजा निःसंतान होने की स्थिति में किसी पुत्र को गोद लेता था तब उस वर्ष उसे अपनी राज्य के आय का ¼ भाग ब्रिटिश शासन को देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त नज़राना, उपहार तथा वार्षिक आय पर एक निश्चित कर धनी–मानी व्यक्तियों को देना पड़ता था। यह कर प्रत्येक जनपद में राजस्व अधिकारी वसूल किया करते थे।

2. उत्पादन कर – जो वस्तुएँ कारखानों अथवा उद्योग शालाओं में बनायीं जातीं थीं उन पर उत्पादन कर लगाया जाता था। यह कर माल की गुणवत्ता के आधार पर लगता था। मुख्य रूप से कपड़ा, चमड़े का बना बनाया सामान, जवाहरात से युक्त सोने–चाँदी के जेवर, खनिज़ सम्पदा और उससे बना हुआ सामान कर योग्य समझा जाता था और उससे सुनिश्चित कर लिया जाता था। जब इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति हुयी, उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने यहाँ के उद्योग–धन्धे नष्ट करने के लिए उसमें मनमानी कर लगाए ताकि यहाँ के उद्योग–धन्धे नष्ट हो जाए और उनके स्थान पर इंग्लैण्ड में बने सामान को भारत में आने की छूट दी गयी और उसे कर मुक्त कर दिया गया। जिसकी वजह से यहाँ के उद्योग–धन्धे नष्ट हो जाए। इसके साथ ही साथ उद्योगों

का मशीनीकरण हुआ, जिसके कारण हाथ से बनने वाला सामान महँगा पड़ने लगा और वह बाजार में सस्ते माल के कारण न बिकने लगा।

3. तहबाजारी एवं चुंगीकर – जब कोई उत्पादित सामान मण्डी, हाट, मेला एवं बाजार में विक्रय के लिए आता था उस पर स्थानीय सरकारें कर लगाया करतीं थीं। यह कर माल की कीमत और माँग के अनुसार लगाया जाता था। इस कर को अदा करने वाले व्यापारी एवं उत्पादक होते थे, जो अपना सामान बाजार में बेंचने के लिए लाया करते थे। इसी प्रकार सामान को बाहर ले जाने और बाहर का सामान यहाँ लाने पर चुंगीकर लगाया जाता था। यह कर नगर सीमा के बाहर और नदी घाटों पर वसूला जाता था।

4. व्यापार कर एवं बिक्री कर – ब्रिटिश शासनकाल में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में व्यापार कर बड़े व्यावसायियों से वसूला जाता था। प्रारम्भ में यह कर उन व्यापारियों से वसूला जाता था जिनकी बिक्री वर्ष भर में 20,000 और उससे अधिक होती थी। ब्रिटिश शासनकाल में वस्तुएँ बहुत सस्ती थीं इसलिए सामान्य व्यापारी 20,000 रूपये तक का वार्षिक व्यापार नहीं कर पाता था इसलिए इस कर की अदायगी बड़े–बड़े अढ़तियां और थोक व्यापारी ही किया करते थे।

5. पथ कर – ब्रिटिश शासनकाल में मोटर–गाड़ियों का आविष्कार हो चुका था। मोटर, कारें और बसें सड़कों पर दौड़ने लगीं थीं किन्तु इन वाहनों का सामान्य व्यक्तियों के लिए खरीद पाना अत्यधिक मुश्किल का कार्य था इसलिए इन वाहनों को एक निश्चित शुल्क देकर रजिस्ट्रेशन कराना पड़ता था। यह कर वाहन कर के नाम से विख्यात था।

6. जिला परिषद एवं नगर पालिका द्वारा लगाए गए कर – जिला परिषद एवं नगर पालिका की स्थापना ब्रिटिश शासनकाल में हो गयी थी। ये लोग अपने क्षेत्रों में विविध प्रकार के कर लगाते थे और उन्हें वसूलते थे। इनके मुख्य आय के स्त्रोत– गृह कर, तहबाजारी एवं नजूल भूमि से होती थी।

7. सिंचाई–कर – ब्रिटिश शासन काल में रनगवॉ, माता टीला तथा गंगऊ बाँध का निर्माण हो चुका था तथा इनसे नहरें निकाली जा चुकी थीं। जो लोग इन नहरों के माध्यम से अपने खेतों की सिंचाई करते थे, उनसे यह कर वसूला जाता था।

8. स्टाम्प–कर – व्यक्ति जो मकान, जायदाद या अन्य प्रकार की सम्पत्ति खरीदता था उसे भूमि के मूल्यांकन के आधार पर स्टाम्प–कर की अदायगी करना पड़ती थी। यह कर न्यायालय में वाद दायर करने, बँटवारे का रजिस्ट्रेशन कराने या हलफ़नामा देने में भी अदा करना पड़ता था। सरकारी राजस्व–विभाग विविध मूल्यों के स्टाम्प बिक्री के लिए सुलभ कराते थे।

9. दैवीं आपदा या आकस्मिक कर – कभी–कभी जब सरकार के पास अर्थ संकट उत्पन्न हो जाता था, उस समय वह विशेष आपदा कर लगा कर धन वसूलती थी। प्रथम महायुद्ध, द्वितीय महायुद्ध तथा आकाल, अनावृष्टि, बहुवृष्टि के समय पर सरकार ने अतिरिक्त कर लगा कर जनता से धन वसूला था।

10. मनोरंजन–कर – ब्रिटिश शासन काल में 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में चलचित्र गृह, थियेटर, नाटक कम्पनियाँ और नौटंकी कम्पनियों तथा सर्कस कम्पनी का विकास हुआ। ये लोग पैसा लेकर जनता का मनोरंजन किया करते थे। इसलिए उन्हें अपने प्रदर्शन के लिए अनुमति लेनी पड़ती थीं और उन पर कर अदा करना पड़ता था।

इन करों के अतिरिक्त भी अनेक कर थे लेकिन उनका कोई विशेष महत्व नहीं था।

कर-व्यवस्था का उद्योगों में प्रभाव

अंग्रेजों के दुर्व्यवहार बुन्देलखण्ड निवासी के साथ बहुत अधिक था, वे लोग काले और गोरे का भेद बहुत मानते थे। यदि वे कोई उद्योग खोलते थे तो वे अंग्रेजों को अधिक वेतन दिया करते थे और उसकी तुलना में भारतीय कर्मचारियों को बहुत कम वेतन देते थे और कभी-कभी उनके साथ दुर्व्यवहार भी किया करते थे। सम्पूर्ण भारतवर्ष और बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों की औपनिवेशिक व्यवस्था थी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत "1757 तक यूरोपीय व्यापारियों को अपने देश में कड़े विरोध के बावजूद भारत में धात्विक मुद्रा लानी पड़ती थी क्योंकि पश्चिमी देशों में तो भारत के सूती एवं रेशमी कपड़ों का फलता-फूलता व्यापार था लेकिन भारत में पश्चिमी उत्पादों, जैसे कि इंग्लैण्ड के ऊनी कपड़ों की माँग आमतौर पर नगण्य होती थी। इस समस्या को प्लासी के युद्ध ने बड़े नाटकीय ढंग से सुलझा दिया। अब लूटा हुआ धन, देश के भीतर किए जाने वाले कर मुक्त व्यापार का लाभ, और दीवानी राजस्व की रोकड़ बाकी- इन सब को ही कम्पनी इशारतन अपना 'पूँजी-निवेश' कहने लगी।[74]

इस समय बुन्देलखण्ड में हथकरघा उद्योग चरम-सीमा पर था। इसके माध्यम से सूती और रेशमी वस्त्र बहुत सुन्दर ढंग से बनाए जाते थे। इस क्षेत्र में कपास और रेशम दोनों का उत्पादन होता था। रूई धुनकने से लेकर सूत कातने और कपड़ा बुनने तक का काम स्त्री-पुरूष दोनों किया करते थे। बुनने के पश्चात् कपड़ों की रंगाई और छपाई की जाती थी। मील का बना विदेशी कपड़ा आ जाने के कारण और अंग्रेजों की पक्षपातपूर्ण कर नीति के कारण यह उद्योग नष्ट हो गया।

बुन्देलखण्ड में दूसरा उद्योग जड़ाऊ आभूषण बनाने का था। यह कार्य ग्राम और कस्बों के सुनार अपने ढंग से किया करते थे। अमीर और गरीब दोनों अपनी हैसियत के अनुसार आभूषण पहना करते थे। सुनारों को बराबर कार्य मिलता रहता था। सुनार आभूषणों की बनवाई धातु के अतिरिक्त लिया करता था किन्तु किसानों, व्यापारियों पर जब कर अधिक लगाया जाने लगा उस समय व्यक्ति अपने जेवर बेंच कर सरकारी कर अदा करने लगा। इस तरह उसकी आर्थिक स्थिति करों के बोझ के कारण खराब हो गयी।

बुन्देलखण्ड में एक महत्वपूर्ण उद्योग धातु का उद्योग था। मुख्य रूप से लोहे का उद्योग प्रत्येक गाँव में फलता-फूलता रहा। लोहे से हल के उपकरण, कुल्हाड़ी, हँसिया, विविध प्रकार के औंजार तथा अस्त्र-शस्त्र का निर्माण होता था। जब ये सामान मशीनों से बनकर आने लगे और इस उद्योग पर उत्पादन कर लगाया गया तो यह उद्योग बेकार हो गया। इसके अतिरिक्त यहाँ पीतल और ताँबे का भी कार्य होता था। खाने-पीने के बर्तन - पीतल, तांबा और कांसे के बनाए जाते थे। इनको बनाने का कार्य ठठेर लोग किया करते थे। यह उद्योग भी कर नीति के कारण नष्ट हो गया।

मिट्टी के बर्तन बनाने का कार्य भी बुन्देलखण्ड में सर्वत्र होता था। इनका उपयोग अनाज रखने, पानी इकट्ठा करने, दूध उबालने, सब्जी बनाने और तालाब से खेतों तक पानी ले जाने के लिए होता था। "खाना पकाने के लिए हांडी, पानी के लिए कलसे, मटके, घड़े और सुराहियाँ आदि की सभी को जरूरत पड़ती थी और इनका स्थान धातु के बर्तन नहीं ले सकते थे। जैसे कुम्हार के बर्तन साधारण थे वैसे ही उसके औजार भी। उसका मुख्य काम चाक (कुम्हार का चक्र) पर होता था।[75]

यहाँ के तेली कोल्हू के माध्यम से तेल निकाला करते थे। तेल भोजन के लिए और प्रकाश के लिए तथा मालिश करने के लिए एक अनिवार्य आवश्यक वस्तु थी। किन्तु मिट्टी का तेल आ

जाने की वजह से तेलियों का उद्योग प्रभावित हुआ। अरण्डी और नारियल का तेल बुन्देलखण्ड में बहुत लोकप्रिय था। किन्तु अभिरूचि के परिवर्तन और कर नीति के कारण यह उद्योग भी प्रभावित हुआ।

काष्ठ उद्योग एवं बढ़ई का उद्योग भी बुन्देलखण्ड का महत्वपूर्ण उद्योग था। वह समाज के सभी वर्गों के लिए मेज, कुर्सी, लकड़ी के औजार, चारपाइयाँ और घरों के लिए दरवाजे, खिड़कियाँ तथा कृषि उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करता था। वह करघे और बैलगाड़ी भी बनाता था तथा कहीं–कहीं पर वह खूबसूरत खिलौने का निर्माण करता था किन्तु अंग्रेजों द्वारा उचित प्रोत्साहन न दिए जाने के कारण यह उद्योग भी उन्नत नहीं कर सका तथा इसे भी अंग्रेजों की कर नीति ने जकड़ लिया।

बुन्देलखण्ड में चमड़ा उद्योग भी महत्व रखता था। गाँव में निवास करने वाले चर्मकार मृत जानवरों का चमड़ा एकत्रित करके उससे विविध वस्तुएँ बनाया करते थे। मुख्य रूप से चाण्डाल, चमार और रंगिया जाति के लोग मिल–जुल कर यह कार्य करते थे। ये लोग अनेक प्रकार के जूते, चप्पलें, चमड़े के बैग, पानी भरने की छोटे–बड़े मशके बनाते थे। इसके अलावा मृदंग, तबला, ढोलक, खंजली आदि मढ़ते थे। चमड़े की पेटियाँ, रस्सियाँ, घुड़सवारी की जीन और लगाम भी बनाते थे। जब बड़े–बड़े चर्म उद्योग स्थापित हो गए उस समय इस कुटीर उद्योग का पतन हो गया विविध प्रकार के करों ने भी इसे प्रभावित किया।

इन उद्योगों के अतिरिक्त भी अनेक कलात्मक उद्योग यहाँ पर थे। इनमें नक्काशी, पत्थरों पर अनुकृति करना, मूर्तियाँ गढ़ना, संगमरमर के पत्थरों का काम करना, हाथी दाँत पर नक्काशी करना, देवी–देवताओं के लिए सजावट का सामान बनाना, सीपी और शंख से विविध प्रकार के वस्तुएँ बनाने का उद्योग यहाँ थे।

कुल मिलाकर भारत की आर्थिक स्थिति अंग्रेजों के भारत पर विजय प्राप्त करने के समय तक काफी सन्तुलित थी। यह सन्तुलन कृषि और उद्योग दोनों के बीच था। इनमें सभी जातियों के लोगों को रोजगार प्राप्त था। आत्मनिर्भर ग्रामीण समाज था जहाँ विभिन्न वर्गों के लिए वंशानुगत काम–धंधे थे। मशीनी युग अभी बहुत दूर था। उन्हीं दिनों में यूरोप में औद्योगिक क्रांति शुरू हुयी थी लेकिन उसका प्रभाव भारत में महसूस नहीं किया गया था। इस प्रकार की स्थिर और शान्त आर्थिक स्थिति में अंग्रेज अपनी साम्राज्यवादी शोषण की प्रणाली यहाँ लाए जिसने धीरे–धीरे भारत की आर्थिक स्थिरता नष्ट कर दी।[76]

अंग्रेजों की कर नीति का कृषि पर प्रभाव

ब्रिटिश शासन के पूर्व भी यहाँ कृषि की स्थिति अच्छी नहीं थी। इसका मूल कारण यही था कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड पर्वतों और वनों से घिरा हुआ था। यहाँ की अधिकांश ज़मीन पथरीली थी जिसे कृषि के योग्य नहीं ठहराया जा सकता था। केवल उत्तर की जमीन जो यमुना नदी के तट के आस–पास थी, वही कृषि योग्य थी तथा जो नदियाँ बुन्देलखण्ड में प्रवाहित होतीं थीं। उनमें वर्षा–ऋतु में जल भर जाता था और बाढ़ की स्थिति पैदा हो जाती थी किन्तु वर्षा समाप्त होते ही नदियों का पानी समाप्त हो जाता था। केवल तालाब ही जलापूर्ति के साधन थे इसलिए कृषि की स्थिति वर्षा पर निर्भर करती थी। दुर्भिक्ष पड़ना और पानी न बरसना यहाँ की स्वाभाविक बात थी। इस सन्दर्भ में यह कहावत भी है–

इन्द्र करौंटा ले गए, मघा बाँध गए टेक।

बेर करौंदा जे कहैं, मरन न दैहें एक।

इसके बावजूद जब ब्रिटिश शासन की यहाँ स्थापना हुयी, उस समय सन् 1860 से यहाँ मालगुजारी और जमींदारी प्रथा लागू हुयी। प्रत्येक गाँव ऊँची दरों में नीलाम किए गए तथा लगान वसूलने का कार्य जमींदार और मालगुजार को सौंपा गया। जमींदार और मालगुजार किसानों से बड़ी बेरहमी से लगान वसूलते थे। कभी–कभी फसल अच्छी न होने के कारण किसानों को कर अदा करने के लिए अपने जेवरात रहन करना पड़ते थे, खेती बेचनी पड़ती थी। इस प्रकार किसानों की स्थिति बिगड़ती चली गयी।

कृषकों के उत्पीड़न के कारण यहाँ अनेक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुयीं। अनेक कृषकों ने जमींदारों को भूमिकर देने के लिए अपनी जमीनें सस्ती दरों में बेची इसलिए वे भूमिहीन कृषक बन गए तथा उन्होंने बड़े जमींदारों के यहाँ बंधुआ मजदूरों की तरह उनके यहाँ काम करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ बंधुआ मजदूर ऋण लेने के कारण बने, साहूकारों की ब्याज की दरें इतनी अधिक थी कि वह मूल और ब्याज अपने जीवनकाल में कभी अदा नहीं कर सकता था तथा यह कर्ज़ वह आने वाली पीढ़ी के सिर पर अदा करने के लिए छोड़ जाता था।

जमींदारों का आतंक इतना अधिक था कि वह उनके आतंक के कारण चोरी छिपे परिवार सहित कहीं पलायन कर जाता था और मजदूरी करके अपने परिवार का बोझ उठाता था। इतना ही नहीं कभी–कभी गरीब किसान को अपनी औरत और बच्चे जमींदारों के यहाँ रहन (गहने) करना पड़ता था। वह औरत जिन्दगी भर अपने बच्चों सहित उसकी गुलामी करती थी जहाँ उसे सभी प्रकार की यातनाएँ सहन करना पड़ती थी।

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासनकाल की आर्थिक एवं वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् जहाँ एक ओर व्यक्तियों को विविध प्रकार की हानियाँ उठानी पड़ी वहीं इनसे अनेक प्रकार के लाभ भी हुए। भले ही ये लाभ जन–सामान्य को न हुए हों किन्तु सामन्तों, पूँजीपतियों और बड़े उद्योगपतियों को इनसे विशेष लाभ हुआ है तथा व्यापार का जो विकास हुआ उससे भी व्यक्तियों को लाभ पहुँचा। उस युग में अनेक प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान जो विदेशों में हुए थे उनका लाभ भी बुन्देलखण्डवासियों को हुआ है। वर्तमान वैज्ञानिक सभ्यता का सूत्रपात ब्रिटिश शासनकाल में ही हुआ। इस लाभ को हम 2 भागों में विभाजित करते हैं :

1– आर्थिक लाभ, 2– वैज्ञानिक लाभ।

आर्थिक लाभ

अंग्रेजों के आगमन के कारण अनेक प्रकार के आर्थिक लाभ बुन्देलखण्ड निवासियों को हुआ है। इतिहास इस बात का साक्षी है। भले ही यह लाभ अशिक्षित पिछड़े और दलित बुन्देलखण्ड निवासियों को न हुआ हो किन्तु जिस व्यक्ति ने लाभ उठाना चाहा है उसे इनसे लाभ भले ही हुआ है। यह लाभ निम्नलिखित हैं :

1. बैंकों का शुभारम्भ – ब्रिटिश शासन के पूर्व यहाँ किसी प्रकार की संगठित बैंकिंग व्यवस्था नहीं थी। केवल शहर और गाँव में निवास करने वाले सेठ साहूकार महाजन जागीरदार, जमींदार और सामन्त व्यक्तिगत आधार पर रूपए का लेन–देन किया करते थे तथा इनके ब्याज की दरें भी सुनिश्चित नहीं थी। ब्रिटिश सरकार की जब सम्पूर्ण भारत में सत्ता स्थापित हो गयी उस समय सरकार ने इम्पीरियल बैंक नाम की एक बैंकिंग संस्था अपने नियन्त्रण में खोली। इसके पश्चात् कुछ प्राइवेट बैंकिंग कम्पनियाँ भी सेठ साहूकार राजा–महाराजाओं ने खोलीं। जिनकी शाखाएँ बुन्देलखण्ड के कई स्थानों पर थीं। ये बैंक व्यक्तियों का पैसा, चालू खाता, स्थायी खाता और बचत

खाता में जमा करती थी और जरूरत के वक्त ग्राहकों को पैसा निकालने की सुविधा भी प्रदान करती थी। इसके अलावा उन्होंने व्यापारियों को माल के लाने और माल के ले जाने पर हुण्डी–बिल्टी की सुविधाएँ भी प्रदान कीं। जिन व्यक्तियों को रूपया चोरी जाने का भय रहता था। उन लोगों ने अपना रूपया–पैसा, बैंकों में जमा कराया। इसके कारण उनका भविष्य सुरक्षित हो गया।

2. नवीन मुद्रा का प्रचलन – अंग्रेजों के आगमन के पूर्व यहाँ अनेक मुद्राएँ चलती थीं। जो विभिन्न राज्यों में ढाली जाती थीं तथा जिनका मूल्य भी एक जैसा नहीं था। अंग्रेजी शासनकाल में सारे देश के लिए सामान्य मूल्य वाली मूद्रा का निर्गमन किया गया। ये मुद्रा स्वर्ण, रजत और ताँबे तथा बाद में कांसे में ढाली गयीं। जब कागज का प्रचलन हुआ उस समय कागज की मुद्राएँ भी ब्रिटिश शासन काल में निर्गमित हुयीं। ये मुद्राएँ सम्पूर्ण भारत वर्ष में एक जैसी थी तथा इनका मूल्य भी एक जैसा था। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में इस मुद्रा का स्वागत किया गया तथा इसके प्रचलन में आने के पश्चात् अनेक राज्यों की मुद्राएँ प्रचलन से हट गयीं था संग्रह की वस्तु बन गयीं। इन मुद्राओं के लेन–देन के कारण व्यवसाय का व्यापक विकास हुआ।

3. नयीं नाप–तौल प्रणाली का शुभारम्भ – अंग्रेज शासकों के आगमन के पूर्व यहाँ नाप–तौल की कोई सुनिश्चित प्रणाली नहीं थी। प्रत्येक रियासत में अपनी–अपनी नाप और तौल की कोई प्रणालियाँ थीं। अंग्रेजी शासन काल में नाप–तौल की प्रणाली का नवीन सूत्रपात किया गया। इसमें मन, सेर, छटाँक, तोला, माशा, रत्ती, गज, फुट, इंच, मील, फर्लांग, कोस, बीघा, विश्वा, विश्वांशी आदि पैमानों को प्रोत्साहित किया गया। वे सम्पूर्ण भारत में एक जैसे थे। इस नाप–तौल के माध्यम से व्यापार करने वाले व्यापारियों को किसी भी प्रकार की असुविधा का सामना नहीं करना पड़ता था तथा उसे निश्चित तौल के लिए निश्चित धन देना या लेना पड़ता था। इस नाप–तौल प्रणाली से फुटकर और थोक–विक्रेताओं को लाभ हुआ तथा अंग्रेजी शासन के अन्त तक व्यवसायियों द्वारा नाप–तौल की यही प्रणाली अपनायी जाती रही। नाप–तौल के लिए लोहे, तांबा और पीतल के बांट प्रयोग में लाए जाते थे। तराजू और कांटा का प्रयोग तौल के लिए होता था तथा कपड़े की नाप गज और फुटों से होती थी। कभी–कभी अंदाजिया बिना तौल का सौदा भी होता था।

4. आवागमन के संसाधनों का विकास – ब्रिटिश शासन के पूर्व यहाँ एक भी पक्की सड़कें नहीं थी। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में केवल कच्ची सड़कें थी, जिनमें व्यक्ति बैलगाड़ी, घोड़ा, हाथी, ऊँट, और गधों–खच्चरों के माध्यम से एक जगह से दूसरी जगह आया–जाया करता था तथा बीच सड़क में जो नदी नाले पड़ते थे उन पर कोई पुल भी नहीं था तथा ये सम्पूर्ण रास्ते वर्षा ऋतु में बन्द हो जाते थे, क्योंकि इनमें कीचड़ और पानी भर जाता था इसलिए व्यक्ति वर्षा में कहीं आता–जाता नहीं था। वह आवश्यक वस्तुओं का संग्रह अपने घरों में कर लिया करता था। ब्रिटिश शासकों ने आवागमन के लिए पक्की सड़कों का निर्माण कराया। ये सड़के तारकोल और गिट्टी से निर्मित करायीं गयीं तथा इनको समतल कराने के लिए सड़क के बेलन या रोलर का प्रयोग किया गया तथा यातायात की बाधा को रोकने के लिए नदियों और नालों में पुलों का निर्माण किया गया।

5. सुरक्षा बलों की नियुक्ति – अंग्रेजों के आगमन से पूर्व यहाँ व्यक्तियों के जान–माल की कोई सुरक्षा नहीं थी। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में 42 रियासतें थीं। इनमें से अधिकांश एक–दूसरे की शत्रु थी, इसलिए जब कहीं व्यक्ति बाहर जाता था तो उसे जान–माल का खतरा बना रहता था।

इस असुरक्षा को समाप्त करने के लिए ब्रिटिश शासन ने नवीन पुलिस संगठन और सैन्य संगठन बनाया। सम्पूर्ण जनपद में जन सुरक्षा की दृष्टि से एक पुलिस सुप्रिन्टेन्डेंट (अधीक्षक) की नियुक्ति की और संपूर्ण जनपद को अनेक थानों में बाँटा गया और थाना पुलिस चौकी में बांटे गए। इनमें थानेदार, सहायक थानेदार दीवान और सामान्य पुलिस की नियुक्तियाँ की गयीं तथा अपराध रोकने के लिए इण्डियन पैनल कोड तथा क्रिमिनल प्रोसीडिंग एक्ट का निर्माण किया गया और आर्थिक अपराध रोकने के लिए सिविल प्रोसीडिंग एक्ट बनाया गया। आन्तरिक विद्रोह दबाने के लिए सुदृढ़ सैन्य संगठन का निर्माण किया गया। इसमें ब्रिगेडियर, कर्नल, मेजर, कैप्टन, सूबेदार और रंगरूट के पद होते थे। इन्हें विविध हथियारों से लैस किया जाता था। ये आन्तरिक विद्रोह को दबाया करते थे तथा नागरिकों के जान–माल की रक्षा भी करते थे। बुन्देलखण्ड में यह सेना नवगाँव छावनी, झाँसी, ग्वालियर और जबलपुर में रहा करते थे।

6. __नवीन न्याय पद्धति की स्थापना__ – अंग्रेजों के आगमन के पूर्व यहाँ की न्याय व्यवस्था देशी नरेशों और उनके कर्मचारियों के आधीन थी। ये लोग प्राचीन न्याय पद्धति न्याय शास्त्र, तर्क शास्त्र और स्मृति ग्रन्थों के आधार पर न्याय किया करते थे। इनके पास अपनी कोई न्याय पद्धति और कानून नहीं था जिन रियासतों में मुसलमान शासक थे, वहाँ काज़ियों के हाथ में न्याय व्यवस्था थी। ये लोग इस्लामी कानून अथवा कुरआन शरीफ के आधार पर व्यक्तियों को दण्डित किया करते थे। ब्रिटिश शासकों ने इस न्याय पद्धति में परिवर्तन किया और जनहित को ध्यान में रखते हुए इंग्लैण्ड की न्याय प्रणाली को यहाँ लागू किया। इस न्याय प्रणाली के अनुसार पूरे प्रान्त में एक हाईकोर्ट और उसके आधीन जिला न्यायालयों की स्थापना की गयी तथा न्यायालयों को 2 भागों में विभाजित किया गया। ये न्यायालय फौज़दारी अदालत और दीवानी अदालत के नाम से विख्यात हुआ। फौज़दारी अदालत में अपराधों से संबन्धित मुकदमें दायर होते थे तथा दीवानी अदालतों में रूपए के लेन–देन और धन से संबन्धित मुकदमें दायर होते थे। इन न्यायालयों में मुख्य न्यायाधीश, अपर न्यायाधीश, सिविल जज तथा सी0जे0एम0 आदि न्यायाधीशों की नियुक्ति होती थी। इसके अतिरिक्त पेशकार, अहल्मद तथा नाजिर आदि कर्मचारी कार्य करते थे। वादी और प्रतिवादी दोनों को यह अधिकार दिया गया था कि वह अपना पक्ष रखने के लिए वकील कर सकता है तथा वकील के माध्यम से गवाहों और दस्तावेजों को अदालत में प्रस्तुत कर सकता है। न्यायालय के फैसले से सन्तुष्ट न होने के कारण वह ऊपरी अदालतों में अपील कर सकता है। इस समय सर्वोच्च न्यायालय लन्दन में था। जिसे इम्पीरियल कोर्ट के नाम से पुकारा जाता था। इसका फैसला अन्तिम होता था। व्यक्ति को इस न्याय पद्धति से कभी–न–कभी न्याय अवश्य मिलता था। कभी–कभी यह न्याय पैसे वालों के पक्ष में झूठी गवाही देने के कारण चला जाता था। यह न्याय पंद्धति बुन्देलखण्ड की न्याय पद्धति से अच्छी थी।

7. __नवीन प्रशासनिक पद्धति का उदय__ – ब्रिटिश शासन के पूर्व यहाँ के देशी नरेश अपने प्रशासन को अपने ढंग से चलाते थे। उस समय उनके राज्य सप्तांग सिद्धान्तों का अनुपालन करते थे। मुख्य रूप से राजा, राजा के कर्मचारी, आमात्य मंत्री इत्यादि दुर्ग राजकोष, कर–व्यवस्था, सैन्य संगठन दुर्ग और कूटनीतिज्ञ तथा गुप्तचर मिलकर शासन चलाया करते थे। कोई निश्चित नियमावली शासन चलाने की नहीं थी। ब्रिटिश शासन काल में सम्पूर्ण भारत वर्ष को अनेक प्रान्तों में विभाजित किया गया। प्रान्त कमिश्नरियों में विभाजित किए गए। कमिश्नरियाँ जनपदों में विभाजित की गयी। जनपद तहसीलों में विभाजित हुए। तहसील, परगनों में विभाजित हुयीं और परगने ग्रामों में विभाजित हुए। पूरे देश का शासन चलाने के लिए ब्रिटिश शासन की ओर से

वायसराय गवर्नर जनरल की नियुक्ति की जाती थी। इसी प्रकार प्रत्येक प्रान्त का शासन पृथक गवर्नरों के माध्यम से संचालित होता था तथा जिले का शासन जिलाधिकारी के द्वारा चलाया जाता था। जिलाधिकारी के अन्तर्गत अनेक डिप्टी कलेक्टर और तहसीलदार होते थे तथा इनके अन्तर्गत नायब तहसीलदार, कानूनगो एवं लेखपाल होते थे। ये लोग जिले की मालगुजारी वसूल करते थे और भूमि–विवाद सुलझाते थे। इस प्रकार पूरा प्रशासन एक संगठन से बँधा हुआ था। कुछ समय बाद सार्वजनिक निर्माण विभाग, स्वास्थ्य विभाग तथा अन्य विभाग खोल दिए गए। यह प्रशासनिक व्यवस्था सन् 1947 तक इसी प्रकार रही।

8. नवीन शिक्षा का उदय – अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् प्रशासन को सुदृढ़ रूप देने के लिए यूरोपीय शिक्षा प्रणाली के आधार पर यहाँ नवीन शिक्षा प्रणाली की स्थापना की गयी। इस समय अंग्रेजों को ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो अंग्रेजी पढ़ लिखकर उनके नौकर बन सके और उनके प्रशासन में उन्हें सहयोग प्रदान कर सके। इस उद्देश्य से उन्होंने प्राथमिक विद्यालय, पूर्व माध्यमिक विद्यालय, माध्यमिक विद्यालय तथा कालेजों की स्थापना की इन विद्यालयों में जो पढ़–लिखकर निकला उसे आसानी से नौकरियाँ मिल गयीं और उन्हें पेंशन का लाभ हुआ तथा समाज में उन्हें कर्मचारी होने का सम्मान भी मिला। ये कर्मचारी कई श्रेणियों में विभाजित थे। मुख्य रूप से चपरासी, क्लर्क, सहायक अधिकारी, नियन्त्रक निर्देशक आदि के पदों में विभाजित थे। सन् 1947 तक यही प्रशासनिक–व्यवस्था रही और उन्हें इससे काफी आर्थिक लाभ हुआ तथा अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोग सभ्य–सुशील और उच्च स्तर के माने जाने लगे। बुन्देलखण्ड के अतिरिक्त उनका सम्मान देश के अन्य भागों तथा विदेशों में होने लगा।

वैज्ञानिक लाभ

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् यूरोपीय देशों में औद्योगिक क्रांति हुयी। नाना प्रकार के मशीनों का अविष्कार हुआ। इन मशीनों के माध्यम से जिन वस्तुओं का उत्पादन हाथ से होता था, उनका उत्पादन मशीनों से होने लगा। पहले भारत से यूरोपीय देशों को बना–बनाया सामान जाता था और उसके बदले खनिज या कच्चा माल आया करता था, लेकिन औद्योगिक क्रांति के पश्चात् सब कुछ उल्टा हो गया। अब कच्चा माल बाहर जाने लगा और उसके बदले बना–बनाया माल बाहर से आने लगा इसलिए भारत और बुन्देलखण्ड के निवासियों का आर्थिक शोषण होने लगा, किन्तु एक लाभ यह हुआ कि बुन्देलखण्ड निवासियों का परिचय गौरांग विदेशी जातियों से हो गया और उनकी सभ्यता का भी अन्दाज यहाँ के निवासियों को हुआ। विज्ञान जो कि परिकल्पना की वस्तु थी, वह साकार रूप में दिखलाई देने लगी। यहाँ के व्यक्ति निम्न वैज्ञानिक अविष्कारों और उससे जुड़ी गतिविधियों से परिचित हुए।

1. नवीन ऊर्जा स्त्रोतों का परिचय – अंग्रेजों के आगमन के पूर्व यहाँ के निवासी नवीन ऊर्जा स्त्रोतों से परिचित नहीं थे और न ही उनका प्रयोग जानते थे। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् उन्हें मिट्टी का तेल, पेट्रोल, डीजल, मोबिल ऑयल, क्रूड ऑयल, ग्रीस आदि से परिचय मिला। बुन्देलखण्ड के निवासी मिट्टी का तेल, कुप्पी और लालटेन के माध्यम से प्रकाश के लिए प्रयोग करने लगे तथा गैस की रोशनी का भी लाभ उठाने लगे। अनेक प्रकार के पेंट एवं रंग उपरोक्त तेलों के माध्यम से बनने लगे तथा संक्रामक रोगों में विषैले कीड़ों के मारने के लिए भी फिनाइल का प्रयोग करने लगे। भारतीय लोग पहले पत्थर के कोयले का प्रयोग नहीं जानते थे किन्तु अंग्रेजों के सम्पर्क में आने के पश्चात् उन्होंने विविध उद्योगों में पत्थर के कोयले का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। विविध प्रकार के इंजन और कारखाने कोयले से चलने लगे।

2. *आवागमन के संसाधनों में प्रयुक्त वैज्ञानिक उपकरण* – पहले बुन्देलखण्ड निवासी पैदल अथवा विविध वाहनों से आया जाया करते थे। इनमें मशीन का प्रयोग नहीं होता था। वैज्ञानिक अविष्कारों के परिणाम स्वरूप साइकिल, मोटर साइकिल, मोटर कार, ट्रक, सड़क का बेलन तथा विभिन्न प्रकार के रेल इंजन विज्ञान के अन्वेषण के परिणाम स्वरूप विदेशों से यहाँ आयात किए गए। इनके माध्यम से यहाँ का परिवहन सरल और सुगम हो गया। वे वाहन कम खर्चीले तेज गति से चलने वाले तथा समय की बचत करने वाले थे। इन वाहनों के आने के पश्चात् अनेक व्यक्तियों ने इनका परिचालन एवं रख–रखाव तथा सुधारने की विधियों को सीखा। इससे अनेक लोगों को रोजगार भी उपलब्ध हुए तथा परम्परागत वाहन चलाने वालों को इन वैज्ञानिक संसाधनों के कारण पर्याप्त नुकसान भी उठाना पड़ा। कालान्तर में विदेश जाने वालों के लिए हवाई जहाज भी इसी युग में सुलभ हुए। जबलपुर, ग्वालियर, झाँसी और नवगाँव छावनी में हवाई पट्टियों का निर्माण भी किया गया।

3. *उद्योगों में विज्ञान का प्रयोग* – अंग्रेजों के आगमन के पूर्व यहाँ छोटे–बड़े उद्योग हस्तकला के माध्यम से चलाए जाते थे। किसी भी वस्तु के निर्माण में धन, समय और श्रम तीनों की बर्बादी होती थी। मशीनीकरण का युग आने के पश्चात् यहाँ के उद्योग मशीनों से संचालित होने लगे। जिसमें श्रम, धन और समय तीनों की बचत होने लगी। सामान्य जन के उपयोग के लिए आटा चक्की, तेल मिल, दाल मिल, धान मिल, कपड़ा मिल तथा विविध वस्तुएँ बनाने के उद्योग मशीनों से संचालित होने लगे। ये मशीनें कोयले एवं तेल से चलती थीं तथा बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों जैसे– कस्बा, शहरों में इनकी स्थापना हुयी और लोगों ने इनसे लाभ उठाया। इनसे अनेक लोगों को रोजगार मिला लेकिन दूसरी ओर हाथ से समान बनाने वाले बेरोजगार हो गए और कुटीर उद्योग नष्ट होने के कगार में पहुँच गए क्योंकि हाथ का बना सामान महँगा पड़ता था और मशीनों से बना समान सस्ता पड़ता था।

4. *संचार साधनों में विज्ञान का प्रयोग* – ब्रिटिश शासनकाल के पहले यहाँ संगठित संचार साधन नहीं थे और न उनमें विज्ञान का प्रयोग था। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् संचार साधनों का संगठन किया गया। स्थान–स्थान पर डाकखाने और तार घर खोले गए। ये विभाग एक स्थान से दूसरे स्थान पर पत्र, रूपया, पैसा, सामान और संदेश पहुँचाने का कार्य करते थे। सन्देश पहुँचाने में तार और टेलीफोन में वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग किया जाता था। इसी युग में टेली–प्रिंटर का प्रयोग भी किया जाने लगा। इस प्रक्रिया से जहाँ नागरिकों को लाभ हुआ, वहीं व्यापारियों को भी लाभ हुआ। व्यक्तियों का सन्देश जल्दी मिलने लगे। इसी युग में पोस्टकार्ड, लिफाफा और मनीऑर्डर फार्म भी सुलभ होने लगे। इन्हें कुछ पैसा देकर डाकखाना से खरीदा जा सकता था। इन्हीं डाकखानों में बचत बैंक के जमा खाते भी खोले गए इसलिए रूपया–पैसा जमा करने, और निकालने में सुविधा हुयी।

5. *छापाखाना का शुभारम्भ* – ब्रिटिश शासन काल के पूर्व कवि और लेखक अपनी पुस्तकें भोजपत्र अथवा कागज में लिखकर स्वतः संग्रहीत कर लिया करते थे तथा कभी–कभी रियासतों के अभिलेखागार में इन्हें रख दिया जाता था। इनका प्रचार–प्रसार और पठन–पाठन सामान्य जन के लिए सुलभ नहीं हो पाता था। ब्रिटिश शासनकाल के पश्चात् छापाखाना का अविष्कार हुआ। सर्वप्रथम हैण्ड प्रेस का अविष्कार हुआ उसके पश्चात् लेथू प्रिन्ट की मशीनें बनीं। फिर टेडिल मशीनों का अविष्कार हुआ, फिर सिलेण्डर मशीनें बनीं तथा कम्पोज करने के लिए सीसे एवं रांगा के टाइप बने। इन मशीनों के माध्यमों से बुन्देलखण्ड के अनेक साहित्यकारों के साहित्य प्रकाश में आए।

हजारों की संख्या में पुस्तकें छपीं जिन्हें सामान्य लोगों ने पढ़ा। मुख्य रूप से मैथिलीशरण गुप्त, गौरी शंकर द्विवेदी, केशवदास, कवि भूषण, पद्माकर, लाल कवि के साहित्य से यहाँ के निवासियों का परिचय हुआ। कुछ पत्र–पत्रिकाएँ और अखबार भी विविध प्रेसों में छपने लगे। मुख्य रूप से बुन्देलखण्ड केसरी मुखिया आदि अखबारों का प्रकाशन इसी प्रेसों के माध्यम से सम्भावित हो सका है। इसी समय बाँदा से मुखिया और सत्याग्रही अखबार प्रकाशित किए गए जिन समाचार पत्रों में अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी समय महात्मा गाँधी द्वारा सम्पादित *'हरिजन सेवक'* अखबार भी बुन्देलखण्ड में गुजरात से आने लगा था। इसे तद्युगीन आन्दोलनकारी बहुत प्रेम से पढ़ा करते थे तथा इसी अखबार को आन्दोलनकारी बड़ी श्रद्धा के साथ पढ़ा करते थे।

6. कार्यालयों में टाइप मशीनों का प्रयोग – ब्रिटिश शासकों के पूर्व यहाँ सभी कार्यालयों में और राज्य की रियासतों में हाथ से लिखा–पढ़ी होती थी। यहाँ मुख्य रूप से कार्यालयों में अरबी, फारसी, ऊर्दू और हिन्दी में कार्य हुआ करता था। इसी समय जब अंग्रेजों का आगमन हुआ, उस समय यहाँ प्रशासनिक कार्य अंग्रेजी में भी कराया जाने लगा। तथा अभिलेखों को सुरक्षित रखने के लिए अंग्रेजी टाइप मशीनें कार्यालयों में रखाई गयी। कुछ लिपिकों को अंग्रेजी में टाइप करना भी सिखाया गया। कुछ समय पश्चात् हिन्दी टाइप मशीनों का भी प्रयोग हुआ। लिपिक लोग कार्बन पेपर लगाकर कई–कई कापियाँ एक साथ टाइप कर लिया करते थे। इस प्रकार कार्यालयों की कार्य क्षमता का विस्तार टाइप मशीनों के कारण बहुत बढ़ गया तथा इनके माध्यम से विभागीय आदेश *(D.O.)*, शासकीय आदेश *(G.O.)*, नियुक्ति पत्र *(Appointment Letter)*, न्यायालय के निर्णय *(Judgement)*, नोटिस आदि टाइप होकर भेजें जाने लगे तथा जनपदों के प्रत्येक कार्यालय में टाइप मशीनों की अनिवार्यता कर दी गयी।

7. सुरक्षा व्यवस्था में विज्ञान – अंग्रेजों के आने से पूर्व यहाँ के सैनिक और पुलिस कर्मी, जन सुरक्षा और युद्ध के लिए पुराने अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग किया करते थे। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् यहाँ के सुरक्षा कर्मी और पुलिस जन नवीन अस्त्र–शस्त्र से परिचित हुए। अब तलवार, कटार तथा तीर कमान के स्थान पर तोप, तमंचा, स्वचालित बन्दूकें और राइफलें तथा युद्ध के लिए विविध प्रकार के टैंकों का प्रयोग होने लगा। अब युद्ध और सुरक्षा–व्यवस्था मानव शक्ति पर आधारित न होकर वैज्ञानिक शक्ति पर आधारित हो गयी। नाना प्रकार के विस्फोटकों का इस्तेमाल होने लगा। विविध प्रकार के बमों का निर्माण इस युग में हुआ। मुख्य रूप से हाइड्रोजन बम और अणु बम जैसे घातक हथियार बने। इसके साथ–साथ सूचना प्राप्त करने के लिए वायरलैस सेटों का प्रयोग होने लगा।

8. मनोरंजन के क्षेत्र में विज्ञान का उपयोग – अंग्रेजों के आगमन से पूर्व यहाँ मनोरंजन के परम्परागत साधन उपलब्ध थे तथा परम्परागत गायन–वादन, नृत्य, खेल–तमाशों, कहानी, गपशप से व्यक्ति अपना मनोरंजन कर लिया करता था किन्तु अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् विज्ञान ने अपना हस्तक्षेप मनोरंजन में भी किया। अनेक वाद्य यन्त्र जैसे– हारमोनियम, प्यानो, गिटार, वायलेन आदि का प्रयोग गायन–वादन और नृत्य में होने लगा। इसी समय चलचित्र का आविष्कार हुआ। स्थान–स्थान पर छविगृह बनाए गए जहाँ मशीनों के माध्यम से चलती–फिरती फोटो दिखाकर जनता का मनोरंजन किया गया तथा उसे कहानियों से आबद्ध किया गया। पृथ्वी राजकूपर की अनेक फिल्में बुन्देलखण्ड के छविगृहों में आयीं। जिनसे जनता का भरपूर मनोरंजन हुआ। इसी समय फोटोग्राफी का भी अविष्कार हुआ। विविध प्रकार के कैमरे फोटोग्राफी के लिए

बने जिनके माध्यम से श्वेत–श्याम चित्र खींचे जाते थे। इस समय रंगीन फोटोग्राफी का अविष्कार नहीं हुआ था किन्तु पुस्तकों में रंगीन फोटोग्राफ छापे जाने लगे। इसी प्रकार सर्कस कम्पनी और नौटंकी कम्पनियों ने भी ध्वनि के लिए परम्परागत वाद्यों के अतिरिक्त बैंड–बाजा और बिगुलों का प्रयोग हारमोनियम के साथ होने लगा।

9. __विद्युत उपकरणों का प्रयोग__ – अंग्रेजों के आगमन के पूर्व यहाँ के व्यक्ति आकाश में चमकने वाली बिजली से परिचित थे जो जलवर्षा के समय आकाश में चमकती थी तथा जिसके गिर जाने से अनेक व्यक्तियों के प्राण चले जाते थे। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् यहाँ विद्युत–उपकरण का प्रयोग होने लगा। मुख्य रूप से कई शहरों में कोयले और जनरेटर से चलने वाले विद्युत गृहों की स्थापना की गयी तथा विद्युत कनेक्शन विविध व्यक्तियों को दिए गए। जिनसे व्यक्तियों के घर, सरकारी कार्यालय और अधिकारियों के आवास विद्युत रोशनियों से चमक गए तथा अनेक उत्सवों में विद्युत जनरेटरों का प्रयोग होने लगा। सर्वप्रथम बिजली जबलपुर, ग्वालियर तथा झाँसी शहर में आयी। इन्हीं उपकरणों की वजह से अनेक स्थानों में रेडियों स्टेशन संचालित हुए। जिनसे जनता का भरपूर मनोरंजन हुआ किन्तु ब्रिटिश शासनकाल में बुन्देलखण्ड में एक भी रेडियों स्टेशन नहीं था किन्तु धनी–मानी व्यक्तियों के यहाँ रेडियों और ग्रामोफोन उपलब्ध रहते थे।

10. __सौन्दर्य प्रसाधनों और वस्त्राभरण में विज्ञान का प्रयोग__ – अंग्रेजों के आगमन के पूर्व यहाँ दर्जी लोग व्यक्तियों के कपड़े हाथ से सिला करते थे। यह कपड़े स्त्री–पुरूष दोनों के हुआ करते थे। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् सिलाई मशीनों का प्रयोग वस्त्र सिलने के लिए होने लगा। इन मशीनों से परम्परागत वस्त्र और आधुनिक वस्त्र सिले जाने लगे। अंग्रेजों के प्रभाव के कारण यहाँ के व्यक्ति पैंट–कोट–कमीज़, पैजामा आदि पहनने लग गए थे। जिन्हें यहाँ के दर्जी लोग फैशन के अनुसार सिलने लग गए थे। सिलाई मशीनों के साथ–साथ कपड़े में लोहा करने के लिए प्रेस का भी प्रयोग होने लगे थे। जिन्हें आयरन के नाम से पुकारा जाता था। इसी प्रकार अन्य सौन्दर्य प्रसाधन भी मशीनों के आधीन हो गए थे। मुख्य रूप से नाऊ लोग बाल काटने के लिए मशीनों का प्रयोग करने लगे थे।

11. __स्वास्थ्य संसाधनों में विज्ञान का प्रयोग__ – अंग्रेजों के आगमन से पूर्व यहाँ वैद्य और सठिया लोग यहाँ परम्परागत तरीके से रोग ग्रस्त व्यक्तियों का इलाज किया करते थे। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् शैली के चिकित्सालय झाँसी, जबलपुर, ग्वालियर, छतरपुर आदि अन्य स्थानों पर खोले गए। ये चिकित्सालय मिशन हॉस्पिटल और राजकीय चिकित्सालय के नाम से संबोधित किए जाने लगे। इन चिकित्सालयों में ब्रिटेन की चिकित्सा पद्धति के अनुसार चिकित्सा की जाती थी। इन चिकित्सकों को डॉक्टर के नाम से संबोधित किया जाता था तथा ये लोग विविध प्रकार की चिकित्सा में वैज्ञानिक उपकरणों में जैसे– एक्स–रे, मशीन, ऑपरेशन के उपकरण, इंजेक्शन तथा टूट–फूट की स्थिति में प्लास्टर आदि बाँध कर चिकित्सा किया करते थे तथा दवा के रूप में विविध प्रकार की गोलियाँ और पीने की दवा दिया करते थे। जब किसी व्यक्ति को श्वांस लेने में तकलीफ़ होती थी। उस समय ऑक्सीजन सिलेण्डर के माध्यम से कृत्रिम श्वांस दिलायी जाती थी तथा रोग परीक्षण के लिए कई प्रकार के वैज्ञानिक उपकरण टम्प्रेचर आदि नापने के लिए किए जाते थे। परम्परागत चिकित्सा पद्धति से ज्यादा प्रोत्साहन इस चिकित्सा पद्धति को दिया गया। यह चिकित्सा पद्धति आज भी बुन्देलखण्ड में लोकप्रिय है।

वैज्ञानिक उपलब्धियों के लिए हम ब्रिटिश शासन और मसीही धर्मावलम्बियों के प्रति विशेष कृतज्ञ हैं। यह अपनी जगह ठीक है कि जहाँ ब्रिटिश–शासकों और मसीहियों ने हमें सुख के

संसाधन उपलब्ध कराए वहीं हमारा शोषण भी किया। यदि उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाए तो सुख के समस्त संसाधन जो विज्ञान जन्य थे, वे धनी व्यक्तियों को लाभ पहुँचाते थे, उनसे गरीब व्यक्तियों को किसी प्रकार का कोई लाभ नहीं हो सका आज भी आज़ाद भारत की नींव उसी विज्ञान आधार शिला पर खड़ी हुयी है जिसका निर्माण ब्रिटिश शासकों तथा अंग्रेज मसीहियों ने किया था। यदि हम उन्हें किसी प्रकार भूलाना भी चाहें तो हम भुला नहीं सकते और आज भी हम उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। क्योंकि राष्ट्र भावना का उदय और सम्पूर्ण भारत राष्ट्र सीमांकन का कार्य उन्हीं के समय में हुआ। आज जिस भारत राष्ट्र की हम परिकल्पना करतें हैं और जिस भारत राष्ट्र को वर्तमान परिवेश में देखते है उसे हम अंग्रेजों की देन ही स्वीकार करते हैं। इसीलिए हमारा मोह अंग्रेजी भाषा तथा अंग्रेजी जीवन शैली के प्रति बहुत अधिक हैं।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. केशव चन्द्र मिश्र, "चन्देल और उनका राजत्व काल", वाराणसी, 1974, पृष्ठ– 182।
2. वही, पृष्ठ– 183।
3. इब्न खुर्ददब, यात्रा वर्णन।
4. रमेश चन्द्र मजूमदार, "एंशियन्ट हिस्ट्री ऑफ इण्डिया", पृष्ठ– 566।
5. अनु0 सन्तराम, "अलबरूनी भारत (आइने अकबरी)", लखनऊ, 1869, पृष्ठ– 27।
6. अलबरूनी, "किताब–उल–हिन्द (अनुवादक– इ0सी0 सचाउ)", भाग– 2, अध्याय– 19, लन्दन, पृष्ठ– 155।
7. केशव चन्द्र मिश्र, "चन्देल और उनका राजत्व काल", पृष्ठ– 193।
8. कृष्ण मिश्र, "प्रबोध चन्द्रोदय", निर्णय सागर प्रेस, पृष्ठ– 43–46।
9. अनु0 सन्तराम, "अलबरूनी", भाग– 2, लखनऊ, 1869, पृष्ठ– 102।
10. कृष्ण मिश्र, "प्रबोध चन्द्रोदय", निर्णय सागर प्रेस, पृष्ठ– 187।
11. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, "मुगुल कालीन भारत", संस्करण– 1981, आगरा, पृष्ठ– 533–34।
12. तन्त्रवार्तिका, पृष्ठ– 1078।
13. वेदान्त सूत्र (शंकर भाष्य), पृष्ठ– 114।
14. कृष्ण मिश्र, "प्रबोध चन्द्रोदय", पृष्ठ– 57, 58, 59।
15. केशव चन्द्र मिश्र, "चन्देल और उनका राजत्व काल", पृष्ठ– 197।
16. कृष्ण मिश्र, "प्रबोध चन्द्रोदय", पृष्ठ– 54।
17. कृष्ण मिश्र, "प्रबोध चन्द्रोदय", पृष्ठ– 141।
18. केशव चन्द्र मिश्र, "चन्देल और उनका राजत्व काल", पृष्ठ– 199।
19. कनिंघम, "ऑक्र्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट", वॉल्यूम– 21, पृष्ठ– 34।
20. स्नेह महाजन, "आधुनिक भारत का इतिहास", दिल्ली 1995, पृष्ठ– 121।
21. अशोक मेहता, "1857 दी ग्रेट रिबेलियन", बॉम्बे, पृष्ठ– 26–30।
22. *(Those of the Indian people and those of the British rulers. To understand this clash of interests it is necessary to study the basic character of British rule in India and its impact on Indian society. The very nature of the foreign rule resulted in nationalistic sentiments arising among the Indian people and produced the material moral, intellectual and political conditions for the rise and development of a powerful national movement.)*

    बिपिन चन्द्र, "फ्रीडम स्ट्रगिल", नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, 1996, पृष्ठ– 2–3।
23. पी0एन0 चोपड़ा, "भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास", मैकमिलन दिल्ली, 1975, पृष्ठ– 148।
24. पी0एन0 चोपड़ा, "भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास", पृष्ठ– 79।
25. दीवान प्रतिपाल सिंह, "बुन्देलखण्ड का इतिहास", पृष्ठ– 231।
26. डॉ0 मुहम्मद अब्दुलहई, "सर्वश्रेष्ठ रसूल मुहम्मद का आदर्श जीवन", मिल्लत प्रेस अलीगढ़, 1997, पृष्ठ– 640।

27. तबरानी, ज़ादुल्मआ़द।
28. ज़ादुल्मआ़द।
29. पी0एन0 चोपड़ा, ''भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास'', पृष्ठ– 93।
30. कन्हैया लाल अग्रवाल, ''विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल'', सुषमा प्रेस सतना, 1987, पृष्ठ– भूमिका।
31. कृष्ण दत्त बाजपेयी, ''खजुराहो स्कल्पचर्स'', दिल्ली, 1980, पृष्ठ– 182।
32. त्रैलोक्य वर्मा के सागर ताम्रपत्र (वि0सं0 1264), ज0बा0बा0रा0ए0सो0, जिल्द– 23, पृष्ठ– 50।
33. एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द– 10, पृष्ठ– 47।
34. दीवान प्रतिपाल सिंह, ''बुन्देलखण्ड का इतिहास'', प्रथम भाग, पृष्ठ– 72।
35. वही, पृष्ठ– 84–85।
36. जे0बी0 आडेन, ''मेम्वायर्स ऑफ द ज्यालॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया'', भाग– 21।
37. त्रैलोक्य वर्मा के सागर ताम्रपत्र, ज0बा0बा0रा0ए0सो0, खण्ड– 23, पृष्ठ– 49।
38. बी0एन0 पुरी, ज0इं0हि0, खण्ड– 44, पृष्ठ– 33।
39. बुलेटिन (पुरातत्व विभाग, सागर विश्वविद्यालय), क्रम– 1, पृष्ठ– 101–14।
40. दीवान प्रतिपाल सिंह, बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ– 123–124।
41. कनिंघम, क्वायन्स ऑफ ऐश्यंट इण्डिया, पृष्ठ– 99–102।
42. ज0न्यू0सो0इं0, खण्ड– 23, पृष्ठ– 357।
43. एफ0इ0 पार्जिटर, ''ज्यॉग्राफी ऑफ दी रामाज एक्जाइल'', ज0रा0ए0सो0, 1894, पृष्ठ– 553।
44. आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया एनुअल रिपोर्ट, 1911–12, पृष्ठ– 31।
45. वासुदेव उपाध्याय, ''भारतीय सिक्के'', पृष्ठ– 184।
46. कार्पस, खण्ड 4, पृष्ठ– 353, पं0– 20–21।
47. वही, पृष्ठ– 133।
48. एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड– 1, पृष्ठ– 143, श्लोक– 33।
49. वही, पृष्ठ– 146, श्लोक– 52।
50. कार्पस, खण्ड– 4, पृष्ठ– 46।
51. वा0वि0 मिराशी, ''कलचुरि नरेश और उनका काल'', भोपाल, वि0सं0– 2022, पृष्ठ– 61।
52. कार्पस, खण्ड– 4, पृष्ठ– 191, पं0– 10, 31, 32, 33।
53. पी0एन0 चोपड़ा, ''भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास'', पृष्ठ– 143।
54. वही, पृष्ठ– 145।
55. दीवान प्रतिपाल सिंह, ''बुन्देलखण्ड का इतिहास (प्रथम भाग)'', पृष्ठ– 125–126।
56. दीवान प्रतिपाल सिंह, ''बुन्देलखण्ड का इतिहास (प्रथम भाग)'', पृष्ठ– 76–77।
57. दीवान प्रतिपाल सिंह, ''बुन्देलखण्ड का इतिहास (प्रथम भाग)'', पृष्ठ– 98–99।
58. पी0एन0 चोपड़ा, ''भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास'', पृष्ठ– 184–185।
59. दीवान प्रतिपाल सिंह, ''बुन्देलखण्ड का इतिहास (प्रथम भाग)'', पृष्ठ– 148–149।
60. पी0एन0 चोपड़ा, ''भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास'', पृष्ठ– 214।

61. विष्णुगुप्त कौटिल्य (चाणक्य), ''कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम'', (व्याख्याकार– वाचस्पति गैरोला), चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1991, अध्याय– 21, प्रकरण– 37, पृष्ठ– 185।

62. वही, पृष्ठ– 189।

63. उमेश कुमार, ''कौटिल्य थॉट ऑन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'', नेशनल बुक आर्गेनाइजेशन पब्लिशर्स : नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ– 28।

64. इण्डियन एण्टिक्वेरी, भाग– 12, पृष्ठ– 189।

65. फ्लीट, ''कार्पस इन्स्कृप्शनम इण्डिकेरम'', भाग– 3, पृष्ठ– 97–98।

66. काण्ट्रीब्यूशन टू द हिस्ट्री ऑफ हिन्दू रेवन्यू सिस्टम, पृष्ठ– 210।

67. अग्रेरियन सिस्टम इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृष्ठ– 39–40।

68. जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन, 1931, पृष्ठ– 164।

69. विसेण्ट स्मिथ, ''अकबर दि ग्रेट मुग़ल'', 1919, पृष्ठ– 277।

70. राधाकृष्ण बुन्देली, ''बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन'', प्रथम भाग, बुन्देलखण्ड प्रकाशन, 1989, पृष्ठ– 184।

71. ए0के0 मित्तल, ''आधुनिक भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास'', साहित्य भवन पब्लिकेन्श आगरा, 1999, पृष्ठ– 152।

72. रामलखन शुक्ल, ''आधुनिक भारत का इतिहास'', हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालयः दिल्ली, विश्वविद्यालय, 1995, पृष्ठ– 47।

73. मालगुजारी जाँच समिति रिपोर्ट, 1924।

74. सुमित सरकार, ''आधुनिक भारत'', राजकमल प्रकाशनः नई दिल्ली, 1992, पृष्ठ– 44।

75. पी0एन0 चोपड़ा, ''भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास'', पृष्ठ– 161।

76. पी0एन0 चोपड़ा, ''भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास'', पृष्ठ– 164।

अध्याय सप्तम्

अध्याय– 7

❋ उपसंहार

❋ शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन

: शोध का उद्‌देश्य।

: शोध के लिए किए गए कार्य।

: शोध प्रबन्ध की समतुलना।

: शोध परिणाम।

: शोध प्रबन्ध की उपयोगिता और उपलब्धि।

: आगामी शोधार्थियों के लिए शोध प्रबन्ध का लाभ।

अध्याय – 7

उपसंहार

बुन्देलखण्ड गरिमा मण्डित परिक्षेत्र है, जिसका गौरवशाली इतिहास रहा है। वर्तमान समय में यह क्षेत्र दो प्रदेशों में विभाजित होकर विकलांगता का अनुभव कर रहा है। यह भारत वर्ष का हृदय प्रदेश है। आधुनिक भारत के मध्य भाग में स्थित इसकी अपनी विलक्षण संस्कृति है। यह क्षेत्र गौड़वाना, जेजाकभुक्ति स्तरीय बुन्देलखण्ड आदि भागों में विभाजित है। पर्वत श्रेणीं, सरिताएँ, झील, नगर, ग्राम इसकी सीमाओं को निर्धारित करते हैं।

बुन्देलखण्ड भू–भाग उत्तर में यमुना नदी, दक्षिण में नर्मदा नदी, पूर्व में टोंस नदी और पश्चिम में चम्बल नदी के मध्य स्थित है। वर्तमान समय में इसे बुन्देलखण्ड कहा जाता है क्योंकि इस क्षेत्र के अधिकांश शासक बुन्देला थे। यह क्षेत्र उत्तरी अक्षांश 23^0–45' अंश तथा 26^0–50' और पूर्वी देशान्तर 77^0–52' तथा 82^0 अंश के मध्य उन्नतोदर सम चतुर्भुज के रूप में स्थित है। कनिंघम तथा अन्य विद्वानों ने इसका सीमांकन अपने–अपने अनुसार किया है किन्तु यथार्थ निर्धारण इस साक्ष्य के अनुसार है :

"इत यमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस।
छत्रसाल सो लरन की, रही न काहूँ होंस।।"

पण्डित गोरेलाल तिवारी, दीवान प्रतिपाल सिंह, डॉ0 एम0एल0निगम तथा अन्य विद्वानों के अनुसार सीमांकन में कुछ मतभेद है किन्तु विन्ध्य क्षेत्र से आवृत्त यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड कहलाया। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड का क्षेत्रफल 48310 वर्गमील है।

बुन्देलखण्ड समय–समय पर विभिन्न नामों से जाना जाता था। प्राचीन काल में इसे विन्ध्याटवी, युद्ध देश, चेदि देश, मत्स्य देश, डाभाल, वज्र देश, चित्रकूट देश और कालिंजर प्रदेश के नाम से जाना जाता था। कालान्तर में जब यहाँ बुन्देलों का शासन स्थापित हुआ उस समय इसे विन्ध्येलखण्ड या बुन्देलखण्ड के नाम से जाना जाने लगा। वर्तमान समय में भी यह बुन्देलखण्ड के नाम से विख्यात है।

यहाँ पर अनेक ऐतिहासिक स्थल हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि यह क्षेत्र प्राचीन काल में ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थल था। इस क्षेत्र में अनेक दुर्ग, आवासीय स्थल, धर्म स्थल, जलाशय विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ, पुरालेख तथा नाना प्रकार के चित्र उपलब्ध होते हैं। यह ऐतिहासिक सामग्री हमें कालिंजर, चित्रकूट, कालपी, शुक्तिमती नगरी, पारिलेय्यक, विदिशा, एरच, एरण, देवगढ़, सीरोनखुर्द, दुधई, चाँदपुर, खजुराहो, महोबा आदि में उपलब्ध हुई है। इस सामग्री से यहाँ के ऐतिहासिक महत्व का मूल्यांकन किया जा सकता है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अनेक पर्वत श्रेणियाँ हैं। इनमें प्रमुख पर्वत श्रेणियाँ विन्ध्याचल पर्वत की ही हैं। इनमें पन्ना श्रेणी, भाण्डेर श्रेणी, कैमूर श्रेणी आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ अनेक नदियाँ प्रवाहित होती हैं, जो इस क्षेत्र में जल की आपूर्ति करतीं हैं। इनमें यमुना नदी, चम्बल नदी, सिन्धु नदी, बेतवा नदी, धसान नदी, केन नदी, बाघैन नदी, पैयस्वनी नदी, टोंस नदी, महानदी, नर्मदा नदी आदि प्रमुख नदियाँ हैं। इनके उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं।

यहाँ भूमि की बनावट एक जैसी नहीं है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में अनेक प्रकार की मिट्टी उपलब्ध होती है। इसे मार, रैनी मार, काबर पँडुवा, पँडुवा किस्म दोयम, रॉकड़, हड़–काबर, दौन, दो मटिया और तरीताल अथवा कछार की मिट्टी कहते हैं। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड विभिन्न प्रकार के वनों से आवृत्त है जिनमें नाना प्रकार के वृक्ष और अनेक प्रकार की वन–सम्पदा उपलब्ध होतीं हैं तथा अनेक प्रकार की काँटेदार झाड़ियाँ भी यहाँ उपलब्ध हैं तथा वन–सम्पदा में लाख, गोंद, मोम, शहद, बैचांदी, सफेद मूसली, बंशलोचन,

कत्था, विलाई कन्द, लछमन कन्द, कुसेरा, साँभर सींग तथा अन्य प्रकार के पशु–पक्षी उपलब्ध होते हैं।

बुन्देलखण्ड की जलवायु कर्क रेखा के नजदीक होने के कारण यहाँ विभिन्न प्रकार के मौसम होते हैं। मई–जून में यहाँ भीषण गर्मी पड़ती है और तापमान बढ़ जाता है। यह स्थल ऊष्ण कटिबन्ध के नजदीक होने के कारण यहाँ गर्मी बहुत भीषण पड़ती है। कालपी और हमीरपुर का तापमान बहुत बढ़ जाता है तथा बाँदा का भी तापमान अधिक हो जाता है। बुन्देलखण्ड में वर्षा ऋतु जून–जुलाई में प्रारम्भ होती है और सितम्बर–अक्टूबर के महीने तक बनी रहती है। बुन्देलखण्ड के मध्य भाग में जल वर्षा कम होती है। इसके अतिरिक्त यहाँ शीत ऋतु अक्टूबर–नवम्बर के महीने से लेकर फरवरी तक रहती है। कुल मिलाकर अक्टूबर से फरवरी तक यहाँ जाड़ा पड़ता है। यहाँ की जलवायु शीतोष्ण जलवायु है।

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में नाना प्रकार के जीव–जन्तु उपलब्ध होते हैं। यहाँ कई प्रकार के शेर और सिंह पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ हाथी, गेंडा, भैंसा, जंगली सुअर, रीछ, हिरण सर्वत्र पाए जाते हैं। प्राचीन काल में नरेश इनका शिकार करते थे। यहाँ रूरू मृग, रंकु मृग, तेंदुआ, झाऊ, नेवला, चूहा, गौरैया, चकोर, हंस, सारस, चातक, मोर, चितकबरे मृग, बन्दर आदि प्राप्त होते हैं तथा कई प्रकार की मछलियाँ भी जलाशय में प्राप्त होती हैं।

कृषि की दृष्टि से भी बुन्देलखण्ड महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यहाँ पर रबी, खरीफ और जायद की फसलें बोई जाती हैं। इनमें अनाज, तिलहन, फल–फूल तथा विशिष्ट प्रकार के फल उत्पन्न होते हैं तथा अनेक प्रकार की सब्जियाँ भी यहाँ उत्पन्न होती हैं तथा बुन्देलखण्ड का पान अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। इनमें बिलहरी, काकेर, कपूरी, बंगला, जैंसवार आदि विभिन्न कोटियाँ हैं जो बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होते हैं।

यहाँ अनेक स्थानों से अनेक प्रकार की खनिज सम्पदा उपलब्ध होती हैं। इनमें विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ, पत्थर और धातुएँ शामिल हैं। जैसे– खाड़ी, गेरू, प्योरिया, चूना, कोयला, अभ्रक, ताँबा, संगमरमर, लोहा, सोना, चाँदी, मोरम या बालू। यहाँ अनेक स्थानों में एल्यूमीनियम पाया जाता है। इसके अतिरिक्त कालिंजर के सन्निकट हीरे की अनेक खदानें हैं। बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक बनावट के कारण यह क्षेत्र खनिज सम्पदा की दृष्टि से अत्यन्त धनी है किन्तु यहाँ के व्यक्ति कतिपय कारणों से शोषण के शिकार हैं। यहाँ की जलवायु उपज सामाजिक धार्मिक व्यवस्था राजनीतिक परिस्थिति और आर्थिक परिस्थितियों ने यहाँ नई प्रकार की संस्कृति को जन्म दिया, जिसके कारण यह प्रदेश सम्पूर्ण भारत वर्ष में अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान रखता है। पहनावा, वेश–भूषा, भाषा के आधार पर इन लोगों को आसानी से पहचाना जा सकता है।

राजनीतिक दृष्टि से भी बुन्देलखण्ड का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जब भारतवर्ष में अनेक गणराज्य थे उस समय बुन्देलखण्ड के चेदि राज्य का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में यह क्षेत्र मौर्य वंशीय राजाओं के अधीन था तथा सम्राट अशोक के शासन काल तक यह क्षेत्र उन्हीं के आधीन रहा। उसके पश्चात् यहाँ शुंग वंशीय शासकों का अधिकार रहा। शुंग शासन की समाप्ति के पश्चात् यहाँ अनेक छोटे–छोटे राज्य स्थापित हो गए। जब गुप्तों का साम्राज्य यहाँ स्थापित हुआ उस समय यह गुप्तों के आधीन रहा। अनेक अभिलेख गुप्त शासन काल के यहाँ उपलब्ध हुए हैं जिनसे उनके अस्तित्व का पता चलता है। ह्वेनसांग जब भारत भ्रमण के लिए यहाँ आया उस समय अनेक ब्राह्मण राजा यहाँ राज्य करते थे। उसके पश्चात् यहाँ गुर्जर प्रतिहारों का राज्य स्थापित हुआ। पहले गुर्जर प्रतिहार यहाँ स्वतन्त्र रूप से शासन करते थे। बाद में उन्होंने चन्देलों को अपना माण्डलिक बनाया। बाद में यही चन्देल जेजाक भुक्ति के स्वतन्त्र शासक हो गए और सन् 1202 तक उनका शासन बुन्देलखण्ड में बना रहा। सन् 1202–03 में राजा परमार्दिदेव तुर्कों के हाथों पराजित हुआ तथा सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड कुतुबुद्दीन ऐबक के आधीन हो गया। इस क्षेत्र में सन् 1019 से मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे। महमूद गजनवी का आक्रमण पहला आक्रमण था। इसके पश्चात् शेरशाह सूरी का आक्रमण सन् 1545 ईस्वीं में कालिंजर में हुआ तथा उसकी मृत्यु भी वहीं हुयी। सन् 1606

से लेकर औरंगजेब के समय तक बुन्देलखण्ड में मुगलों के अनेक आक्रमण हुए। सन् 1728 में यहाँ मुहम्मद बंगश का आक्रमण हुआ। यह आक्रमण जैतपुर में हुआ। इसमें मरहठों ने छत्रसाल को सहयोग प्रदान किया था इसलिए छत्रसाल की इस युद्ध में विजय हुयी तथा छत्रसाल ने अपने राज्य का तिहाई भाग मरहठों को दे दिया और अपनी पुत्री मस्तानी को भी बाजीराव को सौंप दिया। इसके पश्चात् मरहठों और बुन्देलों के आपसी सम्बन्ध और संघर्ष बराबर चलते रहे।

कालान्तर में बुन्देलखण्ड में कुछ क्षेत्रों पर मरहठों का स्वतन्त्र राज्य स्थापित हुआ तथा अनेक बुन्देलखण्ड के नरेशों ने मरहठों की अधीनता स्वीकार की। गोविन्द राव पन्त ने सागर के आस–पास का क्षेत्र बालाजी गोविन्द को दे दिया। इसके पश्चात् झाँसी, कालपी और बाँदा मरहठों के आधीन हो गए। बुन्देलखण्ड के नरेशों में एकता न होने के कारण उनकी शक्ति का पतन होता चला गया और मरहठों की शक्ति बढ़ती गयी। इसी समय गोसाइयों की शक्ति का विस्तार हुआ और उन्होंने अपना अलग राज्य स्थापित कर लिया और मरहठा शासक बुन्देलखण्ड में चारों ओर अपनी शक्ति का विस्तार कर रहे थे किन्तु संवत् 1818 में मरहठों का अधोपतन प्रारम्भ हो गया इसलिए सत्ता में कुछ परिवर्तन हुए। इस बीच जैतपुर के राजा अपने वंशजों के संघर्ष को दूर करने के लिए अपने राज्य को तीन भागों में विभाजित करने के लिए तैयार हो गए। यह राज्य गुमान सिंह, खुमान सिंह, और गजसिंह के मध्य विभाजित हुआ। गुमान सिंह को बाँदा और अजयगढ़, खुमान सिंह को चरखारी तथा गजसिंह को जैतपुर का राज्य मिला। इसी समय बाँदा में शुजाउद्दौला के नेतृत्व में हिम्मत बहादुर गोसाईं ने आक्रमण किया। उनका युद्ध नोने अर्जुन सिंह से हुआ। इस युद्ध में गुमान सिंह की विजय हुयी।

18वीं सदी के अन्त और 19वीं सदी के प्रारम्भ में बुन्देलखण्ड की स्थिति अत्यन्त सोचनीय हो गयी थी और यहाँ पर अंग्रेजों के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे। इस समय कालिंजर में कायम जी चौबे का अधिकार था और अंग्रेज लोग इसी क्षेत्र से उत्तर से दक्षिण की ओर जाना चाह रहे थे। कलकत्ते से मध्य भारत के लिए जो सेना रवाना हुयी उसका नेतृत्व वेलेस्ली कर रहे थे। कालपी के मरहठा शासकों ने अंग्रेजी सेना रोकने का प्रयत्न किया। इसमें वे सफल नहीं हुए और अंग्रेजी सेना कालिंजर होती हुयी दक्षिण की ओर निकल गयी। इस समय गठेवरा में देशी नरेशों के मध्य युद्ध चल रहा था, जिसमें बेनी हजूर और नोने अर्जुन सिंह के मध्य युद्ध हुआ। इसी समय जो गौड़ राज्य जबलपुर के आस–पास था उसका पतन भी मरहठों के कारण हुआ। सन् 1787 में अली बहादुर प्रथम बाँदा के नवाब बने और धीरे–धीरे वे स्वतन्त्र शासक हो गए। उनकी मृत्यु सन् 1802 में कालिंजर में हो गयी अलीबहादुर की मृत्यु के पश्चात् शमशेर बहादुर द्वितीय बाँदा के नवाब बने। उसके पश्चात् जुल्फिकार बहादुर बाँदा के नवाब बने और अन्त में अलीबहादुर द्वितीय बाँदा के नवाब बने। अलीबहादुर के प्रथम के समय आए हुए हिम्मत बहादुर गोसाईं को अंग्रेजों ने राजा की उपाधि प्रदान की थी तथा इनसे अंग्रेजों की सन्धियाँ भी हुयीं थी तथा इन्हें अंग्रेजों की ओर से पेन्शन भी उपलब्ध होने लगी थीं। अलीबहादुर द्वितीय ने 1857 की क्रांति के समय तात्य टोपे और महारानी झाँसी की सहायता की थी इसलिए उनकी ख्याति बढ़ गयी थी किन्तु इसके पहले सन् 1802 में अंग्रेजों की सन्धि पूना में बाजीराव पेशवा द्वितीय से हुयी थी जिसके कारण समस्त बुन्देलखण्ड जहाँ मरहठों का साम्राज्य था वह अंग्रेजों के आधीन हो गया। इस समय बुन्देलखण्ड में कुल मिलाकर 43 रियासतें थीं। जिनमें जालौन, झाँसी, जैतपुर, खुद्दी, चिरगाँव, पुरवा, चौबियाना, तरौंहा, विजयराघौगढ़, शाहगढ़ और बानपुर आदि रियासतें थी जिनकी सन्धियाँ अंग्रेजों से हुयीं। सन् 1805 में शमशेर बहादुर से अंग्रेजों की सन्धि हुयी। उन्हें पेंशन प्रदान की गयी और पुराने बाँदा शहर में रहने की अनुमति प्रदान की गयी। इस समय मरहठों की ओर से रघुनाथराव नेवल्कर से अंग्रेजों की सन्धि हुयी। कुछ समय पश्चात् पेशवाई का अन्त हो गया और सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड सन् 1804 से लेकर 1806 तक अंग्रेजों के आधीन हो गया। इस बीच देशी रियासतों से भी अंग्रेजों की

सन्धियाँ हुयीं। अंग्रेज चाहते थे कि छोटे राज्यों का अस्तित्व समाप्त कर दिया जाए।

बुन्देलखण्ड के निवासी अभी तक अंग्रेजों की संस्कृति से परिचित नहीं थे। सन् 1857 की क्रांति के पूर्व यहाँ की जनता को अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काया गया और सैनिकों से कहा गया कि अंग्रेज लोग कारतूसों में सुअर और गाय की चर्बी का प्रयोग करते हैं। इससे जनता उनके विरुद्ध भड़की। इसी समय अनेक देशी राजाओं को गोद लेने का अधिकार प्रदान नहीं किया गया। इससे भी देशी नरेश अंग्रेजों से नाराज हो गए। अंग्रेज प्रशासक यहाँ के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगे। जिसके कारण विद्रोह और भड़का। जब अली बहादुर द्वितीय बाँदा के नवाब थे उस समय क्रांति का शुभारम्भ यहाँ हो चुका था तथा ग्रामीण अंचलों में क्रांति प्रारम्भ हो गयी थी। अनेक क्रांतिकारी विभिन्न स्थलों में छिपे हुए थे। क्रांतिकारियों का युद्ध गोयरा मुगली में अंग्रेजों से हुआ। इसके बाद यह युद्ध भूरागढ़ और बाँदा नगर में हुआ। कुछ समय के लिए बाँदा नवाब अलीबहादुर द्वितीय यहाँ के स्वतन्त्र शासक हो गए। इसके पश्चात् वे कालपी और उरई होते हुए ग्वालियर पहुँचे जहाँ उनकी मुलाकात तात्या टोपे और झाँसी की रानी से हुयी। यहाँ पर क्रांतिकारियों का युद्ध अंग्रेजों से हुआ और उनकी जीत भी हुयी किन्तु कुछ समय बाद उनकी जीत हार में बदल गयी। तात्या टोपे, बाँदा नवाब अलीबहादुर द्वितीय, झाँसी की रानी के बलिदान के पश्चात् दक्षिण भारत निकल गए तथा सन् 1860 के पश्चात् उन्होंने अंग्रेजों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार बुन्देलखण्ड की सम्पूर्ण सत्ता अंग्रेजों के हाथ में आ गयी।

राजनीतिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड क्षेत्र महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। यहाँ पर ऐसे साक्ष्य उपलब्ध होते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर यहाँ पर विभिन्न राजवंशों ने राज्य किया और अनेक प्रकार की राजनीतिक घटनाएँ यहाँ घटीं। यहाँ पर हूण, कुषाण, शक, वैक्ट्रियन के अतिरिक्त तुर्कों मुगलों के आक्रमण हुए और अन्त में अंग्रेजों की सत्ता स्थापित हुयी और यह सत्ता 15 अगस्त 1947 तक बराबर बनी रही।

मसीही धर्म का उदय इस्त्राएल में ईस्वीं सन् में हुआ। इसके संस्थापक प्रभु येशु मसीह थे। इनका प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब इस्त्राएल के लोग यहूदी धर्म का पालन करते थे तथा अनेक प्रकार के देवी–देवता की पूजा इस धर्म के माध्यम से होती थी। नर–बलि और पशु–बलि धर्म के अंग थे। मानव शरीर और उसमें व्याप्त चेतनता अथवा आत्मा व्यक्ति के हृदय में ज्ञान उत्पन्न करती थी, जिसके अन्तर्गत मनुष्य यह जानने लगा था कि सृष्टि का स्रजेता परमपिता परमात्मा अथवा *God* है और वही मुक्ति दाता है। प्रभु येशु मसीह को जब ज्ञान प्राप्त हुआ तो उन्हें ऐसा लगा कि इस्त्राएल के लोग अपने नैतिक कर्तव्यों से भटक गए हैं और वे गुमराह होकर गलत आचरण करने लग गए हैं इसलिए प्रभु येशु मसीह ने वहाँ के लोगों को समझाने के लिए जिस तरीके को अपनाया वह आगे चलकर मसीही धर्म के नाम से विख्यात हुआ तथा उनके धर्मोपदेश आगे चलकर बाइबिल नामक ग्रन्थ में संग्रहीत किए गए। इसमें मानव जीवन के उद्देश्यों का विस्तृत वर्णन है। प्रभु येशु मसीह का जन्म ईस्वीं सन् छः में हुआ। उस समय कुछ ऐसी घटनाएँ घटी। जिनसे यह प्रकट हुआ कि परमात्मा के पुत्र के रूप में किसी विशेष शक्ति ने जन्म लिया। उनकी माँ मरियम थी और उनके पालक यूसुफ थे। इनका जन्म विषम परिस्थिति में हुआ। उन्होंने अपना सबसे पहला उपदेश चरवाहों को दिया। वे चरवाहे दिन में जानवर चराते थे और रात में वहीं विश्राम करते थे। उसी समय स्वर्ग दूतों के माध्यम से प्रभु येशु मसीह के महत्व को वहाँ की जनता ने समझा। तब से चरवाहे उनकी महिमा का गुणगान करने लगे। धीरे–धीरे प्रभु येशु मसीह किशोर अवस्था को प्राप्त हुए और यरूशलेम में रहने लगे। इसी समय अनेक परिचित लोग प्रभु येशु मसीह को समझने की कोशिश करने लगे। प्रभु येशु मसीह नासरत गाँव में गए और जनता के अनुरोध पर धर्म सेवा करने लगे। इसी समय शैतान ने उनकी परीक्षा ली। इस परीक्षा में वे विजयी हुए। वे अपने गृह नगर नासरत में पुनः गए और वहाँ अपने शिष्यों को धर्मोपदेश दिए

तथा लोगों को यह विश्वास हो गया कि प्रभु येशु मसीह परमेश्वर के पुत्र हैं उन्हीं से व्यक्तियों का उद्धार हो सकता है। उन्होंने अपनी मातृभूमि इस्त्राएल प्रदेश के गलील प्रदेश से अपना धर्म प्रचार प्रारम्भ किया। उसके पश्चात् व्यक्तियों को छिपे खजाने और बहुमूल्य मोती की परख का उपदेश दिया। उन्होंने जाल का दृष्टान्त प्रस्तुत किया तथा पर्वतीय क्षेत्रों में जाकर लोगों को उपदेशित किया। उन्होंने कहा जो व्यक्ति परमात्मा की प्रार्थना करेगा वह चिन्ता मुक्त हो जाएगा और जो परमात्मा के आदेशों का पालन करेगा वह शाश्वत जीवन बिताएगा। कभी किसी व्यक्ति को पाप में नहीं फँसाना चाहिए, हमेशा विनम्र रहना चाहिए, आदर्श जीवन बिताना चाहिए, पाखण्डियों से दूर रहना चाहिए और एकान्त में प्रभु की प्रार्थना करनी चाहिए। प्रभु का नाम पवित्र नाम है। वह कभी किसी के साथ अन्याय नहीं करता, वह सभी के साथ न्याय करता है, वह उत्तम आचरण की सलाह देता है। उसका समस्त विश्व से नाता है, वह सभी को गुप्त दान देता है और तुमसे भी आशा करता है कि तुम भी गुप्त दान दो, अपराधियों को क्षमा करो, उन्हें नेक बनने की सलाह दो, स्वार्थ का त्याग करो, हमेशा निर्भीक रहो, पापों से डरो और अच्छे कर्म करो, परम्पराओं का पालन करो। जो व्यक्ति धन की इच्छा रखता है और धन को इधर–उधर के कार्यों में व्यय करता है वह ठीक नहीं है, बल्कि धन को अच्छे कार्यों में व्यय करने वाला व्यक्ति अच्छा होता है। सदैव दयालु रहना चाहिए और परिस्थितियों को समझकर व्यक्तियों की मदद करना चाहिए तथा अवसर पड़ने पर अपने शरीर का परित्याग भी प्रभु येशु मसीह की तरह शूली पर चढ़कर देना चाहिए।

प्रभु येशु मसीह यरूशलेम में अपने शिष्य के यहाँ पहुँचे। शिष्यों ने उनका स्वागत सत्कार किया तथा प्रभु येशु मसीह ने घूम–घूम कर व्यक्तियों को धर्मोपदेश दिए तथा अन्तिम भोज के अवसर पर उनके शिष्यों ने उनके लिए भोजन तैयार किया और उन्होंने सब के साथ बैठकर भोजन किया। उनके एक शिष्य ने प्रभु येशु मसीह को पकड़वाने की योजना बना रखी थी तथा प्रभु येशु मसीह ने इसकी भविष्यवाणी की और यह कहा कि मेरे शिष्य पतित हो जायेगें। वे अपने शिष्यों के साथ गतसमने बाग में आए जहाँ उनके शिष्य भी उनके साथ थे। यहाँ पर वे पुरोहितों के द्वारा पकड़े गए। पुरोहितों को उन्होंने अपना यह उपदेश दिया कि 'परमात्मा से बड़ा कोई नहीं है और परमात्मा के अतिरिक्त मैं किसी से डरता नहीं हूँ।' पुरोहितों ने उन्हें अपमानित किया और उन्हें राज्यपाल पिलातुस के सम्मुख पेश किया। इसी समय इनके शिष्य पतरस ने इनका शिष्य होने से भी इन्कार कर दिया। इन पर यह आरोप लगाया गया कि ये जनता को बरगलाते हैं और धर्म के विरुद्ध कार्य करते हैं। इस पर प्रभु येशु मसीह को क्रूस पर लटका दिया गया और यह कहा कि वह प्रभु का पुत्र नहीं है। प्रभु येशु मसीह की मृत्यु हो गयी और उनको कबर में दफना दिया गया तथा कबर में पहरा लगा दिया गया। उनको देखने के लिए उनकी माँ आयीं। मृत्यु के समय उनका शरीर तेजवान् था। इस समय देवदूतों ने उनकी माँ से बात की तथा इसी समय प्रभु येशु का शव कबर से गायब था तथा वे पुनर्जीवित हो गए और उन्होंने अपनी माँ से बात की। कुछ समय बाद उन्होंने इम्माऊस के मार्ग पर अपने शिष्यों को दर्शन दिए और वे वहाँ से गायब हो गए। शिष्य उनके दर्शन से आश्चर्य चकित हुए थे किन्तु प्रभु येशु ने विश्वास दिलाया कि 'मैं येशु ही हूँ।' बाद में उन्होंने थोमा को भी दर्शन दिए तथा गलील प्रदेश में जाकर अपने शिष्यों को धर्मोपदेश दिए।

प्रभु येशु मसीह के उपदेशों का प्रभाव अनेक महापुरूषों पर पड़ा। महात्मा गाँधी ने उन्हें शान्ति का देवता माना। स्वामी विवेकानन्द ने भी उनके चरित्र की प्रशंसा की। प्रभु येशु मसीह ऐसे महापुरूष थे जिनकी प्रशंसा विश्व के सभी धर्माचार्य करतें हैं। उन्होंने मानव जाति के लिए जो किया उससे लगता है कि वे परमात्मा के अग्रदूत और दैवी संदेश वाहक थे। शुद्ध हृदय का व्यक्ति उनके उपदेशों का लाभ उठा सकता है। उनका कहना था कि कष्ट झेलकर परमात्मा की आज्ञा पालन करना चाहिए प्रलोभनों से दूर रहना चाहिए। कोई व्यक्ति अच्छा नहीं है और अच्छा है तो सिर्फ परमात्मा इसलिए परमात्मा को ही प्यार करना श्रेष्ठ है।

मसीही धर्म का पवित्र ग्रन्थ बाइबिल है। मसीही धर्म को प्रारम्भ हुए 2000 वर्ष व्यतीत हो गए हैं। विश्व का अरबों व्यक्ति इस धर्म का अनुपालन करता है तथा अनेक बुद्धिजीवियों ने अनेक ग्रन्थों की रचना मसीही धर्म पर की है किन्तु इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ बाइबिल है। बाइबिल शब्द यूनानी भाषा का है जो बिबलिआन शब्द से बना है। इसका अर्थ एक छोटी पुस्तक होता है। पहले यह पुस्तक ताड़–पत्रों में लिखी गयी थी इसीलिए यूनानी भाषा में इसे बिबलोस कहा गया। बाद में यह बाइबिल में परिणित हो गया तथा इसे धर्मशास्त्र की संज्ञा दी गयी। बाइबिल 2 भागों में विभक्त है। इन्हें पुराना नियम और नए नियम के नाम से पुकारा जाता है तथा पूरे पुस्तक में अनेक छोटे–छोटे अनुभाग हैं। बाइबिल में नियम शब्द का प्रयोग किया गया है जो 'डाइथेके' का अनुवाद है। इसमें सामाजिक नियमों और अवतरित धर्म उपदेशकों की चर्चा है। पुराना नियम कई छोटे–छोटे ग्रन्थों को मिलाकर बना है किन्तु इन्हें कब क्रमबद्ध किया गया यह जानकारी नहीं है। आज से 1700 वर्ष पूर्व नए नियम की रचना हुयी थी जिसका अनुकरण मसीही समाज कर रहा है। नया नियम 4 भागों में विभक्त हैं –

1. आरम्भिक चार शुभ समाचार (मत्ती, मरकुस, लूका, योहन)।
2. प्रेरितों के कार्य (प्रभु येशु के प्रमुख शिष्यों के कार्यों का विवरण)।
3. इक्कीस पत्रों का संकलन जिन्हें प्रभु येशु के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके प्रमुख शिष्यों (प्रेरितों) तथा अन्य भक्तों ने लिखा।
4. प्रकाशन ग्रन्थ (नया नियम की अन्तिम पुस्तक)।

नए नियम के पुस्तकों की रचना सन् 60 से लेकर सन् 100 के बीच की गयी है। इनके रचनाकार अलग–अलग व्यक्ति हैं। नए नियम में कुल 27 पुस्तकें हैं तथा पुराने नियम में 39 पुस्तकें हैं। जिनकी रचना ईसा से 1000 वर्ष पूर्व की गयी थी। जिनका संकलन तद्‌युगीन धर्म गुरूओं ने किया था। मसीही धर्म पुस्तक का धर्म है। जिसका उल्लेख बाइबिल में पूरी तरह है। इसमें परमात्मा की आराधना करना अपने आचरण को धर्म के अनुकूल ढालना तत्पश्चात् परमेश्वर से अपने उद्धार की आराधना करना। इस पुस्तक को समझाने के लिए अनेक धर्म सभाओं का आयोजन हुआ तथा कालान्तर में मसीही धर्म काथलिक और प्रोटेस्टेंट दो भागों में विभक्त हो गया। रोमन काथलिक चर्च ने सन् 1546 में पुराना विधान और नया विधान को प्रमाणित किया और बाइबिल को धर्म ग्रन्थ की संज्ञा दी। बाद में बाइबिल का अनुवाद अंग्रेजी में भी किया गया। जब मसीही धर्म भारत वर्ष आया उस समय इसका अनुवाद हिन्दी में भी किया गया किन्तु यह अनुवाद इतना क्लिष्ट था कि इसका दुबारा अनुवाद करना पड़ा जो भारतीय नागरिकों के समझ का था।

मसीही धर्म की अलग पहचान विश्व में नहीं है। जहाँ भी विवेकशील प्राणी रहते हैं वे जन्म से लेकर मृत्यु तक नैतिक कर्तव्यों का पालन करते हैं। इनमें दैनिक कर्म, पारिवारिक कर्म, सामाजिक कर्म, आर्थिक कर्म, राजनीतिक कर्म और राष्ट्रीय कर्म शामिल है किन्तु जो कर्म पुरूषार्थ से शामिल है उन्हें धार्मिक कर्म कहा जाता है। मसीही धर्म के लोग इन्हीं कर्तव्यों का पालन करतें हैं। ये लोग परमेश्वर को सर्वशक्तिमान मानतें हैं। प्रभु जैसा दूसरा प्रभु नहीं मानते। प्रभु येशु मसीह परमात्मा के पुत्र हैं तथा उनके दिए हुए उपदेश परमात्मा के उपदेश हैं। ये लोग बाइबिल को पवित्र ग्रन्थ मानते हैं तथा चर्च इनके धर्म स्थल हैं। विविध अवसरों में व्यक्ति चर्च में जाकर प्रभु की उपासना करतें हैं। सम्पूर्ण विश्व में अनेक प्राचीन चर्च पाए जाते हैं। जिन्हें कलीसिया के नाम से पुकारा जाता है। चर्च के पादरियों का पहनावा सामान्य जनता से अलग रहता है। ये पहनावे विभिन्न अवसरों में भिन्न–भिन्न होते हैं। प्राचीनकाल से अब तक पुरोहितों के पहनावे में अन्तर आया है।

सर्वप्रथम भारत वर्ष में वे लोग मसीही बने जो लोग यहाँ के मूल निवासी थे। जो धर्म प्रचारक भारत वर्ष धर्म प्रचार के लिए आए थे उन्होंने यहाँ की जनता को अपनी ओर आकर्षित किया। इस समय भारत

वर्ष विभिन्न जातियों में विभाजित था इन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के नाम से पुकारा जाता था। चौथे वर्ग में आदिवासी, मेहतर, चाण्डाल, डोम, बसोर आदि लोग थे। इनसे उच्च वर्ग के लोग नफरत करते थे इसलिए मसीही धर्म प्रचारकों का ध्यान सर्वप्रथम इसी वर्ग पर गया और उन्होंने इनके उत्थान की योजना बनाई। सर्वप्रथम निचली जाति के लोग ही मसीही धर्म के अनुयायी बने। औरंगजेब का पुत्र शाह आलम सर्वप्रथम फारसी और तुर्की मसीहियों के सम्पर्क में आया। सन् 1713 में सर्वप्रथम काथलिक चर्च की स्थापना हुयी। इस समय 300 व्यक्तियों ने मसीही धर्म ग्रहण किया। इसके पश्चात् मसीही धर्म का प्रचार बढ़ता ही गया।

जिन लोगों ने मसीही धर्म अपनाया उन्होंने अपनी जातीय परम्पराओं का परित्याग पूरी तरह नहीं किया। केवल नाम, वेश–भूषा, विश्वास के आधार पर ही यहाँ के मूल निवासियों का धर्मान्तरण हुआ उनकी सामाजिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं आया। मसीही धर्म में ऊँच–नीच, छुआ–छूत की भावना भले ही न हो किन्तु भारत वर्ष के मसीही आज भी पूर्व परम्पराओं का पालन करतें हैं। जबकि बाइबिल में मिल–जुलकर रहने की सीख दी गयी है किन्तु यहाँ के लोग परम्पराओं और जातीय संस्कारों का अनुपालन अपने हिसाब से करते हैं। जब किसी का धर्म–परिवर्तन होता है तो सर्वप्रथम उसे बपतिस्मा प्रथा का अनुपालन करना पड़ता है। इसका मतलब है कि प्रभु येशु का जीवन, मृत्यु और पुनरूत्थान में वह सहभागी होगा। वह अपना हृदय परिवर्तित करके प्रभु येशु मसीह के शरण में आ रहा है परन्तु यह प्रथा सभी जगह एक जैसी नहीं है। बपतिस्मा के बाद दूसरा संस्कार दृढ़ीकरण है तीसरा प्रभु–भोज का आयोजन है। यह आयोजन की अलग–अलग प्रथाओं के अनुसार होता है तथा इसे लोग प्रभु के धन्यवाद या प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। इस समय लोग प्रभु की प्रार्थना भी करते हैं।

भारत में रहने वाले मसीही वेश–भूषा, भाषा और परम्परा की दृष्टि से पूर्ण भारतीय प्रतीत होते हैं। जो परम्पराएँ उनके यहाँ युगों से प्रचलित हैं उनका अनुपालन वे करतें हैं। केवल कुछ पढ़े–लिखे लोग यूरोपीय संस्कृति से प्रभावित हो गए हैं और उन्होंने अपनी वेश–भूषा परिवर्तित कर ली है। भारतीय धर्मावलम्बी जिस क्षेत्र में रहते हैं वे वहीं की भाषा बोलते हैं तथा वे उसी संस्कृति का अनुपालन करते हैं। जिसका अनुपालन उनके समाज में होता रहा है। केवल धर्म परिवर्तन के कारण मसीही धर्म के तीज त्यौहारों और परम्परा का निर्वाह वे करने लगें हैं। प्राचीन काल में जो लोक कला प्रचलित थी उसमें वैज्ञानीकरण के कारण परिवर्तन हुआ है किन्तु सुदूर ग्रामीण अंचल में वे ज्यों के त्यों हैं। भारतवर्ष में निवास करने वाले मुस्लिम और पारसी धर्म के लोग भी मसीहियों के सम्पर्क में आए हैं। दक्षिण भारत में तमिल, कन्नड़, तेलगू, मलयालम चार प्रमुख संस्कृतियाँ हैं जो मसीही धर्म के प्रभाव में हैं। अनेक आदिम जातियों ने इसे अति प्राचीन काल से अपना लिया था किन्तु अंग्रेजी संस्कृति आने के बाद यहाँ के लोगों में परिवर्तन आया तथा लोक संगीत में मसीही धर्म के अनेक सिद्धान्त शामिल किए गए। बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत होशंगाबाद, मण्डला, बालाघाट, छिन्दवाड़ा, सिवनी आदि जिलों के कोल, किरात, कोरकू और गौंड जाति के लोगों ने इस धर्म को अपनाया। इस धर्म के अपनाने से यहाँ के आदिवासियों में विशेष प्रकार की सांस्कृतिक क्रांति आयी।

जिन व्यक्तियों ने मसीही धर्म भारत वर्ष में अपनाया उनकी संस्कार व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुए। यहाँ पर काथलिक चर्च, एंग्लिकन चर्च, पश्चिमी चर्च और ऑर्थोडॉक्स चर्च स्थापित हैं। इन्होंने सर्व सम्मत से निम्नलिखित संस्कारों को मसीही धर्म से जोड़ा है और उनके अनुपालन की अनुमति प्रदान की है। इनमें जन्म संस्कार, नामकरण संस्कार, दृढ़ीकरण संस्कार, अभिषेक संस्कार, विवाह संस्कार और अन्तिम संस्कार आदि शामिल हैं। जो व्यक्ति धर्म का अनुपालन करता है और मसीही धर्म के सिद्धान्तों पर विश्वास रखता है उसका मृत्यु के पश्चात् पुनरूत्थान निश्चित होता है तथा वे व्यक्ति जिनका पुनरूत्थान हो गया है वे प्रभु के प्रिय बन जाते हैं। व्यक्ति को चाहिए कि वह यह जाने कि परमात्मा दयालु है, कृपालु है, करूणामय है, वह सभी को सुख प्रदान करता है इसलिए परमात्मा में आस्था रखना सभी का नैतिक कर्तव्य है। हमारे संस्कार उतने पुराने हैं

जितना पुराना मसीही धर्म किन्तु हमारे संस्कारों में समय के परिवर्तन के साथ कुछ परिवर्तन भी हुए हैं।

मसीही धर्म में भी अनेक प्रकार के पर्व हैं। जिनका अनुसरण इस धर्म के लोग करते हैं। इस धर्म में आगमन का रविवार 25 दिसम्बर के पूर्व मनाया जाता है। इसके पश्चात् प्रभु येशु का जन्मदिन 25 दिसम्बर से 6 जनवरी तक मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त एपिफनी (प्रकाशन पर्व), उपवास या संयम काल, पवित्र सप्ताह, खजूर का रविवार, पुण्य गुरुवार, शुभ शुक्रवार *(Good Friday)*, ईस्टर, स्वर्गारोहण पिन्तेकुस्त, त्रिएक रविवार आदि त्यौहार मसीही धर्म से संबन्धित हैं। इनका अनुपालन मसीही धर्म के लोग करते हैं।

बुन्देलखण्ड में मसीही धर्म का आगमन उस समय हुआ जब मसीही धर्म के लोग विभिन्न उद्देश्यों को लेकर यहाँ रहने लगे तथा अन्य धर्मावलम्बियों ने उनसे परिचय प्राप्त किया। अधिकांश मसीही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी थे जो राज्य विस्तार की योजना को लेकर बुन्देलखण्ड आए थे। यहाँ के निवासियों की धर्म स्थिति मसीहियों से भिन्न थी इस समय यहाँ हिन्दू धर्म के अतिरिक्त इस्लाम, पारसी, बौद्ध और जैन निवास करते थे। इन सभी के सम्पर्क मसीहियों से हुए। जब मसीही धर्म के लोग यहाँ आए उस समय यहाँ अनेक रियासते थीं। बाँदा के आस–पास अलीबहादुर प्रथम और उसके सहयोगियों का राज्य था। सन् 1778 में सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्स की सेना कालपी आयी। इस समय यहाँ मरहठों का शासन था और इसके पूर्व मुसलमानों का शासन रहा। अंग्रेजों की सन्धियाँ यहाँ के शासकों से हुयी। जिसके परिणाम स्वरूप अनेक अंग्रेज अधिकारी यहाँ पर रहने लगे।

बुन्देलखण्ड में मसीही धर्म अंग्रेजों के माध्यम से आया था। ये लोग बाइबिल का पाठ करते थे। अपने त्यौहारों को आस्था के साथ मनाते थे। उन्होंने सर्वप्रथम जबलपुर, सागर, झाँसी, नवगाँव छावनी, ग्वालियर, दमोह और बाँदा में अपने मिशन केन्द्र खोले। इन केन्द्रों में अंग्रेजी छावनियाँ स्थापित की गयीं। यहाँ अंग्रेजी सेना और उनके परिवार के लोग रहते थे। इसी समय स्थानीय लोगों की भाषा सीखने के लिए शब्दकोश की रचना हुयी। सन् 1857 के पश्चात् अंग्रेजों को यह अनुभव हुआ कि उनके विरोध के क्या कारण हैं ? इसी समय अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार–प्रसार प्रारम्भ हुआ। विद्यालय की स्थापना की गयी। अंग्रेजी भाषा पढ़ाई जाने लगी। मसीही धर्म के बारे में व्यापक प्रचार–प्रसार किया गया। स्थान–स्थान में डाक–तार व्यवस्था लागू की गयी, सड़कों का निर्माण हुआ। देशी नरेशों का आकर्षण मसीही धर्म की ओर हुआ। नयी प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था लागू हुयी। अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोगों को नौकरियाँ दी गयीं। बाँदा में अंग्रेजों का आगमन 1803 में हुआ। धीरे–धीरे मसीहियों का प्रभाव बढ़ा फिर भी मसीहियों की जनसंख्या बहुत अधिक नहीं है। केवल 202 व्यक्ति बाँदा में 10 वर्ष पूर्व मसीही थे। हमीरपुर में इनकी जनसंख्या 401 थी। जालौन में इनकी जनसंख्या 174 थी तथा झाँसी में सर्वाधिक मसीह थे। इनकी जनसंख्या 4331 थी। वर्तमान समय में जनसंख्या में वृद्धि हुयी है तथा विभिन्न क्षेत्रों में इनकी जनसंख्या अलग–अलग है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में मसीही धर्मानुलम्बियों की जनसंख्या 2 लाख से अधिक नहीं है।

बुन्देलखण्ड में मसीही धर्मानुलम्बियों ने अनेक कार्य किए हैं। इनमें सर्वप्रथम उन्होंने चर्च की स्थापना की। जिन लोगों को उन्होंने मसीही धर्म में दीक्षित किया उन्हें मसीही धर्म की संस्कार व्यवस्था से परिचित कराया तथा धर्म उपदेशों और महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों के सन्दर्भ में उन्होंने यहाँ के लोगों को जानकारी दी। यह कार्य धर्म प्रचारकों के माध्यम से हुआ। बाँदा में सर्वप्रथम 1910 में मिस डॉगमारे ने धार्मिक कार्य प्रारम्भ किया उसके पश्चात् अन्य लोगों ने इस कार्य को आगे बढ़ाया। सन् 1914 में दुर्गा प्रसाद चमार सबसे पहले मसीही बना। इसके अतिरिक्त पूरे बुन्देलखण्ड में धर्म प्रचार के कार्य होते रहे। इसके लिए अनेक विद्यालयों की स्थापना की गयी। स्वास्थ्य संबन्धी कार्य भी बुन्देलखण्ड में मसीही मिशनरियों के द्वारा किए गए। अनेक स्थानों में अस्पतालों की स्थापना की गयी। जहाँ अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति से व्यक्तियों की चिकित्सा की गयी। प्राकृतिक आपदाओं के समय में मसीही धर्म प्रचारकों ने जनता को सहयोग प्रदान किया। इनमें

जलापूर्ति, चिकित्सा–सुविधा, अन्न एवं वस्त्र का वितरण किया गया।

यदि मसीही धर्म का मूल्यांकन किया जाए तो यह मालूम पड़ता है कि ये लोग एकेश्वरवाद के समर्थक, मूर्तिपूजा के विरोधी, परमेश्वर का नाम बेवजह न लेना, विश्राम के दिन परमात्मा को याद करना, माता–पिता का आदर करना, किसी का खून न करना, अपराध न करना, झूठी गवाही न देना, लालच न करना तथा सप्ताह में एक दिन चर्च में मिलना, चन्दा एकत्रित करके उसे अच्छे कार्यों में व्यय करना, धार्मिक आयोजनों में शामिल होना प्रभु परमेश्वर का सच्चा सेवक बनना ही उनके कर्तव्य हैं। इनके धार्मिक नियम हिन्दू धर्म के विपरीत और इस्लाम धर्म के सन्निकट हैं। केवल अन्तर यह है कि हिन्दू धर्म का अंकुरण और विकास भारतवर्ष में हुआ। जबकि अन्य धर्म विदेशों से यहाँ आए इसलिए भारतवर्ष के निवासी उन धर्मों की निन्दा करते है जिनका प्रादुर्भाव यहाँ नहीं हुआ। इस्लाम धर्म जबरन यहाँ के निवासियों पर थोपा गया और अनिच्छा पूर्वक लोग यहाँ मुसलमान बने। हिन्दू धर्म के लोग गाय को पवित्र पशु मानते हैं जबकि मुस्लिम धर्म, मसीही धर्म गोमांस तथा अन्य पशुओं का मांस खाते हैं।

भारतवर्ष में मसीही धर्मानुलम्बियों की जनसंख्या 4 करोड़ है। सर्वाधिक मसीही केरल, नागालैण्ड और तमिलनाडु में रहते हैं। उनका धर्मान्तरण लगभग 200 वर्ष पूर्व हुआ था। जबकि बुन्देलखण्ड में मसीहियों की जनसंख्या बहुत कम है और वे लगभग 150 वर्ष पूर्व ही मसीही बने थे किन्तु मसीहियों के मानवतावादी सिद्धान्त हिन्दू धर्म से कहीं भी अलग नहीं है। केवल आराधना और उपासना विधि में अन्तर है। मसीहियों और हिन्दू धर्मानुलम्बियों में आपसी प्रेम व्यवहार है, नफरत की भावना नहीं है।

मसीही धर्म एकेश्वरवादी धर्म है जिसका उल्लेख बाइबिल में है। अनेक दार्शनिक व्यक्ति परमात्मा के अस्तित्व को और उसके स्वरूप को अलग–अलग ढंग से परिभाषित करते हैं। उसे सर्वशक्तिमान विश्व स्रजेता के रूप में स्वीकार किया गया है। ईश्वर शब्द की उत्पत्ति पूजा अथवा आराधना से हुयी तथा वह सर्वाधिक प्रकाशवान है। मसीही लोग विश्वास करते हैं कि बाइबिल से ही उनके सन्दर्भ में जानकारी उपलब्ध होती है। बाइबिल के पुराने नियम और नए नियम में इस बात का उल्लेख है कि साम्राज्य के उत्थान–पतन और मानव विकास में उसी का हाथ है। परमेश्वर ही अपने शक्ति के अनुसार सृष्टि की रचना करता है और वही व्यक्तियों को दासता से मुक्ति दिलाता है। पृथ्वी, आकाश, जीव–जन्तु, जल तथा अन्य पदार्थ सब उसी के बनाए हैं। प्रभु येशु मसीह उसी के पुत्र हैं। परमेश्वर ने उन्हें मानव जीवन के उद्धार के लिए भेजा है। मनुष्यों के पूर्वजों ने यह शपथ खायी थी कि वे परमेश्वर के बताए रास्ते पर चलेंगे। जब वे भूल गए तब परमेश्वर ने प्रभु येशु मसीह को भेजा और वे अपने ज्ञान और कर्तव्यों से प्रभु के पुत्र माने गए। उन्होंने अपना बलिदान दिया। यदि वे प्रभु के पुत्र बनना चाहते हैं तो वे योग्य जीवन जिए, एक–दूसरे के अपराध क्षमा करें दूसरों पर दया करें। एक–दूसरे से प्रेम करें यही परमेश्वर के सिद्धान्त हैं।

मसीही धर्म का जो सिद्धान्त परमेश्वर से संबन्धित है वह त्रिएक का सिद्धान्त है। मसीही धर्म के अनुसार समाज, पिता–पुत्र और शरीर में व्याप्त आत्मा एक हैं। इन्हें परमेश्वर के नाम से संबोधित किया जाता है। परमेश्वर ने मनुष्य जाति के उद्धार के लिए जो योजना बनायी है उसके प्रथम चरण में परमेश्वर संसार का पिता है। दूसरे चरण में वह पुत्र रूप में धार्मिक सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणित करता है। तीसरे चरण में वह सम्पूर्ण मानव जाति को प्रेरित करता है कि वह अपनी पवित्रात्मा को परमात्मा से जोड़े। वह अपना विद्रोही स्वभाव त्याग दे, पापों के लिए पश्चाताप करे और परमेश्वर पुत्र प्रभु येशु मसीह को याद करे।

मसीही धर्म बहुदेव वादी नहीं है। त्रिएक सिद्धान्त का मतलब यह नहीं है कि मसीही धर्म बहुदेव वाद का समर्थक है। इस त्रिएक सिद्धान्त में सबसे बड़ी समस्या कौन बड़ा, कौन छोटा, कौन किसके आधीन अथवा मातहत है। यथार्थ में तीनों एक हैं अर्थात परमेश्वर के तीन रूप हैं। पहला रूप परमेश्वर का ही है, यह एक है, यह सर्वशक्ति सम्पन्न है, पवित्र तथा धर्म का अनुपालन करने वाला है। दूसरा स्वरूप

परमेश्वर के पुत्र का है, जिसकी पहचान हम प्रभु येशु मसीह के रूप में करते हैं। प्रभु येशु मसीह हमें पूर्णतया मनुष्य के रूप में दिखलाई देते हैं तथा वे मनुष्य समाज को प्रेरित करते हैं। परमेश्वर का तीसरा रूप शरीर में व्याप्त आत्मा है। जब तक उसकी आत्मा उसके शरीर में है उसी समय तक उसका शरीर क्रियाशील है। जब उसके शरीर से उसकी आत्मा निकल जाती है तो वह क्रियाहीन हो जाता है और वह मरा हुआ समझा जाता है।

मसीही धर्म का सबसे पवित्र ग्रन्थ बाइबिल है। इस ग्रन्थ में यह बतलाया गया है कि मनुष्य जन्म से ही पापी है और उसने अनेक प्रकार के पाप किए हैं। उसके पापों का प्रारम्भ उसके मूल माता–पिता आदम–हव्वा से प्रारम्भ हो गया था। तभी से मनुष्य जाति का पाप करना स्वभाव बन गया है इसलिए वह पाप की सजा भी भोगता है। यदि वह परमेश्वर का आज्ञाकारी बन जाए तो उसे पापों से मुक्ति मिल सकती है। पापों के कारण वह परमात्मा को भूल जाता है, अपने चरित्र को कलुषित करता है तथा परमात्मा के आज्ञाओं का उल्लंघन करता है, जिसकी सजा उसे भुगतनी पड़ती है।

यदि व्यक्ति अपना उद्धार चाहता है तो उसे परमात्मा पर विश्वास करना पड़ेगा तथा उन नियमों का पालन करना पड़ेगा जो परमात्मा के बनाए हैं तभी व्यक्ति का उद्धार हो सकता है और परमात्मा से वह मिल सकता है अर्थात् वह स्वर्ग का अधिकारी बन सकता है और मृत्यु के पश्चात् वह स्वर्ग जाता है। जब वह दुःख या कष्ट का शिकार होता है तब परमात्मा उसके ऊपर करूणा करता है, उसके ऊपर दयाभाव दिखलाता है, उसके प्रति प्रेम प्रगट करता है तथा परमात्मा अपने धर्म का निर्वाह स्वाभाविक रूप से करता है। प्रभु येशु मसीह ने क्रूस पर चढ़कर जो आत्म त्याग किया था उसी से वे महान बने।

मसीह धर्म में चर्च का महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक ऐसा स्थान है जहाँ व्यक्ति एकत्रित होकर धर्म चर्चा करते हैं और धर्म का अनुष्ठान करते हैं। अनेक ग्रन्थों में धर्म सभा की चर्चा है जिन्हें कलीसिया के नाम से पुकारा जाता था। धर्म स्थल का महत्व आराधकों के लिए सर्वाधिक है। वे यहाँ एकत्रित होकर परमात्मा का स्मरण करते हैं। मसीही लोग स्थान–स्थान पर चन्दा एकत्र करके अपने धर्म स्थलों का निर्माण करते हैं तथा आराधक अपने पुनरूत्थान के लिए यहाँ आतें हैं। धर्म चर्चा के अतिरिक्त इन स्थलों में विविध प्रकार के संस्कार भी सम्पन्न कराए जाते हैं। प्रत्येक चर्च में एक पुरोहित तथा पादरी होता है जिन्हें प्रीस्ट के नाम से पुकारा जाता है। जो व्यक्ति पुरोहित के योग्य होते हैं वे धर्माचार्य के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं और उनका अभिषेक कराया जाता है। इस प्रकार सभी के समर्थन से उन्हें चर्च का पुरोहित बनाया जाता है तथा प्रत्येक चर्च को प्रभु का स्वरूप माना जाता है तथा यहाँ पर नियुक्त पुरोहित विभिन्न प्रकार के कार्य, जिनका सम्बन्ध धर्म से होता है, कराता है।

पुरोहित का कार्य धार्मिक कार्यों को सम्पन्न कराने के अतिरिक्त जनता की सेवा करना भी है। वह सम्पूर्ण व्यक्तियों के दुःख–दर्द को दूर कराने का प्रयत्न करता है। वह चर्च में परमपिता परमेश्वर की प्रार्थना करता है। उस प्रार्थना को सभी लोग दोहराते हैं। जब किसी व्यक्ति का अभिषेक कराया जाता है तब उसके लिए भी प्रार्थना की जाती है। इस प्रकार कई प्रकार की प्रार्थना मसीही धर्म में अलग–अलग समय में की जाती है। जब कोई व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है उस समय भी उसके उद्धार के लिए प्रार्थना की जाती है। बाइबिल के पुराने नियम में और नए नियम में इनका उल्लेख है।

यह संसार नाशवान है यहाँ जो कुछ भी है सब नाशवान है। इसे युगान्त के नाम से पुकारा गया इसलिए मृत्यु स्वाभाविक सत्य है। मृत्यु के पश्चात् परमेश्वर न्याय करता है और कर्म के अनुसार उसे स्वर्ग और नरक प्रदान करता है तथा पृथ्वी में धर्म उत्थान के लिए प्रभु येशु मसीह जैसे व्यक्ति जन्म लेते रहते

हैं। जब पृथ्वी में क्रोध, निर्दयता का संकट आ जाता है उस समय पृथ्वी का अन्त आ जाता है, जिसे युगान्त के नाम से पुकारा जाता है। जब एक युग का अन्त होता है तब दूसरे युग का शुभारम्भ होता है। कोई भी व्यक्ति मरता अवश्य है किन्तु उसके व्यक्तित्व को व्यक्ति सदैव याद रखते हैं कभी–कभी मसीही धर्म के सन्दर्भ में अनेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुयीं हैं जिनका निराकरण होता रहा है।

हिन्दू धर्म अत्यन्त प्राचीन धर्म है किन्तु हिन्दू शब्द का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थ में नहीं मिलता। 8वीं शताब्दी के बाद जो ग्रन्थ लिखे गए उनमें हिन्दू शब्द का उल्लेख है अनेक विद्वानों का यह मानना है कि हिन्दू शब्द विदेशी है। पश्चिमी देशों में हमारे देश को हिन्दुस्तान अथवा इण्डिया के नाम से पुकारा गया। इसलिए यहाँ के निवासियों के मूल धर्म को हिन्दू धर्म के नाम से पुकारा गया। इस धर्म के अन्तर्गत प्रकृति उपासक, शक्ति उपासक, शैव मतावलम्बी, वैष्णव मतावलम्बी, वैदिक धर्म के अनुयायी शामिल हैं।

हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस धर्म के अनुकरण कर्त्ता आध्यात्म दर्शन, वैदिक दर्शन, वैदिक देवता, वेद, पुराण, उपनिषद, आजीवक दर्शन, भागवत्‌गीता, न्याय वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, शंकर पूर्व वेदान्त, अद्धैत वेदान्त दर्शन, विशिष्ट द्वैतवाद दर्शन, वैष्णव सम्प्रदाय, सन्त दर्शन इत्यादि के अनुयायी हैं। ये लोग परमेश्वर के निर्गुण और सगुण स्वरूप को मानते हैं। मूर्ति की पूजा करते हैं, भाग्य और कर्म पर विश्वास करतें हैं। अपने तीज़–त्यौहारों को श्रद्धा–भक्ति के साथ मनाते हैं। यह धर्म किसी एक विश्वास और सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। मसीही धर्म की तरह हिन्दू धर्मावलम्बी भी सम्पूर्ण सृष्टि को परमात्मा द्वारा स्रजित मानतें हैं। इसका उल्लेख अनेक उपनिषदों और धार्मिक ग्रन्थों में है। शंकराचार्य परमार्थिक सत्ता और व्यावहारिक सत्ता को स्वीकार करते हैं। अनेक दार्शनिक विद्वान भी इस सन्दर्भ में अपने दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं। डॉ0 राधाकृष्णन ने संसार की व्याख्या की है। ऋग्वेद में भी सृष्टि स्रजन का उल्लेख है। प्रलय के दिन संसार नष्ट होता है और पुनः नई सृष्टि का उदय होता है। सम्पूर्ण सृष्टि विश्वकर्मा या ब्रह्मा द्वारा स्रजित है। स्वर्ग–नरक पर हिन्दुओं का विश्वास है तथा कर्म के अनुसार व्यक्ति स्वर्ग और नरक की प्राप्ति करते हैं। यदि मसीही धर्म से हिन्दू धर्म की तुलना की जाए तो पूजा–विधि, ग्रन्थ–पाठ और प्रभु–भोज में समानता मिलेगी। दोनों धर्म के नैतिक सिद्धान्तों में भी पर्याप्त समानता है। पुनर्जन्म और नए जन्म में कोई विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता। मसीही धर्म और हिन्दू धर्म अवतारवाद में भिन्नता रखते हुए भी प्रभु येशु को परमात्मा का पुत्र स्वीकारते हैं। जबकि हिन्दू लोग धर्म के उद्धार के लिए ईश्वर के अवतार पर विश्वास करते हैं। सृष्टि और प्रलय के सिद्धान्त दोनों धर्मों में एक जैसे हैं। ईश्वर के अवतार अथवा ईश्वर के पुत्र के रूप में जन्म लेना कुछ विशेष कारणों से होता है।

जब मसीही धर्म भारतवर्ष में आया उस समय उसने यहाँ के मौलिक धर्म को प्रभावित किया। अनेक हिन्दू धर्मावलम्बियों ने मसीहियों की संस्कृति से अनेक बातें सीखीं तथा उन्होंने यह स्वीकार किया कि यज्ञोपवीत, चन्दन, कण्ठीमाला और शिखा बेकार की वस्तुएँ हैं इसलिए लोगों ने इनका परित्याग किया। मसीही धर्म प्रचारकों पर जो प्रतिबन्ध लगाया गया था। वह सन् 1813 में उठा लिया गया। हिन्दू धर्म में जो कुरीतियाँ प्रचलित थीं उनकी कटु आलोचना की गयी। जिन लोगों ने कॉलेजों में शिक्षा ग्रहण की उन्हें जाति प्रथा में दोष दिखाई दिया तथा वे मसीही धर्म की ओर झुके। उन्हें पुराण और शास्त्रों में कपोल कल्पित कथाएँ नजर आयीं। इस समय भारतीय छात्र उच्छृंखल हो गए और उनका किसी भी परम्परा में विश्वास नहीं रहा किन्तु इसके लिए मसीही समाज किसी भी तरह दोषी नहीं है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के समय मसीही धर्म के प्रचार–प्रसार उतना नहीं हुआ जितना बाद में। भारत के जिन लोगों ने मसीही धर्म ग्रहण किया उन्होंने मांस खाना, हैट पहनना और शराब पीना प्रारम्भ

कर दिया। इस आचरण से महात्मा गाँधी जैसे महापुरूष दुःखी हुए। विवेकानन्द भी पढ़े–लिखे इन युवकों के इस आचरण से दुःखी हुए। मसीही बनने के बाद यहाँ के लोग यह भूल जाते हैं कि वे भारतीय हैं, एशिया महाद्वीप के निवासी हैं। अनेक युवक ऐसे भी थे जिन्होंने वेश–भूषा तो बदली किन्तु उन्होंने अपनी परम्पराओं का परित्याग नहीं किया, उनके परिवर्तन का कारण अंग्रेजी शिक्षा थी।

कहीं–कहीं नवीन विचारधारा का उदय हुआ और यह आवश्यकता अनुभव की गयी कि हिन्दू धर्म में परिवर्तन की आवश्यकता है। जिस प्रकार का परिवर्तन महात्मा बुद्ध, कबीर दास, रामानुज के समय हुआ, उसी प्रकार का परिवर्तन राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती और स्वामी विवेकानन्द ने प्रारम्भ किया। स्वामी विवेकानन्द और लोकमान्य तिलक ने गीता की नवीन व्याख्या की। जबकि राजा राममोहन राय ने राजनीतिक उद्‌देश्य से राष्ट्रीयता की भावना का संचार किया। महात्मा गाँधी ने ऊँच–नीच, छुआ–छूत और जाति–प्रथा का घोर विरोध किया। निश्चित है कि महात्मा गाँधी इंग्लैण्ड में शिक्षा ग्रहण करने के कारण मसीही धर्म से प्रभावित हुए और उन्होंने प्रभु येशु मसीह को महान व्यक्ति माना। भारत में कार्य करने वाले मसीही प्रचारकों ने महात्मा गाँधी से वार्तालाप की और नवीन उत्थान के कार्य बुन्देलखण्ड में प्रारम्भ किए गए। यह कार्य बाँदा, हमीरपुर, कर्वी, ललितपुर, ग्वालियर, टीकमगढ़, छतरपुर, दमोह, सागर, सतना, जबलपुर और जालौन में प्रारम्भ किए गए। स्कूल, कॉलेज, हॉस्पिटल, मन्दिर, गिरजाघर स्थान–स्थान में खोले गए तथा यहाँ के व्यक्तियों को राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी ने प्रभावित किया।

बुन्देलखण्ड में 150 वर्षों तक अंग्रेजों का शासन रहा, जिसके कारण यहाँ के लोग उनसे प्रभावित हुए और उन्होंने अंग्रेजों से बहुत कुछ सीखा। अंग्रेजों के कारण यहाँ बहुत अधिक विकास हुआ।

बुन्देलखण्ड में इस्लाम धर्म का भी व्यापक प्रभाव था। इस्लाम का मतलब होता है कि जो व्यक्ति अपने आप को खुदा के सामने समर्पित कर देता है और उस पर मुसलसल ईमान रखता है वही मुसलमान है। यह धर्म भी एकेश्वरवादी धर्म है तथा इस धर्म के संस्थापक हजरत मुहम्मद साहब थे। इनके पिता का नाम अब्दुल्ला था, माता का नाम अमना बेगम था। जिस समय इस धर्म का उदय अरब देश में हुआ उस समय अरब के लोग अनेक फिरको में बँटे हुए थे। ये लोग मूर्तिपूजक थे। सूर्य–चन्द्रमा, तारागण, प्रेतात्मा, मूर्तियों, देवियों, देवताओं तथा प्रकृति की पूजा करते थे। हजरत मुहम्मद साहब का जन्म सन् 570 ईस्वी में हुआ। बचपन में ही उनके माता–पिता का स्वर्गवास हो गया। इनके चाचा हजरत अबुतालिब ने इन्हें पाला। इनके पालने वाले कुरैशी कबीले के शेख थे और मक्का के पवित्र स्थल के संरक्षक थे।

वयस्क हो जाने के पश्चात् इन्होंने तिजारत की और तीन औरतों से विवाह किया। पहली औरत का नाम खदीसा, दूसरी बेगम का नाम फ़ातिमा और तीसरी बेगम का नाम आयशा था। उन्होंने कुरआन शरीफ पुस्तक को जन्म दिया। यह पुस्तक उन्हें फरिश्तों या देवदूतों से मिली थी तथा रमज़ान के महीने में यह उनके मस्तिष्क में उतरी थी। हज़रत मुहम्मद साहब ने मूर्तिपूजा का घोर विरोध किया तथा एक ईश्वरवाद का समर्थन किया। धीरे–धीरे यह धर्म इस्लाम धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा सन् 642 में हज़रत मुहम्मद साहब का स्वर्गवास हो गया। जब उनकी अवस्था 40 वर्ष की थी, उस समय उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने कहा खुदा की इबादत करो, किसी को दोषी न ठहराओ, समय पर नमाज़ पढ़ो, ज़कात अदा करो, रमज़ान में रोज़े रखो, पैसे होने पर हज करो, गुनाह मत करो, अपने से बड़ों को सलाम किया करो, यह इस्लाम धर्म के मूल सिद्धान्त हैं। नेक काम करने वालों को खुदा जन्नत देता है और बुरा काम करने वालों को दोज़ख देता है। इस्लाम धर्म के निम्नलिखित ग्रन्थ हैं – कुरआन शरीफ, सुन्ना, इज्मा, क्यास, सुन्नत–उल–कौल, सुन्नत–उल–फेल,

सुन्नत–उल–तकरीर, अहदीस–ऐ–मुतबातर, अहदीस–ऐ–मशहूर, अखबारी–ऐ–बाहिद आदि।

इस्लामी धर्मावलम्बी निम्न भागों में विभाजित हैं –

मुस्लिम धर्म का विभाजन (जाति के आधार पर)
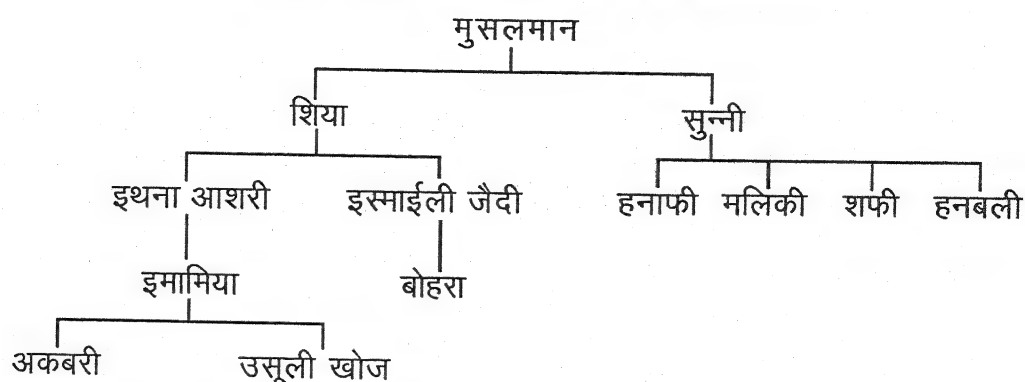
इस्लाम के धार्मिक चिन्ह – इस्लाम धर्म ने द्वितीया के चन्द्रमा को, जिसके ऊपर सितारा होता है, को धर्म चिन्ह के रूप में स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त हरा रंग, हरे रंग का ध्वज इनके धार्मिक चिन्ह हैं। मुसलमान लोग सम्पूर्ण विश्व में अपनी अलग पहचान रखते हैं। मक्का, मदीना इनके तीर्थ स्थल हैं। मस्ज़िद, ईदगाह, दरगाह इनके पवित्र धार्मिक स्थल हैं। कुरआन शरीफ का पाठ करना, रमजान के महीने में रोजे रखना और मस्ज़िद में नमाज़ पढ़ना इनके धार्मिक कृत्य हैं। ईद, बकरीद, सबेरात, मुहर्रम और बाराबफात इनके मुख्य त्यौहार हैं।

ये लोग 6 बातों पर विश्वास करतें हैं –

खुदा पर विश्वास, फरिश्तों पर विश्वास, खुदाई किताब कुरआन पर विश्वास, रसूल और नबियों पर विश्वास, कयामत पर विश्वास और तकदीर पर विश्वास। मसीही धर्म और इस्लाम धर्म में बहुत समानता है। अन्तर केवल इतना है कि मुसलमान लोग प्रभु येशु मसीह को परमात्मा का बेटा नहीं मानते। कुरआन शरीफ में प्रभु येशु मसीह का वर्णन है। मसीह धर्म और इस्लाम धर्म में स्वर्ग और नरक का वर्णन है तथा प्रभु येशु मसीह की भाँति हज़रत मुहम्मद साहब एक पवित्र व्यक्ति थे। मसीही धर्म में जिस प्रकार *God, Devil, Satan, Ghost* की परिकल्पना है उसी प्रकार इस्लाम धर्म में शैतान और फरिश्तों का वर्णन है। इस्लाम धर्म में काफ़िरों के विरुद्ध जेहाद करने की सलाह दी गयी है किन्तु मसीही धर्म में जेहाद की कोई परिकल्पना नहीं है। मसीही धर्म का प्रभाव इस्लाम धर्म पर व्यापक रूप से पड़ा है क्योंकि मसीही धर्म इस्लाम धर्म से प्राचीन है और दोनों धर्मों का उदय इस्त्राएल से हुआ किन्तु दोनों धर्मों की भाषा अलग–अलग है। इस्लाम धर्म में अरबी, फारसी को अपनी धार्मिक भाषा बनाया। जबकि बाइबिल रचना इस्त्राएली भाषा में हुयी किन्तु दोनों धर्मों के उद्देश्य एक जैसे हैं।

भारतवर्ष और बुन्देलखण्ड में सिक्ख धर्म का भी व्यापक प्रचार–प्रसार है। इस धर्म के संस्थापक गुरूनानक देव थे। इन्होंने गुरू ग्रन्थ साहब की रचना की और सिक्ख धर्म को जन्म दिया। गुरूनानक देव की वाणी गम्भीर, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति से युक्त है। इनकी रचना शैली में काव्य का लालित्य, माधुर्य, विचार, सम्पन्नता, सरल और सुबोध है। श्री गुरू अर्जुन देव ने सन् 1604 में गुरूवाणी का संकलन किया जो आज तक उसी प्रकार है। गुरू नानक देव ने दूर तक की यात्रा की और हर जगह उपदेश दिए। इनका जन्म सन् 1469 ईस्वी में बैशाख शुक्ल तृतीया को हुआ। ये तलबन्डी नामक गाँव में पैदा हुए थे। इनके दो पुत्र थे। इस समय पंजाब में तुर्कों का शासन था इसलिए इन्होंने फारसी और संस्कृत दोनों भाषाओं में शिक्षा ग्रहण की। इनके धर्म में हिन्दू और इस्लाम धर्म की मिली–जुली शिक्षाएँ हैं। 30 वर्ष की आयु में इन्होंने सन्यास

ग्रहण किया। मरदाना इनका परम प्रिय शिष्य था जो धर्म से मुसलमान था। इन्होंने मरदाना के साथ भारत, लंका, ईरान और अरब देशों की यात्रा की। गुरूनानक की मृत्यु सन् 1538 में जालन्धर दोआब में करतारपुर में हुयी। इनकी मृत्यु के पश्चात् हिन्दू और मुसलमानों में झगड़ा हुआ, लेकिन दोनों में एकता स्थापित हुयी। बाद में गुरू–शिष्य परम्परा का सूत्रपात हुआ। सिक्ख लोग अपनी अलग धार्मिक पहचान रखते हैं। इस धर्म के अनुयायी सिर में केश धारण करते हैं, पगड़ी बाँधते हैं, हाथ में लोहे का कड़ा पहनते हैं और कटार धारण करते हैं। ये लोग एक ईश्वर के उपासक हैं। जातिवाद और छुआ–छूत को नहीं मानते। ये अन्य धर्मानुलम्बियों को नहीं सताते, मादक पदार्थों का सेवन नहीं करते। चोरी, व्याभिचार, हत्या, जुआँ, दहेज लेना–देना आदि इनके धर्म में वर्जित है। जिस समय सिक्ख धर्म का अभ्युदय हुआ उस समय मुसलमानों का राज्य स्थापित हो चुका था और धार्मिक कट्टर वादिता बढ़ रही थी। सिकन्दर लोदी का शासन दिल्ली में था। गुरूनानक ने हिंसा का विरोध किया। कुछ दिनों बाद बाबर का आक्रमण हुआ और हिन्दुओं का दमन भी प्रारम्भ हुआ किन्तु सिक्ख धर्म का उत्थान हुआ। इस समय हिन्दुओं पर भीषण अत्याचार हो रहे थे, उनके मन्दिर तोड़े जा रहे थे। उन्हें निर्मित करने की अनुमति नहीं प्रदान की जा रही थी। गरीब हिन्दुओं पर सवर्ण हिन्दुओं का अत्याचार जारी था। स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। गुरूनानक देव ने स्त्री उत्थान पर जोर दिया। यहाँ का समाज भी विभिन्न अलग–अलग धर्मों में विभाजित था तथा अनेक प्रकार के अन्धविश्वास धर्मों में व्याप्त थे। जीव हिंसा व्यापक रूप से थी। गुरूनानक देव ने धर्म सुधार के लिए कार्य किए। उन्होंने प्राणियों पर दया करना, मन्दिर–मस्जिदों की हिफ़ाजत करना, मानवता की रक्षा करना तथा दिए गए उपदेशों पर अमल कर, अपने देश से प्रेम करना सभी व्यक्तियों को समान दृष्टि से देखना आदि यही गुरूनानक के उपदेश थे। उन्होंने कहा किसी भी व्यक्ति से उसकी जाति न पूँछकर उसके ज्ञान और कुशलता को पूँछना चाहिए। देवी–देवताओं पर आश्रित न होकर स्वावलम्बी बनना चाहिए। सिक्ख लोग निराशावादी नहीं हैं। वे निर्माण और क्रिया पर विश्वास करते हैं।

सिक्ख लोगों का यह मानना है कि गुरूनानक को परमात्मा के दर्शन हुए थे। उनके निगाह में ब्राह्मण सूफी और मसीही तथा रहस्यवादियों में कोई अन्तर नहीं है। जो बातें उन्होंने कही वे उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, भागवत गीता, कुरआन शरीफ और बाइबिल में वर्णित हैं।

इस समय अनेक देवी–देवताओं की उपासना प्रचलित थी। गुरूनानक देव ने इसका विरोध किया। मसीही धर्म का सिक्ख धर्म पर गहरा प्रभाव पड़ा। जो सिद्धान्त मसीही धर्म में हैं वे ही सिद्धान्त लगभग–लगभग गुरूनानक पन्थ में हैं किन्तु मसीही धर्म इस समय भारतवर्ष में नहीं था इसलिए इसका प्रभाव भी व्यापक नहीं था।

जैन धर्म का प्रभाव भी भारतवर्ष में था तथा इसका जन्म भी भारतवर्ष में हुआ। जैन धर्म के मतानुसार मनु के चौदह अवतार हुए। उनमें अन्तिम मनु नाभिराम थे। उनके पुत्र ऋषभदेव हुए। इस प्रकार 24 तीर्थांकर जैन धर्म में हुए –

1– ऋषभ, 2– अजीत, 3– सम्भव, 4– अभिनन्दन, 5– सुमति, 6– पद्मप्रभ, 7– सुपार्श्व, 8– चन्द्रप्रभ, 9– सुविधि, 10– शीतल, 11– श्रेयाँस, 12– वासुपूज्य, 13– विमल, 14– अनन्त, 15– धर्म, 16– शान्ति, 17– कुन्य, 18– अर, 19– मत्तिल, 20– मुनिसुब्रत, 21– नेमि, 22– अरिष्टनेमि, 23– पार्श्वनाथ, 24– महावीर स्वामी।

महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थांकर थे। इस धर्म में 6 तत्वों पर विश्वास किया जाता है :

1– जीव, 2– पुद्गल, 3– धर्म, 4– अधर्म, 5– आकाश, 6– काल। इसमें पुद्गल का महत्व सर्वाधिक है। जैन धर्म में धर्म और अधर्म का विस्तृत विश्लेषण हैं। व्यक्ति कर्म के अनुसार फल प्राप्त करता है और कैवल्य साधना के माध्यम से मोक्ष प्राप्त कर सकता है किन्तु कैवल्य साधना केवल सन्यासी करते हैं। जो व्यक्ति

इन्द्रियों को वश में कर लेता है वही कैवल्य प्राप्त करता है तथा वह भी परमात्मा को प्राप्त हो जाता है किन्तु हिन्दू दर्शन के अनुसार मोक्ष की स्थिति में व्यक्ति की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। जब तक वह शरीरी रहता है तब तक उसमें वीर्य, रूप, रस, गन्ध वर्ण होते हैं और सुख की कामना करता है किन्तु जैन धर्म निम्न सिद्धान्तों पर विश्वास करता है। ये सिद्धान्त अनेकान्तवाद, स्यादवाद, कर्मवाद पर विश्वास करता है तथा वह अपने बुद्धि को आठ प्रकार के अहंकारों से दूर रखता है।

जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी हुए जिनका जन्म 599 ईसा पूर्व में हुआ तथा वे 72 वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हुए। इन्होंने सत्य, अहिंसा, प्रेम आदि सिद्धान्तों पर जोर दिया। कालान्तर में यह धर्म श्वेताम्बर और दिगम्बर 2 भागों में विभक्त हो गया। कुछ काल बाद यह धर्म पूरे भारतवर्ष में फैला तथा अनेक स्थानों में जैन धर्म से संबन्धित स्थलों का निर्माण हुआ। इस धर्म के ऊपर मसीही धर्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि यह धर्म मसीही धर्म से भी प्राचीन है।

भारतवर्ष में जैन धर्म की भाँति बौद्ध धर्म का भी व्यापक महत्व था। इसके पहले यहाँ के लोग ब्राह्मण धर्म के उपासक थे तथा नाना प्रकार के आडम्बरों से घिरे हुए थे। यह धर्म ब्राह्मण धर्म के विरोध में उत्पन्न हुआ तथा महात्मा बुद्ध ने यहाँ के निवासियों को एक नवीन धर्म दिया जो बौद्ध धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध थे जिनका जन्म 623 ईसा पूर्व में हुआ। इनके पिता का नाम शुद्धोधन था जो सूर्यवंशीय राजा थे और शाक्य गणतन्त्र के प्रमुख शासक थे। सम्राट अशोक के अभिलेखों से महात्मा बुद्ध के बारे में पता लगता है। बचपन से ही ये सहृदय व्यक्ति थे। विविध घटनाओं का उनके जीवन पर प्रभाव पड़ा। वे बीमार, जर्जर व्यक्तियों से अधिक प्रभावित हुए। इनका विवाह हुआ और एक पुत्र राहुल उत्पन्न हुआ किन्तु वे माया ममता को छोड़कर तपस्या करने जंगल चले गए। बोधि वृक्ष के नीचे उन्होंने चार सप्ताह तक घोर तपस्या की। लड़कियों ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित करना चाहा किन्तु वे आकर्षित नहीं हुए। उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुयी और उन्होंने अपने शिष्यों को उपदेश दिया। जब महात्मा बुद्ध 72 वर्ष के हुए उस समय अजातशत्रु ने अपने पिता बिंबिसार की हत्या कर दी। यह घटना महात्मा बुद्ध के मृत्यु के 2 वर्ष पूर्व घटित हुयी। वे इस समय अपने शिष्यों को उपदेश दिया करते थे। 80 वर्ष की अवस्था में उनको ऐसा लगा कि अब उनकी मृत्यु होने वाली है। वे चुन्द नामक लुहार के यहाँ भोजन करने गए। भोजन उन्हें पचा नहीं और उन्हें पेचिश होने लगी जिससे उनकी मृत्यु हो गयी। उनके शिष्यों में अस्थियों को लेकर झगड़ा हुआ।

बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धान्त कारणवाद, प्रयोजनवाद, अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, क्षणवाद और निर्वाण हैं। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म के कुछ व्यावहारिक सिद्धान्त भी हैं। इनमें दुःख आर्य सत्य, आर्य आष्टांगिक मार्ग, दस आचरण, चार सम्यक प्रधान, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यांग आदि हैं। कालान्तर में बौद्ध धर्म हीनयान, महायान और वज्रयान में विभाजित हो गया। इन तीनों सम्प्रदायों में अन्तर था। बौद्धं धर्म में अनेक ग्रन्थों की रचना हुयीं। इनकी संख्या 22 है तथा इस धर्म के 6 तीर्थांकर हुए– पूर्णकश्यप, मक्खलि गोसाल, प्रकुध कात्यायन, अजित केशकम्बलि, संजय वेलट्ठिपुत्त, निगण्ठनाथ पुत्त आदि।

बौद्ध धर्म प्रचारक भारतवर्ष के अतिरिक्त इस्त्राएल और अरब देश जाया करते थे। इस समय मसीही धर्म का कोई अस्तित्व नहीं था इसलिए बौद्ध धर्म प्रचारकों ने मसीही धर्म को प्रभावित किया, क्योंकि मसीही धर्म के अनेक सिद्धान्त बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से मिलते हैं। जिनका उल्लेख बाइबिल में है। बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार सम्पूर्ण विश्व में हुआ किन्तु बौद्ध धर्म की जो स्थिति प्रभु येशु मसीह के बाद हुयी उससे यह स्पष्ट झलकता है कि नव बौद्धों पर प्रभु येशु मसीह का प्रभाव पड़ा। डॉ0 अम्बेडकर इस तथ्य को स्वीकारतें हैं। इसलिए दलितों का आकर्षण बौद्ध धर्म की ओर बढ़ा यद्यपि मसीही धर्म बौद्ध धर्म के 600 वर्ष बाद पृथ्वी में आया फिर भी जब एक दूसरे धर्म के लोग आपस में मिलते जुलते हैं तो वे अपना प्रभाव डालते हैं।

यह स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म, मसीही धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, गुरूनानक पंथ, इस्लाम धर्म भारत भूमि में यहाँ के लोगों के मध्य लोकप्रिय हुए तथा सभी धर्मों ने एक दूसरे को प्रभावित किया। प्रेम और नफरत की भावनाएँ एक साथ फूली–फलीं, जिसके कारण साम्प्रदायिक सद्भाव और साम्प्रदायिक संघर्ष समय–समय पर होते रहे। यहाँ के लोगों ने मसीही धर्म को समझा और उसे भी अपनाया किन्तु सत्य यही है कि परमात्मा एक है, समस्त सृष्टि का स्रजेता परमात्मा है तथा समस्त धर्मों के मूल सिद्धान्त एक–दूसरे से मिलते–जुलते हैं। आज करोड़ों की संख्या में पूरे विश्व में मसीही धर्म को मानने वाले हैं तथा मसीही धर्म से जुड़े हुए लोग बुन्देलखण्ड में भी हैं।

कला साहित्य के माध्यम से व्यक्ति अपने मस्तिष्क में संजोयी अभिव्यक्ति को प्रकट करता है। इस प्रकार कल्पना साकार स्वरूप धारण करके सामने आ जाती है। काव्य–कला, नृत्य–कला, संगीत–कला, अभिनय एवं नाट्य–कला, चित्रकला, सौन्दर्य–कला, पाक–कला, धातु–कला, वास्तु–कला, मूर्ति–कला, युद्ध–कला, शिल्प–कला, वस्त्र–कला, आभूषण–कला, काष्ठ–कला और चर्म–कला के माध्यम से व्यक्ति विभिन्न वस्तुएँ निर्मित करता है। व्यक्ति इन्हीं कलाओं के माध्यम से दुर्ग, राजप्रसाद, सरोवरों, धर्मस्थल, मूर्ति और चित्रकला को जन्म देता है। बुन्देलखण्ड में इसके अनेकों उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में काव्य कला, अभिनय एवं नाट्य कला का विकास था। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् उपरोक्त कलाओं में विविध प्रकार के परिवर्तन हुए। ये परिवर्तन वास्तु शिल्प के अतिरिक्त संगीत कला, नाट्य कला और चित्रकला में हुए।

पहले यहाँ का व्यक्ति जिन दुर्गों, भवनों, जलाशयों, धर्म–स्थलों का निर्माण करता था वे सभी वास्तु–शास्त्र के अनुकूल होते थे तथा उपलब्ध निर्माण सामग्री के आधार पर बनाए जाते थे। इस समय चूना, बालू, पत्थर, ईंट और लकड़ी का प्रयोग होता था। इस सामग्री से जलाशय जिनमें सरोवर, कूप, बीहड़ शामिल होते थे, निर्मित किए जाते थे। बुन्देलखण्ड में अनेक सरोवर और जलाशय उपलब्ध होते हैं।

बुन्देलखण्ड में उपलब्ध दुर्गों का सामरिक महत्व बहुत अधिक था। ये दुर्ग प्राचीर वेष्टित थे तथा इनमें प्रवेश के लिए अनेक द्वार होते थे। दुर्ग के अन्दर जलाशय, आवासीय स्थल और धर्म स्थल हुआ करते थे। इन धर्म स्थलों में गर्भगृह, मण्डप तथा अर्ध मण्डप होते थे तथा अनेक मन्दिरों में प्रांगण भी थे। बुन्देलखण्ड में अनेक धर्म स्थल उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ अनेक प्रकार के आवासीय स्थल भी हैं। जो सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। अपनी स्मृतियों को ताजा रखने के लिए तद्युगीन नरेश स्तम्भों का निर्माण कराते थे तथा धर्मस्थलों में विविध प्रकार की देवी–देवताओं की मूर्ति स्थापित कराते थे। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी प्रतिमाएँ भी थीं जिनका धर्म से कुछ भी सम्बन्ध नहीं था।

जब तुर्कों और मुगलों का शासन यहाँ स्थापित हुआ उस समय यहाँ के स्थापत्य कला और उसकी शैलियों में परिवर्तन हुआ। वास्तु निर्माण में गोलाकार तिपतिया मेहराब का प्रयोग होने लगा तथा विविध प्रकार की छतें बनने लगीं। मस्जिदों में मीनारें अथवा गुम्बदे बनीं बुन्देलखण्ड में ऐसे अनेक स्थल सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। मसीही धर्मानुलम्बियों के आने के पश्चात् यहाँ के वास्तुशिल्प में परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन वास्तुशिल्प सामग्रियों में हुआ, ईंटों और पत्थरों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ, भवनों में लोहे का प्रयोग होने लगा, सीमेंट का प्रयोग हुआ और भवन अभियन्ताओं के निर्देशानुसार बनने लगे। आवासीय बस्तियों का निर्माण हुआ, सैनिक छावनियाँ बनीं, सड़कों का निर्माण हुआ, पुलों का निर्माण हुआ, जगह–जगह पर अंग्रेजों ने चर्च बनवाए, नए प्रकार के जलाशय बने, दुर्ग एवं गढ़ियों की मरम्मत की गयी। अनेक स्थलों में छविगृह, नाट्य शाला और प्रेक्षागृह का निर्माण हुआ। ये सभी स्थल पाश्चात्य वास्तुशिल्प के अनुसार बने। अनेक स्थलों में मृत्यु स्मारक और कब्रिस्तान बने। जो भी वास्तुशिल्प का निर्माण यहाँ हुआ वह भारतीय वास्तुशास्त्र पर निर्धारित नहीं था।

चर्चों के निर्माण के लिए विविध प्रकार के वास्तुशिल्प का सहारा लिया गया तथा यह वास्तुशिल्प मसीही वास्तुशिल्प है। उसी शिल्प का सहारा लेकर चर्चों का निर्माण किया गया। ये चर्च बुन्देलखण्ड के विविध स्थलों में बने तथा कुछ चर्च वास्तुशिल्प की दृष्टि से उच्चकोटि के भी हैं। इनमें प्रवेशद्वार के ऊपर धर्म चिन्ह, उपासकों के बैठने के लिए एक बड़ा हाल और पादरियों के बैठने का स्थान होता है। यहीं पर एक वेदी बनी होती है जिसे अल्टर के नाम से पुकारा जाता है। प्रोटेस्टेंट, काथलिक और मैथोडिस्ट चर्चों में थोड़ा बहुत अन्तर होता है। चर्च अपनी अलग विशेषता रखते हैं।

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में चित्रकला, धातु–कला, काष्ठ–कला, संगीत एवं नाट्य–कला का प्रभाव रहा है। बुन्देलखण्ड की चित्रकला प्राचीनतम् है। अनेक स्थलों में शैलचित्र उपलब्ध हुए हैं जिससे यह लगता है कि यहाँ के निवासी अपने निवास स्थलों को विविध प्रकार से सजाया करते थे तथा इनके लिए विविध प्रकार के प्राकृतिक रंगों का सहारा लेते थे। उसके पश्चात् चित्रकला का विकास होता गया। तुर्क और मुगुल काल में इसका सर्वाधिक विकास हुआ। मसीहियों के आगमन के पश्चात् चित्रकला का व्यापक विकास हुआ तथा इसके निर्माण में विविध प्रकार के रंग और पेण्ट्स का प्रयोग होने लगा। ये चित्र कागज, मकान के दीवालों, लकड़ी के पटलों, कपड़ो और टीन की चादरों में बनाए जाने लगे तथा स्कूलों में चित्रकला को एक विषय के रूप में पढ़ाया जाने लगा। इन चित्रों में धार्मिक चित्र, पशु–पक्षियों के चित्र, प्राकृतिक दृश्य, ऐतिहासिक घटनाओं के चित्र, व्यक्तियों के चित्र बनाए जाने लगे। इस समय फोटोग्राफी का शुभारम्भ हुआ।

बुन्देलखण्ड में धातुकला का उत्कृष्ट स्थान है। यहाँ अति प्राचीन काल से मिट्टी, पीतल, सोना, चाँदी, ताँबे की विविध वस्तुएँ बनायी जाती थीं। इनमें बर्तन, खिलौनें, आभूषण और पूजा सामग्री की वस्तुएँ शामिल हैं। बर्तनों के अतिरिक्त यहाँ विविध प्रकार के आभूषण निर्मित किए गए जिनका उपयोग रूप सज्जा के लिए स्त्रियाँ करतीं रहीं हैं। तुर्क और मुगुलकाल में इस कला में परिवर्तन हुआ। मसीहियों के आगमन के पश्चात् आभूषणों की कला में जरूरत के अनुसार परिवर्तन किया गया तथा धातुओं से अनेक प्रकार के अस्त्र–शस्त्र भी निर्मित किए गए। जिनका प्रयोग युद्ध के समय होता था। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् धातुकला में परिवर्तन यह हुआ कि यहाँ काँच, लाख, ताम चीनी और चीनी पत्थर के बर्तन प्रयोग में आने लगे इस प्रकार धातु–कला में व्यापक परिवर्तन हुआ।

काष्ठकला भी बुन्देलखण्ड की प्राचीन कला है। मकानों में प्रयोग के लिए दरवाजे, खिड़की, फाटक, निर्मित होते रहे हैं। इसके अतिरिक्त तख्त, पलंग, चारपाई, मचिया, कुर्सी, लकड़ी के सिंहासन, ओखली, मूसल, चौकी, पटा, चकला, कूड़ी तथा लकड़ी के खिलौने निर्मित होते रहे हैं। तुर्क और मुगुल काल में इसमें व्यापक परिवर्तन हुआ, किन्तु अंग्रेजों के आने के पश्चात् लकड़ी से बनने वाले फर्नीचर का विकास हुआ।

बुन्देलखण्ड की संगीत एवं नाट्य कला भी अति प्राचीन है। यहाँ के निवासी अपने मनोरंजन के लिए इस कला का प्रयोग करते रहे हैं। इस कला में गायन, वादन, नृत्य और अभिनय शामिल रहे हैं। यह दो भागों में विभक्त रही है। ग्रामीण अंचल के लोग जिस संगीत का प्रयोग करते थे उसे लोक संगीत कहा जाता था तथा कुलीन घराने के लोग जिस संगीत का प्रयोग करते थे उसे शास्त्रीय संगीत कहा जाता था। चन्देल युग में इस कला का विकास हुआ तथा उसके बाद भी अनेक परिवर्तनों के साथ यह संगीत कला जीवित रही। यहाँ पर मुख्य रूप से गज़ल, दादरा, मुज़रा, संगीत, ध्रुपद, ख्याल, धमार आदि गायन विधियाँ प्रचलित थीं। इसके अतिरिक्त यहाँ का लोक संगीत अपने–अपने जाति के अनुसार लोकप्रिय था। वाद्य यन्त्रों में सारंगी, सितार, सरोद, शहनाई, बाँसुरी, करताल, मंजीरा, जल तरंग, काष्ठ तरंग, पखावज, तबला, मृदंग, ढोल, नाल और नगाड़े का प्रयोग होता था। मसीहियों के आगमन के पश्चात् गायन और वादन शैली में परिवर्तन हुआ और नए प्रकार के वाद्य यन्त्र जैसे क्लैरोनेट, ट्रम्पेट, गिटार, पियानो, मैण्डोलिन, माउथ ऑर्गन, साइड ड्रम, ट्राई एंगिल, केटिल ड्रम्स, टैम्बोराइन, ज़ायलोफ़ोन, हारमोनियम आदि का प्रयोग प्रारम्भ हो गया। इन

वाद्ययन्त्रों की आवाज़ अत्यन्त सुरीली, अत्यन्त मनमोहक थी इसी प्रकार का परिवर्तन नृत्य कला और अभिनय कला में हुआ। वैज्ञानीकरण के कारण सिनेमा का भी प्रयोग हुआ। जिसके परिणाम स्वरूप बुन्देलखण्ड के कई स्थानों पर सिनेमाघर खुले।

बुन्देलखण्ड के साहित्य पर भी मसीहियों का व्यापक प्रभाव पड़ा। साहित्य स्रजन की परम्परा यहाँ अति प्राचीन है। चन्देल युग में आल्ह खण्ड की रचना हुयीं। मुगुल काल में तुलसीदास जैसे महासन्तों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की इस समय काव्य की भाषा ब्रज अथवा बुन्देलखण्डी थी। कालान्तर में यहाँ पद्माकर जैसे महाकवि हुए। साहित्य सदैव युग के अनुसार परिवर्तन होता रहा है तथा विविध शैलियों में यहाँ कविता, नाटक तथा कथा साहित्य की रचना होती रही है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में बुन्देलखण्डी और उसकी उपभाषाएँ बोली जाती रहीं हैं। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् जब प्रेस स्थापित हो गए उस समय साहित्य भी विकसित हुआ। पहले काव्य की भाषा ब्रज और बुन्देलखण्डी थी किन्तु धीरे–धीरे खड़ी बोली का विकास हुआ। काव्य पिङल शास्त्र की मर्यादाओं को तोड़कर स्वतन्त्र विधा से लिखा जाने लगा तथा मैथिलीशरण गुप्त जैसे महाकवि इस धरती में उत्पन्न हुए। इसी समय गद्य साहित्य का भी विकास हुआ। पहले गद्य का प्रयोग पत्र लेखन में होता था किन्तु बाद में इसका प्रयोग निबन्ध लेखन, कथा लेखन तथा उपन्यास लेखन में होने लगा। अनेक समालोचनाएँ भी गद्य में लिखी गयीं।

बुन्देलखण्ड में मुसलमान व्यक्तियों का निवास था इनकी भाषा अरबी, फ़ारसी और उर्दू थी जो हिन्दू इनके सम्पर्क में आए उन्होंने भी उर्दू सीखी तथा अनेक विद्वानों के उर्दू साहित्य से अपना नाता जोड़ा।

बुन्देलखण्ड में लोक साहित्य भी अति प्राचीन है। इसे लोक काव्य तथा लोक कथा, लोक नाट्य तीन भागों में विभाजित करते हैं। इनके रचनाकारों का कोई पता नहीं है। लोग अपनी–अपनी परम्पराओं के अनुसार विविध अवसरों पर इनका प्रयोग करते हैं। संस्कार अन्य शुभ अवसरों, धार्मिक कृत्यों, विविध मौसमों में लोक साहित्य का प्रयोग होता है। रामलीला, रास लीला, नौटंकी प्रहसन और स्वांग यहाँ की नाट्य परम्परा हैं। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् लोक साहित्य में व्यापक परिवर्तन हुआ यह परिवर्तन रचना शैली और उनकी गायन विधि में हुआ। कुछ साहित्य मसीही धर्म के लिए लिखा गया और कुछ साहित्य मसीही धर्म के विरोध में लिखा गया। अंग्रेजों के प्रभाव से साहित्य की विषय सामग्री में परिवर्तन हुआ। लेखन शैली में परिवर्तन हुआ, भाषा में परिवर्तन हुआ तथा अनेक नवीन विधाओं को जन्म मिला। इस समय नवीन नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना, आत्मकथा तथा बाल साहित्य का उदय हुआ तथा अनेक प्रकार की पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं तथा कुछ राष्ट्रवादी साहित्य और कुछ प्रगतिशील साहित्य लिखा जाने लगा। बुन्देलखण्ड के साहित्यकारों में बाबू केदारनाथ अग्रवाल, डॉ0 आनन्द और चतुरेश महत्वपूर्ण साहित्यकार थे। इस अवसर पर वृन्दावन लाल वर्मा ने भी अच्छा साहित्य लिखा। उन्होंने उपन्यास और नाटकों की रचना की। इस प्रकार हम देखते हैं कि बुन्देलखण्ड का साहित्य मसीहियों के आगमन के पश्चात् परिवर्तित हुआ।

जब कोई बाहरी व्यक्ति आता है वह निश्चित ही हमारी सामाजिक, व्यवस्था, हमारी धार्मिक व्यवस्था तथा आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करता है। मसीही धर्मानुलम्बियों ने हमारी आर्थिक व्यवस्था को पूरी तरह प्रभावित किया। अंग्रेजों के पूर्व यहाँ के लोग विभिन्न जातियों मे विभक्त थें और वे अपनी जातियों के अनुसार अपने अलग–अलग व्यवसाय करते थे तथा सम्पूर्ण समाज रहन–सहन के स्तर के अनुसार राजा एवं सामन्त वर्ग व्यवसायी एवं मध्य वर्ग, निम्न अथवा कुटीर उद्योग से जुड़ा वर्ग तथा त्याज्य वर्ग में विभक्त थे। सबकी जीवन शैली अपनी–अपनी अलग–अलग थी। सभी वर्गों में वेश–भूषा एवं पहनावे में अन्तर था।
यहाँ के सम्पूर्ण व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कारों का पालन अपनी कुल परम्पराओं के अनुसार करते थे तथा अपने–अपने लोकाचरण अपनी कुल परम्पराओं के अनुसार करते थे। बुन्देलखण्ड के निवासियों

की भाषा बुन्देलखण्डी थी, जो 13 भागों में विभक्त थी। लोग बोलचाल में इसका प्रयोग करते थे तथा अनेक प्रकार के आमोद–प्रमोद के संसाधन थे, मनोरंजन के लिए जिनका प्रयोग होता था। मसीही धर्म के आगमन के पश्चात् यहाँ की सामाजिक व्यवस्था, रहन–सहन के स्तर, सामाजिक संस्कारों, भाषा और आमोद–प्रमोद के संसाधनों में परिवर्तन हुआ तथा अनेक प्रकार के उद्योगों के स्थापित होने के पश्चात् आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हुआ।

बुन्देलखण्ड में जब मसीही धर्मानुलम्बियों का आगमन नहीं हुआ था उस समय हिन्दू और मुसलमान दोनों अपनी पारिवारिक परम्पराओं के अनुसार जीवन व्यतीत करते थे। धार्मिक विरोधाभास के बावजूद एक–दूसरे को सहयोग प्रदान करते थे। इनके रहन–सहन का स्तर बहुत ऊँचा नहीं था। ये लोग राजनीतिक घटनाओं से उदासीन रहते थे। छुआ–छूत, जाति प्रथा सम्पूर्ण समाज में थी समाज का नैतिक पतन हो गया था। मसीही धर्म के आगमन के पश्चात् पहनावा, सामाजिक संस्कार, लोकाचरण तथा अन्य क्रिया–कलापों में व्यापक परिवर्तन हुआ। अन्ध विश्वास और व्यर्थ की परम्पराओं का घोर विरोध किया गया। लोक भाषा के स्थान पर खड़ी बोली का प्रयोग होने लगा। मनोरंजन में नए प्रकार के खेलकूद शामिल हुए।

बुन्देलखण्ड में लोगों का जीवन खनिज सम्पदा और कृषि पर आधारित था। भूमि की बनावट एक जैसी न होने के कारण कृषि की स्थिति दयनीय थी और वह वर्षा पर आधारित थी। यहाँ पर अधिकांश व्यक्ति कृषि के अतिरिक्त खनिज सम्पदा से भी अपनी रोटी कमाता था। वन–सम्पदा के माध्यम से भी उसे अच्छा आर्थिक लाभ हो जाता था। यहाँ के वनों में विविध प्रकार के वृक्ष थे जिनमें अनेक प्रकार की सामग्रियाँ उपलब्ध होती थीं इसके अतिरिक्त घास, पशु–पक्षी से भी व्यक्तियों को आर्थिक लाभ होता था।

यहाँ का व्यापारी वर्ग यहाँ की खनिज सम्पदा, वन–सम्पदा को बाहर ले जाकर बेचा करता था तथा अनेक प्रकार की कीमती धातुएँ हीरे जवाहरात आदि बाहर ले जाता था और उससे आर्थिक लाभ उठाता था। इसके अतिरिक्त वह कृषि उपज, सर्राफा व्यवसाय, कपड़ा उद्योग, धातु उद्योग, प्रस्तर उद्योग, चर्म उद्योग, काष्ठ उद्योग, मिट्टी उद्योग और कागज उद्योग से भी लाभ कमाता था। वह जो मुद्रा व्यवसाय के माध्यम से कमाता था उसका एक निश्चित भाग कर के रूप में देना होता था।

व्यापार में विशेष प्रकार की नाप–तौल निर्धारित थी, जिसे पैली, चौरी, चौथिया, अद्धा और पैले के नाम से पुकारा जाता था इसके अतिरिक्त कैया, पसेरिया का प्रयोग होता था। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् व्यावसायिक व्यवस्था, उद्योग व्यवस्था तथा कृषि व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुआ। माप तौल के बाँट बने। कृषि व्यवस्था में परिवर्तन हुआ, जमींदारी और जागीरदारी प्रथा का शुभारम्भ हुआ, सींच के लिए अनेक नहरों का निर्माण हुआ। ये नहरें विविध नदियों से निकाली गयीं। खनिज सम्पदा के आधार पर अनेक उद्योगों की स्थापना हुयी, कुटीर उद्योग समाप्त होने लगे और बड़े उद्योगों की स्थापना हुयी, इसके कारण गरीब और गरीब होता चला गया तथा बेरोजगारी की समस्या बढ़ी। वाणिज्य नीति में समय–समय में परिवर्तन हुआ। अंग्रेजों ने यहाँ के लोगों को बाध्य किया कि वे इंग्लैण्ड का बना समान खरीदें, जिससे परम्परागत उद्योग प्रभावित हुए और वे बन्द हो गए।

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् आवागमन के साधनों का विकास हुआ। अनेक रेल लाइनों का शुभारम्भ हुआ जो बुन्देलखण्ड के अनेक स्थानों से होकर जाती थीं। इन रेल लाइनों से यात्रियों के अतिरिक्त नाना प्रकार का सामान आने–जाने लगा। रेल लाइनों के अतिरिक्त यहाँ सड़क यातायात भी विकसित हुआ। पक्की सड़कें बनीं और उनमें पुल बनाए गए। रूपया अठ्ठन्नी, चवन्नी, अधंन्ना, पैसा, धेला, छदाम प्रचलन में आए और कागजी मुद्रा चलने लगी। इसी प्रकार सेर, पसेरी तौल के लिए प्रयोग होने लगे। लम्बाई नापने के लिए गज, फीट, इंच का प्रयोग हुआ। इसके अतिरिक्त फर्लांग और मील से दूरी नापी जाने लगी। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् व्यापार इसलिए प्रभावित हुआ कि नाना प्रकार के कर यहाँ के निवासियों पर लगाए

जाने लगे। तुर्कों, मुगलों और देशी नरेशों के कारण यहाँ के निवासी आर्थिक शोषण के शिकार थे। अंग्रेजों ने यहाँ के निवासियों का शोषण विविध प्रकार के टैक्स लगाकर किया। भूमिकर, उद्योग कर, चुंगी कर, आयकर एवं सम्पत्ति कर, उत्पादन कर, तहबजारी कर, व्यापार कर, पथ कर, जिला परिषद एवं नगर पालिका द्वारा लगाए गए कर, स्टाम्प कर, दैवी आपदा कर और मनोरंजन कर अंग्रेजों ने लगाए। इनसे व्यापार और उद्योग प्रभावित हुए तथा जनता पर आर्थिक बोझ बढ़ा। अंग्रेजों ने यहाँ की जनता का शोषण किया। उनका कर नीति का प्रभाव कृषि पर पड़ा।

कुछ कार्य इन्होंने आर्थिक लाभ के लिए भी किए जिनसे जनता को लाभ हुआ। कुछ कार्य ऐसे भी हुए जिससे वैज्ञानीकरण का सूत्रपात हुआ और उस वैज्ञानीकरण से यहाँ की जनता को लाभ हुआ। बैंको का शुभारम्भ हुआ, नवीन मुद्रा का प्रचलन हुआ, नवीन नाप तौल प्रणाली विकसित हुयी आवागमन के संसाधनों का विकास हुआ, इससे बुन्देलखण्ड निवासियों को लाभ हुआ।

अंग्रेजों ने 1857 की क्रांति देखी थी और उसके परिणाम भी भोगे थे इसलिए उन्होंने नयी अभिरक्षा प्रणाली लागू की और अनेक प्रकार की पुलिस अधिकारियों की भरती की। इनमें पुलिस सुप्रिन्डेन्डेंट से लेकर सामान्य पुलिस कर्मी तक की भर्ती की गयी तथा नवीन न्याय व्यवस्था का शुभारम्भ किया गया। विभिन्न प्रकार के न्यायालय की स्थापना की गयी। यह न्यायालय दीवानी और फौजदारी दो भागों में विभक्त थे। नवीन प्रशासनिक व्यवस्था का भी सूत्रपात किया गया। इनमें सम्पूर्ण देश अनेक प्रान्तों में विभाजित हुआ। प्रान्त कमिश्नरियों में विभाजित हुए, कमिश्नरियाँ जनपदों में विभाजित हुयीं, जनपद तहसीलों में विभाजित हुए, जिनमें विविध अधिकारी नियुक्त किए गए। यह अधिकारी गवर्नर, कमिश्नर, जिलाधिकारी, डिप्टी कलेक्टर, तहसीलदार, नायब तहसीलदार के नाम से जाने गए।

इसी समय आवागमन के संसाधनों में वैज्ञानिक संसाधनों का विकास हुआ। साइकिल, मोटर साइकिल, मोटरकार, सड़क का बेलन, रेल इंजन और हवाई यातायात का शुभारम्भ हुआ। औद्योगिक क्षेत्र में भी वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग होने लगा। अनेक बड़े–बड़े उद्योग बुन्देलखण्ड में भी स्थापित हुए जिनसे कुटीर उद्योग नष्ट हो गए। संचार साधनों का विकास हुआ, स्थान–स्थान पर डाकघर और तारघर खोले गए, अनेक स्थानों पर टेलीफोन लगाए गए तथा छापाखाना खोले गए, इनमें हैण्ड प्रेस, टेडिल मशीन और सिलेण्डर मशीनों का प्रयोग होने लगा इनके माध्यम से अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुयीं और समाचार पत्र निकलने लगे। कार्यालयों में टाइप मशीनों का प्रयोग होने लगा। सुरक्षा व्यवस्था में विज्ञान का प्रयोग होने लगा। मनोरंजन के क्षेत्र में विज्ञान का प्रयोग होने लगा। अनेक शहरों में विद्युत व्यवस्था प्रयोग में लायी जाने लगी। नए प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधन, स्वास्थ्य संसाधनों का प्रयोग होने लगा। नवीन प्रकार की चिकित्सा प्रणाली प्रारम्भ हुयी जिनमें वैज्ञानी उपकरण प्रयोग में लाए गए। बुन्देलखण्ड का विकास विज्ञान के माध्यम से अंग्रेजों के शासन काल में प्रारम्भ हुआ। इसके लिए हम उनके ऋणीं हैं।

-: शोध का उद्‌देश्य :-

कोई भी शोध छात्र जिज्ञासा की भावना से प्रेरित होता है। जो वह नहीं जानता, उसे जानने की इच्छा उसके हृदय में होती है इसलिए वह ज्ञानार्जन और उपलब्धि के प्रलोभन से वशीभूत होकर शोध की ओर आकर्षित होता है। मैं भी इसी प्रलोभन से वशीभूत होकर शोध कार्य से जुड़ी और मैंने यह कार्य अपने उद्‌देश्य के अनुकूल पूरा भी किया।

धर्म का उदय मानव सभ्यता के विकास के पश्चात् उस समय हुआ जब व्यक्ति को यह बोध हुआ कि उससे भी बड़ी शक्ति इस संसार में है। जिसने इस संसार का स्रजन किया और स्रजित संसार का विकास किया तथा निश्चित अवधि के बाद उसका विनाश भी किया। व्यक्ति ने इस महाशक्ति को परमात्मा का नाम दिया तथा उसकी उपशक्तियों को देवी–देवताओं के नाम से संबोधित किया। ऐसी शक्तियाँ जो ईश्वर विरोधीं थीं, उन्हें दैत्य, दानव, राक्षस और शैतान के नाम से पुकारा गया। मानव का प्रारम्भिक धर्म क्या था? यह बात आज तक ज्ञात नहीं हो सकी, किन्तु यह सच है कि उसने इस महाशक्ति के सामने अपना मस्तक झुकाया और वह नैतिकता के समस्त सिद्धान्तों को धर्म से जोड़कर उनका अनुपालन करने लगा।

भारत वर्ष का प्राचीनतम् धर्म प्राकृतिक धर्म था, जिसका उदय स्वयं हुआ तथा मनुष्य ने सरिता, पर्वत, वृक्ष, पशु, नक्षत्र आदि की पूजा प्रारम्भ कर दी। इसके पश्चात् भारत वर्ष की पावन भूमि में वैदिक धर्म का उदय हुआ। इस धर्म के प्रवर्तकों ने चार वेदों की रचना की और अनेक उपनिषद आदि लिखें। सम्पूर्ण समाज में वर्ण–व्यवस्था, आश्रम–व्यवस्था के सामान्य नियम लागू किए गए। कालान्तर में यही धर्म सनातन धर्म के नाम से विख्यात हुआ। महर्षि वाल्मीकि ने वाल्मीकि रामायण तथा वेदव्यास ने 18 पुराणों की रचना की। अनेक प्रकार के स्मृति ग्रन्थ लिखे गए तथा मूर्ति–पूजा का भी शुभारम्भ हुआ। अनेक देवी–देवताओं की संख्या में वृद्धि हुयी और धर्म स्थलों का निर्माण हुआ, नवीन उपासना विधि स्रजित हुयीं।

ईसा से लगभग 600 वर्ष पूर्व वैदिक धर्म के विरोध में यहाँ धार्मिक आन्दोलन प्रारम्भ हुए और दो नवीन धर्म उभर कर सामने आए। ये धर्म जैन धर्म और बौद्ध धर्म के नाम से विख्यात हुए। ये धर्म अनीश्वरवादी, ब्राह्मण विरोधी और वर्ण–व्यवस्था के विरोधी थे किन्तु इस धर्म के सिद्धान्त सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया और करूणा पर आधारित थे इसलिए इन्हे काफ़ी लोकप्रियता मिली।

ईसा की 10वीं शताब्दी तक यहाँ धर्म के नाम पर अन्ध–विश्वास पनपता रहा। धार्मिक कट्टरता का विकास हुआ और अनेक नवीन सम्प्रदाय अस्तित्व में आए। मुख्य रूप से शैव मत, शक्ति मत, वैष्णव मत, तांत्रिक संप्रदाय तथा अघोर पंथी अपनी धार्मिक क्रिया–कलापों से व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करते रहे। नर–बलि, पशु–बलि तथा अनेक धार्मिक अनुष्ठानों का उदय हुआ। कर्मकाण्डों को भी अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया गया। साम्प्रदायिक प्रथक्तावाद का उदय हुआ और व्यक्ति एक–दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करता रहा।

10वीं शताब्दी में यहाँ इस्लाम धर्मावलम्बियों का आगमन हुआ। यह धर्म जात–पाँत विरोधी, मूर्ति–पूजा विरोधी और एकेश्वरवाद का समर्थक था। इनके धार्मिक संस्कार और आचरण यहाँ के अनुकूल नहीं थे इसलिए यहाँ के निवासियों ने स्वयं को मुसलमानों से अलग रखा। मुसलमानों ने भी हिन्दू धर्मावलम्बियों का उत्पीड़न किया और उन पर नाना प्रकार के कर लगाए। औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दुओं का उत्पीड़न किया गया और अनेक धार्मिक स्थल नष्ट किए गए।

18वीं शताब्दी के अन्त में मसीही धर्म एक नए धर्म के रूप में उभरकर सामने आया। उसने यहाँ के निवासियों को अपनी ओर आकर्षित किया और अनेक व्यक्ति इस धर्म के अनुयायी भी बने। बुन्देलखण्ड की धरती पर पनपने वाला मसीही धर्म इतना लोकप्रिय क्यों हो रहा है? इस बात को समझने की आवश्यकता थी। अनेक व्यक्ति अपने मौलिक धर्म का परित्याग करके इस धर्म की सदस्यता क्यों ग्रहण कर रहें हैं ? इस बात का पता लगाना अति आवश्यक था। स्थान–स्थान पर चर्चों का निर्माण किया जाना, उनकी भाषा और संस्कृति का अनुकरण किया जाना एक महती समस्या उत्पन्न करती है। उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर के लिए और समस्या के समाधान के लिए मैंने मसीही धर्म पर यह शोध कार्य किया है। इस शोधकार्य से मेरा उद्देश्य पूरा हुआ है।

शोध के लिए किए गए कार्य

किसी भी विषय में अन्वेषण और शोध करना उतना आसान नहीं है जितना व्यक्ति समझता है, इसमें सर्वाधिक कठिनाई शोध विषय के चयन की होती है। शोध विषय इस प्रकार का होना चाहिए, जिस पर किसी शोधार्थी ने शोध कार्य न किया हो। शोध हमेशा नवीन विषय पर ही किया जाता है। शोध विषय के चयन में मैंने यह ध्यान रखा है कि डॉ0 अरूणेन्द्र चौरसिया ने बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति पर शोध कार्य किया। वह काफी सराहा गया। इसी प्रकार इन्दू प्रभा सिंह ने *'बुन्देलखण्ड के प्राचीन धर्म'* पर शोध कार्य किया। इन्हीं से प्रेरणा लेते हुए मैंने मसीही धर्म पर शोध करने का निश्चय किया। महिला महाविद्यालय के परम् पूज्य प्राचार्य डॉ0 के0के0 शुक्ला का वरद हस्त मेरे सिर पर रहा, जिसके कारण मेरा यह विषय शोध के लिए स्वीकार कर लिया गया।

शोध के लिए विषय सामग्री का संकलन सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है। मसीही धर्म से संबन्धित विषय सामग्री मसीही धर्म प्रचारकों, चर्चों और पुस्तकालयों के माध्यम से मुझे उपलब्ध हो पायी है। इसके लिए मैंने झाँसी, छतरपुर, दमोह, जबलपुर और बाँदा के मसीही धर्मावलम्बियों से सम्पर्क किया। उन्होंने बाइबिल के अतिरिक्त 63 अन्य ग्रन्थ उपलब्ध कराएँ, जिनका सम्बन्ध मसीही धर्म से था। इसके अतिरिक्त पं0 जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय के पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय, राजकीय पुस्तकालय, बुन्देलखण्ड शोध संस्थान बाँदा, लेनॉर्ड थियोलॉज़िकल कॉलेज जबलपुर से मुझे दुर्लभ ग्रन्थों की उपलब्धि हुयी। इन ग्रन्थों का मैंने गम्भीरता पूर्वक अध्ययन किया। तदुपरान्त मुझे शोध सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हुयी।

मसीही धर्म के यथार्थ को समझने के लिए मैंने एक प्रश्न तालिका तैयार की। इस प्रश्न तालिका में अनेक प्रश्नों को समायोजित किया गया है। यह प्रश्न तालिका मैंने हिन्दू, मुसलमानों, सिक्खों तथा मसीही धर्मावलम्बियों को दी। उनके उत्तर भी मेरे पास आए। जिनसे मसीही धर्म के सन्दर्भ में यथार्थ का बोध हुआ तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से मैंने प्रश्न तालिकाओं का वर्गीकरण और विश्लेषण किया।

शोध प्रबन्ध का लेखन कार्य मैंने शोध निदेशक परम् पूज्य डॉ0 कमलाकान्त शुक्ल के निर्देशन में किया। शोध प्रबन्ध लेखन में जो त्रुटियाँ मुझसे हुयीं थीं वह मैंने संशोधित कीं और शोध प्रबन्ध जब पूरी तरह से सम्पूर्ण हो गया उस समय मैंने शोध निदेशक की आज्ञा का अनुपालन करते हुए मैंने इसे टंकण एवं मुद्रित कराया और ध्यान रखा कि मुद्रण में किसी प्रकार की त्रुटि न रह जाए।

शोध प्रबन्ध की समतुलना

समस्त शोध प्रबन्धों की संरचना एक शास्त्रीय विधि के अनुसार होती है। इसमें विषय चयन, विषय का शीर्षक, विषय से संबन्धित सामग्री, शोध के लिए अपनायी गयी विधि और शोध की कोटि

शामिल होती है। मेरा यह शोध विषय इतिहास से संबन्धित है। जिसके अन्तर्गत वर्तमान स्थिति का अध्ययन न किया जाकर, व्यतीत हुए समय और उससे जुड़ी हुयी घटनाओं का अध्ययन किया जाता हैं क्योंकि इतिहास का संबन्ध बीती हुयी घटनाओं और मानव संस्कृति से है। इतिहासकार यह मानता है कि वर्तमान में जो कुछ भी है वह अतीत की देन हैं। सभी धर्म जो बुन्देलखण्ड की धरती पर फल—फूल रहें हैं उनका अनुपालन युगों से यहाँ के लोग कर रहें हैं। जो हमारे पूर्वज करते थे उन्हें आज हम दोहरा रहे हैं और जो हम आज कर रहें हैं उसका अनुकरण आने वाली पीढ़ियाँ करेंगी। इस प्रकार गंगा की धारा गंगोत्री से गंगा सागर की ओर सदैव प्रवाहित होती रहती है।

मसीही धर्म आज से दो सौ वर्ष पूर्व बुन्देलखण्ड की धरती पर आया था। आज उसके अनुकरण कर्त्ता लाखों की संख्या में हैं। लोग उसके धर्म सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं और उसकी समस्त धार्मिक क्रियाओं में पूरी श्रद्धा के साथ भाग लेते हैं। मैंने भी अपने धर्म के मर्म को समझा और यह पाया कि मसीही धर्म के धार्मिक सिद्धान्त यहाँ प्रचलित अन्य धर्म के सिद्धान्तों से मिलते—जुलते हैं।

मेरा यह शोध प्रबन्ध शोध विधियों के अनुकूल है। यदि इसका वास्तविक विश्लेषण मूल्यांकनकर्त्ता करेंगे तो यह पाएगें कि एक शोध प्रबन्ध में जिन मानक बिन्दुओं की आवश्यकता होती है वे सभी उसमें हैं। शोध प्रबन्ध को विषय के अनुकूल रखा गया है, सर्वत्र मौलिकता का ध्यान रखा गया है और उपलब्ध साक्षियों को यथा स्थान पर रखाा गया ताकि विषय की पुष्टि हो सके। शोध प्रबन्ध के अन्त में शोध सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची लेखक, प्रकाशक, संस्करण के अनुसार दी गयी हैं तथा शोध प्रबन्ध में शोध निदेशक के निर्देशों का ध्यान रखा गया है। शोध प्रबन्ध अपने आप में पूर्ण है।

<u>शोध परिणाम</u>

इस शोध कार्य को पूरा करने में मुझे लगभग 3 वर्ष का समय लगा है किन्तु यह समय व्यर्थ नहीं गया अपितु बहुत ही उपयोगी रहा है। मेरे इस शोध कार्य से निम्न परिणाम निकले —

1. <u>बुन्देलखण्ड में पल्लवित अन्य धर्मो का ज्ञान</u> – शोध कार्य करने से पूर्व मुझे यह ज्ञात नहीं था कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में कितने प्रकार के धर्म व सम्प्रदाय हैं, जिनका अनुपालन यहाँ के लोग करते हैं तथा उस धर्म से जुड़ी हुयीं संस्कृति, लोकाचरण व धर्माचरण क्या हैं, व्यक्ति के लिए धर्म का औचित्य क्या है? उसकी पूजा—पद्धति ईश्वर पर आस्था यहाँ की सामाजिक—व्यवस्था में धर्म का जो स्थान है उस सबकी जानकारी मुझे शोध के दौरान हुयी।

2. <u>धार्मिक साहित्य का ज्ञान</u> – प्राकृतिक धर्म को छोड़कर अन्य कोई ऐसा धर्म नहीं है जिसमें धार्मिक साहित्य की रचना न की गयी हो। हिन्दू धर्म में वेदों, पुराणों, स्मृति ग्रन्थों की रचना हुयी। बौद्ध और जैन धर्म में भी अनेक ग्रन्थ लिखे गए। इस्लाम धर्म में भी अनेक ग्रन्थ लिखे गए तथा मसीही धर्म के अनुकरण कर्त्ताओं ने भी अनेक ग्रन्थों की रचना की। शोध कार्य के दौरान मैंने सभी धर्मों के ग्रन्थ एकत्रित किए और पढ़े तथा उन्हें अपने शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री में स्थान दिया। मेरा मुख्य अध्ययन कुरआन शरीफ़, हदीस, बाइबिल तथा मसीही धर्म से संबन्धित अनेक ग्रन्थ रहे। इतना होते हुए भी ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ जिसमें परमात्मा और धर्म को सही ढंग से परिभाषित किया हो। दोनों परिभाषाएँ जो उपलब्ध हुयीं हैं वह परिकल्पना और अनुभूतियों पर आधारित हैं। मैंने भारतीय दर्शन और पाश्चात्य दर्शन का भी अध्ययन किया है। इन दर्शन शास्त्रों में जीव—जगत, आत्मा—परमात्मा, सृष्टि स्रजन और विनाश से संबन्धित अनेक सिद्धान्तों का वर्णन है। जिसका लाभ मुझे मिला और मैंने धर्म के यथार्थ को समझा। ये ग्रन्थ मुझे संस्कृत, पाली, प्राकृत,

अरबी, फारसी और अंग्रेजी में पढ़ने को मिले। मैंने अपनी क्षमतानुसार उनका विस्तृत अध्ययन किया।

3. मसीहीं धर्म का विस्तृत ज्ञान – इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से मुझे यह जानकारी उपलब्ध हुयी कि मसीही धर्म का उदय कब, कहाँ और किन परिस्थितियों में हुआ। प्रभु येशु मसीह ने इस्राइल में जन्म लेकर तथा अनेक यातनाएँ सहकर धर्म के यथार्थ को समझा तथा उन्होंने तद्युगीन धार्मिक अन्ध विश्वास और कुरीतियों की आलोचना की, जिसके कारण उन्हें कोप भाजन बनना पड़ा और अपमान सहित मृत्यु शूली का आलिंगन करना पड़ा। न्याय और धर्म की स्थापना के लिए उनके प्राणों का उत्सर्ग पर्याप्त महत्व रखता है इसीलिए प्रभू येशु मसीह को प्रत्येक व्यक्ति दया, करूणा, सत्य, अहिंसा, प्रेम और उत्सर्ग का अवतार मानता है। इस बात का मुझे तब बोध हुआ जब मैंने इस विषय पर शोध कार्य किया।

4. बुन्देलखण्ड की यथार्थ स्थिति का बोध – मेरा जन्म बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में हुआ है और मेरा पालन–पोषण भी यहीं हुआ है, किन्तु मैं बुन्देलखण्ड को उस समय तक नहीं समझ सकी जब तक मैंने अपना शोध कार्य प्रारम्भ नहीं किया। बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक संरचना उसकी सीमाएँ भूमि की बनावट, खनिज सम्पदा, कृषि उपज, उद्योग धन्धे और भाषा के सन्दर्भ में मुझे विस्तृत जानकारी अपने शोध कार्य के माध्यम से हुयी। अनेक ऐसे विद्वान यहाँ उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने बुन्देलखण्ड पर महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। उन ग्रन्थों के माध्यम से मुझे यहाँ के भूगोल, इतिहास, क्षेत्रीय संस्कृति, भाषा और राजनीतिक घटनाओं का बोध हुआ है तथा मैं बुन्देलखण्ड से पूर्ण–रूपेण परिचित हो सकी हूँ। बुन्देलखण्ड के अनेक उद्भट विद्वानों से मेरा साक्षात्कार भी हुआ है। जिन्होंने मेरे कार्य की प्रशंसा भी की और मुझे आशीर्वाद भी दिया।

–: शोध प्रबन्ध की उपयोगिता और उपलब्धि :–

कोई भी शोध प्रबन्ध केवल शोध छात्र के लिए ही उपयोगी नहीं होता बल्कि उन सभी व्यक्तियों के लिए उपयोगी होता है जो उससे लाभ उठाना चाहता है। अधिकांश व्यक्ति यह मानते हैं कि यह शोध प्रबन्ध केवल उन व्यक्तियों के लिए उपयोगी है जो शोध कर रहे हैं क्योंकि शोधार्थी को उस शोध प्रबन्ध से एम0फिल, पी0एच0डी0 या डी0लिट् की उपाधि उपलब्ध होती है। शोध प्रबन्ध के मूल्यांकनकर्त्ता शोध प्रबन्ध का अध्ययन करने के पश्चात् शोधार्थी की योग्यता का आँकलन करते हैं और उसे विविध उपाधियों से विभूषित करने की संस्तुति करते हैं इसलिए शोधार्थी उस शोध प्रबन्ध से लाभ उठाता है। योग्यता के आधार पर उसे सम्मान मिलता है और वह सम्मान जनक नौकरी प्राप्त कर लेता है किन्तु मेरी सोच इसके विपरीत है। बुन्देलखण्ड एक ऐसा परिक्षेत्र है जो अति प्राचीनकाल से अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का पोषक रहा है। यहाँ के गर्भ में जो इतिहास छिपा हुआ है, उसे उजागर करना बुन्देलखण्ड में रहने वाले प्रत्येक शोध छात्र का कार्य है। इसका कारण यह है कि जब तक हम अपने आप को न जानेंगे, अपनी मातृभूमि को न जानेंगे, वहाँ की सभ्यता संस्कृति मानव संवेदनाओं से परिचित न होंगे उस समय तक मातृभूमि में हमारा जन्म लेना व्यर्थ सा है इसीलिए बिना किसी प्रलोभन के मेरे द्वारा यह शोध कार्य किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध से उन व्यक्तियों को भी लाभ होगा जो इस शोध प्रबन्ध को ज्ञानार्जन की दृष्टि से पढ़ेंगे क्योंकि बुन्देलखण्ड की धरती पर हिन्दू धर्म के अतिरिक्त जो भी धर्म आए वे सभी

बाहर से आए। इस्लाम धर्म का आगमन यहाँ तुर्कों और मुग़लों के माध्यम से हुआ। उनके द्वारा किए गए धार्मिक कार्य हमारी स्मृतियों में हैं तथा जिन स्मारकों का निर्माण यहाँ हुआ उनके साक्ष्य भी यहाँ उपलब्ध हैं। इसके पश्चात् मसीही लोग यहाँ आयें। उन्होंने यहाँ शासन किया, अपने धर्म का प्रचार किया तथा अपने धार्मिक स्थल उन्होंने यहाँ अनेक स्थानों पर बनवाए। 200 वर्ष तक शासन करने वाले अंग्रेज मसीहियों ने यहाँ के मौलिक धर्म को प्रभावित किया, उनकी सभ्यता, संस्कृति को बदलने का प्रयत्न किया तथा एक गहरी छाप यहाँ के लोगों पर छोड़ी। अंग्रेज मसीही देश छोड़कर चले गए किन्तु उनके पहनावे और उनकी भाषा का अनुकरण आज भी बुन्देलखण्ड निवासी कर रहें हैं। मेरे शोध प्रबन्ध में यहाँ के मौलिक धर्म सिद्धान्त की समतुलना मसीही धर्म के मौलिक सिद्धान्तों से की गयी है। दोनों धर्मों के अन्तर और समानता को स्पष्ट रूप से उजागर किया गया है। इसका अध्ययन जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड के इतिहास का वह प्रमाणिक दस्तावेज़ है जिसका अध्ययन बुन्देलखण्ड के इतिहास जानने वालों के लिए आवश्यक है।

आगामी शोधार्थियों के लिए शोध प्रबन्ध का लाभ

जो छात्र भविष्य में शोध कार्य करना चाहता है वे भी इस शोध प्रबन्ध से लाभ उठा सकते हैं क्योंकि शोध प्रबन्ध पढ़ने से शोध विषय की विस्तृत जानकारी उपलब्ध होती है तथा शोध छात्र को यह विधि मालूम हो जाती है कि किस प्रकार से शोध कार्य किया जाता है। शोध प्रारूप, विषय सामग्री का संकलन, लेखन शैली का बोध उसे शोध प्रबन्ध पढ़ने से ही ज्ञात होता है क्योंकि ये शोध प्रबन्ध गवेष्णात्मक शोध परख शैली में लिखे जाते हैं तथा हर एक कथन की पुष्टि के लिए महत्वपूर्ण ग्रन्थों के साक्ष्य प्रस्तुत किए जाते हैं तथा शोधकर्त्ता अपने कथन की पुष्टि समीक्षात्मक शैली में करता है। कोई भी शोध छात्र इस शोध प्रबन्ध को पढ़कर शोध प्रबन्ध शैली की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकता है।

बुन्देलखण्ड में अभी भी अनेक अछूते विषय हैं जिन पर शोध कार्य किया जाना आवश्यक है। यदि छात्र चाहे तो निम्न विषय पर शोध कर सकते हैं –

1. 1947 के पश्चात् बुन्देलखण्ड की अवधारणा।
2. चन्देलकालीन वास्तु शिल्प का वास्तु परख़ मूल्यांकन।
3. बुन्देलखण्ड में पुरातात्विक महत्व के स्थल एवं पर्यटन की संभावनाएँ।

आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आगामी छात्र बुन्देलखण्ड के उन विषयों पर शोध कार्य करेंगे जो विषय अभी शोध के लिए चयनित नहीं हो सके उन्हें अपने विषय के अनुकूल योग्य निदेशक भी उपलब्ध होंगे और बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय भी उन्हें सहयोग प्रदान करेगा।

-: सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

अग्रवाल, डॉ0 कन्हैया लाल — विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, (सतना, 1987)।

अग्रवाल, बी0एस0 — स्टडीज इन इण्डियन आर्ट, (वाराणसी 1965)।

अवस्थी, रामाश्रय — खजुराहो की देव प्रतिमाएँ, (आगरा 1967)।

अवस्थी, डॉ0 अवध बिहारी लाल — स्टडीज इन दि स्कन्द पुराण, (लखनऊ 1966)।

अग्रवाल, वासुदेव शरण — स्टडीज इन इण्डियन आर्ट, (वाराणसी 1965)।

आनन्द, डॉ0 जे0एच0 — पाश्चात्य विद्वानों का हिन्दी साहित्य, (1982)

अभिषिक्तानन्द, स्वामी — हिन्दू क्रिश्चियन मीटिंग प्वाइंट विद् इन केव ऑफ दि हर्ट, (बॉम्बे 1969)।

आर्चबोल्ड, डब्ल्यू0ए0जे0 — इंडिया कंस्टीट्यूशन हिस्ट्री, (1926)।

आनन्द अजीत सिंह — बुन्देलखण्ड में अमरीकी मिशनरियों की गतिविधियों का इतिहास 1986 से 1947 तक (झाँसी 1995)।

एटकिंसन, ई0टी0 — स्टैटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउण्ट्स ऑफ नॉर्थ–वेस्टर्न प्राविन्सेज ऑफ इण्डिया, (इलाहाबाद 1974)।

ऐचिसन, सी0यू0 — ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज एंगेजमेण्ट्स एण्ड सनद्स, भाग– 7 ।

एचिसन, सी0यू0 — सप्लीमेंटल ट्रीटी ऑफ बेसीन, भाग– 5,7।

एण्ड्रू , सी0एफ0 — महात्मा गाँधी आइडियॉज।

एंड्यूज, सी0एफ0 ; मुकर्जी जी0के0 ▣ दि राइज एंड ग्रोथ ऑफ दि कांग्रेस इन इंडिया, (1832–1920) (1967)।

एण्डरसन, जेराल्ड एच0 ▣ बायोग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ क्रिश्चियन मिशन्स (1998)।

बुन्देली, राधाकृष्ण ; बुन्देली सत्यभामा ▣ बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन (बुन्देलखण्ड प्रकाशन, बाँदा 1988)।

बागीश शास्त्री ▣ बुन्देलखण्ड की प्राचीनता।

बोस, एन0एस0 ▣ हिस्ट्री ऑफ दि चन्देलाज, (कलकत्ता 1956)

बाजपेयी, कृष्णदत्त ▣ मध्यप्रदेश का पुरातत्व (भोपाल 1970)।

बाणभट्ट ▣ हर्षचरित, (वाराणसी 1958)।

भट्टाचार्य, सच्चिदानन्द ▣ भारतीय इतिहास कोश, (लखनऊ 1989)।

बाशम, ए0एल0 ▣ द वन्डर दैट वाज इण्डिया।

बाबा साहेब, डॉ0 अम्बेडकर ▣ सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग– 4 (दिल्ली 1994)।

बेसेण्ट, ए0 ▣ हाउ इंडिया गाट हर फ्रीडम (1915)।

बोस, सुभाषचन्द्र ▣ दि इंडियन स्ट्रगल (1967)।

ब्रूस, जान ▣ एनल्स ऑफ दि ईस्ट इंडिया, 3 खंड (1810)।

बालहेटचेट, के0 ▣ सोशल पॉलिसी एंड सोशल चेंज इन वेस्टर्न इंडिया, 1817–30 (1957)।

बैनर्जी, डी0आर0 ▣ स्लेवरी इन ब्रिटिश इंडिया (1933)।

चौधरी, हेमचन्द्र राय ▣ पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एशिएन्ट इण्डिया (1953 छठा संस्करण)।

चौधरी, एस0बी0 ▣ सिविल रिबेलियन इन दि इण्डियन म्यूटिनीज (कलकत्ता 1957)।

चौधरी, एस0डी0 ▣ सिविलि डिस्टरबेंस ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल इन इण्डिया।

चौबे, महेशचन्द्र — ▣ अतीत दर्शन, जबलपुर के इतिहास का विवेचनात्मक अध्ययन (जिला योजना मंडल जबलपुर एवं भारतीय संस्कृति निधि द्वारा प्रकाशित)।

चिन्तामणि, सी0वाई0 (सम्पादित) — ▣ इंडियन सोशल रिफार्म, (1901)।

चौहान, अजयपाल — ▣ अंग्रेजी शासन काल में बुन्देलखण्ड में ईसाई मत (सागर)।

चतुर्वेदी, सीताराम — ▣ वीर बुन्देलखण्ड (साहित्य निकेतन, तालबेहट, 1983)।

चावला, नवीन — ▣ मदर टेरेसा (पेंग्विन बुक 2002)।

दास, ब्रजरत्न — ▣ बुन्देलों का इतिहास (ना0प्र0 सभा पत्रिका) भाग– 3, 1879।

देसाई, कल्पना — ▣ आइकनोग्राफी ऑफ विष्णु, (बम्बई 1973)।

दीक्षित, के0एन0 — ▣ सिक्ख स्कल्पचर्स फ्राम महोबा, मेम्वायर नं0–8 (कलकत्ता 1921)।

दीक्षित, आर0के0 — ▣ चन्देलाज ऑफ जेजाभुक्ति (दिल्ली 1977)।

डेविड, सी0डब्ल्यू0 — ▣ बाइबिल शब्द कोश।

दिनकर, रामधारी सिंह — ▣ संस्कृति के चार अध्याय, (दिल्ली 1956)।

डॉ0 एस0जे0 — ▣ इन्ट्रोडक्शन टू राधाकृष्णन।

दास, डॉ0 भगवान — ▣ सब धर्मों की बुनियादी एकता (वाराणसी 1971)।

दुबे, डॉ0 राजीव — ▣ बुन्देलखण्ड का गौरव। (मानव अभिनन्दन समिति भोपाल, दि ग्लोरी ऑफ बुन्देलखण्ड 1993)।

ढेंगुला, रामस्वरूप — ▣ बुन्देलखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक

अनुशीलन ('संचयन' कानपुर, 1987)।

डोडबैल, एच0एच0 (संपादित)	▣ दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, खंड 5–6 दिल्ली (1963–69)।
देसाई, ए0आर0	▣ सोशल बैकग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म (1948)।
दत्ता, आर0सी0	▣ इंडिया इन दि विक्टोरियन एज (1906)।
दत्ता, आर0सी0	▣ इंडिया अंडर अर्ली ब्रिटिश रूल (1908)।
देवी, रागिनी	▣ डांसेस ऑफ इंडिया (1962)।
ई0आर0हम्बे एस0जे0	▣ हिस्ट्री ऑफ क्रिश्चियानिटी इन इण्डिया, वॉल्युम– III (बैंगलोर 1997)।
इल्बर्ट, सी0	▣ दि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया (1907)।
फ्रेज़र, सर जेम्स	▣ दि गोल्डेन बफ (न्यूयार्क)।
फिलिप्स, सी0एच0	▣ दि हिस्ट्री इंडिया कम्पनी (1784–1834) (1961)।
गुप्त, परमानन्द	▣ जियोग्राफिकल नेम्स इन एंशिएन्ट इण्डियन इन्स्क्रिप्शन्स, (दिल्ली 1977)।
गुप्त, जगदीश	▣ प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला (दिल्ली 1967)।
गुप्त, डॉ0 हरीराम	▣ मराठाज एंड पानीपत, (चंडीगढ़ 1961).।
गौर, ठा0 लच्छमन सिंह	▣ ओरछा का इतिहास, (1978)।
गुप्त, भगवान दास	▣ मस्तानी बाजीराव और उनके वंशज, (ग्वालियर 1983)।
गिलिन, जे0एल0 ; गिलिन जे0पी0	▣ कल्चरल सोसोलॉजी, (न्यूयार्क 1950)।
ग्रांट चार्ल्स	▣ ग्रेट–ब्रिटेन के एशियाई प्रजाजनों की सामाजिक स्थिति पर विचार, (1972)।

गोपाल, एस0	■ ब्रिटिश पॉलिसी इन इंडिया (1858–1905) (1965)
गोस्वामी, ओ0	■ दि स्टोरी ऑफ इंडियन म्यूजिक, (1961)।
हंस, कृष्ण लाल	■ बुन्देली और उनके क्षेत्रीय रूप, (प्रयाग 1976)
ह्वेनसांग	■ दि लाइफ ऑफ ह्वेनसांग, खण्ड–4, (कलकत्ता 1958)।
ह्यूम, आर0ई0	■ दि थरटीन प्रिंसिपल उपनिषद, (ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी, लन्दन 1971)।
हई, डॉ0 मोहम्मद अब्दुल	■ रसूले अकरम, (अलीगढ़ 1997)।
हेमसथ, सी0एच0	■ इंडियन नेशनलिज्म एण्ड हिन्दू सोशल रिफार्म, (1964)।
हीलर, जे0टी0	■ अर्ली रिकाडर्स ऑफ ब्रिटिश इंडिया, (1878)।
हैवेल, ई0वी0 एंड हिस्ट्री	■ इंडियन आर्कीटेक्चर, इट्स साइकोलॉजी, स्ट्रक्चर फ्राम दि फर्स्ट मुहम्मडन इनवेजन टू द प्रजेंट डे (1913)।
हॉलिस्टर, जॉन0एन0	■ दि सेन्टनरी ऑफ दि मेथोडिस्ट चर्च इन साउथर्न एशिया (लखनऊ, 1956)।
व्हार्टन, इम्मा रिचर्ड्सन	■ लाइफ ऑफ जी0एल0व्हार्टन (लन्दन, 1913)
जायसवाल, एम0पी0	■ दि ज्योग्राफी स्टडी ऑफ बुन्देलखण्ड।
जोशी, जी0एन0	■ न्यू इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन (1937)।
जोशी, बाबूराव	■ अंडर स्टैंडिंग इंडियन म्यूजिक, (1963)।
कनिंघम, ए0	■ दि एशियेन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, (वाराणसी 1965)।
कालिदास	■ मेघदूत, भाग– 1।
कालेलकर, काका	■ युगानुकूल हिन्दू जीवन दृष्टि, (दिल्ली 1970)
कनिंघम, जे0डी0	■ हिस्ट्री ऑफ दि सिक्खिज्म।

कुरेशी, नईम ▣ बुन्देली विरासत, (चम्बल पोस्ट प्रकाशन, ग्वालियर)।

कॉफीन, मोरिल एम0 ▣ फ्रेण्ड्स इन बुन्देलखण्ड (मैसूर इण्डिया 1926)।

कृष्ण कुमार ▣ रूरल सेंटलमेंट इन बुन्देलखण्ड, (इलाहाबाद)।

कक्कड़, ऊषा ▣ हिस्ट्री एण्ड सर्वे ऑफ वीमेन एजूकेशन इन बुन्देलखण्ड, (सागर 1993)।

खत्री, स्वदेश ▣ बुन्देलखण्ड में राष्ट्रीय एकता का इतिहास सन् 1526–1939, (झाँसी 1998)।

खरे, गजराज सिंह ▣ बुन्देली बोल।

कर्जन, लार्ड ▣ ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इन इंडिया, 2 खंड (1925)।

काय, जे0डब्ल्यू0 ▣ क्रिश्चियानटी इन इंडिया, (1959)।

कुमार स्वामी, ए0 ▣ इंट्रोडक्शन टू इंडियन आर्ट, (1969)।

कुमार स्वामी, ए0 ▣ दि डांस ऑफ शिवा, (1952)।

कौल, मनोहर ▣ ट्रेंडस इन इंडियन पेंटिग, (1961)।

लाहा, बी0सी0 ▣ ज्योग्राफिकल एसेज रिलेटिंग टु एंशियन्ट ज्योग्राफी ऑफ इंडिया, (दिल्ली 1976)।

लूनिया, बी0एन0 ▣ गुप्त साम्राज्य का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, (इन्दौर 1974)।

लोबेट, वी0 ▣ हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन नेशनलिस्ट मूवमेंट (1919)।

मैक्रिण्डल (अनूदित) ▣ एंशिएण्ट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड बॉई टॉलमी, (लन्दन 1885)।

मजूमदार, आर0सी0 ▣ दि सिवॉय म्यूटिनी एंड दि रिवोल्ट ऑफ

एट्टीन फिफ्टी सेवन (कलकत्ता 1957)।

मिश्रा, जयप्रकाश — बुन्देला रिबेलियन।

मिश्रा, डी0पी0 — हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन मध्यप्रदेश।

म्यूरियल, स्टीकेन्सन (सम्पादक) — जय येशु भीली भजन संग्रह, (इन्दौर 1982)।

महादेवन, टी0एम0पी0 — आउट लाइन्स ऑफ हिन्दूज्म (बॉम्बे 1984)।

मिश्र, डॉ0 जयराम — नानक वाणी, (इलाहाबाद, 2018 संवत्)।

मिश्र, बलदेव प्रसाद — तुलसी दर्शन।

मिश्र, लक्ष्मीनारायण — बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास, (स्फुट लेख, विश्व भारती प्रकाशन, नागपुर)।

मिश्र, डॉ0 जयप्रकाश — बुन्देलखण्ड का इतिहास एवं संस्कृति, (इतिहास विभाग, रानी दुर्गावती)।

मड़वैया, कैलाश — बुन्देलखण्ड के इतिहास पुरूष, (मनीष प्रकाशन, भोपाल)।

मिश्र, कांशीराम — बुन्देलखण्ड का सांगोपांग एवं विस्तृत इतिहास।

मजूमदार, आर0सी0 (संपादित) — दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपुल, खंड– 9–11, भारतीय विद्या भवन सीरीज, बम्बई (1963–69)।

मिल, जे0 — हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया, 10 खंड (1858)।

मिश्र, बी0पी0 — दि इंडियन मिडल क्लास, (1961)।

निगम, एम0एल0 — कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड, (1983)।

निक्सॉन, ई0 अन्ना — ए सेन्चुरी ऑफ प्लानटिंग (यू0एस0ए0, 1985)

नेल्सन, डॉ0 सुधीर क्षीरज — दि इण्डियन क्रिश्चियन, (2002)।

नारंग, गोकुल चन्द्र — ट्रांसफारमेशन ऑफ सिक्खिज्म।

नैरोजी, दादाभाई — पावर्टी एंड अन–ब्रिटिश रूल इन इंडिया, (1962)।

पाण्डेय, रूद्रकिशोर — ▣ रानीमहल संकलन झाँसी की अलौकिक एवं सौर प्रतिमाएँ, प्राच्य प्रतिभा (भाग– 7)।

पॉग्सन, कैप्टन डब्ल्यू0आर0 — ▣ ए हिस्ट्री ऑफ दि बुन्देलाज।

पारसनीस, दत्तात्रेय बलबन्त — ▣ मराठ्यांचे पराक्रम, बुन्देलखण्ड प्रकरण।

पारसनीस, दत्तात्रेय बलबन्त — ▣ रानी लक्ष्मीबाई का चरित्र।

परिव्राजक, पं0 सत्यदेव — ▣ हिन्दू धर्म की विशेषताएँ, (दिल्ली 1971)।

पाण्डेय, डॉ0 गोविन्द चन्द्र — ▣ स्टडीज इन द ओरिजन्स ऑफ बुद्धिज्म।

प्रसाद, डॉ0 ईश्वरी — ▣ भारतीय इतिहास संस्कृति कला, राजनीति, धर्म दर्शन।

पाण्डेय, विद्यावती — ▣ बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) का आर्थिक अध्ययन, (कानपुर 1985)।

पाल, डी0आर0 सिंह — ▣ स्वातन्त्रयोत्तर बुन्देलखण्ड में शिक्षा का विकास 1950–80, (झाँसी 1984)।

पाल, केतराम — ▣ बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) के विकास में लघु व मध्यम आकार के नगरों की भूमिका (झाँसी)।

पाण्डेय, श्रीमती शोभना — ▣ बुन्देलखण्ड में स्वतन्त्रता आन्दोलन 1857–1947 (जबलपुर)।

पटेल, खेमराज — ▣ स्वाधीनता आन्दोलन में बुन्देलखण्ड के कृषकों का योगदान, (झाँसी, लघुशोध)।

पिंगल, बी0ए0 — ▣ हिस्ट्री ऑफ इंडियन म्यूजिक, (1962)।

राय, रामकुमार — ▣ महाभारत कोश, (वाराणसी, 1966)।

रे0, एच0सी0 — ▣ दि डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, भाग– 2, (दिल्ली 1973)।

रिज़वी, एस0ए0वाई0 — ▣ फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश वाल्यूम–4, (लखनऊ 1959)।

रवीन्द्रनाथ मुकर्जी	▣ भारतीय सामाजिक संस्थाएँ।
राधाकृष्णन, डॉ0 सर्वपल्ली	▣ धर्म और समाज।
राधाकृष्णन, डॉ0 सर्वपल्ली	▣ भारत की अन्तरात्मा, (दिल्ली 1976)।
रॉकी, बिशप क्लेमेंट डेनियल	▣ बाइबिल परिचय, भाग– 2, (बरेली 1981)।
रॉविन्सन, ज्ञान	▣ इन्फ्लूएन्स ऑफ हिन्दूइज्म ऑन क्रिश्चियानिटी, (मदुरई 1980)।
राधाकृष्णन, डॉ0 सर्वपल्ली	▣ दि हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ।
राधाकृष्णन, डॉ0 सर्वपल्ली	▣ बौद्ध धर्म 2500 वर्ष, (दिल्ली 1956)।
रामप्यारे	▣ बुन्देलखण्ड रीजन–ए–स्टडी इन पापुलेशन (इलाहाबाद)।
राय, एन0सी0	▣ कंस्टीट्यूशनल सिस्टम ऑफ इंडिया, (1938)।
राय, लाजपत	▣ ए हिस्ट्री ऑफ दि आर्य समाज, (1967)।
सरकार, डी0सी0	▣ ज्याग्राफी ऑफ एंशियन्ट मेडिवल इण्डिया, (वाराणसी 1962)।
शेजवलकर, टी0एस0	▣ पानीपत, (पूना 1946)।
श्रीवास्तव, डॉ0 आशीर्वादी लाल	▣ शुजाउद्दौला, (आगरा 1961)।
सिन्हा, एस0एन0	▣ दि रिबेल्ट ऑफ 1857 इन बुन्देलखण्ड।
सावरकर, विनायक दामोदर	▣ 1857 का भारतीय स्वतंत्र्य समर, (नई दिल्ली 1938)।
स्वामी, विवेकानन्द	▣ ईशदूत ईसा, (नागपुर 1959)।
शुक्ल, आचार्य रामचंद्र	▣ हिन्दी साहित्य का इतिहास।
श्रीनिवास, डॉ0 एम0एन0	▣ आधुनिक भारत में जातिवाद, (भोपाल 1992)।
श्रीनिवास, डॉ0 एम0एन0	▣ सोशल चेन्ज इन मॉडर्न इण्डिया,

(यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया प्रेस 1966)

शान्तवन जॉन, राबर्ट एम0क्लार्क — ▣ मसीही सिद्धान्तों की रूपरेखा।

शर्मा, डी0एम0 (सा0 के0डब्ल्यू0 मोगरन) — ▣ दी नेचर एण्ड हिस्ट्री ऑफ हिन्दूइज्म।

सिंह, जी0 आर ; डॉ0 सी0 डब्ल्यू0डेविड — ▣ विश्व के प्रमुख धर्म, (लखनऊ 2002)।

शर्मा, विनय मोहन — ▣ हिन्दी साहित्य कोश, भाग– 1, (वाराणसी 2015 संवत्)।

स्टेफनर, एस0जे0 हन्स — ▣ जीजस क्राइस्ट एण्ड दि हिन्दू कम्युनिटी, (गुजरात 1988)।

सादिक, बिशप जॉन डब्ल्यू0 — ▣ दि क्रिश्चियन सिग्नीफिकेन्स ऑफ महात्मा गाँधी, (1969)।

सिंह, तेजा — ▣ एसेज़ इन सिक्खिज्म।

सागर, श्री मुनिकान्त — ▣ खण्डरों का वैभव।

सिंह, एच0पी0 — ▣ रिसोर्स अप्रेजल एण्ड प्लानिंग इन बुन्देलखण्ड (राजेश प्रकाशन, नई दिल्ली)।

सिंह, प्रतिपाल — ▣ बुन्देलखण्ड का इतिहास, (हित चिन्तन वाराणसी, 1929)।

सिंह, महाराज — ▣ इतिहास बुन्देलखण्ड, (सरस्वती प्रेस, नरसिंहपुर, 1896)।

सक्सेना, जे0पी0 — ▣ एग्रीकल्चरल ज्योग्राफी ऑफ बुन्देलखण्ड, (सागर 1967)।

श्रीवास्तव, संजय — ▣ राष्ट्रीय आंदोलन में बुन्देलखण्ड का योगदान, (झाँसी)।

सेंगर, प्रभात कुमार — ▣ बुन्देलखण्ड के प्राचीन मन्दिरों का

विवेचनात्मक अध्ययन, (गुरूकुल कांगड़ी, हरिद्वार, 1992)।

सिंह, एच0एल0 — ▣ प्राबलम्स एण्ड पॉलिसीज ऑफ दि ब्रिटिश इन इंडिया, (1885–1898, 1963)।

सीतारामैया, बी0 पट्टाभि — ▣ दि हिस्ट्री ऑफ एंडियन नेशनल कांग्रेस, 2 खंड, (1946–47)।

शास्त्री, एस0 — ▣ हिस्ट्री ऑफ दि ब्रह्म समाज, खण्ड– 2, (1911)।

सिंह, खुशवन्त — ▣ ए हिस्ट्री ऑफ दि सिक्खस, 2 खंड, (1963–66)।

संतियागो, डॉ0एम0 — ▣ हिन्दी भाषा के साहित्य में ईसाई धर्म का योगदान (वाराणसी, 2003)।

स्मिथ, डब्ल्यू0सी0 — ▣ इस्लाम इन माडर्न हिस्ट्री, (1957)।

स्मिथ, डब्ल्यू0सी0 — ▣ माडर्न इस्लाम इन इंडिया, (1946)।

टाल्मी — ▣ एंशियन्ट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड, (कलकत्ता 1927)।

टाइलर, एडवर्ड बी0 — ▣ प्रिमिटिव कल्चर, (लन्दन 1933)।

तिवारी, यीशुदास — ▣ हिन्दू धर्म में नई जागृति, (लखनऊ 1966)।

त्रिपाठी, गोवर्धन दास — ▣ बुन्देलखण्ड प्रान्त की योजना, (पाक्षिक, मधुकर, टीकमगढ़, जनवरी 1943)।

त्रिपाठी, भगीरथ प्रसाद — ▣ बुन्देलखण्ड की प्राचीनता, भाषा (वाराणसी, 1955)।

त्रिपाठी, मोतीलाल — ▣ बुन्देलखण्ड दर्शन, (शारदा साहित्य, झाँसी)।

त्रिपाठी, श्रवण कुमार — ▣ बुन्देलखण्ड की अमर क्रांति, (तालबेहट, 1957)।

त्रिपाठी, मोतीलाल	▣ बुन्देलखण्ड का इतिहास, (शारदा साहित्य कुटीर, झाँसी 1991)।
तिवारी, गोरेलाल	▣ बुन्देलखण्ड का इतिहास, (नागरी प्रचारणी सभा, काशी सं0 1990–1933)।
त्रिवेदी, एस0डी0	▣ बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, (झाँसी राजकीय संग्रहालय झाँसी)।
तायल प्रफुल्ल चन्द्र	▣ ग्रामीण बुन्देलखण्ड में सामाजिक स्तरीकरण, (कानपुर, 1987)।
थानटिन, ई0	▣ हिस्ट्री ऑफ दि ब्रिटिश एम्पायर इन इंडिया, 6 खण्ड, (1841)।
विद्यालंकार, जयचन्द्र	▣ इतिहास प्रवेश।
वार्टस	▣ आन य्वान च्वांग ट्रेवल्स इन इण्डिया, सि यु की (लन्दन 1904)।
वार्ष्णेय, डॉ0 लक्ष्मी सागर	▣ आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका।
विद्यार्थी, एल0पी0 ; विनय कुमार रॉय	▣ दि ट्राइबल कल्चर ऑफ इण्डिया, (दिल्ली 1985)।
एल्विन, वैरियर	▣ दि बैगा, (लन्दन 1939)।
एल्विन, वैरियर	▣ ट्राइबल वर्ल्ड ऑफ वैरियर एल्विन, (लन्दन 1964)।
एल्विन, वैरियर	▣ लीव्ज फ्रॉम दि जंगल लाइफ इन ए गोंड विलेज (लंदन 1936)।
एल्विन, वैरियर	▣ दि अगारिया (लन्दन 1942)।
विलिएम्स, मोनिअर	▣ हिन्दूइज्म, (कलकत्ता 1951)।
विलिएम्स, मोनिअर	▣ संस्कृत–इंग्लिश डिक्शनरी, (1899)।
व्यास, भइयालाल	▣ पुण्य भूमि बुन्देलखण्ड, (आराधन ब्रदर्स, कानपुर)।

वर्मा, आशा — ▣ बुन्देलखण्ड के सन्दर्भ में, (रीवा 1980)।

विश्वकर्मा, जे0के0 — ▣ कल्चरल ज्योग्राफी, ऑफ बुन्देलखण्ड रीजन, (झाँसी 1986)।

विश्वकर्मा, रामस्वरूप — ▣ स्वातन्त्रयोत्तर बुन्देलखण्ड में प्रारम्भिक शिक्षा का विकास, (झाँसी 1991)।

वर्मा, के0एम0 — ▣ नाट्य नृत एण्ड नृत्य, (1957)।

विलार्ड और जोन्स — ▣ म्यूजिक ऑफ इंडिया, (1962)।

*****

—: कुछ प्रमुख पत्रिकायें :—

1. ईस्टर्न इण्डिया, भाग— 2।
2. दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, (भारतीय विद्या भवन सीरीज सं0— 2)।
3. मधुरकर पत्रिका, "बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्माण अंक" 1 जनवरी 1943 से 16 मई 1943, (टीकमगढ़) ।
4. न्यूज लेटर, इंग्लिश समरीज ऑफ अखबारातस औंक नवाब अली बहादुर कैम्प, सम्पादक यूसुफ हुसैन, ए0आर0 नं0— 7822।
5. पार्लियामेंटरी पेपर्स, 15 फरवरी 1950।
6. नैरेटिव ऑफ इवेण्ट्स अटैंडिंग दि आउट ब्रेक ऑफ डिस्टवैजेस एण्ड दी रेस्टोरेशन ऑफ अथॉरिटी, 1957—58, भाग— 1, कलकत्ता 1881।
7. चर्च ऑफ इंग्लैण्ड, दस्तावेज की धारा VI।
8. एस0बी0 साइमन, बाँदा में मसीही धर्म एक सर्वेक्षण (सर्वेक्षण रिपोर्ट)
9. इंडियन एण्टिक्वेरी, भाग— 11, 12, 13 ,14, 16, 17, 18।
10. इपीग्राफिया इण्डिका, भाग— 1, 2, 3, 4, 5, 10, 11, 12, 14, 16।
11. आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, ए0 कनिंघम, भाग' 2, 6, 9, 10, 21, 32।
12. जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, भाग— 1, 6, 16, 17, 18, 46, 50, 58, 66।
13. ऐनल्स ऑफ दि भण्डारकर ओरियंटल इन्स्टीट्यूट, पूना, भाग— 9, 10।
14. आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, ऐनुवल रिपोर्ट, भाग— 2, 10, 11।
15. मेम्वायर ऑफ दि आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया।
16. इण्डियन विटनेस, दि न्यूज पेपर एण्ड रिव्यू ऑफ दि मेथोडिस्ट चर्च इन इण्डिया ; वॉल्यूम— CXVI, लखनऊ, 15 फरवरी 1986।
17. आर्चवे एनुयल मैग्जीन, लेनॉर्ड थियोलॉजिकल कॉलेज, 1999—2000।

गजेटियर

17. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया।

18. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ उ0प्र0 बाँदा, इलाहाबाद 1929।

19. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ उ0प्र0 हमीरपुर, इलाहाबाद 1909।

20. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ उ0प्र0 झाँसी, इलाहाबाद 1909।

21. जालौन गजेटियर, इलाहाबाद 1921।

22. सागर गजेटियर, भोपाल 1967।

23. जबलपुर, गजेटियर, भोपाल 1968।

24. दमोह, गजेटियर, भोपाल 1974।

25. दतिया, गजेटियर, भोपाल 1977।

26. छतरपुर, गजेटियर, भोपाल 1982।

27. पन्ना, गजेटियर।

महत्वपूर्ण ग्रन्थ

28. रामायण– ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा 1960–65।

29. महाभारत–

आदि, सभा, आरण्यक, विराट, उद्योग, भीष्म, कर्ण, अनुशासन पर्व– ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना 1923–66।

30. अग्निपुराण– पूना 1900।

31. गरूण पुराण– बम्बई 1906।

32. मत्स्य पुराण– पूना 1907।

*****

परिशिष्ट

बुन्देलखण्ड के पर्वत

जिला या राज्य	नम्बर	नाम पर्वत	स्थान	ऊँचाई (मी० में)
बाँदा	1	बामेश्वर	बाँदा	—
"	2	चित्रकूट	तरहवाँ	—
"	3	कामतानाथ	"	1700
"	4	बाँदेर	"	—
"	5	खत्री	सेंहुड़ा	1123
"	6	नीलकंठ	कालिंजर	1230
"	7	—	बरगढ़	—
"	8	—	मड़फा	1235
"	9	—	करतल	1123
हमीरपुर	1	काली	अजनर	730
"	2	बग्रजन	परखेरा	—
"	3	मड़िया	बछेछर	—
"	4	कहैपहाड़	महुवाबाँध	—
"	5	—	कुलपहाड़	—
"	6	—	सालट	—
झाँसी	1	घाटी	अमझरा	2000
"	2	"	मदनपुर	2000
"	3	"	नारहट	2000
"	4	"	कटेरा	1349
"	5	"	भसनेह	1100
"	6	"	लखनझिर	2064
ग्वालियर	1	घाटी	मयापुर	—

जिला या राज्य	नम्बर	नाम पर्वत	स्थान	ऊँचाई (मी० में)
दमोह	1	कलुमार	दमोह के दक्षिण कैमूर की एक चोटी	2467
"	2	–	सैलवाड़	1939
"	3	–	पंचमनगर	1691
"	4	घाटी	हीरापुर	–
सागर	1	नाहर–मऊ	नाहर–मऊ	2240
जबलपुर	1	मदन–महल	जबलपुर	1540
"	2	–	डुरिया	2426
"	3	–	गोसलपुर	1574
"	4	–	लोरा	1923
"	5	–	बंजारी	2223
"	6	–	कटंगी	1411
"	7	–	भितरी	2046
"	8	–	सुरहिया	2070
"	9	–	भैंसाकुंड	2038
"	10	–	लखरामपुर	1780
ओरछा	1	–	हरजुवा	–
"	2	–	कारी	–
"	3	–	रोपा	–
"	4	–	भौंरा	–
"	5	–	मचरार	–
दतिया	1	सेंवढ़ाकापहाड़	सेंवढ़ा	1000
पन्ना	1	घाटी	पन्नाराज्य	1100

जिला या राज्य	नम्बर	नाम पर्वत	स्थान	ऊँचाई (मी0 में)
पन्ना	2	घाटी	विश्रामगंज	–
”	3	मदारटूँगा	पन्ना	1556
		इसकी चोटी पर मदारशाह की कब्र है		
”	4	भांडेर पहाड़	मोहदरा– इस पर जोतपुर नाम का किला है	
”	5	नैनगिरी	मलहरा– इस पर जैन मंदिर है	
अजयगढ़	1	घाटी	किशनगंज	1700 से 1900 फीट तक ऊँची है
”	2	विला	अजयगढ़	–
”	3	अजैपाल	अजयगढ़	–
”	4	–	चँदला	–
”	5	बजरंगगढ़	–	–
”	6	देव पहाड़	–	–
”	7	मुड़जा	–	–
चरखारी	1	रंजीतापहाड़	चरखारी	900
			इस पर मंगलगढ़ का किला बना है	
बिजावर	1	–	लहर	–
”	2	घाटी	–	1600
”	3	चँदलख	बिजावर	1796
छत्रपुर	1	–	किशुनगढ़	–
”	2	मनियांगढ़	राजगढ़	–
”	3	गुरैया	मऊ	–
”	4	फाटा	”	–
”	5	बंमरबेनी	लौड़ी	–

बुन्देलखण्ड की नदियाँ

क्र0 सं0	मुख्य नदी	सहायक नदी	उद्गम–स्थान	संगम–स्थान	लम्बाई मील	संसर्गित राज्य तथा जिले	विशेष विवरण
1	चंबल	–	जनपव, विन्ध्याचल	(यमुना) फ.फूंद जि0 इटावा	650	इंदौर–राज्य, राजपूताना, बुन्देलखण्ड, ग्वालियर राज्य	प्राचीन नाम चर्मणवती
2	सिन्ध	–	सिरोंज से 12 मील पहाड़	(यमुना) जगम्मन पुर जि0 जालौन	200	ग्वालियर, झाँसी, दतिया	–
3	–	पहूज	ग्वालियर राज्य	(सिंध) जाघर जि0 जालौन	120	ग्वालियर, झाँसी, दतिया जालौन	–
4	नौन	–	तह0 उरई, जि0 जालौन	(यमुना) कालपी	–	जिला जालौन	–
5	–	मलुंगा	कूंच, जालौन	(नौन) महेवा, जि0– जालौन	–	जिला जालौन	
6	बेतवा	–	कुमरी गाँव भोपाल राज्य	(यमुना) बड़ागाँव जि0 हमीरपुर	360	भोपाल, सागर, ग्वालियर झाँसी, ओरछा, जालौन हमीरपुर, बावनी	–
7	–	बीना	–	(बेतवा) जि0 सागर	62	भोपाल, पठारी सागर	इसके किनारे पिंडारे छिपते थे।
8	–	धसान	सिरमऊ पहाड़ भोपाल राज्य	(बेतवा) चंदवारी जि0 झाँसी	220	भोपाल, झाँसी, सागर, ओरछा, बिजावर, हमीरपुर बीहट, जिगनी, गरौली	–
9	–	नारायण	–	(बेतवा) जिला सागर	–	–	–
10	–	जामने	मदनपुरा जिला झाँसी	(बेतवा) जिला झाँसी	–	झाँसी, ओरछा	–
11	–	शहजाद	–	(जामने) ललितपुर	–	ललितपुर	–
12	–	संजम	–	जामने	–	–	–
13	–	उर	जि0 झाँसी	धसान	–	–	–
14	–	सुकनई	जि0 झाँसी	धसान	–	–	–
15	–	लखेरी	जि0 झाँसी	धसान	–	–	–
16	–	ढुंठेरी	जिला झाँसी	उर	–	–	–

क्र0 सं0	मुख्य नदी	सहायक नदी	उद्गम–स्थान	संगम–स्थान	लम्बाई मील	संसर्गित राज्य तथा जिले	विशेष विवरण
16	–	ढुंठेरी	जिला झाँसी	उर	–	–	–
17	–	पटरेही	जिला झाँसी	सुखई	–	झाँसी	–
18	–	चैंच	जिला झाँसी	लखेरी	–	झाँसी	–
19	–	बरमान	जैतपुर, जिला हमीरपुर	(बेतवा) कुपरा, जि0 हमीरपुर	80	हमीरपुर जालौन	–
20	–	गुंची	–	(बरमान) इटौरा, जि0 हमीरपुर	–	–	–
21	–	अर्जुन	–	(बरमान) राठ, जि0 हमीरपुर	–	–	–
22	–	पड़वाहा	जि0 हमीरपुर	(बेतवा) जलालपुर, जि0 हमीरपुर	–	–	–
23	केन	–	मामरगाँव, जिला जबलपुर	(यमुना) चिल्लाघाट जिला बाँदा	230	जबलपुर, पन्ना, दमोह, सागर, छत्रपुर, अजैगढ़, बाँदा	–
24	–	सुनाड़	जि0 सागर के दक्षिणी पहाड़	(केन) उड़ला जिला दमोह	116	सागर, दमोह	–
25	–	बेवास	सिरमऊ (पहाड़) भोपाल राज्य	(सुनाड़) नरसिंह गढ़, जि0 दमोह	92	भोपाल, सागर, दमोह	इस पर एक पुल देशी लोहे का देशी कारीगरों का बनाया है।
26	–	देहार	जि0 सागर	(सुनाड़) जिला सागर	–	सागर	–
27	–	गदेरी	जि0 सागर	(सुनाड़) जि0 सागर	–	सागर	–
28	–	कोपरा	जि0 सागर	(सुनाड़) सीतानगर जि0 दमोह	60	सागर	–
29	–	व्यारमा	रेहली, जि0 सागर	(सुनाड़) पन्ना राज्य	120	सागर, दमोह	–
30	–	चन्द्रावल	चँदवाना–ताल, महोबा	(केन) पैलानी, जि0 बाँदा	60	हमीरपुर, बाँदा	–
31	–	सिहू	जिला हमीरपुर	(चन्द्रावल) जि0 हमीरपुर	–	हमीरपुर	–

क्र0 सं0	मुख्य नदी	सहायक नदी	उद्गम–स्थान	संगम–स्थान	लम्बाई मील	संसर्गित राज्य तथा जिले	विशेष विवरण
32	–	करोनन	जिला हमीरपुर	(चन्द्रावल) जि0 हमीरपुर	–	हमीरपुर	–
33	–	शियाम	जिला हमीरपुर	(चन्द्रावल) जि0 हमीरपुर	–	हमीरपुर	–
34	–	उरमल	बूदौर, बिजावर	(केन) घुंचू, करेला, छतरपुर	90	बिजावर–चरखारी, छतरपुर, हमीरपुर	–
35	–	केल	गौरहार	(केन) गौरहार	–	गौरहार, चरखारी	–
36	–	बिछवहिया	–	(केन) गौरहार	–	–	–
37	–	गवाइन	–	(केन)	–	–	–
38	–	स्यामरी	बिजावर राज्य	(केन) खरयानी रि0 छतरपुर	–	–	–
39	–	बरानो	–	(स्यामरी) सुख–बाहपुर, छतरपुर	–	–	–
40	–	गुरैया	तेंदूखेड़ा जि0 दमोह	(व्यारमा) नोहटा जिला दमोह	–	–	–
41	–	सून	जिला जबलपुर	(ब्यारमा) घटेरा, जिला दमोह	–	–	–
42	–	पथरी	जिला दमोह	(व्यारमा) जि0 दमोह	–	–	–
43	–	मिड़ासन	–	–	–	अजैगढ़, पन्ना, बिजावर	–
44	बागैन	–	कोहारी, पन्ना राज्य	(यमुना) विलास जिला बाँदा	90	बाँदा, पन्ना	कालिंजर इसी पर है
45	–	रंज	–	(बागैन) गुड़ाकलां जिला बाँदा	–	बाँदा	–
46	–	मदरार	जिला बाँदा	बागैन	–	बाँदा	–
47	–	बरार	जिला बाँदा	बागैन	–	बाँदा	–
48	–	करेहली	गोधरमपुर, जिला बाँदा	(बागैन) बदौसा, जिला बाँदा	–	बाँदा	–

क्र0 सं0	मुख्य नदी	सहायक नदी	उद्गम–स्थान	संगम–स्थान	लम्बाई मील	संसर्गित राज्य तथा जिले	विशेष विवरण
49	–	बानगंगा	कुलुवा माफी, जिला बाँदा	(बागैन) बदौसा, जिला बाँदा	–	बाँदा	–
50	–	बरूवा	जिला बाँदा	बागैन	–	बाँदा	–
51	पैसुनी	–	पाथर कछार	यमुना	–	बाँदा	चित्रकूट इसी पर है
52	–	सरभंग	जिला बाँदा	–	–	–	–
53	–	कारीबरार	–	–	–	–	–
54	–	हीराकोटरा	–	–	–	–	–
55	–	ओहन	रकमाददरी जिला बाँदा	पैसुनी	–	–	–
56	–	गिरवर	–	ओहन	–	–	–
57	गरार	–	गिरवाँ तहसील जिला बाँदा	यमुना	–	–	–
58	–	मटियारा	जिला बाँदा	गरार	–	–	–
59	–	उसहारा	जिला बाँदा	गरार	–	–	–
60	कटनी	–	जजनगर, तहसील सिहौर, जि0 जबलपुर	(महानदी) भीमपार पर0 बिजैराघवगढ़ जिला जबलपुर	–	जिला जबलपुर	–
61	–	निवार	–	(कटनी) गुलवारा, जि0 जबलपुर	–	जिला जबलपुर	–

नर्मदा नदी की सहायक नदियाँ

क्र0 सं0	मुख्य नदी	सहायक नदी	उद्गम–स्थान	संगम–स्थान	लम्बाई मील	संसर्गित राज्य तथा जिले	विशेष विवरण
62	हिरन	–	पर0 कुंडम जि0 जबलपुर	(नर्मदा) सांकल जि0 जबलपुर	120	जिला जबलपुर नरसिंहपुर	–
63	–	परियात	मेहानी, कुंडम के निकट	(हिरन) सिंगलद्वीप, जि0 जबलपुर	–	जिला जबलपुर	–
64	गौर	–	जिला मंडला	(नर्मदा) जबलपुर के निकट	49	जिला मंडला और जबलपुर	इसमें अगेट पत्थर मिलते है
65	फलकू	–	सिंगरामपुर जि0 दमोह	(नर्मदा) दमोह	–	दमोह	–
66	बिरंज	–	सागर जिला	(नर्मदा) सागर जिला	–	सागर	–
67	सिंधौर	–	सागर जिला	(नर्मदा) सागर जिला	–	सागर	–
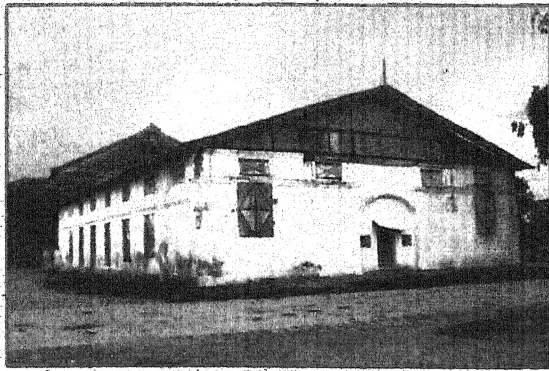
अंग्रेजों के समय का थियेटर आगा हसन द्वारा निर्मित (चरखारी)
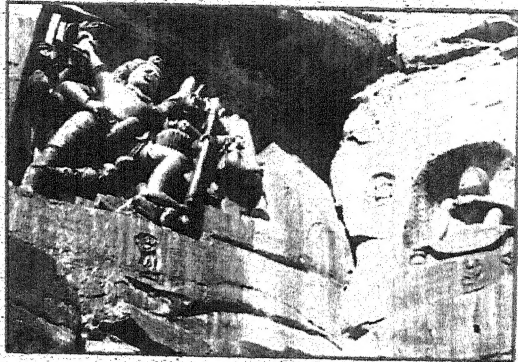
मूर्ति शिल्प की दृष्टि से कालिंजर की प्रतिमाएँ (भिड़की ,भैरवी)

मदन महल (जबलपुर)

बरगी बाँध (जबलपुर)
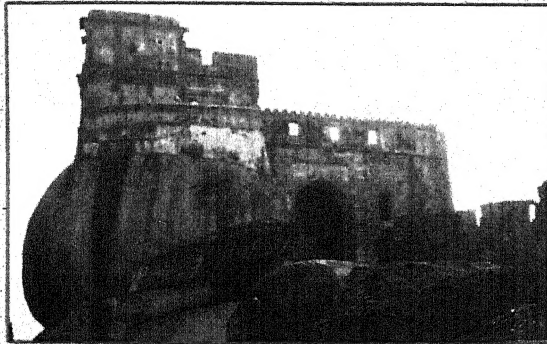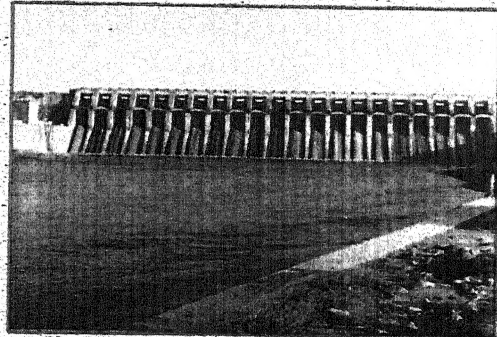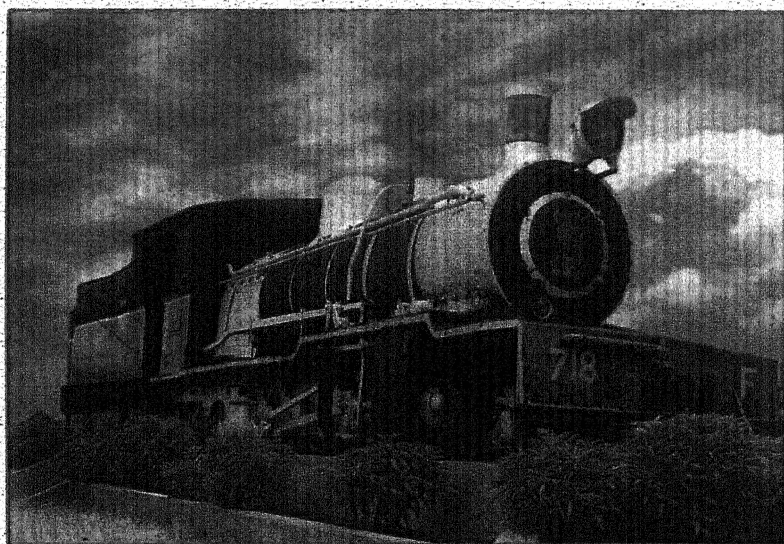
लौहपथगामिनी का कोयले से संचालित भाप का इंजन
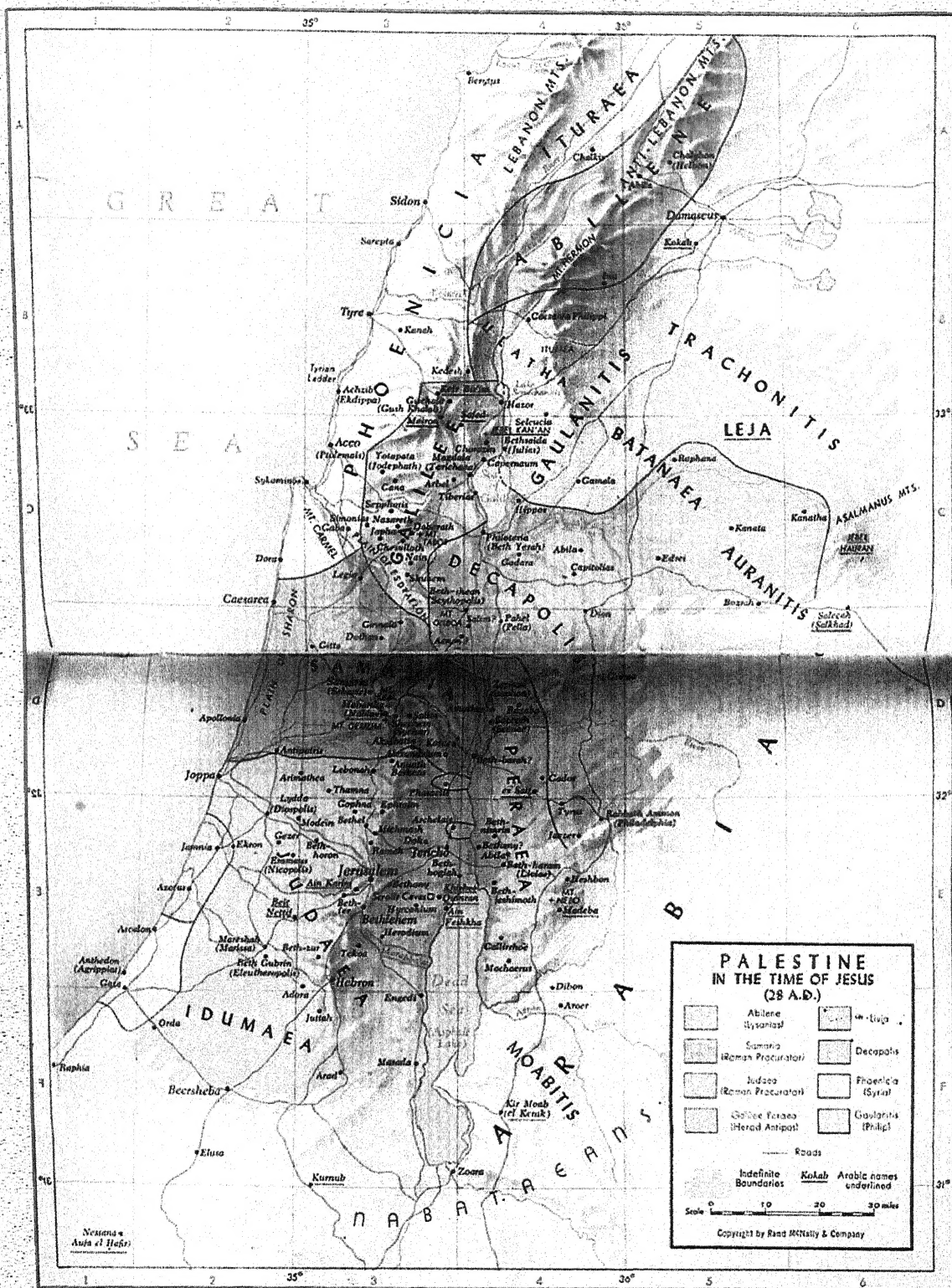
प्रभु येशु के समय का इस्रायेल देश
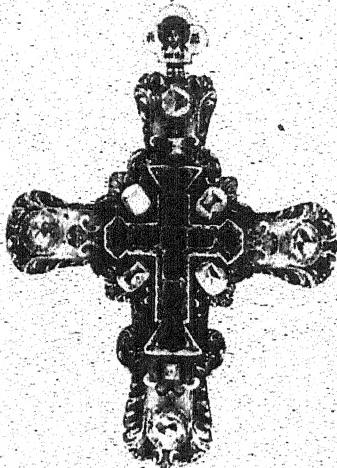
Russian pectoral cross

The Cross

In the first three centuries after the crucifixion, the cross was an important symbol in private devotion, but Christians rarely used it openly. In the 4th century, the Roman emperor Constantine used the cross on his coinage. His devotion to the cross was reported to have come from a vision of Christ's cross emblazoned in the sky. With his help, the cross became the reigning symbol of the church.

It was during Constantine's reign, that the cross upon which Jesus was crucified was said to have been found, and numerous legends sprang up about the "True Cross."

The Latin cross of the early Christians took many forms, as they were embellished by craftsmen. Saints and martyrs were assigned their own symbolic crosses. The crucifix, with Christ's body on it, probably developed around the 5th century, but was not used on church altars until the 13th century.